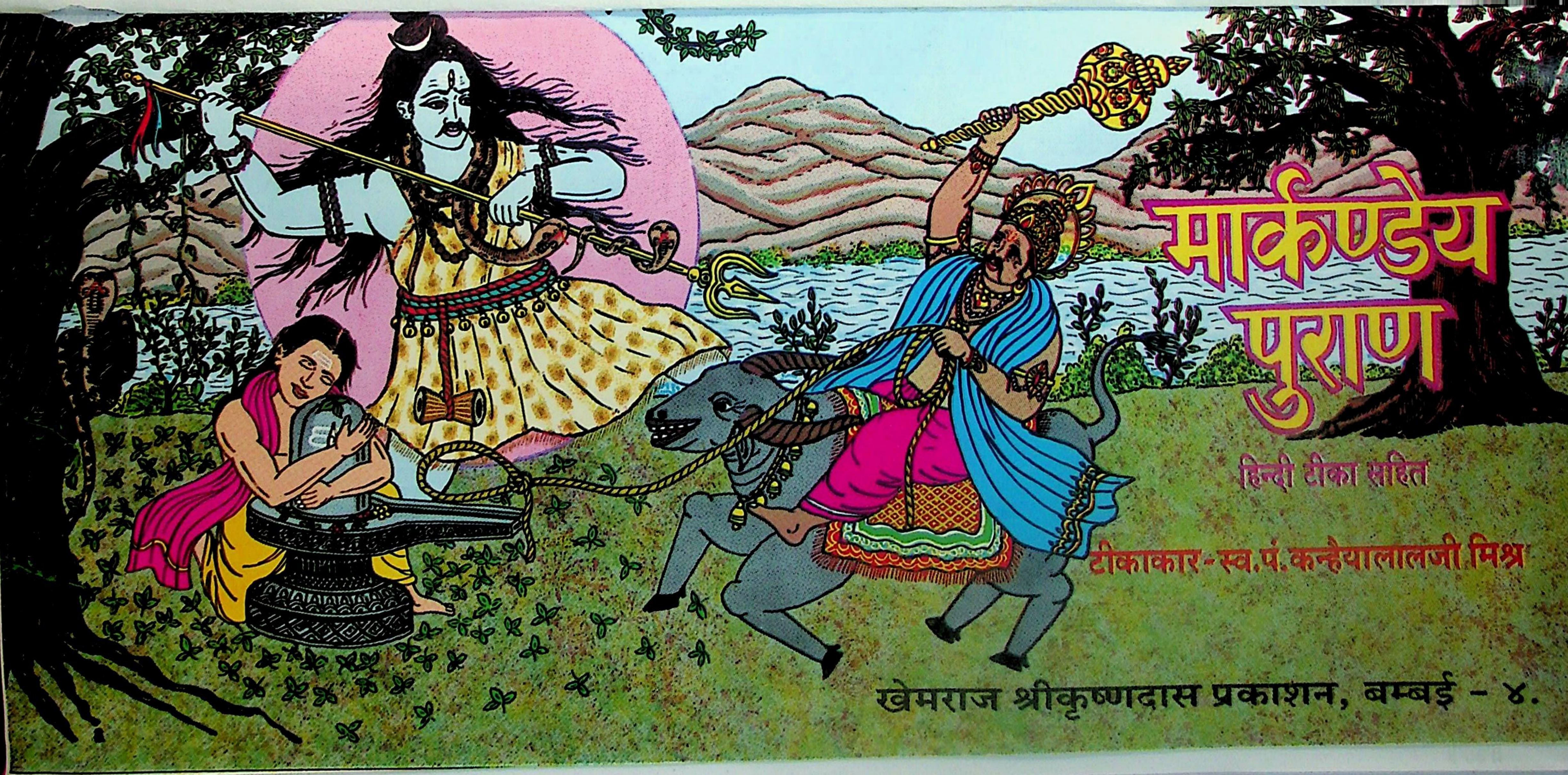
मार्कण्डेय पुराण

हिन्दी टीका सहित

टीकाकार - स्व. पं. कन्हैयालालजी मिश्र



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.



मार्कण्डेय
पुराण
हिन्दी टीका सहित
टीकाकार-स्व.पं.कन्हैयालालजी मिश्र
खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

संस्करण : दिसंबर २०१८, संवत् २०७५

मूल्य: ८०० रुपये मात्र

मुद्रक एवं प्रकाशक
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्री वेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop : Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004
Tel / Fax : 91 22 23857456

Website : http://www.khe_shri.com
E-Mail : khemraj@vsnl.com

Printed By Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadas
Prop.: Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004.
at their Shri Venkateshwar Press,
66, Hadapsar Industrial Estate, Pune - 411 013.

॥ अथ सभाषाटीकं श्रीमार्कण्डेयपुराणं प्रारभ्यते ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004.
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune -411 013.


मार्कंडेयऋषिः
बालमुकुंद.
बृहद्व्रतधरः शांतः जटिलो वल्क-
लांबरः।। बिभ्रत्कमण्डलुदण्ड मु-
पवीतं समेखलम्।। कृष्णाजिनं
साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये।।


शंकर
पा-
यम.
मार्कंडेय


जैमिनी
विबाध
पिंगाक्ष
सुपत्र

भूमिका।

उस सच्चिदानन्द करुणावरुणालय आनन्दकन्द ब्रजचन्दके चारुचरणोंमें वारंवार प्रणाम है कि, जिसकी कृपाकोरसे मूक वाचाल और पंगुगण पर्वतोंपर आरोहण कर जाते हैं। यह उसहीकी महिमाका विकास है कि, आजकल संपूर्ण भारतवर्षमें संस्कृत विद्याके प्रचारकी ध्वनि प्रतिध्वनित होकर सनातन धर्मावलम्बियोंको प्रमुदित कररही है।

इस भारतवर्षमें वेदार्थको लेकर प्रतिद्वापर युगके अन्तमें भगवान् श्रीवेदव्यासजी पुराणोंका विभाग करते हैं, वे ब्रह्मपुराण आदि अष्टादश पुराण हैं, जिनमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित, यह पांच विषय होते हैं। इनही पांच विषयोंके क्रमसे पुरातन कालके समस्त इतिहास, राजाओंके चरित्र, सृष्टि आदि विषय, तथा वेद शास्त्रोंका आद्योपान्त समस्त सिद्धान्त आजाता है और ऐसे ऐसे गूढ विषय, मोक्षप्राप्तिके उपाय सरलतासे पुराणोंमें वर्णन किये जाते हैं कि जिसमें चारों वर्णके नर नारी भगवद्भक्तिलाभ कर मुक्तिके अधिकारी होते हैं, इस कारण उपनिषदादिमें इतिहास पुराणको पांचवां वेद कहकर निरूपण किया है। यदि पुराण विद्या न होती तो पुरातन तत्वके विना यह भारत वर्ष अन्धकारसे ढक जाता और पुराणोंका आशय केवल पुरातन इतिवृत्त वर्णन करनेहीका नहीं है, किन्तु उपासककी उपासना दृढ करते हुए उसको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करनाही इष्ट है; पुराणपाठ करनेसे लोक और परलोक दोनोंही बनते हैं, यह शंका कभी नहीं करनी चाहिये कि, पुराणोंमें भिन्न भिन्न देवताओंकी उपासना लिखी है, तथा जो पुराण जिस देवताकी महिमा वर्णन करता है वह दूसरे देवताको न्यून कहता है, यह नहीं, पुराणकी निन्दा करनेको प्रवृत्त नहीं है, किन्तु उत्कर्षता विधान करती है। जैसे कोई नेत्रोंकी महिमा वर्णन करते हुए कहै कि तुम्हारी समान कान नहीं हैं, तो उसका वह कहना सत्यही है, इसी प्रकार पुराणोंमें परमेश्वरका भिन्न भिन्न शक्तिरूपसे वर्णन है। जैसे लिखा है कि "शिवकी समान दूसरा नहीं, विष्णुकी समान दूसरा नहीं, देवीकी समान दूसरा नहीं, इसीके भजनसे मुक्ति होती है" इस बातके देखनेसे यह बात निश्चय हुई कि, नाममात्रका भेद है, परन्तु शक्ति सबकी बराबर है, तब विचारनेसे विदित होता है, यह सब परमेश्वरकेही रूपान्तर हैं, इससे सबही पुराण परमेश्वरके प्रतिपादक हैं, यह बात सिद्ध है और पुराणोंमें अष्टादश भेद इस कारण हैं कि सत्, रज, तमके सम, विषम न्यून भेदसे प्राणियोंके स्वभाव अठारह प्रकारके होते हैं, जिसका स्वभाव जैसा होता है, वैसीही कथा और देवतामें उसका मन लगता है, इससे भगवान् श्रीवेदव्यासजीने यह विचार कर कि सबकी ही चित्तवृत्ति उस परमात्मामें लगजाय अठारह प्रकारसे पुराणोंका संग्रह किया है।

यह पुराणभी संस्कृत विद्यामें होनेके कारण सर्व साधारण इनके रहस्योंको नहीं समझ सकते; यही विचार कर इनका टीका सर्वसाधारणके समझने योग्य हिन्दी भाषामें शंका समाधानके सहित होना परम आवश्यक है और हमारे परम माननीय ज्येष्ठ भ्राता पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्रने श्रीमद्भागवत, हरिवंश, शिवपुराण आदि कई

पुराणोंका इसी प्रकार टीका भी किया है और हमने जिस पुराणका टीका किया है, इसकी शैली भी भ्रातृवर्यके टीकेके अनुसार रक्खी है और एकवार इस टीकेको प्रकाश होनेसे पहिले उनके दृष्टिगोचर भी करदिया है ।

जिसका टीका करनेमें हम प्रवृत्त हुए हैं, यह पुराणमें सातवां पुराण मार्कण्डेय नामक है, इसमें महाभारतकी अनेक शंकाओंका समाधान तथा भारतवर्षकी अनेक सुरीतियोंके गुप्त रहस्य, अनेक प्रकारकी शिक्षा, उपदेश, बालकोंकी सुरक्षा, उनको सुयोग्य बनाना, अर्थ, धर्म, का ा, मोक्षादि चारों पदार्थोंका प्राप्तिके उपाय, ब्रह्मविद्या, ईश्वरभक्ति, पातिव्रत्यधर्म, स्त्रियोंके सुधारके उपाय, वर्णाश्रमके धर्म, विद्युत्, अग्निविद्या आदि ऐसे ऐसे अद्भुत विषय इसमें वर्णन किये हैं कि, देखते ही मनुष्यका अन्तःकरण परम आनन्दित होजाता है । इस टीकेके निर्माण करनेमें कहीं कहीं गूढ विषयोंका विवरण तथा शंकित स्थलोंका समाधान भलीभाँतिसे किया है; अक्षरार्थ, भावार्थको बहुत स्पष्ट दिखला दिया है । साथमें महामाया भगवती दुर्गाचरित्रका टीका भी बडे विस्तारित अर्थोंमें किया है ।

इस ग्रंथके टीका करनेमें मेरे परम मित्र चन्दौसीनिवासी पण्डित मुन्नालालजीशर्मा और मुरादाबादनिवासी पण्डित कन्हैयालालजी तंत्रवैद्यने विशेष उत्साह दिलाया था, अत एव उक्त महाशयोंको अन्तःकरणसे धन्यवाद देकर आशा करताहू कि वह सदैव इसी प्रकार मुझको उत्साहित करते रहेंगे ।

अब यह ग्रंथ सब प्रकारसे अलंकृत कर सब प्रकारके स्वत्वसहित परम माननीय जगद्विख्यात "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष सेठजी श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजी महोदयको समर्पण किया है जो सब प्रकारके सन्मानसहित नित्य हमारे उत्साहको बढाते रहते हैं ।

पाठक महाशयोंसे प्रार्थना है कि, हमने कई पुराणोंको मिलाकर इस पुराणका टीका निजमतिके अनुसार किया है, यदि आपलोग इसमें कहीं भूल पावें तो कृपाकर सुधार ले, कारण कि, सर्वज्ञ परमेश्वर है ।

जेहि मारुत गिरिमेरु उडाहीं । कहहु तूल केहि लेखे माहीं ॥

परन्तु इसके पाठसे आपको अनेक विषयोंमें दक्षता और भगवद्भक्तिकी प्राप्ति होगी, ऐसी मुझे दृढ आशा है ।

सज्जनोंका अनुगृहीत पं० कन्हैयालाल मिश्र, मोहल्ला-दीनदारपुरा, मुरादाबाद-सिटी.

अथ भाषाटीकासहित मार्कण्डेयपुराणकी विषयानुक्रमणिका ।

इति भाषाटीकासहित मार्कण्डेय पुराणकी विषयानुक्रमणिका समाप्त ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ मार्कण्डेयपुराणभाषाटीकाप्रारंभः ॥ ॥ मङ्गलाचरणम्--श्लोकः ॥ गौरीपुत्रं नमस्कृत्य शारदामम्बिकां तथा। ब्रह्माणं शंकरं विष्णुं देवदेवं जगद्गुरुम् ॥ सुखानन्दतनूजेन कन्हैयालालशर्मणा। मार्कण्डेयपुराणस्य भाषाटीका विरच्यते ॥

जो संसारके भय और दुःखके नाश करनेमें योग्य हैं, एकान्तचित्तवाले योगिजन और संन्यासी जिनके चरणोंको ध्यानद्वारा प्राप्त करके प्रणाम करते हैं, जिन्होंने प्रगट होकर भूलोक भुवर्लोक स्वर्लोकको वामनरूपसे अतिक्रमण किया है, वह नारायणके चरणकमल आपको पवित्र करें ॥ १ ॥ सब पापसमूहोंके नाश करनेमें चतुर, क्षीरसागरमें शेषजीके शरीरपर मूर्त्तिमान् हो शयन करनेवाले, जिनके श्वाससे जलकी कराल कणिका कम्पित होती हैं जिसमें ऐसा समुद्र जिनके संगसे नृत्य करतासा दिखाई देता है, वह अविनाशी तुम्हारी रक्षा करें ॥ २ ॥ नारायण, नर, नरोत्तम और देवी सरस्वतीको प्रणाम

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीमद्वेङ्कटेशाय नमः ॥ अथ मार्कण्डेयपुराणप्रारंभः॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्यमासाद्य वंदितमतीव विविक्तचित्तैः ॥ तद्वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्ममाविर्भवत्क्रमविलंघितभूर्भुवःस्वः ॥१॥ पायात्स वः सकलकल्मषभेददक्षः क्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्तिः ॥ श्वासावधूतसलिलोत्कणिकाकरालः सिन्धुः प्रनृत्यमिव यस्य करोति संगात् ॥ २ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥३॥ तपःस्वाध्यायनिरतं मार्कण्डेयं महामुनिम् ॥ व्यासशिष्यो महातेजा जैमिनिः पर्यपृच्छत ॥ १ ॥ भगवन् भारताख्यानं व्यासेनोक्तं महात्मना ॥ पूर्णमस्तमलैः शुभ्रैर्नानाशास्त्रसमुच्चयैः ॥ २ ॥ जातिशुद्धिसमायुक्तं साधुशब्दोपशोभितम् ॥ पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम् ॥ ३ ॥

करके जयकीर्तन अर्थात् पुराणादि पाठ करें ॥ ३ ॥ एक समय महर्षि वेदव्यासजीके शिष्य महातेजा जैमिनिने परम तपस्वी, वेदादि पढनेमें निरत, महामुनि मार्कण्डेयजीसे पूँछा ॥ १ ॥ हे भगवन् ! महात्मा वेदव्यासजीने भारत नामक जो ग्रंथ वर्णन किया है, वह सब अनेक शास्त्रोंके मर्मार्थसे युक्त ॥ २ ॥ विशुद्ध शब्दोंसे परिपूर्ण छन्द और अलंकारादिसे युक्त, कानोंको सुखदायक शब्दोंसे संयुक्त और उसमें जो सब प्रश्न कहे हैं उनका भी

यथार्थ उत्तर सन्निवेशित हुआ है ॥ ३ ॥ जैसे देवताओंमें विष्णु, मनुष्योंमें ब्राह्मण, संपूर्ण गहनोंमें जैसे चूडामणि ॥ ४ ॥ अस्त्रोंमें जैसे वज्र और सब इन्द्रियोंमें जैसे मन प्रधान है, इसी प्रकार सब शास्त्रोंमें यह महाभारतही एकमात्र है इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सबही परस्पर मिले हुए और प्रकटित रूपमें तथा पृथक् पृथक् वर्णित हुए हैं ॥५॥६॥ अत एव यही धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और मोक्षका साधन शास्त्र है ॥७॥ हे महाभाग ! बुद्धिमान् महर्षि वेदव्यासजीने चारों आश्रमोंका आचार अवस्थान और साधन सबही इसमें विशेष रूपसे वर्णन किया है ॥ ८ ॥ हे तात! उदारकर्मा महर्षि वेदव्यासजीने इस महाभारत नामक महाशास्त्रकी इस प्रकार रचना करी है कि, यह अत्यन्त विस्तृत होनेपर भी इसमें किसी स्थलका परस्पर विरोध नहीं

त्रिदशानां यथा विष्णुर्द्विपदां ब्राह्मणो यथा ॥ भूषणानां च सर्वेषां यथा चूडामणिर्वरः ॥ ४ ॥ यथायुधानां कुलिशमिन्द्रियाणां यथा मनः ॥ तथेह सर्वशास्त्राणां महाभारतमुत्तमम् ॥ ५ ॥ अत्रार्थश्चैव धर्मश्च कामो मोक्षश्च वर्ण्यते ॥ परस्परानुबन्धाश्च सानुबन्धाश्च ते पृथक् ॥ ६ ॥ धर्मशास्त्रमिदं श्रेष्ठमर्थशास्त्रमिदं परम् ॥ कामशास्त्रमिदं चाग्र्यं मोक्षशास्त्रं तथोत्तमम् ॥७॥ चतुराश्रमधर्माणामाचारस्थितिसाधनम् ॥ प्रोक्तमेतन्महाभाग वेदव्यासेन धीमता ॥ ८ ॥ तथा तात कृतं ह्येतद्व्यासेनोदारकर्मणा ॥ यथा व्याप्तं महाशास्त्रं विरोधैर्नाभिभूयते ॥ ९ ॥ व्यासवाक्यजलौघेन कुतर्कतरुहारिणा ॥ वेदशैलावतीर्णेन नीरजस्का मही कृता ॥१०॥ कलशब्दमहाहंसं महाख्यानपराम्बुजम् ॥ कथाविस्तीर्णसलिलं कार्ष्णं वेदं महाह्रदम् ॥ ११ ॥ तदिदं भारताख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम् ॥ तत्त्वतो ज्ञातुकामोऽहं भगवंस्त्वामुपस्थितः ॥१२॥ कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दनः ॥ वासुदेवो जगत्सूतिस्थितिसंयमकारणम् ॥१३॥

हुआ है ॥ ९ ॥ वासुदेवके वचनरूपी इस जलराशिने वेदरूपी पर्वतसे निकलकर कुतर्करूपी वृक्षोंको उखाड पृथ्वीको रजरहित करदिया है ॥ १० ॥ कृष्णद्वैपायनप्रणीत पंचमवेदस्वरूप यह महाह्रद (तालाव) मधुर शब्दरूप महाहंस और महाआख्यानरूपी कमलोंके द्वारा शोभायमान और विस्तीर्ण कथारूपी जलके द्वारा पूर्ण हुआ है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! जो वेदार्थ और श्रुतियोंसे युक्त है उस महाभारतनामक शास्त्रका यथार्थ रूपसे अर्थ जाननेके निमित्तही मैं आपके पास आया हूं ॥ १२ ॥ जो जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं वह जनार्दन वासुदेव निर्गुण होकर भी किस कारण मनुष्य-

१ जिनके रुँवोंके छिद्रमें संपूर्ण जगत् अवस्थान करताहै और जो सदाही क्रीडा करते हैं, अर्थात् सच्चिदानंदस्वरूप हैं, उनकोही वासुदेव कहते हैं।

त्वको प्राप्त हुए थे ? ॥ १३ ॥ अकेली द्रुपदपुत्री द्रौपदी कृष्णा जिस प्रकार पांच पांडवोंकी महिषी हुई थी ? इस विषयमें मुझको महान् संदेह है ॥१४॥ और महाबलशाली बलदेवजीने तीर्थयात्राके प्रसंगमें किस प्रकार ब्रह्महत्याके पापका प्रायश्चित्त किया था ? ॥ १५ ॥ और पाण्डव जिनके सहायक थे, उन महारथ द्रौपदीके पुत्रोंने अविवाहित अवस्थामें किस प्रकार अनाथकी समान प्राण त्याग किया ? ॥ १६ ॥ यह सब आप मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये क्योंकि आपही अबोध पुरुषोंको ज्ञानोदय कराते हैं ॥ १७ ॥ योगशास्त्रोक्त अठारह दोषरहित महामुनि मार्कण्डेयजी जैमिनि मुनिके इस

कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा ॥ पञ्चानां महिषी कृष्णा ह्यत्र नः संशयो महान् ॥ १४ ॥ भेषजं ब्रह्महत्याया बलदेवो महाबलः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कस्माच्चक्रे हलायुधः ॥ १५ ॥ कथं च द्रौपदेयास्तेऽकृतदारा महारथाः ॥ पाण्डुनाथा महात्मानो वधमापुरनाथवत् ॥ १६ ॥ एतत्सर्वं विस्तरशो ममाख्यातुमिहार्हसि ॥ भवन्तो मूढबुद्धीनामवबोधकराः सदा ॥ १७ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ दशाष्टदोषरहितो वक्तुं समुपचक्रमे ॥ १८॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ क्रियाकालोऽयमस्माकं सम्प्राप्तो मुनिसत्तम ॥ विस्तरे चापि वक्तव्ये नैष कालः प्रशस्यते ॥ १९ ॥ ये तु वक्ष्यन्ति वक्ष्येऽद्य तानहं जैमिने तव ॥ तथा च नष्टसन्देहं त्वां कारिष्यन्ति पक्षिणः ॥ २० ॥ पिङ्गाक्षश्च विबोधश्च सुपुत्रः सुमुखस्तथा ॥ द्रोणपुत्राः खगश्रेष्ठास्तत्त्वज्ञाः शास्त्रचिन्तकाः ॥ २१ ॥ वेदशास्त्रार्थविज्ञाने येषामव्याहता मतिः ॥ विंध्यकन्दरमध्यस्थास्तानुपास्य च पृच्छ च ॥ २२ ॥

प्रकार वचन सुनकर कहनेलगे ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुनिसत्तम ! मेरे संध्यावन्दनादि करनेका समय उपस्थित हुआ है, यह विस्तारसहित कहनेका समय नहीं है ॥ १९ ॥ हे जैमिने ! जो पक्षी यह विषय तुमसे कहेंगे, उनका वर्णन करताहूं, वह पक्षी यह विषय सुनाकर तुमको संदेहहीन करेंगे ॥२०॥ पिंगाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख इत्यादि खगश्रेष्ठ द्रोणके पुत्र शास्त्रोंका तत्त्व जाननवाले ॥२१॥ पक्षी विन्ध्यपर्वतकी कन्दरामें वास करते हैं,

१ निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, मोह, मद, उन्माद, प्रमाद, विस्मय, सन्देह, लोभ, असूया, मात्सर्य, कपटता, मिथ्या, नास्तिकता, अगमदर्शिता और अशिक्षा ।

वेदशास्त्रार्थज्ञानमें उनकी बुद्धि कभी नहीं रुकती है, तुम उनकी उपासना करके पूछो तो सब विषय जान सकोगे ॥ २२ ॥ बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके इस प्रकार कहनेपर उन ऋषिशार्दूल जैमिनिने विस्मयोत्फुल्लनेत्र होकर फिर पूछा ॥ २३ ॥ जैमिनिने कहा--हे ब्रह्मन् ! पक्षी मनुष्यके समान कथा कह सकते हैं: प्रथम तो यही आश्चर्य है और फिर इसपर भी उन्होंने अत्यन्त दुर्लभ शास्त्रज्ञान प्राप्त कियाहै ॥ २४ ॥ जो हो यदि तिर्यग्योनिमें उनका जन्म हुआ है, तो फिर उनको ऐसा ज्ञान कहांसे हुआ और किस लिये उनको द्रोणपुत्र कहते हैं ॥ २५ ॥ यह चार पक्षी जिसके पुत्र हैं वह द्रोण कौन है और इन गुणवान् महात्मा पक्षियोंका किस प्रकार धर्मज्ञान हुआ ? ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे जैमिने ! पूर्वकालमें नन्दनवनमें इन्द्र, नारद और अप्सराओंके एकत्र मिलित होनेपर

एवमुक्तस्तदा तेन मार्कण्डेयेन धीमता ॥ प्रत्युवाचर्षिशार्दूलो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ २३ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन्खगवागिव मानुषी ॥ यत्पक्षिणस्ते विज्ञानमापुरत्यन्तदुर्लभम् ॥२४॥ तिर्यग्योन्यां यदि भवस्तेषां ज्ञानं कुतोऽभवत् ॥ कथं च द्रोणतनयाः प्रोच्यन्ते ते पतत्त्रिणः ॥२५॥ कश्च द्रोणः प्रविख्यातो यस्य पुत्रचतुष्टयम् ॥ जातं गुणवतां तेषां धर्मज्ञानं महात्मनाम् ॥२६॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणुष्वावहितो भूत्वा यद्वृत्तं नन्दने पुरा ॥ शक्रस्याप्सरसां चैव नारदस्य च संगमे ॥२७॥ नारदो नन्दनेऽपश्यत्पुंश्चलीगणमध्यगम् ॥ शक्रं सुराधिराजानं तन्मुखासक्तलोचनम् ॥ २८ ॥ स तेनर्षिवरिष्ठेन दृष्टमात्रः शचीपतिः ॥ समुत्तस्थौ स्वकं चास्मै ददावासनमादरात् ॥ २९ ॥ तं दृष्ट्वा बलवृत्रघ्नमुत्थितं त्रिदशाङ्गनाः ॥ प्रणेमुस्ताश्च देवर्षिं विनयावनताः स्थिताः ॥ ३० ॥ ताभिरभ्यर्चितः सोऽथ उपविष्टे शतक्रतौ ॥ यथार्हं कृतसंभाषा कथाश्चक्रे मनोरमाः ॥ ३१ ॥

जो घटना हुई थी, वह एकाग्र चित्तसे सुनो ॥ २७ ॥ एक दिन देवर्षि नारदजीने हठात् उपस्थित होकर देखा कि, देवराज इन्द्र कितनीही वेश्याओंसे परिवेष्टित हो उनके मुखकी ओर देखरहे हैं ॥ २८ ॥ शचीपति इन्द्रने उस महर्षिश्रेष्ठको देखतेही उठकर अत्यन्त आदर किया और बैठनेके लिये उनको अपना आसन दिया ॥ २९ ॥ इन्द्रको उठता हुआ देखकर स्वर्गकी वेश्याओंनेभी उठकर महर्षिको प्रणाम किया और विनीतभावसे नीचेको मस्तक किये खडीं रहीं ॥ ३० ॥ नारद इस प्रकार उनसे पूजित हो जब इन्द्रके सहित बैठे, तब परस्पर यथायोग्य अनेक प्रकारकी वार्ता करने लगे ॥ ३१ ॥

इसी बीचमें शचीपति इन्द्रने महामुनिसे कहा, इन्द्र बोले--हे महाभाग ! जिसको आपकी इच्छा हो गानेकी आज्ञा दो ॥ ३२ ॥ रंभा, मिश्रकेशी, तिलोत्तमा, उर्वशी, घृताची वा मेनका इनमें जिसकी अभिलाषा हो उसीको नृत्य करनेकी आज्ञा दो ॥ ३३ ॥ द्विजश्रेष्ठ नारदजीने देवराज इन्द्रके यह वचन सुन, कुछ काल चिन्ता कर विनय करती हुई अप्सराओंसे कहा ॥ ३४ ॥ देखो, तुममें जो रमणी रूपवती और उदारता इत्यादि गुणोंमें अपनेको गुणवती विचारतीहो वही मेरे सन्मुख नृत्य करे ॥ ३५ ॥ क्योंकि रूपवती और गुणवतीके अतिरिक्त नाटयशास्त्रमें अन्यकी सिद्धि नहीं होती । एवं हाव, भाव और कटाक्ष विक्षेपादि युक्त नृत्यकोही नृत्य कहते हैं अन्य नृत्य वृथा है ॥ ३६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--अनन्तर उनका

ततः कथान्तरे शक्रस्तमुवाच महामुनिम् ॥ शक्र उवाच ॥ देह्याज्ञां नृत्यतामासां तव याभिमतोति वै ॥ ३२ ॥ रम्भा वा कर्कशा वाथ उर्वश्यथ तिलोत्तमा ॥ घृताची मेनका वापि यत्र वा भवतो रुचिः ॥ ३३ ॥ एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठो वाचं शक्रस्य नारदः ॥ विचिन्त्याप्सरसः प्राह विनयावनता स्थिताः ॥ ३४ ॥ युष्माकमिह सर्वासां रूपौदार्यगुणाधिकम् ॥ आत्मानं मन्यते या तु सा नृत्यतु ममाग्रतः ॥ ३५ ॥ गुणरूपविहीनायाः सिद्धिर्नाट्यस्य नास्ति वै ॥ चार्वधिष्ठानवन्नृत्यं नृत्यमन्यद्विडम्बनम् ॥ ३६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तद्वाक्यसमकालं च एकैकास्ता नतास्ततः ॥ अहं गुणाधिका न त्वं न त्वं चान्याब्रवीदिदम् ॥ ३७ ॥ तासां संभ्रममालोक्य भगवान्पाकशासनः ॥ पृच्छ्यतां मुनिरित्याह वक्ता यां वो गुणाधिकाम् ॥ ३८ ॥ शक्रच्छन्दानुयाताभिः पृष्टस्ताभिः स नारदः ॥ प्रोवाच यत्तदा वाक्यं जैमिने तन्निबोध मे ॥ ३९ ॥ तपस्यंतं नगेन्द्रस्थं या वः क्षोभयते बलात् ॥ दुर्वाससं मुनिश्रेष्ठं तां वो मन्ये गुणाधिकाम् ॥ ४० ॥

यह वचन सुनकर एक एक अप्सरा परस्पर कहने लगी "मैं ही सबसे गुणोंमें अधिक हूं तुम नहीं" ॥ ३७ ॥ उनमें इस प्रकार विवाद उपस्थित हुआ देखकर भगवान् पाकशासन (इन्द्र) ने कहा, तुम इन मुनिसेही पूछो, तुममें कौन गुणवती है, सो यही कह सकते हैं ॥ ६८ ॥ हे जैमिने ! इन्द्रकी इच्छानुसार चलनेवाली वेश्याओंके पूछनेपर महर्षि नारदजीने उस समय जो कहा था, वह कहताहूं सुनो ॥ ३९ ॥ नारदजी बोले--देखो. मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा पर्वतके ऊपर तपस्या करते हैं, उनको जो मोहित कर सकेगी, तुममें वही अधिक गुणशालिमी है ॥ ४० ॥

मार्कण्डेयजी बोले--उनका यह वचन सुनकर सब अप्सराओंने मस्तक कम्पायमान करके कहा, इस कार्यके करनेमें हमारी सामर्थ्य नहीं है ॥ ४१ ॥ तिनमें वपुनामक एक अप्सराने अनेक वार अनेक मुनियोंका तप भंग किया था, इसी कारण उसने गर्वसहित कहा--आज्ञा कीजिये जहां दुर्वासा मुनि स्थित है, मैं वहीं जाऊंगी ॥ ४२ ॥ मैं अभी कामबाणके आघातसे उनकी मनोरूप लगामको छेदन कर इन्द्रियरूपी घोडोंको उन्मार्गगामी करके देहरूपी रथको बुद्धिरूप सारथिविहीन करूंगी ॥ ४३ ॥ यदि ब्रह्मा, विष्णु वा महादेव भी हों, तो भी निःसन्देह इस समय उनका अन्तर कामबाणसे जर्जरित करूंगी ॥ ४४ ॥ वपु नामक अप्सरा यह कहकर हिमालय पर्वतमें गई, वहां मुनिकी तपस्याके

मार्कण्डेय उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्वा वेपितकन्धराः ॥ अशक्यमेतदस्माकमिति ताश्चक्रिरे कथाः ॥ ४१ ॥ तत्राप्सरा वपुर्नाम मुनिक्षोभणगर्विता ॥ प्रत्युवाचानुयास्यामि यत्रासौ संस्थितो मुनिः ॥ ४२ ॥ अद्य तं देहयन्तारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् ॥ स्मरशस्त्रगलद्रश्मिं करिष्यामि कुसारथिम् ॥ ४३ ॥ ब्रह्मा जनार्दनो वापि यदि वा नीललोहितः ॥ तमप्यद्य करिष्यामि कामबाणक्षतान्तरम् ॥ ४४ ॥ इत्युक्त्वा प्रजगामाथ प्रालेयाद्रिं वपुस्तदा ॥ मुनेस्तपःप्रभावेण प्रशान्तश्वापदाश्रमम् ॥ ४५ ॥ सा पुंस्कोकिलमाधुर्या यत्रास्ते स महामुनिः ॥ क्रोशमात्रे स्थिता तस्मादगायत वराप्सराः ॥४६ ॥ तद्गीतध्वनिमाकर्ण्य मुनिर्विस्मितमानसः ॥ जगाम तत्र यत्रास्ते सा बाला रुचिरानना ॥४७॥ तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं मुनिः संस्तभ्य मानसम् ॥ क्षोभणायागतां ज्ञात्वा कोपामर्षसमन्वितः ॥ ४८ ॥ उवाचेदं ततो वाक्यं महर्षिस्तां महातपाः ॥ ४९ ॥

प्रभावसे आश्रमवासी हिंसक जीव भी अत्यन्त शान्त थे ॥ ४५ ॥ अप्सराओंमें श्रेष्ठ वपु जहां महामुनि दुर्वासा वास करते थे, वहांसे एक कोशमात्रके अन्तरमें अवस्थान करके पुंस्कोकिलके समान मनोहर कंठसे गान करने लगी ॥ ४६ ॥ मुनिवर दुर्वासा इस गीतको सुनकर जहां वह कोकिलकंठी बाला स्थित थी, आश्चर्यचित्तसे वहां गये ॥ ४७ ॥ मुनिवर दुर्वासाने उस सर्वाङ्गसुन्दरी कामिनीको देख, मनको रोक "मेरे तपमें विघ्न करनेके लियेही आई है" यह समझ अत्यन्त क्रोधयुक्त होकर ॥ ४८ ॥ महातपा महर्षिने उससे कहा ॥ ४९ ॥

रे मदोन्मत्त खेचरि ! मेरी इस दुःखोपार्जित तपस्यामें तू विघ्न करनेके लियेही आई है ॥ ५० ॥ इस कारण रे दुर्बुद्धे ! तू मेरे क्रोधसे कलुषित होकर सोलह वर्षतक पक्षियोंके कुलमें जन्म ग्रहण करके रहेगी ॥ ५१ ॥ रे अप्सराधम ! तू अपना रूप त्यागकर पक्षिरूप धारण करेगी तेरे चार पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ५२ ॥ तू पुत्र उत्पन्न करनेकी प्रीति प्राप्त करनेमें वंचित होगी और शस्त्राघातसे विनष्टपाप होकर फिर स्वर्गमें जायगी. देखना इसमें अब कोई उत्तर न करना ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ महर्षि दुर्वासा क्रोधसे लाल नेत्र हो चंचल मनोरम कंकणधारिणी मानिनी वपुको यह वचन सुनाकर, पृथ्वीको छोड,

यस्माद्दुःखार्जितस्येह तपसो विघ्नकारणात् ॥ आगतासि मदोन्मत्ते मम दुःखाय खेचरि ॥ ५० ॥ तस्मात्सुपर्णगोत्रे त्वं मत्क्रोधकलुषीकृता ॥ जन्म प्राप्स्यासि दुष्प्रज्ञे यावद्वर्षाणि षोडश ॥ ५१॥ निजरूपं परित्यज्य पक्षिणीरूपधारिणी ॥ चत्वारस्ते च तनया जनिष्यन्तेऽधमाप्सरः ॥ ५२ ॥ अप्राप्य तेषु च प्रीतिं शस्त्रपूता पुनर्दिवि ॥ वासमाप्स्यसि वक्तव्यं नोत्तरं ते कथंचन ॥ ५३ ॥ इति वचनमसह्यं कोपसंरक्तदृष्टिश्चलकलवलयांतां मानिनीं श्रावयित्वा ॥ तरलतरतरङ्गां गां परित्यज्य विप्रः प्रथितगुणगणौघां संप्रयातः खगङ्गाम् ॥ ५४ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणे वपुशापकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अरिष्टनेमिपुत्रोऽभूद्गरुडो नाम पक्षिराट् ॥ गरुडस्याभवत्पुत्रः सम्पातिरिति विश्रुतः ॥ १ ॥ तस्याप्यासीत्सुतः शूरः सुपार्श्वो वायुविक्रमः ॥ सुपार्श्वतनयः कुन्तिः कुन्तिपुत्रः प्रलोलुपः ॥ २॥ तस्यापि तनयावास्तां कङ्कः कन्धर एव च ॥३॥ कङ्कः कैलासशिखरे विद्युद्रूपेति विश्रुतम् ॥ ददर्शाम्बुजपत्राक्षं राक्षसं धनदानुगम् ॥ ४ ॥

प्रसिद्ध गुणोंसे युक्त आकाशगंगाको चलेगये ॥ ५४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासिकन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां वपुशापवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, सब पक्षियोंके राजा गरुड अरिष्टनेमिके पुत्र हुए, गरुडका पुत्र सम्पाति हुआ ॥ १ ॥ अत्यन्त बलवान् और वायुके समान विक्रमशाली सुपार्श्व सम्पातिका पुत्र हुआ, इसका पुत्र कुन्ति और कुन्तिका पुत्र प्रलोलुप हुआ ॥ २ ॥ प्रलोलुपके दो पुत्र हुए, कंक और कन्धर ॥ ३ ॥ कंकने एक दिन कैलासपर्वतमें जाकर पद्मपत्रके समान विशाल नेत्रवाले कुबेरके अनुचर विद्युद्रूप नामक राक्षसको देखा ॥ ४ ॥

यह राक्षस उससमय निर्मलमाला और अच्छे वस्त्र धारण किये स्वच्छ शिलापर भार्याके संग बैठाहुआ मद्यपान कररहाथा॥५॥ विद्युद्रूपराक्षस कंकको देखतेही अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगा रे पक्षियोंमें अधर्म! तू किसलिये यहां आयाहै ? ॥६॥ मैं स्त्रीके संग बैठाहूं इस समय किस कारण तू मेरे समीप आया है ? क्योंकि रहस्यकार्यमें बुद्धिमान् पुरुषोंको ऐसा आचरण नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥ कंकने कहा--इस पर्वतपर सबका समान अधिकार है, इसमें जिस प्रकार तुम्हारा अधिकार है, वैसाही मेरा है. और अन्यान्य जन्तुओंकाभी उसी प्रकार है, फिर इस विषयमें तुमको इतनी ममता क्यों है? ॥८॥ मार्क-

आपानासक्तममलस्रग्दामाम्बरधारिणम् ॥ भार्यासहायमासीनं शिलापट्टेऽमले शुभे ॥ ५ ॥ तद्दृष्टमात्रं कङ्केन रक्षः क्रोधसमन्वितम् ॥ प्रोवाच कस्मादायातस्त्वमितो ह्यण्डजाधम ॥ ६ ॥ स्त्रीसन्निकर्षे तिष्ठन्तं कस्मान्मामुपसर्पसि ॥ नैष धर्मः सुबुद्धीनां मिथो निष्पाद्य वस्तुषु ॥ ७ ॥ कङ्क उवाच ॥ साधारणोऽयं शैलेन्द्रो यथा तव तथा मम ॥ अन्येषां चैव जन्तूनां ममता भवतोऽत्र का ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ८ ॥ ब्रुवाणमित्थं खड्गेन कङ्कं चिच्छेद राक्षसः ॥ क्षरत्क्षतजबीभत्सं विस्फुरन्तमचेतनम् ॥ ९ ॥ कङ्कं विनिहतं श्रुत्वा कन्धरः क्रोधमूर्च्छितः ॥ विद्युद्रूपवधायाशु मनश्चक्रेऽण्डजेश्वरः ॥ १० ॥ स गत्वा शैलशिखरं कङ्को यत्र हतः स्थितः ॥ तस्य संकलनं चक्रे भ्रातुर्ज्येष्ठस्य खेचरः ॥ कोपामर्षविवृत्ताक्षो नागेन्द्र इव निःश्वसन् ॥ ११ ॥ जगामाथ स यत्रास्ते भ्रातृहा तस्य राक्षसः ॥ पक्षवातेन महता चालयन्भूधरान्वरान् ॥ १२ ॥

डेयजी बोले--कंकके इस प्रकार कहनेपर उस राक्षसने अत्यन्त क्रोधित हो खड्गाघातसे उसका शिर काट डाला, शिर कटनेके कारण रुधिरके गिरनेसे अति-भयंकर कार्य हुआ, तब कंक विचेतन होकर मर गया ॥९॥ इसके पीछे पक्षियोंमें श्रेष्ठ कन्धरने कंकको मरा हुआ सुन अत्यन्त क्रोधसहित विद्युद्रूप राक्षसके मारनेकी इच्छा करी॥१०॥ अनन्तर बडा भाई कन्धर कंक जहां मारागया था, कैलास पर्वतके उसी स्थानमें जाकर उसका अन्त्येष्टि कर्म किया और विस्फारित नेत्रोंसे सर्पकी समान श्वास लेता हुआ॥११॥भ्राताका मारनेवाला विद्युद्रूप राक्षस जहां स्थित था, वहां गया, उसके गमनसमयमें पंखोंकी वायुके

वेगसे आहत होकर बडे बडे पर्वत चलायमान होने लगे ॥ १२ ॥ और समुद्रका जल इधर उधर बिखरने लगा कधरने इस प्रकार एकमात्र पंखोंके आश्र-यसे क्षणमात्रमेंही पर्वतको आक्रमण किया ॥ १३ ॥ पक्षिश्रेष्ठ कंधरने पर्वतके ऊपर पहुंचकर देखा कि, निशाचर विद्युद्रूप सुवर्णमय शय्यापर बैठा हुआ मद्यपान कर रहा है उसके मुखमंडल और दोनों नेत्रोंने कुछेक लालवर्ण धारण किया है ॥ १४ ॥ और उसका मस्तक मालासे युक्त, सर्वाङ्ग हरिचंद-नके द्वारा चर्चित और मुखमंडल केतकीपुष्पके गर्भपत्रकी समान सफेद दांतोंकी पंक्तिसे शोभायमान हो रहा है ॥ १५ ॥ और यहभी देखा कि, एक सर्वाङ्गसुन्दरी कोकिलकंठी नितम्बिनी उसके समीप बैठी है, यही उसकी पत्नी है। कामिनीके दोनों नेत्र बडे और उसका नाम मदनिका है ॥ १६ ॥

वेगात्पयोदजालानि विक्षिपन्क्षतजेक्षणः ॥ क्षणात्क्षायितशत्रुः स पक्षाभ्यां क्रान्तभूधरः ॥१३॥ पानासक्तमतिं तत्र तं ददर्श निशाचरम् ॥ आताम्रवक्त्रनयनं हेमपर्यङ्कमाश्रितम् ॥ १४ ॥ स्रग्दामापूरितशिखं हरिचन्दनभूषितम् ॥ केतकीपत्रगर्भाभैर्दंतैर्घोरतराननम् ॥१५॥ वामोरुमाश्रितां चास्य ददर्शायतलोचनाम् ॥ पत्नीं मदनिकां नाम पुंस्कोकिलकलस्वनाम् ॥ १६ ॥ ततो रोषपरीतात्मा कन्धरः कन्दरस्थितम् ॥ तमुवाच सुदुष्टात्मन्नेहि युध्यस्व वै मया ॥ १७ ॥ यस्माज्ज्येष्ठो मम भ्राता विश्रब्धो घातितस्त्वया ॥ तस्मात्त्वां मदसंसक्तं नयिष्ये यमसादनम् ॥ १८ ॥ विश्वस्तघातिनां लोका ये च स्त्रीबालघातिनाम् ॥ यास्यसे निरयान्सर्वांस्तांस्त्वमद्य मया हतः ॥ १९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्येवं पतगेन्द्रेण प्रोक्तं स्त्रीसान्निधौ तदा ॥ रक्षः क्रोधसमाविष्टं प्रत्यभाषत पक्षिणम् ॥ २० ॥

इसके उपरान्त पक्षियोंमें श्रेष्ठ कन्धरने अत्यन्त क्रोधित होकर पर्वतकी कन्दरामें बैठे हुए निशाचरको बुलाकर कहा रे दुष्टात्मन् ! शीघ्र आनकर मुझसे युद्ध कर ॥१७॥ जो कि, तैंने मदोन्मत्त होकर मेरे बडे भाई कंकको वध किया है, इस कारण अब तुझको निःसन्देह यमालय भेजूंगा ॥१८॥ विश्वास-घातकता, स्त्रीहत्या और बालकोंकी हत्या करनेवाले पातकी जिन नरकोंमें जाते हैं, तू भी इस समय मेरे हाथसे मरकर उन्हीं नरकोंमें जायगा ॥ १९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--वह निशाचर विद्युद्रूप पक्षिश्रेष्ठ कंधरके यह वचन अपनी पत्नीके निकट सुन, अत्यन्त क्रोधित होकर पक्षीसे कहने लगा ॥ २० ॥

मा०पु० रे खेचर ! तेरे भाईके मारनेमें मेरा पौरुषही प्रकाश पाता है, अत एव अब इस खड्गसे तुझकोभी निहत करूंगा ॥ २१ ॥ रे पतगाधम ! क्षणकाल ठहर
॥ ५ ॥ मेरे निकटसे जीवित अवस्थामें नहीं जा सकेगा यह कहकर उस राक्षसने अंजनपुंजकी समान कृष्ण वर्ण निर्मल खड्ग ग्रहण किया ॥ २२ ॥ पूर्वकालमें
जिस प्रकार इन्द्रके संग गरुडका तुमुल युद्ध हुआ था, वैसेही इस राक्षसके संग पक्षी कंधरका संग्राम होने लगा ॥ २३ ॥ अनन्तर उस राक्षसने अत्यन्त क्रोधमें
भरकर अग्निकी समान चमकता हुआ कृष्णवर्ण खड्ग वेगसहित पक्षीके ऊपर चलाया ॥ २४ ॥ पक्षीनेभी वैसेही पृथ्वीसे कुछेक कूदकर गरुड जिस प्रकार सर्पोंको

यदि ते निहतो भ्राता पौरुषं तद्धि दर्शितम् ॥ त्वामप्यद्य हनिष्येहं खड्गेनानेन खेचर ॥ २१ ॥ तिष्ठ क्षणं नात्र जीवन्पतगाधम यास्यसि ॥ इत्युक्त्वाञ्जनपुञ्जाभं विमलं खड्गमाददे ॥२२॥ ततः पतगराजस्य यक्षाधिपभटस्य च ॥ बभूव युद्धमतुलं यथा गरुडशक्रयोः ॥२३॥ ततः स राक्षसः क्रोधात्खड्गमाविध्य वेगवत् ॥ चिक्षेप पतगेन्द्राय निर्वाणाङ्गारवर्चसम् ॥२४॥ पतगेन्द्रश्च तं खड्गं किंचिदुत्प्लुत्य भूतलात् ॥ वक्रेण जग्राह तदा गरुडः पन्नगं यथा ॥२५॥ वक्रपादतलैर्भङ्क्त्वा चक्रे क्षोभमथाण्डजः ॥ तस्मिन्भग्ने ततः खड्गे बाहुयुद्धमवर्तत ॥ २६ ॥ ततः पतगराजेन वक्षस्याक्रम्य राक्षसः ॥ हस्तपादकरैराशु शिरसा च वियोजितः ॥ २७ ॥ तस्मिन्विनिहते सा स्त्री खगं शरणमभ्यगात् ॥ किञ्चित्सञ्जातसन्त्रासा प्राह भार्या भवामि ते ॥ २८ ॥ तामादाय खगश्रेष्ठः स्वकं गृहमगात्पुनः ॥ गत्वा स निष्कृतिं भ्रातुर्विद्युद्रूपनिपातनात् ॥ २९ ॥

भा०टी० चोंचमें पकडते हैं उसी प्रकार उस खड्गको चोंचमें धारण कर लिया ॥२५॥ पक्षिश्रेष्ठ कंधर चोंचमें खड्ग धारणपूर्वक पैरोंसे उसको तोडकर अत्यन्त क्रोधित
अ० २ हुआ और फिर उनका बाहुयुद्ध होने लगा ॥ २६ ॥ अनन्तर निशाचर पक्षीके द्वारा वक्षस्थलमें आक्रान्त होकर पक्षीके प्रहारसे जर्जरित हुआ और
उसकी नाडी हाथ पैर तथा मस्तक देहसे पृथक् होगया ॥ २७ ॥ उस राक्षसके मरनेपर उसकी पत्नी मदनिकाने भयाकुलचित्तसे खगराजकी शरणागत होकर
कहा--हे महाशय ! मैं आपकी भार्या हुई ॥ २८ ॥ खगश्रेष्ठ कन्धरने--निशाचरको मारकर भ्रातृवधजनित शोकसे निष्कृति लाभ की और मदनिकाको

संग लेकर अपने घर आया ॥ २९ ॥ मेनकाकी पुत्री निशाचरी मदनिका अपनी इच्छानुसार रूप धारण कर लेतीथी, इस कारण कंधरके घर आनकर पक्षिरूप अवलम्बन किया ॥ ३० ॥ इसी पक्षिणीके उदरसे दुर्वासा मुनिकी शापानलसे युक्त वपु अप्सराने जन्म ग्रहण किया, खगपति कंधरने उसका नाम तार्क्षी रक्खा ॥ ३१ ॥ हे द्विजसत्तम ! मन्दपाल नामक ब्राह्मणके चार पुत्र थे, उनमें बडेका नाम जितारि और छोटेका नाम द्रोण था वह सब अत्यन्त बुद्धिमान् थे ॥ ३२ ॥ तिनमें वेदवेदाङ्गका तत्त्व जाननेवाले धर्मात्मा द्रोणके संग खगराज कंधरकी अनुमतिसे उस सर्वाङ्गसुन्दरी तार्क्षीका

कन्धरस्य च सा वेश्म प्राप्येच्छारूपधारिणी ॥ मेनकातनया सुभ्रूः सौपर्णं रूपमाददे ॥ ३० ॥ तस्यां स जनयामास तार्क्षीं नाम सुतां तदा ॥ मुनिशापाग्निविप्लुष्टां वपुमप्सरसां वराम् ॥ तस्या नाम तदा चक्रे तार्क्षींमिति विहंगमः ॥ ३१ ॥ मन्दपालसुताश्चासंश्चत्वारोऽमितबुद्धयः ॥ जरितारिप्रभृतयो द्रोणान्ता द्विजसत्तमाः ॥ ३२ ॥ तेषां जघन्यो धर्मात्मा वेदवेदांगपारगः ॥ उपयेमे स तां तार्क्षीं कन्धरानुमते शुभाम् ॥ ३३ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य तार्क्षी गर्भमवाप ह ॥ सप्तपक्षाहिते गर्भे कुरुक्षेत्रं जगाम सा ॥ ३४॥ कुरुपाण्डवयोर्युद्धे वर्तमाने सुदारुणे ॥ भावित्वाच्चैव कार्यस्य रथमध्ये विवेश सा ॥ ३५ ॥ तत्रापश्यत युद्धं सा सर्वेषां पृथिवीक्षिताम् ॥ शरशक्त्यृष्टिभिर्भीमं यथा देवासुरं रणम् ॥ ३६ ॥ तत्रापश्यत्तदा युद्धं भगदत्तकिरीटिनोः ॥ निरंतरं शरैरासीदाकाशं शलभैरिव ॥ ३७ ॥ पार्थकोदण्डनिर्मुक्तमासन्नमतिवेगवत् ॥ तस्या भल्लमहिश्यामं त्वचं चिच्छेद जाठरीम् ॥ ३८ ॥

विवाह कर दिया था ॥ ३३ ॥ अनन्तर कुछ दिन बीतनेपर उस तार्क्षीको गर्भ रहा गर्भ धारणके दिनसे सात पक्ष बीतनेपर तार्क्षी कुरुक्षेत्रमें धारणके दिनसे सात पक्ष बीतनेपर तार्क्षी कुरुक्षेत्रमें गई ॥ ३४॥ उस समय कौरव पाण्डवोंका दारुण युद्ध होरहाथा, किन्तु जो अवश्य होनेवाली बात है उसको कोई खंडन नहीं कर सकता, इसीसे तार्क्षी उस युद्धस्थलमें गई ॥ ३५ ॥ पक्षिणीने वहां पहुँचकर देखा कि, भगदत्त और अर्जुन तुमुल संग्राम कर रहे हैं, उनके निरन्तर छूटतेहुए बाणोंसे आकाशमण्डल टीडीकी समान व्याप्त हुआ है ॥ ३६ ॥ ३७॥ इधर पार्थके धनुषसे छूटेहुए वेगसहित एक बाणने आनकर तार्क्षीके

जठरकी त्वक् (खाल) वींध डाली ॥ ३८ ॥ पक्षिणीकी कुक्षि विदीर्ण होनेपर चंद्रमाकी समान श्वेतवर्ण चार अंडे अत्यन्त ऊँचे स्थानसे गिरकर भी आयुकाल विशेष विद्यमान होनेके कारण रूईकी समान भूमिमें गिरे ॥ ३९ ॥ इसी समयमें भगदत्तके सुप्रतीक नामक गजराजका महाप्रमाण गलघंटा बाणसे छिन्नबंधन होकर गिरा ॥ ४० ॥ यद्यपि दोनों एकही कालमें पृथ्वीपर प्राप्त हुए, किंतु घंटा इस प्रकार गिरा कि, उस मांसपिंडके उपरिस्थ सब अंडोंके चारों ओर भली भांति ढक्कन हो गया ॥ ४१ ॥ नरपतिश्रेष्ठ भगदत्तके उस युद्धमें मारेजानेपर भी कौरव और पांडवोंकी सेनाका बहुत दिनोंतक युद्ध हुआ ॥ ४२ ॥ अनन्तर युद्ध समाप्त होनेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिर धर्मविषयक नानाप्रकारके उपदेश ग्रहण करनेको शन्तनुपुत्र महात्मा भीष्मके निकट

भिन्ने कोष्ठे शशाङ्काभं भूमावण्डचतुष्टयम् ॥ आयुषः सावशेषत्वात्तूलराशाविवापतत् ॥ ३९ ॥ तत्पातसमकालं च सुप्रतीकाद्गजोत्तमात् ॥ पपात महती घण्टा बाणसंछिन्नबन्धना ॥ ४० ॥ समं समन्तात्प्राप्ता तु निर्भिन्नधरणीतला ॥ छादयन्ती खमण्डानि स्थितानि पिशितोपरि ॥ ४१ ॥ हते च तस्मिन्नृपतौ भगदत्ते नरेश्वरे ॥ बहून्यहान्यभूद्युद्धं कुरुपाण्डवसैन्ययोः ॥ ४२ ॥ वृत्ते युद्धे धर्मपुत्रे गते शान्तनवान्तिकम् ॥ भीष्मस्य गदतोऽशेषाञ्श्रोतुं धर्मान्महात्मनः ॥ ४३ ॥ घण्टागतानि तिष्ठन्ति यत्राण्डानि द्विजोत्तम ॥ आजगाम तमुद्देशं शमीको नाम संयमी ॥ ४४ ॥ स तत्र शब्दमशृणोच्चिचीकुचीति वाशताम् ॥ बाल्यादस्फुटवाक्यानां विज्ञानेऽपि परे सति ॥ ४५ ॥ अथर्षिः शिष्यसहितो घण्टामुत्पाट्य विस्मितः ॥ अमातृपितृपक्षाणि शिशुकानि ददर्श ह ॥ ४६ ॥ तानि तत्र तथा भूमौ शमीको भगवान्मुनिः ॥ दृष्ट्वा स विस्मयाविष्टः प्रोवाचानुगतान्द्विजान् ॥ ४७ ॥

गये ॥ ४३ ॥ इसके पीछे जहां घंटेसे ढके हुए पक्षीके बच्चे विद्यमान थे, अकस्मात् संयमचित्त ब्राह्मणश्रेष्ठ शमीकमुनि उस स्थानमें आये ॥ ४४ ॥ और घंटेके भीतर पक्षीके बच्चोंका "चिची कुची" शब्द उन्होंने सुना यद्यपि बालकोंको अत्यन्त ज्ञान हो गया था, किन्तु तो भी वह बाल्यकालवशतः अस्फुट अर्थात् जो समझमें न आवें, ऐसे शब्द उच्चारण करते थे ॥ ४५ ॥ अनन्तर शिष्योंके सहित ऋषिश्रेष्ठने अकस्मात् पक्षिशावकोंका शब्द सुनकर आश्चर्ययुक्त चित्तसे घंटा उठाया और माता पिता तथा पंखहीन पक्षीके बच्चोंको देखा ॥ ४६ ॥ मुनिश्रेष्ठ भगवान् शमीकमुनिने भूतलमें यथावत् स्थित

पक्षीके वचोंको देखकर अनुगत ब्राह्मणोंसे आश्चर्ययुक्त होकर कहा ॥ ४७ ॥ हे ब्राह्मणो ! पूर्वकालमें देवताओंसे ताडित होकर जब दैत्योंकी सेना इधर उधर भागने लगी, उस समय द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्यजीने उससे सत्यही कहा था ॥ ४८ ॥ " हे दैत्यगण ! तुम मत भागो ! निवृत्त होओ ! इस प्रकार कातर होकर किस लिये जातेहो ? शौर्य और यश त्यागकर कहां जाओगे ? तुम क्या कभी नहीं मरोगे ? ॥ ४९ ॥ पूर्वमें विधाताने जब तुमको उत्पन्न किया है, तो जबतक उनकी इच्छा न हो, तबतक युद्ध करो ना भागो, किसी प्रकार तुम नहीं मरोगे ॥ ५० ॥ देखो, कोई अपने घर रहनेपरभी मरताहै कोई

सम्यगुक्तं द्विजाग्र्येण शुक्रेणोशनसा स्वयम् ॥ पलायनपरं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं सुरार्दितम् ॥ ४८ ॥ न गन्तव्यं निवर्तध्वं कस्माद्व्रजत कातराः ॥ उत्सृज्य शौर्ययशसी क्व गता न मरिष्यथ ॥ ४९ ॥ नश्यतो युध्यतो वापि तावद्भवति जीवितम् ॥ यावद्धातासृजत्पूर्वं न यावन्मनसेप्सितम् ॥ ५० ॥ एके म्रियन्ते स्वगृहे पलायन्तोऽपरे जनाः ॥ भुञ्जन्तोऽन्नं तथैवापः पिबन्तो निधनं गताः ॥ ५१ ॥ विलासिनस्तथैवान्ये कामयाना निरामयाः ॥ अविक्षतांगाः शस्त्रैश्च प्रेतराजवशंगताः ॥ ५२ ॥ अन्ये तपस्याभिरता नीताः प्रेतनृपानुगैः ॥ योगाभ्यासे रताश्चान्ये नैव प्रापुरमृत्युताम् ॥ ५३ ॥ शम्बराय पुरा क्षिप्तं वज्रं कुलिशपाणिना ॥ हृदयेऽभिहतस्तेन तथापि न मृतोऽसुरः ॥ ५४ ॥ तेनैव खलु वज्रेण तेनैवेन्द्रेण दानवाः ॥ प्राप्ते काले हता दैत्यास्तत्क्षणान्निधनं गताः ॥ ५५ ॥

भागकरभी मरता है कोई पान भोजन करते करतेही प्राण त्याग करता है ॥ ५१ ॥ और कोई कामगामी व सुस्थ शरीरसे विद्यमान रहकरभी दिव्यविलास वासना भोगता हुआ शस्त्रादिसे अविद्ध होकरभी कालके करालगालमें गिरता है ॥ ५२ ॥ और कोई तपस्यामें निरत तथा कोई योगाभ्यास करते यमालयमें गया है, किन्तु अमर कोईभी नहीं हुआ ॥ ५३ ॥ पहिले वज्रपाणि इन्द्रने शम्बरके प्रति चलाया और उस वज्रसे उसकी छाती फट जानेपरभी उस असुरका प्राण नष्ट नहीं हुआ ॥ ५४ ॥ किन्तु उसी इन्द्रने फिर उसी वज्रसे सब असुरोंके प्रति आघात किया किन्तु उनका समय उपस्थित हुआथा,

भा० टी०

अ० २

इस कारण वह यमसदनके अतिथि हुए ॥ ५५ ॥ अत एव तुम यह सब जानकरभी किस लिये ऐसे त्रसित होतेहो? निवृत्त होओ निवृत्त होओ" दैत्यगण यह सुन मरनेका भय त्यागकर निवृत्त हुएथे ॥५६॥ हे विप्रगण! इन पक्षिशावकोंनेभी शुक्राचार्यके यह सब वचन सत्य कियेथे। देखो, इस अलौकिक युद्धमेंभी इनका प्राण नहीं गया ॥५७॥ क्या आश्चर्य है, देखो, कहां तो सब अंडोंका गिरना, कहां उसी समय घंटेका गिरना, और कहां मांस वसा (चरवी) और रक्तसे पृथ्वीका आच्छादन परस्पर अत्यन्त अन्तर होनेपरभी एकही कालमें सबका संघटन हुआ ॥५८॥ यह कौन हैं? हे विप्रगण! बोध होताहै कि, यह सामान्य पक्षी नहीं हैं दैवके अनुकूल होनेपर महाभाग्यता उपस्थित होती है ॥५९॥ यह कहकर महर्षि शमीकने उनको फिर देखकर कहा–हे

विदित्वैवं न संत्रासः कर्तव्यो विनिवर्तत ॥ ततो निवृत्तास्ते दैत्यास्त्यक्त्वा मरणजं भयम् ॥ ५६ ॥ इति शुक्रवचः सत्यं कृतमेभिः खगोत्तमैः ॥ ये युद्धेऽपि न संप्राप्ताः पञ्चत्वमतिमानुषे ॥ ५७ ॥ काण्डानां पतनं विप्राः क्व घण्टापतनं समम् ॥ क्व च मांसवसारक्तैर्भूमेरास्तरणक्रिया ॥ ५८ ॥ केऽप्येते सर्वथा विप्र नैते सामान्यपक्षिणः ॥ दैवानुकूलता लोके महाभाग्यप्रदर्शिनी ॥ ५९ ॥ एवमुक्त्वा स तान्वीक्ष्य पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ निवर्तताश्रमं यात गृहीत्वा पक्षिबालकान् ॥ ६० ॥ मार्जाराखुभयं यत्र नैषामण्डजजन्मनाम् ॥ श्येनतो नकुलाद्वापि स्थाप्यतां तत्र पक्षिणः ॥६१॥ द्विजाः किंवातियत्नेन मार्यन्ते कर्मभिः स्वकैः ॥ रक्ष्यन्ते चाखिला जीवा यथैते पक्षिबालकाः ॥ ६२॥ तथापि यत्नः कर्तव्यो नरैः सर्वेषु कर्मसु ॥ कुर्वन्पुरुषकारं तु वाच्यतां याति नो सताम् ॥६३॥ इति मुनिवरचोदितास्ततस्ते मुनितनयाः परिगृह्य पक्षिणस्तान् ॥ तरुविटपसमाश्रितालिसंघं ययुरथ तापसरम्यमाश्रमं स्वम् ॥ ६४ ॥

द्विजगण! तुम निवृत्त होओ और पक्षिशावकोंको लेकर फिर आश्रममें जाओ ॥६०॥ जहां बिल्ली, चूहा, नकुल वा बाज पक्षीका भय उपस्थित न हो, वहां इन पक्षियोंको रक्खो अथवा ॥६१॥ हे ब्राह्मणो! अधिक यत्नकी क्या आवश्यकता है, क्योंकि जीवमात्रही अपने अपने कर्मसे निहत और रक्षित होतेहैं, यह पक्षिके बच्चे यहां किससे रक्षित हुए हैं? ॥ ६२ ॥ किन्तु तोभी सब कार्योंमेंही मनुष्यको यत्न करना चाहिये, नहीं तो पुरुषार्थ न करनेसे साधुओंके निकट निन्दनीय होना पडता है ॥ ६३ ॥ सुनिबालकोंने महर्षिके यह वचन सुन पक्षिशावकोंको ग्रहण कर वृक्षोंकी शाखाओंमें गूँजते हुए भौंरोंसे

मा० पु०

॥ ७ ॥

युक्त रमणीय अपने तपके आश्रममें प्रस्थान किया ॥ ६४ ॥ महर्षि शमीकनेभी इच्छानुसार वनके फल मूल पुष्प और कुश ग्रहण करके ब्रह्मा विष्णु महादेव इन्द्र यम अग्निकी पूजा की ॥ ६५ ॥ वरुण, बृहस्पति, कुबेर, वायु, धाता और विधाताको पूजा और वेदोक्त विधिके अनुसार उनके होमादि विविध कार्य संपादन किये ॥ ६६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासिकन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां चटकोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः २॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे विप्रेन्द्र ! मुनिश्रेष्ठ शमीकऋषि प्रतिदिन आहारदान जलदान, और रक्षाद्वारा उनका पोषण करने लगे ॥ १ ॥ पक्षियोंके बच्चे मुनिके द्वारा इस प्रकार पालित होकर एक मासके भीतर ही आकाशमार्गमें जाने लगे मुनिकुमार कौतूहलाक्रान्त हो उनको देखने लगे ॥ २ ॥ तिर्यक् योनिमें

स चापि वन्यं मनसाभिकामितं प्रगृह्य मूलं कुसुमं फलं कुशान् ॥ चकार चक्रायुधरुद्रवेधसां सुरेन्द्रवैवस्वतजातवेदसाम् ॥६५॥ अपांपतेर्गीष्पतिवित्तरक्षिणोः समीरणस्यापि तथा द्विजोत्तमः ॥ धातुर्विधातुस्त्वथ वैश्वदेविकाः श्रुतिप्रयुक्ता विविधास्तु सत्क्रियाः ॥६६॥ इति मार्कण्डेयपुराणे चटकोत्पत्तिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अहन्यहनि विप्रेन्द्र स तेषां मुनिसत्तमः ॥ चकाराहारपयसा तथा गुप्त्या च पोषणम् ॥ १ ॥ मासमात्रेण जग्मुस्ते भानोः स्यन्दनवर्त्मनि ॥ कौतूहलविलोलाक्षैर्दृष्टा मुनिकुमारकैः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा महीं सनगरां साम्भोनिधिसरिद्वराम् ॥ रथचक्रप्रमाणां ते पुनराश्रममागताः ॥ ३ ॥ श्रमक्लांतांतरात्मानो महात्मानो वियोनिजाः ॥ ज्ञानं च प्रकटीभूतं तत्र तेषां प्रभावतः ॥ ४ ॥ ऋषेः शिष्यानुकम्पार्थं वदतो धर्मनिश्चयम् ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं सर्वे चरणावभ्यवादयन् ॥ ५ ॥ ऊचुश्च मरणाद्धोरान्मोक्षिताः स्मस्त्वया मुने ॥ आवासभक्ष्यपयसां त्वं नो दाता पिता गुरुः ॥ ६ ॥ गर्भस्थानां मृता माता पित्रा नैवापि पालिताः ॥ त्वया नो जीवितं दत्तं शिशवो येन रक्षिताः ॥ ७ ॥

उत्पन्न हुए महात्मा पक्षी नद, नदी, सागर और नगरादि द्वारा परिपूर्ण रथके पहियेकी समान पृथ्वीको देख अत्यन्त थकजानेपर फिर आश्रममें लौट आये । मुनिके प्रभावसे क्रमशः उनको ज्ञान उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ ४ ॥ एक समय महर्षि शमीक शिष्योंके ऊपर कृपा करके धर्मोपदेश कर रहे थे, उसी समय पक्षियोंने प्रदक्षिणा करके उनके चरणोंमें अभिवादन अर्थात् प्रणाम किया ॥ ५ ॥ और कहा-" हे मुने ! आपने हमको घोर मृत्युके कष्टसे छुडाया है, आपहीने हमको वासस्थान आहार और जल दियाहै इस कारण आपही हमारे पिता और गुरु हैं ॥ ६ ॥ गर्भवासके समयही हमारी माता मरगई पितानेभी हमारा

पालन नहीं किया, आपने ही हमारी बाल्यअवस्थासे आजतक रक्षा की है ॥ ७ ॥ हे अक्षततेजा ! हम जिस समय पृथ्वीमें पडेहुए कमिके समान सूखते थे, उस काल आपनेही हाथीका घंटा उठाकर हमारा दुःख दूर किया था ॥ ८ ॥ " यह दुर्बल पक्षियोंके बच्चे किस प्रकारसे वर्द्धित हों. कब आकाशमें उडें पृथ्वीसे वृक्षके उपर जायँ और कब एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर जायँगे " ॥ ९ ॥ और "कब मेरे समीप विचरण करते करते उडेंगे कब इनके पंखसंचालनकी वायुसे उठीहुई रजद्वारा मेरी स्वाभाविक कान्ति विनष्ट होगी ? " ॥ १० ॥ हे तात ! इस प्रकार विचार कर आपने हमारा पालन किया है, अब हम बडे हुए हैं और आपकी कृपासे ज्ञान पाया है, इस समय हम क्या करें ? सो आज्ञा कीजिये ॥ ११ ॥ शिष्योंसे युक्त महर्षि शमीक उनका यह

क्षितावक्षततेजास्त्वं कृमीणामिव शुष्यताम् ॥ गजघंटां समुत्पाट्य कृतवान्दुःखरेचनम् ॥ ८ ॥ कथं वर्द्धेयुरबलाः स्वस्थान्द्रक्ष्याम्यहं कदा ॥ कदा भूमेर्द्रुमं प्राप्तान्द्रक्ष्ये वृक्षांतरं गतान् ॥ ९ ॥ कदा मे सहजा कान्तिः पांसुना नाशमेष्यति ॥ एषां पक्षानिलोत्थेन मत्समीपविचारिणाम् ॥ १० ॥ इति चिन्तयता तात भवता प्रतिपालिताः ॥ ते सांप्रतं प्रवृद्धाः स्मः प्रबुद्धाः करवाम किम् ॥ ११ ॥ इत्यृषिर्वचनं तेषां श्रुत्वा संस्कारवत्स्फुटम् ॥ शिष्यैः परिवृतः सर्वैः सह पुत्रेण शृङ्गिणा ॥ ॥ १२ ॥ कौतूहलपरो भूत्वा रोमांचपटसंवृतः ॥ उवाच तत्त्वतो ब्रूत प्रवृत्तेः करणं गिरः ॥ १३ ॥ कस्य शापादियं प्राप्ता भवाद्भिर्विक्रिया परा ॥ रूपस्य वचसश्चैव तन्मे वक्तुमिहार्हथ ॥ १४ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ विपुलस्वानिति ख्यातः प्रागासीन्मुनिसत्तमः ॥ तस्य पुत्रद्वयं जज्ञे सुकृषस्तुंबुरुस्तथा ॥ १५ ॥ सुकृषस्य वयं पुत्राश्चत्वारः संयतात्मनः ॥ तस्यर्षेर्विनयाचारभक्तिनम्राः सदैव हि ॥ १६ ॥

संस्कारयुक्त प्रस्फुट वचन सुनकर अपने पुत्र शृंगीके सहित अत्यन्त अचंभेमें हुए ॥ १२ ॥ और अत्यन्त कौतूहलके कारण पुलकित देहकरके पक्षियोंसे कहने लगे ॥ १३ ॥ कि, सत्य कहो, तुमने ऐसे स्पष्टवचन किस प्रकार उच्चारण किये और किसके शापसे तुम्हारे वाक्य और रूपकी ऐसी विक्रिया उत्पन्न हुईहै ? ॥ १४ ॥ पक्षियोंने कहा--हे मुनिसत्तम ! पूर्वकालमें विपुलस्वान् नामक एक मुनि थे सुकृष और तुम्बुरु नामक उनके दो पुत्र हुए ॥ १५ ॥ हम सब उन महात्मा जितेन्द्रिय सुकृषके पुत्र हैं. विनय, आचार, भक्ति और नम्रता अवलम्बन करके हम सदाही उनके निकट रहतेथे ॥ १६ ॥

वह जब संयतचित्तसे तपस्या करते तब हम उनकी अभिलाषानुसार वस्तु लादेते ॥ १७ ॥ समिध, पुष्प और संपूर्ण भोजनकी सामग्री लाते. वह इस प्रकार हमारे संग वनमें वास करतेथे ॥ १८ ॥ सुरेश्वर इन्द्र एक दिन बडा देह वृद्ध पक्षीका रूप धारण कर हमारे निकट आये उनके पंख सब टूटे हुए, नेत्र ताम्रवर्ण और आत्मा शिथिल होरहाथा ॥ १९ ॥ वह सत्य, शौच, क्षमा और आचारसंपन्न उदारचित्त मुनिसे कोई विषय पूछने लगे और जाना जाता है कि, हमारे प्रति पितृशाप होनेके कारणही आयेथे ॥ २० ॥ पक्षी बोला--हे द्विजेन्द्र ! मैं भूँखसे अत्यन्त आतुर हुआहूं मेरी रक्षा

तपश्चरणशक्तस्य शास्यमानेन्द्रियस्य च ॥ यथाभिमतमस्माभिस्तदा तस्योपपादितम् ॥ १७ ॥ समित्पुष्पादिकं सर्वं यच्चैवाभ्यवहारिकम् ॥ एवं तत्राथ वसतां तस्यास्माकं च कानने ॥ १८ ॥ आजगाम महावर्ष्मा भग्नपक्षो जरान्वितः ॥ आताम्रनेत्रः स्रस्तात्मा पक्षी भूत्वा सुरेश्वरः ॥ १९ ॥ सत्यशौचक्षमाचारमतीवोदारमानसम् ॥ जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठमस्मच्छापभवाय च ॥ २० ॥ पक्ष्युवाच ॥ द्विजेन्द्र मां क्षुधाविष्टं परित्रातुमिहार्हसि ॥ भक्षणार्थी महाभाग गतिर्भव ममातुला ॥ २१ ॥ विन्ध्यस्य शिखरे तिष्ठन्पत्रिपत्रेरितेन वै ॥ पतितोऽस्मि महाभाग श्वसनेनातिरंहसा ॥ २२ ॥ सोऽहं मोहसमाविष्टो भूमौ सप्ताहमस्मृतिः ॥ स्थितस्तत्राष्टमेऽह्नि चेतनां प्राप्तवानहम् ॥ २३ ॥ प्राप्तचेताः क्षुधाविष्टो भवंतं शरणं गतः ॥ भक्ष्यार्थी विगतानंदो दूयमानेन चेतसा ॥ २४ ॥ तत्कुरुष्वामलमते मत्त्राणायाचलां मतिम् ॥ प्रयच्छ भक्ष्यं विप्रर्षे प्राणयात्राक्षमं मम ॥ २५ ॥ य एवमुक्तः प्रोवाच तमिन्द्रं पक्षिरूपिणम् ॥ प्राणसन्धारणार्थाय दास्ये भक्ष्यं तवेप्सितम् ॥ २६ ॥

करो हे महाभाग ! मैं नितान्त भक्षणार्थी हूं आपही मेरी गतिस्वरूप हैं ॥ २१ ॥ हे महाभाग ! मैं विन्ध्यपर्वतके शिखरचूडामें वास करताहूं अकस्मात् पक्षिराज गरुडके पंखोंकी उठी वायुद्वारा इस स्थानमें गिरतेही मूर्च्छित होगया ॥ २२ ॥ इस अवस्थामें एक सप्ताह काल बीतनेपर आठवें दिन मुझको चैतन्यता प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ कुछ देरके पीछे सुस्थ हुआ और क्षुधासे आतुर होकर आपकी शरणमें आया हे महाभाग ! मेरा हृदय भूँखसे अत्यन्त कातर होकर मुझको निरानन्द करे डालता है ॥ २४ ॥ हे विप्रर्षे ! मेरी रक्षा करनेकी चेष्टा कीजिये और जिससे मेरी क्षुधा नष्ट हो ऐसा आहार दीजिये ॥ २५ ॥ उन मह-

र्षिने पक्षीसे इस प्रकार सुनकर पक्षिरूपी इन्द्रसे कहा हे खग ! प्राणधारणके उपयोगी तुमको किस आहारकी अभिलाषा है ? तुम्हारे आहारके उपयुक्त किस द्रव्यको लाऊं ॥ २६ ॥ हे द्विजोत्तम ! यह कहकर फिर मुनिने कहा कि, कहिये क्या भोजन करोगे ? मैं तुम्हारे निमित्त किस आहारको लाऊं ? तब उसने उत्तर दिया कि, मनुष्यका मांस खानेसे मेरी परम तृप्ति होगी ॥ २७ ॥ ऋषि बोले--हे अण्डज । तुम्हारी कौमारअवस्था बीतकर यौवन अवस्था हुई, वह भी अब बीतकर वृद्धावस्था आई है ॥ २८ ॥ जिसमें मनुष्यकी भी समस्त वासना शेष होती है, किन्तु तोभी तुम वृद्ध होकर इतने नृशंसात्मक क्यों हो ॥ २९ ॥ देखो नरमांसभक्षण और वृद्धावस्था इन दोनोंमें बडा अन्तर है, तथापि दुष्ट पुरुषोंकी दुराशा निवृत्त नहीं होती ॥ ३० ॥ अथवा

इत्युक्त्वापुनरप्येनमपृच्छत्स द्विजोत्तमः ॥ आहारः कस्तवार्थाय उपकल्प्यो भवेन्मया ॥ स चाह नरमांसेन तृप्तिर्भवति मे परा ॥२७॥ ऋषिरुवाच ॥ कौमारं ते व्यतिक्रांतमतीतं यौवनं च ते ॥ वयसः परिणामस्ते वर्तते नूनमंडज ॥२८॥ यस्मिन्नराणां सर्वेषामशेषेच्छा निवर्त्तते ॥ स कस्माद्वृद्धभावेऽपि सुनृशंसात्मको भवान् ॥२९॥ क्व मानुषस्य पिशितं क्व वयश्चरमं तव ॥ सर्वथा दुष्टभावानां प्रशमो नोपपद्यते ॥ ३० ॥ अथवा किं मयैतेन प्रोक्तेनास्ति प्रयोजनम् ॥ प्रतिश्रुत्य सदा देयमिति नो भावितं मनः ॥ ३१ ॥ इत्युक्त्वा तं स विप्रेंद्रस्तथेति कृतनिश्चयः ॥ शीघ्रमस्मान्समाहूय गुणतोऽनुप्रशस्य च ॥ ३२ ॥ उवाच क्षुब्धहृदयो मुनिर्वाक्यं सुनिष्ठुरम् ॥ विनयावनतान्सर्वान्भक्तियुक्तान्कृतांजलीन् ॥ ३३ ॥ कृतात्मानो द्विजश्रेष्ठ ऋणैर्युक्ता मया सह ॥ जातं श्रेष्ठमपत्यं वो यूयं मम यथा द्विजाः ॥ ३४ ॥ गुरुः पूज्यो यदि मतो भवतां परमः पिता ॥ ततः कुरुत मे वाक्यं निर्व्यलीकेन चेतसा ॥ ३५ ॥

मुझकोही इन सब बातोंके आलोचना करनेकी क्या आवश्यकता है ? " अंगीकार किया हुआ विषय अवश्य देना चाहिये " यही मनमें विचारना उचित है ॥ ३१ ॥ हे द्विजेन्द्र ! उस पक्षीसे यह कहकर कृतनिश्चय मुनिने शीघ्र हमको बुलाया और गुणसे प्रशंसा कर ॥ ३२ ॥ हमारे विनयनम्र और भक्ति-युक्त हो हाथ जोडकर खडे होनेपर पिताने क्षुब्ध चित्तसे अति निष्ठुर यह वचन कहे ॥ ३३ ॥ तुम सभी विद्वान् ब्राह्मण श्रेष्ठ और सन्तानोत्पादनद्वारा मेरी समान ऋणसे मुक्त हुए हो तुम जिस प्रकार मेरी सन्तान हो ऐसेही तुम्हारे श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ३४ ॥ मैं तुम्हारा पिता हूं तुम यदि मुझको गुरु

और पूज्य विचारतेहो तो अकपटचित्तसे मेरे वचन प्रतिपालन करो ॥ ३५॥ तब हमने भी सादर कहा हे पिता ! आप जो आज्ञा करेंगे उसको हमारे द्वारा संपादित हुआ ही समझिये ॥ ३६ ॥ ऋषि बोले--हे बालको ! यह पक्षी भूँख प्याससे युक्त होकर मेरी शरणमें आया है इस समय तुम्हारा मांस भोजन करनेसे क्षण कालके लिये इसकी तृप्ति ॥ ३७ ॥ और रक्तके पीनेसे प्यास निवृत्त होगी इस कारण तुम शीघ्र यही करो तब हमने अत्यन्त व्यथितहृदय और भयसे कांपते २ कहा--यह अतीव कष्टदायक कार्य हमसे नहीं होसकेगा॥ ३८॥ कौन पण्डितजन होकर पराया देह पुष्ट करनेके लिये अपना जीवन नष्ट वा निहत करेगा ? क्योंकि आत्माका सन्तानकी समान यत्न करना चाहिये ॥ ३९॥ पितृऋण देवऋण और मनुष्यऋण जो शास्त्रमें कहा गया है, संतान उस-

तद्वाक्यसमकालं च प्रोक्तमस्माभिरादृतैः ॥ यद्वक्ष्यति भवांस्तद्वै कृतमेवावधार्यताम् ॥ ३६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मामेष शरणं प्राप्तो विहंगः क्षुत्तृषान्वितः ॥ युष्मन्मांसेन येनास्य क्षणं तृप्तिर्भवेत वै ॥ ३७ ॥ तृष्णाक्षयश्च रक्तेन तथा शीघ्रं विधीयताम् ॥ ततो वयं प्रव्यथिताः प्रकम्पोद्भूतसाध्वसाः ॥ कष्टं कष्टमिति प्रोच्य नैतत्कर्मेति चाब्रुवन् ॥ ३८ ॥ कथं परशरीरस्य हेतोर्देहं स्वकं बुधः ॥ विनाशयेद्घातयेद्वा यथा ह्यात्मा तथा सुतः ॥ ३९ ॥ पितृदेवमनुष्याणां यान्युक्तानि ऋणानि वै ॥ तान्यपाकुरुते पुत्रो न शरीरप्रदः सुतः ॥ ४० ॥ तस्मान्नैतत्करिष्यामो नो चीर्णं यत्पुरातनैः ॥ जीवन्भद्राण्यवाप्नोति जीवन्पुण्यं करोति च ॥४१॥ मृतस्य देहनाशश्च धर्माद्युपरतिस्तथा ॥ आत्मानं सर्वतो रक्ष्यमाहुर्धर्मविदो जनाः ॥ ४२ ॥ इत्थं श्रुत्वा वचोऽस्माकं मुनिः क्रोधादिव ज्वलन् ॥ प्रोवाच पुनरप्यस्मान्निर्दहन्निव लोचनैः ॥४३॥ प्रतिज्ञातं वचो मह्यं यस्मान्नैतत्करिष्यथ ॥ तस्मान्मच्छापनिर्दग्धास्तिर्यग्योनौ प्रयास्यथ ॥४४॥

कोही छुडाती है परन्तु पुत्र देह नहीं दे सकता ॥४०॥ इसलिये हमसे यह कार्य नहीं हो सकेगा. क्योंकि पहिले भी किसीने ऐसा आचरण नहीं किया है, जीवन होनेसे ही श्रेयःप्राप्ति होती है और पुण्यादिका आचरण कर सकता है ॥ ४१ ॥ मृत पुरुषके देहका विनाश होता है और धर्माचारादि नष्ट होते हैं, इसी कारण धर्मके जाननेवाले पण्डितोंने कहा है कि, आत्माकी सब प्रकारसे सदा रक्षा करे ॥ ४२ ॥ मुनिवर हमारे यह वचन सुनते ही क्रोधसे जलने लगे और क्रोधसे लाल नेत्र कर मानो हमको दग्ध करनेके लिये फिर बोले ॥ ४३ ॥ रे दुर्वृत्तगण ! मैंने इसके निकट प्रतिज्ञा की है और

तुमने मेरा वचन प्रतिपालन नहीं किया, इस कारण मेरे शापसे दग्ध होकर तिर्यग्योनिमें जाओगे ॥ ४४ ॥ हे द्विजसत्तम ! उन्होंने हमसे यह कहकर शास्त्रानुसार अपनी और्द्ध्वदैहिक अंत्येष्टि क्रिया सम्पादन करके उस पक्षीसे कहा ॥ ४५ ॥ हे खग ! तुम विश्वस्त चित्तसे मुझको भक्षण करो मैंने अपने देहको तुम्हारा आहार किया ॥४६॥ हे पतगश्रेष्ठ ! ब्राह्मण जबतक अपना सत्य प्रतिपालन करता है, तबतकही उसको ब्राह्मण कहाजाता है ॥४७॥ सत्य-प्रतिपालनमें जिस प्रकार पुण्य संचय होता है, दक्षिणायुक्त यज्ञानुष्ठानसे वा अन्य किसी कर्मद्वारा वैसा पुण्य प्राप्त नहीं होता ॥ ४८ ॥ उन पक्षिरूप इन्द्रने ऋषिश्रेष्ठके यह वचन सुन, मनमें अत्यन्त विस्मित हो उनसे कहा ॥ ४९ ॥ हे विप्रेन्द्र ! पहिले योगावलम्बन करके अपना कलेवर त्याग कीजिये

एवमुक्त्वा तदा सोस्मांस्तं विहंगममब्रवीत् ॥ अन्त्येष्टिमात्मनः कृत्वा शास्त्रतश्चौर्ध्वदैहिकम् ॥ ४५ ॥ भक्षयस्व सुविश्रब्धो मामत्र द्विजसत्तम ॥ आहारीकृतमेतत्ते मया देहमिहात्मनः ॥४६ ॥ एतावदेव विप्रस्य ब्राह्मणत्वं प्रचक्ष्यते ॥ यावत्पतगजात्यग्र्य स्वसत्यपरिपालनम् ॥४७॥ न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिस्तत्पुण्यं प्राप्यते महत् ॥ कर्मणान्येन वा विप्रैर्यत्सत्यपरिपालनात् ॥४८॥ इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा सोऽन्तर्विस्मयनिर्भरः ॥ प्रत्युवाच मुनिं शक्रः पक्षिरूपधरस्तदा ॥ ४९ ॥ योगमास्थाय विप्रेन्द्र त्यज्येदं स्वं कलेवरम् ॥ जीवज्जंतुं हि विप्रेन्द्र न भक्षामि कदाचन ॥ ५० ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा योगयुक्तोऽभवन्मुनिः ॥ तं तस्य निश्चयं ज्ञात्वा शक्रोऽप्याह स्वदेहभृत् ॥ ५१ ॥ भोभो विप्रेन्द्र बुध्यस्व बुद्ध्या बोध्यं बुधात्मक ॥ जिज्ञासार्थं मयाऽयं ते अपराधः कृतोऽनघ ॥ ५२ ॥ तत्क्षमस्वामलमते का चेच्छा क्रियतां तव ॥ पालनात्सत्यवाक्यस्य प्रीतिर्मे परमा त्वयि ॥ ५३ ॥

फिर आपका मांस भक्षण करूंगा, क्योंकि मैंने जीवित प्राणीको कभी भोजन नहीं किया ॥ ५० ॥ पक्षीका यह वचन सुनकर मुनिराजने योगावलम्बन किया तब इन्द्रने भी उनका यह संकल्प निश्चय जान अपना देह धारण करके कहा ॥ ५१ ॥ हे पण्डिताग्रगण्य विप्रर्षे ! जानने योग्य विषयको बुद्धिपूर्वक बोध कीजिये हे अनघ ! मैंने आपको भली भांति जाननेके लियेही आपके निकट यह अपराध किया है ॥५२॥ हे निर्मलचित्त ! मुझको क्षमा करो आपकी क्या अभिलाषा है ? आज्ञा करो, सत्यवाक्य प्रतिपालन करनेके कारण आपके प्रति मेरी अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई है ॥ ५३ ॥

अबसे आपको ऐन्द्रज्ञान उत्पन्न होगा और तपस्याचरणमें कभी विघ्न नहीं होगा ॥५४॥ देवराज इन्द्रके इस प्रकार कहकर चले जानेपर हमने पिताके चरणोंमें प्रणाम करके क्रोधयुक्त महामुनिसे कहा ॥५५॥ हे पिता! हे महामते! हमने मरनेके भयसे अत्यन्त भीत और जीवनप्रियताके वशीभूत होकर ऐसा कहाहै । अत एव हमको क्षमा कीजिये ॥ ५६ ॥ यह देह त्वक् अस्थि और मांस राद चर्बी और शोणितसे परिपूर्ण है, इसमें कुछ भी अनुराग नहीं करना चाहिये किन्तु हे तात! उसी देहमें हमारा अनुराग बढा है ॥ ५७ ॥ हे महाभाग! सुनाहै कि, प्रबलशत्रुस्वरूप काम क्रोधादि दोषद्वाराही सब लोक मोहित होते

अद्यप्रभृति ते ज्ञानमैन्द्रं प्रादुर्भविष्यति ॥ तपस्यथ तथा धर्मे न ते विघ्नो भविष्यति ॥ ५४ ॥ इत्युक्त्वा तु गते शक्रे पिता कोपसमन्वितः ॥ प्रणम्य शिरसास्माभिरिदमुक्तो महामुनिः ॥ ५५ ॥ बिभ्यतां मरणात्तात त्वमस्माकं महामते ॥ क्षन्तुमर्हसि दीनानां जीवितप्रियता हि नः ॥ ५६ ॥ त्वगस्थिमांससंघाते पूयशोणितपूरिते ॥ कर्त्तव्या न रतिर्यत्र तत्रास्माकमियं रतिः ॥ ५७ ॥ श्रूयतां च महाभाग यथा लोको विमुह्यति ॥ कामक्रोधादिभिर्दोषैरवशः प्रबलारिभिः ॥ ५८ ॥ प्रज्ञाप्राकारसंयुक्तमस्थिस्थूणं परं महत् ॥ चर्मभित्तिमहारोधं मांसशोणितलेपनम् ॥५९॥ नवद्वारं महायासं सर्वतः स्नायुवेष्टितम् ॥ नृपश्च पुरुषस्तत्र चेतनावानवास्थितः ॥६०॥ मंत्रिणौ तस्य बुद्धिश्च मनश्चैव विरोधिनौ ॥ यतेते वैरनाशाय तावुभावितरेतरम् ॥ ६१ ॥ नृपस्य तस्य चत्वारो नाशमिच्छंति विद्विषः ॥ कामः क्रोधस्तथा लोभो मोहश्चान्यस्तथा रिपुः ॥ ६२ ॥ यदा तु स नृपस्तानि द्वाराण्यावृत्य तिष्ठति ॥ सदा सुस्थबलश्चैव निरातंकश्च जायते ॥ ६३ ॥

हैं ॥५८॥ हे पिता! प्रज्ञारूपी दीवारोंसे वेष्टित यह देहरूप नगरी वर्त्तमान रहतीहै, अस्थि जिसका स्तम्भ है, जो चर्मरूपी भीतके द्वारा अत्यन्त रुद्ध, और मांसशोणितरूप कीचडसे लिपी ॥ ५९ ॥ नसें उसको चारों ओरसे घेरे हुए हैं और जिसके बहुत बडे नौ दरवाजे हैं, उस पुरीमें चैतन्यरूपी पुरुष राज्य करता है ॥६०॥ राजाके दो मंत्री हैं, मन और बुद्धि वह भी परस्पर विरोधी हैं, इसलिये परस्पर परस्परको विनाश करनेके लिये सदा यत्नवान् हैं ॥ ६१ ॥ काम, क्रोध, लोभ और मोह नामक राजाके चार शत्रु हैं, वह सदा राजाके विनाश करनेकी चेष्टा करते हैं ॥ ६२ ॥ वह राजा जिस समय पूर्वोक्त नवद्वार रुद्ध

करके अवस्थान करता है, उसी समय वह अत्यन्त सुस्थ निरातंक होता है ॥ ६३ ॥ और प्रेमवान् होता है, इस कारण उस समय उसको शत्रु अभिभूत नहीं कर सकते ॥ ६४ ॥ वह जब सब द्वार खोलकर अवस्थान करता है, उसी समयमें अनुराग नामक शत्रु नेत्रादि सब द्वारोंपर आक्रमण करता है ॥ ६५ ॥ यह शत्रु सर्व व्यापी और अत्यन्त प्रबल है। यह अनुरागरूपी शत्रु जब नेत्रादि द्वारमें घुसता है, उसी समय लोभ मोह और क्रोधरूपी तीनों शत्रु उसके पीछे पीछे दौडते हैं ॥ ६६ ॥ वह रागरूपी शत्रु इन्द्रिय नामक सब दरवाजोंके द्वारा पुरीमें घुसकर मन और बुद्धिके संग युक्त होनेकी अभिलाषा करता है ॥ ६७ ॥ यह दुर्द्धर्ष अनुराग इन्द्रियगण मन और सब द्वारोंको वशीभूत करके प्रज्ञारूपी प्राकार (बुद्धिरूप परकोटा) भग्न करता है ॥ ६८ ॥ बुद्धिभी

जातानुरागो भवति शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥६४॥ यदा तु सर्वद्वाराणि विवृतानि स मुंचति ॥ रागो नाम तदा शत्रुर्नेत्रादिद्वारमृच्छति ॥६५॥ सर्वव्यापी महायामः पंचद्वारप्रवेशनः ॥ तस्यानुमार्गं विशति तद्वै घोरं रिपुत्रयम् ॥ ६६ ॥ प्रविश्याथ स वै तत्र द्वारैरिन्द्रियसंज्ञकैः ॥ रागः संश्लेषमायाति मनसा च सहेतरैः ॥ ६७ ॥ इन्द्रियाणि मनश्चैव वशे कृत्वा दुरासदः ॥ द्वाराणि च वशे कृत्वा प्राकारं नाशयत्यथ ॥६८॥ मनस्तस्याश्रितं दृष्ट्वा बुद्धिर्नश्यति तत्क्षणात् ॥ अमात्यरहितस्तत्र पौरवर्गोज्झितस्तथा ॥ ६९ ॥ रिपुभिर्लब्धविवरः स नृपो नाशमृच्छति ॥ एवं रागस्तथा मोहो लोभः क्रोधस्तथैव च ॥ ७० ॥ प्रवर्तंते दुरात्मानो मनुष्यस्मृतिनाशकाः ॥ रागात्क्रोधः प्रभवति क्रोधाल्लोभोऽभिजायते ॥ ७१ ॥ लोभाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥ स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ७२ ॥ एवं प्रणष्टबुद्धीनां रागलोभानुवर्त्तिनाम् ॥ जीविते च सलोभानां प्रसादं कुरुसत्तम ॥ ७३ ॥

मनको उसका आश्रय ग्रहण करता देखकर तत्काल नष्ट होती है, अतएव अमात्यहीन और प्रजावर्गसे त्यागा हुआ ॥ ६९ ॥ वह राजा शत्रुओंसे आक्रान्त छिद्र होकर नष्ट होता है। काम, क्रोध, लोभ और मोहरूप ॥ ७० ॥ दुरात्मागण पुरीमें वास करते हैं, इसीलिये मनुष्य स्मरणशक्तिविहीन होता है, अनुरागसे क्रोध होता है, क्रोधसे लोभ उत्पन्न होता है ॥ ७१ ॥ लोभसे मोहकी उत्पत्ति और मोहसे स्मृतिका नाश होता है स्मृतिनाशसे बुद्धिनाश और बुद्धिनाशसेही मृत्यु होती है ॥ ७२ ॥ हे तात ! राग और लोभके वशीभूत होनेसेही हमारीभी बुद्धि भ्रंश हुई है, इसी कारण जीवनके प्रति इतना लोभ

है, अत एव हे सत्तम ! प्रसन्न हूजिये ॥ ७३ ॥ आपने जो शाप दिया है यह शाप जिससे फलित न हो हमारे ऊपर प्रसन्न होकर वही कीजिये हे मुनि-सत्तम ! तो यह कष्टदायक तामसी गति हमको प्राप्त नहीं होगी ॥७४॥ ऋषि बोले-"हे बालको ! मैंने जो कहा है, वह कभी मिथ्या नहीं होगा, अबतक कभी मेरे मुखसे मिथ्या वचन नहीं निकला है ॥ ७५ ॥ वृथा पौरुषको धिक्कार है, मैं विचारता हूं दैवही इस विषयमें बली है, दैवनेही मुझको इस प्रकारके अचिन्तित अकार्य करनेमें प्रवृत्त किया है ॥ ७६ ॥ तुमने प्रणाम करके मुझको प्रसन्न किया है, इस कारण तिर्यग् योनिमें जन्म लेकरभी परम ज्ञानवान्

योऽयं शापो भगवता दत्तः स न भवेत्तथा ॥ न तामसीं गतिं कष्टां व्रजे स मुनिसत्तम ॥ ७४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ यन्मयोक्तं न तन्मिथ्या भविष्यति कदाचन ॥ न मे वागनृतं प्राह यावदद्येति पुत्रकाः ॥ ७५ ॥ दैवमात्रं परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् ॥ अकार्यं कारितो येन बलादहमचिन्तितम् ॥ ७६ ॥ यस्माच्च युष्माभिरहं प्रणिपत्य प्रसादितः ॥ तस्मात्तिर्यक्त्वमापन्नाः परं ज्ञानमवाप्स्यथ ॥ ७७ ॥ ज्ञानदर्शितमार्गाश्च निर्धूतक्लेशकल्मषाः ॥ मत्प्रसादादसन्दिग्धाः परां सिद्धिमवाप्स्यथ॥७८॥ एवं शप्ताः स्म भगवन्पित्रा दैववशात्पुरा ॥ ततः कालेन महता योन्यन्तरमुपागताः ॥ ७९ ॥ जाताश्च रणमध्ये वै भवता परिपालिताः ॥ वयमित्थं द्विजश्रेष्ठ खगत्वं समुपागताः ॥ ८० ॥ नास्त्यसाविह संसारे यो न दिष्टेन बाध्यते ॥ सर्वेषामेव जन्तूनां दैवाधीनं हि चेष्टितम् ॥ ८१ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा शमीको भगवान्मुनिः ॥ प्रत्युवाच महाभागः समीपस्थायिनो द्विजान् ॥ ८२ ॥

होंगे ॥ ७७ ॥ मेरे प्रसादसे तुम ज्ञानद्वारा सत्मार्ग अवलोकनपूर्वक पापोंको नष्ट करके असंदिग्धचित्तसे प्रधानसिद्धि लाभ करसकोगे" ॥ ७८ ॥ हे भगवन् ! पूर्वकालमें दैवके वशीभूत होकर हमारे पिताने इस प्रकार शाप दियाथा फिर कुछ काल बीतने पर यह पक्षियोनि धारण करी ॥ ७९ ॥ हे द्विज-वर ! युद्धस्थलमें हमारा जन्म हुआ, आपने लाकर प्रतिपालन किया, अब हम आकाशमार्गमें जानेको समर्थ होगये हैं ॥ ८० ॥ हे मुनिशार्दूल ! इस संसारमें ऐसा कोई नहीं है, जो प्रारब्धके वशमें होकर न रहता हो सब प्राणियोंकी यावतीय चेष्टाएँ दैवाधीन हैं ॥८१॥ मार्कण्डेयजी बोले-कि, पक्षियोंके

मा० पु०

॥ १२ ॥

इस प्रकार वचन सुनकर ऐश्वर्यादिषड्गुणसंपन्न मुनिश्रेष्ठ महाभाग भगवान् शमीकने समीपवर्ति ब्राह्मणोंसे कहा ॥ ८२ ॥ हे विप्रगण ! मैंने पहले तुमसे यही कहाथा कि, यह सामान्य पक्षी अलौकिक समरमें भी जब कालकवलमें कवलित नहीं हुए, तब निःसन्देह यह सामान्य पक्षी नहीं हैं बोध होता है, कोई ब्राह्मणकुमार हैं ॥ ८३ ॥ अनन्तर वह पक्षी प्रसन्न हुए महात्मा शमीक मुनिकी आज्ञानुसार वृक्ष लतादिसे परिपूर्ण विन्ध्य पर्वतमें चलेगये ॥ ८४ ॥ वे धर्मपक्षी तबतक उस पर्वतमें निवास करते रहे तप और वेदपाठमें निरत होकर समाधिमेंही अपना निश्चय दृढ किया ॥ ८५ ॥ शमीकजीकी यह आज्ञा पाय, वह पक्षीरूप मुनिकुमार उनसे समस्त क्रियाका उपदेश ले, उस पर्वतके शिखरपर जहां अतिपवित्र निर्मल जल है, आनन्द-

पूर्वमेव मया प्रोक्तं भवतां सन्निधाविदम् ॥ सामान्यपक्षिणो नैते केऽप्येते द्विजसत्तमाः॥ ये युद्धेऽपि न संप्राप्ताः पंचत्वमतिमानुषे ॥८३॥ ततः प्रीतिमता तेन तेऽनुज्ञाता महात्मना ॥ जग्मुः शिखरिणां श्रेष्ठं विंध्यं द्रुमलतायुतम् ॥ ८४ ॥ यावदद्य स्थितास्तस्मिन्नचले धर्मपक्षिणः ॥ तपःस्वाध्यायनिरताः समाधौ कृतनिश्चयाः ॥ ८५ ॥ इति मुनिवरलब्धसत्क्रियास्ते मुनितनया विहगत्वमभ्युपेताः ॥ गिरिवरगहनेऽतिपुण्यतोये यतमनसो निवसन्ति विन्ध्यपृष्ठे ॥ ८६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे विन्ध्यप्रातिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं ते द्रोणतनयाः पक्षिणो ज्ञानिनोऽभवन् ॥ वसन्ति ह्यचले विन्ध्ये तानुपास्व च पृच्छ च ॥ १ ॥ इत्यूषेर्वचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य जैमिनिः ॥ जगाम विन्ध्याशिखरं यत्र ते धर्मपक्षिणः ॥ २॥ तन्नगासन्नभूतश्च शुश्राव पठतां ध्वनिम् ॥ श्रुत्वा च विस्मयाविष्टश्चिन्तयामास जैमिनिः ॥ ३ ॥ स्थानसौष्ठवसम्पन्नं जितश्वासमविश्रमम् ॥ विस्पष्टमपदोषं च पठ्यते द्विजसत्तमैः ॥ ४ ॥

भा०टी०

अ० ४

पूर्वक वास करने लगे ॥ ८६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरदाबादनिवासि-कन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां विन्ध्यप्राप्तिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे जैमिने ! वह ज्ञानवान् सब पक्षी इस प्रकार द्रोणके पुत्र हुए थे वह विन्ध्यपर्वतमें वास करते हैं तुम उनकी उपासना करके सब पूछो ॥ १ ॥ महर्षि जैमिनि मार्कण्डेयमुनिके यह वचन सुनकर जहां वह धर्मपक्षी वास करतेथे; उसी विन्ध्यपर्वतमें गये ॥ २ ॥ जब वह पर्वतके निकट पहुंचे तो पक्षियोंके वेदपाठका शब्द उनके कानमें सुनाई आया, उस समय वह अत्यन्त अचंभेमें होकर चिन्ता करने लगे ॥ ३ ॥ "क्या आश्चर्य है ?

ब्राह्मणगण पक्षिरूप अवलम्बन करके भी स्थानकी श्रेष्ठतासे श्वास जीतकर स्पष्टता और निर्दोषतासहित अविश्राम वेदपाठ करते हैं ॥ ४ ॥ इन बालकोंके तिर्यग्योनिमें गिरने परभी जो सरस्वतीने इनको नहीं त्यागा यह और भी अचंभेकी बात है ॥ ५ ॥ इससे जाना जाता है कि, बंधुवर्ग, मित्र वा घरकी समस्त अभीष्ट वस्तु सभी छोडकर चलीजाती हैं, किन्तु केवल मात्र सरस्वती कभी नहीं छोडती ॥ ६ ॥ मुनिश्रेष्ठ जैमिनिने इस प्रकार चिन्ता करते करते पर्वतकी कन्दरामें प्रवेश किया और देखा कि, वह विप्रगण पत्थरकी चट्टानपर विराजमान हैं ॥ ७ ॥ संपूर्ण दोषोंसे रहित उन सब पक्षियोंको वेदपाठ करता देखकर शोक और हर्षके वशीभूत हो सबसे कहा ॥ ८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठगण ! तुम्हारा मंगल हो मैं व्यासशिष्य जैमिनि तुम्हारे दर्शनकी

वियोनिमपि सम्प्राप्तानेतान्मुनिकुमारकान् ॥ चित्रमेतदहं मन्ये न जहाति सरस्वती ॥५ ॥ बन्धुवर्गस्तथा मित्रं यच्चेष्टमपरं गृहे ॥ त्यक्त्वा गच्छति तत्सर्वं न जहाति सरस्वती ॥६॥ इति संचिन्तयन्नेव विवेश गिरिकन्दरम् ॥ प्रविश्य च ददर्शासौ शिलापट्टगतान्द्विजान् ॥ ७ ॥ पठतस्तान्समालोक्य मुखदोषविवर्जितान् ॥ सोऽथ शोकेन हर्षेण सर्वानिवाभ्यभाषत ॥ ८ ॥ स्वस्त्यस्तु वो द्विजश्रेष्ठा जैमिनिं मां निबोधत ॥ व्यासशिष्यमनुप्राप्तं भवतां दर्शनोत्सुकम् ॥ ९ ॥ मन्युर्न खलु कर्तव्यो यत्पित्रातीव मन्युना ॥ शप्ताः खगत्वमापन्नाः सर्वथादिष्टमेव तत् ॥ १० ॥ स्फीतद्रव्ये कुले केचिज्जाताः किल मनस्विनः ॥ द्रव्यनाशे द्विजेन्द्रास्ते शबरेण सुसान्त्विताः ॥ ११ ॥ दत्त्वा याचन्ति पुरुषा हत्वा वध्यन्ति चापरे ॥ पातयित्वा च पात्यन्ते त एव तपसः क्षयात् ॥ १२ ॥ एतद्दृष्टं सुबहुशो विपरीतं तथा मया ॥ भावाभावसमुच्छेदैरजस्रं व्याकुलं जगत् ॥ १३ ॥

लालसासे उत्कण्ठित होकर इस स्थानमें आयाहूं ॥ ९ ॥ अत्यन्त क्रुद्ध पिताके शापसे पक्षिरूप अवलम्बन करना पडा है, ऐसा जानकर शोक न करना, क्योंकि सब प्रारब्धकाही फल है ॥ १० ॥ देखो, धन मानादि विपुल विषयसंपन्न श्रेष्ठ वंशमें किसी महात्माका जन्म होता है और फिर उस द्रव्यके नष्ट होनेपर वही भीलोंके द्वारा सान्त्वनाको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ कोई दान करके भी भीख मांगता है, कोई वध करके निहत होता है, कोई दूसरेको निहत कराकर अन्यके द्वारा मरता है, तपस्याका क्षय होनेसे इसी प्रकारकी घटना होती रहती है ॥१२॥ मैंने अनेक बार ऐसी घटना देखी है, इस प्रकार

भावाभाव परम्परा द्वारा सब जगत् निरन्तर व्याकुल हुआ है ॥ १३ ॥ इस प्रकार मनमें विचार कर तुम शोक न करना क्योंकि शोक वा हर्ष इत्यादिसे अभिभूत न होनाही तपस्याका फल है ॥ १४ ॥ अनन्तर उन सब धर्मपक्षियोंने पाद्यार्घ्य इत्यादिसे महामुनिकी पूजा करी और प्रणाम करके कुशल पूछी ॥ १५ ॥ फिर जब व्यासशिष्य तपोनिधि जैमिनि उनके पंखोंकी वायुसे थकावट दूर करके सुखपूर्वक बैठे, तब वे पक्षी उनसे कहने लगे ॥ १६ ॥ पक्षी बोले—हे महाभाग! अब हमारा जन्म सफल और जीवन सार्थक हुआ, क्योंकि आपके देवताओंसे वंदित दोनों चरणकमलोंका दर्शन किया ॥ १७ ॥

इति संचिन्त्य मनसा न शोकं कर्तुमर्हथ ॥ ज्ञानस्य फलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता ॥ १४ ॥ ततस्ते जैमिनिं सर्वे पाद्यार्घ्याभ्यामपूजयन् ॥ अनामयं च पप्रच्छुः प्रणिपत्य महामुनिम् ॥ १५ ॥ अथोचुः खगमाः सर्वे व्यासशिष्यं तपोनिधिम् ॥ सुखोपविष्टं विश्रांतं पक्षानिलहतक्लमम् ॥१६॥ पाक्षिण ऊचुः ॥ अद्य नः सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ॥ यत्पश्यामः सुरैर्वन्द्यं तव पादाम्बुजद्वयम् ॥१७॥ पितृकोपाग्निरुद्भूतो यो नो देहेषु वर्त्तते ॥ सोद्य शान्ति गतो विप्र युष्मद्दर्शनवारिणा ॥ १८ ॥ कच्चित्ते कुशलं ब्रह्मन्नाश्रमे मृगपक्षिषु ॥ वृक्षेष्वथ लतागुल्मत्वक्सारतृणजातिषु ॥ १९ ॥ अथवा नैतदुक्तं हि सम्यगस्माभिरादृतैः ॥ भवता संगमो येषां तेषामकुशलं कुतः ॥ २० ॥ प्रसादं च कुरुष्वात्र ब्रूह्यागमनकारणम् ॥ देवानामिव संसर्गो भवतोऽभ्युदयो महान् ॥ केनास्मद्भाग्यगुरुणा आनीतो दृष्टिगोचरम् ॥ २१ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ श्रूयतां द्विजशार्दूलाः कारणं येन कन्दरम् ॥ विन्ध्यस्येहागतो रम्यं रेवावारिकणोक्षितम् ॥ सन्देहान्भारते शास्त्रे तान्प्रष्टुं गतवानहम् ॥ २२ ॥

पितृदेवकी कोपाग्नि अत्यन्त प्रबल होकर जो हमारे देहमें वर्तमान रहती है सो हे विप्र! वह अब आपके दर्शनरूपी जलसे शान्त होगई ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन्! तुम्हारे आश्रमके मृग पक्षिगण वृक्षलता और त्वक्सार तृणादि पर्यन्त सबकी कुशल तो है ॥ १९ ॥ वा हमारा यह पूछनाही अनुचित है, क्योंकि जो आपके निकट वास करते हैं, उनको फिर अमंगल कहां? ॥ २० ॥ अब आप किस निमित्त आये हैं? अनुग्रहपूर्वक उसको प्रकाश कीजिये आपका आना और देवताओंका संसर्ग दोनों समान हैं सुतरां नहीं जाना जाता कि, किस भाग्यके बलसे आपका दर्शन हुआ ॥ २१ ॥ जैमिनि—बोले हे

द्विजशार्दूल ! मैं जिस कारण रेवा नदीके जलकणोंसे सिंचित हुआ इस विंध्यपर्वतकी मनोहर कन्दरामें आया हूं; सो सुनो । महाभारत शास्त्रमें कई सन्देहोंके होनेसे मैं पूछनेके लिये ॥ २२ ॥ भृगुकुलधुरंधर महात्मा मार्कण्डेयमुनिके निकट गयाथा और महाभारतके प्रति सन्देह उनसे पूछे थे ॥२३॥ उन्होंने कहा कि, " विन्ध्याचलमें महात्मा द्रोणके पुत्र वास करते हैं, तुम वहां जाकर उनसे पूछो, वही तुमसे इन प्रश्नोंको उत्तर विस्तारसहित वर्णन करेंगे" ॥ २४ ॥ मैं उनकेही वचनानुसार इस महापर्वतमें आयाहूं अब तुम मेरे उन सब प्रश्नोंको भलीभांति सुनकर यथावत् व्याख्या करदो ॥ २५ ॥ पक्षियोंने कहा--यदि वक्तव्य होगा तो कहेंगे, आप निःशंक चित्तसे कहिये, जो हमारे बुद्धिगोचर होगा वह क्यों नहीं कहेंगे ? ॥२६॥ चार वेद, समस्त

मार्कण्डेयं महात्मानं पूर्वं भृगुकुलोद्वहम् ॥ तमहं पृष्टवान्प्राप्य सन्देहान्भारतं प्रति ॥ २३ ॥ स च पृष्टो मया प्राह सन्ति विन्ध्ये महाचले ॥ द्रोणपुत्रा महात्मानस्ते वक्ष्यन्त्यर्थविस्तरम् ॥ २४ ॥ तद्वाक्यचोदितश्चेममागतोऽहं महागिरिम् ॥ तच्छृणुध्वमशेषेण श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥ २५ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ विषये सति वक्ष्यामो निर्विशङ्कः शृणुष्व तत् ॥ कथं तन्न वदिष्यामो यदस्मद्बुद्धिगोचरम् ॥ २६ ॥ चतुर्ष्वपि हि वेदेषु धर्मशास्त्रेषु चैव हि ॥ समस्तेषु तथाङ्गेषु यच्चान्यद्वेदसंमितम् ॥ २७॥ एतेषु गोचरोऽस्माकं बुद्धेर्ब्राह्मणसत्तम ॥ प्रतिज्ञां तु समावोढुं तथापि नहि शक्नुमः ॥ २८ ॥ तस्माद्वदस्व विश्रब्धं सन्दिग्धं यद्धि भारते ॥ वक्ष्यामस्तव धर्मज्ञ न चेन्मोहो भविष्यति ॥ २९ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ सन्दिग्धानीह वस्तूनि भारतं प्रति यानि मे ॥ शृणुध्वममलास्तानि श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥ ३० ॥ कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दनः ॥ वासुदेवोऽखिलाधारः सर्वकारणकारणम् ॥ ३१ ॥

धर्मशास्त्र वा सब वेदाङ्ग वा वेदसम्मत जो कोई शास्त्रही क्या न हो ॥ २७ ॥ हे द्विजसत्तम ! यद्यपि सबही हमारे बुद्धिगोचर हैं, किन्तु तोभी हम प्रतिज्ञा नहीं करसकते ॥ २८ ॥ अत एव महाभारतमें आपको जो सन्देह है निःशंक चित्तसे आज्ञा कीजिये, यदि मोह न हो तो हे धर्मज्ञ ! वह अवश्यही आपसे कहेंगे ॥ २९ ॥ जैमिनि बोले--हे निर्मलचित्तविहंगमगण ! महाभारतके बीच जिन सब विषयोंमें मुझको सन्देह उत्पन्न हुआ है, वह सुनो और उनकी व्याख्या करदो ॥ ३० ॥ मेरा सन्देह यही है कि "जो सब कारणोंके कारण और समस्त ब्रह्मांडके आधार हैं वह जनार्दन वासुदेव निर्गुण होकरभी

किस निमित्त मनुष्य हुए थे ? ॥ ३१ ॥ एक द्रुपदकी कन्या द्रौपदी किस प्रकार पांच पाण्डवोंकी महिषी हुई थी ? यह महान् संशय है ॥ ३२ ॥ महाबल हलायुध बलरामजी किस प्रकार तीर्थयात्रा प्रसंगमें ब्रह्महत्याके पातकसे छूटेथे ? ॥ ३३ ॥ और महारथ युधिष्ठिर आदि पांच पाण्डव जिनके सहायक थे वह द्रौपदीके पुत्र अविवाहित अवस्थामें अनाथकी समान किस प्रकार मरे ? ॥ ३४ ॥ इन सब बातोंमें मुझको अत्यन्त सन्देह है, तुम इन महाभारतसंबंधी सन्देहोंका यथावत् उत्तर देकर मुझको कृतार्थ करो तो मैं सुखसेही अपने आश्रमको चला जाऊंगा ॥ ३५ ॥ पक्षी बोले—जो देवताओंके अधीश्वर सर्वव्यापी और अत्यन्त प्रभावशाली हैं, जो पुरुषरूपी अर्थात् आत्मा, अप्रमेय, शाश्वत और अव्ययरूपी हैं ॥ ३६ ॥ जो वासुदेव

कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा ॥ पञ्चानां महिषी कृष्णा सुमहानत्र संशयः ॥ ३२ ॥ भेषजं ब्रह्महत्याया बलदेवो महाबलः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कस्माच्चक्रे हलायुधः ॥ ३३ ॥ कथं च द्रौपदेयास्तेऽकृतदारा महारथाः ॥ पाण्डुनाथा महात्मानो वधमापुरनाथवत् ॥३४॥ एतत्सर्वं कथ्यतां मे सान्दिग्धं भारतं प्रति ॥ कृतार्थोऽहं सुखं येन गच्छेयं निजमाश्रमम् ॥३५॥ पक्षिण ऊचुः ॥ नमस्कृत्य सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ पुरुषायाप्रमेयाय शाश्वतायाव्ययाय च ॥३६॥ चतुर्व्यूहात्मने तस्मै त्रिगुणायागुणाय च ॥ वरिष्ठाय गरिष्ठाय वरेण्यायामृताय च ॥ ३७ ॥ यस्मादणुतरं नास्ति यस्मान्नास्ति बृहत्तरम् ॥ येन विश्वमिदं व्याप्तमजेन जगदादिना ॥ ३८ ॥ आविर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षणम् ॥ वदन्ति यत्सृष्टमिदं तथैवान्ते च संहृतम् ॥ ३९ ॥

संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप "चतुर्व्यूहात्मक हैं" जो त्रिगुण अथ च निर्गुण हैं, जो उत्तम और गरिष्ठ हैं, जो वरेण्य, अमृत ॥ ३७ ॥ यज्ञाङ्ग और निखिल चराचरात्मक हैं, वेदान्तशास्त्रमें जिनके स्वरूपका कुछ थोडासा वर्णन किया है, सब जगत्में जिनकी अपेक्षा अन्य सूक्ष्मतर और बृहत्तर नहीं है, यह संपूर्ण विश्व जिनके द्वारा व्याप्त है, जो अज और जगत्के आदि हैं ॥ ३८ ॥ इस संसारमें आविर्भाव, तिरोभाव, दर्शन और अदर्शन इत्यादि सब कार्य जिनके द्वारा संपन्न होते हैं, तथा जो उनसे अतीत, जगत्के सृष्टिकर्त्ता और संहार कर्त्ता कहे जाते हैं (उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है)॥ ३९ ॥

१ सृष्टिप्रकरणमें सांख्यादि योगशास्त्र प्रसिद्ध अहंकारादिसे इस चतुर्व्यूहकी उत्पत्ति है । कोई कोई इस स्थलमें चतुर्व्यूह शब्दमें जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति और तुरीयरूप कहते हैं, किन्तु उसमें अर्थका विशेष तात्पर्य नहीं रहता ।

जो आदिदेव और जो चारों मुखोंसे सामादि चारों वेद उत्पन्न करके तीनों भुवनोंको पवित्र करते हैं; उन ब्रह्माजीको ध्यानके सहित नमस्कार है ॥ ४० ॥ असुरगण जिनके एक बाणसे पराश्त होकर याज्ञिकगणोंके यज्ञ लोप करनेमें अशक्य होते हैं, उन देवादिदेव महादेवजीके चरणकमलोंमें प्रणाम करके ॥४१॥ अत्यन्त अद्भुतकर्मकारी जो महर्षि बादरायणिके द्वारा महाभारतके मिस धर्मादि प्रगट हुआ है; वह व्यासदेवके मतानुयायी सब विषय सम्यक प्रकार आपके प्रति प्रकाशित करेंगे ॥ ४२ ॥ तत्त्वदर्शी मुनि कहते हैं, "नार" शब्दका अर्थ जल है, प्रथम वह जलही एकमात्र जिनका "अयन" अर्थात् घर था, इससे उनको नारायण कहते हैं ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन्! वही अनन्तलीलानिधान भगवान् विभु नारायण सगुण और निर्गुणात्मक द्विविध

ब्रह्मणे चादिदेवाय नमस्कृत्य समाधिना ॥ ऋक्सामान्युद्गिरन्वक्त्रैर्यः पुनाति जगत्त्रयम् ॥४०॥ प्रणिपत्य तथैशानमेकबाणविनिर्जितैः ॥ यस्यासुरगणैर्यज्ञा विलुप्यन्ते न यज्विनाम् ॥ ४१ ॥ प्रवक्ष्यामो मतं कृत्स्नं व्यासस्याद्भुतकर्मणः ॥ येन भारतमुद्दिश्य धर्माद्याः प्रकटीकृताः ॥ ४२ ॥ आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ४३ ॥ स देवो भगवान्सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः ॥ चतुर्द्धा संस्थितो ब्रह्मन्सगुणो निर्गुणस्तथा ॥ ४४ ॥ एका मूर्तिरनिर्देश्या शुक्लां पश्यन्ति तां बुधाः ॥ ज्वालामालोपरुद्धाङ्गी निष्ठा सा योगिनां परा ॥४५॥ दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया सा गुणातिगा ॥ वासुदेवाभिधानोऽसौ निर्ममत्वेन दृश्यते ॥ ४६ ॥ रूपवर्णादयस्तस्या न भावाः कल्पनामयाः ॥ अस्त्येव सा सदा शुद्धा सुप्रतिष्ठैकरूपिणी ॥ ४७ ॥

रूपसे चार मूर्तिमें अवस्थित हैं ॥ ४४ ॥ उनकी एक मूर्ति जो अनिर्देश्य अर्थात् वाणीके अतीत है पण्डितगण जिसको शुक्लवर्ण कहते हैं, चंद्रसूर्यादि समस्त तेजपुंजमय पदार्थरूप ज्वालामालासे जिसके सब अंग अवरुद्ध हैं, जो योगियोंका एकमात्र आश्रयस्वरूप है ॥ ४५ ॥ जो नित्यरूपिणी और जो मूर्त्ति तीनों गुणोंको अतिक्रम करके दूर और निकट स्थित रहती है, उस प्रधानस्वरूप पहिली मूर्तिका नाम वासुदेव मूर्ति है, इसमें ममताका लेशमात्र भी नहीं है ॥ ४६ ॥ उसके रूप वर्ण इत्यादि सब भाव कल्पनात्मक हैं यह मूर्ति सर्वकाल विराजमान, परमपवित्र स्वरूप और सदा एकरूप

है ॥ ४७ ॥ पाताल देशमें वास करके जो मूर्ति मस्तकके ऊपर पृथ्वी धारण करती है वह दूसरी मूर्ति है उसका नाम शेष अर्थात् संकर्षण है, इस मूर्त्तिने तामसी होनेसे तिर्यग्योनि अवलम्बन करी है ॥ ४८ ॥ भगवान् नारायणकी जिस मूर्त्तिके द्वारा संपूर्ण कर्म सम्यक् प्रकार साधित होते हैं, जिसके द्वारा प्रजापालनादि सब कार्य सम्पादित होते हैं और जो मूर्ति धर्मसंस्थापनकारिणी अर्थात् धर्मकी रक्षा करनेवाली है उस सत्त्वगुणमयी मूर्त्तिका नाम प्रद्युम्नमूर्ति है ॥ ४९ ॥ चौथी मूर्ति पन्नगशय्यापर जलमें शयन करके वास करती है वह रजोगुणात्मिका है उसके द्वाराही सदा सृष्टिकार्य संपन्न होता है, इस मूर्तिका नाम अनिरुद्धमूर्ति है ॥ ५० ॥ हरिकी प्रजापालनकारिणी जो तीसरी मूर्ति है, उसके द्वाराही सदा पृथ्वीमें धर्मसंस्थापन होता है ॥ ५१ ॥

द्वितीया पृथिवी मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः ॥ तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं समुपाश्रिता ॥ ४८ ॥ तृतीया कर्म कुरुते प्रजापा-
लनतत्परा ॥ सत्त्वोद्रिक्ता तु सा ज्ञेया धर्मसंस्थानकारिणी ॥ ४९ ॥ चतुर्थी जलमध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा ॥ रजस्तस्या गुणः सर्गं सा
करोति सदैव हि ॥ ५० ॥ या तृतीया हरेर्मूर्त्तिः प्रजापालनतत्परा ॥ सा तु धर्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि ॥ ५१ ॥ प्रोद्भूतानसुरा-
न्हन्ति धर्मविच्छित्तिकारिणः ॥ पाति देवान्सतश्चान्यान्धर्मरक्षापरायणान् ॥ ५२ ॥ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति जैमिने ॥ अभ्यु-
त्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजत्यसौ ॥ ५३ ॥ भूत्वा पुरा वराहेण तुण्डेनापो निरस्य च ॥ एकया दंष्ट्रयोत्खाता नलिनीव वसुंधरा ॥ ५४ ॥
कृत्वा नृसिंहरूपं च हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ विप्रचित्तिमुखाश्चान्ये दानवा विनिपातिताः ॥ ५५ ॥ वामनादींस्तथैवान्यान्न संख्यातुमिहोत्सहे ॥
अवतारांश्च तस्येह माथुरः सांप्रतं त्वयम् ॥ ५६ ॥

धर्मका विनाश करनेवाले उद्धत असुरगण उसीके द्वारा मरते हैं और उसके द्वाराही धर्म रक्षापरायण साधु और दैत्य रक्षित होतेहैं ॥ ५२ ॥ हे जैमिने ! जिस जिस समय धर्मकी हानि होकर अधर्मकी वृद्धि होती है; यह मूर्ति उसि समय धर्मका उद्धार करनेके निमित्त उत्पन्न होती है ॥ ५३ ॥ इसी मूर्तिमें पूर्वकालमें वराहरूप धारणपूर्वक दाँतोंके अग्रभागद्वारा जल हटाकर केवल दाढोंसे सहजमेंही पृथ्वीको नालिनीके समान निकालकर पूर्ववत् स्थिर किया है ॥ ५४ ॥ उसनेही नृसिंहमूर्त्ति धारण कर हिरण्यकशिपुको मारा है और उसीने विप्रचित्ति इत्यादि दानवोंका भी वध किया है ॥ ५५ ॥ उसके वामनादि

अन्यान्य सब अवतारोंकी संख्या नहीं कर सकते वह इस समय जो उत्पन्न हुई है वह माथुरमूर्ति श्रीकृष्ण है ॥ ५६ ॥ इस प्रकार उस सत्यगुणात्मिका मूर्त्तिके अवतीर्ण होनेपर प्रद्युम्नमूर्ति उसकी रक्षा करनेमें स्थित रहती है ॥५७॥ वह देवत्व, मनुष्यत्व, वा तिर्यक् योनि इत्यादिमें अवस्थित होकर वासुदेवकी इच्छानुसार तत्तत्स्वभाव अवलम्बन करती है ॥ ५८ ॥ हमने यह आपके निकट सब वर्णन किया अब भगवान् विष्णुने कृतकार्य होकरभी जिस करणसे मनुष्य देह ग्रहण किया है, इसका उत्तर फिर कहते हैं, सुनो ॥ ५९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासिकन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां चतुर्व्यूहावतारश्चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ पक्षी बोले- हे ब्रह्मन् ! त्वष्टा नामक प्रजापतिका पुत्र त्रिशिरा अधोमुख होकर तपस्या करताथा, इन्द्रने उसकी

इति सा सात्त्विकी मूर्तिरवतारान्करोति वै ॥ प्रद्युम्नेति च साख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥५७॥ देवत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिर्यग्योनौ च संस्थिता ॥ गृह्णाति तत्स्वभावं च वासुदेवेच्छया सदा ॥ ५८ ॥ इत्येतत्ते समाख्यातं कृतकृत्योऽपि यत्प्रभुः ॥ मानुषत्वं गतो विष्णुः शृणुष्वास्योत्तरं पुनः ॥ ५९ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणे चतुर्व्यूहावतारश्चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ त्वष्टृपुत्रे हते पूर्वं ब्रह्मन्निन्द्रस्य तेजसः ॥ ब्रह्महत्याभिभूतस्य परा हानिरजायत ॥ १ ॥ तद्धर्मं प्रविवेशाथ शाक्रतेजोऽपचारतः ॥ निस्तेजाश्चाभवच्छक्रो धर्मे तेजसि निर्गते ॥ २ ॥ ततः पुत्रं हतं श्रुत्वा त्वष्टा क्रुद्धः प्रजापतिः ॥ अवलुंच्य जटामेकामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं त्रयो लोकाः सदेवताः ॥ स च पश्यतु दुर्बुद्धिर्ब्रह्महा पाकशासनः ॥४॥ स्वकर्माभिरतो येन मत्सुतो विनिपातितः ॥ इत्युक्त्वा कोपरक्ताक्षो जटामग्नौ जुहाव ताम् ॥ ५ ॥

तपस्यासे डरकर उसका वध किया त्वष्टृपुत्र त्रिशिराके मरनेपर ब्रह्महत्याजनित पापसे सुरपतिके तेजकी हानि हुई ॥ १ ॥ अधर्माचरणके कारण पाकशासनके इस तेजने धर्ममें प्रवेश किया, तब धर्ममें तेजके चलेजानेसे शचीपति (इन्द्र) निस्तेज होगये ॥ २ ॥ तदनन्तर त्वष्टा प्रजापतिपुत्रके मरनेकी वार्ता सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए और महाक्रोधपूर्वक मस्तककी एक जटा तोडकर कहने लगे ॥ ३ ॥ "इस समय देवताओंके सहित स्वर्ग और पातालवासी सब प्राणी मेरा तेज देखें और मेरे पुत्रका मारनेवाला ब्रह्मघाती दुर्बुद्धि इन्द्रभी मेरा वीर्य देखे ॥ ४ ॥ जिसने स्वकर्ममें निरत मेरे पुत्रको मारा है"

यह कहकर उन्होंने कोपसे लाल नेत्र किये उस जटाको अग्निमें होम करदिया ॥ ५ ॥ उसी समय ज्वालामाली महाशरीर, बडी डाढोंवाला और अंजनपिण्डके समान रूपधारी वृत्र नामक एक महाअसुर अग्निसे उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ अप्रमेयात्मा महाबली इन्द्रका शत्रु वृत्र प्रजापति त्वष्टाके तेजसे उत्पन्न होकर जितना ऊंचा धनुषसे छूटा हुआ बाण जाता है, उसीके समान नित्य बढने लगा ॥ ७ ॥ इधर अपने संहारके लिये महाअसुर वृत्रको उत्पन्न हुआ देखकर देवराज इन्द्रने भयातुर होकर उसके संग संधि करनेके निमित्त मरीच्यादि सप्त ऋषियोंको भेजा ॥८॥ सब प्राणियोंके हितमें रत प्रसन्नमन ऋषियोंने वृत्रासुर और इन्द्रसे परस्पर प्रतिज्ञा करानेके पीछे मित्रता स्थापन कराई ॥ ९ ॥ महासुर वृत्र प्रतिज्ञा मर्यादा उल्लंघन करके इन्द्रके द्वारा जिस समय मारा गया

ततो वृत्रः समुत्तस्थौ ज्वालामाली महासुरः ॥ महाकायो महादंष्ट्रो भिन्नाञ्जनचयप्रभः ॥ ६ ॥ इन्द्रशत्रुरमेयात्मा त्वष्टृतेजोपबृंहितः ॥ अहन्यहनि सोऽवर्द्धदिषुपातं महाबलः ॥७॥ वधाय चात्मनो दृष्ट्वा वृत्रं शक्रो महासुरम् ॥ प्रेषयामास सप्तर्षीन्सन्धिमिच्छन्भयातुरः ॥८॥ सख्यं चक्रुस्ततस्तस्य वृत्रेण समयांस्तथा ॥ ऋषयः प्रीतमनसः सर्वभूतहिते रताः ॥ ९ ॥ समयस्थितिमुल्लंघ्य यदा शक्रेण घातितः ॥ वृत्रो हत्याभिभूतस्य तदा बलमशीर्यत ॥१०॥ तच्छक्रदेहाविभ्रष्टं बलं मारुतमाविशत् ॥ सर्वव्यापिनमव्यक्तं बलस्यैवाधिदैवतम् ॥११॥ अहल्यां च यदा शक्रो गौतमं रूपमास्थितः ॥ धर्षयामास देवेन्द्रस्तदा रूपमहीयत ॥ १२ ॥ अङ्गप्रत्यङ्गलावण्यं यदतीव मनोरमम् ॥ विहाय दुष्टं देवेन्द्रं नासत्यावगमत्ततः ॥१३॥ धर्मेण तेजसा त्यक्तं बलहीनमरूपिणम् ॥ ज्ञात्वा सुरेशं दैतेयास्तज्जये चक्रुरुद्यमम् ॥१४॥ राज्ञामुद्रिक्तवीर्याणां देवेन्द्रविजिगीषवः ॥ कुलेष्वतिबला दैत्या अजायन्त महामुने ॥ १५ ॥

तब उसी ब्रह्महत्याजनित पापसे अभिभूत होनेके कारण इन्द्रका बल नष्ट होगया ॥ १० ॥ उस बलने इन्द्रके शरीरसे भ्रष्ट होकर बलके एकमात्र अधिदेवता अव्यक्त सर्वव्यापी वायुमें प्रवेश किया ॥ ११ ॥ और इन्द्रने जब गौतमका रूप धारण करके अहल्यासे रमण किया, उस समय भी उनका रूप हीन हुआ था ॥ १२ ॥ उस समय शचीपतिके अत्यन्त मनोहर अंग प्रत्यंगका समस्त लावण्य दुरात्मा इन्द्रको छोडकर दोनों अश्विनीकुमारोंमें चला गया ॥१३॥ तब सुरराजको धर्म और तेजके द्वारा त्यागा जानकर तथा दुर्बल और हीनरूप विचार दैत्योंने उनको जीतनेके लिये उद्यम किया था ॥१४॥ हे महामुने!

अत्यन्त बलशाली दैत्योंने इन्द्रको जीतनेकी इच्छासे बल वीर्य मदोद्धत राजाओंके कुलमें जन्म लिया था ॥ १५ ॥ अनन्तर कुछ काल बीतनेपर भगवती वसुन्धरा (पृथ्वी) दैत्योंके बोझसे पीडित हो सुमेरुपर्वतके मध्य देवताओंकी सभामें गई ॥ १६ ॥ तब अत्यन्त बोझसे पीडित हुइ भगवती वसुंधरा दैत्य दानवोंसे उत्पन्न अपने दुःखका सब कारण उनसे कहने लगी ॥ १७ ॥ " हे देवताओ ! अत्यन्त बलवान् जिन सब असुरोंको आपने मारा है अब उन्होंने मनुष्यलोकमें राजाओंके घर जन्म लिया है ॥ १८ ॥ वह दैत्यगण असंख्य अक्षौहिणीपरिमित है, इस कारण मैं उनके बोझसे अत्यन्त पीडित होकर नीचेको झुकी जातीहूं, बस, जिससे मुझको शान्तिलाभ हो, हे देवताओ ! आप वही कीजिये" ॥ १९ ॥ पक्षी बोले ! हे मुने ! अनन्तर देवता सब

कस्यचित्त्वथ कालस्य धरणीभारपीडिता ॥ जगाम मेरुशिखरं सदो यत्र दिवौकसाम् ॥ १६ ॥ तेषां सा कथयामास भूरिभारावपीडिता ॥ तनुजात्मजदैत्योत्थं खेदकारणमात्मनः ॥ १७ ॥ एते भवद्भिरसुरा निहताः पृथुलौजसः ॥ ते सर्वे मानुषे लोके जाता गेहेषु भूभृताम् ॥ १८ ॥ अक्षौहिण्यो हि बहुलास्तद्भारार्त्ता व्रजाम्यधः ॥ तथा कुरुध्वं त्रिदशा यथा शांतिर्भवेन्मम ॥ १९ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ तेजोभागैस्ततो देवा अवतेरुर्दिवो महीम् ॥ प्रजानामुपकारार्थं भूभारहरणाय च ॥ २० ॥ यदिन्द्रदेहजं तेजस्तन्मुमोच स्वयं वृषः ॥ कुन्त्यां जातो महातेजास्ततो राजा युधिष्ठिरः ॥ २१ ॥ बलं मुमोच पवनस्ततो भीमो व्यजायत ॥ शक्रवीर्यार्धतश्चैव जज्ञे पार्थो धनंजयः ॥ २२ ॥ उत्पन्नौ यमलौ माद्र्यां शक्ररूपौ महाद्युती ॥ पञ्चधा भगवानित्यमवतीर्णः शतक्रतुः ॥ २३ ॥

प्रजाका उपकार और पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये अपने अपने तेजोभागद्वारा स्वर्गसे पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए ॥ २० ॥ तब स्वयं धर्मने इन्द्रके देहसे उत्पन्न उस तेजको कुन्तीके गर्भमें डाला, उससेही महातेजा राजा युधिष्ठिर उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ देवश्रेष्ठ पवनने इन्द्रका जो तेज कुन्तीके गर्भमें निक्षेप किया उसीसे भीमसेनका जन्म हुआ और इसी कुन्तीके गर्भसे सुरराजके आधे बलद्वारा पार्थ धनंजयने जन्म लिया ॥ २२ ॥ और इन्द्रके लावण्यधारी दोनों अश्विनीकुमारोंके द्वारा माद्रीके गर्भसे महाद्युतिसम्पन्न जो यमलकुमार उत्पन्न हुए, वह भी इन्द्रके तेजसे युक्त हैं सुतरां भगवान् शतक्रतु (इन्द्र) ही

इन पाच अंशमें अवतीर्ण हुए ॥ २३ ॥ और उनकी पत्नी शची ही यज्ञभाग याज्ञसेनीरूपमें अग्निसे उत्पन्न हुई॥ २४ ॥ तो स्थिर हुआ कि, एक द्रौपदी केवल इन्द्रकी ही पत्नी है, अन्य किसीकी नहीं क्योंकि महात्मा योगीश्वर पुरुष अपने शरीरको अनेक भागमें विभक्त कर सकते हैं ॥ २५ ॥ हे महाभाग ! जिस प्रकार पांच जनोंकी एक पत्नी हुईथी, वह आपके निकट वर्णन किया अब बलदेवजी जिस प्रकार सरस्वतीमें गयेथे वह सुनो ॥ २६॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासिकन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायामिन्द्रविक्रिया नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ " मैं श्रीकृष्णको विना संग पक्षी बोले--हलधर बलरामजी, अर्जुनके प्रति श्रीकृष्णकी अत्यन्त प्रीति जान क्या करनेसे भला होगा, इसीकी अनेक भाँतिसे चिन्ता करनेलगे ॥ १ ॥

तस्योत्पन्ना महाभागा पत्नी कृष्णा हुताशनात् ॥ २४ ॥ शक्रस्यैकस्य सा पत्नी कृष्णा नान्यस्य कस्यचित् ॥ योगीश्वराः शरीराणि कुर्वंति बहुलान्यपि ॥ २५ ॥ पंचानामेकपत्नीत्वमित्येतत्कथितं तव ॥ श्रूयतां बलदेवोऽपि यथा यातः सरस्वतीम् ॥ २६ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणे इन्द्रविक्रिया नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ रामः पार्थे परां प्रीतिं ज्ञात्वा कृष्णस्य लाङ्गली ॥ चिन्तयामास बहुधा किं कृतं सुकृतं भवेत् ॥ १ ॥ कृष्णेन हि विना नाहं यास्ये दुर्योधनान्तिकम् ॥ पाण्डवान्वा समाश्रित्य कथं दुर्योधनं नृपम् ॥ २ ॥ जामातरं तथा शिष्यं घातयिष्ये नरेश्वरम् ॥ तस्मान्न पार्थं यास्यामि नापि दुर्योधनं नृपम् ॥ ३ ॥ तीर्थेष्वाप्लावयिष्यामि तावदात्मानमात्मना ॥ कुरूणां पाण्डवानां च यावदन्ताय कल्पते ॥ ४ ॥ इत्यामंत्र्य हृषीकेशं पार्थदुर्योधनावपि ॥ जगाम द्वारकां शौरिः स्वसैन्यपरिवारितः ॥ ५ ॥ गत्वा द्वारवतीं रामो हृष्टपुष्टजनाकुलाम् ॥ श्वो गन्तव्येषु तीर्थेषु पपौ पानं हलायुधः ॥ ६ ॥

लिये अकेला दुर्योधनके निकट नहीं जाऊंगा और पाण्डवोंका पक्ष अवलम्बन कर ॥ २ ॥ अपनेही जामाता तथा शिष्य पृथ्वीपति दुर्योधनको कैसे मारूं ? इस कारण राजा दुर्योधन वा अर्जुन इन दोनोंमें किसीके निकटभी नहीं जाऊंगा ॥ ३ ॥ अत एव जबतक कौरवपाण्डवोंका ध्वंस न हो, तबतक आपही आप तीर्थोंमें भ्रमण करके आत्माको पवित्र करूं " ॥ ४ ॥ बलरामजी मनमें इस प्रकार स्थिर कर हृषीकेश, पार्थ और दुर्योधनको आमंत्रणपूर्वक अपनी सेनासे वेष्टित हो द्वारकाको चलेगये ॥ ५ ॥ शौरि बलरामजीने हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे भरी द्वारावती नगरीमें जाकर तीर्थयात्राके करनेका

विचार किया और ताडीका रस पिया ॥ ६ ॥ वह पान करनेके पीछे अप्सराकी समान सगर्वा रेवतीका हाथ पकडकर अनेक प्रकारकी सम्पत्तिसे पूर्ण रैवत उद्यानमें गये ॥ ७ ॥ वह मद्यपानसे मत्त होरहेथे, इस कारण स्त्रियोंसे परिवेष्टित होकर गमन करनेपर भी पग पगमें उनके पैर डिगमिगातेथे अनन्तर वीरवर बलरामजीने उस अतिउत्तम रमणीय रैवतक वनको देखा ॥ ८ ॥ यह उद्यान समस्तऋतुके उत्पन्न फल और पुष्पोंसे शोभायमान तथा शाखामृगों (बंदरों) से व्याप्त था. वह अत्यन्त पवित्र कमलवनसे युक्त, छोटे सरोवर और महावनद्वारा भलीभांति विराजित था ॥ ९ ॥ बलरामजी रेवतीके सहित वनमें प्रवेश

पीतपानो जगामाथ रेवतोद्यानमृद्धिमत् ॥ हस्ते गृहीत्वा समदां रेवतीमप्सरोपमाम् ॥ ७ ॥ स्त्रीकदम्बकमध्यस्थो ययौ मत्तः पदा स्खलन् ॥ ददर्श च वनं वीरो रमणीयमनुत्तमम् ॥ ८ ॥ सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम् ॥ पुण्यं पद्मवनोपेतं सपल्वलमहावनम् ॥ ९ ॥ स शृण्वन्प्रीतिजननान्बहून्मदकलाञ्शुभान् ॥ श्रोत्ररम्यान्सुमधुराञ्छब्दान्खगमुखेरितान् ॥ १० ॥ सर्वर्तुफलभाराढ्यान्सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलान् ॥ अपश्यत्पादपाँस्तत्र विहगैरनुनादितान् ॥ ११ ॥ आम्रानाम्रातकान्भव्यान्नारिकेलान्सतिन्दुकान् ॥ आबिल्वकांस्तथा जीरान्दाडिमान्बीजपूरकान् ॥ १२ ॥ पनसाँल्लकुचान्मोचान्नीपांश्चातिमनोहरान् ॥ पारावतांश्च कङ्कोलान्नालिनानम्लवेतसान् ॥ १३ ॥ भल्लातकानामलकांस्तिन्दुकांश्च महाफलान् ॥ इंगुदान्करमर्दांश्च हरीतकविभीतकान् ॥ १४ ॥ एतानन्यांश्च स तरून्ददर्श यदुनन्दनः ॥ तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानथ ॥ १५ ॥

करके आह्लादजनक शुभसूचक गंभीर कानोंको सुखदायक और मधुर नानाप्रकारके पक्षियोंका कूजन श्रवण करने लगे ॥ १० ॥ यह भी देखा कि, वहांके वृक्षोंमें सब ऋतुओंके फल लगरहे हैं, उनपर प्रसन्न हृदयसे पक्षी चहचहा रहे हैं, और सारे वनमें सब ऋतुओंके फूल फूलरहे हैं । भाँति भाँतिके हरे पीले लाल फल लटकरहे हैं ॥ ११ ॥ आम, अमरा, नारियल, तिंदु, बेल, अंजीर, अनार, नींबू ॥ १२ ॥ कटहल, बडहल, मोचरस, कदम, पारावत, कंकोल, नलिन, अमलवेत ॥ १३ ॥ भिलावा, तैंदू, तिल, हिंगोट, करोंदा, हड, बहेडा ॥ १४ ॥ इन वृक्षोंको यदुनन्दन बलरामजीने वहां देखा और इनके अतिरिक्त

अशोक, पुन्नाग, केतकी, मौलसिरी ॥ १५ ॥ चम्पा, सप्तपर्ण, कनेर, मालती, पारिजात, कोविदार, मन्दार, बेर ॥ १६ ॥ पाटल, देवदारु, सुखुआ, ताल, तमाल, पलाश, वंजुल आदि अच्छे अच्छे फलफूलवाले वृक्षोंसे वह वन संयुक्त है ॥ १७ ॥ और इन वृक्षोंपर चकोर, शातपत्र, भृंगराज, शुक, सारिका, कोयल, कोकिला, हरैल, जीवजीवक ॥ १८ ॥ प्रियपुत्र और चातक इत्यादि भाँतिभाँतिके पक्षी श्रवणमनोहर मधुर शब्द करते हुए इन सब वृक्षोंकी शाखाओंका आश्रय करके वास कररहे हैं ॥ १९ ॥ रैवतक उद्यानमें निर्मल जलसे शोभायमान सब सरोवर शोभित हैं कि, जिनके देखतेही चित्त प्रसन्न

चम्पकान्सप्तपर्णांश्च कर्णिकारान्समालतीन् ॥ पारिजातान्कोविदारान्मन्दारान्बदरांस्तथा ॥ १६ ॥ पाटलान्पुष्पितान्रम्यान्देवदारुद्रुमांस्तथा ॥ सालांस्तालांस्तमालांश्च किंशुकान्वंजुलान्वरान् ॥ १७ ॥ चकोरैः शातपत्रैश्च भृंगराजैस्तथा शुकैः ॥ कोकिलैः कलविंकैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥ १८ ॥ प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथान्यैर्विविधैः खगैः ॥ श्रोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्भिश्चाप्याधिष्ठितम् ॥ १९ ॥ सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च ॥ कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥ २० ॥ कह्लारैः कमलैश्चापि आचितानि समंततः ॥ कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥ २१ ॥ कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेव च ॥ एभिश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः ॥ २२ ॥ क्रमेणेत्थं वनं शौरिर्वीक्ष्यमाणो मनोरमम् ॥ जगामानुगतः स्त्रीभिर्लतागृहमनुत्तमम् ॥ २३ ॥ स ददर्श द्विजांस्तत्र वेदवेदांगपारगान् ॥ कौशिकान्भार्गवांश्चैवभरद्वाजान्सगौतमान् ॥ २४ ॥ विविधेषु च संभूतान्वंशेषु द्विजसत्तमान् ॥ कथाश्रवणबद्धात्कोनुपाविष्टान्महत्सु च ॥ २५ ॥

हो जाय, कुसुद, पुण्डरीक, नीलकमल ॥ २० ॥ कह्लार और कमल इत्यादि कुसुमसमूहसे सब ओर शोभायमान और कलहंस चक्रवाक तथा जलमुर्गावी ॥ २१ ॥ प्लव, हंस और कारण्डवादि जलचर पक्षी और कूर्महरियल इत्यादि जलचर जीवोंसे व्याप्त होकर अपूर्व शोभा धारण करते हैं ॥ २२ ॥ स्त्रियोंके सहित शौरि बलरामजी क्रमसे उस वनको देखते देखते अतिउत्तम लतागृहमें गये ॥ २३ ॥ वहांपर क्या देखा कि, वेदवेदाङ्गके ज्ञाता ब्राह्मण कितनेही कुशिकवंशी कितनेही भृगुवंशी कितनेही भरद्वाजवंशी और कितनेही गौतमवंशके थे ॥ २४ ॥ और भी कितनेही वंशके

ब्राह्मण पवित्र और उत्तम मनुष्य बैठे कथा सुनरहे थे ॥२५॥ कोई मृगछालापर कोई वस्त्रपर कोई कुशासनपर और कितनेही पुरुष घास इत्यादिपर विराजमान हैं. और उनके बीचमें पुराणवक्ता सूतजी बैठेहुए कल्याणमयी कथा बांच रहे हैं ॥ २६ ॥ उस पुराणकी कथा, जिसमें देवता और ऋषियोंका वर्णन था । इतनेहीमें उन ब्राह्मणोंकी दृष्टि बलरामजीपर पडी तो देखा कि, मदिराके मदसे नेत्र लाल हो रहे हैं ॥ २७ ॥ जब समस्त मुनियोंने उन्हें मदोन्मत्त देखा, तब सूतजीके अतिरिक्त और सबने अत्यन्त शीघ्रताके साथ उठकर बडे आदरसत्कारसे बलरामजीका पूजन किया ॥ २८ ॥ अनन्तर अशेष दानवोंके मारनेवाले महाबल पराक्रमशाली बलरामजीने सूतके द्वारा अपना तिरस्कार अर्थात् निरादर हुआ विचार अत्यन्तक्रोधसहित लाल लाल

कृष्णाजिनोत्तरीयेषु कुशेषु च बृसीषु च ॥ सूतं च तेषां मध्यस्थं कथयानं कथाः शुभाः ॥ २६ ॥ पौराणिकीः सुरर्षीणामाद्यानां चरिताश्रयाः ॥ दृष्ट्वा रामं द्विजाः सर्वे मधुपानारुणेक्षणम् ॥ २७ ॥ मत्तोऽयमिति मन्वानाः समुत्तस्थुस्त्वरान्विताः ॥ पूजयन्तो हलधरमृते तं सूतवंशजम् ॥ २८ ॥ ततः क्रोधसमाविष्टो हली सूतं महाबलः ॥ निजघान विवृत्ताक्षः क्षोभिताशेषदानवः ॥ २९ ॥ अध्यास्यति पदं ब्राह्मं तस्मिन्सूते निपातिते ॥ निष्क्रान्तास्ते द्विजाः सर्वे वनात्कृष्णाजिनाम्बराः ॥ ३० ॥ अवधूतं तथात्मानं मन्यमानो हलायुधः ॥ चिन्तयामास सुमहन्मया पापमिदं कृतम् ॥ ३१ ॥ ब्राह्मं स्थानं गतो ह्येष यत्सूतो विनिपातितः ॥ तथा ह्यमे द्विजाः सर्वे मामवेक्ष्य विनिर्गताः ॥ ३२ ॥ शरीरस्य च मे गन्धो लोहस्येवासुखावहः ॥ आत्मानं चावगच्छामि ब्रह्मघ्नमिव कुत्सितम् ॥ ३३ ॥ धिगमर्षं तथा मद्यमतिमानमभीरुताम् ॥ यैराविष्टेन सुमहन्मया पापमिदं कृतम् ॥ ३४ ॥

नेत्र कर सूतको निहत किया ॥ २९ ॥ पुराणतत्त्वज्ञ सूतके मरने और ब्रह्मलोकमें गमन करनेपर ब्रह्मपद मृगछालाओंपर बैठेहुए सब ब्राह्मणही उस वनसे चलेगये ॥ ३० ॥ तब बलरामजी, जिनके देहपर मद झलक रहाथा पछताने और चिन्ता करने लगे कि, "क्यों मैंने ऐसे महापापका अनुष्ठान किया ?" ॥ ३१ ॥ मैंने जिस सूतका वध किया, वह ब्राह्मस्थानमें चलागया, और अब सब ब्राह्मण मुझको देखकर चले जाते हैं ॥ ३२ ॥ मेरे शरीरसे लोहेके समान असुरता जनानेवाली गंध बाहर निकलतीहै और आत्मा भी ब्रह्महत्याजनित पापमें कलुषित बोध होता है ॥ ३३ ॥ रे अमर्ष !

तुझको धिक्कार है, मद्यको धिक्कार, अत्यन्त मानको धिक्कार, और अत्यन्त साहसको भी धिक्कार है, क्योंकि इन्ही सबमें आसक्त होकर मैंने ऐसे महापापका अनुष्ठान किया है ॥ ३४ ॥ इस ब्रह्महत्याजनित महापापको ध्वंस करनेके लिये बारह वर्षतक व्रत करूंगा और इस पापको सर्वत्र विख्यात करके अतिउत्तम प्रायश्चित्त करूंगा ॥ ३५ ॥ अथवा मैं जो इस तीर्थयात्राका उद्योग कररहाहूं, इस यात्रामेंही प्रतिलोमा सरस्वतीमें जाऊंगा ॥ ३६ ॥ हे मुने ! यह कहकर वह यदुकुलधुरंधर बलरामजी प्रतिलोमा सरस्वतीमें चलेगये अब दूसरी पाण्डवोंके पुत्रोंकी कथा कहते हैं, सुनो ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासि–कन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां बलदेवब्रह्महत्याकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ धर्मात्मा पक्षी बोले–हे जैमिनि !

तत्क्षयार्थं चरिष्यामि व्रतं द्वादशवार्षिकम् ॥ स्वकर्मख्यापनं कुर्वन्प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥ अथ येयं समारब्धा तीर्थयात्रा मयाधुना ॥ एतामेव प्रयास्यामि प्रतिलोमां सरस्वतीम् ॥ ३६ ॥ अतो जगाम रामोऽसौ प्रतिलोमां सरस्वताम् ॥ ततः परं शृणुष्वेमं पाण्डवेयकथाश्रयम् ॥ ३७ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणे बलदेवब्रह्महत्याकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ धर्मपक्षिण ऊचुः ॥ हरिश्चन्द्रोति राजर्षिरासीत्त्रेतायुगे पुरा ॥ धर्मात्मा पृथिवीपालः प्रोल्लसत्कीर्तिरुत्तमः ॥ १ ॥ न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं नृणाम् ॥ नाधर्मरुचयः पौरास्तस्मिञ्छासति पार्थिवे ॥ २ ॥ बभूवुन तथोन्मत्ता धनवीर्यतपोमदैः ॥ नाजायन्त स्त्रियश्चैव काश्चिदप्राप्तयौवनाः ॥ ३ ॥ स कदाचिन्महाबाहुररण्येऽनुसरन्मृगम् ॥ शुश्राव शब्दमसकृत्त्रायस्वेति च योषिताम् ॥ ४ ॥ स विहाय मृग राजा माभैषीरित्यभाषत ॥ मयि शासति दुर्मधाः कोऽयमन्यायवृत्तिमान् ॥ ५ ॥

पहिले त्रेतायुगमें हरिश्चन्द्र नामक एक धार्मिक राजा थे, वह अत्यन्त कीर्तिमान् पृथ्वीके पालक और सुन्दर पुरुष थे ॥ १ ॥ उन नृपवर हरिश्चन्द्रके पृथ्वीशासनकालमें प्रजाको दुर्भिक्ष वा व्याधि या अकाल मृत्युका फल वा अधर्म कुछ नहीं था ॥ २ ॥ उस समय उनकी प्रजा धन, बल वा धर्मके मदसे उन्मत्त नहीं होती थी और स्त्रियें भी विना यौवन प्राप्त हुए अकालमें सन्तान उत्पन्न नहीं करती थीं ॥ ३ ॥ एक समय वह महाबाहु वनमें शिकार ढूंढतेथे उसी समयमें " रक्षा करो, रक्षा करो " इस प्रकार कितनीही स्त्रियोंके कंठका शब्द वारंवार उनके कानमें सुनाई दिया ॥ ४ ॥ तब राजा हरिश्चन्द्रने मृगयाको

छोडकर "डरो मत, डरो मत" शब्द उच्चारण किया और कहा, मेरे पृथ्वीशासन करनेके समय कौन दुर्बुद्धि अन्यायवृत्तिका आचरण करता है ? ॥ ५ ॥ यह कहकर उस रुदन करते हुए व्यक्तिका अनुसरण किया, उसी समयमें संपूर्ण कार्योंका विनाश करनेवाला भयंकर विघ्नराज चिन्ता करने लगा ॥ ६ ॥ इस वनमें महातेजस्वी मुनिवर विश्वामित्रजी व्रतावलम्बनपूर्वक अतुल तपस्या करके पूर्व जिनको नहीं साध सके, उन्हीं भवादि सब विद्याओंका साधन करते हैं ॥ ७ ॥ क्षमा मौन और चित्तसंयम करके मुनिवर जिन विद्याओंके साधनेकी चेष्टा करते हैं, वह स्त्रीमूर्त्ति सब विद्याभयसे अत्यन्त भीत हो "रक्षा करो, रक्षा करो" कहकर रुदन करती हैं, अब मैं क्या उपाय करूं ? ॥ ८ ॥ क्योंकि यह विश्वामित्र मुनि अमित तेजस्वी हैं और मैं इनके निकट अत्यन्त दुर्बल हूं, तथा

तत्क्रन्दितानुसारी च सर्वारम्भविघातकृत् ॥ एतस्मिन्नन्तरे रौद्रो विघ्नराट्समचिन्तयत् ॥ ६ ॥ विश्वामित्रोऽयमतुलं तप आस्थाय वीर्यवान् ॥ प्रागसिद्धा भवादीनां विद्याः साधयाति व्रती ॥ ७ ॥ साध्यमानाः क्षमामौनाचित्तसंयमिनाऽमुना ॥ ता वै भयार्त्ताः क्रदन्ति कथ कार्यमिदं मया ॥ ८ ॥ तेजस्वी कौशिकश्रेष्ठो वयमस्य सुदुर्बलाः ॥ क्रोशन्त्येतास्तथा भीता दुष्पारं प्रतिभाति मे ॥ ९ ॥ अथवायं नृपः प्राप्तो माभैरिति वदन्मुहुः ॥ इममेव प्रविश्याशु साधयिष्ये यथोप्सितम् ॥ १० ॥ इति संचिन्त्य रौद्रेण विघ्नराजेन वै ततः ॥ तेनाविष्टो नृपः कोपादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥ कोयं बध्नाति वस्त्रान्ते पावकं पापकृन्नरः ॥ बलोष्णतेजसा दीप्ते मयि पत्न्यावुपस्थिते ॥ १२ ॥ सोऽद्य मत्कार्मुकाक्षेपविदीपितदिगन्तरैः ॥ शरैर्विभिन्नसर्वांगो दीर्घनिद्रां प्रवेक्ष्यति ॥ १३ ॥

यह सब विद्याभी भयसे अत्यन्त रोती हैं सुतरां बडीही कठिन वार्त्ता उपस्थित है ॥ ९ ॥ अथवा अब मुझको किसी बातकी चिन्ता करनी नहीं पडेगी, क्योंकि यह राजा हरिश्चन्द्र वारंवार "मत डरो, मत डरो" शब्द करताहुआ यहां आगया है अतएव इस राजाके शरीरमें प्रवेश करकेही अपनी अभिलाषा साधन करताहूं ॥ १० ॥ उस भयंकर विघ्नराजने मनमें इस प्रकार चिन्ता करके राजाके शरीरमें प्रवेश किया, तब राजाने और भी अधिक क्रोधित होकर कहा ॥ ११ ॥ कौन पापी मनुष्य वस्त्रके अंचलमें अग्निको बांधता है ? जब कि, बलरूप उष्ण तेजसे देदीप्यमान यह मैं पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र यहां आपहुँचा हूं ॥ १२ ॥ इस समय कौन मूढ धनुषसे छूटे दिशाओंको प्रकाश करनेवाले मेरे बाणोंसे समस्त अंगोंमें विद्ध होकर योगनिद्राको प्राप्त होगा ॥ १३ ॥

अनन्तर मुनिवर विश्वामित्र राजा हरिश्चंद्रके अभिमानयुक्त यह वचन सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए, ऋषिके क्रोधित होतेही वह सब विद्या नष्ट होगई ॥१४॥ वह राजाहरिश्चन्द्र तपोनिधि विश्वामित्रको सहसा देखकर अत्यन्त भीत हो पीपलके पत्तेकी समान कांपनेलगे ॥१५॥ जब मुनिवर ! विश्वामित्रने " दुरात्मन् ठहर " यह कहा, तब राजा प्रणामपूर्वक विनयसहित कहने लगे ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! मेरा यही धर्म है, हे प्रभो ! मेरा अपराध ग्रहण न कीजिये, हे मुनिवर ! मैंने अपने धर्मको नहीं छोडा है, इस कारण मेरे प्रति क्रोधित न हूजिये ॥ १७ ॥ क्यों कि धर्मज्ञ राजाओंका यही कार्य है वह धर्मशास्त्रा-

विश्वामित्रस्ततः क्रुद्धः श्रुत्वा तन्नृपतेर्वचः ॥ क्रुद्धे चर्षिवरे तस्मिन्नेशुर्विद्याः क्षणेन ताः ॥ १४ ॥ स चापि राजा तं दृष्ट्वा विश्वामित्रं तपोनिधिम् ॥ भीतः प्रावेपतात्यर्थं सहसाऽश्वत्थपर्णवत् ॥ १५ ॥ स दुरात्मन्निति यदा मुनिस्तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ततः स राजा विनयात्प्रणिपत्याभ्यभाषत ॥ १६ ॥ भगवन्नेष धर्मो मे नापराधो मम प्रभो ॥ न क्रोद्धुमर्हसि मुने निजधर्मरतस्य मे ॥१७॥ दातव्यं रक्षितव्यं च धर्मज्ञेन महीक्षिता ॥ चापं चोद्यम्य योद्धव्यं धर्मशास्त्रानुसारतः ॥ १८ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ दातव्यं कस्य के रक्ष्याः कैर्योद्धव्यं च ते नृप ॥ क्षिप्रमेतत्समाचक्ष्व यद्यधर्मभयं तव ॥ १९ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ दातव्यं विप्रमुख्येभ्यो ये चान्ये कृशवृत्तयः ॥ रक्ष्या भीताः सदा युद्धं कर्त्तव्यं परिपन्थिभिः ॥ २० ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ यदि राजा भवान्सम्यग्राजधर्ममवेक्षते ॥ निर्वेष्टुकामो विप्रोऽहं दीयतामिष्टदक्षिणा ॥ २१ ॥

नुसार कभी दान करैं रक्षा करैं और कभी धनुष धारण करके युद्ध करैं ॥ १८ ॥ विश्वामित्रने कहा-हे राजन् ! यदि तुम्हें अधर्मका भय है, तो शीघ्र कहो किसको दान करना चाहिये किसकी रक्षा करनी चाहिये ? और किसके संग युद्ध करना चाहिये ? ॥ १९ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे तपोनिधान ! जो सदा व्रतानुष्ठानमें तत्पर और ब्राह्मणश्रेष्ठ है, उसीको दान करना चाहिये, डरेहुए पुरुषकी रक्षा करनी चाहिये और शत्रुओंके संग युद्ध करना उचित है ॥ २० ॥ विश्वामित्र बोले हे राजन् ! तुम यदि संपूर्ण राजधर्म जानते हो तो मैं मुमुक्षु ब्राह्मण हूं, मुझको अभिलाषित दक्षिणा दो ॥ २१ ॥

पक्षी बोले–हे जैमिने ! राजा हरिश्चंद्रने यह वचन सुन हृदयसे आह्लादित और प्रफुल्लित होकर अपना नया जन्म विचारा और मुनिसे कहा ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! आप अपनी अभिलाषा कहिये, मैं उसे देनेको प्रस्तुत हूं और मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि, जो कठिन बातभी होगी, तोभी मैं पूर्ण करूंगा ॥२३॥ हे ब्रह्मन् ! आपको सुवर्ण, रत्न, पुत्र, स्त्री, शरीर, प्राण, राज्य, गांव, धन जिसकी इच्छा हो सो लीजिये ॥ २४ ॥ विश्वामित्र बोले–हे राजन् ! आप जो देंगे, समझ लीजिये कि, मैंनेभी उसको ग्रहण करही लिया है किन्तु अब प्रथम राजसूय यज्ञकी दक्षिणा दो ॥ २५ ॥ राजाने कहा–हे ब्रह्मन् !

पक्षिण ऊचुः ॥ एतद्राजा वचः श्रुत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ पुनर्जातमिवात्मानं मेने प्राह च कौशिकम् ॥ २२ ॥ उच्यतां भगवन्यत्ते दातव्यमविशङ्कितम् ॥ दत्तमित्येव तद्विद्धि यद्यपि स्यात्सुदुर्लभम् ॥ २३ ॥ हिरण्यं वा सुवर्णं वा पुत्रः पुत्री कलेवरम् ॥ प्राणा राज्यं पुरं लक्ष्मीर्यदभिप्रेतमात्मनः ॥ २४ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ राजन्प्रतिगृहीतोऽयं यस्ते दत्तः प्रतिग्रहः ॥ प्रयच्छ प्रथमं तावद्दक्षिणां राजसूयिकीम् ॥ २५ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मंस्तामपि दास्यामि दक्षिणां भवतो ह्यहम् ॥ व्रियतां द्विजशार्दूल यस्तवेष्टः प्रतिग्रहः ॥ २६ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ ससागरां धरामेतां सभूभृद्ग्रामपत्तनाम् ॥ राज्यं च सकलं वीर रथाश्वगजसंकुलम् ॥ २७ ॥ कोष्ठागारं च कोशं च यच्चान्यद्विद्यते तव ॥ विना भार्यां च पुत्रं च शरीरं च तवानघ ॥ २८ ॥ धर्मं च सर्वधर्मज्ञ योगान्तमनुगच्छति ॥ बहुना वा किमुक्तेन सर्वमेतत्प्रदीयताम् ॥ २९ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ प्रहृष्टेनैव मनसा सोऽविकारमुखो नृपः ॥ तस्यर्षेर्वचनं श्रुत्वा तथेत्याह कृताञ्जलिः ॥ ३० ॥

यहभी आपको दूंगा। हे द्विजशार्दूल ! राजसूय यज्ञकी दक्षिणास्वरूप जो आपकी रुचि हो आज्ञा कीजिये ॥ २६ ॥ विश्वामित्र बोले–हे वीर ! इस समस्त नगर, ग्राम और पर्वत इत्यादिके सहित ससागरा पृथ्वीमें रथ अश्व गजादिसंकुल सब राजत्व ॥ २७ ॥ कोष्ठागार (अन्तर्गृह) राजकोश इत्यादि तुम्हारी जो सब वस्तु हैं, हे पापरहित ! विना भार्या पुत्र और अपनी देहके ॥ २८ ॥ और धर्मशास्त्रके अनुसार जो तुम्हारा अनुगमन करते हैं, अधिक और क्या कहूं हे धर्मज्ञ ! तुम्हारा जो कुछ है, वह सब मुझको दो ॥ २९ ॥ पक्षी बोले–मुनिवर कौशिकके यह वचन सुनकर उन

राजा हरिश्चन्द्रने प्रसन्नचित्त और विकाररहित मुखसे हाथ जोडकर कहा " जो आज्ञा " यही होगा ॥ ३० ॥ विश्वामित्र बोले–पृथ्वी, बल और धन इत्यादि सर्वस्वही जब मुझको दिया है तो मेरे तपस्वी होकर राजत्व करनेसे हे राजर्षे ! इस राज्यमें किसका प्रभुत्व रहेगा ॥ ३१ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे ब्रह्मन् ! मैंने जिस समय आपको यह ससागरा पृथ्वी दी है, उस समयसे आपही इसके स्वामी हुए हैं अब फिर प्रभुत्वकी बात क्यों पूछते हो ॥ ३२ ॥ विश्वामित्र बोले--हे राजन् ! तुमने जब यह ससागरा सब पृथ्वी मुझको देदी है तो अब मेरा स्वामित्व होगया, तुम इस राज्यसे निकल जाओ ॥ ३३॥ श्रोणिसूत्र अर्थात् कटिभूषण इत्यादि जो गहने तुम्हारी पत्नीके और तुम्हारे पुत्रके शरीरमें वर्त्तमान हैं वह सब

विश्वामित्र उवाच ॥ सर्वस्वं यदि मे दत्तं राज्यमुर्वी बलं धनम् ॥ प्रभुत्वं कस्य राजर्षे राज्यस्थे तापसे मयि ॥ ३१ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ यस्मिन्नपि मया काले ब्रह्मन्दत्ता वसुन्धरा ॥ तस्मिन्नपि भवान्स्वामी किमुताद्य महीपतिः ॥ ३२ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ यदि राजंस्त्वया दत्ता मम सर्वा वसुन्धरा ॥ यत्र मे विषये स्वाम्यं तस्मान्निष्क्रान्तुमर्हसि ॥ ३३ ॥ श्रोणीसूत्रादिसकलं मुक्त्वा भूषणसंग्रहम् ॥ तरुवल्कलमाबध्य सह पत्न्या सुतेन च ॥ ३४ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ तथेति चोक्त्वा कृत्वा च राजा गन्तुं प्रचक्रमे ॥ स्वपत्न्या शैब्यया सार्धं बालकेनात्मजेन च ॥ ३५ ॥ व्रजतः सततो रुद्ध्वा पन्थानं प्राह तं नृपम् ॥ क्व यास्यसीत्यदत्त्वा मे दक्षिणां राजसूयिकीम् ॥ ३६॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ भगवन्राज्यमेतत्ते दत्तं निहतकण्टकम् ॥ अवशिष्टमिदं ब्रह्मन्नद्य देहत्रयं मम ॥ ३७ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ तथापि खलु दातव्या त्वया मे यज्ञदक्षिणा ॥ विशेषतो ब्राह्मणानां हन्त्यदत्तं प्रतिश्रुतम् ॥ ३८ ॥

भी त्याग वृक्षोंकी छाल पहर पत्नी और पुत्रके सहित मेरे राज्यसे बाहर हो ॥ ३४ ॥ पक्षी बोले--हे जैमिने ! राजा हरिश्चन्द्रने मुनिवर विश्वामित्रके उन वचनोंको स्वीकार कर उन्हींके अनुसार सब कार्य किया और अपनी स्त्री शैब्या तथा शिशु (बालक) के संग जानेमें प्रवृत्त हुए ॥ ३५ ॥ उसी समयमें ऋषिश्रेष्ठ विश्वामित्रने उनके जानेका मार्ग रोककर उनसे कहा--हे नृप ! राजसूय यज्ञकी दक्षिणा विना दिये कहां जाते हो ? ॥ ३६॥ हरिश्चन्द्र बोले हे भगवन् ! यह समस्तही निष्कण्टक राज्य आपको देदिया है, अब इन तीन जनोंके देहको छोडकर मेरे पास और क्या है ॥ ३७ ॥ विश्वामित्र

बोले--हे नृपवर ! यद्यपि तीन देहके अतिरिक्त तुम्हारे पास और सम्पत्ति नहीं है किन्तु तो भी मुझको यज्ञकी दक्षिणा देनी ही पडेगी, विशेषकर ब्राह्मणके निकट प्रतिज्ञा करी हुई वस्तु न देनेसे समस्तही नष्ट होता है ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! राजसूययज्ञमें जिससे ब्राह्मण संतुष्ट हो वही राजसूय यज्ञकी दक्षिणा है ॥ ३९ ॥ और तुमहीने तो यह प्रतिज्ञा करी है कि, " अंगिकार करके दान, आततायी (शत्रु) के संग युद्ध और आर्त्त पुरुषकी सम्यक् प्रकारसे रक्षा करनी चाहिये " ॥ ४० ॥ हरिश्चन्द्रने कहा--हे भगवन् ! हे विप्रर्षे ! साधुता अवलम्बन करके प्रसन्न हूजिये इस समय और कुछ नहीं है. किन्तु कालक्रमसे अर्थात् कुछ दिन बीतनेपर आपको दूंगा ॥ ४१ ॥ विश्वामित्र बोले हे मनुजाधिप ! मैं कितने समयतक प्रतीक्षा करूं ? शीघ्र कह। नहीं तो

यावत्तोषो राजसूये ब्राह्मणानां भवेन्नृप ॥ तावदेव तु दातव्या दक्षिणा राजसूयिकी ॥ ३९ ॥ प्रतिश्रुत्य च दातव्यं योद्धव्यं चाततायिभिः ॥ रक्षितव्यास्तथा चार्त्तास्त्वयैव प्राक्प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ भगवन्साम्प्रतं नास्ति दास्ये कालक्रमेण ते ॥ प्रसादं कुरु विप्रर्षे सद्भावमनुचिन्त्य च ॥ ४१ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ किंप्रमाणो मया कालः प्रतीक्ष्यस्ते जनाधिप ॥ शीघ्रमाचक्ष्व शापाग्निरन्यथा त्वां प्रधक्ष्यति ॥ ४२ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ मासेन तव विप्रर्षे प्रदास्ये दक्षिणाधनम् ॥ साम्प्रतं नास्ति मे वित्तमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥ ४३ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ गच्छ गच्छ नृपश्रेष्ठ स्वधर्ममनुपालय ॥ शिवश्च तेऽध्वा भवतु मा सन्तु परिपान्थिनः ॥ ४४ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ अनुज्ञातः स गच्छेति जगाम वसुधाधिपः ॥ पद्भ्यामनुचिता गन्तुमन्वगच्छत तं प्रिया ॥ ४५ ॥ तं सभार्यं नृपश्रेष्ठं निर्यान्तं ससुतं पुरात् ॥ दृष्ट्वा प्रचुक्रुशुः पौरा राज्ञश्चैवानुयायिनः ॥ ४६ ॥

मेरी शापाग्निमें दग्ध होगा ॥ ४२ ॥ हरिश्चन्द्र बोले--हे विप्रर्षे ! अब और कुछ नहीं है इस कारण आज्ञा दीजिये, एक महीनेके बीचमेंही आपकी दक्षिणाका धन दे दूंगा ॥ ४३ ॥ विश्वामित्र बोले--हे नृपश्रेष्ठ ! जाओ ! जाओ ! स्वधर्म पालन करो ! तुम्हारा मंगल हो और तुम्हारे विघ्न दूर हों ॥ ४४ ॥ पक्षी बोले--हे मुनिवर जैमिने ! तदनन्तर वह राजर्षिप्रवर पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र मुनिवर विश्वामित्रके द्वारा जानेमें अनुमोदित होकर चलेगये और उन पैरों २ जानेवालेके पीछे रानी शैब्या उनके पीछे पीछे गई ॥ ४५ ॥ इधर नगरवासी प्रजा पुत्र कलत्रके सहित राजाको नगरसे बाहर होता देखकर उच्चस्वरसे रोदन करते करते

उनके पीछे चली ॥४६॥ "हे महाराज! आप धर्ममें तत्पर और सदा प्रजापालनमें अनुग्रह करनेवाले हैं तो सदा अनेक उपद्रवोंसे पीडित इस प्रजाको किस कारण छोडते हो ॥ ४७ ॥ हे राजर्षे! यदि धर्मकी ओर देखते हो तो हमकोभी संग लेचलिये । हे राजेन्द्र! कुछ काल ठहरिये हम एक वार आपके मुखकमलको॥४८॥भ्रमरकी समान पान करैं, फिर आपका दर्शन कब होगा हाय! जिनके गमनकालमें पृथ्वीके सब राजा आगे पीछे चलतेथे॥४९॥उन्हीं राजा हरिश्चन्द्रकी भार्या एक बालक सन्तानको लेकर उनकाही अनुगमन करती है, जिनके गमनकालमें हाथीके मस्तकपर चढकर समस्त भृत्य आगे आगे दौडतेथे ॥५०॥ आज वही यह राजेन्द्र हरिश्चन्द्र स्वयं पैदल गमन करते हैं ॥५१॥ हा राजन्! शोभायमान दोनों भौंएँ सुन्दर नासिका और शोभायमान

हा नाथ किं जहास्यस्मान्नित्यार्त्तिपरिपीडितान् ॥ त्वं धर्मतत्परो राजन्पौरानुग्रहकृत्तथा ॥४७॥ नयास्मानपि राजर्षे यदि धर्ममवेक्षसे ॥ मुहूर्त्तं तिष्ठ राजेन्द्र भवतो मुखपङ्कजम् ॥४८॥ पिवामो नेत्रभ्रमरैः कदा द्रक्ष्यामहे पुनः ॥ यस्य प्रयातस्य पुरो यान्ति पृष्ठे च पार्थिवाः ॥ ४९ ॥ तस्यानुयाति भार्येयं गृहीत्वा बालकं सुतम् ॥ यस्य भृत्याः प्रयातस्य यान्त्यग्रे कुञ्जरस्थिताः ॥५०॥ स एष पद्भ्यां राजेन्द्रो हरिश्चन्द्रोऽद्य गच्छति ॥ हा राजन्सुकुमारं ते सुभ्रु सुत्वचमुन्नसम् ॥५१॥ पथि पांसुपरिक्लिष्टं मुखं कीदृग्भविष्यति ॥ तिष्ठ तिष्ठ नृपश्रेष्ठ स्वधर्ममनुपालय ॥ ५२ ॥ आनृशंस्यं परो धर्मः क्षत्रियाणां विशेषतः ॥ किं दारैः किं सुतैर्नाथ धनैर्धान्यैरथापि वा ॥५३॥ सर्वमेतत्परित्यज्य च्छायाभूता वयं तव ॥ हा नाथ हा महाराज हा स्वामिन्किं जहासि नः ॥५४॥ यत्र त्वं तत्र हि वयं तत्सुखं यत्र वै भवान् ॥ नगरं तद्भवान्यत्र स स्वर्गो यत्र नो नृपः॥५५॥ इति पौरवचः श्रुत्वा राजा शोकपरिप्लुतः॥ अतिष्ठत्स तदा मार्गे तेषामेवानुकम्पया ॥५६॥

त्वचा इत्यादिसे शोभित आपका यह मुख मार्गमें धूरिसे धूसरित होगा, तब क्याही शोचनीय अवस्था धारण करेगा अत एव हे महाराज! मत जाओ, मत जाओ! अपना धर्म पालन करो ॥५२॥ विशेष कर अनृशंसता (दया) ही क्षत्रियोंका प्रधान धर्म है, क्या स्त्री क्या पुत्र क्या धन अथवा क्या धान्य हमको किसीकी आवश्यकता नहीं है ॥५३॥हम सभी त्यागकर आपके छायास्वरूप होंगे । हा नाथ! हा महाराज! हा प्रभो! हमको मत छोडिये ॥५४॥ आप जहां जाँयगे हमभी वहीं जाँयगे आपको जिस स्थानमें सुख है, हमाराभी वहीं वैभव है आप जिस स्थानमें रहेंगे वही हमारा नगर है हमारे राजा जहां रहेंगे, वही हमारा स्वर्ग है" ॥ ५५ ॥ महाराज हरिश्चन्द्र प्रजाके इस प्रकार वचन सुनकर अत्यन्त शोकमें डूबगये और उनकी दया देखकर कुछ काल मार्गमें

खडेरहे ॥ ५६ ॥ उसी समय मुनिवर विश्वामित्र भी राजाको पुरवासियोंके वचनोंसे आकुल होता देखकर एक साथ आये और रोषामर्षसे दोनों नेत्र विघूर्णित करके कहने लगे ॥ ५७ ॥ रे अदृढप्रतिज्ञ ! मिथ्यावादिन् ! दुष्ट ! यह समस्त राजत्व मुझको देकर अब फिर ग्रहण करनेकी इच्छा करता है, तुझको धिक्कार है ॥ ५८ ॥ राजा हरिश्चन्द्र इस प्रकार गाधितनयके परुष वचन सुनकर " जाता हूं जाताहूं " कहते कांपते हुए देहसे चलनेलगे और वेगसहित शीघ्र दयिता शैब्या देवीका हाथ खैंचा ॥ ५९ ॥ कोमल अंगवाली शैब्यादेवी अत्यन्तश्रमातुर होरही थी, गमन कर सकनेके कारण राजा हरिश्चंद्र शीघ्र शीघ्र चलनेके लिये हाथ पकडकर उसको खैंचतेथे किन्तु तो भी विश्वामित्र मुनि दण्डेसे रानीकी पीठमें आघात करने लगे ॥६०॥ मही-

विश्वामित्रोऽपि तं दृष्ट्वा पौरवाक्याकुलीकृतम् ॥ रोषामर्षविवृत्ताक्षः समागम्य वचोऽब्रवीत् ॥ ५७ ॥ धिक्त्वां दुष्टसमाचारमनृतं जिह्मभाषिणम् ॥ मम राज्यं च दत्त्वा यः पुनः प्राकृष्टुमिच्छसि ॥ ५८ ॥ इत्युक्तः परुषं तेन गच्छामीति सवेपथुः ॥ ब्रुवन्नेवं ययौ शीघ्रमाकर्षन्दयितां करे ॥ ५९ ॥ कर्षतस्तां ततो भार्यां सुकुमारीं श्रमातुराम् ॥ सहसा दण्डकाष्ठेन ताडयामास कौशिकः ॥६०॥ तां तथा ताडितां दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रो महीपतिः ॥ गच्छामीत्याह दुःखार्तो नान्यत्किञ्चिदुदाहरत् ॥ ६१ ॥ अथ विश्वे तदा देवाः पंच प्राहुः कृपालवः ॥ विश्वामित्रः सुपापोऽयं लोकान्कान्समवाप्स्यति ॥ ६२ ॥ येनायं यज्वनां श्रेष्ठः स्वराज्यादवरोपितः ॥ कस्य वा श्रद्धया पूतं सुतं सोमं महाध्वरे ॥ पीत्वा वयं प्रयास्यामो मुदं मन्त्रपुरःसरम् ॥ ६३ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा कौशिकोऽतिरुषान्वितः ॥ शशाप तान्मनुष्यत्वं सर्वे यूयमवाप्स्यथ ॥ ६४ ॥

पति हरिश्चंद्रने देवीको इस प्रकार ताडित होता देखकर अत्यन्त दुःखी हो अन्य कोई उत्तर नहीं दिया, केवलमात्र यही कहा कि भगवन् ! जाताहूं ॥६१॥ यह कार्य देखकर पांचजन लोकपाल विश्वेदेवा देवताओंने अत्यन्त दयाके वश होकर कहा " इस पापात्मा विश्वामित्रने यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ नरपति हरिश्चन्द्रको राज्यसे भ्रष्ट किया; इसको कौनसा लोक प्राप्त होगा? अथवा हम किसके यज्ञमें श्रद्धापूत मंत्रसंस्कृत पवित्र सोमपान करके आनन्दित होंगे" ॥६२॥६३॥ पक्षी बोले—पांचों विश्वेदेवाओंके यह वचन सुनकर मुनिवर कौशिकने अत्यन्त क्रोधित हो "रे पापात्माओ ! तुम सब मनुष्य होगे " यह

शाप दिया ॥ ६४ ॥ तब उन्होंने इनकी प्रार्थना करी। अनन्तर विश्वामित्रने विश्वेदेवाओंके द्वारा प्रसन्न होकर फिर कहा—"हे देवताओ ! यद्यपि तुम मनुष्य देह धारण करोगे, किन्तु तोभी तुम स्त्रीग्रहण और सन्तान उत्पन्न नहीं करोगे। तुम मत्सरी नहीं होगे और कामक्रोधादिसे मुक्त रहोगे" ॥६५॥६६॥ तदनन्तर वह विश्वेदेवा द्रौपदीके गर्भद्वारा उत्पन्न होकर पांच पाण्डुनन्दनरूपमें अपने अपने अंशसहित कुरुवंशमें उत्पन्न हुए ॥६७॥ हे महामुने ! इन महर्षि विश्वामित्रके शापके कारणही पांच महारथ पाण्डुके पुत्रोंका विवाह नहीं हुआ ॥ ६८ ॥ हे जैमिने ! पाण्डवोंकी कथाका आश्रय करके इन चारों प्रश्नोंका उत्तर

प्रसादितश्च तैः प्राह पुनरेव महामुनिः ॥ मानुषत्वेऽपि भवतां भवित्री नैव सन्ततिः ॥ ६५ ॥ न दारसंग्रहश्चैव भविता न च मत्सरः ॥ कामक्रोधविनिर्मुक्ता भविष्यथ सुराः पुनः ॥ ६६ ॥ ततोऽवतेरुरंशैः स्वैर्देवास्ते कुरुवेश्मनि ॥ द्रौपदीगर्भसम्भूताः पंच वै पाण्डुनन्दनाः ॥ ६७ ॥ एतस्मात्कारणात्पंच पाण्डवेया महारथाः ॥ न दारसंग्रहं प्राप्ताः शापात्तस्य महामुनेः ॥ ६८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं पाण्डवेयकथाश्रयम् ॥ प्रश्न चतुष्टयं गीतं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे द्रौपदेयोत्पत्तिकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ भवद्भिरिदमाख्यातं यथाप्रश्नमनुक्रमात् ॥ महत्कौतूहलं मेऽस्ति हरिश्चंद्रकथां प्रति ॥ १ ॥ अहो महात्मना तेन प्राप्तं कृच्छ्रमनुत्तमम् ॥ कच्चित्सुखमनुप्राप्तं तादृगेव द्विजोत्तमाः ॥ २ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ विश्वामित्रवचः श्रुत्वा स राजा प्रययौ शनैः ॥ शैव्ययानुगतो दुःखी भार्यया बालपुत्रया ॥ ३ ॥

यथावत् तुम्हारे निकट वर्णन किया अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? सो कहो ॥ ६९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासी—कन्हैयालाल मिश्रकृतभाषाटीकायां द्रौपदेयोत्पत्तिकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ जैमिनिने कहा—हे द्विजोत्तम ! मैंने जिस प्रकार प्रश्न क्रमानुसार कियेथे, आपने क्रमानुसार उन सब प्रश्नोंका यथावत् उत्तर दिया है अब हरिश्चंद्रकी कथामें मुझको अत्यन्त कौतूहल हुआ है ॥ १ ॥ अहो ! उन महात्माने क्याही कष्ट पायाथा हे द्विजोत्तमो ! क्या उन्होंने वैसा सुखभी पायाथा ? ॥ २ ॥ पक्षी बोले—राजा हरिश्चन्द्रने विश्वामित्रके वचन सुननेसे अत्यन्त दुःखी होकर

धीरे धीरे गमन किया और बालक पुत्रको लेकर रानी शैव्या उनके संग चली ॥ ३ ॥ वह पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र मनोहर वाराणसी पुरीमें गये क्योंकि यह नगरी मनुष्यभोग्या अर्थात् मनुष्योंके भोगकी नहीं है कारण कि, वह शूलपाणि महादेवजीके द्वारा विरचित हुई है ॥ ४ ॥ वह दुःखित चित्तसे इस प्रकार चिन्ता करते अनुकूल पत्नीके सहित पैरोंही गये और वाराणसीमें प्रवेश करनेके समय देखा कि, मुनिवर विश्वामित्र सन्मुख खडेहैं ॥ ५ ॥ नरपति हरिश्चंद्रने महामुनिको आयाहुआ देख हाथ जोडकर विनीतभावसे कहा ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! मेरा यह प्राण, यह पुत्र और यह पत्नीमात्र विद्यमान हैं, इनमें जिसकी आपको रुचि हो, आज्ञा कीजिये, वही आपके अर्घ्यस्वरूपमें कल्पित हो ॥ ७ ॥ और इस समय मैं क्या करूं ? यहभी अनुमति दीजिये ॥ ८ ॥

स गत्वा वसुधापालो दिव्यां वाराणसीं पुरीम् ॥ नैषा मनुष्यभोग्येति शूलपाणेः परिग्रहः ॥ ४ ॥ जगाम पद्भ्यां दुःखार्त्तः सह पत्न्यानुकूलया ॥ पुरीं प्रविश्य ददृशे विश्वामित्रमुपस्थितम् ॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं विनयावनतोऽभवत् ॥ प्राह चैवाञ्जलिं कृत्वा हरिश्चंद्रो महामुनिम् ॥ ६ ॥ इमे प्राणाः सुतश्चायमियं पत्नी मुने मम ॥ येन ते कृत्यमस्त्याशु तद्गृहाणार्घ्यमुत्तमम् ॥ ७ ॥ यद्वान्यत्कार्यमस्माभिस्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ८ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ पूर्णः स मासो राजर्षे दीयतां मम दक्षिणा ॥ राजसूयनिमित्तं हि स्मर्यते स्ववचो यदि ॥ ९ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ ब्रह्मन्नद्यैव संपूर्णो मासोऽम्लानतपोधन ॥ तिष्ठत्येतद्दिनार्धं यत्तत्प्रतीक्षस्व मा चिरम् ॥ १० ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ एवमस्तु महाराज आगमिष्याम्यहं पुनः ॥ शापं तव प्रदास्यामि न चेदद्य प्रदास्यसि ॥ ११ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो राजा चाचिंतयत्तदा ॥ कथमस्मै प्रदास्यामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता ॥ १२ ॥

विश्वामित्र बोले-हे राजर्षे ! क्या राजसूय नैमित्तिक अपना वचन स्मरण है ? एक महीना पूरा होगया है, अब मेरी दक्षिणा दो ॥ ९ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे ब्रह्मन् ! हे तपोधन ! आजही महीना पूरा होगा, अभी आधा दिन जो शेष है, आप उसीकी प्रतीक्षा कीजिये, फिर अधिक प्रतीक्षा करनी नहीं पडेगी ॥ १० ॥ विश्वामित्र बोले-हे महाराज ! यही हो, मैं फिर आताहूं यदि आज मुझको दक्षिणा नहीं दोगे तो निःसन्देह शाप दूंगा ॥ ११ ॥ पक्षियोंने कहा-विप्रोत्तम विश्वामित्रजी यह कहकर चलेगये तब राजा चिंता करने लगे कि, " इनको पूर्व कहीहुई दक्षिणा किस प्रकारसे दूंगा ॥ १२ ॥

मरे समृद्धिशाली बन्धुवर्ग कहां हैं ? और कहां मेरी अर्थसम्पत्ति अर्थात् धन है ! प्रतिग्रहसे युक्त हुआ मैं किस प्रकार अधोगामी नहीं हूंगा ! ॥ १३ ॥ कुछभी तो पास नहीं है, किस दिशामें जाऊं ! क्या प्राणत्याग करूं ? यदि अंगीकार करीहुई वस्तु विना दिये प्राणत्याग करूं ॥ १४ ॥ तो ब्रह्मअंश हरण करनेके पापमें लिप्त होकर अत्यन्त नीचाधम कृमिरूपमें जन्म ग्रहण करूंगा, या आत्माको बेंचकर संन्यासी हूंगा" ॥ १५ ॥ पक्षी बोले-राजाको इस प्रकार दुःखित व्याकुल और नीचेको मुख किये चिन्ता करता हुआ देख पत्नी शैब्याने नेत्रोंमें आंसू भरकर गद्गद वचनसे कहा ॥ १६ ॥ 'हे महाराज ! चिन्ताका त्याग कीजिये । अपना अंगीकार कियाहुआ वचन पालन कीजिये । असत्यका प्रतिपालन करनेवाला पुरुष श्मशानके समान सम्यक् प्रकारसे त्यागने

कुतः पुष्टानि मित्राणि कुतोऽर्थः सांप्रतं मम ॥ प्रतिग्रहः प्रदुष्टो मे नाहं यायामधः कथम् ॥ १३ ॥ किन्नु प्राणान्विमुञ्चामि कां दिशं याम्यकिञ्चनः ॥ यदि नाशं गमिष्यामि अप्रदाय प्रतिश्रुतम् ॥१४॥ ब्रह्मस्वहृत्कृमिः पापो भविष्याम्यधमाधमः ॥ अथवा प्रेष्यतां यास्ये वरमेवात्मविक्रयः॥ १५ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ राजानं व्याकुलं दीनं चिन्तयानमधोमुखम् ॥ प्रत्युवाच तदा पत्नी बाष्पगद्गदया गिरा ॥१६॥ त्यज चिन्तां महाराज स्वसत्यमनुपालय ॥ श्मशानवद्वर्जनीयो नरः सत्यबहिष्कृतः ॥ १७ ॥ नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य तु ॥ यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यपरिपालनम् ॥ १८ ॥ अग्निहोत्रमधीतं वा दानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः ॥ भजन्ते तस्य वैफल्यं यस्य वाक्यमकारणम् ॥१९॥ सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम् ॥ तारणायानृतं तद्वत्पातनायाकृतात्मनाम् ॥२०॥ सप्ताश्वमेधानाहृत्य राजसूयं च पार्थिव ॥ कृतिर्नाम च्युतः स्वर्गादसत्यवचनात्सकृत् ॥ २१ ॥

योग्य है ॥ १७ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! पण्डितजन कहते हैं, अपने सत्यका पालन करनेमें जैसा धर्म होताहै वैसा अन्य किसीमें नहीं होता ॥ १८ ॥ जिसका वचन असत्य होता है, उसके अग्निहोत्रादि यज्ञ वेदादिका पढना और दानादि सभी कार्य विफल होते हैं ॥ १९ ॥ धर्मशास्त्रमें पण्डितोंने कहा है कि, सत्य वचन जिस प्रकार तारनेके लिये सदा समर्थ होता है, मिथ्या वचनभी उसी प्रकार नीचे गिरानेका एक मात्र प्रधान कारण है ॥ २० ॥ कृतिराजा सात अश्वमेध करके तथा एक राजसूय यज्ञ करके एक वार असत्य भाषण करनेसे स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ ॥ २१ ॥

हे राजन् ! मेरे सन्तान हुई है" यह कहकर रोनेलगी तब महीपति बाष्पसे आकुलनेत्र हुई रानीसे कहने लगे ॥ २२ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा—"हे भद्रे ! संतापको त्यागदो, यह तुम्हारी शिशुसन्तान वर्त्तमान है, हे गजगामिनि ! जो कहनेकी इच्छा हो वह कहो ॥२३॥ राजपत्नीने कहा—"हे राजन् ! मेरे पुत्र संतान होगई है, संतानके लियेही साधुपुरुषोंको पत्नीकी आवश्यकता होती है, अत एव अब मुझे बेचकर ब्राह्मणको दक्षिणा दो" ॥ २४ ॥ पक्षी बोले—पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र पत्नीका यह वचन सुनकर मोहमें आ मूर्च्छित होगये और फिर वह चेतना लाभ करके अत्यन्त दुःखिताचित्तसे इस प्रकार विलाप करने लगे ॥ २५ ॥ हे भद्रे ! तुम जो कहतीहो, यह बात अत्यन्त कष्टदायक है, यह पापात्मा क्या तुम्हारा मुसकुराकर बोलना भूलगया

राजञ्जातमपत्यं मे इत्युक्त्वा प्ररुरोद ह ॥ बाष्पाम्बुप्लुतनेत्रां तामुवाचेदं महीपतिः ॥ २२ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ विमुंच भद्रे संतापमयं तिष्ठति बालकः ॥ उच्यतां वक्तुकामासि यद्वा त्वं गजगामिनि ॥ २३ ॥ पत्न्युवाच ॥ राजञ्जातमपत्यं मे सतां पुत्रफलाः स्त्रियः ॥ स मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम् ॥ २४ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौ मोहं महीपतिः ॥ प्रतिलभ्य च संज्ञां स विललापातिदुःखितः ॥ २५ ॥ महद्दुःखमिदं भद्रे यत्त्वमेवं ब्रवीषि माम् ॥ किं तव स्मितसंल्लापा मम पापस्य विस्मृताः ॥ २६॥ हा हा कथं त्वया शक्यं वक्तुमेतच्छुचिस्मिते ॥ दुर्वाच्यमेतद्वचनं कर्तुं शक्नोम्यहं कथम् ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा स नरश्रेष्ठो धिग्धिगित्यसकृद्ब्रुवन् ॥ निपपात महीपृष्ठे मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः ॥२८॥ शयानं भुवि तं दृष्ट्वा हरिश्चंद्रं महीपतिम् ॥ उवाचेदं सकरुणं राजपत्नी सुदुःखिता ॥२९॥ पत्न्युवाच ॥ हा महाराज कस्येदमपध्यानमुपस्थितम् ॥ यत्त्वं निपतितो भूमौ रांकवास्तरणोचितः ॥ ३० ॥

है ? ॥ २६ ॥ हे शुचिस्मिते ! नहीं तो तुम्हारे मुखसे ऐसे दुर्वचन क्यों निकलते ? अथवा मैं किस प्रकार ऐसे कार्यके करनेमें समर्थ होता, जो ऐसे वचन कहता ॥ २७ ॥ नरश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र इस प्रकार कहकर निरन्तर "हा धिक् हा धिक्" करतेहुए पृथ्वीमें गिरगये और तत्काल मूर्च्छाको प्राप्त हुए ॥२८॥ महीपति हरिश्चन्द्रको पृथ्वीमें शयन किये देखकर राजपत्नी शैव्या अत्यन्त दुःखित हुई और करुणास्वरसे कहने लगी ॥ २९ ॥ पत्नी बोली—कि, हाय महाराज ! क्याही अचिन्तनीय अवस्था उपस्थित हुई है जो हरिणके रोमकी कोमल शय्यापर शयन करतेथे, वही आज धरातलमें पडे हैं ॥ ३० ॥

जिन्होंने अनन्त कोटि गोधन ब्राह्मणोंको सहर्ष दान किया है वही मेरे स्वामी पृथ्वीनाथ हरिश्चंद्र मिट्टीके ऊपर शयन कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ अहो ! क्या कष्ट है, हा दैव ! इन्होंने तेरा क्या अपराध किया है, जो इन उपेन्द्रतुल्य राजाको इस प्रकार पापियोंकी समान दुर्दशाग्रस्त किया ॥ ३२ ॥ हे जैमिनि ! वह सुश्रोणी राजमहिषी शैब्या इस प्रकार अनेक विलाप करती हुई स्वामीके असह्य दुःखभारसे पीडित होकर अचेतन अवस्थामें पृथ्वीपर गिरगई ॥ ३३ ॥ इधर बालक राजपुत्र माता पिताको इस अवस्थामें पृथ्वीपर पडा हुआ देख भूंखसे अत्यन्त आतुर व दुःखित होकर कहने लगा ॥ ३४ ॥

येन कोटयग्रशो वित्तं विप्राणामपवर्जितम् ॥ स एष पृथिवनाथो भूमौ स्वापिति मे पतिः ॥ ३१ ॥ हा कष्टं किं तवानेन कृतं देव महीक्षिता ॥ यदिंद्रोपेंद्रतुल्योऽयं नीतः पापामिमां दशाम् ॥ ३२॥ इत्युक्त्वा सापि सुश्रोणी मूर्च्छिता निपपात ह ॥ भर्तृदुःखमहाभारेणासह्येन निपीडिता ॥ ३३ ॥ तौ तथा पतितौ भूमावनाथौ पितरौ शिशुः ॥ दृष्ट्वात्यंतक्षुधाविष्टः प्राह वाक्यं सुदुःखितः ॥ ३४ ॥ तात तात ददस्वान्नमम्बाम्ब भोजनं दद ॥ क्षुन्मे बलवती जाता जिह्वाग्रं शुष्यते तथा ॥ ३५ ॥ पाक्षिण ऊचुः ॥ एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो विश्वामित्रो महातपाः ॥ कालकल्प इव क्रुद्धो धनं संमार्गितुं तदा ॥ दृष्ट्वा तु तं हरिश्चंद्रः पतितो भुवि मूर्च्छितः ॥ ३६ ॥ स वारिणा समभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत् ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेंद्र तां ददस्वेष्टदक्षिणाम् ॥ ३७ ॥ ऋणं धारयतो दुःखमहन्यहनि वर्द्धते ॥ आप्यायमानः स तदा हिमशीतेन वारिणा ॥ ३८ ॥

तात ! तात ! मुझको भोजन दो । माता ! माता ! मुझे भोजन दे, मुझको बहुतही भूंख लगी है, मेरी जीभका अग्रभाग सूखा जाताहै ॥ ३५ ॥ पक्षी बोले—हे जैमिने ! इसी अवसरमें धन लेनेको कालकी समान क्रोधित हुए महातपा विश्वामित्रजी हठात् आनकर प्राप्त हुए और राजा हरिश्चन्द्रको मूर्च्छित अवस्थासे पृथ्वीमें पडा हुआ देख ॥ ३६ ॥ जलके छींटे देकर राजासे कहने लगे हे राजेन्द्र ! उठकर दक्षिणा दो ॥ ३७ ॥ क्योंकि ऋण धारण करनेसे दुःख दिन दिन बढताही है । तब राजा हरिश्चन्द्रने हिमकी समान शीतल जलसे सिंचित होकर ॥ ३८ ॥

चैतन्य लाभ किया और सामने विश्वामित्रको देखतेही फिर मूर्च्छित होगये । तब द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रजी अत्यन्त क्रोधित होकर ॥ ३९ ॥ राजाको समझाते हुए कहने लगे हे राजन् ! यदि तुम धर्मकी ओर देखते हो, तो मेरी दक्षिणा देदो ॥ ४० ॥ देखो, सूर्य केवल सत्यकीही सहायतासे ताप देते हैं, पृथ्वी एकमात्र सत्यमेंही प्रतिष्ठित है, सत्यही एकमात्र धर्म कहागया है और स्वर्गभी एकमात्र सत्यमें ही प्रतिष्ठित रहता है, देखो ॥ ४१ ॥ हजार अश्वमेध यज्ञका फल और केवल सत्य यदि तराजूकी दंडीमें रक्खा जाय, तो हजार अश्वमेधके फलकी अपेक्षा सत्यही अधिक होताहै ॥ ४२ ॥ अथवा ऐसे अनार्य पापमति, क्रूर स्वभाव और मिथ्यावादी इस राजासे इस प्रकार सामवाद प्रयोग करनेकी मुझको क्या आवश्यकता है ॥ ४३ ॥ हे

अवाप्य चेतनां राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च ॥ पुनर्मोहं समापेदे स च क्रोधं ययौ मुनिः ॥ ३९ ॥ स समाश्वास्य राजानं वाक्यमाह द्विजोत्तमः ॥ दीयतां दक्षिणा सा मे यदि धर्ममवेक्षसे ॥ ४० ॥ सत्येनार्कः प्रतपाति सत्ये तिष्ठाति मेदिनी ॥ सत्यं चोक्तं परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रातिष्ठितः ॥ ४१ ॥ अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ॥ अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥४२ ॥ अथवा किं ममैतेन साम्ना प्रोक्तेन कारणम् ॥ अनार्ये पापसंकल्पे क्रूरे चानृतवादिनि ॥ ४३ ॥ त्वयि राज्ञि प्रभवति सद्भावः श्रूयतामयम् ॥ अद्य मे दाक्षिणां राजन्न दास्यति भवान्यदि ॥ ४४ ॥ अस्ताचलं प्रयातेऽर्के शप्स्यामि त्वां ततो ध्रुवम् ॥ इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुरः ॥ ४५ ॥ कान्दिग्भूतोऽधनो निःस्वो नृशंसधनिनार्दितः ॥ भार्यास्य भूयः प्राहेदं क्रियतां वचनं मम ॥ ४६ ॥ मा शापानलनिर्दग्धः पंचत्वमुपयास्यसि ॥ स तया चोद्यमानस्तु राजा पत्न्या पुनः पुनः ॥ ४७ ॥

राजन् ! मैं सरलभावसे कहताहूं, सुनो, यदि इस समय तुम मुझे दक्षिणा नहीं दोगे ॥ ४४ ॥ तो सूर्यदेवके अस्ताचलमें पहुंचतेही अर्थात् संध्या होतेही मैं निःसन्देह शाप दूंगा । विप्रवर विश्वामित्रजी यह कहकर चलेगये तब राजाभी ब्रह्मशापके भयसे अत्यन्त घबराने लगे ॥ ४५ ॥ इधर हम सब अत्यन्त निर्धन और नीच दशामें पडेहुए हैं, उधर धनी पुरुष बडे कठोर हैं क्या करें ! क्या करनेसे भला होगा ? और किस ओर जायँ ! इस बातमें कुछ स्थिर नहीं कर कसते । इसी समयमें उनकी पत्नीने फिर कहा हे महाराज ! मैंने जो कहा है, वही कीजिये ॥ ४६ ॥ उपाय रहते शापाग्निमें दग्ध होकर मृत्यु-

को प्राप्त मत होओ। तब राजा हरिश्चन्द्रने पत्नी शैब्याके द्वारा वारंवार इस भांति अनुरोधको प्राप्त होकर ॥ ४७ ॥ कहा--हे भद्रे ! मैं घृणाहीन होकर तुम्हें बेचूंगा। अत्यन्त निष्ठुर कार्य, जिसके करनेकी सामर्थ्य नहीं है. वही करूंगा ॥ ४८ ॥ अच्छा देखो ऐसे कठिन वचन कहसकूं वा नहीं नरपति भार्यासे इस प्रकार कह अत्यन्त व्याकुल होकर नगरमें गये और आंसुओंसे कंठ रोककर यह वचन कहने लगे ॥ ४९ ॥ हे नगरवासियो ! सब मेरी बात सुनो आप क्या पूछते हैं तुम कौन हो ? मैं नृशस हूं मनुष्य नहीं ॥ ५० ॥ मैं राक्षस वा उसकी अपेक्षाभी अतिकठिन और पापात्मा हूं क्योंकि प्राण-

प्राह भद्रे करोम्येष विक्रयं तव निर्घृणः ॥ नृशंसैरपि यत्कर्तुं न शक्यं तत्करोम्यहम् ॥ ४८ ॥ यदि मे शक्यते वाणी वक्तुमीदृक्सुदुर्वचः ॥ एवमुक्त्वा ततो भार्यां गत्वा नगरमातुरः ॥ बाष्पापिहितकण्ठाक्षस्ततो वचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ राजोवाच ॥ भो भो नागरिकाः सर्वे शृणुध्वं वचनं ममः ॥ किं मां पृच्छथ कस्त्वं भो नृशंसोऽहममानुषः ॥ ५० ॥ राक्षसो वातिकाठिनस्ततः पापतरोऽपि वा ॥ विक्रेतुं दयितां प्राप्तो यो न प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ ५१ ॥ यदि वः कस्यचित्कार्यं दास्या प्राणेष्टया मम ॥ स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्सन्धारयाम्यहम् ॥ ५२ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ अथ वृद्धो द्विजः कश्चिदागत्याह नराधिपम् ॥ समर्पयस्व मे दासीमहं क्रेता धनप्रदः ॥ ५३ ॥ अस्ति मे वित्तमस्तोकं सुकुमारी च मे प्रिया ॥ गृहकर्म न शक्नोति कर्तुमस्मात्प्रयच्छ म ॥ ५४ ॥ कर्मण्यतावयोरूपशीलानां तव योषितः ॥ अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणार्पय मेऽबलाम् ॥ ५५ ॥

प्रिया पत्नीको बेचनेके लिये आकर भी मेरा प्राण बाहर नहीं निकला ॥ ५१ ॥ ऐसे प्राणोंसेभी प्यारी दासीमें यदि आपका प्रयोजन हो, तो जबतक संध्या न हो अर्थात् मेरे प्राण रहते रहते शीघ्र कहो ॥ ५२ ॥ पक्षी बोले--अनन्तर किसी बूढे ब्राह्मणने आनकर राजासे कहा, मैं धन देकर दासी मोल लूंगा अत एव मुझको दो ॥ ५३ ॥ मेरे अनेक प्रकारकी धनसम्पत्ति है और मेरी प्रिया अत्यन्त कोमल अंगवाली है घरके कार्य करनेमें असमर्थ है, इस कारण यह मुझकोही देदो ॥ ५४ ॥ तुम पत्नीके कर्मदक्षता (चतुरता) अवस्था रूप और स्वभावके अनुरूप यह धन लेकर इस स्त्रीको मुझे दो ॥ ५५॥

ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेपर अत्यन्त दुःखके कारण राजा हरिश्चन्द्रका हृदय विदीर्ण होने लगा और उसको कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ ५६॥ अनन्तर वह ब्राह्मण राजाके वल्कल वस्त्रमें वह धन दृढरीतिसे बांध रानीके केश पकडकर खैंचने लगा ॥ ५७ ॥ काकपक्षधारी बालक रोहिताश्व माताको आकृष्ट होता देख हाथसे उसके वस्त्रका अंचल खैंचताहुआ रोने लगा ॥ ५८ ॥ राजपत्नी बोली–हे आर्य ! एक बार मुझे छोडदो ! मैं एक बार इस बालक पुत्रका मुख देखलूं हे तात ! फिर मैं इसको नहीं देखसकूंगी ॥ ५९ ॥ हे वत्स ! आओ देखो मैं तुम्हारी माता दासी हुई हूं ! हे राजपुत्र ! अब मुझको स्पर्श

एवमुक्तस्य विप्रेण हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः ॥ व्यदीर्य्यत मनो दुःखान्न चैनं किंचिदब्रवीत् ॥ ५६ ॥ ततः स विप्रो नृपतेर्वल्कलान्ते दृढं धनम् ॥ बद्ध्वा केशेष्वथादाय नृपपत्नीमकर्षयत् ॥ ५७ ॥ रुरोद रोहितास्योऽपि दृष्ट्वा कृष्टां तु मातरम् ॥ हस्तेन वस्त्रमाकर्षन्काकपक्षधरः शिशुः ॥ ५८ ॥ मुंचार्य मुंच तावन्मां यावत्पश्याम्यहं शिशुम् ॥ दुर्लभं दर्शनं तात पुनरस्य भविष्याति ॥ ५९ ॥ पश्यैहि वत्स मामेवं मातरं दास्यतां गताम् ॥ मां मा स्प्राक्षी राजपुत्र अस्पृश्याहं तवाधुना ॥ ६० ॥ ततः स बालः सहसा दृष्ट्वा कृष्टां तु मातरम् ॥ समभ्यधावदम्बेति रुदन्नस्राविलेक्षणः ॥ ६१ ॥ तमागतं द्विजः क्रोधाद्बालमभ्याहनत्पदा ॥ वदंस्तथापि सोऽम्बेति नैवामुंचत मातरम् ॥ ६२ ॥ राजपत्न्युवाच ॥ प्रसादं कुरु मे नाथ क्रीणीष्वेमं च बालकम् ॥ क्रीतापि नाहं भवतो विनैनं कार्यसाधिका ॥ ६३ ॥ इत्थं ममाल्पभाग्यायाः प्रसादसुमुखो भव ॥ मां संयोजय बालेन वत्सेनेव पयस्विनीम् ॥ ६४ ॥

मत करना, अब मैं तुम्हारे स्पर्श करने योग्य नहीं रही ॥ ६० ॥ अनन्तर बालक सहसा माताको आकृष्ट होता देखकर “मा ! मा ! ” शब्दसे रोता हुआ आंखोंमें आँसू भरकर दौडने लगा ॥ ६१ ॥ तब बूढे ब्राह्मणने अत्यन्त क्रोधित होकर वेगसहित बालकके लात मारी, किन्तु बालक तो भी “मा ! मा ! ” कहकर दौडने लगा, जननीको किसी प्रकार भी नहीं छोडा ॥६२॥ राजपत्नी बोली–हे नाथ ! अनुग्रह कीजिये. इस बालकको भी क्रय करो अर्थात् मोललो क्योंकि मेरे मोल लेनेपर भी इस बालकके विना मैं किसी प्रकार आपका कार्य नहीं करसकूंगी ॥ ६३ ॥ अत एव इस हतभागिनीके

ऊपर यही अनुग्रह कीजिये कि, वत्सके संग पयस्विनी गायके समान इस बालके संग मुझको संयोजित कीजिये ॥ ६४ ॥ ब्राह्मण बोला--यह धन ग्रहण करो बालकको मुझे दो, धर्मशास्त्रवेत्ता पण्डितोंने स्त्री और पुरुष दोनोंकाही मूल्य शत, सहस्र, लक्ष वा करोड मुद्रा निरूपित किया है ॥ ६५ ॥ पक्षी बोले--तदनन्तर उस बूढे ब्राह्मणने नरपतिके डुपट्टेमें वह धन भी पूर्ववत् बाँधकर बालक और राजमहिषीको एकत्र बांधलिया ॥ ६६ ॥ तब महांपति हरिश्चन्द्र भार्या और पुत्रको ब्राह्मणके संग जाताहुआ देखकर कातरतासहित वारंवार दीर्घोष्ण श्वास छोडते हुए अत्यन्त विलाप करने लगे ॥ ६७ ॥ कि, हाय ! जिसको वायु, सूर्य, चन्द्र वा अन्य पुरुषने पहिले कभी नहीं देखा है, आज मेरी उसी पत्नीको दासीभाव अवलम्बन करना पडा ॥ ६८ ॥ हाय !

ब्राह्मण उवाच ॥ गृह्यतां वित्तमेतत्ते दीयतां बालको मम ॥ स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैः कृतमेव हि वेतनम् ॥ शतं सहस्रं लक्षं च कोटिमूल्यं तथापरैः ॥ ६५ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ तथैव तस्य तद्वित्तं बद्ध्वोत्तरपटे ततः ॥ प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थमबन्धयत् ॥ ६६ ॥ नीयमानौ तु तौ दृष्ट्वा भार्यापुत्रौ स पार्थिवः ॥ विललाप सुदुःखार्तो निःश्वस्योष्णं पुनः पुनः ॥ ६७ ॥ यां न वायुर्न चादित्यो नेन्दुर्न च पृथग्जनः ॥ दृष्टवंतः पुरा पत्नीं सेयं दासीत्वमागता ॥ ६८ ॥ सूर्यवंशप्रसूतोऽयं सुकुमारकरांगुलिः ॥ संप्राप्तो विक्रयं बालो धिङ्मामस्तु सुदुर्मतिम् ॥ ६९ ॥ हा प्रिये हा शिशो वत्स ममानार्यस्य दुर्नयैः ॥ दैवाधीनां दशां प्राप्तो न मृतोऽस्मि तथापि धिक् ॥ ७० ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ एवं विलपतो राज्ञः स विप्रोऽन्तरधीयत ॥ वृक्षगेहादिभिस्तुंगैस्तावादाय त्वरान्वितः ॥ ७१ ॥ विश्वामित्रस्ततः प्राप्तो नृपं वित्तमयाचत ॥ तस्मै समर्पयामास हरिश्चन्द्रोऽपि तद्धनम् ॥ ७२ ॥

सूर्यवंशमें जिसका जन्म है जिसके हाथकी सब अंगुलियें अत्यन्त सुकुमार हैं, उस शिशुबालकको भी आज बेचना पडा, हाय ! मैं दुर्मति हूं, मुझको धिक्कार है ॥ ६९ ॥ हा प्रिये ! हा शिशो ! हे वत्स ! मेरेही अन्यायआचरणके कारण तुमको यह दैवदुर्दशा भोगनी पडी है, हाय ! तो भी मेरी मृत्यु नहीं हुई, मुझको धिक्कार है ॥ ७० ॥ पक्षी बोले--इस प्रकार राजा विलाप करतेरहे और वह ब्राह्मणभी शीघ्रतासहित राजपुत्र तथा राजमहिषीको लेकर अत्यन्त ऊंचे वृक्ष और महलोंके अन्तरमें चलागया ॥ ७१ ॥ उसी समय मुनिवर विश्वामित्रने भी सहसा आनकर राजासे धन मांगा तब राजा हरिश्च-

न्द्रने भी वह सब धन उनको समर्पण किया ॥ ७२ ॥ विश्वामित्र मुनि राजाके स्त्री पुत्र बिकनेका धन बहुत थोडा देख, अत्यन्त क्रोधित हो शोकाभिभूत राजासे कहने लगे ॥ ७३ ॥ रे क्षत्रियाधम ! इस सामान्य धनको यदि मेरे यज्ञकी उपयुक्त दक्षिणा विचारता है तो अभी मेरी महातपस्याका बल देख ॥ ७४ ॥ निर्मल ब्रह्मतेज उग्र प्रभाव शुद्ध अध्ययन इन सबका बल देख ॥ ७५ ॥ राजाने अत्यन्त विनीतभावसे कहा--हे भगवन् ! कुछ काल अपेक्षा कीजिये शेष दक्षिणा दूंगा इस समय और कुछ नहीं है, यह देखो पत्नी पुत्रतकको बेचदिया है ॥ ७६ ॥ विश्वामित्र बोले हे नराधिप ! यह जो केवल दिनका चौथा भाग शेष है मैं इसीकी प्रतीक्षा करूंगा फिर तुम कोई उत्तर नहीं करना ॥ ७७ ॥ पक्षी बोले--मुनिवर कौशिक उन राजासे क्रोधपूर्ण

तद्वित्तं स्तोकमालोक्य दारविक्रयसंभवम् ॥ शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ॥ ७३ ॥ क्षत्रबंधो ममेमां त्वं सदृशीं यज्ञदक्षिणाम् ॥ मन्यसे यदि तत्क्षिप्रं पश्य त्वं मे बलं परम् ॥ ७४ ॥ तपसोऽत्र सुतप्तस्य ब्राह्मण्यस्यामलस्य च ॥ मत्प्रभावस्य चोग्रस्य शुद्धस्याध्ययनस्य च ॥ ७५ ॥ राजोवाच ॥ अन्यां दास्यामि भगवन्कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥ साम्प्रतं नास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः ॥ ७६ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ चतुर्भागः स्थितो योऽयं दिवसस्य नराधिप ॥ एष एव प्रतीक्ष्यो मे वक्तव्यं नोत्तरं त्वया ॥७७॥ पक्षिण ऊचुः ॥ तमेव मुक्त्वा राजेंद्रं निष्ठुरं निर्घृणं वचः ॥ तदादाय धनं तूर्णं कुपितः कौशिको ययौ ॥ ७८ ॥ विश्वामित्रे गते राजा भयशोकादिमध्यगः ॥ स्वविक्रयं विनिश्चित्य प्रोवाचोच्चैरधोमुखः ॥ ७९ ॥ वित्तक्रीतेन यो ह्यर्थी मया प्रेष्येण मानवः ॥ स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्तपति भास्करः ॥ ८० ॥ अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चण्डालरूपधृक् ॥ दुर्गन्धो विकृतो रूक्षः श्मश्रुलो दन्तुरो घृणी ॥ ८१ ॥

घृणाहीन और निष्ठुर वचन कह उस धनको लेकर चले गये ॥ ७८ ॥ विश्वामित्रके चले जानेपर नरपति हरिश्चन्द्र भय और शोकसागरमें मग्न हो, सब प्रकारसे निश्चय कर नीचेको मुख किये उच्च स्वरसे कहने लगे ॥ ७९ ॥ कि, " यदि कोई पुरुष धनप्रदानपूर्वक मुझको मोल लेकर सेवक बनानेकी इच्छा करे वह सूर्यदेवके अस्त होनेसे पहिलेही मुझसे कहै" ॥ ८० ॥ अनन्तर स्वयं धर्म चाण्डालका रूप धारण करके शीघ्र आये । उसके गात्रमें दुर्गन्ध आतीथी उसकी मूर्ति रूक्ष मुख दाढी मूछोंसे युक्त और बडा स्वभाव अत्यन्त भयंकर समस्त दांत ऊंचे और उसका रूप अत्यन्त घृणाकर

था ॥ ८१ ॥ वह कृष्णवर्ण लम्बोदर पिंगल अथ च रूक्षलोचन और कर्कशभाषी था । उसके हाथमें कितनेही पक्षी गलेमें मृतकोंकी माला ॥ ८२ ॥ एक हाथमें नरकपाल, दूसरे हाथमें लाठी लिये, शरीर अत्यन्त कृश और वह कितनेही कुत्तोंसे परिवेष्टित होकर निरन्तर अतिशय जल्पना प्रयोग करताथा ॥ ८३ ॥ वह चाण्डालरूपी धर्म राजासे आनकर बोला मैं तुमको मोल लूंगा । थोडे वा बहुत किस मूल्यमें तुमको प्राप्त करताहूं, शीघ्र कहो ॥ ८४ ॥ पक्षी बोले कि, अतिपरुषभाषी, क्रूरदृष्टि और कर्कशस्वभाव चाण्डालको ऐसी अवस्थासे आया देखकर राजाने कहा तुम कौन हो ॥ ८५ ॥ चाण्डाल बोला मैं चाण्डाल हूं और इस श्रेष्ठ नगरीमें मेरा वास है, मेरा नाम प्रवीर है मैं प्रसिद्ध वध्यवधिक अर्थात्

कृष्णो लम्बोदरः पिङ्गरूक्षाक्षः परुषाक्षरः ॥ गृहीतपक्षिपुंजश्च शवमाल्यैरलंकृतः ॥ ८२ ॥ कपालहस्तो दीर्घास्यो भैरवोऽतिवदन्मुहुः ॥ श्वगणाभिवृतो घोरो यष्टिहस्तो निराकृतिः ॥ ८३ ॥ चण्डाल उवाच ॥ अहमर्थी त्वया शीघ्रं कथयस्वात्मवेतनम् ॥ स्तोकेन बहुना वापि येन वै लभ्यते भवान् ॥ ८४ ॥ पाक्षिण ऊचुः ॥ तं तादृशमथालक्ष्य क्रूरदृष्टिं सुनिष्ठुरम् ॥ वदन्तमतिदुःशीलं कस्त्वमित्याह पार्थिवः ॥ ८५ ॥ चण्डाल उवाच ॥ चण्डालोऽहमिह ख्यातः प्रवीरेति पुरोत्तमे ॥ विख्यातो वध्यवधको मृतकम्बलहारकः ॥ ८६ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ नाहं चण्डालदासत्वमिच्छेयं सुविगर्हितम् ॥ वरं शापाग्निना दग्धो न चण्डालवशं गतः ॥ ८७ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ तस्यैवं वदतः प्राप्तो विश्वामित्रस्तपोनिधिः ॥ कोपामर्षविवृत्ताक्षः प्राह चेदं नराधिपम् ॥ ८८ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ चण्डालोऽयमनल्पं ते दातु वित्तमुपास्थितः ॥ कस्मान्न दीयते मह्यमशेषा यज्ञदक्षिणा ॥ ८९ ॥

वध करने योग्य पुरुषका वध करनेवाला हूं और मरे हुए पुरुषका कम्बलभी हरण करताहूं ॥ ८६ ॥ हरिश्चंद्रने कहा–चाण्डालका दासत्व स्वीकार करना अत्यन्त निन्दाकी बात है, अत एव मैं इसकी इच्छा नहीं करता यद्यपि शापानलमें दग्धही हूं, किन्तु तोभी चाण्डालके वशीभूत नहीं हूंगा ॥ ८७ ॥ पक्षी बोले--राजा इस प्रकार कहतेही थे, उसी समय तपोनिधि विश्वामित्रजीने सहसा आय, कोप अमर्षद्वारा लाल नेत्रकर राजासे कहा ॥ ८८ ॥ विश्वामित्र बोले हे–राजन् ! यह चाण्डाल तुमको बहुत धन देनेके लिये उपस्थित है, तो फिर किस कारण मेरे यज्ञकी दक्षिणा नहीं देते हो ? ॥ ८९ ॥

हरिश्चन्द्र बोले--हे भगवन् कौशिक ! मैं अपनी आत्माको सूर्यवंशोत्पन्न जानताहूं, अत एव धनके लोभसे किस प्रकार चाण्डालके वशीभूत होऊं ॥ ९० ॥ विश्वामित्रने कहा--यदि तुम मुझको अपना शरीर बेचकर इस चाण्डालका धन यथासमयमें नहीं दोगे, तो मैं तुमको निःसन्देह शाप दूंगा ॥ ९१ ॥ पक्षी बोले--तदनन्तर महीपति हरिश्चन्द्रने चिन्तामात्रसे जीवित हो "भगवन् प्रसन्न हूजिये" कहकर व्याकुल मनसे ऋषिवरके दोनों चरण पकडलिये और कहा ॥ ९२ ॥ मैं आपका दास हूं मैं अत्यन्त भीत और व्याकुल हुआ हूं और विशेषकर मैं आपकाही भक्त हूं, इस कारण हे विप्रर्षे ! अनुग्रह

हरिश्चन्द्र उवाच ॥ भगवन्सूर्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक ॥ कथं चण्डालदासत्वं गमिष्ये वित्तकामुकः ॥ ९० ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ यदि चण्डालवित्तं त्वमात्मविक्रयजं मम ॥ न प्रदास्यसि कालेन शप्स्यामि त्वामसंशयम् ॥ ९१ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ हरिश्चन्द्रस्ततो राजा चिन्तावस्थितजीवितः ॥ प्रसीदेति वदन्पादावृषेर्जग्राह विह्वलः ॥ ९२ ॥ दासोस्म्यार्त्तोऽस्मि भीतोऽस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः ॥ कुरु प्रसादं विप्रर्षे कष्टश्चण्डालसङ्करः ॥ ९३ ॥ भवेयं वित्तशेषेण सर्वकर्मकरो वशः ॥ तवैव मुनिशार्दूल प्रेष्यश्चित्तानुवर्त्तकः ॥ ९४ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ यदि प्रेष्यो मम भवांश्चण्डालाय ततो मया ॥ दासभावमनुप्राप्तो दत्तो वित्तार्बुदेन वै ॥ ९५ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ यद्यसौ शक्यते विप्रः कौशिकः परितोषितुम् ॥ ततो गृहाणमामद्य दासत्वं ते करोम्यहम् ॥ ९६ ॥ चण्डाल उवाच ॥ शतयोजनविस्तीर्णां नानाग्रामैरलंकृताम् ॥ भूमिं रक्षामयीं कृत्वा दास्येऽहं कौशिकं प्रति ॥ ९७ ॥

कीजिये, चाण्डालके वशीभूत होना अत्यन्त कष्टकी बात है ॥ ९३ ॥ हे प्रभो ! मेरा धन शेष होगया है. अत एव मैं आपकाही कर्मकर दास हूंगा, हे मुनिशार्दूल ! आप जो कहेंगे, वही करूंगा और सदा तुम्हारेही चित्तका अनुवर्ती होकर रहूंगा ॥ ९४ ॥ विश्वामित्र बोले--हे राजन् ! यदि तुम मेरेही वशीभूत होतेहो तो मैंने एक अर्बुद मुद्रामें तुमको इस चाण्डालके हाथ बेचा, तुम इसकेही दास होजाओ ॥ ९५ ॥ हरिश्चंद्रने कहा--कि जो यह ब्राह्मण विश्वामित्रजी संतुष्ट होसकते हैं, तो मुझे ग्रहण करो, मैं तुम्हारा दास बनकर सेवा करूंगा ॥ ९६ ॥ चाण्डाल बोला--कि, सौ योजनकी विस्तारवाली अनेक

ग्रामोंसे शोभित पृथ्वीको रक्षावाली करके मैं विश्वामित्रजीको देताहूं ॥९७॥ पक्षी बोले--तब राजाके मुखसे "जो आज्ञा" यह वचन निकलतेही चाण्डाल-रूपी धर्म प्रसन्नचित्तसे विश्वामित्र मुनिको वह धन देकर नरपतिको बांध अपने नगरमें ले गया ॥९८॥ राजा हरिश्चन्द्र एक तो पत्नीपुत्रादि बंधुवियोगसे अत्यन्त कातर होगयेथे, इसपरभी फिर चाण्डालके दण्डे मारनेसे अत्यन्त सम्भ्रान्त और व्याकुल होगये ॥ ९९ ॥ तदनन्तर हरिश्चन्द्र चाण्डालके घर वास करते हुए प्रात मध्याह्न तथा सायंकाल इत्यादि सब समयमेंही इस प्रकार गान करते कि, ॥ १०० ॥ "दीनमुखी बाला दीनमुख बालकको सन्मुख देखकर दुःखित चित्तसे इस प्रकार चिन्ता करती होगी कि राजा धन उपार्जनपूर्वक ब्राह्मणको इससे अधिक धन दे हम दोनोंको छुडावेंगे" किन्तु

पक्षिण ऊचुः ॥ एवमुक्ते तदा तेन श्वपाको हृष्टमानसः ॥ विश्वामित्राय तद्द्रव्यं दत्त्वा बद्धा नरेश्वरम् ॥९८॥ दण्डप्रहारसंभ्रान्तमतीव व्याकुलेन्द्रियम् ॥ इष्टबन्धुवियोगार्तमनयान्निजपक्कणम् ॥ ९९ ॥ हरिश्चन्द्रस्ततो राजा वसंश्चण्डालपक्कणे प्रातर्मध्याह्नसमये सायं चैतदगायत ॥ १०० ॥ बालां दीनमुखीं दृष्ट्वा बालं दीनमुखं पुरः ॥ मां स्मरत्यसुखाविष्टा मोचयिष्यति नौ नृपः ॥ १ ॥ उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तमतोऽधिकम् ॥ न सा मां मृगशावाक्षी वेत्ति पापतरं श्रुतम् ॥ २ ॥ राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः ॥ प्राप्ता चण्डालता चेयमहो दुःखपरम्परा ॥ ३ ॥ एवं स निवसन्नित्यं सस्मार दयितं सुतम् ॥ भार्यां चात्मसमाविष्टां हृतसर्वस्व आतुरः ॥ ४ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य मृतचैलापहारकः ॥ हरिश्चन्द्रोऽभवद्राजा श्मशाने तद्वशानुगः ॥ ५ ॥ चण्डालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारिणा ॥ शवागमनमन्विच्छन्निह तिष्ठन्दिवानिशम् ॥ ६ ॥

हाय ! वह मृगशावाक्षी यह नहीं जानती है कि मैं चाण्डालके दासत्वरूप पापदशामें निपतित हुआहूं ॥ १ ॥ २ ॥ राज्यनाश, सुहृत्त्याग, भार्या पुत्रका बिकना और अन्तमें इस चाण्डालपनेकी प्राप्ति, हाय ! दुःखके ऊपर दुःख उपस्थित होता है ॥ ३ ॥ जिनका सर्वस्व हरण होगया वह राजा इस प्रकार चाण्डालके घर वास करते हुए प्रतिदिन दुःखितचित्तसे प्रियतम पुत्र और मनमें बसी हुई भार्याको स्मरण करते ॥ ४ ॥ फिर कुछ दिन बीतनेपर उस चाण्डालके वशवर्ती राजा हरिश्चन्द्र श्मशानमें स्थित मृतकके वस्त्र ग्रहण करनेवाले हुए ॥ ५ ॥ और शववस्त्रापहारी चाण्डालके द्वारा

इस प्रकार आज्ञाको प्राप्त हुए कि " तुम दिन रात इस स्थानमें वास करके कहां कौन मुर्दा आता है, इसकी खोज करो ॥ ६ ॥ प्रत्येक शव (मुरदे) में जो प्राप्त हो, उसका छठा भाग राजाको दो, अवशिष्ट पांच भागमें तीन भाग मेरे निमित्त और दो भाग तुम अपने वेतनमें रक्खो " ॥ ७ ॥ तब राजा हरिश्चन्द्रने चाण्डालकी इस प्रकार आज्ञा पाय वाराणसीकी दक्षिण दिशामें स्थित श्मशानमें प्रवेश किया ॥ ८ ॥ उसकी चारों दिशा घोर शब्दसे प्रतिध्वनित थीं। सैकडों गीदडियोंसे परिपूर्ण, मृतकोंके मस्तकोंसे व्याप्त तथा दुर्गन्धमय और बहुत धुएँसे समाच्छन्न था ॥ ९ ॥ पिशाच, भूत, वेताल, डाकिनी, यक्ष, गृध्र, गोमायु इत्यादिसे भरा हुआ, तथा उनके शब्दोंसे नादित था और उसमें कुत्ते जहां तहां फिर रहे थे। वह अस्थियोंसे परिपूर्ण और

इदं राज्ञेऽपि देयं च षड्भागं तु शवं प्रति ॥ त्रयस्तु मम भागाः स्युर्द्वौ भागौ तव वेतनम् ॥ ७ ॥ इति प्रतिसमादिष्टो जगाम शवमन्दिरम् ॥ दिशं तु दक्षिणां यत्र वाराणस्यां स्थितं तदा ॥ ८ ॥ श्मशानां घोरसंनादं शिवाशतसमाकुलम् ॥ शवमौलिसमाकीर्णं दुर्गन्धबहुधूमकम् ॥ ९ ॥ पिशाचभूतवेतालडाकिनीयक्षसंकुलम् ॥ महागणमहाभूतरवकोलाहलायुतम् ॥ ११०॥ गृध्रगोमायुसंकीर्णं श्ववृन्दपरिवारितम् ॥ अस्थिसंघातसंकीर्णं महादुर्गन्धसंकुलम् ॥ ११ ॥ नानामृतसुहृन्नादरौद्रकोलाहलायुतम् ॥ हा पुत्र मित्र हा बन्धो भ्रातर्वत्स प्रियाद्य मे ॥ १२ ॥ हा पते भगिनि मातर्हा मातुल पितामह ॥ मातामह पितः पौत्र क्व गतोऽस्येहि बान्धव ॥ १३ ॥ इत्येवं वदतां यत्र ध्वनिः संश्रूयते महान् ॥ यत्र नेत्रैरनिमिषैः शवाभयमिवाविशन् ॥ १४ ॥ निमीलितैश्च नयनैर्बंधुचिंतापथे स्थितः ॥ ज्वलन्मांसवसामेदश्छमच्छमितसंकुलम् ॥ १५ ॥

महादुर्गन्धमय था ॥११०॥११ ॥ मृतपुरुषवाले सम्बन्धियोंके आर्त्त नादसे परिपूर्ण होनेके कारण अत्यन्त कोलाहल युक्त था। हा पुत्र ! हा मित्र ! हा बन्धो ! हा भ्राता ! हा वत्स ! हा प्रिय ! ॥ १२ ॥ हा स्वामिन् ! हा बहिन ! हा माता ! हा मामा ! हा पितामह ! हा मातामह ! हा पितः ! हा पौत्र ! हा बान्धव ! आज कहां गये ! एक बार आओ ॥ १३ ॥ इस प्रकार औरभी अनेक भाँतिसे विलाप करते हुए पुरुषोंका आर्तनाद उसके चारों ओरसे सुनाई आताथा और कहीं कहीं मृतक अनिमेष नेत्रोंसे अर्थात् विनाही पलक मारे देख रहे थे, जिनसे भय लगता था ॥ १४ ॥ कोई आंख खोले

बन्धुओंकी चिन्ता कर रहा था, मांस, मज्जा और मेद जलनेके कारण छन छन शब्दसे उसकी चारों दिशा संकुल होरही थीं ॥ १५ ॥ शवने अग्निमें पडनेके कारण अधजली होकर श्यामवर्ण धारण किया है और उसके दाँतोंकी पंक्ति बाहर होगई है, देखनेसे विदित होता है कि, "उस देहकी ऐसी दशा ?" यह विचार कर मानो उसका हास्य करती है ॥ १६ ॥ अस्थिपंक्तियोंके ऊपर बैठे हुए काकोंके नाना प्रकारसे शब्द होते थे, मृत पुरुषोंके लिये बांधवजन आर्त्तनाद कर रहे थे. अग्निके चटचटा शब्द और चाण्डालोंकी आनन्दसूचक ध्वनिसे वह परिपूर्ण हो रहाथा ॥ १७ ॥ कहीं भूत वेताल पिशाच राक्षसोंके गाने नाचनेका शब्द सुननेसे वह स्थान भयंकर प्रलयकालकी समान विदित होताथा ॥ १८ ॥ कहीं कहीं राखोंके ढेर काले काले भैंसाओंके गोबरके ढेर तथा गायोंके गोबरके ढेर दिखाई देतेथे और उन राखोंकी अस्थियोंपर उड उडकर गिरना पहाडकी सुन्दरता दिखाता

अर्द्धदग्धाः शवाः श्यामा विकसद्दन्तपंक्तयः ॥ हसंत्येवाग्निमध्यस्थाः का यस्येयं दशा त्विति ॥ १६ ॥ अग्नेश्चटचटाशब्दो वयसामास्थि-पंक्तिषु ॥ बान्धवाक्रन्दशब्दश्च पुल्कसेषु प्रहर्षजः ॥१७॥ गायतां भूतवेतालपिशाचगणरक्षसाम् ॥ श्रूयते सुमहान्घोरः कल्पान्त इव निः-स्वनः ॥ १८ ॥ महामहिषकारीषगोशकृद्राशिसंकुलम् ॥ तदुत्थभस्मकूटैश्च वृतं सास्थिभिरुन्नतैः ॥ १९ ॥ नानोपहारस्रग्दीपकाकवि-क्षेपसंकुलम् ॥ अनेकशब्दबहुलं श्मशानं नरकायते ॥ १२० ॥ सवह्निगर्भैरशिवैः शिवारुतैर्निनादितं भीषणरावगह्वरम् ॥ भयं भयस्या-प्युपसंजनैर्भृशं श्मशानमाक्रन्दविरावदारुणम् ॥ २१ ॥ स राजा तत्र संप्राप्तो दुःखितः शोचनोद्यतः ॥ हा भृत्या मंत्रिणो विप्राः क्व तद्रा-ज्यं विधे गतम् ॥ २२ ॥ हा शैब्ये पुत्र हा बाल मां त्यक्त्वा मन्दभाग्यकम् ॥ विश्वामित्रस्य दोषेण गताः कुत्रापि ते मम ॥ २३ ॥

था ॥ १९ ॥ किसी स्थानमें काकबलिको उपहार दीहुई माल्य और दीपमाला पडी हुई थी, कहीं उल्कामुख श्रृगाल अमंगलजनक शब्दसे चारों दिशा प्रतिध्वनित कररहे थे, जिससे वह स्थान नरक दीख रहाथा ॥ १२० ॥ किसी स्थानमें गह्वरस्थ श्रृगालोंका भयंकर शब्द हो रहाथा ! अनेक मनुष्योंकी अनेक प्रकार क्रंदनध्वनिसे और भाँति भाँतिकी भयंकर प्रतिध्वनिसे अत्यन्त भयानक उस नरककी समान श्मशानमें बोध होताहै कि, स्वयं भयको भी अत्यन्त भीत होना पडताथा ॥ २१ ॥ राजा हरिश्चन्द्र उस दारुण श्मशानमें पहुंचकर चिन्ता करने लगे कि, "हा विधाता ! वह भृत्यगण, वह मंत्री-गण वह ब्राह्मणगण और वह राज्य कहां गया ? ॥ २२ ॥ हा शैब्ये ! हा वत्स ! तुम इस भाग्यहीनको छोडकर कहां चले गये ? हाय ! एकमात्र

विश्वामित्रजीके रोषसे मेरा सर्वस्व चलागया " ॥ २३ ॥ नृपवर हरिश्चन्द्र उस श्मशानमें इस प्रकार अनेक भांतिसे चिन्ता करते २ चाण्डालके वचन-कीभी वारंवार चिन्ता करतेथे, एक तो मलिन वेष, रूक्ष देह, इसपर भी फिर सर्वाङ्गमें केश, एवं दुर्गन्ध और ध्वजा ॥ २४ ॥ तथा लाठी लेकर इधर उधर घूमना, अत एव मानो वह उस समय स्वयं यमस्वरूप होरहेथे और मनमें विचारतेथे कि, इस मृतकका इतना मूल्य हुआ, इतना मिला और इतना शेष है ॥ २५ ॥ सुतरां ' यह मेरा, यह राजाका और वह मुख्य चाण्डालका' जब वह इस प्रकार चिंता करते करते इधर उधर भ्रमण करते, तब बोध होताथा कि, उनको जीवितदशामें ही प्रेतयोनि उपस्थित हुई है ॥ २६ ॥ जीर्ण वस्त्रमें ग्रंथि देकर ही उन्होंने कन्था पहर रक्खीथी, मुख, बाहु, उदर

इत्येवं चिन्तयंस्तत्र चण्डालोक्तं पुनः पुनः ॥ मलिनो रूक्षसर्वांगः केशवान्गन्धवान्ध्वजी ॥ २४ ॥ लगुडी कालकल्पश्च धावंश्चापि तत-स्ततः॥ अस्मिञ्शव इदं मूल्यं प्राप्तं प्राप्स्यामि चाप्युत ॥ २५ ॥ इदं मम इदं राज्ञे मुख्यचंडालके त्विदम् ॥ इति धावन्दिशो राजा जीवन्योन्यन्तरं गतः ॥ २६ ॥ जीर्णकर्पटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रहः ॥ चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदरांघ्रिकः ॥ २७ ॥ नानामेदोवसाम-ज्जलिप्तपाण्यंगुलिः श्वसन् ॥ नानाशवौदनकृताहारतृप्तिपरायणः ॥ २८ ॥ तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमण्डनः ॥ न रात्रौ न दिवा शेते हाहेति प्रवदन्मुहुः ॥ २९ ॥ एवं द्वादश मासास्तु नीताः शतसमोपमाः ॥ स कदाचिन्नृपश्रेष्ठः श्रान्तो बन्धुवियोगवान् ॥ १३० ॥ निद्राभिभूतो रूक्षाङ्गो निश्चेष्टः सुप्त एव च ॥ तत्रापि शयनीये स दृष्टवानद्भुतं महत् ॥ ३१ ॥

और दोनों चरणोंमें चिताकी भस्म लेपन करीथी ॥ २७ ॥ हाथकी सब अंगुलियोंमें नाना प्रकार मेद, वसा और मज्जा लगी रहतीथी, अनेक मृतकोंके पिण्डसे बचेहुए भातका भोजन करके तृप्त होतेथे ॥ २८ ॥ मृतकके शरीरकी मालासे ही मस्तक शोभित करके वारंवार हा हा शब्द उच्चारण करते और क्या दिन, क्या रात्रि, किसी समय भी वह नहीं सोतेथे ॥ २९ ॥ उन्होंने इस प्रकार उस श्मशानमें वास करके सौ वर्षके समान बारह महीने बिताये फिर किसी दिन नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र बन्धुवियोगसे श्रान्त हुए ॥ १३० ॥ रूक्ष देह, चेष्टारहित हो शयन करके निद्राभिभूत हुएथे, उसी समय उन्होंने

एक महाअद्भुत बात स्वप्नमें देखी ॥ ३१ ॥ श्मशानमें वास करनेका अभ्यास होनेके कारण अथवा दैवकी बलवत्ताके कारण उन्होंने देखा कि, " अन्य देह धारणपूर्वक गुरुको दक्षिणा देकर ॥ ३२ ॥ बारह वर्ष दुःख भोगनेके पीछे तब मेरा छुटकारा होगा फिर उन्होंने देखा कि, मैं स्वयं मानो पुक्कसी (डोमनी) के गर्भमें वास करताहूं ॥ ३३ ॥ उस डोमनीके गर्भमें वास करनेके समय वह चिन्ता करने लगे कि, इस डोमनीके गर्भसे निकलतेही मैं दानधर्मका आचरण करूंगा'' ॥ ३४ ॥ इतनेहीमें क्या देखा कि, मैं उस गर्भसे उत्पन्न होकर उसी जातिका कर्म अर्थात् श्मशानमें मृतकसंस्कार करनेको उद्यत रहता हूं ॥ ३५ ॥ जब वह चाण्डालके बालकवेषमें सात वर्षकी अवस्थाके हुए, तब किसी गुणवान् अनाथ ब्राह्मणके मृत देहको उसके बंधुवर्ग श्मशा-

श्मशानाभ्यासयोगेन दैवस्य बलवत्तया ॥ अन्यदेहेन दत्त्वा तु गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥३२ ॥ तदा द्वादशवर्षाणि दुःखदानात्तु निष्कृतिः ॥ आत्मानं स ददर्शाथ पुल्कसीगर्भसंभवम् ॥ ३३ ॥ तत्रस्थश्चाप्यसौ राजा सोऽचिन्तयदिदं तदा ॥ इतो निष्क्रान्तमात्रो हि दानधर्मं करोम्यहम् ॥ ३४ ॥ अनन्तरं स जातस्तु तदा पुल्कसबालकः ॥ श्मशानमृतसंस्कारकरणेषु सदोद्यतः ॥ ३५ ॥ प्राप्ते तु सप्तमे वर्षे श्मशानेऽथ मृतो द्विजः ॥ आनीतो बन्धुभिर्दृष्टस्तेन तत्राधनो गुणी ॥ ३६ ॥ मूल्यार्थिना तु तेनापि परिभूतास्तु ब्राह्मणाः ॥ ऊचुस्ते ब्राह्मणास्तत्र विश्वामित्रस्य चेष्टितम् ॥ ३७ ॥ पापिष्ठमशुभं कर्म कुरु त्वं पापकारक ॥ हरिश्चन्द्रः पुरा राजा विश्वामित्रेण पुल्कसः ॥ ३८ ॥ कृतः पुण्यविनाशेन ब्राह्मणस्वापनाशनात् ॥ यदा न क्षमते तेषां तैः स शप्तो रुषा तदा ॥ ३९ ॥ गच्छ त्वं नरकं घोरमधुनैव नराधम ॥ इत्युक्तमात्रे वचने स्वप्नस्थः स नृपस्तदा ॥ १४० ॥

नमें लाये ॥३६॥ तब वह निर्धन ब्राह्मण दाह करनेका मूल्य देनेंमें असमर्थ होकर उनसे अत्यन्त तिरस्कृत हुए कहनेलगे कि, हाय ! विश्वामित्रका क्या अशुभ पापमय कार्य है । रे पापकारक ! तू इस प्रकारके अशुभ कार्यही करता रहता है, तू पूर्व जन्ममें राजा हरिश्चन्द्र था, विश्वामित्रने तुझे चाण्डाल किया है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ब्रह्मस्व नाशसे पुण्य विलाश होनेके कारणही विश्वामित्रके द्वारा चाण्डालरूपमें जन्म ग्रहण किया है । जब वह ब्राह्मण मूल्य देकर शवके दाह करनेमें समर्थ नहीं हुए, तब अत्यन्त क्रोधसे राजाको शाप दिया ॥ ३९ ॥ कि रे नराधम ! तू इसी समय घोर

नरकमें जा। ब्राह्मणोंके यह वचन कहतेही उस स्वप्नदर्शी राजाने ॥ १४० ॥ देखा कि, अत्यन्त भयंकर यमदूत हाथमें फांसी लिये आ रहे हैं, और फिर बलपूर्वक मेरी आत्माको बांधकर ले चले हैं ॥ ४१ ॥ तब वह अत्यन्त खेदसे 'हा माता ! हा पिता !' आज मेरी यह दशा हुई, इस भाँति अनेक प्रकारसे विलाप करने लगे, उसी समय यमदूतोंने उनको नरककी तैलद्रोणीमें डाल दिया ॥ ४२ ॥ फिर तीक्ष्णधारवाले आरोंसे चीरे जाकर अन्धतम नरकमें गिराया और दुःखी हुएको राद और रुधिरका भोजन कराया ॥ ४३ ॥ इस प्रकार सात वर्षतक मृत उस आत्माको चाण्डालत्वमें देखने लगे कि, दिन दिन नरकमें कहीं दग्ध होता हूं, कहीं पच्य अर्थात् कोल्हूमें पेला जाता हूं ॥ ४४ ॥ कभी खिन्न और कभी क्षुब्ध होता हूं, कभी मारा

अपश्यद्यमदूतान्वै पाशहस्तान्भयावहान् ।। तैः संगृहीतमात्मानं नीयमानं तदा बलात् ॥४१॥ पश्यति स्म भृशं खिन्नो हा मातः पितरश्च मे ।। एवं वादी स नरके तैलद्रोण्यां निपातितः ।। ४२।। क्रकचैः पाटयमानस्तु क्षुरधाराभिरप्यधः ।। अन्धे तमसि दुःखार्त्तः पूयशोणितभोजनः॥४३॥ सप्तवर्षं मृतात्मानं पुल्कसत्व ददर्श ह ॥ दिनं दिनं तु नरके दह्यते पच्यतेऽन्यतः ॥४४॥ खिद्यते क्षोभ्यतेऽन्यत्र मार्यते पात्यतेऽन्यतः ॥ क्षार्यते दीप्यतेऽन्यत्र शीतवाताहतोऽन्यतः ।।४५।। एकं दिनं वर्षशतप्रमाणं नरकेऽभवत् ॥ तथा वर्षशतं तत्र श्रावितं नरके भटैः॥४६।। ततो निपातितो भूमौ विष्ठाशी श्वा व्यजायत ॥ वान्ताशी शीतदग्धश्च मासमात्रे मृतोऽपि सः ॥ ४७ ॥ अथापश्यत्खरं देहं हस्तिनं वानरं पशुम् ॥ छागं बिडालं कङ्कं च गामविं पक्षिणं कृमिम् ॥ ४८ ॥

जाता, कभी पाडाजाता, कभी खारमें डालाजाता, कभी बालाजाता और कभी शीत तथा वायुसे आहत होताहूं ॥ ४५ ॥ वहां एक एक दिन उनके पक्षमें मानो सौ वर्षकी समान बीतने लगा। इस प्रकार दुःख भोगते भोगते नरककी रक्षा करनेवालोंके मुखसे सुना कि, उनके सौ वर्ष उत्तीर्ण होगये हैं ॥ ४६ ॥ तब यमदूतोंने उनको पृथ्वीमें गिरादिया और उन्होंने विष्ठाभोजी कुत्तेके रूपमें जन्म लिया, फिर विष्ठा और वमन भोजन करते हुए अत्यन्त शीतसे व्याकुल होकर एक महीनेमें प्राणत्याग किया ॥ ४७ ॥ फिर देखा कि, मैंने गधेकी योनिमें जन्म लिया है, इसके पीछे क्रमशः हाथी,

बन्दर, छाग, बिलाव, काक, गौ, मेष, पक्षी, कृमि ॥ ४८ ॥ मछली, कछुए, सुअर, मृग, मुरगे, तोते, मैना, वृक्षादि और अजगर सर्प इत्यादि नाना-प्रकारके प्राणियोंमें ॥ ४९ ॥ दिन दिन जन्म लेताहूं, इस प्रकार क्लेश भोगते वह एक दिनको सौ वर्षकी समान अनुभव करने लगे ॥ १५० ॥ इस भांति नानाप्रकारकी कुयोनियोंमें जन्म ग्रहण करके दुःख भोगते भोगते पूरे सौ वर्ष बीतगये। फिर देखा कि, मानो किसी समय वह पुनर्वार अपने कुलमें जन्म लेकर राजा हुए हैं ॥ ५१ ॥ वह वहां वास करते हुए किसी समय जुआ खेलनेमें राज्य, स्त्री और पुत्रको हारकर अकेले वनमें गये हैं ॥ ५२ ॥ वहां देखा कि, एक भयंकर सिंह शरभके सहित मुख फैलाये उनको भक्षण करनेके लिये आरहा है ॥ ५३ ॥ फिर उसके द्वारा भक्षित होकर " हा

मत्स्यं कूर्मं वराहं च श्वाविधं कुक्कुटं शुकम् ॥ शारिकां स्थावरांश्चैव सर्पमन्यांश्च देहिनः ॥ ४९ ॥ दिवसे दिवसे जन्म प्राणिनः प्राणिनस्सदा ॥ अपश्यद्दुःखसन्तप्तो दिनं वर्षशतं तथा ॥१५०॥ एवं वर्षशतं पूर्णं गतं तत्र कुयोनिषु ॥ अपश्यच्च कदाचित्स राजा तत्स्वकुलोद्भवम् ॥ ५१ ॥ तत्र स्थितस्य तस्यापि राज्यं द्यूतेन हारितम् ॥ भार्या हृता च पुत्रश्च स चैकाकी वनं गतः ॥ ५२ ॥ तत्रापश्यत्स सिंहं वै व्यादितास्यं भयावहम् ॥ बिभक्षयिषुमायांतं शरभेण समन्वितम् ॥ ५३ ॥ पुनश्च भक्षितः सोऽपि भार्यां शोचितुमुद्यतः ॥ हा शैब्ये क्व गतास्यद्य मामिहापास्य दुःखितम् ॥ ५४ ॥ अपश्यत्पुनरेवापि भार्यां स्वां हतपुत्रकाम् ॥ त्रायस्व त्वं हरिश्चंद्र किं द्यूतेन तव प्रभो ॥ ५५ ॥ पुत्रस्ते शोच्यतां प्राप्तो भार्यया शैब्यया सह ॥ स नापश्यत्पुनरपि धावमानः पुनः पुनः ॥ ५६ ॥ अथापश्यत्पुनरपि स्वर्गस्थः स नराधिपः ॥ नीयते मुक्तकेशी सा दीना विवसना बलात् ॥ ५७ ॥

शैब्ये ! इस दुःखित मनुष्यको छोडकर तुम कहां जातीहो ?" इत्यादि प्रकारसे शोक करते करते ज्योंही उद्यत हुए ॥ ५४ ॥ उसी समय देखा, मानो रानी शैब्या पुत्रके सहित हा महाराज हरिश्चन्द्र ! हमारी रक्षा करो । हे प्रभो ! आपका जुआ खेलनेसे क्या प्रयोजन है ॥ ५५ ॥ देखो, तुम्हारी भार्या शैब्या अपने पुत्रके सहित कैसी शोचनीय दशाको प्राप्त हुई है। इत्यादि प्रकारसे विलाप करती है, तब वह मानो वारंवार इधर उधरको दौडे, किन्तु फिर उसको नहीं देखा ॥ ५६ ॥ राजा हरिश्चन्द्रने फिर देखा कि, वह स्वर्गमें वास करते हैं वहां वास करते करते उन्होंने देखा कि, मानो

दीन, वस्त्रहीन और खुले केश रानी शैब्या किसी पुरुषके द्वारा बलपूर्वक हरी जाकर ॥ ५७ ॥ "हा महाराज ! रक्षा करो, हा महाराज ! रक्षा करो" कहकर निरन्तर चिल्लाती है। उन्होंने फिर देखा कि, मानो यमदूत यमराजके शासनमें ॥५८॥ आकाशमार्गमें स्थित हुए 'हे राजन् ! यमराजको आपके निमित्त विश्वामित्रजीने सूचना दी है, अत एव आप इस स्थानमें आइये' यह कहकर महाशब्द करते हैं ॥ ५९ ॥ उन्होंने फिर देखा कि, यह बात कहकर मानो यमके अनुचर मुझे नागपाशमें दृढरीतिसे बांधकर लेचले हैं, और यमराज यह विश्वामित्रका चारित्र कीर्त्तन करते हैं ॥ १६० ॥ यद्यपि महाराज हरिश्चन्द्र इस भाँति नाना प्रकारकी यंत्रणा भोगते थे, किन्तु तो भी उनके मनमें कोई अधर्मजनित विकार उपस्थित नहीं हुआ। इस

हाहा वाक्यं प्रमुंचन्ती त्रायस्वेत्यसकृत्स्वना ॥ अथापश्यत्पुनस्तत्र धर्मराजस्य शासनात् ॥५८॥ आक्रन्दन्त्यन्तरिक्षस्था आगच्छेह नराधिप ॥ विश्वामित्रेण विज्ञप्तो यमो राजंस्तवार्थतः ॥ ५९ ॥ इत्युक्त्वा सर्पपाशैस्तु नीयते बलवाद्भिशुः ॥ श्राद्धदेवेन कथितं विश्वामित्रस्य चेष्टितम् ॥ १६० ॥ तत्रापि तस्य विकृतिर्नाधर्मोत्था व्यवर्द्धत ॥ एताः सर्वा दशास्तस्य याः स्वप्ने सम्प्रदर्शिताः ॥ ६१ ॥ सर्वास्तास्तेन सम्भुक्ता यावद्वर्षाणि द्वादश ॥ अतीते द्वादशे वर्षे नियमानो भटैर्बलात् ॥ ६२ ॥ यमं सोऽपश्यदाकारादुवाच च नराधिपम् ॥ विश्वामित्रस्य कोपोऽयं दुर्विनार्यो महात्मनः ॥ ६३ ॥ पुत्रस्य ते मृत्युमपि प्रदास्याति स कौशिकः ॥ गच्छ त्वं मानुषं लोकं दुःखशेषं च भुंक्ष्व वै ॥ गतस्य तत्र राजेन्द्र श्रेयस्तव भविष्याति ॥ ६४ ॥ व्यतीते द्वादशे वर्षे दुःखस्यान्ते नराधिपः ॥ अन्तरिक्षाच्च पतितो यमदूतैः प्रणोदितः ॥ ६५ ॥

भांति अनेक प्रकारकी दशा जो जो उनको स्वप्नमें दिखाई दी थीं ॥ ६१ ॥ जो इस बारह वर्षके समयतक निरन्तर वहीं उन्होंने भोग की थीं। बारह वर्ष बीतनेपर जब वह यमदूतोंके द्वारा बलपूर्वक लाये गये ॥ ६२ ॥ तब उन्होंने यमराजका दर्शन किया, यमराजने उनसे कहा—हे महाराज ! यह महात्मा विश्वामित्रजीके दुर्निवार्य कोपका फल है ॥ ६३ ॥ अधिक क्या ? वह कौशिक मुनि आपके पुत्रकी भी मृत्यु संघटित करावेंगे। अत एव आप मनुष्यलोकमें जाकर शेष दुःख भोग कीजिये। हे राजन् ! वहां जानेसे तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ६४ ॥ वहां बारह वर्ष बीतनेपर दुःखका अन्त

और मनमें चिन्ता करने लगे कि, हाय ! घावमें नमक लगनेकी समान यह और क्या हुआ ? ॥ ६६ ॥ स्वप्नमें जिस प्रकार महादुःख देखे हैं; उनकी तो सीमा नहीं हैं, मैंने जो स्वप्नमें देखा, तो क्या बारह वर्ष बीतगये हैं ? ॥ ६७ ॥ यह कह भ्रमवशतः निकटके चाण्डालोंसे पूछा उनमें किसीने कहा " नहीं तुम्हारे बारह वर्ष नहीं बीते हैं " किसीने कहा " बीतसक्ते हैं " ॥ ६८ ॥ तब राजा हरिश्चन्द्र उनके यह वचन सुन अत्यन्त दुःखित चित्तसे देवताओंकी शरण हुए और कहने लगे कि, हे देवताओ ! आप मेरी शैब्या और बालकका मंगल कीजिये ॥ ६९ ॥ सर्वप्रधान धर्मको नमस्कार

पतितो यमलोकाच्च विबुद्धो भयसंभ्रमात् ॥ अहो कष्टामिति ध्यात्वा क्षते क्षारावसेचनम् ॥ ६६ ॥ स्वप्ने दुःखं महद्दृष्टं यस्यान्तो नोपल-
भ्यते ॥ स्वप्ने दृष्ट मया यत्तु किन्तु मे द्वादशीः समाः ॥ ६७ ॥ गतेत्यपृच्छत्तत्रस्थान्पुल्कसांस्तु स संभ्रमात् ॥ नेत्यूचुः केचित्तत्रस्था
एवमेवापरेऽब्रुवन् ॥ ६८ ॥ श्रुत्वा दुःखी तदा राजा देवाञ्शरणमीयिवान् ॥ स्वस्ति कुर्वन्तु मे देवाः शैब्यायाा बालकस्य च ॥ ६९ ॥
नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ॥ परावराय शुद्धाय पुराणायाव्ययाय च ॥ १७० ॥ नमो बृहस्पते तुभ्यं नमस्ते वासवाय च ॥
एवमुक्त्वा स राजा तु युक्तः पुल्कसकर्मणि ॥ ७१ ॥ शवानां मूल्यकरणे पुनर्नष्टस्मृतिर्यथा ॥ मलिनो जटिलः कृष्णो लगुडी विह्वलो
नृपः ॥ ७२ ॥ नैव पुत्रो न भार्यां तु तस्य वै स्मृतिगोचरे ॥ नष्टोत्साहो राज्यनाशाच्छ्मशाने निवसंस्तदा ॥ ७३ ॥ अथाजगाम स्वसुतं
मृतमादाय लापिनी ॥ भार्यां तस्य नरेन्द्रस्य सर्पदष्टं हि बालकम् ॥ ७४ ॥

भा० टी० है । विधातास्वरूप कृष्णको नमस्कार है जो सबसे श्रेष्ठ पवित्र और अव्यय हैं, उन पुराण पुरुषको नमस्कार है ॥ ७० ॥ हे बृहस्पते ! तुमको नमस्कार
अ० ८ है । हे वासव ! तुमको नमस्कार । इस प्रकार कहकर राजा हरिश्चन्द्र फिर चाण्डालके कार्यरूप ॥ ७१ ॥ शवमूल्यनिर्द्धारणमें निरत हुए और फिर उसी प्रकार नष्टस्मृति, मलिनवेषी, जटाधारी, कृष्णवर्ण, लकुटधारी और विह्वल होगये ॥ ७२ ॥ तब भार्या वा पुत्र कोई भी उनके स्मृतिगोचर न हुआ, क्योंकि वह उस समय राज्य नष्ट होनेके कारण उत्साहहीन हो श्मशानमें वास करतेथे ॥ ७३ ॥ इसी अवसरमें उन नरेन्द्रकी भार्या अपने पुत्रको जो

कि सर्पके डसनेसे मरगयाथा जलानेके लिये उसी श्मशानमें रोती हुई लेआई ॥ ७४ ॥ वह स्त्री जो कि अत्यन्त कृश वदन, महादुःखी विमना और जिसके शिरमें धूरि भररहीथी, वारंवार हा वत्स ! हा पुत्र ! हा शिशो ! कहकर रुदन करतीथी ॥ ७५ ॥ राजपत्नी बोली--हे राजन् ! एक बार देखो, आप पृथ्वीके चन्द्रमाकी समान जिस बालकको पहिले खिलाते हुए देखते थे, हाय ! आज आपके उसी बालकने सर्पसे डसनेसे प्राणत्याग किया है ॥ ७६ ॥ राजा हरिश्चन्द्र रानीकी यह विलापध्वनि सुनकर " जान पडता है, इसी स्थानमें मृतक वस्त्र मिलेगा " यह विचार शीघ्रतासहित वहां गये ॥ ७७ ॥ बहुत समयके प्रवाससे सन्तप्त हुई मानो फिरही प्रगट हुईके समान उस रोती हुई अबला भार्याको नहीं पहिचान

हा वत्स हा पुत्र शिशो इत्थं वै वदती मुहुः ॥ कृशा विवर्णा विमनाः पांसुध्वस्तशिरोरुहा ॥७५॥ राजपत्न्युवाच ॥ हा राजन्नद्य बालं त्वं पश्यसीमं महीतले ॥ रममाणं पुरा दृष्टं दष्ट पुष्टाहिना मृतम् ॥ ७६॥ तस्या विलापशब्दं तमाकर्ण्य स नराधिपः ॥ जगाम त्वरितोऽत्रेति भविता मृतकम्बलः ॥ ७७ ॥ स तां रोरूयतीं भार्यां नाभ्यजानात्तु पार्थिवः ॥ चिरप्रवाससन्तप्तां पुनर्जातामिवाबलाम् ॥ ७८ ॥ सापि तं चारुकेशान्तं पुरा दृष्ट्वा जटालकम् ॥ नाभ्यजानान्नृपसुता शुष्कवृक्षोपमं नृपम् ॥ ७९ ॥ सोऽपि कृष्णपटे बालं दृष्ट्वाशीविषपीडितम् ॥ नरेन्द्रलक्षणोपेतं चिन्तामाप नरेश्वरः ॥ १८० ॥ तस्यास्यं चंद्रबिंबाभं सुभ्रु रम्यं समुन्नसम् ॥ नीलाः केशाः कुंचिताश्च समा दीर्घास्तरंगिताः ॥ ८१ ॥ राजीवनेत्रयुगुलो बिंबोष्ठपुटसंवृतः ॥ चतुर्दंष्ट्रश्चतुःकिष्कुर्दीर्घास्यो दीर्घबाहुकः ॥ ८२ ॥ चतुर्लेखः करो मत्स्ययवयुक्चैकपर्वतः ॥ शिरालुपादो गंभीरः सूक्ष्मत्वक् त्रिवलीधरः ॥ ८३ ॥

सके ॥ ७८ ॥ नृपसुता शैव्याने भी राजाको पहिले मनोहर केशयुक्त देखा था, इस कारण जटिल और सूखे वृक्षकी समान उन राजाके पहिचाननेमें समर्थ नहीं हुई ॥ ७९ ॥ तब राजा हरिश्चन्द्र सर्पके विषसे पीडित बालकको काले वस्त्रमें लिपटा हुआ राजलक्षणयुक्त देखकर चिन्ता करने लगे ॥ १८० ॥ जिसका मुख चंद्रमाकी समान, सुन्दर भौं, ऊंची नासिका, नीले घूंघरवाले बाल, समान और दीर्घ तरंगोंवाले ॥ ८१ ॥ कमलकेसे दोनों ओष्ठ, चार डाढें, शोभायमान दीर्घमुख, और बडी भुजा ॥ ८२ ॥ हाथमें मत्स्य, यवयुक्त और पर्वतकी रेखा है, गलेके पीछेकी नाडी और चरण गंभीर पतली त्वचा और उदर कंठमें

अनन्तर माताकी गोदीमें सोयेहुए उस बालकको भली भांति देखनेसे फिर उस पद्मपलाशलोचन रोहिताश्वको स्मरण किया ॥ ८५ ॥ तब वह सोचने लगे कि, " यदि दुरात्मा कालने अपने वशीभूत न किया हो तो मेरा वह रोहिताश्वभी इतनेही दिनोंका हुआ होगा और यही वयोवस्था प्राप्त हुई होगी॥८६॥ इधर राजपत्नी बोली–हा वत्स ! किस पापकी अनिष्ट चिन्ताके कारण यह असीम घोर महादुःख उपस्थित हुआ ॥ ८७ ॥ हा नाथ ! हा राजन् ! इस

अहो कष्टं नरेन्द्रस्य कस्याप्येष कुले शिशुः ॥ जातो नीतः कृतान्तेन कामप्याशां दुरात्मना ॥ ८४ ॥ एवं दृष्ट्वा हि तं बालं मातुरुत्सङ्गशायिनम् ॥ स्मृतिमभ्यागतो बालो रोहिताश्वोऽब्जलोचनः ॥ ८५ ॥ सोप्येतामेव मे वत्सो वयोऽवस्थामुपागतः ॥ नीतो यदि न घोरेण कृतान्तेनात्मनो वशम् ॥ ८६ ॥ राजपत्न्युवाच ॥ हा वत्स कस्य पापस्य अपध्यानादिदं महत् ॥ दुःखमापतितं घोरं यस्यान्तो नोपलभ्यते ॥ ८७ ॥ हा नाथ राजन्भवता मामनाश्वास्य दुःखिताम् ॥ क्वापि सन्तिष्ठता स्थाने विश्रब्धं स्थीयते कथम् ॥ ८८ ॥ राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः ॥ हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेः किं विधे न कृतं त्वया ॥ ८९ ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्वस्थानतश्च्युतः ॥ प्रत्यभिज्ञाय दयितां पुत्रं च निधनं गतम् ॥ १९० ॥ कैषा नाम गृहे युक्ता मम योषिद्वरा भवेत् ॥ बालश्च स मृतः कः स्यादिति राजा विचारयन् ॥ ९१ ॥ कष्टं शैव्येयमेषा हि स बालोऽयमितीरयन् ॥ रुरोद दुःखसन्तप्तो मूर्च्छामभिजगाम च ॥ ९२ ॥

भा० टी०
अ० ८

दुःखिनीको आश्रय न देकर निष्ठुर चित्तसे कहां किस प्रकार वास करतेहो ॥ ८८ ॥ एक तो राज्यनाश इसपरभी बंधुवियोग और फिर भार्या तथा पुत्रका बिकना, हा विधाता ! तैंने राजर्षि हरिश्चन्द्रका क्या सर्वनाश नहीं किया ॥ ८९ ॥ राजा उसका यह वचन सुन, स्त्री और मृतक पुत्रको पहिचान स्वस्थानसे निपतित हुए ॥ १९० ॥ यह किसकी स्त्री है क्या यह मेरी भार्या है ? और यह मृतक बालक कौन है ? इस प्रकार राजा विचारने लगे और व्याकुल हुए ॥ ९१ ॥ " हाय ! क्या कष्ट है ? यही वह शैव्या और यही तो वह बालक है " इस प्रकार कहते कहते अत्यन्त दुःखसे सन्तप्त हो रुदन करने लगे

और मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरपडे ॥ ९२ ॥ रानी शैब्या भी इस प्रकार अवस्थान्तर प्राप्त राजाको पहिचानकर मूर्च्छित हुई एवं आर्त्त और निश्चेष्ट होकर पृथ्वीमें गिरगई ॥ ९३ ॥ फिर कुछ समयके पीछे राजा हरिश्चन्द्र और रानी शैब्या दोनों चैतन्य होकर शोकभारसे पीडित हो अत्यन्त विलाप करने लगे ॥ ९४ ॥ राजा बोले--हे वत्स ! तुम्हारे वह सुन्दरनेत्र, दोनों भौं, नासिका और अलकोंसे शोभायमान सुकुमार वदनको इस प्रकार मलिन देखकर मेरा हृदय क्या विदीर्ण नहीं होता ? ॥ ९५ ॥ हा ! मधुर स्वरसे " तात ! तात ! " कहता हुआ मेरे निकट अब कौन आवेगा ? और अब मैं किसको स्नेहसहित गोदीमें लेकर " वत्स ! वत्स ! " कहता हुआ पुकारूंगा ? ॥ ९६ ॥ अब किसकी जानुमें लगी हुई धूरिसे मेरा दुपट्टा और अंग

सा च तं प्रत्यभिज्ञाय तामवस्थामुपागतम् ॥ मूर्च्छिता निपपातार्ता निश्चेष्टा धरणीतले ॥ ९३ ॥ चेतः संप्राप्य राजेन्द्रो राजपत्नी च तौ समम् ॥ विलेपतुः सुसन्तप्तौ शोकभारातिपीडितौ ॥९४॥ राजोवाच ॥ हा वत्स सुकुमारं ते स्वाक्षिभ्रूनासिकालकम् ॥ पश्यतो मे मुखं दीनं हृदयं किं न दीर्यते ॥९५॥ तात तातेति मधुरं ब्रुवाणं स्वयमागतम् ॥ उपगुह्य वदिष्ये कं वत्स वत्सेति सौहृदात् ॥ ९६ ॥ कस्य जानुप्रणीतेन पिङ्गेन क्षितिरेणुना ॥ ममोत्तरीयमुत्सङ्गं तथाङ्गं मलमेष्यति ॥९७॥ अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतो मनोहृदयनन्दनः ॥ मया कुपित्रा हा वत्स विक्रीतो येन वस्तुवत् ॥९८॥ हृत्वा राज्यमशेषं मे सबांधवधनं महत् ॥ दैवाहिना नृशंसेन दष्टो मे तनयस्ततः ॥९९॥ अहं दैवाहिदष्टस्य पुत्रस्याननपङ्कजम् ॥ निरीक्षन्नपि घोरेण विषेणान्धीकृतोऽधुना ॥२००॥ एवमुक्त्वा तमादाय बालकं बाष्पगद्गदः ॥ परिष्वज्य च निश्चेष्टो मूर्च्छया निपपात ह ॥१॥ राजपत्न्युवाच ॥ अयं स पुरुषव्याघ्रः स्वरेणैवोपलक्ष्यते ॥विद्वज्जनमनश्चन्द्रो हरिश्चन्द्रो न संशयः॥२॥

मैला होगा ? ॥ ९७ ॥ हाय ! तुम मेरे अंग प्रत्यंगसे उत्पन्न तथा मन और हृदयके आनन्दजनक होकर भी इस कुपिताने तुमको सामान्य वस्तुकी समान बेचा था ॥ ९८ ॥ हाय ! दैवरूपी दुष्ट सर्पने मेरा महत् राज्य, साधन और धन समस्तही हरण करके अन्तमें तुम सरीखे पुत्रको भी डसा ॥९९॥ हाय ! दैवरूपी सर्पके डसे इस पुत्रका मुखकमल देखने देखते मैं भी अब भयंकर विषसे अंधा हुआ हूं ॥ २०० ॥ राजाने बाष्पगद्गद स्वरसे इस प्रकार कह; उस बालकको ग्रहण कर गोदीमें लेलिया और तत्काल मूर्च्छासे चेष्टाहीन हो पृथ्वीमें गिरगये ॥ १ ॥ राजपत्नी बोली--स्वरके द्वारा जानाजाता है कि

यही वह पुरुषसिंह विद्वज्जनोंके मन खिलानेको चन्द्रमा राजा हरिश्चन्द्र हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २ ॥ उनकेही समान इनकी भी नासिका ऊंची और अग्रभागमें अधोमुख हुई है उन ख्यातकीर्त्ति महात्माके समान इनके दांतोंकी पंक्तिभी मुकुल (कली) की सदृश है ॥ ३ ॥ किन्तु वह राजा हरिश्चन्द्र आज श्मशानमें क्यों उपस्थित है, यह कह रानी शैब्या पुत्रशोकको त्याग मूर्च्छित अवस्थामें पडेहुए पतिको देखनेलगी ॥ ४ ॥ उस दुबले अंगवाली दीनवदन आश्चर्ययुक्त हुई राजमहिषी शैब्याने स्वामी और पुत्रजनित मनकी पीडासे पीडित हो इधर उधर देखते देखते स्वामीका वह निन्दनीय चाण्डाल दण्ड देखा ॥ ५ ॥ "मैं चाण्डालकी पत्नी हुई" कहकर वह दीर्घनेत्रवाली रानी मोहको प्राप्त हुई फिर धीरे धीरे चैतन्यता लाभ

तथास्य नासिका तुङ्गा अग्रतोऽधोमुखं गता ॥ दन्ताश्च मुकुलप्रख्याः ख्यातकीर्त्तेर्महात्मनः ॥ ३ ॥ श्मशानमागतः कस्माद्यैष स नरेश्वरः ॥ अपहाय पुत्रशोकं सापश्यत्पतितं पतिम् ॥ ४ ॥ प्रहृष्टा विस्मिता दीना भर्तृपुत्राधिपीडिता ॥ वीक्षन्ती सा ततोऽपश्यद्भर्तृ-दण्डं जुगुप्सितम् ॥ ५ ॥ श्वपाकार्हं मनो मोहं जगामायतलोचना ॥ प्राप्य चेतश्च शनकैः सगद्गदमभाषत ॥ ६ ॥ धिक्त्वां दैवात्यकरुणं निर्मर्यादं जुगुप्सितम् ॥ येनायममरप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम् ॥ ७ ॥ राज्यनाशं सुहृत्त्यागं भार्यातनयविक्रयम् ॥ प्रापयित्वापि नो मुक्तश्चण्डालोऽयं कृतो नृपः ॥ ८ ॥ हा राजञ्ज्ञातसन्तापामित्थं मां धरणीतलात् ॥ उत्थाप्य नाद्य पर्यङ्कमारोहेति किमुच्यते ॥ ९ ॥ नाद्य पश्यामि ते च्छत्रं शृङ्गारमथवा पुनः ॥ चामरं व्यजनं चापि कोऽयं विधिविपर्ययः ॥ २१० ॥ यस्याग्रे व्रजतः पूर्वं राजानो भृत्यतां गताः ॥ स्वोत्तरीयैरकुर्वन्त नीरजस्कं महीतलम् ॥ ११ ॥

करके गद्गद स्वरसे कहने लगी ॥ ६ ॥ रे नृशंस ! मर्यादहीन ! निन्दितदैव ! तुझको धिक्कार है तैंने इन देवताकी समान अमरपतिको चाण्डालपना दिया है ॥ ७ ॥ राज्यनाश, सुहृत्त्याग, भार्या और पुत्रको बिकवाकर भी शान्त नहीं हुआ, अब चाण्डालपनेको प्राप्त कराया है ॥ ८ ॥ हा राजन् ! इस प्रकार सन्तापमें पडीहुई मुझको पृथ्वीसे उठाकर आज 'पलँगपर बैठो' क्यों नहीं कहते ? ॥ ९ ॥ हाय ! आज आपका वह छत्र वा श्रृंगार क्यों नहीं दिखाई देता ? आज आपका वह चामर कहां है ? वह पंखा कहां है ? हाय ! दैवकी क्याही विपरीतता है ॥ २१० ॥ पहिले जिनके

गमनकालमें राजा लोग भृत्यके समान अपने डुपट्टेसे पृथ्वीकी धूरि हटाते थे, वही यह राजा हरिश्चन्द्र आज असह्य दुःखसे पीडित हो ऐसे भयंकर अपवित्र श्मशानमें अकेले विचरण करते हैं ॥ ११ ॥ जहां मृतकोंके कपालोंसे मिले हुये घट और छोटे घडोंसे चारों दिशा परिपूर्ण हुई हैं, मृतकोंके निर्माल्य सूत्रके भीतर बहुतसे केश पडे रहनेसे जो अत्यन्त दारुण हुआ है ॥ १२ ॥ मृतकोंके देहसे टपकती हुई वसा और बहुत सारे सूखे काष्ठसे जिसकी चारों दिशा व्याप्त हैं, भस्म, अंगार, अर्द्धदग्ध अस्थि और मज्जा इन सबके होनेसे जो अत्यन्त भयंकर हुआ है ॥ १३ ॥ छोटे छोटे पक्षी, गृध्र और गोमायुके शब्दको सुन जिस स्थानसे भागते हैं । चिताके उठते हुए धुएसे जिसकी दिशा विदिशा नीली होगई हैं ॥ १४ ॥ और निशाचरगण मांसके भक्षण

सोऽयं कपालसंलग्नघटीघटनिरन्तरे ॥ मृतनिर्माल्यसूत्रान्तर्गूढकेशे सुदारुणे ॥ १२ ॥ वसानिष्यन्दसंशुष्कमहीपुटकमण्डिते ॥ भस्माङ्गारार्द्धदग्धास्थिमज्जासंघट्टभीषणे ॥ १३ ॥ गृध्रगोमायुनादार्त्तनष्टक्षुद्रविहंगमे ॥ चिताधूमायितरुचा नीलीकृतदिगन्तरे ॥ १४ ॥ कुणपास्वादनमुदा संप्रहृष्टनिशाचरे ॥ चरत्यमेध्ये राजेन्द्रः श्मशाने दुःखपीडितः ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वा समाश्लिष्य कण्ठं राज्ञो नृपात्मजा ॥ कष्टशोकशताधारा विललापार्त्तया गिरा ॥ १६ ॥ राजपत्न्युवाच ॥ राजन्स्वप्नोऽथ तथ्यं वा यदेतन्मन्यते भवान् ॥ तत्कथ्यतां महाभाग मनो वै मुह्यते मम ॥ १७ ॥ यद्येतदेवं धर्मज्ञ नास्ति धर्मे सहायता ॥ तथैव विप्रदेवादिपूजने पालने भुवः ॥ १८ ॥ नास्ति धर्मः कुतः सत्यमार्जवं चानृशंसता ॥ यत्र त्वं धर्मपरमः स्वराज्यादवरोपितः ॥ १९ ॥

करनेसे आनन्दित होकर जिसमें इधर उधर भ्रमण करते हैं; उसी स्थानमें वह राजेन्द्र हरिश्चन्द्र दुःखसे पीडित हो अकेले विचरते हैं ॥ १५ ॥ नृपसुता शैब्या इस प्रकार कह, राजाके कंठसे लिपट कष्ट और सैकडों शोकका आधारस्वरूप हो आर्त्त वचनोंसे विलाप करने लगी ॥ १६ ॥ राजपत्नीने कहा—हे राजन् ! जो देखती हूं, यह क्या स्वप्न है वा सत्य ? आपको जो ज्ञात हो सो कहिये । हे महाभाग ! मैं तो मोहसे विचारशक्तिहीन हुई हूं ॥ १७ ॥ हे धर्मज्ञ ! यदि यह सत्य हो, तब धर्मकी तो सहायता नहीं, तथा देवता और ब्राह्मणके पूजनसे भी फल नहीं अथवा पृथ्वीका पालन करनेसेही क्या फल है ॥ १८ ॥ अत एव धर्म नहीं, सत्य नहीं, सरलता नहीं और सदयताकी तो बातही नहीं है, क्योंकि केवलमात्र धर्मही आपका परम बल है, किन्तु

तों भी अपने राज्यसे च्युत हुए ॥ १९ ॥ राजनन्दिनी शैब्याके यह वचन सुनकर राजाने उष्ण श्वास छोड अपने चाण्डालपनेके प्राप्त होनेका यथावत् वृत्तान्त गद्गद स्वरसे कहा ॥ २२० ॥ तब रानी शैब्याने भी उनका वृत्तान्त सुनकर दुःखिताचित्तसे बहुत देरतक रोदन किया और लम्बी श्वास लेकर जिस प्रकार रोहिताश्वकी मृत्यु हुई थी, वह सब वृत्तान्त उनसे आनुपूर्विक निवेदन किया ॥ २१ ॥ राजा हरिश्चन्द्र रानी शैब्याके यह वचन सुनकर पृथ्वीमें गिरगये और मरेहुए पुत्रका मुख जीभसे चाटने लगे ॥ २२ ॥ राजा बोले—हम दोनों कृपण पुत्रके लोभी यमसे भिक्षा मांगें. अब शीघ्र जहां प्रिय पुत्र गया है. वहां चलें ॥ २३ ॥ हे प्रिये! अब बहुत कालतक क्लेश सहनेकी इच्छा नहीं करता, किन्तु हे तन्वङ्गी! देखो, मैं ऐसा मंदभाग्य हूं कि, मेरी आत्माभी मेरे

इति तस्या वचः श्रुत्वा निःश्वस्योष्णं सगद्गदम् ॥ कथयामास तन्वंग्या यथा प्राप्ता श्वपाकता ॥ २२० ॥ रुदित्वा सापि सुचिरं निःश्वस्योष्णं च दुःखिता ॥ स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथा वृत्तं न्यवेदयत् ॥ २१ ॥ श्रुत्वा राजा तदा वाक्यं निपपात महीतले ॥ मृतस्य पुत्रस्य तदा जिह्वया लेलिहन्मुखम् ॥ २२ ॥ राजोवाच ॥ यमस्य भिक्षां याचावः कृपणौ पुत्रगर्द्धिनौ ॥ तस्माच्छीघ्रं व्रजावोऽद्य पुत्रो यत्र प्रियो गतः ॥ २३ ॥ प्रिये न रोचये दीर्घं कालं क्लेशमुपासितुम् ॥ नात्मा यतश्च तन्वङ्गि पश्य मे मन्दभाग्यताम् ॥ २४ ॥ चण्डालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये ज्वलनं यदि ॥ चाण्डालदासतां यास्ये पुनरप्यन्यजन्मनि ॥ २५ ॥ नरके च पतिष्यामि कीटकः कृमिभोजनः ॥ वैतरण्यां महापूयवसासृक्स्नायुपिच्छिले ॥ २६ ॥ असिपत्रवने प्राप्य छेदं प्राप्स्यामि दारुणम् ॥ तापं प्राप्स्यामि वा प्राप्य महारौरवरौरवौ ॥ २७ ॥ मग्नस्य दुःखजलधौ पारः प्राणवियोजनम् ॥ एकोऽपि बालको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः ॥ २८ ॥

अधीन नहीं है ॥ २४ ॥ यदि विना चाण्डालकी आज्ञाके अग्निमें प्रवेश करूं, तो फिर दूसरे जन्ममें भी चाण्डालका दास होना पडेगा ॥ २५ ॥ अथवा कृमि खानेवाला कीडा होकर नरकमें गिरना होगा वा वैतरणीमें, या पीव, वसा, रक्त और नसोंकी चिकनाईसे युक्त नरकमें यंत्रणा भोगनी पडेगी ॥ २६ ॥ अथवा असिपत्र वनमें जाकर दारुण छेदन करनेकी यंत्रणा भोग करूंगा । या महारौरव वा रौरव नरकमें दुःसह तापको प्राप्त हूंगा ॥ २७ ॥ जो दुःखरूपी समुद्रमें डूबता हो, केवलमात्र प्राणत्यागही उसकी पार भूमि है । देखो मेरा जो एक बालक वंशका बढानेवाला था ॥ २८ ॥

वह भी बलवान् दैवरूपी जलमें डूब गया। इधर असीम दुर्गति भोग है, पराधीन होनेके कारण प्राण भी कैसे त्यागूं ? ॥ २९ ॥ अथवा आर्त्तपुरुषको पापके प्रति क्या देखना है ? पुत्रवियोगमें जिस प्रकार असह्य दुःख है, तिर्यग्योनिमें, असिपत्र वनमें ॥ २३० ॥ वा वैतरणीमें भी वैसा दुःख नहीं है, अत एव मैं पुत्रदेहके संग जलती हुई अग्निमें ॥ ३१ ॥ गिरूंगा। हे तन्वङ्गी ! मैंने तुम्हारे निकट जो अन्याय आचरण किया है, वह सब क्षमा करो हे शुचिस्मिते ! तुम मेरी आज्ञासे उसी ब्राह्मणके घर चलीजाओ ॥ ३२ ॥ हे तन्वङ्गी ! मैं जो कहता हूं, सो आदरयुक्त मनसे सुनो यदि मैंने दान किया

मम दैवाम्बुवेगेन मग्नः सोऽपि बलीयसा ॥ कथं प्राणान्विमुंचामि परायत्तोऽस्मि दुर्गतः ॥२९॥ अथवा नार्तिना क्लिष्टो नरः पापमवेक्षते ॥ तिर्यक्त्वेनास्ति तद्दुःखं नासिपत्रवने तथा ॥ २३० ॥ वैतरण्यां कुतस्तादृग्यादृशं पुत्रविप्लुवे ॥ सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने ॥ ३१ ॥ निपतिष्यामि तन्वङ्गि क्षन्तव्यं कुकृतं मम ॥ अनुज्ञाता च गच्छ त्वं विप्रवेश्म शुचिस्मिते ॥ ३२ ॥ मम वाक्यं च तन्वङ्गि निबोधादृतमानसा ॥ यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोषिताः ॥ ३३ ॥ परत्र सङ्गमो भूयात्पुत्रेण सह च त्वया ॥ इहलोके कुतस्त्वेतद्भविष्यति ममोङ्गितम् ॥ ३४ ॥ त्वया सह मम श्रेयो गमनं पुत्रमार्गणे ॥ यन्मया हसता किंचिद्रहस्ये वा शुचिस्मिते ॥ ३५ ॥ अश्लीलमुक्तं तत्सर्वं क्षन्तव्यं मम याचतः ॥ राजपत्नीति गर्वेण नावज्ञेयः स ते द्विजः ॥ सर्वयत्नेन ते तोष्यः स्वामी दैवतवच्छुभे ॥३६॥ राजपत्न्युवाच ॥ अहमप्यत्र राजर्षे दीप्यमाने हुताशने ॥ दुःखभारासहाद्यैव सह यास्यामि वै त्वया ॥३७॥

है, वा होम किया है अथवा यदि गुरुजनको संतुष्ट किया है ॥ ३३ ॥ तो पुत्र और तेरे संग पुनर्जन्ममें मिलूंगा, अब इस लोकमें मेरे इस अभिप्रायके सिद्ध होनेकी संभावना नहीं है ॥ ३४ ॥ अथवा मेरे संग तुझको भी पुत्रके मार्गका अनुसरण करना चाहिये हे शुचिस्मिते ! मैंने हास्यके मिस निर्जनमें भी ॥ ३५ ॥ कुछ अश्लील कहा हो, प्रार्थना करताहूं, वह सब क्षमा करना तुम राजपत्नी होनेके गर्वसे उस ब्राह्मणका निरादर नहीं करना । हे शुभे ! स्वामी वा देवताकी समान उसको अतियत्नसे संतुष्ट रखना ॥ ३६ ॥ राजपत्नीने कहा—हे राजर्षे ! मैं भी अब यह दुःखभार नहीं सहसकती इस

कारण अब इस जलतीहुई अग्निमें ही आपके संग चलूंगी ॥ ३७ ॥ वहांपर हम आप और पुत्र तीनों एकही स्थानमें रहकर स्वर्ग वा नरक भोगेंगे रानीके यह वचन सुनकर राजा बोले—हे पतिव्रते ! अच्छा यही करना ॥ ३८ ॥ पक्षी बोले—हे जैमिने ! फिर राजा हरिश्चन्द्रने चिता बनाय, अपने पुत्रको उसके ऊपर रख भार्याके सहित हाथ जोड ज्योंहीं ॥ ३९ ॥ परमात्मा, ईश, वासुदेव, सुरेश्वर, परब्रह्म, कृष्णवर्ण, पीताम्बरधारी, शुभप्रद, हृत्कोटरगुहावासी, अनादिनिधन, नारायण, हरिकी चिन्ता करी ॥ २४० ॥ चिन्ता करतेही उसी समय इन्द्रादि देवता धर्मको आगे करके शीघ्रतासहित

सह स्वर्गं च नरकं सहैवावां हि भुंक्ष्वहे ॥ श्रुत्वा राजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते ॥ ३८ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयं स्वकम् ॥ भार्यया सहितश्चासौ बद्धांजलिपुटस्तदा ॥ ३९ ॥ चिन्तयन्परमात्मानमीशं नारायणं हरिम् ॥ हृत्कोटरगुहासीनं वासुदेवं सुरेश्वरम् ॥ अनादिनिधनं ब्रह्म कृष्णं पीताम्बरं शुभम् ॥२४०॥ तस्य चिन्तयमानस्य सर्वे देवाः सवासवाः ॥ धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ ४१ ॥ आगत्य सर्वे प्रोचुस्ते भो भो राजञ्शृणु प्रभो ॥ अयं पितामहः साक्षाद्धर्मश्च भगवान्स्वयम् ॥ ४२ ॥ साध्याश्च विश्वे मरुतो लोकपालाः सचारणाः ॥ नागाः सिद्धाः सगन्धर्वा रुद्राश्चैव तथाश्विनौ ॥ ४३ ॥ एते चान्ये च बहवो विश्वामित्रस्तथैव च ॥ विश्वत्रयेण यो मित्रं कर्तुं वै नाशकत्पुरा ॥ ४४ ॥ विश्वामित्रस्तु ते मैत्रीमिष्टं चाहर्तुमिच्छति ॥ आरुरोह ततः प्राप्तो धर्मः शक्रोऽथ गाधिजः ॥ ४५ ॥ धर्म उवाच ॥ मा राजन्साहसं कार्षीर्धर्मोऽहं त्वामुपागतः ॥ तितिक्षादमसत्याद्यैः स्वगुणैः परितोषितः ॥ ४६ ॥

उस स्थानमें आये ॥ ४१ ॥ वह सब आनकर कहने लगे—हे राजन् ! सुनो । यह साक्षात् ब्रह्मा यह साक्षात् भगवान् धर्म ॥ ४२ ॥ और साध्यगण, विश्वेदेवा, मरुद्गण, सब लोकपाल, नागगण, सिद्धगण, गंधर्वोंके सहित रुद्रगण, दोनों आश्विनीकुमार ॥ ४३ ॥ और अन्यान्य सब देवता, सभी अपने अपने वाहनसहित आये हैं और जो तीनों विश्वके संग मित्रता नहीं कर सकते वह विश्वामित्रभी स्वयं उपस्थित हैं ॥४४॥ सबही आपके संग मित्रता और इष्टता करने आये हैं तदनन्तर धर्म, इन्द्र और विश्वामित्र यह तीन जने उठकर राजाके निकट आये ॥ ४५ ॥ धर्मने कहा—हे राजन् ! ऐसे साह-

सिक कार्यसे निवृत्त हूजिये, मैं धर्म हूं. तितिक्षा, दम और सत्य इत्यादि अपने गुणोंसे आपने मुझको संतुष्ट किया है, मैं स्वयं आपके निकट आया हूं ॥ ४६ ॥ इन्द्र बोले—हे महाभाग ! हरिश्चन्द्र ! मैं इन्द्र हूं, और आपके निकट आयाहूं, आपने भार्या और पुत्रके सहित सनातन सब लोकोंको जीता है ॥ ४७ ॥ अत एव जो दूसरे मनुष्यको दुर्लभ है, उसी अपने कमसे जीतेहुए स्वर्गमें भार्या और पुत्रके सहित आरोहण करो ॥ ४८ ॥ पक्षी बोले—फिर चिता स्थानमें जाकर प्रभु इन्द्रने अपमृत्युविनाशक अमृतकी वर्षा करी ॥ ४९ ॥ तब देवताओंने वर्त्तमान सभामें फूल बरसाये और

इन्द्र उवाच ॥ हरिश्चन्द्र महाभाग प्राप्तः शक्रोऽस्मि तेऽन्तिकम् ॥ त्वया सभार्यापुत्रेण जिता लोकाः सनातनाः ॥४७॥ आरोह त्रिदिवं राजन्भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः ॥ ४८ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ ततोऽमृतमयं वर्षमपमृत्युविनाशनम् ॥ इन्द्रः प्रासृजदाकाशाच्चितास्थानगतः प्रभुः ॥४९॥ पुष्पवर्षं च सुमहद्देवदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ततस्ततो वर्तमाने समाजे देवसंकुले ॥२५०॥ समुत्तस्थौ ततः पुत्रो राज्ञस्तस्य महात्मनः ॥ सुकुमारतनुः सुस्थः प्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥ ५१ ॥ ततो राजा हरिश्चंद्रः परिष्वज्य सुतं क्षणात् ॥ सभार्यः सुश्रिया युक्तो दिव्यमाल्याम्बरान्वितः ॥ ५२ ॥ स्वस्थः सम्पूर्णहृदयो मुदा परमया युतः ॥ बभूव तत्क्षणादिन्द्रो भूयश्चैनमभाषत ॥ ५३॥ सभार्यस्त्वं सपुत्रश्च प्राप्स्यसे सद्गतिं पराम् ॥ समारोह महाभाग निजानां कर्मणां फलैः ॥ ५४ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ देवराजाननुज्ञातः स्वामिना श्वपचेन वै ॥ अगत्वा निष्कृतिं तस्य नारोक्ष्येऽहं सुरालयम् ॥ ५५ ॥

देवदुन्दुभी बजने लगी ॥ २५० ॥ अनन्तर उन महात्मा राजाका सुकुमार अगवाला पुत्र रोहिताश्वभी स्वस्थ और प्रसन्नेन्द्रिय मन होकर उठ बैठा ॥ ५१ ॥ फिर राजा हरिश्चन्द्र क्षणकाल पुत्रको आलिंगन कर दिव्य वस्त्र और माल्य धारण किये भार्याके सहित शोभा पाने लगे ॥ ५२ ॥ और भली भाँति स्वस्थ होकर अत्यन्त आनन्दित हुए, तब सुरपति इन्द्रने उनसे फिर कहा ॥ ५३ ॥ हे महाभाग ! आप भार्या और पुत्रके सहित परम सद्गति प्राप्त करेंगे, अत एव अपने कर्मफलसे स्वर्गमें निवास करो ॥ ५४ ॥ हरिश्चन्द्र बोले—हे देवराज ! मैं प्रभु चाण्डालकी अनुमतिसे विना छुटकारा पाये स्वर्गमें नहीं

जाऊंगा ॥ ५५ ॥ धर्मने कहा हे राजन् ! मैंने आपका इस प्रकार भावी क्लेश समझकर अपनी मायासे चाण्डालका रूप धारणपूर्वक ऐसा चाण्डालपना दिखाया था ॥ ५६ ॥ इन्द्र बोले ॥ पृथ्वीके संपूर्ण मनुष्य जिस परम स्थानमें जानेके लिये सदा प्रार्थना करते हैं हे हरिश्चन्द्र ! पुण्य करनेवाले मनुष्यादिकोंके उसी स्थानमें जाओ ॥५७॥ हरिश्चन्द्र बोले--हे देवराज ! आपको नमस्कार है, मैं नम्रतापूर्वक प्रसन्न हुए आपसे जो कहताहूं, सो सुनिये ॥५८॥ कोशल नगरके संपूर्ण मनुष्य मेरे शोकमें मग्नमन होकर वहां वास करते हैं, मैं उनको छोडकर किस प्रकार स्वर्गमें जाऊं ? ॥ ५९॥ ब्रह्महत्या, गुरुहत्या,

धर्म उवाच ॥ तवैनं भाविनं क्लेशमवगम्यात्ममायया ॥ आत्मा श्वपाकतां नीतो दर्शितं तच्च चापलम् ॥ ५६ ॥ इन्द्र उवाच ॥ प्रार्थ्यते यत्परं स्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि ॥ तदारोह हरिश्चन्द्र स्थानं पुण्यकृतां नृणाम् ॥ ५७ ॥ हरिश्चंद्र उवाच ॥ देवराज नमस्तुभ्यं वाक्यं चैतन्निबोध मे ॥ प्रसादसुमुखं यत्त्वां ब्रवीमि प्रश्रयान्वितः ॥ ५८ ॥ मच्छोकमग्नमनसः कोसलानगरे जनाः ॥ तिष्ठन्ति तानपोह्याद्य कथं यास्याम्यहं दिवम् ॥ ५९ ॥ ब्रह्महत्या गुरोर्घातो गोवधः स्त्रीवधस्तथा ॥ तुल्यमेभिर्महापापं भक्तत्यागेऽप्युदाहृतम् ॥ २६० ॥ भजन्तं भक्तमत्याज्यमदुष्टं त्यजतः सुखम् ॥ नेह नामुत्र पश्यामि तस्माच्छक्र दिवं व्रज ॥ ६१ ॥ यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यान्ति सुरेश्वर ॥ ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वापि तैः सह ॥ ६२ ॥ इन्द्र उवाच ॥ बहूनि पुण्यपापानि तेषां भिन्नानि वै पृथक् ॥ कथं संघातभोग्यं त्वं भूयः स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ ६३ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच ॥ शक्र भुंक्ते नृपो राज्यं प्रभावेण कुटुम्बिनाम् ॥ यजते च महायज्ञैः कर्म पौर्त्तं करोति च ॥ ६४ ॥

गोहत्या, वा स्त्रीहत्या करनेसे जो पाप होता है, भक्तका त्याग करनेसे भी वही पाप होता है ॥ २६० ॥ जो मेरे भक्त हैं और सदा मेरा भजन करते हैं, उनको छोडनेसे इस लोक वा परलोकमें क्या सुख है ? अत एव हे शक्र ! आप स्वर्गको जाइये ॥ ६१ ॥ हे देवताओंके ईश्वर ! यदि वह भी मेरे संग स्वर्गमें जायँ तो मैं भी स्वर्गमें जासकता हूं, नहीं तो उनके संग नरकमेंही रहूंगा ॥ ६२ ॥ इन्द्रने कहा--हे राजन् । उन्होंने अनेक प्रकारके पृथक् पृथक् पाप पुण्य किये हैं, तो फिर उनके संग आप किस प्रकार स्वर्गमें जा सकतेहैं ॥ ६३ ॥ हरिश्चंद्र बोले—हे शक्र ! राजा कुटुम्बियोंके प्रभावसेही राज्य

भोगता है, तथा महा यज्ञसाधन और वापी कूपादि निर्माण करताहै ॥ ६४ ॥ मैंने जो कुछ धर्मकार्यका अनुष्ठान किया है, वह सब उन लोगोंके प्रभावसे। अत एव सामान्य स्वर्गके लालचसे उन उपकारियोंको नहीं छोड सकता ॥ ६५ ॥ इस कारण हे देवेश ! मैंने जो कुछ पुण्य किया है और जो कुछ जप वा दान किया है, वह सब उनके सहित समान हो ॥ ६६ ॥ जो मरे कर्मका फल बहुत समयतक भोगने योग्य हो, आपके प्रसादसे वह उनके संग एकही दिनमें भोग करूं ॥ ६७ ॥ पक्षी बोले-हे जैमिने ! "ऐसाही होगा" यह कहकर तीनों भुवनके ईश्वर इन्द्र और प्रसन्नचित्त धर्म तथा गाधिनन्दन विश्वामित्रजी ॥ ६८ ॥ सबने उस नगरमें जाय चारों वर्णके लोगोंको हरिश्चन्द्रके सहित एकत्र कराय इन्द्रने कहा ॥ ६९ ॥

तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम् ॥ उपकर्तॄन्न सन्त्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया ॥६५॥ तस्माद्यन्मम देवेश किंचिदस्ति सुचेष्टितम् ॥ दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः ॥ ६६ ॥ बहुकालोपभोग्यं हि फलं यन्मम कर्मणः ॥ तदस्तु दिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः ॥ ६७ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ एवं भविष्यतीत्युक्त्वा शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ प्रसन्नचेता धर्मश्च विश्वामित्रश्च गाधिजः ॥ ६८ ॥ गत्वाशु नगरं सर्वं चातुर्वर्ण्यसमायुतम् ॥ हरिश्चंद्रस्य निकटे प्रोवाच विबुधाधिपः ॥ ६९॥ आगच्छंतु जनाः शीघ्रं स्वर्गलोकं सुदुर्लभम् ॥ धर्मप्रसादात्संप्राप्तं सर्वैर्युष्माभिरेव तु ॥ २७०॥ विमानकोटिसंबद्धं स्वर्गलोकान्महीतलम् ॥ गत्वायोध्याजनं प्राह दिवमारुह्यतामिति ॥७१॥ तदेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रीत्या तस्य च भूपतेः ॥ आनीय रोहिताश्वं च विश्वामित्रो महातपाः ॥ ७२ ॥ अयोध्याख्ये पुरे रम्ये सोऽभ्यषिचन्नृपात्मजम् ॥ देवैश्च मुनिभिः सिद्धैरभिषिच्य नराधिपः ॥ ७३ ॥ राज्ञा सह तदा सर्वे हृष्टपुष्टसुहृज्जनाः ॥ सपुत्रभृत्यदारास्ते दिवमारुरुहुर्जनाः ॥ ७४ ॥

हे मनुष्यो ! आओ तुम सबने जो धर्मके प्रसादसे दुर्लभ स्वर्गलोक प्राप्त किया है, वहां चलो ॥ २७० ॥ उस समय स्वर्गसे करोडों विमान भूलोकमें आये और अयोध्यावासियोंसे बोले कि, स्वर्ग चलनेके निमित्त शीघ्रही विमानोंपर बैठो ॥ ७१ ॥ फिर गाधितनय महातपा विश्वामित्रजीने राजाको प्रसन्न करनेके लिये देवराज इन्द्रका वचन सुन, रोहिताश्वको लाय ॥ ७२ ॥ मनोहर अयोध्यानगरीमें राजपुत्रको अभिषिक्त किया, तब अयोध्यावासी हृष्ट पुष्ट बंधुगण सबनेही सिद्ध मुनि और देवताओंके सहित राजाको अभिषिक्त कर, भार्या, पुत्र और

सेवकोंसे मिलित हो राजा हरिश्चन्द्रके सहित स्वर्गमें गमन किया ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ उस समय वह पग पगमें एक विमानसे दूसरे विमानपर जाते थे उस काल राजा हरिश्चन्द्रभी अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ७५ ॥ और विमानमें चढनेकी अतुल विभूतिको प्राप्त और वलयाकार परकोटेसे युक्त हो स्थिति करने लगे ॥ ७६ ॥ तब संपूर्ण शास्त्रोंका तत्त्व जाननेवाले दैत्योंके आचार्य महाभाग शुक्राचार्यने राजाका ऐसा ऐश्वर्य देखकर यह श्लोक गाया ॥ ७७ ॥ शुक्र बोले—जगत्में हरिश्चन्द्रके समान दूसरा राजा न हुआ और न आगेको होगा । जो तितिक्षा और दानके फलसे अपने नगरवासियों सहित स्वर्गमें गये । जो मनुष्य इन राजा हरिश्चन्द्रकी कथाको भक्तिसहित सुनेगा ॥ ७८ ॥ वह वेद पुराण और सब मंत्रोंके फलको प्राप्त होगा जो पुष्कर, प्रयाग, सिंधु-

पदे पदे विमानात्ते विमानमगमन्नराः ॥ तदा संभूतहर्षोऽसौ हरिश्चन्द्रश्च पार्थिवः ॥ ७५ ॥ संप्राप्य भूतिमतुलां विमानैः स महीपतिः ॥ आसांचक्रे पुराकारे वप्रप्राकारसंवृते ॥७६ ॥ ततस्तस्यर्द्धिमालोक्य श्लोकं तत्रोशना जगौ ॥ दैत्याचार्यो महाभागः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ ७७ ॥ शुक्र उवाच ॥ हरिश्चंद्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या नैरन्तर्येण मानवः ॥ ७८ ॥ तेन वेदाः पुराणानि सर्वे मंत्राः सुसंग्रहाः ॥ घुष्टाः स्युः पुष्करे तीर्थे प्रयागे सिन्धुसागरे ॥ ७९ ॥ देवागारे कुरुक्षेत्रे वाराणस्यां विशेषतः ॥ विषुवद्ग्रहणे चैव यत्फलं जपतो लभेत् ॥ २८० ॥ तत्फलं द्विगुणं चैव संयतात्मा शृणोति यः ॥ श्रुत्वा तु पूजयेद्भक्त्या पुराणज्ञं द्विजोत्तमम् ॥ ८१ ॥ गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च तथैवान्नेन जैमिने ॥ येनैवं यत्कृतं पुण्यं तच्छक्यं न मयोदितुम् ॥ ८२ ॥ अहो तितिक्षामाहात्म्यमहो दानफलं महत् ॥ यदा गतो हरिश्चंद्रः पुरीं चेन्द्रत्वमाप्तवान् ॥८३॥ पक्षिण ऊचुः ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं हरिश्चंद्रविचेष्टितम् ॥ यः शृणोति सुदुःखार्त्तः स सुखं महदाप्नुयात् ॥ ८४ ॥

सागर, देवालय, कुरुक्षेत्र और काशीमें इस कथाका पाठ करेगा उसको विशेष फल होगा विषुवती (विखौती) और ग्रहणमें जो जप करनेका फल होता है ॥ ७९ ॥२८०॥ उससे दूना फल जितेन्द्रिय होकर इसके सुननेसे होता है ॥ और यह कथा सुनकर पुराण जाननेवाले ब्राह्मणश्रेष्ठको संतुष्ट करे ॥८१॥ हे जैमिने ! उसको गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र और अन्न दे जो इससे पुण्य होताहै उसे मैं नहीं कहसकता ॥८२॥ अहो ! तितिक्षा और दानका बडा फल है, जिसके प्रभावसे हरिश्चन्द्र इन्द्रत्वको प्राप्त हो नगरीनिवासियोंसहित स्वर्गमें गये ॥ ८३ ॥ पक्षी बोले—हे मुने ! इस प्रकार यह आपके निकट

हरिश्चन्द्रका सब वृत्तान्त वर्णन किया, इसके सुननेसे दुःखार्त्त मनुष्यको महासुख प्राप्त होताहै ॥ ८४ ॥ स्वर्गकी इच्छा करनेवालेको स्वर्ग, पुत्रकी अभिलाषा करनेवालेको पुत्र, भार्याकी कामना करनेवालेको भार्या और राज्यकी आकांक्षा करनेवाले मनुष्यको राज्य मिलताहै ॥ ८५ ॥ हे मुनिसत्तम ! अब पृथ्वीक्षयका कारण राजसूय यज्ञका विपाक और उस विपाकके कारण महत् आडिबक युद्धस्वरूप शेष कथा वर्णन करते हैं सुनो ॥ २८६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ पक्षी बोले--हे जैमिने ! जब राजा हरिश्चन्द्र राज्यसे छूटकर त्रिदशालय (स्वर्ग) में

स्वर्गार्थी प्राप्नुयात्स्वर्गं पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ॥ भार्यार्थी प्राप्नुयाद्भार्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ॥ ८५॥ अतः परं कथाशेषः श्रूयतां मुनिसत्तम ॥ विपाको राजसूयस्य पृथिवीक्षयकारणम् ॥ तद्विपाकनिमित्तं च युद्धमाडिबकं महत् ॥ २८६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे हरिश्चंद्रोपाख्यानं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ राज्यच्युते हरिश्चन्द्रे गते च त्रिदशालयम् ॥ निश्चक्राम महातेजा जलवासात्पुरोहितः ॥ १ ॥ वसिष्ठो द्वादशाब्दान्ते गङ्गापर्युषितो मुनिः ॥ शुश्राव च समस्तं तु विश्वामित्रविचेष्टितम् ॥ २ ॥ हरिश्चन्द्रस्य नाशं च राज्ञश्चोदारकर्मणः ॥ चण्डालसंप्रयोगं च भार्यातनयविक्रयम् ॥ ३ ॥ स श्रुत्वा सुमहाभागः प्रीतिमानवनीपतौ ॥ चकार कोपं तेजस्वी विश्वामित्रमृषिं प्रति ॥ ४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ मम पुत्रशतं तेन विश्वामित्रेण घातितम् ॥ तत्रापि नाभवत्क्रोधस्तादृशो यादृशोऽद्य मे ॥ ५ ॥ श्रुत्वा नराधिपमिमं स्वराज्यादवरोपितम् ॥ महात्मानं महाभागं देवब्राह्मणपूजकम् ॥ ६ ॥

चलेगये, तब उनके पुरोहित महातेजस्वी वसिष्ठजी जलसे निकले ॥ १ ॥ मुनिने बारह वर्षके पीछे जलवाससे निकलकर विश्वामित्रजीका सब वृत्तान्त सुना ॥ २ ॥ उदार कर्म राजा हरिश्चन्द्र जिस प्रकार राज्य नष्ट होजानेपर चाण्डालपनेको प्राप्त हुए और जैसे उनके स्त्री पुत्र बिके ॥ ३ ॥ उन महाभाग तेजस्वी वशिष्ठजीने यह सब सुनकर विश्वामित्रऋषिपर बडा क्रोध किया कारण कि, यह राजासे अत्यन्त प्रसन्न थे ॥ ४ ॥ वशिष्ठजी बोले--इस समय महात्मा महाभाग देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाले राजाको स्वराज्यसे च्युत हुआ सुनकर मुझको जितना क्रोध उत्पन्न हुआ है उतना क्रोध उसी विश्वामित्रके

हाथसे अपने सौ पुत्रके मरनेपर भी उत्पन्न नहीं हुआ था ॥ ५ ॥ ६ ॥ जब कि, मेरे आश्रित सत्यवादी, शत्रुके प्रति भी मत्सरताहीन अर्थात् शत्रुसे भी शत्रुता न रखनेवाले, निरपराधी, धर्मात्मा और अप्रमत्त राजाको ॥ ७ ॥ पत्नी पुत्र और सेवकोंसहित अत दशामें प्राप्त कराया है, निज राज्यसे भ्रष्ट करके अनेक प्रकारसे दुःखी किया है ॥ ८ ॥ इस कारण वह दुरात्मा ब्रह्मद्वेषी मूढ, यज्ञ करनेवालोंके यज्ञका नाशक विश्वामित्र मेरे शापसे हत होकर तिर्यग्योनि अर्थात् बगलेके देहको प्राप्त हो ॥ ९ ॥ पक्षी बोले–इधर कुशिकवंशोत्पन्न महातेजस्वी विश्वामित्रजीने भी इस शापका वृत्तान्त सुनकर वसिष्ठजीको

यस्मात्स सत्यवाक्छान्तः शत्रावपि विमत्सरः ॥ अनागाश्चैव धर्मात्मा अप्रमत्तो मदाश्रयः ॥ ७ ॥ सपत्नीभृत्यपुत्रस्तु प्रापितोऽन्त्यां दशां नृपः ॥ स राज्याच्च्यावितोऽनेन बहुशश्च खिलीकृतः ॥ ८ ॥ तस्माद्दुरात्मा ब्रह्मद्विड्यज्विनामवरोपकः ॥ मच्छापोपहतो मूढः स बकत्वमवाप्स्यति ॥ ९ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ श्रुत्वा शापं महातेजा विश्वामित्रोऽपि कौशिकः ॥ त्वमप्याडिर्भवस्वेति प्रतिशापमयच्छत ॥ १० ॥ अन्योन्यशापात्तौ प्राप्तौ तिर्यक्त्वं परमद्युती ॥ वसिष्ठः स महातेजा विश्वामित्रश्च कौशिकः ॥ ११ ॥ अन्यजातिसमायोगं गतावप्यमितौजसौ ॥ युयुधातेऽतिसंरब्धौ महाबलपराक्रमौ ॥ १२ ॥ योजनानां सहस्रे द्वे प्रमाणेनाडिरुच्छ्रितः ॥ षण्णवत्यधिकं ब्रह्मन् सहस्रत्रितयं बकः ॥ १३ ॥ तौ तु पक्षप्रहाराभ्यामन्योन्यस्योरुविक्रमौ ॥ प्रहरन्तौ भयं तीव्रं प्रजानां चक्रतुस्तदा ॥ १४ ॥ विधूय पक्षाणि बको रक्तोद्वृत्ताक्षिराहनत् ॥ आडिं सोऽप्युन्नतग्रीवो बकं पद्भ्यामताडयत् ॥ १५ ॥

प्रतिशाप दिया "तू भी आडि हो" ॥१०॥ महातेजा वसिष्ठ और कौशिक विश्वामित्रजी, दोनोंही अत्यन्त तेजस्वी थे, अत एव एक दूसरेके शापसे परस्पर पक्षीकी योनिको प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ वह अमिततेजस्वी महाबलवान् पराक्रमशाली दोनों अन्यजातिको प्राप्त होकर भी अत्यन्त क्रोधसहित युद्ध करने लगे ॥१२॥ हे ब्रह्मन्! आडिपक्षी दो हजार योजन ऊंचा और बगला तीन हजार छयानवें योजन ऊँचा उडा ॥१३॥ उन उरुविक्रम पराक्रमशाली दोनों पक्षियोंके आपसमें पक्षप्रहार करनेसे प्रजाको अत्यन्त भय उपस्थित हुआ ॥ १४ ॥ बगलेने फैलाये हुए लाल लाल नेत्रोंसे समस्त पंखोंको कंपायमान

करके आडिपक्षीको आहत किया, तब उसी समय आडिने भी गर्दन ऊंची करके बगलेको पैरसे ताडित किया ॥ १५ ॥ उनके पंखोंकी पवनसे आहत होकर अनेक पर्वत भूमिमें गिरने लगे और उन पर्वतोंके गिरनेसे अभिहत होकर पृथ्वी कांपनेलगी ॥ १६ ॥ और भूमिके कांपनेसे समुद्रका जल उछलने लगा तथा कांपती हुई पृथ्वी प्रायः पाताल जानेकी इच्छा करके एक पार्श्वमें झुक गई ॥ १७ ॥ तब पृथ्वीके सब प्राणी, कोई पर्वतके गिरनेसे, कोई समुद्रके जलसे और कोई भूमिके कांपनेसे नाशको प्राप्त होने लगे ॥ १८ ॥ इस प्रकार सब जगत् अत्यन्त त्रसित हो, हाहाकार करने लगा मूर्च्छित और संभ्रान्त होगया, तब पृथ्वीमण्डलकी विपरीतता उपस्थित होनेपर ॥ १९ ॥ पृथ्वीके समस्त पुरुष अत्यन्त व्याकुलचित्तसे "हा वत्स ! हा कान्त ! हा

तयोः पक्षानिलापास्ताः प्रपेतुर्गिरयो भुवि ॥ गिरिप्रपाताभिहता चकम्पे च वसुन्धरा ॥ १६ ॥ क्ष्मा कम्पमाना जलधिनुद्वृत्ताम्बुंश्चकार च ॥ ननाम चैकपार्श्वेन पातालगमनोन्मुखी ॥ १७ ॥ केचिद्गिरिनिपातेन केचिदंभोधिवारिणा ॥ केचिन्महीसंचलनात्प्रययुः प्राणिनः क्षयम् ॥ १८ ॥ इति सर्वं परित्रस्तं हाहाभूतमचेतनम् ॥ जगदासीत्सुसंभ्रांतं पर्यस्तक्षितिमण्डलम् ॥ १९ ॥ हा वत्स हा कांत शिशो प्रयाह्येषोऽस्मि संस्थितः ॥ हा प्रिये कांत शैलोऽयं पतत्याशु पलायताम् ॥ २० ॥ इत्याकुलीकृते लोके संत्रासविमुखे तदा ॥ सुरैः परिवृतः सर्वैराजगाम पितामहः ॥ २१ ॥ प्रत्युवाच च विश्वेशस्तावुभावतिकोपितौ ॥ युद्धं वां विरमत्वेतल्लोकाः स्वास्थ्यं व्रजन्तु च ॥२२॥ शृण्वन्तावपि तौ वाक्यं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ कोपामर्षसमाविष्टौ युयुधाते न तस्थतुः ॥ २३ ॥ ततः पितामहो देवस्तं दृष्ट्वा लोकसंक्षयम् ॥ तयोश्च हितमन्विच्छंस्तिर्यग्भावमपानुदत् ॥ २४ ॥

शिशो ! भागो; यह देखो, मैं कैसी अवस्थामें हूं ! हा प्रिये ! हा कान्त ! यह देखो पर्वत गिरते हैं शीघ्र भागो" ॥ २० ॥ अत्यन्त भीत चित्तसे वह इस प्रकार कहने लगे और परस्पर एक दूसरेसे विमुख अर्थात् अलग अलग होगये, तब स्वयं पितामह ब्रह्माजी सब देवताओंसे युक्त होकर उस स्थानमें आये ॥ २१ ॥ और अत्यन्त क्रोधित हुए दोनों पक्षियोंसे बोले कि,—"तुम्हारा युद्ध निवृत्त हो और पृथ्वीके सब प्राणी स्वस्थ होवें" ॥२२॥ दोनों पक्षी अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर भी कोप और अमर्षके वश हो अत्यन्त युद्ध करने लगे, किसी प्रकारसे स्थिर न हुए ॥ २३ ॥ तब

पितामह ब्रह्माजीने इस प्रकार प्रजाका क्षय देखकर, उसके हितसाधनकी इच्छासे दोनोंकाही पक्षिभाव हरण कर लिया ॥ २४ ॥ उन दोनों ऋषियोंको पहिले देहकी प्राप्ति होनेसे उनका तामस भाव दूर हुआ तब दिव्य शक्तिमान् ब्रह्माजीने वसिष्ठ और कौशिक ऋषिसे कहा ॥ २५ ॥ हे वत्स वसिष्ठ ! हे सत्तम कौशिक ! तुम तामसभाव अवलम्बन करके जो ऐसा युद्ध करते थे, उसको त्याग दो ॥ २६ ॥ तुम पृथ्वीको क्षय करनेवाला जो युद्ध करते थे, वह राजा हरिश्चन्द्रके राजसूय यज्ञ करनेका विपाक (फल) है ॥ २७ ॥ इन कौशिकश्रेष्ठ विश्वामित्रजीने राजाका कोई अपराध नहीं किया है, प्रत्युत हे ब्रह्मन् ! उपकारके पदमें स्थित होकर उनको स्वर्ग प्राप्त कराया है ॥ २८॥ तुम काम और क्रोधके वशीभूत होकर तपस्यामें विघ्नकारक हुए हो, अत-

ततस्तौ पूर्वदेहस्थौ प्राह देवः प्रजापतिः ॥ व्युदस्ते तामसे भावे वसिष्ठः कौशिकर्षभौ ॥ २५ ॥ जहि वत्स वसिष्ठ त्वं त्वं च कौशिक सत्तम ॥ तामसं भावमाश्रित्य ईदृग्युद्धं चिकीर्षितम् ॥ २६ ॥ राजसूयविपाकोऽयं हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः ॥ युवयोर्विग्रहश्चायं पृथिवीक्षयकारकः ॥ २७ ॥ न चापि कौशिकश्रेष्ठस्तस्य राज्ञोऽपराध्यात ॥ स्वर्गप्रातिकरो ब्रह्मन्नपकारपदे स्थितः ॥ २८ ॥ तपोविघ्नस्य कर्त्तारौ कामक्रोधवशं गतौ ॥ परित्यजत भद्रं वो ब्राह्मं हि प्रचुरं बलम् ॥ २९ ॥ एवमुक्तौ ततस्तेन लज्जितौ तावुभावपि ॥ क्षमयामासतुः प्रीत्या परिष्वज्य परस्परम् ॥ ३० ॥ ततः सुरैर्वन्द्यमानो ब्रह्मा लोकं निजं ययौ ॥ वसिष्ठोऽप्यात्मनः स्थानं कौशिकोऽपि स्वमाश्रमम् ॥३१॥ एतदाडिबकं युद्धं हरिश्चंद्रकथां तथा ॥ कथयिष्यन्ति ये मर्त्याः सम्यक्श्रोष्यन्ति चैव ये ॥ ३२ ॥ तेषां पापपनोदं तु श्रुतं ह्येव करिष्यति ॥ न चैव विघ्नकार्याणि भविष्यन्ति कदाचन ॥ ३३ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणे आडिबकयुद्धकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

एव इन दोनोंको त्यागदो । तुम्हारा मंगल हो । ब्रह्मत्वकी अपेक्षा अन्य बल नहीं है ॥ २९ ॥ तब प्रजापति ब्रह्माजीका इस प्रकार वचन सुनकर वह दोनों बहुत लज्जित हुए और प्रेममें पूर्ण हो परस्पर आलिंगन कर क्षमा प्रार्थना करी ॥ ३० ॥ इसके पीछे लोकपितामह ब्रह्माजी देवताओंसे पूजित होकर ब्रह्मलोकमें चलेगये और वसिष्ठ तथा विश्वामित्र इन दोनोंने भी अपने अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य यह आडिबकयुद्ध और हरिश्चन्द्रकी कथा कहेगा, वा भलीभांति सुनेगा ॥ ३२ ॥ उसके सब पाप दूर होंगे और जो इसको सुनकर कार्य करेगा, उसके कार्यमें कभी विघ्न नहीं

होगा ॥ ३३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ जैमिनिने कहा—हे द्विजशार्दूलगण ! प्राणियोंकी, जिसमें जन्म और मृत्यु संघटित होती है, उस विषयमें मुझे सन्देह है अत एव पूछता हूं, आप कहिये ॥ १ ॥ प्राणी किस प्रकारसे उत्पन्न होता है ? कैसे बढता है ? और किस भांति देहमें पीडा सहकर उदरमें वास करता है ? ॥ २ ॥ उदरसे बाहर निकलकर कैसे बढता है, मृत्युकालमें किस प्रकार उसका चैतन्य वियुक्त होता है ? ॥ ३ ॥ प्राणी कालकवलमें कवलित होकर किस प्रकार पुण्य और पापका फल भोगता है तथा पाप पुण्य किस प्रकारसे अपना अपना फल सम्पादन करते हैं ? ॥ ४ ॥ और जब अनेक गुरुपाक भोजनकी वस्तु जठराशयमें जीर्ण होती हैं, तो सामान्य पिण्डीकृत जीव स्त्रीके जठरमें किस लिये जीर्ण नहीं

जैमिनिरुवाच ॥ संशयं द्विजशार्दूलाः प्रब्रूत मम पृच्छतः ॥ आविर्भावतिरोभावौ भूतानां यत्र संस्थितौ ॥ १ ॥ कथं सञ्जायते जन्तुः कथं वा स विवर्धते ॥ कथं वोदरमध्यस्थस्तिष्ठत्यङ्गनिपीडितः ॥ २ ॥ निष्क्रान्तिमुदरात्प्राप्य कथं वा वृद्धिमृच्छति ॥ उत्क्रांतिकाले च कथं चिद्भावेन वियुज्यते ॥ ३ ॥ कृत्स्नो मृतस्तथाश्नाति उभे सुकृतदुष्कृते ॥ कथं ते च तथा तस्य फलं सम्पादयन्त्युत ॥ ४ ॥ कथं न जीर्यते तत्र पिण्डीकृत इवाशये ॥ स्त्रीकोष्ठे यत्र जीर्यन्ते भुक्तानि सुगुरूण्यपि ॥ ५ ॥ भक्ष्याणि तत्र नो जन्तुर्जीर्यते कथमल्पकः ॥ कथं भोक्ता स सर्वस्य कर्मणः सुकृतस्य वै ॥ ६ ॥ एतन्मे ब्रूत सकलं सन्देहोक्तिविवर्जितम् ॥ तदेतत्परमं गुह्यं यत्र मुह्यंति जन्तवः ॥ ७ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वयास्मासु निवेशितः ॥ दुर्भाव्यः सर्वभूतानां भावाभावसमाश्रितः ॥ ८ ॥ तं शृणुष्व महाभाग यथा प्राह पितुः पुरा ॥ पुत्रः परमधर्मात्मा सुमतिर्नाम नामतः ॥ ९ ॥

होता ? ॥ ५ ॥ जिस जठराग्निमें भोजन कीहुई सब वस्तु जीर्ण होती हैं अर्थात् पचजाती हैं, वहां यह छोटासा जीव कैसे नष्ट नहीं होता ? और किस प्रकार सब सुकृत कर्मोंको भोगता है ? ॥ ६ ॥ हे द्विजगण ! जिससे मेरा संदेह दूर हो, उसी प्रकार यह सब विषय वर्णन कीजिये, क्योंकि यह अत्यन्त गुप्त विषय है, प्राणी इसीमें मोहित होते हैं ॥ ७ ॥ पक्षी बोले—हे मुनिसत्तम ! आपने प्राणियोंके भाव अभावसे युक्त यह प्रश्न किया है, यह बडा गूढ अतुलप्रश्नभार हमारे ऊपर डाला है॥८॥ जो हो हे महाभाग ! पूर्व कालमें सुमति नामक परम धर्मात्मा पुत्रने अपने पितासे जिस प्रकार कहा था, वही कहते-

हैं, सुनो ॥ ९ ॥ किसी समय भार्गववंशीय महामतिनामक किसी ब्राह्मणने अपने शान्त जनेउ कियेहुए जडरूपी पुत्र सुमतिसे कहा ॥ १० ॥ हे वत्स सुमते ! गुरुकी सेवामें रत होकर भिक्षाके अन्नद्वारा जीवनधारणपूर्वक क्रमानुसार पहिले सब वेद पढ ॥ ११ ॥ फिर गृहस्थधर्म अवलम्बन कर यज्ञानुष्ठानपूर्वक अभिलाषित पुत्र उत्पन्न कर और फिर वनमें चलाजा ॥ १२ ॥ हे वत्स ! वनमें वास करनेपर निष्परिग्रह संन्यासी होनेसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त करेगा, जिसके प्राप्त करनेसे फिर सोच करना नहीं पडेगा ॥ १३ ॥ पक्षी बोले कि--इस प्रकार पिताने सुमतिसे बहुत कुछ कहा, किन्तु उसने जडताके कारण कोई उत्तर नहीं

ब्राह्मणो भार्गवः कश्चित्सुतमाह महामतिः ॥ कृतोपनयनं शान्तं सुमतिं जडरूपिणम् ॥ १० ॥ वेदानधीष्व सुमते यथानुक्रममादितः ॥ गुरुशुश्रूषणे व्यग्रो भैक्षान्नकृतभोजनः ॥ ११ ॥ ततो गार्हस्थ्यमास्थाय चेष्ट्वा यज्ञाननुत्तमान् ॥ इष्टमुत्पादयापत्यमाश्रयेथा वनं ततः ॥१२॥ वनस्थश्च ततो वत्स परिव्राड्ढानिष्परिग्रहः ॥ एवमाप्स्यसि तद्ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचसि ॥ १३ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ इत्येवमुक्तो बहुशो जडत्वान्नाह किञ्चन ॥ पितापि तं सुबहुशः प्राहः प्रीत्या पुनः पुनः ॥ १४ ॥ इति पित्रा सुतस्नेहात्प्रलोभि मधुराक्षरम् ॥ स चोद्यमानो बहुशः प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥ १५ ॥ तातैतद्बहुशोऽभ्यस्तं यत्त्वयाद्योपदिश्यते ॥ तथैवान्यानि शास्त्राणि शिल्पानि विविधानि च ॥ १६ ॥ जन्मनामयुतं साग्रं मम स्मृतिपथं गतम् ॥ उत्पन्नज्ञानबोधस्य वेदैः किं मे प्रयोजनम् ॥ निर्वेदाः परितोषाश्च क्षयवृद्ध्युदये रताः ॥ १७ ॥

दिया तो भी पिता स्नेहके वश हो उससे वारंवार कहने लगे ॥ १४ ॥ जब पुत्रसे स्नेहवश पिताने ऐसे प्रलोभी मधुर वचनोंसे वारंवार कहा, तब सुमति कुछेक हँसकर पितासे बोला ॥ १५ ॥ हे तात ! आप मुझको इस समय जिस विषयका उपदेश देते हैं, मैंने अनेकवार इसका अभ्यास किया है और अन्यान्य नानाशास्त्र और बहुत प्रकारसे शिल्पशास्त्रका भी मैंने अभ्यास किया है ॥१६॥ कुछ अधिक दशहजारवर्षकी बात मुझको स्मरण है, मैंने अनेक वार दुःख पाया है और अनेक वार संतुष्ट हुआ हूं और अनेक वार क्षय वृद्धिके उदयमें रत हुआ हूं, जब ज्ञान प्राप्त है, तो वेदसे क्या प्रयोजन है ॥१७॥

मेरा अनेक वार शत्रु मित्र और कलत्रके सहित मिलाप तथा वियोग हुआ है, अनेक माता और अनेक पिता देखे हैं ॥ १८ ॥ हजारों सुख दुःख अनुभव किये हैं, अनेक बान्धव पाये हैं और पिताभी अनेक प्रकार देखे हैं ॥ १९ ॥ मल मूत्रसे भरे स्त्रीके जठरमें मैंने अनेकवार वास किया है, सहस्र सहस्र रोगोंकी दारुण यंत्रणा भोगी है ॥ २० ॥ गर्भयंत्रणा वा बाल्य यौवन और वृद्ध अवस्थामें जितनी बार जैसा दुःख भोगा है, वह सब मुझको स्मरण है ॥ २१ ॥ मैंने कितनीही वार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पशु, कीट, मृग और पक्षीकी योनिमें जन्म ग्रहण किया है ॥ २२ ॥ जिस

शत्रुमित्रकलत्राणां वियोगाः सङ्गमास्तथा ॥ मातरो विविधा दृष्टाः पितरो विविधास्तथा ॥ १८ ॥ अनुभूतानि सौख्यानि दुःखानि च सहस्रशः ॥ बान्धवा बहवः प्राप्ताः पितरश्च पृथग्विधाः ॥ १९ ॥ विण्मूत्रपिच्छिले स्त्रीणां तथा कोष्ठे मयोषितम् ॥ पीडाश्च सुभृशं प्राप्ता रोगाणां च सहस्रशः ॥ २० ॥ गर्भदुःखान्यनेकानि बालत्वे यौवने तथा ॥ वृद्धतायां तथाप्तानि तानि सर्वाणि संस्मरे ॥ २१ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां चापि योनिषु ॥ पुनश्च पशुकीटानां मृगाणामथ पक्षिणाम् ॥ २२ ॥ तथैव राजभृत्यानां राज्ञां चाहवशालिनाम् ॥ समुत्पन्नोऽस्मि गेहेषु तथैव तव वेश्मनि ॥ २३ ॥ भृत्यतां दासतां चैव गतोऽस्मि बहुशो नृणाम् ॥ स्वामित्वमीश्वरत्वं च दरिद्रत्वं तथा गतः ॥ २४ ॥ हतं मया हतश्चान्यैर्हतं मे घातितं तथा ॥ दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः ॥ २५ ॥ पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्रादिकृतेन च ॥ तुष्टोऽसकृत्तथा दैन्यमश्रुधौताननो गतः ॥ २६ ॥

प्रकार आपके घर उत्पन्न हुआ हूं ऐसेही अनेक अनेकवार राजसेवक और अनेकानेक योधाओंके घर जन्म लिया है ॥ २३ ॥ मैं अनेकवार अनेक मनुष्योंका भृत्य और दास हुआहूं, अनेक वार स्वामित्व, प्रधानत्व और दरिद्रता भोगी है ॥ २४ ॥ मैंने अनेकवार अनेक मनुष्योंको मारा है तथा अनेकवार कितनेही मनुष्योंने मुझको और मैंने उनको मारा है, मैंने अनेकवार दान किया है और अनेकवार मैंने औरोंसे लिया है ॥ २५ ॥ पिता, माता, सुहृत्, भ्राता और स्त्री इत्यादिसे मैं कितनीही वार संतुष्ट हुआहूं और अनेकवार दीन दशाको प्राप्त होकर आंसुओंके जलसे मुख धोया है ॥ २६ ॥

हे तात ! मैंने इस प्रकार संकटमय संसारचक्रमें निरन्तर भ्रमण करते करते मोक्ष देनेवाला ज्ञान प्राप्त किया है ॥ २७॥ इस प्रकार ज्ञानलाभ करनेसे ऋक्, यजुः और साम नामक समस्त क्रियाकलाप मुझको विगुण और असम्यक् विदित होती है ॥ २८॥ अत एव जब मुझको ज्ञान प्राप्त होगया है और गुरुविज्ञा-नमें तृप्त होकर चेष्टारहित और सदात्मा हुआहूं, तो फिर मेरा वेदज्ञानसे क्या प्रयोजन है ॥ २९॥ सुतरां छः प्रकारकी क्रिया, सुख, दुःख, हर्ष, रस और गुणहीन ब्राह्म परमपदको मैं निःसन्देह प्राप्त हूंगा ॥ ३० ॥ और रस, हर्ष, भय, उद्वेग, क्रोध, अमर्ष और बुडापेके द्वारा सदा नितान्त आकुल तथा मृग

एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमता तात सङ्कटे ॥ ज्ञानमेतन्मया प्राप्तं मोक्षसम्प्राप्तिकारकम् ॥ २७ ॥ विज्ञाते यत्र सर्वोऽयमृग्यजुःसामसं-ज्ञितः ॥ क्रियाकलापो विगुणो न सम्यक्प्रतिभाति मे ॥ २८ ॥ तस्मादुत्पन्नबोधस्य वेदैः किं मे प्रयोजनम् ॥ गुरुविज्ञानतृप्तस्य निरी-हस्य सदात्मनः ॥ २९ ॥ षट्प्रकारक्रियादुःखसुखहर्षरसैश्च यत् ॥ गुणैश्च वर्जितं ब्रह्म तत्प्राप्स्यामि परं पदम् ॥ ३० ॥ रसहर्षभयो-द्वेगक्रोधामर्षजवागुरा ॥ विज्ञाता नृमृगग्राहिसंघपाशशताकुला ॥ ३१ ॥ तस्माद्यास्याम्यहं तात त्यक्त्वेमां दुःखसन्ततिम् ॥ त्रयीधर्म-मधर्माढ्यं किं पापफलसन्निभम् ॥ ३२ ॥ पाक्षिण ऊचुः ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हर्षविस्मयगद्गदम् ॥ पिता प्राह महाभागः स्वसुतं हृष्टमा-नसः ॥ ३३ ॥ पितोवाच ॥ किमेतद्वदसे वत्स कुतस्ते ज्ञानसम्भवः ॥ केन ते जडता पूर्वमिदानीं च प्रबुद्धता ॥ ३४ ॥ किन्तु शाप-विकारोऽयं मुनिदेवकृतस्तव ॥ यत्ते ज्ञानं तिरोभूतमाविर्भावमुपागतम् ॥ ३५ ॥

श्वानके पकडनेवाले सैकडों बंधनमें व्याप्त ॥ ३१॥ इस कारण हे पिता ! मैं इस दुःखरूप प्रवाहको छोडकर जाऊंगा त्रयीविद्याका धर्म अधर्मसा दीखता है, इसको त्याग निःसन्देह ब्राह्मपद प्राप्त करूंगा ॥ ३२॥ पक्षी बोले-पुत्रका यह वचन सुन महाभाग पिताने प्रसन्नचित्त और हर्षविस्मययुक्त गद्गद वाणीके द्वारा अपने पुत्रसे फिर कहा ॥ ३३॥ पिता बोले-हे वत्स ! तुम यह क्या कहते हो ! कहांसे तुमको ऐसा ज्ञान मिला पहिले तुम जडस्वभाव थे, अब कहांसे ऐसी ज्ञान बुद्धि उत्पन्न हुई ? ॥ ३४ ॥ तुम्हारा छिपाहुआ ज्ञान जो सहसा प्रगट हुआ, यह क्या किसी मुनि वा देवताके शापका विकार था ? ॥ ३५ ॥

पुत्रने कहा—हे तात ! मेरा यह सुखदुःखप्रदायक पहिला वृतान्त तथा मैं अन्य जन्ममें जो था और जो जो हुआ था, वह सब कहता हूं, सुनो ॥ ३६ ॥ मैं पूर्व जन्ममें एक ब्राह्मण था, तब मैंने परमात्मामें निरन्तर आत्माको लीन करके आत्मविद्यामें परमनिष्ठालाभ करी थी ॥ ३७ ॥ सदा योगयुक्त रहनेसे साधुता अभ्यास, सत्संयोग, सत्स्वभाव, विचार, विधिशोधन अर्थात् विधियोंका उद्धार ॥ ३८ ॥ और निरन्तर परमात्मामें युक्त रहनेसे उस जन्ममें मैं अत्यन्त प्रसन्न था और शिष्योंका सन्देहनिवारण करनेवाला होकर आचार्यकी पदवीको प्राप्त हुआ था ॥ ३९ ॥ कुछ काल बीतने पर मैं ऐकान्तिक होगया । फिर अज्ञानसे आकृष्ट स्वभाव हो प्रमादके कारण यद्यपि व्याकुल होगया ॥ ४० ॥ किन्तु तो भी उस मृत्युकालतक मेरी स्मृति लोप

पुत्र उवाच ॥ शृणु तात यथावृत्तं ममेदं सुखदुःखदम् ॥ यश्चाहमासमन्यस्मिञ्जन्मन्यस्मत्परं तु यत् ॥ ३६ ॥ अहमासं पुरा विप्रो न्यस्तात्मा परमात्मनि ॥ आत्मविद्याविचारेषु परां निष्ठामुपागतः ॥३७॥ सततं योगयुक्तस्य सतताभ्याससङ्गमात् ॥ सत्संयोगात्स्वस्वभावाद्विचारविधिशोधनात् ॥ ३८ ॥ तस्मिन्नेव परा प्रीतिर्ममासद्युंजतः सदा ॥ आचार्यतां च संप्राप्तः शिष्यसन्देहहृत्तमः ॥ ३९ ॥ ततः कालेन महता ऐकान्तिकमुपागतः॥ अज्ञानाकृष्टसद्भावो विपन्नश्च प्रमादतः ॥ ४० ॥ उत्क्रान्तिकालादारभ्य स्मृतिलोपो न मेऽभवत् ॥ यावदब्दं गतं चैव जन्मनां स्मृतिमागतम् ॥ ४१ ॥ पूर्वाभ्यासेन तेनैव सोऽहं तात जितेन्द्रियः ॥ यतिष्यामि तथा कर्तुं न भविष्ये यथा पुनः ॥ ४२ ॥ ज्ञानदानफलं ह्येतद्यज्जातिस्मरणं मम ॥ न ह्येतत्प्राप्यते तात त्रयीधर्माश्रितैर्नरैः ॥ ४३ ॥ सोऽहं पूर्वाश्रमादेव निष्ठाधर्ममुपाश्रितः ॥ एकान्तित्वमुपागम्य यतिष्याम्यात्ममोक्षणे ॥ ४४ ॥

नहीं हुई, अतएव जन्मके समयसे जितने वर्ष बीते हैं, वह सब मुझको स्मरण हैं ॥ ४१ ॥ इस कारण हे तात ! मैं पूर्वाभ्यासके बलसे जितेन्द्रिय होकर फिर वैसाही यत्न करूंगा ॥ ४२ ॥ जिससे मैं इस ज्ञान और दानका फलस्वरूप जातिस्मर हुआ हूं, अर्थात् सब जन्मोंका वृत्तान्त मुझे स्मरण है । हे पिता ! त्रयीधर्मका आश्रय करनेवाले मनुष्य इस प्रकार जातिस्मर नहीं होसकते ॥ ४३ ॥ मैं पूर्वजन्मार्जित निष्ठा धर्मके आश्रयसे ऐकान्तिकत्व लाभ करके आत्ममोक्षमें यत्नवान् हूंगा ॥ ४४ ॥

अतएव हे महाभाग ! आपके हृदयमें जो कुछ संशय है वह कहिये, मैं एकमात्र उपायसेही उस विषयमें आपकी प्रीति उत्पन्न कराकर उऋण हूंगा ॥ ४५ ॥ पक्षी बोले—अनन्तर उसके पिताने उसका यह वचन सुन श्रद्धायुक्त हो, जीवोंके जन्ममृत्युविषयमें आपने मुझसे जिस प्रकार पूछा है, उन्होंने भी पुत्रसे उसी प्रकार पूछा था ॥ ४६ ॥ पुत्रने कहा--हे तात ! मैंने वारंवार जो अनुभव किया है, वह यथातत्त्व कहता हूं सुनो, यह जो संसारचक्र है, इसकी जरा भी कहीं स्थिति नहीं है ॥ ४७ ॥ हे पिता ! मैं आपकी आज्ञासे वह सब वृत्तान्त कहता हूं और कोई भी मृत्युकालकी सम्पूर्ण घटनाओंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं होगा ॥ ४८ ॥ देहमें स्थित हुआ पित्त कुपित होकर ईंधनके विना भी तीव्र वायुके संचालनेसे दीप्यमान होता है और सब मर्म-

तद् ब्रूहि त्वं महाभाग यत्ते सांशयिकं हृदि ॥ एतावतापि ते प्रीतिमुत्पाद्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥ ४५ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ पिता प्राह ततः पुत्रं श्रद्दधत्तस्य तद्वचः ॥ भवता यद्वयं पृष्टाः संसारग्रहणाश्रयम् ॥ ४६ ॥ पुत्र उवाच ॥ शृणु तात यथा तत्त्वमनुभूतं मयाऽसकृत् ॥ संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते ॥ ४७ ॥ सोऽहं वदामि ते सर्वं तवैवानुज्ञया पितः ॥ उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नान्यो वदिष्यति ॥ ४८ ॥ ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः ॥ भिनत्ति मर्म स्थानानि दीप्यमानो निरिन्धनः ॥ ४९ ॥ उदानो नाम पवनस्ततश्चोर्ध्वं प्रवर्त्तते ॥ भुक्तानामम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत् ॥ ५० ॥ ततो येनाम्बुदानानि कृतान्यन्नरसास्तथा ॥ दत्ताः स तस्य आह्लादमापदि प्रतिपद्यते ॥ ५१ ॥ अन्नानि येन दत्तानि श्रद्धापूतेन चेतसा ॥ सोऽपि तृप्तिमवाप्नोति विनाप्यन्नेन वै तदा ॥ ५२ ॥ येनानृतानि नोक्तानि प्रीतिभेदः कृतो न च ॥ आस्तिकः श्रद्दधानश्च स सुखं मृत्युमृच्छति ॥ ५३ ॥

स्थानको भेदन करता है ॥ ४९ ॥ और उदान नामक शरीरस्थ वायु उसके ऊपर वर्तमान होकर जलीय समस्त भक्ष्य वस्तुकी अधोगति निरोध करती है सुतरां उस समय प्राणीके आत्माका वियोग होता है ॥ ५० ॥ जिसने जल वा अन्न, रस दान किया है, वही उस मृत्युरूप आपत्कालमें प्रसन्न होते हैं ॥ ५१ ॥ जिन्होंने श्रद्धासहित पवित्रमनसे अन्नदान किया है, वह विना अन्न भी उस समय तृप्तिलाभ करते हैं ॥ ५२ ॥ जो पुरुष कभी मिथ्या नहीं बोलते, किसीकी प्रीतिमें भेद नहीं कराते, आस्तिक और श्रद्धावान् हैं, उन्हींकी सुखसे मृत्यु होती है ॥ ५३ ॥

जो देवता और ब्राह्मणकी पूजामें रत हैं, जो असूयाहीन शुद्धचित्त, सुभाषी अर्थात् श्रेष्ठ बोलनेवाले और लज्जावान् हैं, वही सुखपूर्वक प्राणत्याग करते हैं ॥ ५४ ॥ जो काम, क्रोध वा द्वेषके वश होकर कभी धर्मको नहीं छोडते जो कहते हैं, वही करते हैं और सौम्यमूर्त्ति हैं वही सुखसे प्राणत्याग करते हैं ॥ ५५ ॥ और जिन्होंने कभी प्याससे आर्त्त हुए मनुष्यको जल और भूखसे दुःखी हुएको अन्न नहीं दिया, वह उस मृत्युकालके उपस्थित होनेपर दाह और क्षुधाको प्राप्त होते हैं ॥ ५६ ॥ जो काष्ठदान करते हैं, उनको मृत्युकालमें शीत नहीं सताता, चंदनदान करते हैं वह ताप नहीं पाते और जो सदा प्राणियोंको भयभीत करते हैं, उन्हींको मृत्युकालमें कष्टदायक प्राणघ्नी वेदना भोगनी पडती है ॥ ५७ ॥ जो अधम मनुष्य मनुष्योंको मोह और

देवब्राह्मणपूजायां ये रता नोऽनसूयवः ॥ शुक्ला वदान्या ह्रीमन्तस्ते नराः सुखमृत्यवः ॥ ५४ ॥ यो न कामान्न संरम्भान्न द्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत् ॥ यथोक्तकारी सौम्यश्च स सुखं मृत्युमृच्छति ॥ ५५ ॥ अवारिदायिनो दाहं क्षुधां चानन्नदायिनः ॥ प्राप्नुवन्ति नराः काले तस्मिन्मृत्यावुपस्थिते ॥ ५६ ॥ शीतं जयन्ति धनदास्तापं चन्दनदायिनः ॥ प्राणघ्नीं वेदनां कष्टां ये चानुद्वेगकारिणः ॥ ५७ ॥ मोहाज्ञानप्रदातारः प्राप्नुवन्ति महद्भयम् ॥ वेदनाभिरुदग्राभिः प्रपड्यिन्तेऽधमा नराः ॥ ५८ ॥ कूटसाक्षी मृषावादी यश्चासदनुशास्ति वै ॥ ते मोहमृत्यवः सर्वे तथान्ये वेदनिन्दकाः ॥ ५९ ॥ विभीषणाः पूतिगन्धाः कूटमुद्गरपाणयः ॥ आगच्छन्ति दुरात्मानो यमस्य पुरुषास्तदा ॥ ६० ॥ प्राप्तेषु दृक्पथं तेषु जायते तस्य वेपथुः ॥ क्रन्दत्यविरतं सोऽथ भ्रातृमातृसुतानथ ॥ ६१ ॥ सास्य वागस्फुटा तात एकवर्णा विभाव्यते ॥ दृष्टिश्च भ्राम्यते त्रासाच्छ्वासाच्छुष्यत्यथाननम् ॥ ६२ ॥

अज्ञानकी शिक्षा देते हैं, वही प्राणत्यागके समय अत्यन्त भय पाते हैं और महादुःखसे पीडित होते हैं ॥ ५८ ॥ जो झूंठी गवाही देते, मिथ्यावादी, वेदनिन्दक और बुरा शासन करते हैं, उनकी अज्ञानसे मृत्यु होतीहै ॥ ५९ ॥ और उनके मृत्युकालमें पूतिगंधमय कूट मुद्गर हाथमें लिये अत्यन्त भयंकर दुरात्मा यमदूत आते हैं ॥ ६० ॥ ज्योंही यमदूतगण नेत्रोंके सामने आते हैं, उसी समय वह कांपते हुए शरीरसे भाई माता और पुत्रको पुकारकर निरन्तर रोते हैं ॥ ६१ ॥ उस समय उनका वचन ठीक समझमें नहीं आता, एकवर्णमय होता है, दृष्टि घूमने लगती है और त्रास तथा श्वासके कारण मुख सूख जाता है ॥ ६२ ॥

अनन्तर वह ऊर्ध्वश्वास लेतेहुए दृष्टिभंगयुक्त हो वेदनासे ग्रसित होते हैं और वह शरीर छोड देते हैं ॥ ६३ ॥ फिर वायुके आगे होकर कर्मजनित यंत्रणा अर्थात् नरककी यातना भोगनेके लिये विना माता पिताके उत्पन्न अन्य देह धारण करते हैं और वह देह पूर्वकी समान वयस, अवस्था और संस्थानसे संयुक्त होता है ॥ ६४ ॥ अनन्तर यमदूत उनको दारुण पाशमें बांधकर दण्डके प्रहारसे संभ्रान्त करते हुए दक्षिण दिशामें खैंचते हैं ॥ ६५ ॥ कुश, कांटे, वल्मीक, शंकु (कील) और पत्थरोंसे कर्कश, कहीं जलती हुई अग्निसे व्याप्त, सैकडों गढे पडे हुए ॥ ६६ ॥ कहीं सूर्यकी महा उष्ण किरणोंसे जलतेहुए और कहीं सैकडों गीदडी शब्द करती हैं कहीं यमदूत खैंच रहे हैं ॥ ६७ ॥ वे घोर उस प्राणीको खैंचते हैं और सैकडों गीदड उसको

ऊर्ध्वश्वासान्वितः सोऽथ दृष्टिभंगसमन्वितः ॥ ततः स वेदनाविष्टस्तच्छरीरं विमुंचति ॥ ६३ ॥ वाय्वग्रसारी तद्रूप देहमन्यत्प्रपद्यते ॥ तत्कर्मजं यातनार्थं न मातृपितृसम्भवम् ॥ तत्प्रमाणवयोवस्थासंस्थानैः प्राग्भवं यथा ॥६४॥ ततो दूतो यमस्याशु पाशैर्बध्नाति दारुणैः ॥ दण्डप्रहारसंभ्रान्तं कर्षते दक्षिणां दिशम् ॥ ६५ ॥ कुशकण्टकवल्मीकशंकुपाषाणकर्कशे ॥ तथा प्रदीप्तज्वलने क्वचिच्छ्वभ्रशतोत्कटे ॥६६॥ प्रदीप्तादित्यतप्तेन दह्यमानेन तदंशुभिः ॥ कृष्यते यमदूतैश्च शिवासन्नादभीषणैः ॥ ६७ ॥ विकृष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाणः शिवाशतैः ॥ प्रयाति दारुणे मार्गे पापकर्मा यमक्षयम् ॥ ६८ ॥ छत्रोपानत्प्रदातारो ये च वस्त्रप्रदा नराः ॥ ते यान्ति मनुजा मार्गं तं सुखेन तथान्नदाः ॥ ६९ ॥ विमानैः सोज्ज्वलैर्यांति भूमिदानप्रदा नराः ॥ एवं क्लेशाननुभवन्नवशः पापपीडितः ॥ नीयते द्वादशाहेन धर्मराजपुरं नरः ॥७०॥ कलेवरे दह्यमाने महान्तं दाहमृच्छति ॥ ताडचमाने तथैवार्तिं छिद्यमाने च दारुणाम् ॥ ७१ ॥

खाते हैं, इस प्रकारके दारुण मार्गसे पापी पुरुष यमलोकको जाते हैं ॥ ६८ ॥ जिन मनुष्योंने छत्री, जूता, वस्त्र वा अन्नका दान किया है, वह सहजमें ही सुखपूर्वक उस मार्गमें जासकते हैं ॥ ६९ ॥ जिन मनुष्योंने भूमिका दान किया है, वह उज्ज्वल विमानोंमें बैठकर जाते हैं । पापपीडित अर्थात् पापात्मा मनुष्य इस प्रकार क्लेशानुभवसे विवश होकर बारहवें दिन धर्मराजके नगरमें पहुँचते हैं ॥ ७० ॥ जब शरीर जलता है, तब वह महादाह भोगते हैं और देहके ताडित वा छेदित होनेसे दारुण वेदना भोगते हैं ॥ ७१ ॥

यह देह जब जलमें गीला होता है, तब देहान्तर अवलम्बन करनेपरभी अपने कर्मके फलसे सदा दुःख अनुभव करना पडता है ॥ ७२ ॥ बांधवगण उसके उद्देश्यमें जो तिलसहित जल वा पिण्ड देते हैं, उस समय वही उसके निकट पहुँचता है और वह उसीको भोजन करता है ॥ ७३ ॥ बांधवोंको तेल लगाना उबटन मलना वर्जित है. कारण कि, उस मृतकके भोजनको यही वस्तु प्राप्त होती है ॥ ७४ ॥ और बांधवोंके भूमिमें शयन करनेसे उसका क्लेश दूर होता है और दान करनेसे वह जीव प्रसन्न होता है ॥ ७५ ॥ वह बारहवें दिन फिर अपने घर पहुंचता है और उसके उद्देश्यमें जो जल तथा पिण्डादि दियाजाता है, वह उसीको खाता है ॥ ७६॥ बारह दिन बीतने पर फिर यमदूतोंके द्वारा आकर्षित हो अत्यन्त बृहत् भीषणाकार लोहमय यम-

क्लिद्यमाने चिरतरं जन्तुर्दुःखमवाप्नुते ॥ स्वेन कर्मविपाकेन देहान्तरगतोऽपि सन् ॥ ७२ ॥ तत्र यद्बान्धवास्तोयं प्रयच्छन्ति तिलैः सह॥ यच्च पिण्डं प्रयच्छन्ति नीयमानस्तदश्नुते ॥ ७३ ॥ तैलाभ्यंगो बान्धवानामङ्गसंवाहनं च यत् ॥ तेन चाप्यायते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति स्वबान्धवाः ॥ ७४ ॥ भूमौ स्वपद्भिर्नात्यन्तं क्लेशमाप्नोति बान्धवैः ॥ दानं ददद्भिश्च तथा जन्तुराप्याय्यते मृतः ॥७५॥ नयिमानः स्वकं गेहं द्वादशाहं स पश्यति ॥ उपभुङ्क्ते तथा दत्तं तोयपिण्डादिकं भुवि ॥७६॥ द्वादशाहात्परं घोरमावासं भीषणाकृतिम् ॥ याम्यं पश्यत्यथो जन्तुः कृष्यमाणः पुरं ततः ॥७७॥ गतमात्रोऽतिरक्ताक्षं भिन्नाञ्जनचयप्रभम् ॥ मृत्युकालान्तकादीनां मध्ये पश्यति वै यमम् ॥७८॥ दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीदारुणाकृतिम् ॥ विरूपैर्भीषणैर्वक्रैर्वृतं व्याधिशतैः प्रभुम् ॥ ७९ ॥ दण्डासक्तं महाबाहुं पाशहस्तं सुभैरवम् ॥ तन्निर्दिष्टां ततो याति गतिं जन्तुः शुभाशुभाम् ॥८०॥ रौरवे कूटसाक्षी तु याति यश्चानृती नरः ॥ ब्रह्मघ्नो हत्यया दुष्टो गोघ्नश्च पितृघातकः ॥८१॥

पुर देखता है ॥ ७७ ॥ वहा जाय मृत्यु, काल, अन्तकादि पार्षदोंसे युक्त रक्तलोचन और अंजनपुंजकी समान कृष्णवर्ण यमराजको देखता है ॥ ७८ ॥ वह डाढ और भ्रुकुटीभंग अतीव कराल वदन तथा विरूप भीषणाकार और वक्राकृति सैकडों व्याधिके द्वारा चारों ओरसे घिरे हुए हैं ॥ ७९ ॥ वह महाबाहु यम दण्ड और पाश धारण करते हैं, इससे उनका आकार बडा भयंकर है, प्राणी उन्हीं यमराजकी निर्दिष्ट की हुई अच्छी बुरी गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ८० ॥ जो मनुष्य मिथ्यावादी हैं और मिथ्यासाक्षी देते हैं वह रौरव नामक नरकमें गिरते हैं. ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले, गौकी हत्या करनेवाले, पिताका घात करनेवाले ॥ ८१ ॥

खेत, स्त्री, सीमा, धरोहरके हरनेवाले, गुरुकी स्त्री वा कन्यासे भोग करनेवाले उसी रौरव नरकमें जाते हैं ॥ ८२ ॥ हे तात ! उस रौरव नरकका स्वरूप कहता हूं, सुनिये—वह रौरव नरक दो हजार योजनपरिमित लम्बा चौडा है, और उसमें जांघकी बराबर गहरा गर्त (गढा) है ॥ ८३ ॥ उस गर्त्तमें मृत्तिकाके समान अंगारे और उन तीव्र अंगारोंसे तप्त होकर वह सदा जलता रहता है ॥ ८४ ॥ यमदूत पापात्मा मनुष्यांको उसमें डालदेते हैं और वह उस तीव्र अग्निमें दह्यमान होकर इधर उधर दौडते हैं ॥ ८५ ॥ इस प्रकार उसके पैर पग पगपर अग्निसे फटते और नष्ट होते हैं कि, दिन रातमें एकवार पैर रखने वा पैर उठानेमें समर्थ होता है ॥ ८६ ॥ इस भांति चरण रखता हुआ सहस्रयोजन उत्तीर्ण होने पर वहांसे छुटकारा पाता है और पापशुद्धिके

क्षेत्रदारापहारी च सीमानिक्षेपहारकः ॥ गुरुपत्न्याभिगामी च कन्यागामी तथैव च ॥ ८२ ॥ तस्य स्वरूपं गदतो रौरवस्य निशामय ॥ योजनानां सहस्रे द्वे रौरवो हि प्रमाणतः ॥ जानुमात्रप्रमाणश्च ततः श्वभ्रः सुदुस्तरः ॥ ८३ ॥ तत्राङ्गारचयोपेतं कृतं च धरणीसमम् ॥ जाज्वल्यमानस्तीव्रेण तापिताङ्गारभूमिना ॥ ८४ ॥ तन्मध्ये पापकर्माणं विमुंचन्ति यमानुगाः ॥ स दह्यमानस्तीव्रेण वह्निना तत्र धावति ॥ ८५ ॥ पदे पदे च पादोऽस्य शीर्यंते जीर्यते पुनः ॥ अहोरात्रेणोद्धरणं पादन्यासं च गच्छति ॥ ८६ ॥ एवं सहस्रमुत्तीर्णो योजनानां विमुच्यते ॥ ततोऽन्यत्पापशुद्धयर्थं तादृङ्निरयमृच्छति ॥८७ ॥ ततः सर्वेषु निस्तीर्णः पापी तिर्यक्त्वमश्नुते ॥ कृमिकीटपतङ्गेषु श्वापदे मशकादिषु ॥ ८८ ॥ गत्वा गजद्रुमाद्येषु गोष्वश्वेषु तथैव च ॥ अन्यासु चैव पापासु दुःखदासु च योनिषु ॥ ८९ ॥ मानुष्यं प्राप्य कुब्जो वा कुत्सितो वामनोऽपि वा ॥ चण्डालपुलकसाद्यासु नरो योनिषु जायते ॥ ९० ॥

लिये उसीके समान दूसरे नरकमें जाता है ॥ ८७ ॥ पापी मनुष्य इस प्रकार सब नरकोंसे उत्तीर्ण होकर तिर्यक् योनिको प्राप्त होता है । फिर क्रमानुसार कृमि, कीट, पतंग, श्वापद (हिंसकजन्तु), मच्छर ॥ ८८ ॥ गौ, घोडा, हाथी और वृक्ष लतादि अनेक प्रकारकी कष्टदायक पाप योनियोंमें जन्मग्रहण-पूर्वक ॥ ८९ ॥ मनुष्यजन्मको प्राप्त हो कुबडा, कुत्सित और बौना आदि रूपसे चाण्डाल और पुल्कस इत्यादि निन्दनीय योनियोंमें जन्म लेता है ॥ ९० ॥

फिर शेषपुण्यसे मनुष्ययोनिको प्राप्त होकर (यदि पुण्यसंचय करे तो) आरोहिणी गति पाय क्रमशः शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय ॥ ९१ ॥ ब्राह्मण और देवेन्द्रतक हो सकता है (और यदि फिर अधर्माचरण करे तो पुनर्वार) अवरोहिणी गतिको प्राप्त हो क्रमानुसार उन सब नरकोंमें गिरता है ॥ ९२ ॥ अब पुण्यवान् मनुष्य जिस प्रकार जाते हैं वह कहता हूं, सुनो--पुण्यवान् मनुष्य भी यमकी निर्दिष्ट करीहुई पुण्यमयी गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ९३ ॥ जिस समय वह गमन करते हैं, तब उनके चारों ओर गंधर्व गातेहुए जाते हैं अप्सरा नाचती हैं तथा हार नूपुर और माधुर्य इत्यादिसे शोभित अति उत्तम ॥ ९४ ॥ विमान उनके निकट आते हैं और वह शीघ्रही नानाप्रकारके दिव्य माल्यधारणसे उज्ज्वल हो उनमें बैठकर जाते हैं, फिर पुण्य शेष होनेपर वह विमानसे

अवशिष्टेन पापेन पुण्येन च समन्वितः ॥ ततश्चारोहणीं जातिं शूद्रवैश्यनृपादिकाम् ॥ ९१ ॥ विप्रदेवेन्द्रतां चापि कदाचिदवरोहणम् ॥
एवं तु पापकर्माणो नरकेषु पतन्त्यधः ॥ ९२ ॥ यथा पुण्यकृतो यान्ति तन्मे निगदतः शृणु ॥ ते यमेन विनिर्दिष्टां यान्ति पुण्यां गतिं
नराः ॥ ९३ ॥ प्रगीतगन्धर्वगणैः प्रनृत्ताप्सरसां गणैः ॥ हारनूपुरमाधुर्यशोभितान्युत्तमानि च ॥ ९४ ॥ प्रयान्त्याशु विमानानि नाना-
दिव्यस्रगुज्ज्वलाः ॥ तस्माच्च प्रच्युता राज्ञामन्येषां च महात्मनाम् ॥ ९५ ॥ जायन्ते च कुले तत्र सद्वृत्तपरिपालकाः ॥ भोगान्संप्राप्नुव-
न्त्यग्र्यांस्ततो यान्त्यूर्ध्वमन्यथा ॥ ९६ ॥ अवरोहणीं च सम्प्राप्य पूर्ववद्यान्ति मानवाः ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यथा जन्तुर्विपद्यते ॥ अतः
शृणुष्व विप्रर्षे यथा गर्भं प्रपद्यते ॥ ९७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे मृत्युदशावर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ पुत्र
उवाच ॥ निषेकं मानवस्त्रीणां बीजं प्रोक्तं रजस्यथ ॥ विमुक्तमात्रो नरकात्स्वर्गाद्वापि प्रपद्यते ॥ १ ॥

गिरकर अन्य महात्मा ॥ ९५ ॥ वा राजकुलमें जन्म ले सद्वृत्तिके पालन करनेवाले मनुष्य होते हैं और अनेक प्रकारके भोगोंको भोगकर क्रमशः ऊर्ध्वगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ९६ ॥ और यदि अवरोहिणी दशामें प्राप्त हो, तो पहिले कहेके अनुसार समस्त भोग करते हैं. हे तात ! प्राणिगण जिस प्रकारसे मृत्युको प्राप्त होते हैं, वह आपसे सब वर्णन किया हे विप्रर्षे ! अब जिस प्रकारसे गर्भधारण होता है, वह सुनो ॥ ९७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ पुत्रने कहा—हे तात ! निषेककालमें स्त्रीके रजमें मनुष्यका जो वीर्य प्राप्त होताहै, स्वर्ग वा नरकसे छूटते ही मनुष्य उसको अवलम्बन करता है ॥ १ ॥

और उसके द्वारा अभिभूत होकर वह दोनों बीज स्थैर्यभावको प्राप्त होते हैं, अर्थात् स्थिर हो जाते हैं, फिर कुछ गाढे बुलबुले लंबे गोल २ और अंडाकार भावको प्राप्त होते हैं ॥ २॥ उस लंबे गोल २ अंडाकारमें जो सूक्ष्म बीज रहता है, उसको अंकुर कहते हैं और अंकुरसे विभागके क्रमानुसार पांचों अंगकी उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥ फिर समस्त उपाङ्ग अर्थात् अंगुली, नेत्र, नासिका, मुख और कान इत्यादिकी उत्पत्ति होती है और इस उपाङ्गसे जो अंकुर उत्पन्न होता है, उससे नखादिकी उत्पत्ति होती है ॥ ४ ॥ फिर चर्मके ऊपर रोमावली और केश उत्पन्न होते हैं इस प्रकार उसके सब अंग और उद्भवकोश दोनोंही समान भावसे बढते हैं ॥ ५ ॥ अर्थात् नारियलका फल जिस प्रकार कोषके सहित बढता रहता है, ऐसेही वह प्राणी भी गर्भकोषके

तेनाभिभूतं तत्स्थैर्यं याति बीजद्वयं पितः ॥ कललत्वं बुद्बुदत्वं ततः पेशित्वमेव च ॥ २ ॥ पेश्यास्तथा यथा बीजादंकुरादिसमुद्भवः ॥ अङ्गानां च तथोत्पत्तिः पंचानामनुभागशः ॥ ३ ॥ उपाङ्गान्यंगुलीनेत्रनासास्यश्रवणानि च ॥ प्ररोहं यान्ति चाङ्गेभ्यस्तद्वत्तेभ्यो नखादिकम् ॥ ४ ॥ त्वचि रोमाणि जायन्ते केशाश्चैव ततः परम् ॥ समं समृद्धिमायाति तेनैवोद्भवकोशकः ॥ ५ ॥ नारिकेलफलं यद्वत्स कोशं वृद्धिमृच्छति ॥ तद्वत्प्रयात्यसौ वृद्धिं स कोशोऽधोमुखः स्थितः ॥ ६ ॥ तले तु जानुपार्श्वाभ्यां करौ न्यस्य स वर्द्धते ॥ अंगुष्ठौ चोपरि न्यस्तौ जान्वोरग्रे तथांगुली ॥ ७ ॥ जानुपृष्ठे तथा नेत्रे जानुमध्ये च नासिका ॥ स्फिचौ पार्ष्णिद्वयस्थौ च बाहुजंघे बहिःस्थिते ॥ ८ ॥ एवं वृद्धिं क्रमाद्याति जन्तुः स्त्रीगर्भसंस्थितः ॥ अन्यसत्त्वोदरे जन्तोर्यथा रूपं तथा स्थितिः ॥ ९ ॥

सहित नीचेको मस्तक किये वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ प्राणी जिस समय गर्भकोषमें नीचेको मुख किये वास करता है, तो जानु और पार्श्वके सहित दोनों हाथ निम्नभागमें विन्यस्त रहते हैं, दोनों अँगूठे जानुके ऊपर रहते हैं और अन्यान्य समस्त अंगुली जानुके अग्रभागमें फैली रहती हैं ॥ ७ ॥ वहां दोनों नेत्र जानुके पृष्ठमें और नासिका दोनों जानुके मध्यभागमें संलग्न रहती हैं, उस समय दोनों स्फिक (कूले) पार्ष्णिके ऊपर और बाहु तथा जंघा बहिर्भागमें स्थित रहती हैं ॥ ८ ॥ प्राणी गर्भवासमें स्थित होकर इस प्रकार क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होता है और अन्यान्य प्राणियोंमें जिसकी जैसी आकृति है, वह उसी प्रकार वहां वास करता है ॥ ९ ॥

उदरस्थ अग्निके द्वारा क्रमशः कठिन होता है और भोजन किये वा पियेहुए पदार्थसे उसका जीवन धारण होता है, गर्भवास भी पुण्य और पापकी अधिकताके कारण भिन्न भिन्न प्रकारका है ॥ १० ॥ जो हो, उसकी नाभिमें जो आप्यायनी नामक नाडी निबद्ध रहती है; वह स्त्रीकी आंतमें संलग्न है ॥ ११ ॥ उस छिद्रद्वारा स्त्रीके खाये पिये सब पदार्थ वहां पहुँचते रहते हैं और उनके द्वारा देह तृप्त होकर वह जीव बढता रहता है ॥ १२ ॥ तब अनेक प्रकार संसारभूमि उसको स्मरण होती है और चारों ओरसे पीडित होकर वह अत्यन्त दुःखको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ दैवजनित पूर्वानुभूत शत शत जन्मके सब दुःखोंको स्मरण कर उस समय वह इस प्रकार चिन्ता करता है कि, "मैं इस उदरसे निकलते ही फिर ऐसे कार्य कभी नहीं करूंगा, अबकी बार इस

काठिन्यमग्निनायाति भुक्तपीतेन जीवति ॥ पुण्यापुण्याश्रयमयी स्थितिर्जन्तोस्तथोदरे ॥ १० ॥ नाडी चाप्यायनी नाम नाभ्यां तस्य निबध्यते ॥ स्त्रीणां तथान्त्रशुषिरे सा निबद्धोपजायते ॥ ११ ॥ क्रामन्ति भुक्तपीतानि स्त्रीणां गर्भोदरे यथा ॥ तैराप्यायितदेहोऽसौ जन्तुर्वृद्धिमुपैति वै ॥ १२ ॥ स्मृतिं तत्र प्रयान्त्यस्य बह्व्यः संसारभूमयः ॥ ततो निर्वेदमायाति पीड्यमान इतस्ततः ॥ १३ ॥ पुनर्नैवं करिष्यामि मुक्तमात्र इहोदरात् ॥ तथा तथा यतिष्यामि गर्भं नाप्स्याम्यहं यथा ॥१४॥ इति चिन्तयते स्मृत्वा जन्मदुःखशतानि वै ॥ यानि पूर्वानुभूतानि दैवभूतानि यानि वै ॥१५॥ ततः कालक्रमाज्जन्तुः परिवर्तत्यधोमुखः ॥ नवमे दशमे वापि मासि सञ्जायते ततः ॥ १६ ॥ निष्क्राम्यमाणो वातेन प्राजापत्येन पीड्यते ॥ निष्क्राम्यते च विलपन्हृदि दुःखनिपीडितः ॥ १७ ॥ निष्क्रान्तश्चोदरान्मूर्च्छामसह्यां प्रतिपद्यते ॥ प्राप्नोति चेतनां चासौ वायुस्पर्शसमान्वितः ॥ १८ ॥

विषयमें यत्नवान् रहूंगा, जिससे पुनर्वार गर्भवासका दुःख भोगना न पडे" ॥१४॥१५॥ अनन्तर वह अधोमुख प्राणी कालक्रमसे नववें वा दशवें महीनेमें जब परिवर्तित होता है, तब उसका जन्म होता है ॥ १६ ॥ उस काल वह प्राजापत्य वायुसे अत्यन्त पीडित होकर निकलता है और हृदयके अत्यन्त दुःखसे पीडित होकर विलाप करताहुआ बाहर आता है ॥ १७ ॥ इस प्रकार उदरसे निकलतेही उसको असह्य मूर्च्छा होती है और फिर वायुके स्पर्शसे चेतनाभी होजाती है ॥ १८ ॥

अनन्तर मोहिनी वैष्णवी माया उसको लिपट जाती है और उस मायासे विमोहितात्मा होनेपर उसका ज्ञान नष्ट होजाता है ॥ १९ ॥ इस प्रकार ज्ञान नष्ट होनेपर वह प्राणी क्रमानुसार बाल्य कौमार यौवन और वृद्धावस्था इत्यादि नाना दशा भोगता है ॥ २० ॥ और फिर प्राण त्याग करके पुनर्वार उसी रूपमें जन्म लेता है सुतरां घटीयंत्रके समान इस संसारचक्रमें निरंतर घूमता रहता है ॥ २१ ॥ वह कभी स्वर्गमें, कभी नरकमें और कभी दोनों स्थानोंमें गमन करता रहता है ॥ २२ ॥ और कभी इस स्थानमेंही फिर जन्म ग्रहण करके अपने सब कर्मफल भोगता है, कभी सब कर्मोंका फल भोगकर थोडेही कालमें प्राणत्याग करता है ॥ २३ ॥ हे द्विजसत्तम ! कभी केवल सामान्य शुभाशुभ द्वारा अति अल्पकाल स्वर्ग वा नरक भोगता है ॥ २४ ॥ स्वर्ग-

ततस्तं वैष्णवीमाया समास्कन्दति मोहिनी ॥ तया विमोहितात्मासौ ज्ञानभ्रंशमवाप्नुते ॥ १९ ॥ भ्रष्टज्ञानो बालभावं ततो जन्तुः प्रपद्यते ॥ ततः कौमारकावस्थां यौवनं वृद्धतामपि ॥ २० ॥ पुनश्च मरणं तद्वज्जन्म चाप्नोति मानवः ॥ ततः संसारचक्रेऽस्मिन्भ्राम्यते घटियन्त्रवत् ॥ २१ ॥ कदाचित्स्वर्गमाप्नोति कदाचिन्निरयं नरः ॥ निरयं चैव स्वर्गं च कदाचिच्च मृतोऽश्नुते ॥२२ ॥ कदाचिदत्रैव पुनर्जातः स्वं कर्म सोऽश्नुते ॥ कदाचिद्भुक्तकर्मा च मृतः स्वल्पेन गच्छति ॥ २३ ॥ कदाचिदल्पैश्च ततो जायतेऽत्र शुभाशुभैः ॥ स्वर्लोके नरके वापि भुक्तप्रायो द्विजोत्तम ॥ २४॥ नरकेषु महद्दुःखमेतद्यत्स्वर्गवासिनः ॥ दृश्यन्ते तात मोदन्ते पात्यमानाश्च नारकाः ॥२५॥ स्वर्गेऽपि दुःखमतुलं यदारोहणकालतः ॥ प्रभृत्यहं पतिष्यामीत्येतन्मनसि वर्तते ॥ २६ ॥ नरकांश्चैव संप्रेक्ष्य महद्दुःखमवाप्यते ॥ एतां गतिमहं गंतेत्यहर्निशमनिर्वृतः ॥ २७ ॥

वासियोंको सुखमें अनेक प्रकारसे आमोद करता देखकर नरकमें पडे पातकियोंके मनमें अत्यन्त दुःख उपस्थित होता है ॥ २५ ॥ किन्तु यहां स्वर्गमें भी दुःखकी सीमा नहीं है, क्योंकि स्वर्गमें रहनेके समयतक नित्य मनमें यह दुःख उपस्थित रहता है कि, " पुण्यक्षय होनेपर हमको भी इसी प्रकार गिरना होगा " ॥ २६ ॥ हे तात ! उन नरकवासियोंको देखकर अत्यन्त दुःखी होते हैं और " हम भी ऐसीही गतिको प्राप्त होंगे " यह विचार कर उनको रात दिन अत्यन्त दुःखी होना पडता है ॥ २७ ॥

एक तो गर्भवासही अत्यन्त दुःखमय है उसमें भी फिर योनिके छिद्र द्वारा होकर जन्मग्रहण करना अत्यन्तही दुःखमय है, यदि जन्म हुआ तो बाल्यावस्था और वृद्ध अवस्था दोनों दुःखमय हैं ॥ २८ ॥ और काम ईर्षा और क्रोध इत्यादि कारणोंसे यौवन काल तो अत्यन्तही दुःखमय है और इसके ऊपर वृद्धावस्था तो दुःखकी खानिस्वरूप है और मरनेमें तो अत्यन्त कठिन दुःख है ही ॥२९॥ तदनन्तर यमदूतगण जब उनको खैंचकर नरकमें डालते हैं, तब फिर दुःखकी सीमा नहीं रहती इस परभी फिर गर्भवास जन्मग्रहण, मरण और नरकमें वास होता है ॥ ३० ॥ इस प्रकार इस संसारचक्रमें सब प्राणी प्राकृत बंधनमें बँधकर घटीयंत्रके समान सदा भ्रमण करते हैं वारंवार बंधनका दुःख भोगते हैं ॥ ३१ ॥ सुतरां हे तात! सैकडों दुःखोंसे भरे हुए

गर्भवासे महद्दुःखं जायमानस्य योनितः ॥ जातस्य बालभावे च वृद्धत्वे दुःखमेव च ॥ २८ ॥ कामेर्ष्याक्रोधसम्बन्धं यौवनं चातिदुःसहम् ॥ दुःखप्राया वृद्धता च मरणे दुःखमुत्तमम् ॥ २९ ॥ कृष्यमाणश्च याम्यैश्च नरकेषु च पात्यतः ॥ पुनश्च गर्भो जन्माथ मरणं नरकस्तथा ॥ ३० ॥ एवं संसारचक्रेऽस्मिञ्जन्तवो घटियन्त्रवत् ॥ भ्राम्यन्ते प्राकृतैर्बन्धैर्बद्धा वध्यन्ति चासकृत् ॥ ३१ ॥ नास्ति तात सुखं किंचिदत्र दुःखशताकुले ॥ तस्मान्मोक्षाय यतता कथं सेव्या मया त्रयी ॥ ३२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे गर्भस्थितिवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ पितोवाच ॥ साधु वत्स त्वया ख्यातं संसारगहनं परम् ॥ ज्ञानप्रदानसंभूतं समाश्रित्य महाफलम् ॥ १ ॥ तत्र ते नरकाः सर्वे यथा वै रौरवस्तथा ॥ वर्णितास्तान्समाचक्ष्व विस्तरेण महामते ॥ २ ॥ पुत्र उवाच ॥ रौरवस्ते समाख्यातः प्रथमं नरको मया ॥ महारौरवसंज्ञं तु शृणुष्व नरकं पितः ॥ ३ ॥

इस संसारमें सुखका लेश मात्रभी नहीं है, इसलिये मैं जब मुक्ति लाभके निमित्त यत्न करता हूं तो फिर त्रयीविद्याधर्मकी सेवा क्यों करूं मैं तो अपराविद्या प्राप्त करूंगा ॥ ३२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ पिताने कहा–हे साधु वत्स! तुमने ज्ञान देनेके मिस महाफल देनेवाला परम संसारगहनका विषय भलीभांति वर्णन किया ॥ १ ॥ और रौरव तथा अन्यान्य नरकोंका जो विषय वर्णन किया, हे महामते! अब वही विस्तारसहित वर्णन करो ॥ २ ॥ पुत्र बोला–हे पिता! मैंने पहिले आपसे रौरव नरकका वर्णन तो कियाही है, अब महारौरव नामक नरकका विषय वर्णन करता हूं, सुनिये ॥ ३ ॥

न जाने योग्य मार्गमें जानेवाले अभक्ष्यभक्षण करनेवाले, मित्रद्रोही, स्वामीके विश्वासका नाश करनेवाले ॥ ४ ॥ पराई स्त्रीमें गमन करनेवाले, अपनी स्त्रीका त्याग करनेवाले, मार्ग, तडाग और उपवनोंके तोडनेवाले ॥ ५ ॥ ऐसे ऐसे पापियोंको यमदूत वहां लेजाकर जलाते हैं, प्रमाण उसका बारह हजार योजन चारों ओर है, उसकी पृथ्वी ताम्रमयी है, जिसके नीचे अग्निकी खानि है ॥ ६ ॥ यह ताम्रमयी भूमि अनलके तापसे तप्त हो बिजलीकी प्रभाके समान समस्त दिशाविदिशा प्रकाशमान करती है, उसका देखना वा स्पर्श करना अत्यन्त भयंकर है ॥ ७ ॥ यमदूत पापियोंके हाथ पैर बांधकर उसमें छोड देते हैं और पापी उसमें

अगम्यागमने ये च अभक्ष्यभक्षणे रताः ॥ मित्रद्रोहकराश्चैव स्वामिविश्रंभघातकाः ॥ ४ ॥ परदाररताश्चैव स्वदारपरिवर्जिनः ॥ मार्गभंगकरा ये च तडागारामभेदकाः ॥ ५ ॥ एतेऽन्ये च दुराचारा दह्यन्ते तत्र किंकरैः ॥ योजनानां सहस्राणि सप्त पंच समन्ततः ॥ तत्र ताम्रमयी भूमिरधरतस्या हुताशनः ॥ ६ ॥ तत्तापतप्ता सा सर्वा प्राद्याद्द्युतसमप्रभा ॥ विभात्यातिमहारौद्रा दर्शनस्पर्शनादिषु ॥ ७ ॥ तस्यां बद्धः कराभ्यां च पद्भ्यां चैव यमानुगैः ॥ मुच्यते पापकृन्मध्ये लुंठ्यमानः स गच्छति ॥ ८ ॥ काकैर्बकैर्वृकोलूकैर्वृश्चिकैर्मशकैस्तथा ॥ भक्ष्यमाणस्तथा गृध्रैर्द्रुतं मार्गे विकृष्यते ॥ ९ ॥ दह्यमानः पितर्मातर्भ्रातस्तातेति चाकुलः ॥ वदत्यसकृदुद्विग्नो न शान्तिमधिगच्छति ॥ १० ॥ एवं तस्मान्नरैर्मोक्षो ह्यतिक्रान्तैरवाप्यते ॥ वर्षायुतायुतैः पापं यः कृत दुष्टबुद्धिभिः ॥ ११ ॥ तथान्यस्तु तमो नाम सोऽतिशीतः स्वभावतः ॥ महारौरववद्दीर्घस्तथातितमसावृतः ॥ १२ ॥ गोवधश्च कृतो येन भ्रातणां घात एव च ॥ अवन्नबालघाती च नीयते शीतसंकरे ॥ १३ ॥

पडे हुए लोटते हैं और उसके भीतर जाते हैं ॥ ८ ॥ मार्गमें वह काक, बगुल, भेडिये, उल्लू, बीछू, मच्छर और गृध्र इत्यादिके द्वारा भक्षित होकर आकर्षित होते हैं ॥ ९ ॥ फिर दाहकी यंत्रणासे पीडित होकर व्याकुल चित्तसे " माता ! पिता ! भ्राता " इत्यादि शब्द करते हैं और अत्यन्त उद्विग्न होकर शान्तिलाभ नहीं कर सकते हैं ॥ १० ॥ जो दुष्टबुद्धि मनुष्य सदा पाप करते हैं, वह इस प्रकार सहस्र सहस्र वर्षमें उसको अतिक्रम कर वहांसे छुटकारा पाते हैं ॥ ११ ॥ इसके पीछे घोर अंधकारसे ढकाहुआ तम नामक एक नरक है, वह महारौरव नरकके समान दीर्घ और स्वभावसेही अत्यन्त शीतमय है ॥ १२ ॥ उसमें गोवध करनेवाले भाईके मारनेवाले और बालकोंका घात करनेवाले मनुष्य इस शीत संकटमें डाले जाते हैं ॥ १३ ॥

जो इस नरकमें गिरते हैं वह उस दारुण अंधकारमें शीतसे आर्त्त हो इधर उधर दौडते हैं और अन्यान्य नारकियोंके संग मिलित हो उनके शरीरसे लिपट परस्परका आश्रय करके वास करते हैं ॥ १४ ॥ शीतकी पीडासे अत्यन्त कांपनेके कारण उनके दांत टूटते हैं और भूख प्यास तथा अन्यान्य नानाप्रकारके समस्त उपद्रव अत्यन्त प्रबल होते हैं ॥ १५ ॥ हिमके खंड वहन करनेवाली दारुण वायु उनकी अस्थि भंग कर डालती है और उनसे जो मज्जा तथा रुधिर गिरता है वह अत्यन्त भूखसे आतुर होकर उसीको भोजन करते हैं ॥ १६ ॥ और आपसमें मिलित होकर एक दूसरेका शरीर चाटते हैं और इधर उधर भ्रमण करते हैं, इस प्रकारसे वहां मनुष्योंको बडा क्लेश होता है ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! जबतक सम्यक् प्रकार पापोंका क्षय नहीं होता, मनुष्य तबतक उस

शीतार्त्तास्तत्र धावन्ति नरास्तमसि दारुणे ॥ परस्परं समासाद्य परिरभ्याश्रयन्ति च ॥ १४ ॥ दन्तास्तेषां च भज्यंते शीतार्त्तिपरिकम्पिताः ॥ क्षुत्तृष्णा प्रबला तत्र तथैवान्येऽप्युपद्रवाः ॥ १५ ॥ हिमखण्डवहो वायुर्भिनत्त्यस्थीनि दारुणः ॥ मज्जासृग्गलितं तस्मादश्नुवन्ति क्षुधान्विताः ॥ १६ ॥ लेलिह्यमाना भ्राम्यन्ते परस्परसमागमे ॥ एव तत्रापि सुमहान्क्लेशस्तमसि मानवैः ॥ १७ ॥ प्राप्यते ब्राह्मणश्रेष्ठ यावद्दुष्कृतसंक्षयः ॥ निकृन्तन इति ख्यातस्ततोऽन्यो नरकोत्तमः ॥ १८ ॥ तस्मिन्कुलालचक्राणि भ्राम्यन्त्यविरतं पितः ॥ अदृष्टं दृष्टवद्ब्रूयादश्रुतं श्रुतमेव च ॥ १९ ॥ एकाक्षरं गुरुं यस्तु दुराचारो न मन्यते ॥ न शृणोति गुरोर्वाक्यं शास्त्रवाक्यं तथैव च ॥ २० ॥ एते पापा दुराचारास्तत्र तैर्यमपूरुषैः ॥ तेष्वारोप्य निकृत्यन्ते कालसूत्रेण मानवाः ॥ २१ ॥ यमानुगांगुलिस्थेन आपादतलमस्तकम् ॥ न चैषां जीवितभ्रंशो जायते द्विजसत्तम ॥ २२ ॥ छिन्नानि तेषां शतशः खण्डान्यैक्यं व्रजन्ति च ॥ एवं वर्षसहस्राणि छिद्यन्ते पापकर्मिणः ॥ २३ ॥

तम नामक नरकमें इस प्रकार महा क्लेश भोगते रहते हैं, इसके पीछे निकृन्तन नामसे विख्यात एक प्रधान नरक है ॥ १८ ॥ जो सदा कुम्हारके चाककी समान घूमाकरता है और उस चक्रमें पापियोंको कालसूत्रसे काटता रहता है जो न देखे हुएको देखेहुए और न सुनेहुएको सुनेहुएकी समान कहता है ॥ १९ ॥ जो दुराचारी एकाक्षर देनेवाले गुरुको ईश्वररूप नहीं मानता, गुरु वा शास्त्रका वचन नहीं सुनता ॥ २० ॥ वे पापात्मा दुराचारी मनुष्य उस चक्रके ऊपर आरोपित होकर यमदूतोंके हाथोंमें स्थित कालसूत्र द्वारा पैरोंसे मस्तकपर्यन्त काटे जाते हैं, किन्तु हे द्विजसत्तम ! इसपरभी उनका जीवन नष्ट नहीं होता ॥ २१ ॥ २२ ॥ शत २ खंड होकरभी एकत्र संयुक्त होतेहैं, अर्थात् फिर ज्योंके त्यों हो जातेहैं, इस प्रकार पापी मनुष्य सहस्र वर्ष छेदित रहतेहैं ॥ २३ ॥

जबतक पापात्माओंके उन पापोंका क्षय नहीं होता। अब मुझसे अप्रतिष्ठ नामक नरकका विषय सुनो ॥ २४ ॥ जहां स्थित होकर नरकवासी असह्य क्लेश अनुभव करते हैं, जो अपने धर्ममें तत्पर ब्राह्मणोंका विघ्न करता है ॥ २५ ॥ उनको दारुण पाशमें बांधकर चक्रसंकर नरकमें ले जाते हैं वह चक्र और घटीयंत्र ॥ २६॥ पाप करनेवाले मनुष्योंके दुःखके हेतुस्वरूप होते हैं, कोई कोई प्राणी उसी चक्रके ऊपर आरोपित होकर घुमाये जाते हैं ॥२७॥ प्रायः हजार वर्ष उनको उसमें अवस्थान करना पडता है, कोई कोई पापात्मा छोटे घडेके समान बंधकर ॥२८॥ उसी घटीयंत्रके द्वारा घूमते हैं और वार-वार रक्तको वमन करते हैं, उन प्राणियोंकी आंतें वहां मुखसे निकल आती हैं रक्तधारा बहती है और नेत्र निकल आते हैं ॥ २९ ॥ वहां वह प्राणियोंसे

तावद्यावदशेषं वै तत्पापं हि क्षयं गतम् ॥ अप्रतिष्ठं च नरकं शृणुष्व गदतो मम ॥२४॥ यत्रस्थैर्नारकैर्दुःखमसह्यमनुभूयते ॥ स्वधर्मरत-विप्राणां विघ्नं यस्तु समाचरेत् ॥ २५॥ स बद्धैर्दारुणैः पाशैर्नीयते चक्रसंकरैः ॥ तान्येव तत्र चक्राणि घटीयन्त्राणि चान्यतः ॥२६॥ दुःखस्य हेतुभूतानि पापकर्मकृतां नृणाम् ॥ चक्रेष्वारोपिताः केचिद्भ्राम्यन्ते तत्र मानवाः ॥ २७ ॥ यावद्वर्षसहस्राणि न तेषां स्थितिर-न्तरा ॥ घटीयन्त्रेषु चैवान्यो बद्धस्तोये यथा घटी ॥ २८ ॥ भ्राम्यन्ते मानवा रक्तमुद्गिरन्तः पुनः पुनः ॥ अन्त्रैर्मुखे विनिष्क्रान्तैर्नेत्रैर-ग्रावलम्बिभिः ॥ २९ ॥ दुःखानि ते प्राप्नुवन्ति यान्यसह्यानि जन्तुभिः ॥ असिपत्रवनं नाम नरकं शृणु चापरम् ॥ ३० ॥ योजनानां सहस्रं यो ज्वलदग्न्यास्तृतावनिः ॥ ब्रह्मचारिव्रतानां च तपसां विघ्नमाचरेत् ॥ ३१ ॥ असिपत्रवनं यांति ये सदोद्वेगकारिणः ॥ तताः सूर्य-करैश्चण्डैर्यत्रातावसुदारुणैः ॥ ३२ ॥ प्रपतन्ति सदा तत्र प्राणिनो नरकौकसः ॥ तन्मध्ये च वनं रम्यं स्निग्धपत्रं विभाव्यते ॥ ३३ ॥

अत्यन्त पीडित होकर असह्य दुःख अनुभव करते हैं इसके पीछे असिपत्रनामक अन्य दारुण नरकका विषय वर्णन करता हूं सुनिये ॥ ३० ॥ यह नरक जलती हुई अग्निसे पृथ्वीको सहस्र योजन आक्रमण करके स्थित है जो ब्रह्मचारीके व्रत और तपमें विघ्न करते हैं ॥ ३१ ॥ वह उद्वेगकारी उस असिपत्र वनमें जाते हैं. नरकवासी प्राणी भयंकर प्रचण्ड सूर्यकी किरणोंसे तपकर ॥ ३२ ॥ इस नरकमें गिरते हैं उसमें एक अति मनोहर वन है देखनेसे उसके सब पत्ते अत्यन्त चिकने बोध होते हैं ॥ ३३ ॥

किन्तु हे द्विजसत्तम ! उसके सब पत्ते खड्गफलकमय हैं, वहां बडे बडे बली कुत्ते भौंकते रहते हैं ॥ ३४ ॥ व्याघ्रके समान उनके बडे मुख, तीव्र डाढों-वाले और बडे भयंकर हैं उस वनकी ठंडी छाया देखकर ॥ ३५ ॥ भूख प्याससे कातर हुए प्राणी उसमें प्रवेश करते हैं और अत्यन्त दुःखित चित्तसे "हा माता ! हा पिता !" कहकर रोते हैं ॥ ३६ ॥ पृथ्वीकी अग्निसे उनके पैर जलजाते, हैं, वहां जानेके पीछे असिपत्रपाती समीरण ॥ ३७ ॥ प्रवाहित होता है और उनके द्वारा उनके ऊपर वह सब खड्ग गिरते हैं, तब वह जलती हुई अग्निमें गिरते हैं ॥ ३८ ॥ और जीभ चाटते हुए भूमिमें

पत्राणि तत्र खड्गानां फलानि द्विजसत्तम ॥ श्वानश्च तत्र सबलाः स्वनन्त्ययुतशोभितः ॥ ३४ ॥ महावक्त्रा महादंष्ट्रा व्याघ्रा इव भयानकाः ॥ ततस्तद्वनमालोक्य शिशिरच्छायमग्रतः ॥३५॥ प्रयान्ति प्राणिनस्तत्र तृट्तापपरिपीडिताः ॥ हा मातर्हा तात इति क्रन्दन्तोऽतीव दुःखिताः ॥ ३६ ॥ दह्यमानाङ्घ्रियुगला धरणीस्थेन वह्निना ॥ तेषां गतानां तत्रासिपत्रपाती समीरणः ॥ ३७ ॥ प्रवाति तेन पात्यन्ते तेषां खड्गास्तथोपरि ॥ ततः पतन्ति ते भूमौ ज्वलत्पावकसंचये ॥३८॥ लेलिह्यमाने चातीव व्याप्ताशेषमहीतले ॥ सारमेयास्ततः शीघ्रं शातयन्ति शरीरतः ॥ ३९ ॥ तेषामंगानि रुदतां त्वचश्चातीव भीषणाः ॥ असिपत्रवनं तात मयैतत्कीर्तितं तव ॥४०॥ अतः परं भीमतरं तप्तकुम्भं निबोध मे ॥ समन्ततस्तप्तकुम्भा वह्निज्वालासमावृताः ॥४१॥ ज्वलदग्निचयोत्तप्तास्तैलायश्चूर्णपूरिताः ॥ तेषु दुष्कृतकर्माणो याम्यैः क्षिप्तास्त्वधोमुखाः ॥ ४२ ॥ दूषयेद्धर्मशास्त्राणि ये चान्ये तीर्थदूषकाः ॥ भुक्तभोगां तु यो नारीमिष्यमाणां प्रियां शुभाम् ॥ ४३ ॥

गिरते हैं, तदनन्तर वहां अतिभयंकर कुत्ते उन रोते हुओंके शरीरके सब अंग छिन्न भिन्न करते हैं. हे तात ! यह असिपत्रवन नामक नरकका विषय आपसे कहा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इसके पीछे इससे भी भयंकर तप्तकुम्भ नामक नरकका विषय वर्णन करताहूं, सुनिये। इस नरकके चारों ओर अग्निकी शिखा उठती रहती है ॥ ४१ ॥ जलतीहुई अग्निसे तप्त तैल और लौहचूर्णपरिपूर्ण तप्तकुम्भ वर्तमान है, यमके दूत पापी मनुष्योंको अधोमुख करके उसमें डालते हैं ॥ ४२ ॥ जो धर्मशास्त्र और तीर्थोंको दूषित करते हैं, जो भुक्तभोगा इष्टप्रिया शुभा स्त्रीको ॥ ४३ ॥

मूर्खतासे विना दोष देखे त्यागन करते हैं, वह इस लोहकुम्भ नरकमें डालेजाते हैं ॥४४॥ उसी समय उनके देह फट जाते हैं और मज्जा जल सब उनका जल जाता है; इस प्रकार वे पकाये जाते हैं. उनके कपाल नेत्र और समस्त अस्थियें फूट जाती हैं और भयंकरतासे छिन्न भिन्न किये जाते हैं ॥ ४५ ॥ और भयंकर वेगवान् सब गृध्र उनको वहांसे उठाकर फिर उसमें डालते हैं और वह चुरते हुए तैलमें ऐक्यताको प्राप्त होते हैं ॥ ४६ ॥ मस्तक, गात्र, स्नायु, मांस, त्वक् और अस्थिके सहित द्रवीभूत होकर तैलके सग मिलजाते हैं फिर यमदूतगण उन पापात्माओंको दर्वीद्वारा कूटकर ॥ ४७ ॥ महा तैलके गर्तमें डालकर मथते हैं. हे पिता ! आपसे वह तप्तकुंभ इत्यादि नरकोंका विषय विस्तारसहित मैंने वर्णन किया ॥ ४८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे

अदृष्टामपि दोषेण त्यजते मूढचेतनः ॥ ते समानीय पच्यंते लोहकुम्भेषु शीघ्रतः ॥४४॥ क्वाथ्यन्ते विस्फुटद्गात्रा ज्वलन्मज्जाजलाविलाः ॥ स्फुटत्कपालनेत्रास्थिच्छिद्यमाना विभीषणैः ॥ ४५॥ गृध्रैरुत्पाट्य मुच्यन्ते पुनस्तेष्वेव वेगितैः ॥ पुनः सिमसिमायन्ते तैलेनैक्यं व्रजन्ति च ॥ ४६ ॥ द्रवीभूतैः शिरोगात्रस्नायुमांसत्वगस्थिभिः ॥ ततो याम्यैर्भटैराशु दर्वीघट्टनघट्टिताः ॥ ४७ ॥ कृतावर्ते महातैले मथ्यन्ते पापकर्मिणः ॥ एष ते विस्तरेणोक्तस्तप्तकुम्भो मया पितः ॥ ४८ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे महारौरवादिनरकाख्यानकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ पुत्र उवाच ॥ अहं वैश्यकुले जातो जन्मन्यस्मात्तु सप्तमे ॥ समतीते गवां रोधं निपाने कृतवान्पुरा ॥१॥ विपाकात्कर्मणस्तस्य नरकं भृशदारुणम् ॥ सम्प्राप्तोऽग्निशिखापूर्णमयोमुखखगाकुलम् ॥ २ ॥ यन्त्रपीडनगात्रासृक्प्रवाहोद्भूतकर्दमम् ॥ विकृष्यमाणदुष्कर्मितन्निपातरवाकुलम् ॥ ३ ॥

भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ पुत्रने कहा—हे तात ! इस जन्मसे सात जन्म पाहिले मैंने वैश्यकुलमें जन्मग्रहण किया था, तब निपान (पौसेरे) में गायोंकी गति रोध की थी अर्थात् उनको जल नहीं पीने दिया था ॥ १ ॥ उसी कर्मके फलसे मैं भयंकर दारुण नरकमें गिरा था, वह अग्निशिखामय और लोहेके मुखवाले पक्षियोंसे भराथा ॥ २ ॥ यंत्रनिपीडित पापियोंके शरीरसे निकले रुधिरप्रवाहकी वहां कीच रहती है और वह मारे जाते हुए दुष्कर्मियोंके उस नरकमें पडनेसे उत्पन्न हुए आर्त्तनादद्वारा व्याप्त था ॥ ३ ॥

मैंने वहां महातापकी पीडासे उत्तप्त प्याससे दुःखी होकर कुछ अधिक एक सौ वर्ष काटे थे ॥ ४ ॥ अकस्मात् एक दिन करम्भवालुकावाले घडेके कुम्भ-मध्यसे प्रसन्नता करनेवाली सुखशीतल पवन चलनेलगी ॥ ५ ॥ उस पवनके स्पर्शसे मेरी और अन्यान्य नरकवासी प्राणियोंकी यंत्रणा जाती रही. तब सभी स्वर्गस्थ स्वर्गवासियोंकी समान परमानन्द अनुभव करने लगे ॥ ६ ॥ फिर जब हमने "यह क्या है" इस प्रकार कह प्रसन्नतासे उत्पन्न आश्चर्य और स्थिर नेत्रोंसे इधर उधर देखा, वैसेही निकटवर्त्ती एक अनुत्तम मनुष्यरत्न हमको दिखाई दिया ॥ ७ ॥ और यह भी देखा कि, एक भयंकर वज्रतुल्य

पात्यमानस्य मे तत्र साग्रं वर्षशतं गतम् ॥ महातापार्त्तितप्तस्य तृष्णादाहान्वितस्य च ॥ ४ ॥ तत्राह्लादकरः सद्यः पवनः सुखशीतलः ॥ करम्भवालुकाकुम्भमध्यस्थे वै समागमः ॥५॥ अकस्मादेव भास्तात नररत्नं समागतम् ॥ तत्सम्पर्कादशेषाणां नाभवद्यातना नृणाम् ॥ मम चापि यथा स्वर्गे स्वर्गिणां निवृतिः परा ॥ ६ ॥ किमेतादिति चाह्लादविस्तारस्तिमितेक्षणैः ॥ दृष्टमस्माभिरासन्नं नररत्नमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ याम्यश्च पुरुषो घोरो दण्डहस्तोल्लसत्प्रभः ॥ पुरता दर्शयन्मार्गमित एह्यात च ब्रुवन् ॥ ८ ॥ ततस्ते जन्तवः सर्वे मत्वा तद्दर्शनात्सुखम् ॥ ऊचुः प्रांजलयो भूप क्षणमात्रं स्थितो भव ॥ ९ ॥ त्वद्गात्रसंगी पवनो ह्यस्माकं सुखकारकः ॥ ततोऽसौ नरकाभ्याशे उपविष्टः कृपान्वितः ॥ १० ॥ पुरुषः स तदा दृष्ट्वा यातनाशतसंकुलम् ॥ नरकं प्राह तं याम्य किङ्करं कृपयान्वितः ॥ ११ ॥ पुरुष उवाच ॥ भो याम्य पुरुषाचक्ष्व किं मया दुष्कृतं कृतम् ॥ येनेदं यातनाभीमं प्राप्तोऽस्मि नरकं परम् ॥ १२ ॥

दण्ड हाथमें लिये यमदूत "इधर आओ" कहकर मार्ग दिखाता है ॥ ८ ॥ तब वह सब प्राणी उसके दर्शनका सुख मान हाथ जोडकर बोले आप यहीं क्षणमात्रको ठहरिये ॥ ९ ॥ तुम्हारे गात्रका संगी पवन हमको सुखकारक है, तब वह कृपा करक नरकके समीप स्थित हुए ॥ १० ॥ अनन्तर उस पुरुषने सैकडों दुःखोंसे पूर्ण नरक देखकर कृपाभरे चित्तसे यमदूतोंसे कहा ॥ ११ ॥ पुरुष बोला—हे यमपुरुषो ! शीघ्र कहो, मैंने ऐसा क्या पाप किया है ? जिस पापसे मैं इस अत्यन्त भयंकर यातनामय नरकमें आयाहूं ॥ १२ ॥

क्योंकि मैं पितृकुलमें विपश्चित् अर्थात् पंडित कहकर विख्यात था, इसी कारण विदेहराज्यमें उत्कृष्ट प्रजापालक हुआथा ॥ १३ ॥ मैंने धर्मपूर्वक चारों वर्णोंकी रक्षा की है और मनुकी समान सब धर्मपूर्वक किया ॥ १४ ॥ मैंने अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान कियाहै और धर्मानुसार पृथ्वीपालन की है, मैंने कभी संग्राम परित्याग नहीं किया और मेरे निकटसे कभी अतिथि विमुख नहीं हुआ ॥ १५ ॥ मैंने पितृ, देवता, ऋषि वा सेवकों-कोभी दुःखी नहीं किया, महातापसे तप्त और तृष्णादाहसे व्याकुल ॥ १६ ॥ सब प्राणियोंकी मैंने सदा रक्षा की है, पराये धन वा पराई स्त्रीमें मेरी स्पृहा नहीं थी ॥ १७ ॥ गायें जिस प्रकार निपान अर्थात् पैसेरेमें आती हैं, इसी प्रकार पर्वकालमें मेरे निकट पितृगण और तिथिकालमें देवता-

विपश्चिदिति विख्यातो जनकानामहं कुले ॥ जातो विदेहविषये सम्यङ्मनुजपालकः ॥ १३ ॥ चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मस्थं कृत्वा संरक्षितं मया ॥ धर्मतो धर्मकल्पेन मनुनात्र यथा पुरा ॥ १४ ॥ यज्ञैर्मयेष्टं बहुभिर्धर्मतः पालिता मही ॥ नोत्सृष्टश्चैव संग्रामो नातिथिर्विमुखो गतः ॥ १५ ॥ पितृदेवर्षिभृत्याश्च न चापचरिता मया ॥ महातापार्तितप्तस्य तृष्णादाहार्दितस्य च ॥ १६ ॥ सर्वस्य जीवभूतस्य कृतं त्राणं सदा मया ॥ कृता स्पृहा च न मया परस्त्रीविभवादिषु ॥ १७ ॥ पर्वकालेषु पितरस्तिथिकालेषु देवताः ॥ पुरुषं स्वयमायान्ति निपानमिव धेनवः ॥ १८ ॥ यतस्ते विमुखा यान्ति निःस्वस्य गृहमेधिनः ॥ तस्मादिष्टश्च पूर्तश्च धर्मौ द्वावपि नश्यतः ॥ १९ ॥ पितृ-निश्वासविध्वस्तं सप्तजन्मार्जितं धनम् ॥ त्रिजन्मप्रभवं दैवो निश्वासो हन्त्यसंशयम् ॥ २० ॥ तस्माद्दैवे च पित्र्ये च नित्यमेव हितोऽभवम् ॥ सोऽहं कथमिमं प्राप्तो नरकं भृशदारुणम् ॥२१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

गण आतेथे ॥ १८ ॥ देवता वा पितृ जिस गृहस्थके निकटसे विमुख जाते हैं, उसके यज्ञ वा पूर्त्त दोनों धर्मोंका नाश होता है ॥ १९ ॥ पितरोंके निराश होनेसे सात जन्मका पुण्य नष्ट होता है और देवताके निराश होनेसे तीन जन्मका संचित पुण्य नष्ट होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ इसी कारण मैं देवता और पितरोंके कार्यमें सदा तत्पर था, तो फिर किस निमित्त इस अत्यन्त दारुण नरकमें प्राप्त हुआहूं ॥ २१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

पुत्रने कहा—हे तात ! मैं उस समय सुनने लगा कि, उस महात्माके इस प्रकार पूँछनेपर यमपुरुषने अत्यन्त भयंकर होनेपरभी नम्र वचनसे उत्तर दिया ॥ १ ॥ यमदूत बोला—हे महाराज ! आप जो कहते हैं, वह सत्य है, इसमें संशय नहीं किन्तु हे महाशय ! आपने अति सामान्य पाप किया है, वह आपको स्मरण कराताहूं ॥ २ ॥ विदर्भदेशोत्पन्न पीवरी नामक जो आपकी एक पत्नी थी, पूर्वमें उसके ऋतुमती होनेपर आपने उसकी ऋतुको विफल किया था ॥ ३ ॥ क्योंकि आप उस समय केकयदेशकी उत्पन्न हुई सुशोभनाके प्रति अत्यन्त आसक्तचित्त थे, अत एव ऋतुका व्यतिक्रम होनेसे आप इस घोर नरकमें प्राप्त हुए हैं ॥ ४ ॥ अग्नि जिस प्रकार होमकालमें आहुतिकी आकांक्षा करता है, इसी प्रकार प्रजापति ऋतुकालमें उस बीजपातकी अभि-

पुत्र उवाच ॥ इति पृष्टस्तदा तेन शृण्वतां नो महात्मना ॥ उवाच पुरुषो याम्यो घोरोऽपि प्रश्रितं वचः ॥ १ ॥ यमकिङ्कर उवाच ॥ महाराज यथात्थ त्वं तथैतन्नात्र संशयः ॥ किन्तु स्वल्पं कृतं पापं भवता स्मारयामि तत् ॥ २ ॥ वैदर्भी तव या पत्नी पीवरी नाम नामतः ॥ ऋतुमत्या ऋतुर्वन्ध्यस्त्वया तस्याः कृतः पुरा ॥ ३ ॥ सुशोभनायां कैकेय्यामासक्तेन ततो भवान् ॥ ऋतुव्यातिक्रमात्प्राप्तो नरकं घोरमीदृशम् ॥ ४ ॥ होमकाले यथा वह्निराज्यपातमवेक्षते ॥ ऋतौ प्रजापतिस्तद्वद्बीजपातमवेक्षते ॥ ५ ॥ यस्तमुल्लंघ्य धर्मात्मा कामेष्वासक्तिमान्भवेत् ॥ स तु पित्र्यादृणात्पापमवाप्य नरकं पतेत् ॥ ६ ॥ एतावदेव ते पापं नान्यत्किञ्चन विद्यते ॥ तदेह्यागच्छ पुण्यानामुपभोगाय पार्थिव ॥ एतच्छ्रुत्वा तु राजर्षिः कृपया जनकोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ यास्यामि देवानुचर यत्र त्वं मां नयिष्यसि ॥ किंचित्पृच्छामि तन्मे त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥

लाषा करते रहते हैं ॥५॥ जो धर्मात्मा पुरुष इसको उल्लंघन करके अन्यके प्रति कामासक्तचित्त होतेहैं उनको पितरोंके ऋणसे पापरूपी कीचडमें लिप्त होकर नरकमें गिरना पडता है ॥ ६ ॥ हे महाराज ! आपने केवल यही पाप किया है, इसके अतिरिक्त आपका और कोई पाप नहीं है अत एव हे पार्थिव ! आओ, समस्त पुण्यका फल भोगनेके लिये चलो यह सुनकर वह राजर्षि कृपापूर्वक बोले ॥ ७ ॥ राजाने कहा हे देवानुचर ! तुम जहां लेजाओगे मैं वहीं जाऊंगा किन्तु मैं जो कुछ पूंछताहूं, इसका ठीक ठीक उत्तर दो ॥ ८ ॥

हे यमकिंकर ! यह वज्रतुण्ड कौवे इन पुरुषोंके नेत्र हरण करतेहैं; किन्तु उनके नेत्र फिर वारंवार उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥ इन्होंने किस निन्दित कार्यका अनुष्ठान किया है. देखो--इनकी जीभ हरी जाकरभी फिर नवीन उत्पन्न होती है ॥ १० ॥ यह किसलिये करपत्रकी मार खाकर अत्यन्त दुःख भोगते हैं ? और तत्ते वालू तथा खौलते हुए तेलमें भुनरहे हैं ? ॥ ११ ॥ किसलिये लौहमुख पक्षियोंके आकर्षण करनेपर देहबंधन छिन्न होनेकी पीडासे पीडित होकर शब्दसे चिल्लाते हैं ? ॥ १२ ॥ और पक्षियोंके लोहमय तुण्डाघातसे सर्वाङ्ग क्षत विक्षत होकर दारुण यंत्रणा भोगते हैं इन मनुष्योंने कैसे पापका आचरण किया है, जो रातदिन ऐसी यंत्रणा भोगते हैं ? ॥ १३ ॥ और भी देखता हूं कि, पापात्मागण ऐसी तथा अन्य प्रकारकी नाना यंत्रणा भोगते

वज्रतुण्डास्त्वमी काकाः पुंसां नयनहारिणः ॥ पुनः पुनश्च नेत्राणि तद्वदेषां भवन्ति हि ॥ ९ ॥ किं कर्म कृतवन्तश्च कथयैतज्जुगुप्सितम् ॥ हरन्त्येषां तथा जिह्वां जायमानां पुनर्नवाम् ॥ १० ॥ करपत्रेण पाट्यन्ते कस्मादेतेऽतिदुःखिताः ॥ करम्भवालुकास्थाश्च तथैते क्वाथतैलगाः ॥ ११ ॥ अयोमुखैः खगैश्चैव कृष्यते किंविधा वद ॥ विश्लिष्टदेहबन्धार्तिमहारावविराविणः ॥ १२ ॥ अयश्चंचूनिपातेन सर्वाङ्गक्षतविक्षताः ॥ किमेते निःस्वनन्तोपि तुद्यन्तेऽहर्निशं नराः ॥ १३ ॥ एताश्चान्याश्च दृश्यन्ते यातनाः पापकर्मिणाम् ॥ येन कर्मविपाकेन तन्ममोद्देशतो वद ॥ १४ ॥ यमकिङ्कर उवाच ॥ यन्मां पृच्छसि भूपाल पापकर्मफलोदयम् ॥ तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि संक्षेपेण यथातथम् ॥ १५ ॥ पुण्यापुण्ये हि पुरुषः पर्यायेण समश्नुते ॥ भुञ्जतश्च क्षयं याति पापं पुण्यमथापि वा ॥ १६ ॥ न तु भोगादृते पुण्यं पापं वा कम मानवः ॥ परित्यजति भोगाच्च पुण्यापुण्ये निबोध मे ॥ १७ ॥

हैं. हे यमकिंकर ! यह दुःख किस कमके फलसे उपस्थित हुए हैं ? सो आद्योपान्त मुझसे वर्णन करो ॥ १४ ॥ यमकिंकरने कहा--हे भूपाल ! पापकर्मके फलोदय विषयमें जो आपने पूंछा, वह संक्षेपसे आपके निकट यथावत् वर्णन करताहूं ॥ १५ ॥ पुरुष क्रमानुसारही पुण्य पाप भोगते हैं और भोगनेसेही पुण्य वा पापका क्षय होता है ॥ १६ ॥ भोगे विना पुण्य वा पाप कोई कर्म भी मनुष्यके शुद्धिविधानमें समर्थ नहीं होता और भोग होनेसे वह शीघ्रही क्षय होजाता है. हे राजन् ! सुनो पुण्य पाप भोगा जानेपर ही मनुष्यको छुटकारा मिलता है ॥ १७ ॥

तिनमें जो पापात्मा हैं वही दरिद्री होते हैं और दुर्भिक्षपर दुर्भिक्ष, क्लेशसे क्लेश, भयसे भय और मृत्यु पर मृत्यु प्राप्त करते हैं ॥ १८ ॥ कर्मबंधनसे प्राणी नाना प्रकारकी गति भोगते हैं, उत्सवसे उत्सव, स्वर्गसे स्वर्ग और सुखपर सुख पाते हैं ॥ १९ ॥ जो कि, श्रद्धावान्, शान्तचित्त, धनदाता और सुखकारी हैं। और पापी पुरुष व्याल और कुंजरादिके द्वारा दुर्गम तथा सर्प और चोर इत्यादिके भयसे युक्त स्थानमें ॥ २० ॥ पापसे हत हुए गमन करते हैं. इसके अतिरिक्त उनकी और दूसरी क्या गति होसकती है. और सुगंधित माला, अच्छे वस्त्र, यान और भोजनको ॥ २१ ॥ अपने पुण्योंके बलसे महात्मा प्राप्त करते हैं वे स्तुतिको प्राप्त हुए सदा पवित्रस्थानोंमें आते हैं. अनेक सैकडों हजार जन्मोंमें संचय किये हुए ॥ २२ ॥ जो पुण्य पाप प्राणी

दुर्भिक्षादेव दुर्भिक्षं क्लेशात्क्लेशं भयाद्भयम् ॥ मृतेभ्यः प्रमृता यान्ति दरिद्राः पापकर्मिणः ॥ १८ ॥ गतिं नानाविधां यान्ति जन्तवः कर्मबन्धनात् ॥ उत्सवादुत्सवं यान्ति स्वर्गात्स्वर्गं सुखात्सुखम् ॥ १९ ॥ श्रद्दधानाश्च दान्ताश्च धनदाः शुभकारिणः ॥ व्याघ्रकुंजरदुर्गाणि सर्पचौरभयानि तु ॥ २० ॥ हताः पापेन गच्छन्ति पापिनः किमतः परम् ॥ सुगंधिमाल्यसद्वस्त्रसाधुयानासनाशनाः ॥ २१ ॥ स्तूयमानाः सदा यान्ति पुण्यैः पुण्याटवीष्वपि ॥ अनेकशतसाहस्रजन्मसंचयसंचितम् ॥ २२ ॥ पुण्यापुण्यं नृणां तद्वत्सुखदुःखांकुरोद्भवम् ॥ यथा बीजं हि भूपाल पयांसि समवेक्षते ॥ २३ ॥ पुण्यापुण्ये तथा कालदेशान्यकर्मकारकम् ॥ स्वल्पं पापं कृतं पुंसां देशकालोपपादितम् ॥ २४ ॥ पादन्यासकृतं दुःखं कण्टकोत्थं प्रयच्छति ॥ तत्प्रभूततरं स्थूलशंकुकीलकसम्भवम् ॥ २५ ॥ दुःखं यच्छति तद्वच्च शिरोरोगादि दुःसहम् ॥ अपथ्याशनशीतोष्णश्रमतापादिकारकम् ॥ २६ ॥

इकट्ठा करते हैं; हे भूपाल ! वही उनके सुख दुःखके अंकुररूपमें उत्पन्न होता है, समस्त बीज जिस प्रकार जलकी अपेक्षा करते हैं ॥ २३ ॥ पुण्य पापभी इसी प्रकार काल, देश और पात्रकी अपेक्षा करते हैं. यदि पुरुषने देश कालमें स्वल्पमात्र पापभी किया हो तो ॥ २४ ॥ चरण रखनेमात्रसे कंटकजनित सामान्य दुःख ही अनुभव करता है, और बहुत पापोंका आचरण करनेसे उसको शूल और कीलकादिसे उत्पन्न ॥ २५ ॥ शिरोरोगादि दारुण दुःसह दुःख भोगना पडता है, जैसे अपथ्य अन्न, शीत, उष्ण, श्रम, तापआदिका करनेवाला है ॥ २६ ॥

मा० पु०
॥६४॥

तैसेही फलोत्पत्तिके समयमें सब पाप परस्परकी अपेक्षा करते हैं. इसी प्रकार महापापका आचरण करनेसे भी दीर्घ रोगादि विकार होते हैं ॥ २७ ॥ शस्त्र वा अग्निकी महापीडा वा बंधनादि समस्त फल भोगने पडते हैं और खेलके मिस अत्यन्त थोडे पुण्यका भी अनुष्ठान करनेसे सुन्दर गंध ॥ २८ ॥ सुखमय स्पर्श, मधुर शब्द, मिष्टरस और सुन्दर रूप अल्पकाल भोगनेमें समर्थ होता है और भारी पुण्यका अनुष्ठान करनेपर कालक्रमसे इन सबकी अपेक्षा अधिक फल लाभ होता है ॥ २९ ॥ इस प्रकार पाप पुण्यसे उत्पन्न हुए सुख दुःख भोगता हुआ संसारमें पडता है ॥ ३० ॥ जाति और देशादि द्वारा अवरुद्धज्ञान और अज्ञानका समस्त फल आत्मामें चिह्नरूपसे स्थिति करता है ॥ ३१ ॥ कर्म, मन, वचनसे कभी कोई पाप वा पुण्य कर्म

तथान्योन्यमपेक्षन्ते पापानि फलसङ्गमे ॥ एवं महान्ति पापानि दीर्घरोगादिकाः क्रियाः ॥ २७ ॥ तद्वच्छस्त्राग्निकृच्छ्रार्तिबन्धनादिफलाय वै ॥ स्वल्पं पुण्यं शुभं गन्धं हेलया सम्प्रयच्छति ॥ २८ ॥ स्पर्शं वाप्यथवा शब्दं रसं रूपमथापि वा ॥ चिराद्गुरुतरं तद्वन्महान्तमपि कालजम् ॥ २९ ॥ एवं च सुखदुःखानि पुण्यात्पुण्योद्भवानि वै ॥ भुञ्जानोऽनेकसंसारसम्भवानीह तिष्ठति ॥ ३० ॥ जातिदेशावरुद्धानि ज्ञानाज्ञानफलानि च ॥ तिष्ठन्ति तत्र पृक्तानि लिङ्गमात्रेण चात्मनि ॥ ३१ ॥ कर्मणा मनसा वाचा न कदाचित्कचिन्नरः ॥ अकुर्वन्पापकं कर्म पुण्यं वाप्यवतिष्ठते ॥ ३२ ॥ यद्यत्प्राप्नोति पुरुषः सुखं दुःखमथापि वा ॥ प्रभूतमथवा स्वल्पं विक्रियाकारिचेतसः ॥ ३३ ॥ तावता तस्य पुण्यं वा पापं वाप्यथ चेतरत् ॥ ३४ ॥ उपभोगात्क्षयं याति भुज्यमानमिवाशनम् ॥ एवमेते महापापं यातनाभिरहर्निशम् ॥ ३५ ॥ क्षपयन्ति नरा घोरं नरकान्तविवर्तिनः ॥ तथैव राजन्पुण्यानि स्वर्गलोकेऽमरैः सह ॥ ३६ ॥

भा० टी०
अ० १४

किये विना फल नहीं पाता है ॥ ३२ ॥ पुरुष यह जो कुल सुना वा दुःख पाता है. थोडा या बहुत यह सब चित्तका विकार है ॥ ३३ ॥ वह उतनाही पाप पुण्यका फल पाता है ॥ ३४ ॥ जैसे भोजन किया हुआ अन्न उपभोगसेही क्षय होता है, इसी प्रकार रातदिन पाप भोगे विना नहीं मिटता है ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! इसी प्रकारही इस नरकके भीतर रहकर मनुष्य यातनासे घोर महापापका क्षय करते हैं और स्वर्गवासी मनुष्यभी इसी प्रकार देवताओंके संग मिलकर पुण्य भोगते हैं ॥ ३६ ॥

सिद्ध गंधर्व और अप्सराओंके गीतादि द्वारा सब पुण्य भोगते हैं देवता मनुष्य वा पक्षीयोनि प्राप्त करकेभी शुभ अशुभ ॥ ३७ ॥ पुण्य, पापजनित सुख-दुःखमय शुभाशुभ भोगते हैं. हे राजन् ! आपने जो पूंछा कि, पापात्मा किस किस पापके करनेसे ऐसी यातना भोगते हैं ॥ ३८ ॥ अब मैं इसीका पूरा वर्णन करताहूं, जिस पापसे जो होता है जिन नराधमोंने दुष्ट नेत्रोंसे पराई स्त्रीको देखा है ॥ ३९ ॥ वा दुष्ट मन और स्पृहावाले नेत्रोंसे पराये द्रव्यको देखाहै यहां वज्रतुण्डवाले पक्षी उनकेही दोनों नेत्र हरण करते हैं ॥ ४० ॥ और वारंवार वही नेत्र फिर उत्पन्न होते हैं. इन नरोंने जितने पलक लगनेमें इन सब पापोंका आचरण किया है ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! उतनेही हजार वर्ष यह इस प्रकारकी नेत्रपीडा अनुभव करेंगे । जिन्होंने शत्रुकीभी ज्ञानदृष्टि

गन्धर्वसिद्धाप्सरसां गीताद्यैरुपभुंजते ॥ देवत्वे मानुषत्वे च तिर्यक्त्वे च शुभाशुभम् ॥३७॥ पुण्यपापोद्भवं भुंक्ते सुखदुःखोपलक्षणम् ॥ यत्त्वं पृच्छसि मां राजन्यातनाः पापकर्मिणाम् ॥ ३८ ॥ केन केनेति पापेन तत्ते वक्ष्याम्यशेषतः ॥ दुष्टेन चक्षुषा दृष्टाः परदारा नराधमैः ॥ ३९ ॥ मानसेन च दुष्टेन परद्रव्यं च सस्पृहैः ॥ वज्रतुंडाः खगास्तेषां हरंत्येते विलोचने ॥ ४० ॥ पुनः पुनश्च संभूतिरक्ष्णोरेषां भवत्यथ ॥ यावतोऽक्षिनिमेषांस्तु पापमेभिर्नृभिः कृतम् ॥ ४१ ॥ तावद्वर्षसहस्राणि नेत्रार्तिं प्राप्नुवंत्युत ॥ असच्छास्त्रोपदेशास्तु यैर्दत्ता यैश्च मंत्रिताः ॥ ४२ ॥ सम्यग्दृष्टेर्विनाशाय रिपूणामपि मानवैः ॥ यैः शास्त्रमन्यथा प्रोक्तं यैरसद्वागुदाहृता ॥ ४३ ॥ वेददेवद्विजातीनां गुरोर्निन्दा च यैः कृता ॥ हरंति तेषां जिह्वाश्च जायमानाः पुनः पुनः ॥ ४४ ॥ तावतो वत्सरानेते वज्रतुंडाः सुदारुणाः ॥ मित्रभेदं तथा पित्रा पुत्रस्य स्वजनस्य च ॥ ४५ ॥ यज्वोपाध्याययोर्मात्रा सुतस्य सहचारिणः ॥ भार्यापत्योश्च ये केचिद्भेदं चक्रुर्नराधमाः ॥ ४६ ॥

विनाश करनेके लिये अन्यायरीतिसे शास्त्रोपदेश, वा खोटी परामर्श दीहै, जिन्होंने सब शास्त्रोंकी विपरीत व्याख्या करीहै, जिन्होंने मिथ्या बातें कही हैं ॥ ४२॥४३॥ जिन्होंने वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुजनोंकी निन्दा की है, यह वज्रतुण्डवाले दारुण पक्षी उनकीही वारम्वार उत्पन्न हुई जीभको छेदन करते हैं इन्होंने जितनी बार ऐसा पाप कियाहै यह वज्रतुण्ड समस्त पक्षी उनको उतनेही वर्ष ऐसी यंत्रणा देते हैं. जिन्होंने मित्रभेद पितापुत्रभेद वा स्वजनभेद किया है ॥ ४४ ॥४५ ॥ वा यज्ञकर्त्ता और उपाध्यायमें माता तथा पुत्रमें पति और पत्नीमें जो नराधम भेद कराते हैं ॥ ४६ ॥

हे राजन् ! देखो वही इस करपत्रकी मार खाते हैं। जो दूसरेको क्रोध उत्पन्न करातेहैं जो दूसरेकी प्रसन्नता नष्ट करते हैं ॥ ४७ ॥ जो ताडका पंखा चन्दन और खस हरण करते हैं और जो अधम साधुओंको प्राणान्तिक ताप देते हैं ॥ ४८ ॥ वही पापभागी अधम इस तपे हुए रेतमें गिरकर पापका फल भोगते हैं। जो मनुष्य औरके श्राद्धमें न्यौते जाकर औरके भोजन करते हैं ॥ ४९ ॥ अर्थात् देव वा पितृकार्यमें एकका निमंत्रण स्वीकार करके अन्यका श्राद्ध भोजन करते हैं, उन्हींको यह पक्षी खैंचकर खंड खंड देह करते हैं, जो मनुष्य असद्वचनोंसे साधुओंका मर्मछेदन करते हैं ॥ ५० ॥ तो निर्भय हुए पक्षिगण उनकोही व्यथित करते हैं जो वचन मनसे असत्य बात बनाकर किसीकी चुगली करते हैं ॥ ५१ ॥ उनकी जीभ इस तेज छुरीसे

त इमे पश्य पाट्यंते करपत्रेण पार्थिव ॥ परोपतापका ये च ये चाह्लादनिषेधकाः ॥ ४७ ॥ तालवृंतानिलस्थानचंदनोशिरहारिणः ॥ प्राणान्तिकं ददुस्तापमदुष्टानां च येऽधमाः ॥ ४८ ॥ करम्भवालुकासंस्थास्त इमे पापभागिनः ॥ भुंक्ते श्राद्धं तु योऽन्यस्य नरोऽन्येन निमंत्रितः ॥ ४९ ॥ दैवे वाप्यथवा पैत्र्ये स द्विधा कृष्यते खगैः ॥ मर्माणि यस्तु साधूनामसद्वाग्भिर्निकृन्तति ॥ ५० ॥ तमिमे तुदमानास्तु खगास्तिष्ठन्त्यवारिताः ॥ यः करोति च पैशुन्यमन्यवागन्यथामतिः ॥ ५१ ॥ पाट्यते हि द्विधा जिह्वा तस्येत्थं निशितैः क्षुरैः ॥ मातापित्रोर्गुरूणां च येऽवज्ञां चक्रुरुद्धताः ॥ ५२ ॥ त इमे पूयविण्मूत्रगर्त्ते मज्जन्त्यधोमुखाः ॥ देवतातिथिभूतेषु भृत्येष्वभ्यागतेषु च ॥ ५३ ॥ अभुक्तवत्सु येऽश्नन्ति तद्वत्पित्रग्निपक्षिषु ॥ दुष्टास्ते पूयनिर्यासभुजः सूचीमुखास्तु ते ॥ ५४ ॥ जायन्ते गिरिवर्ष्माणः पश्यैते यादृशा नराः ॥ एकपंक्त्या तु ये विप्रमथवेतरवर्णजम् ॥ ५५ ॥

दो खंड करी जाती है। जो मत्त होकर माता पिता और गुरुजनोंका निरादर करते हैं ॥ ५२ ॥ वही इस पीव, विष्ठा और मूत्रसे भरे कुण्डमें नीचेको मुख करके डाले जाते हैं. देवता, अतिथि, सेवक, अभ्यागत ॥ ५३ ॥ पितृगण, अग्नि और पक्षियोंके भूखा रहते जो दुष्ट लोग भोजन करतेहैं, वही सूचीमुख होकर पीव और गोंदका भोजन करते हैं ॥ ५४ ॥ और उनका देह पर्वताकार होता है, जो ब्राह्मण वा अन्य जातिको एक पंक्तिमें बैठारकर ॥ ५५ ॥

विषमभोजन अर्थात् परस्परको असमानभावसे भोजन कराते हैं, वह इनकी विष्ठा भोजन करते हैं। जो व्यापारके लिये एकत्र जातेहुए अपने संगी धनहीन याचकको ॥ ५६ ॥ छोडकर अपने आप अन्न भोजन करते हैं, यह वहीं यहां इस प्रकार कफका भोजन करते हैं। हे नरेश्वर! जिन्होंने उच्छिष्ट अवस्थामें गौ, ब्राह्मण वा अग्निको स्पर्श किया है ॥ ५७ ॥ उनके वह हाथ अग्निकुण्डमें गिरकर जलते हैं जिन्होंने उच्छिष्ट अवस्थामें अपनी इच्छासे सूर्य, चन्द्र, वा तारोंको देखा है ॥ ५८ ॥ यह यमदूत उन्हींके नेत्रपर अग्निको रखतेहैं. जिन्होंने गौ, अग्नि, माता, ब्राह्मण, बडे भाई, पिता, बहन ॥ ५९ ॥

विषमं भोजयन्तीह विड्भुजस्त इमे यथा ॥ एकसार्थप्रयातं ये निःस्वमर्थार्थिनं नरम् ॥ ५६ ॥ अपास्य स्वान्नमश्नन्ति त इमे श्लेष्मभोजिनः ॥ गोब्राह्मणाग्नयः स्पृष्टा यैरुच्छिष्टैर्नरेश्वर ॥ ५७ ॥ तेषामेतेऽग्निकुण्डेषु प्रज्वलत्स्वाहिताः कराः ॥ सूर्येन्दुतारका दृष्टा यैरुच्छिष्टैस्तु कामतः ॥ ५८ ॥ तेषां याम्यैर्नरैर्नेत्रे न्यस्तो वह्निः समिध्यते ॥ गावोऽग्निर्जननी विप्रो ज्येष्ठभ्राता पिता स्वसा ॥ ५९ ॥ जामयो गुरवो वृद्धा यैः स्पृष्टास्तु पदा नृभिः ॥ बद्धांघ्रयस्ते निगडैर्लोहैरग्निप्रतापितैः ॥ ६० ॥ अंगारराशिमध्यस्थास्तिष्ठन्त्याजानुदाहिनः ॥ पायसं कृसरं छागं देवान्नानि च यानि वै ॥ ६१ ॥ भुक्तानि यैरसंस्कृत्य तेषां नेत्राणि पापिनाम् ॥ निपातितानां भूपृष्ठे उद्धृत्ताक्षिनिरीक्षताम् ॥ ६२ ॥ सन्दंशैः पश्य कृष्यन्ते नरैर्याम्यैर्मुखात्ततः ॥ गुरुदेवद्विजातीनां वेदानां च नराधमैः ॥ ६३ ॥ निन्दा निशामिता यैश्च पापानामभिनन्दताम् ॥ तेषामयोमयान्कीलानग्निवर्णान्पुनः पुनः ॥ ६४ ॥

कुलबहन, गुरु अथवा बूढे ब्राह्मणको पैरसे स्पर्श किया हो, उनकेही पैर अग्निसे तपी हुई लोहेकी बेडियोंमें बाँधेगये हैं ॥ ६० ॥ और जंघातक अंगारोंके ढेरमें खडे हुएहैं, जिन पापात्माओंने खीर, कृशर (खिचडी) छाग और जिस किसी देवान्नको ॥ ६१ ॥ विना संस्कार किये भोजन किया है, उन्हीं पापात्माओंके नेत्र यह पृथ्वीमें उखाडकर डाले गये यह दीख रहे हैं ॥ ६२ ॥ और दंशनकारी यमदूतोंके मुखमें आकर्षित होते हैं। जो नराधम गुरु, देवता, ब्राह्मण और वेदकी ॥ ६३ ॥ निन्दा सुनकर पुष्टि करते हैं, यमपुरुष अग्निवर्षक लोहेकी कीली वारम्वार ॥ ६४ ॥

विलाप करते हुए उन पापात्माओंके कानमें प्रवेश कराते हैं जिन्होंने देवता, ब्राह्मणका घर अथवा सभाको ॥ ६५ ॥ क्रोध वा लोभके वशीभूत हो तोड़कर विध्वंस किया है, उन विलाप करनेवाले पापात्माओंकी त्वचा (चर्म) पैने शस्त्रोंसे ॥ ६६ ॥ अत्यन्त दारुण शरीरवाले यमदूत देहसे पृथक् करते हैं। जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण और सूर्यके मार्गमें मलमूत्र त्याग करते हैं ॥ ६७ ॥ उन पापात्माओंकी सब आँतें कौवे गुह्यद्वारसे खैंचते हैं। जो पुरुष एक बार किसी मनुष्यको कन्यादान करके वही कन्या फिर किसी दूसरे मनुष्यको देते हैं ॥ ६८ ॥ उनको इस प्रकार खंड खंड करके क्षार (खारी) नदीमें बहादिया जाता है। जो मनुष्य औरोंको छोडकर अपनाही पोषण करते हैं ॥ ६९ ॥ दुर्भिक्ष वा किसी प्रकारके संभ्रममें जो आकिंचन पुत्र,

कर्णेषु पूरयन्त्येते याम्या विलपतामपि ॥ यैः प्रपादेवविप्रौकोदेवालयसभाः शुभाः ॥ ६५ ॥ भङ्क्त्वा विध्वंसमानीताः क्रोधलोभानुवर्त्तिभिः ॥ तेषामेतैः शितैः शस्त्रैर्मुहुर्विलपतां त्वचः ॥ ६६ ॥ पृथक् कुर्वन्ति वै याम्याः शरीरादतिदारुणाः ॥ गोब्राह्मणार्कमार्गांस्तु येऽवमेहन्ति मानवाः ॥ ६७ ॥ तेषामेतानि कृष्यन्ते गुदेनांत्राणि वायसैः ॥ दत्त्वा कन्यां य एकस्मै द्वितीयाय प्रयच्छति ॥ ६८ ॥ स त्वेवं नैकधा छिन्नः क्षारनद्यां प्रवाह्यते ॥ स्वपोषणपरो यस्तु परित्यजति मानवः ॥ ६९ ॥ पुत्रभृत्यकलत्रादिबन्धुवर्गमकिंचनम् ॥ दुर्भिक्षे संभ्रमे वापि सोऽप्येवं यमकिंकरैः ॥ ७० ॥ उत्कृत्य दत्तानि मुखे स्वमांसान्यश्नुते क्षुधा ॥ शरणागतान्यस्त्यजति लोभादुत्कोचजीविकः ॥ ७१ ॥ सोऽप्येवं यंत्रपीडाभिः पीड्यते यमकिंकरैः ॥ सुकृतं ये प्रयच्छन्ति यावज्जन्मकृतं नराः ॥ ७२ ॥ ते पिष्यन्ते शिलापेषैर्यथैते पापकर्मिणः ॥ न्यासापहारिणो बद्धाः सर्वगात्रेषु बन्धनैः ॥ ७३ ॥

सेवक, कलत्रादि और बंधुवर्गको त्यागदेते हैं, यमदूत ॥ ७० ॥ उनका मांस काटकाटकर उन्हींके मुखमें डालते हैं, और भूखके मारे वह उसेही इस प्रकार भोजन करते हैं। जो लोभके वशीभूत हो वृत्ति पानेवाले वा शरणागत मनुष्योंको त्यागते हैं ॥ ७१ ॥ यमदूत उनकोही ऐसी यंत्रपीडासे पीडित करते हैं। जो मनुष्य संपूर्ण जन्मोंका किया हुआ पुण्य किसीके हाथ बेचते हैं अर्थात् मूल्य लेकर अपने अनुष्ठानका फल बेच डालते हैं ॥ ७२ ॥ वह इन पापात्माओंकी समान पत्थरके कोल्हूमें पीसे जाते हैं। जो किसीकी धरोहर हरण करते हैं उनका सब शरीर बंधनमें बँधता है ॥ ७३ ॥

और उनको कृमि, बीछू, कौवे तथा उल्लू रातादिन भक्षण करते हैं और भूख प्याससे जिनकी जिह्वा और तालू सूखगया है ॥ ७४ ॥ जिन पापात्माओंने दिनमें स्त्रीगमन वा पराई स्त्रीसे भोग किया है, यह देखो, वह लौहमय तीक्ष्ण कांटोंसे युक्त शाल्मलिवृक्षमें ॥ ७५ ॥ आरोपित हो रहे हैं उनके अंग भंग हो रहे हैं और बहुत सारा रुधिर टपकनेसे व्याकुल हो रहेहैं, यह देखो. वह धौंकनीमें रखकर धौंकाये जाते हैं ॥ ७६ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! यह देखिये ! जिन्होंने पराई स्त्रीसे भोग किया है, उनकी यह दशा होती है। जो मनुष्य उपाध्यायको नीचे बैठालकर घमंडसे अध्ययन ॥ ७७ ॥ वा शिल्पग्रहण करते हैं वह पुरुष इसी प्रकार मस्तकपर शिलाका बोझ रखकर जनमार्गमें महाक्लेश भोगते हैं ॥ ७८ ॥ और बोझकी पीडासे व्यथितमस्तक हो अर्थात् मस्तकमें

कृमिवृश्चिककाकोलैर्भुज्यन्तेऽहर्निशं नराः ॥ क्षुत्क्षामास्तृट्परिपतज्जिह्वाताल्वो वेदनातुराः ॥७४॥ दिवामैथुनिनः पापाः परदारभुजश्च ये ॥ तथैव कण्टकैस्तीक्ष्णैरायसैः पश्य शाल्मलिम् ॥ ७५ ॥ आरोपिता विभिन्नांगाः प्रभूतासृक्स्रवाविलाः ॥ मूषायामपि पश्यैतान्ध्मायमानान्यमानुगैः ॥७६॥ पुरुषैः पुरुषव्याघ्र परदारावमर्शिनः ॥ उपाध्यायमधः कृत्वा स्तब्धो योऽध्ययनं नरः ॥७७॥ गृह्णाति शिल्पमथवा सोऽप्येवं शिरसा शिलाम् ॥ बिभ्रत्क्लेशमवाप्नोति जनमार्गेऽतिपीडितः ॥ ७८ ॥ क्षुत्क्षामोऽहर्निशं भारपीडाव्यथितमस्तकः ॥ मूत्रश्लेष्मपुरीषाणि यैरुत्सृष्टानि वारिणि ॥७९॥ त इमे श्लेष्मविण्मूत्रदुर्गन्धं नरकं गताः ॥ परस्परं च मांसानि भक्षयन्ति क्षुधान्विताः ॥८०॥ भुक्तं नातिथ्यविधिना पूर्वमेभिः परस्परम् ॥ अपविद्धास्तु यैर्वेदा वह्नयश्चाहिताग्निभिः ॥ ८१ ॥ त इमे शैलशृंगाग्रात्पात्यन्तेऽधः पुनः पुनः ॥ पुनर्भूपतयो जीर्णा यावज्जीवांति ये नराः ॥ ८२ ॥

वेदना अनुभव कर भूख प्याससे दिनरात पीडित होते हैं। जिन्होंने जलमें मल मूत्र वा खखार डालीहै ॥ ७९ ॥ वही इस कफ विष्ठा मूत्र और दुर्गन्धिपूर्ण नरकमें गये हैं। और यह जो भूखसे कातर होकर परस्परका मांस भोजन करते हैं ॥ ८० ॥ इन्होंने पूर्वकालमें परस्पर आतिथ्यविधानसे भोजन नहीं किया। जिन आहिताग्नि पुरुषोंने वेद और अग्निका अपमान किया है ॥ ८१ ॥ वही इस पर्वतके शिखरसे वारम्वार नीचे गिराये जाते हैं जिन्होंने दूसरी बार व्याही हुई स्त्रीके पति होकर समस्त जीवन विताया है ॥ ८२ ॥

वह कृमिरूपमें परिणत होकर चींटियोंके द्वारा भक्षित होते हैं। जिसने नीच पुरुषका दान ग्रहण, यजन वा नित्यसेवा करी है ॥ ८३ ॥ वही पत्थरके भीतरका कीडा होता है। जो अतिथि, भृत्य और भाइयोंके देखते उनका निरादर कर ॥ ८४ ॥ अकेला मिष्टान्न भोजन करता है, उसको जलते हुए अंगारे भोजन करने पडते हैं और उनकी पीठके मांसको नित्य भयंकर भेडिये खाते हैं ॥ ८५॥ हे महाराज ! जिससे कि, इसने लोकोंके पृष्ठमांसको भक्षण किया था, अर्थात् पीछेमें बुराई की थी, वह यहां अंधे, बहर, गूंगे होकर क्षुधासे भ्रमण कर रहे हैं ॥ ८६ ॥ इस नराधमने उपकार करनेवालेके प्रति कृत-

इमे कृमित्वमापन्ना भक्ष्यंतेऽत्र पिपीलिकैः ॥ नीचप्रतिग्रहाद्दानाद्याजनान्नित्यसेवनात् ॥ ८३ ॥ पाषाणमध्यकीटत्वं नरः सततमश्नुते ॥ पश्यतो भृत्यवर्गस्य मित्रस्याप्यतिथेस्तथा ॥ ८४ ॥ एको मिष्टान्नभुग्भुंक्ते ज्वलदंगारसंचयम् ॥ वृकैर्भयंकरैः पृष्ठं नित्यमस्योपभुज्यते ॥८५॥ पृष्ठमांसं नृपैतेन यतो लोकस्य भाक्षितम् ॥ अंधोऽथ बधिरो मूको भ्राम्यतेऽत्र क्षुधातुरः ॥८६॥ अकृतज्ञोऽधमः पुंसामुपकारिषु वर्त्तते ॥ अयं कृतघ्नो मित्राणामपकारी सुदुर्मतिः ॥ ८७ ॥ तप्तकुंभे निपातितो विलपन्याति शोषणम् ॥ करंभवालुकां तस्मात्ततो यंत्रावपीडनम् ॥ ८८ ॥ असिपत्रवनं तस्मात्करपत्रेण पाटनम् ॥ कालसूत्रे तथा च्छेदमनेकाश्चैव यातनाः ॥ ८९ ॥ प्राप्य निष्कृतिमेतस्मान्न वेद्मि कथमेष्यति ॥ श्राद्धे संगतिनो विप्राः समुपेत्य परस्परम् ॥ ९० ॥

ज्ञता प्रकाश नहीं करी यह दुर्मति कृतघ्न और मित्रोंका अपकारी है ॥ ८७ ॥ इसी कारण तप्तकुंभमें गिराया गया है और बडा विलाप करता है, इसके पीछे फिर पीसा जायगा, तदनन्तर तप्तवालू यंत्रमें पीडा भोगकर ॥ ८८ ॥ असिपत्रनरकमें तल्वारकी मार खायगा और फिर कालसूत्र नामक नरकमें छेदन किया जायगा, इस भांति नाना प्रकारकी यातना भोगकर ॥ ८९ ॥ यह किस प्रकार इससे छुटकारा पावेंगे, सो मैं नहीं जानता। इन दुष्ट ब्राह्मणोंने परस्पर संघटित होकर श्राद्धभोजन किया था ॥ ९० ॥

इस कारण यह दुष्ट सर्पोंके सर्वाङ्गसे निकलते हुए फेन भोजन करते हैं। हे राजन्! इस पुरुषने सुवर्ण चुराया है, इस पुरुषने ब्रह्महत्या करी है और इस पुरुषने मद्य पी है, इसने गुरुकी स्त्रीको हरण किया है ॥ ९१ ॥ इस कारण यह चारों ओरसे जलती हुई अग्निमें जलाये जाते हैं ॥ ९२ ॥ और फिर यह वहा हजारों वर्षतक रहते हैं. इसके पीछे कुष्ठ और क्षयरोगादिसे चिह्नित मनुष्यदेह धारण कर ॥ ९३॥ प्राणपरित्यागपूर्वक फिर नरकमें गिरते हैं और वारम्वार इसी प्रकार जन्मग्रहण करते हुए कल्पान्तपर्यन्त व्याधि भोगा करते हैं ॥ ९४ ॥ गोहत्या वा अन्यान्य उपपातक करनेसे सबकोही क्रमानुसार तीन जन्म निम्नतर नरक भोगना पडता है तथा और उपपातकोंमें भी ऐसाही होता है यह निश्चय है ॥९५॥ हे महाराज! नरकमें पडकर पापी मनुष्य जिस

दुष्टाहिनिःसृतं फेनं सर्वांगेभ्यः पिबंति वै ॥ सुवर्णस्तेयी विप्रघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ॥ ९१ ॥ अधश्चोर्ध्वं च दीप्ताग्नौ दह्यमानाः समंततः ॥ ९२ ॥ तिष्ठंत्यब्दसहस्राणि सुबहूनि ततः पुनः ॥ जायन्ते मानवाः कुष्ठक्षयरोगादिचिह्निताः ॥ ९३ ॥ मृताः पुनश्च नरकं पुनर्जाताश्च तादृशम् ॥ व्याधिमृच्छंति कल्पांतपरिमाणं नराधिप ॥ ९४ ॥ गोघ्नो न्यूनतरं याति नरकेऽथ त्रिजन्मनि ॥ तथोपपातकानां स सर्वेषामिति निश्चयः ॥९५॥ नरकप्रच्युता यान्ति यैर्यैर्विहितपातकैः ॥ प्रयांति योनिजातानि तन्मे निगदतः शृणु ॥९६॥ इति मार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे यमकिंकरसंवादे स्वकृतकर्मभुक्तिकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ यमकिङ्कर उवाच ॥ पतितात्प्रतिगृह्याथ खरयोनिं व्रजेद्द्विजः ॥ नरकात्प्रतिमुक्तस्तु कृमिः पतितयाजकः ॥ १ ॥ उपाध्यायव्यलीकं तु कृत्वा श्वा भवति द्विजः ॥ तज्जायां मनसा वाचा तद्द्रव्यं वापि कामयेत् ॥ २ ॥

जिस पापसे जिस जिस योनिमें जन्म ग्रहण करते हैं, वह कहताहूं सुनिये ॥ ९६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ यमदूतने कहा—पतित पुरुषसे अर्थ ग्रहण करनेपर ब्राह्मण गधेकी योनिमें जन्म ग्रहण करता है और पतित पुरुषको यज्ञ करानेपर नरकसे छूटकर कृमिरूपमें जन्म ग्रहण करता है ॥ १ ॥ उपाध्यायके निकट छल प्रकाश करनेसे वा उसकी भार्या अथवा किसी वस्तुकी मनमें अभिलाषा करनेसे कुत्ता होकर जन्म ग्रहण करना पडता है ॥ २ ॥

भा० पु०

॥५८॥

माता पिताका अपमान करनेसे गधा होताहै और माता पिताको गाली देनेसे मैना होता है ॥ ३ ॥ जो पुरुष भाईकी पत्नीका अपमान करताहै, वह कबूतर होता है और उसको पीडित करनेसे कछुएके रूपमें जन्म लेता है ॥ ४ ॥ जो पुरुष स्वामीका पिण्ड भोजन करके इष्टकी चेष्टा नहीं करता वह मोहाच्छन्न होकर मरनेके पीछे वानरयोनिमें जन्म ग्रहण करता है ॥ ५ ॥ जो पुरुष किसीकी धराहर हरण करताहै, वह नरकके दुःखसे छूटकर कृमि होता है। और असूया करनेवाला पुरुष नरकके अन्तमें राक्षसयोनिको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ विश्वासघातक मनुष्य मछलीकी योनिमें जन्म ग्रहण करता है.

गर्दभो जायते जन्तुः पित्रोश्चाप्यवमानकः ॥ मातापितरावाक्रुश्य सारिका सम्प्रजायते ॥ ३॥ भ्रातुः पत्न्यवमन्ता च कपोतत्वं प्रपद्यते ॥ तावेव पीडयित्वा तु कच्छपत्वं प्रपद्यते ॥ ४ ॥ भर्तृपिण्डमुपाश्नन्यस्तदिष्टं न निषेवते ॥ सोऽपि मोहसमापन्नो जायते वानरो मृतः ॥५॥ न्यासापहर्त्ता नरकाद्विमुक्तो जायते कृमिः ॥ असूयकश्च नरकान्मुक्तो भवति राक्षसः ॥ ६ ॥ विश्वासहन्ता च नरो मीनयोनौ प्रजायते ॥ धान्यं यवांस्तिलान्माषान्कुलत्थान्सर्षपांश्चणान् ॥ ७ ॥ कलायान्कलमान्मुद्गान्गोधूमानतसीस्तथा ॥ सस्यान्यन्यानि वा हृत्वा मोहाज्जन्तुरचेतनः ॥ ८ ॥ सञ्जायते महावक्त्रो मूषिको बभ्रुसन्निभः ॥ परदाराभिमर्शात्तु वृको घोरोऽभिजायते ॥ ९ ॥ श्वा सृगालो बको गृध्रो व्यालः कङ्कस्तथा क्रमात् ॥ भ्रातृभार्यां च दुर्बुद्धिर्यो धर्षयाति पापकृत् ॥ १० ॥ पुंस्कोकिलत्वमाप्नोति स चापि नरकाच्च्युतः ॥ सखिभार्यां गुरोर्भार्यां राजभार्यां च पापकृत् ॥ ११ ॥

भा० टी०

अ० १९

जो धान्य, यव, तिल, उरद, कुलथी, सरसों, चने ॥ ७ ॥ कैता, मूंजी, मूंग, गेहूं, तीसी वा अन्यान्य धान्य हरण करता है, वह मोहद्वारा अचेतन हो ॥ ८ ॥ नौलेके समान दीर्घ मुख चूहा होकर जन्म ग्रहण करता है, पराई स्त्रीसे रमण करनेवाला भयंकर भेडिया होता है ॥९॥ और फिर क्रमानुसार कुत्ता, गीदड, बगला, गृध्र, सर्प तथा कौवेकी योनिमें जन्म ग्रहण करना पडता है और जो पापात्मा दुर्बुद्धि भाईकी स्त्रीसे भोग करता है ॥ १० ॥ वह नरकके अन्तमें कोयल होता है। जो पापात्मा मित्रपत्नी, वा राजपत्नीसे ॥ ११ ॥

रमण करते हैं, वह कामात्मा मनुष्य सूकररूपमें जन्म पाते हैं, यज्ञ, दान वा विवाहमें विघ्न करनेसे कृमि होना पडता है ॥ १२ ॥ और जो मनुष्य दीहुई कन्या फिर किसी दूसरेको देता है, वह भी कृमिरूपमें जन्म ग्रहण करता है. जो मनुष्य देवता पितर वा ब्राह्मणको विना दिये अन्न भोजन करता है ॥ १३ ॥ वह मनुष्य नरककी यंत्रणा भोगकर कौवा होताहै जो मनुष्य पिताके समान बडे भाईका अपमान करता है ॥ १४ ॥ वह नरक भोगनेके पीछे क्रौञ्च योनिमें जन्म लेता है. शूद्र ब्राह्मणीमें गमन करनेसे कृमियोनिमें उत्पन्न होता है ॥ १५ ॥ और उसके गर्भसे पुत्र उत्पन्न करनेपर काष्ठके भीतरका कीट सूकर, कृमि, मलका कीडा, वा चाण्डालयोनिमें जन्म ग्रहण करता है ॥ १६ ॥ और जो पुरुषोंमें अधम अकृतज्ञ तथा कृतघ्न है वह नरकसे छूटकर

प्रधर्षयित्वा कामात्मा सूकरो जायते नरः ॥ यज्ञदानविवाहानां विघ्नकर्त्ता भवेत्कृमिः ॥१२॥ पुनर्दाता तु कन्यायाः कृमिरेवोपजायते ॥ देवतापितृविप्राणामदत्त्वा योऽन्नमश्नुते ॥१३॥ प्रमुक्तो नरकात्सोऽपि वायसः सम्प्रजायते ॥ ज्येष्ठं पितृसमं वापि भ्रातरं योऽवमन्यते ॥१४॥ नरकात्सोऽपि विभ्रष्टः क्रौंचयोनौ प्रजायते ॥ शूद्रश्च ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ॥ १५ ॥ तस्यामपत्यमुत्पाद्य काष्ठान्तः कीटको भवेत् ॥ सूकरः कृमिको मद्गुश्चण्डालश्च प्रजायते ॥ १६ ॥ अकृतज्ञोऽधमः पुंसां विमुक्तो नरकान्नरः ॥ कृतघ्नः कृमिकः कीटः पतङ्गो वृश्चिकस्तथा ॥ १७ ॥ मत्स्यस्तु वायसः कूर्मः पुल्कसो जायते ततः ॥ अशस्त्रं पुरुषं हत्वा नरः संजायते खरः ॥ कृमिः स्त्रीवधकर्त्ता च बालहंता च जायते ॥ १८ ॥ भोजनं चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः ॥ तत्राप्यस्ति विशेषो वै भोजनस्य शृणुष्व तत् ॥ १९ ॥ हृत्वा दुग्धं तु मार्जारो जायते नरकाच्च्युतः ॥ तिलपिण्याकसंमिश्रमन्नं हृत्वा तु मूषकः ॥ २० ॥

कृमि कीट, पतंग, विच्छू ॥ १७ ॥ मत्स्य, काक, कूर्म, वा डोमयोनिमें जन्म ग्रहण करता है. शस्त्रविहीन किसी पुरुषको मारनेसे गधेकी योनिमें जन्म होता है, स्त्रीका वध करनेवाला वा बालकका वध करनेवाला पुरुष कृमि होता है ॥ १८ ॥ भोजन चुरानेसे मक्खी होना पडता है, भोजनके विषयमें जो विशेष है वह कहताहूं, सुनिये ॥ १९ ॥ अन्न हरण करनेसे नरक भोगनेके पीछे बिल्ली होना पडता है, तिल और दाना मिला हुआ अन्न हरण करनेसे चूहा होता है ॥ २० ॥

घृतका हरण करनेवाला नौला और छागमांस हरण करनेवाला पुरुष कौवा, तथा मृगमांसका हरण करनेवाला गिद्धयोनिमें जन्म ग्रहण करता है ॥ २१ ॥ लवणका चुरानेवाला पुरुष जलकाक और दधिका चुरानेवाला पुरुष कृमि होता है, और दूध हरण करनेसे बगलेकी योनिमें जन्म लेना पडता है ॥ २२॥ जो पुरुष तेल चुराता है वह तेली होता है. मधुका चुरानेवाला डांस और पूडेका चुरानेवाला मनुष्य चींटी होता है ॥ २३ ॥ हविष्यान्न चुरानेसे गृहगोधक अर्थात् गोय होता है और आसव चुरानेसे तीतर पक्षी होता है ॥ २४ ॥ जो मनुष्य लोहा चुराता है, वह पापात्मा कौवा होता है, कांसीका पात्र चुरानेवाला हारीत पक्षी और चांदीका पात्र चुरानेसे कबूतर होता है ॥ २५ ॥ सुवर्णके पात्र चुरानेसे कृमि होता है और रेशम चुरानेसे चकवेकी योनिमें

घृतं हृत्वा तु नकुलः काको मद्गुरजामिषम् ॥ मत्स्यमांसापहृत्काकः श्येनो मेषामिषापहृत् ॥ २१ ॥ चिरीवाकस्त्वपहृते लवणे दध्नि वा कृमिः ॥ चोरयित्वा पयश्चापि बलाका संप्रजायते ॥२२॥ यस्तु चोरयते तैलं तैलपायी स जायते ॥ मधु हृत्वा नरो दंशोऽपूपं हृत्वा पिपीलिका ॥ २३ ॥ चोरयित्वा हविष्यान्नं जायते गृहगोधिका ॥ आसवं चोरयित्वा तु तित्तिरित्वमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥ अयो हृत्वा तु पापात्मा वायसः संप्रजायते ॥ पात्रे कांस्येपि हारीतः कपोतो रौप्यभाजने ॥ २५॥ हृत्वा तु कांचनं भांडं कृमियोनौ प्रजायते ॥ कौशेयं चोरयित्वा तु चक्रवाकत्वमृच्छति ॥ २६ ॥ कोशकारश्च कौशेये हृते वस्त्रेऽभिजायते ॥ दुकूले शार्ङ्गकः पापो हृते चैवांशुके शुकः ॥ २७ ॥ ऋक्षश्चैवाविकं हृत्वा वस्त्रं क्षौमं च जायते ॥ कार्पासिके हृते क्रौंचो वह्नेर्हर्ता बकः खरः ॥२८॥ मयूरो वर्णकान्हृत्वा पत्रशाकं च जायते ॥ जीवञ्जीवकतां याति रक्तवस्त्रापहृन्नरः ॥ २९ ॥

उत्पन्न होना पडता है ॥ २६ ॥ कौशेय वस्त्र हरण करनेसे कोशकार अर्थात् चांदी सोनेका शिक्का बनानेवाला होता है और जो पापी दुपट्टा चुराता है, वह शार्ङ्ग अंशुकका चुरानेवाला तोता ॥ २७ ॥ ऊनी और अलसीके वस्त्र चुरानेवाला ऋक्ष, कपास चुरानेवाला क्रौंच और अग्निका चुरानेवाला बगला वा गधा होता है ॥ २८ ॥ जो पुरुष वर्णक (पीसे हुए सुगंधित द्रव्य चोवा चंदन अर्गजादि) वा शाकपत्र अर्थात् शोभाञ्जन चुराता है, वह मोर होता है और लाल वस्त्र चुरानेवाले मनुष्यको चकवा चकवीकी योनि प्राप्त होती है ॥ २९ ॥

सुन्दर गंधद्रव्यका चुरानेवाला छुच्छुन्दरी होता है, वस्त्र चुरानेवाला खरगोश होता है, पराल हरनेसे गंजा और काष्ठ चुरानेवाला मनुष्य घुनकीट होता हैं ॥ ३० ॥ पुष्प हरण करनेसे दरिद्री होता ह, यान हरण करनेसे मनुष्य लँगडा होकर जन्म लेता है, जो शाक चुराता है वह हारीत पक्षी होता है और जलका चुरानेवाला मनुष्य चातक पक्षी होता है ॥ ३१ ॥ जो पुरुष भूमि हरण करता है वह दारुण रौरवादि सब नरकोंमें गमन करके फिर क्रमानुसार तृण, गुल्म, लता, वल्ली और त्वक्सार तरुरूपमें जन्मग्रहण करता है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार यथाक्रम पापोंका क्षय होनेपर मनुष्य योनिमें जन्म ग्रहण करता

छुच्छुंदरी शुभान्गंधान्वासो हृत्वा शशो भवेत् ॥ खंजः पलालहरणे काष्ठहृद्घुणकीटकः ॥ ३० ॥ पुष्पापहृद्दरिद्रस्तु पंगुर्यानापहृन्नरः ॥ शाकहर्त्ता च हारीतस्तोयहर्त्ता च चातकः ॥ ३१ ॥ भूमिहृन्नरकान्गत्वा रौरवादीन्सुदारुणान् ॥ तृणगुल्मलतावल्लीत्वक्सारतरुतां क्रमात् ॥ ३२ ॥ प्राप्य क्षीणाल्पपापस्तु नरो भवति वै ततः ॥ वृषस्य वृषणौ छित्त्वा षंढत्वं प्राप्नुयान्नरः ॥ ३३ ॥ परिहृत्य तथा भूयो जन्मनामेकविंशतिः ॥ कृमिः कीटः पतंगो वा पक्षी तोयचरो मृगः ॥ ३४ ॥ गोत्वं च प्राप्य चांडालपुल्कसादिजुगुप्सितम् ॥ पंग्वंधो बधिरः कुष्ठी यक्ष्मणा च प्रपीडितः ॥ ३५ ॥ मुखरोगाक्षिरोगैश्च गुदरोगैश्च बाध्यते ॥ अपस्मारी च भवति शूद्रत्वं च स गच्छति ॥ ३६ ॥ एष एव क्रमो दृष्टो गोसुवर्णादिहारिणाम् ॥ विद्यापहारिणां चैव निष्क्रयभ्रंशिनां गुरोः ॥ ३७ ॥

है, बैलको वधिया करनेसे मनुष्य नपुंसक होता है ॥ ३३ ॥ और फिर इक्कीस जन्मतक कृमि, कीट, पतंग, जलचर, पक्षी, मृग ॥ ३४ ॥ तथा गोयोनिमें उत्पन्न होता है, इसके पीछे चाण्डाल और डोम आदि नीच योनिमें जन्म लेता है, फिर लँगडा, अंधा, बहरा, कोढी तथा यक्ष्मारोगसे पीडित होता है ॥ ३५ ॥ और मुखरोग, नेत्ररोग, तथा गुह्यरोगसे पीडित होकर फिर मिरगीके रोगसे आक्रान्त हो शूद्रयोनिमें उत्पन्न होता है ॥ ३६ ॥ जिसने गौ सुवर्ण वा अगरकी चोरी की है, उसको भी क्रमानुसार यही दशा भोगनी पडती है और जो विद्या हरण वा गुरुका धन मारता है ॥ ३७ ॥

उसको भी इसी प्रकार उग्ररूपी होकर दुःख भोगना पडता है. जो पुरुष दूसरेकी भार्या लाकर दूसरेको देता है, वह मूढ पुरुष अनेक प्रकारकी यंत्रणा भोगकर अन्तमें नपुंसक होता है ॥ ३८ ॥ जो ज्वालारहित अग्निमें होम करता है, वह अजीर्ण रोगसे अत्यन्त पीडित होकर मंदाग्नियुक्त होता है ॥ ३९ ॥ पराई निन्दा कृतघ्नता, परमर्मछेदन, निष्ठुरता, निर्लज्जता, पराई स्त्रीका सेवन ॥ ४० ॥ पराये धनका हरण, अपवित्रता, देवताकी निन्दा धोखा देकर मनुष्योंको ठगना, कृपणता, मनुष्योंकी हिंसा ॥ ४१ ॥ और भी दूसरे सब निषिद्ध कर्मोंका अनुष्ठान और उन उन विषयोंमें सदा प्रवृत्ति, यह देखनेसेही जानना चाहिये कि, इस पापात्माने नरककी सब यंत्रणा भोगनेके पीछे ही जन्म ग्रहण किया है ॥ ४२ ॥ और सब प्राणियोंमें दया,

जायामन्यस्य पारक्यां पुरुषः प्रतिपादयेत् ॥ प्राप्नोति षंढतां मूढो यातनाभ्यः परिच्युतः ॥ ३८ ॥ यः करोति नरो होममसमिद्धे हुताशने ॥ सोऽजीर्णघनदुःखार्तो मंदाग्निरभिजायते ॥३९॥ परनिंदाकृतघ्नत्वं परमर्मोपघट्टनम् ॥ नैष्ठुर्यं निर्घृणत्वं च परदारोपसेवनम् ॥४०॥ परस्वहरणाशौच देवतानां च कुत्सनम् ॥ निकृत्या वंचना नृणां कार्पण्यं च नृणां वधः ॥ ४१ ॥ यानि च प्रतिषिद्धानि तद्वृत्तिं च प्रशंसताम् ॥ उपलक्षणानि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु ॥४२॥ दयाभूतेषु सद्वादः परलोकं प्रतिक्रिया ॥ सत्या भूतहिता चोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम् ॥ ४३ ॥ गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनं साधुसंगमः ॥ सत्क्रियाभ्यसनं मैत्री चैतद्बुध्येत पंडितः ॥ ४४ ॥ अन्यानि चैव सद्धर्मक्रियाभूतानि यानि च ॥ स्वर्गच्युतानां लिंगानि पुरुषाणामपापिनाम् ॥ ४५ ॥ एतदुद्देशतो राजन्भवतः कथितं मया ॥ स्वकर्मफलभोक्तॄणां पुण्यानां पापिनां तथा ॥ ४६ ॥

अच्छा सम्वाद देना, परलोकके लिये सत्क्रिया, सत्यता, मनुष्यके हितके निमित्त बोलना, वेदका प्रमाण देखना ॥४३॥ गुरु, देव, ऋषि और सिद्धर्षियोंकी पूजा, साधुसंगम, सत्कर्मका अभ्यास, मित्रता, यह पण्डितोंको जानना चाहिये ॥ ४४ ॥ और अन्यान्य सत्कार्य तथा उत्तम धर्मविषयक जो कुछ निर्दिष्ट हुआ है यह सब लक्षण मनुष्यमें दिखाई दें तो पण्डितोंको निश्चय करना चाहिये कि, इन निष्पाप पुरुषोंने स्वर्गसे भ्रष्ट होकर जन्म ग्रहण किया है ॥ ४५ ॥ हे राजन्! अपने कर्मफल भोगनेवाले पुण्यवान् और पापियोंका समस्त विषय उद्देशानुसार मैंने आपसे वर्णन किया ॥ ४६ ॥

आपने समस्तही देखा है और आपको भी नरकका दर्शन हुआ, अत एव आओ अन्यत्र चलें ॥ ४७ ॥ पुत्रने कहा—तदनन्तर वह राजा यमदूतको आगे करके जैसेही जानेको उद्यत हुए वैसेही नरककी यंत्रणा भोगनेवाले सब मनुष्योंने उच्च स्वरसे क्रन्दन करके कहा ॥ ४८ ॥ "हे भूप ! प्रसन्न होओ और मुहूर्तकाल ठहरो, तुम्हारे अंगके संसर्गी वायुसे हमारा मन अत्यन्त आह्लादित होता है ॥ ४९ ॥ हे नरव्याघ्र ! इस वायुने हमारे समस्त शरीरका परिताप और पीडाकी बाधा हरण की है अतएव हे महीपते ! हमपर दया करो " ॥ ५० ॥ अनन्तर राजाने उन सबके यह वचन सुनकर यमदूतसे पूँछा—हे यमदूत ! मेरे खडे होनेसे इनको इतना आह्लाद क्यों होता है ? ॥ ५१ ॥ मैंने मृत्युलोकमें ऐसे किस पुण्य कर्मका अनुष्ठान किया है, जो इनके प्रति इस

तदेह्यन्यत्र गच्छामो दृष्टं सर्वं त्वयाधुना ॥ त्वया च दृष्टो नरकस्तदेह्यन्यत्र गम्यताम् ॥ ४७ ॥ पुत्र उवाच ॥ ततस्तमग्रतः कृत्वा स राजा गंतुमुद्यतः ॥ ततश्च सर्वैरुत्कृष्टं यातनास्थायिभिर्नृभिः ॥ ४८ ॥ प्रसादं कुरु भूपेति तिष्ठ तावन्मुहूर्त्तकम् ॥ त्वदंगसंगी पवनो मनोह्लादयते हि नः ॥ ४९ ॥ परितापं च गात्रेषु पीडां बाधां च कृत्स्नशः ॥ अपहंति नरव्याघ्र कृपां कुरु महीपते ॥ ५० ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां तं याम्यं पुरुषं ततः ॥ पप्रच्छ कथमेतेषामाह्लादो मयि तिष्ठति ॥ ५१ ॥ किं मया कर्म तत्पुण्यं मर्त्यलोके महत्कृतम् ॥ आह्लाददायिनी व्युष्टिर्यस्येयं तदुदीरय ॥ ५२ ॥ याम्य उवाच ॥ पितृदेवातिथिप्रेष्यशिष्टेनान्नेन ते तनुः ॥ पुष्टिमभ्यागता यस्मात्तद्गतं च मनो यतः ॥ ५३ ॥ ततस्त्वद्गात्रसंसर्गी पवनो ह्लाददायकः ॥ पापकर्मकृतो राजन्यातना न प्रबाधते ॥ ५४ ॥ अश्वमेधादयो यज्ञास्त्वयेष्टा विधिवद्यतः ॥ ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्या यंत्रशस्त्राग्निवायसाः ॥ ५५ ॥

प्रकार आनन्ददायिनी व्युष्टि (फल) होती है ? सो कहो ॥ ५२ ॥ यमदूत बोला—हे महाराज ! आपने प्रथम देवता, पितर, अतिथि और संन्यासी इत्यादिके भोजनसे बचा हुआ अन्न भक्षण करके अपना शरीर पाला था और हरघडी आपका मन इन्हीं बातोंमें लगा रहताथा ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! इसी कारण आपके शरीरसंसर्गी आह्लाददायक इस वायुसे पापात्माओंकी समस्त यातना नष्ट होतीहै ॥ ५४ ॥ और आपने अश्वमेध इत्यादि सब यज्ञोंका यथाविधि अनुष्ठान कियाहै. इस कारण पीडन, छेदन और दाहादि संपूर्ण महादुःखोंके हेतु यमसंबंधीय यंत्र, शस्त्र, अग्नि और कौवोंने तुम्हारे दर्शन और

तेजसे हत होकर इस प्रकार कोमलताका अवलम्बन कियाहै ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ राजाने कहा—मेरी ऐसी बुद्धि है कि, दुःखी मनुष्यकी रक्षा करनेसे जैसा सुख मिलताहै, स्वर्ग वा ब्रह्मलोकमेंभी वैसा सुख उत्पन्न नहीं होता ॥ ५७ ॥ यदि मेरे खडे होनेसे इनकी समस्त यंत्रणाः नष्ट होतीहैं तो हे भद्रसुख! स्थाणुके समान अचल होकर मैं इस स्थानमेंही वास करूंगा ॥ ५८ ॥ यमदूत बोला--आओ, चलो! अपने पुण्यसे इकट्ठा कियाहुआ समस्त भोग भोगो यह पापात्माओंके दुःख भोगनेका स्थान है ॥५९॥ राजाने कहा जबतक यह अत्यन्त दुःखी रहेंगे, तबतक मैं नहीं जाऊंगा, क्योंकि यह सब नरकवासी

पीडनच्छेददाहादिमहादुःखस्य हेतवः ॥ मृदुत्वमागता राजंस्तेजसोपहतास्तव ॥ ५६ ॥ राजोवाच ॥ न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत्सुखं प्राप्यते नरैः ॥ यदार्त्तजंतुनिर्वाणदानोत्थमिति मे मतिः ॥ ५७ ॥ यदि मत्सन्निधावेतान्यातना न प्रबाधते ॥ ततो भद्रमुखाऽत्राहं स्थास्ये स्थाणुरिवाचलः ॥ ५८ ॥ यमपुरुष उवाच ॥ एहि राजेंद्र गच्छामि निजपुण्यसमार्जितान् ॥ भुंक्ष्व भोगांस्तु भुज्यंतु यातनाः पापकर्मिणः ॥ ५९ ॥ राजोवाच ॥ तस्मान्न तावद्यास्यामि यावदेते सुदुःखिताः ॥ मत्सन्निधानात्सुखिनो भवंति नरकौकसः ॥ ६० ॥ धिक्तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमागतम् ॥ यो नार्त्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् ॥ ६१ ॥ यज्ञदानतपांसीह परत्र च न भूतये ॥ भवंति तस्य यस्यार्त्तपरित्राणे न मानसम् ॥ ६२ ॥ नरस्य यस्य कठिनं मनो बालातुरादिषु ॥ वृद्धेषु च न तं मन्ये मानुषं राक्षसो हि सः ॥ ६३ ॥ एषां मत्सन्निकर्षात्तु यद्यग्निपरितापजम् ॥ तथोग्रगंधजं वापि दुःखं नरकसंभवम् ॥ ६४ ॥

मेरे रहनेसे सुखी होते हैं ॥ ६० ॥ शत्रुभी यदि दुःखसे आतुर होकर शरणार्थी हो तो जो पुरुष उसपर अनुग्रह नहीं करता, उसके जीवनको धिक्कार है ॥ ६१ ॥ आर्त पुरुषकी रक्षा करनेमें जिसका चित्त नहीं है, उसका यज्ञ दान वा तपस्या कुछभी इस काल अथवा परकालके सुखके निमित्त नहीं है ॥ ६२ ॥ बालक, आतुर वा बूढे इत्यादिके प्रति जिसका चित्त कठिन है, अर्थात् जो इनके ऊपर दया नहीं करता, मेरे विचारसे वह मनुष्य नहीं बरन राक्षस है ॥ ६३ ॥ यद्यपि इनके समीप रहनेसे मुझको नरककी अग्निके तापसे उत्पन्न तीव्र गंधका दुःख होगा ॥ ६४ ॥

भूख प्याससे प्रगट मूर्च्छाका देनेवाला महादुःख भोगना पडेगा, किन्तु तोभी इनकी रक्षा करनी विचारकर इस महादुःखकोभी स्वर्गके सुखकी अपेक्षा अधिक सुख समझूंगा ॥ ६५ ॥ यदि केवल मात्र मेरे दुःख पानेसे इस प्रकार अनेक दुःखी पुरुषोंको सुख प्राप्त होगा तो मुझे क्या नहीं मिलेगा ? अत एव हे यमदूत ! तुम विलम्ब मत करो, शीघ्र जाओ ॥ ६६ ॥ यमदूत बोला--हे राजन् ! यह धर्म और इन्द्र हैं, आपको लेकर जानेके लिये आये हैं, आपको अवश्यही जाना पडेगा, अत एव आइये ॥ ६७ ॥ धर्मने कहा—हे राजन् ! आपने सम्यक् प्रकारसे मेरी उपासना करी है, इसी कारण आपको स्वर्गमें ले जाऊंगा, अब आप विलम्ब न करैं, शीघ्र इस विमानमें बैठकर चलैं ॥ ६८ ॥ राजा बोले—हे धर्म ! सहस्रों मनुष्य नरकमें पडे कष्ट-

क्षुत्पिपासोद्भवं दुःखं यच्च मूर्च्छाप्रदं महत् ॥ विनाशमेति तद्भद्र मन्ये स्वर्गसुखात्परम् ॥६५ ॥ प्राप्स्यंते ते यदि सुखं बहवो दुःखिते मयि ॥ किं वाप्राप्तं मया न स्यात्तस्मात्त्वं वद मा चिरम् ॥ ६६॥ याम्य उवाच ॥ एष धर्मश्च शक्रश्च त्वां नेतुं समुपागतौ ॥ अवश्यम-स्माद्गन्तव्यं तस्मात्पार्थिव गम्यताम् ॥ ६७ ॥ धर्म उवाच ॥ नयामि त्वामहं स्वर्गं त्वया सम्यगुपासितः ॥ विमानमेतदारुह्य मा विलं-बस्व गम्यताम् ॥ ६८ ॥ राजोवाच ॥ नरके मानवा धर्म पीड्यमानाः सहस्रशः ॥ त्राहीत्यमी च क्रंदंति मामतो न व्रजाम्यहम् ॥ ६९ ॥ इंद्र उवाच ॥ कर्मणा नरकप्राप्तिरेषां पापिष्ठकर्मणाम् ॥ स्वर्गस्त्वयापि गंतव्यो नृप पुण्येन कर्मणा ॥ ७० ॥ राजोवाच ॥ यदि जानासि धर्म त्वं त्वं वा देव शतक्रतो ॥ मम यावत्प्रमाणं तु शुभं तद्वक्तुमर्हथः ॥ ७१ ॥ धर्म उवाच ॥ अब्बिन्दवो यथांभोधौ यथा वा दिवि तारकाः ॥ यथा वा वर्षतो धारा गंगायां सिकता यथा ॥ ७२ ॥

संयुक्त रुदन करते हैं और " हमारी रक्षा करो " ऐसा मुझसे कहते हैं, इस कारण मैं इस स्थानको छोडकर नहीं जाऊंगा ॥ ६९ ॥ इन्द्रने कहा-अपने अपने कर्मके फलसे इन पापियोंको नरककी यंत्रणा भोगनी पडती है, सुतरां अपने पुण्यकर्मके फलसे आपको भी स्वर्गमें जाना उचित है ॥ ७० ॥ राजा बोले—हे धर्म ! हे शचीपति इन्द्र ! मैंने कितना पुण्यसंचय किया है, यदि आप जानतेहो तो बताइये ॥ ७१ ॥ धर्मने कहा—हे राजन् ! समुद्रमें जितनी जलकी बूंदें, आकाशमें जितने तारे, वर्षामें जितनी जलधारा और गंगामें जितनी वालू है, आपका पुण्य भी उतनाही है ॥ ७२ ॥

हे महाराज ! जिस प्रकार जलबिन्दु आदिकी संख्या नहीं करी जाती उसी प्रकार आपका पुण्य भी संख्यातिरिक्त है ॥ ७३ ॥ और फिर हे नृप ! अब इन नारकियोंके ऊपर दया प्रकाश करनेसे आपका वह पुण्य भी शत सहस्र गुण बढ गया ॥ ७४ ॥ सुतरां हे नृपश्रेष्ठ ! उस पुण्यफलको भोगनेके लिये अमरलोकमें चलिये और ये पापात्माभी नरकमें वास करके अपने कर्मोंसे उत्पन्न हुए समस्त पापोंका क्षय करें ॥ ७५॥ राजाने कहा–मेरे समीप वास करनेसे यदि इनका कल्याण नहीं होता तो मनुष्य मेरी संगतिकी इच्छा क्यों करते ? ॥ ७६ ॥ इस कारण हे त्रिदशाधिप ! मेरा जो कुछ पुण्य है, यह यातना

असंख्येया महाराजन्नानायोनिषु जंतवः ॥ तथा तवापि पुण्यस्य संख्या नैवोपपद्यते ॥ ७३ ॥ अनुकंपामिमामद्य नारकेष्विह कुर्वता ॥ तदेव शतसाहस्रसंख्यानीतं त्वया नृप ॥ ७४ ॥ तद्गच्छ त्वं नृपश्रेष्ठ तद्भोक्तुममरालयम् ॥ एते तु नरके पापं क्षपयंतु स्वकर्मजम् ॥ ७५॥ राजोवाच ॥ कथं स्पृहां करिष्यंति मत्संपर्काय मानवाः ॥ यदि मत्संनिधावेषामुत्कर्षो नोपपद्यते ॥ ७६ ॥ तस्माद्यत्सुकृतं किंचिन्मास्ति त्रिदशाधिप ॥ मुच्यंतां तेन नरकात्पापिनो यातनागताः ॥ ७७ ॥ इंद्र उवाच ॥ एवमूर्ध्वतरं स्थानं त्वया प्राप्तं महीपते ॥ एतांस्तु नरकात्पश्य विमुक्तान्पापकर्मिणः ॥ ७८ ॥ पुत्र उवाच ॥ ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः ॥ विमानं चाधिरोप्यैनं स्वर्लोकमनयद्धरिः ॥ ७९ ॥ अहं चान्ये च ये तत्र यातनाभ्यः परिच्युताः ॥ स्वकर्मफलनिर्दिष्टं ततो योन्यंतरं गताः ॥ ८० ॥ एवमेते समाख्याता नरका द्विजसत्तम ॥ येन येन च पापेन यां यां योनिमुपैति वै ॥ ८१ ॥

भोगनेवाले पापात्मा उसके द्वाराही नरकसे छूटे ॥ ७७ ॥ इन्द्रने कहा–हे महीपते ! इससे आपकी और भी ऊंचे स्थानमें गति हुई, यह देखो ! पापी लोग नरकसे छूटगये ॥ ७८ ॥ पुत्रने कहा–अनन्तर उन राजाके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी और शचीपति इन्द्र उनको विमानमें बैठालकर स्वर्गलोकमें लेगये ॥ ७९ ॥ और इधर मैंने व अन्यान्य नारकियोंने यातनासे छूटकर अपने अपने कर्मफलानुसार भिन्न भिन्न योनिमें जन्म ग्रहण किया ॥ ८० ॥ हे द्विजसत्तम ! इन नरकोंका सब वृत्तान्त आपके निकट यथार्थ रीतिसे वर्णन किया, जिस जिस पापसे जिस जिस योनिमें जन्म ग्रहण करना पडता है ॥ ८१ ॥

जो मैंने पहिले देखा है, वह सबही आपके निकट वर्णन किया, आपसे जो कुछ कहा यह सभी मैंने पूर्वमें अनुभव किया है, सुतरां यह मिथ्या नहीं है. हे महाभाग ! अब अनुमति दीजिये, क्या वर्णन करूं ॥ ८२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ पिताने कहा—हे वत्स ! घटीयंत्रकी समान व्यवस्थित अतिशय त्यागने योग्य संसारका अव्ययस्वरूप तुमने मुझसे वर्णन किया ॥ १ ॥ मुझको भी ज्ञान हुआ कि " समस्त इसी प्रकार है " जब कि, संसारकी ऐसी व्यवस्था है तो कहताहूं, देखो ! मुझको क्या करना चाहिये ? ॥२॥ पुत्र बोला--हे तात ! यदि निःशंक चित्तसे मेरे वचनमें श्रद्धा करो तो गृहस्थाश्रम छोडकर वानप्रस्थाश्रम अवलम्बन कीजिये ॥ ३ ॥ विधानानुसार वानप्रस्थ आश्रमका अनुष्ठान-

तत्तत्सर्वं समाख्यातं यथा दृष्टं मया पुरा ॥ पुरानुभवजं ज्ञानमवाप्य कथितं तव ॥ अतः परं महाभाग किमन्यत्कथयामि ते ॥ ८२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे नरकस्थोद्धारवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ पितोवाच ॥ कथितं मे त्वया वत्स संसारस्य व्यवस्थितम् ॥ स्वरूपमपि देहस्य घटीयंत्रवदव्ययम् ॥ १ ॥ तदेव मे तदखिलं ममावगतमीदृशम् ॥ किं मया वद कर्त्तव्यमेवमस्मिन्व्य-वस्थिते ॥ २ ॥ पुत्र उवाच ॥ यदि मद्वचनं तात श्रद्दधास्यविशंकितः ॥ तत्परित्यज्य गार्हस्थ्यं वानप्रस्थमना भव ॥ ३ ॥ तमनुष्ठाय विधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम् ॥ आत्मन्यात्मानमाधाय निर्द्वंद्वो निष्परिग्रहः ॥ ४ ॥ एकांतशीलो वश्यात्मा भव भिक्षुरतंद्रितः ॥ तत्र योगपरो भूत्वा बाह्यस्पर्शविवर्जितः ॥ ५ ॥ ततः प्राप्स्यसि तं योगं दुःखसंयोगभेषजम् ॥ मुक्तिहेतुमनौपम्यमनाख्येयमसंज्ञितम् ॥ ६ ॥ तत्संयोगान्न ते योगो भूयो भूतैर्भविष्यति ॥ पितोवाच ॥ वत्स योगं ममाचक्ष्व मुक्तिहेतुमतः परम् ॥ ७ ॥

पूर्वक अग्निपरिग्रहत्याग, आत्मामें आत्माका संयोग कर निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होओ ॥ ४ ॥ और एकान्तशील हो आत्माको वशीभूत एवं आलस्यहीन कर भिक्षुक होओ. इस प्रकार योगपरवश हो जब बाह्य स्पर्शरहित होंगे ॥ ५ ॥ तब मुक्तिके कारण स्वरूप, उपमाविहीन, वचनसे अतीत निःसंग और दुःखसंयोगके औषधिस्वरूप इस योगको प्राप्त होंगे ॥ ६ ॥ इस यागेका संयोग होनेसे आपका फिर पंचभूतके संग मेल नहीं रहेगा । पिताने कहा--हे वत्स ! अब मुक्तिके कारणस्वरूप उस योगका विषय वर्णन करो ॥ ७ ॥

जिस योगका अवलम्बन करनेसे भौतिक पदार्थोंके संग मिलित होकर पुनर्वार जन्मग्रहणपूर्वक मुझको फिर ऐसा दुःख पाना न पडे, यद्यपि आत्मा निर्लिप्त है किन्तु मेरी संसारबंधनमें अत्यन्त आसक्ति है ॥ ८ ॥ अतएव उसको लाभ करके आत्मा भी फिर युक्त न हो, सुतरां मुझसे योग कहो. हे वत्स ! मेरा देह और मन संसाररूपी सूर्यके तापकी पीडासे तप रहा है ॥ ९ ॥ तुम ब्रह्मज्ञानमय सुशीतलाम्बुमिश्रित वचनरूपी जलके द्वारा उसको परिषिक्त अर्थात् ठंडा करो अविद्यारूपी कालसर्पने मुझको काटा है, मैं उसके विषकी पडासे अत्यन्त पीडित होकर मृतप्राय हुआहूं ॥ १० ॥ तुम अपने वचनरूपी अमृतको पिलाकर मुझको फिर जीवित करो। हे वत्स ! मैं पुत्र, स्त्री, गृह, खेत ममतारूपी बेडियोंसे दृढ बँधाहुआहूं ॥ ११ ॥ तुम सद्भावसंयुक्त विज्ञान

येन भूतैः पुनर्भूतो नैदृग्दुःखमवाप्नुयाम् ॥ यत्रासक्तिपरस्यात्मा मम संसारबंधनैः ॥ ८ ॥ नोति योगमयोगोपि तं योगमधुना वद ॥ संसारादित्यतापार्त्तिविशुष्यद्देहिमालसम् ॥ ९ ॥ ब्रह्मज्ञानांबुशीतेन सिंच मां वाक्यवारिणा ॥ अविद्याकृच्छ्रसर्पेण दष्टं तद्विषपीडितम् ॥ १० ॥ स्ववाक्यामृतदानेन मां जीवय पुनर्मृतम् ॥ पुत्रदारगृहक्षेत्रममत्वनिगडार्दितम् ॥ ११ ॥ मां मोचयेष्टसद्भावविज्ञानोद्घाटनैश्चिरम् ॥ पुत्र उवाच ॥ शृणु तात यथा योगो दत्तात्रेयेण धीमता ॥ १२ ॥ अलर्काय पुरा प्रोक्तः सम्यक्पृष्टेन विस्तरात् ॥ पितोवाच ॥ दत्तात्रेयः सुतः कस्य कथं वा योगमुक्तवान् ॥ १३ ॥ कश्चालर्को महाभागो यो योगं परिपृष्टवान् ॥ पुत्र उवाच ॥ कौशिको ब्राह्मणः कश्चित्प्रतिष्ठानेऽभवत्पुरे ॥ १४ ॥ सोऽन्यजन्मकृतैः पापैः कुष्ठरोगातुरोऽभवत् ॥ तं तथा व्याधितं भार्या पतिं देवमिवार्चयत् ॥ १५ ॥

उत्पन्न करके शीघ्र मुझको छुडाओ। पुत्र बोला–हे तात ! पूर्वमें बुद्धिमान् दत्तात्रेयजीने अलर्कके सम्यक् प्रकार पूंछनेपर उनसे विस्तारपूर्वक जो योग कहाथा, मैं वही कहताहूं सुनो। पिताने कहा–हे वत्स ! दत्तात्रेयजी किसके पुत्र थे और उन्होंने किस प्रकार योग कहाथा ? ॥ १२ ॥ १३ ॥ और जिन्होंने योग पूंछा था, वह महाभाग अलर्क कौन थे ? पुत्र बोला–पहिले प्रतिष्ठाननगरमें कुशिकवंशोत्पन्न कोई ब्राह्मण वास करताथा ॥ १४ ॥ वह पूर्व जन्मके किये पापद्वारा कुष्ठ रोगसे आतुर हुआ स्वामीके कुष्ठरोगसे आक्रान्त होनेपरभी उसकी भार्या देवताकी समान उसकी पूजा करती ॥ १५ ॥

चरणोंमें तेल मलती, अंग दाबती, स्नान कराती, आच्छादन करती, भोजन कराती और कफ, मूत्र, मल तथा रक्तका प्रवाह धोती ॥ १६ ॥ निर्जनमें उपकार और प्रियसंभाषणादि द्वारा विनीतभावसे सदा उसकी पूजा करती ॥ १७ ॥ किन्तु ब्राह्मण अत्यन्त कोपनस्वभाव और निष्ठुर होनेके कारण विनीत पत्नीसे निरंतर पूजित होकरभी उसको सदा घुडकता, तथापि वह प्रणत भार्या उसको देवता जानती ॥ १८ ॥ वह उस बीभत्सरूपी ब्राह्मणको सबसे श्रेष्ठ मानती ब्राह्मणमें चलनेकी शक्ति नहीं थी तोभी एक समय ॥ १९ ॥ पत्नीको आज्ञा दी कि, मैंने जो उस वेश्याको देखाहै, जो राजमार्गके पार्श्ववर्त्ती घरमें वास करती है ॥ २० ॥ तू मुझे उसी वेश्याके घर लेचल, हे धर्मकी जाननेवाली ! वही मेरे हृदयमें वर्त्तमान रहती है, मैंने प्रातःकालमें उस बालाको

पादाभ्यंगांगसंवाहस्नानाच्छादनभोजनैः ॥ श्लेष्ममूत्रपुरीषासृक्प्रवाहक्षालनेन च ॥ १६ ॥ रहस्येवोपचारेण प्रियसंभाषणेन च ॥ सततं पूज्यमानोऽपि तयातीव विनीतया ॥१७॥ अतितीव्रप्रकोपत्वान्निर्भत्सयति दारुणः ॥ तथापि प्रणता साध्वी तममन्यत दैवतम् ॥१८॥ तं तथाप्यतिबीभत्सं सर्वश्रेष्ठममन्यत ॥ अचंक्रमणशीलोऽपि स कदाचिद्द्विजोत्तमः ॥१९॥ प्राह भार्यां नयस्वेति त्वं मां तस्या निवेशनम् ॥ या सा वेश्या मया दृष्टा राजमार्गे गृहे सता ॥ २० ॥ तां मे प्रापय धर्मज्ञे सैव मे हृदि वर्त्तते ॥ दृष्टा सूर्योदये बाला रात्रिश्चेयमुपागता ॥ २१ ॥ दर्शनानंतरं सा मे हृदयान्नापसर्पति ॥ यदि सा चारुसर्वांगी पीनश्रोणिपयोधरा ॥ २२ ॥ नोपगूहति तन्वंगी तन्मां द्रक्ष्यति वै मृतम् ॥ वामः कामो मनुष्याणां बहुभिः प्राप्य चेतसः ॥ २३ ॥ ममाशक्तिश्च गमने संकुलं प्रतिभाति मे ॥ तत्तदा वचनं श्रुत्वा भर्त्तुः कामातुरस्य सा ॥ २४ ॥

देखा है और अब रात्रि होगई है ॥ २१ ॥ तथापि जबसे देखा है, तबसे वह मेरे हृदयसे अलग नहीं होती, यदि वह पुष्टश्रोणिभागवाली, पुष्टपयोधरवाली ॥ २२ ॥ तन्वङ्गी सर्वाङ्गसुन्दरी बालिका मुझको आलिंगन नहीं करेगी तो निःसन्देह मेरा मरण देखोगी, क्योंकि एक तो कामदेव मनुष्यके प्रतिकूल है ॥ २३ ॥ तिसपरभी अनेक मनुष्य उसके प्रार्थी हैं, फिर मुझमें चलनेकी शक्ति नहीं. इस कारण मुझे विषम संकट बोध होता है, उस समय कामातुर स्वामीके इस प्रकार वचन सुनकर ॥ २४ ॥

सत्कुलोत्पन्न महाभागा पतिव्रता व्याकुल हुई–पत्नीने दृढरूपसे कमर बांध बहुत धन ग्रहण किया ॥ २५॥ और स्वामीको कंधेपर चढायकर धीरे धीरे गमन करने लगी। एक तो रात्रिही अंधियारी थी, फिर आकाशमें मेघ आच्छादित थे, किन्तु वह स्वामीके प्रियकार्यकी अभिलाषा करनेवाली द्विजाङ्गना चंचल बिजलीका प्रकाश देखकर राजमार्गमें गमन करने लगी और उसी मार्गमें एक शूली गडरहीथी जिसपर चोर न होकर भी चोरीके अपराधसे ॥ २६ ॥ २७ ॥ मांडव्य मुनि चढेहुए अत्यन्त दुःख भोगते थे, मार्गमें अंधकार होनेसे हठात् उस पत्नीके कंधेपर चढेहुए कौशिक ब्राह्मणके अंगस्पर्शसे उनका चरण विचलित हुआ ॥ २८ ॥ पैरके विचलित होनेसे मांडव्य मुनिने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा कि, ' जिस पुरुषने पैर विचलित

तत्पत्नी व्याकुला जाता महाभागा पतिव्रता ॥ गाढं परिकरं बद्ध्वा शुल्कमादाय चाधिकम् ॥ २५ ॥ स्कंधे भर्त्तारमारोप्य जगाम मृदुगामिनी ॥ निशि मेघावृते व्योम्नि चलद्विद्युच्च दृश्यते ॥ २६ ॥ राजमार्गे प्रियं भर्तुश्चिकीर्षंती द्विजांगना ॥ पथि शूले तदा प्रोतमचोरं चोरशंकया ॥२७॥ माण्डव्यमतिदुःखार्तमंधकारे च स द्विजः ॥ पत्नीस्कंधसमारूढश्चालयामास कौशिकः॥ २८ ॥ वामांगेनाथ संक्रुद्धो मांडव्यस्तमुवाच ह ॥ येनाहमेवमत्यर्थं दुःखितश्चालितो वृथा ॥ २९ ॥ इत्थं कष्टमनुप्राप्तः स पापात्मा नराधमः ॥ सूर्योदयेऽवशः प्राणैर्वियोक्ष्यति न संशयः ॥ ३० ॥ भास्करालोकनादेव स विनाशमवाप्स्यति ॥ तस्य भार्या ततः श्रुत्वा तं शापमतिदारुणम् ॥ ३१॥ प्रोवाच व्यथिता सूर्यो नैवोदयमुपेष्यति ॥ ततः सूर्योदयाभावादभवत्संतता निशा ॥ ३२ ॥

करके मुझे वृथा ॥ २९ ॥ यंत्रणा दी है सूर्योदय होतेही वह पापात्मा नराधम असह्य यंत्रणा भोगनेसे अवश होकर निःसंदेह प्राण त्याग करेगा ॥ ३० ॥ सूर्यके देखतेही निःसन्देह उसका प्राण त्याग होगा' तब उसकी पत्नीने उनका यह दारुण शाप सुन ॥ ३१ ॥ अत्यन्त व्यथित होकर कहा "सूर्य अब उदितही नहीं होंगे " अनन्तर पतिपरायणा ब्राह्मणकी स्त्रीके उसी वचनानुसार सूर्यदेवके उदित न होनेसे सदा रात्रिही रही इस प्रकार बहुत रात्रियोंके बीतनेपर देवताओंको अत्यन्त भय प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥

तब वह विचारने लगे कि, " जब स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा और स्वाहा लोप होगा तब " किस प्रकारसे इस संपूर्ण जगत्‌की रक्षा होगी ? ॥ ३३ ॥ अहोरात्रकी व्यवस्थाके विना मास और ऋतुका विभाग नहीं होगा, मास और ऋतुका विभाग न होनेसे उत्तरायण और दक्षिणायनका ज्ञान नहीं होगा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अयनज्ञान न होनेसे किस प्रकार संवत्सरकी स्थिरता होगी ? और संवत्सरका ज्ञान न होनेसे अन्यान्य कालका ज्ञान किस प्रकारसे होगा ? पतिव्रताके वचनानुसार सूर्य अब उदित नहीं होते ॥ ३६ ॥ सूर्योदय नहीं होनेसे स्नानदानादि कार्य भी बन्द हुए, अब अग्निचयन अर्थात् हवन भी नहीं होता और समस्त यज्ञोंका भी अभाव दीखता है ॥ ३७ ॥ कालके विना इष्टि नहीं होती यज्ञदानादि क्रिया नहीं होती चराचर अंधकारसे

बहून्यहःप्रमाणानि ततो देवा भयं ययुः ॥ निःस्वाध्यायवषट्कारं स्वधास्वाहाविवर्जितम् ॥३४॥ कथं नु खल्विदं सर्वं न गच्छेत्संक्षयं जगत् ॥ अहोरात्रव्यवस्थाया विना मासर्तुसंक्षयः ॥ ३४ ॥ तत्संक्षयान्न त्वयने ज्ञायेते दक्षिणोत्तरे ॥३५॥ विना चायनविज्ञानं कालः संवत्सरः कुतः ॥ पतिव्रताया वचनान्नोद्गच्छति दिवाकरः ॥ ३६ ॥ सूर्योदयं विना नैव स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ अग्नेर्विहरणं चैव क्रत्वभावश्च लक्ष्यते ॥ ३७ ॥ न कालेन विना चेष्टिर्न च यज्ञादिकाः क्रियाः ॥ नश्यंति सर्वभूतानि तमोभूते चराचरे ॥ ३८ ॥ नैवाप्यायनमस्माकं विना होमेन जायते ॥ वयमाप्यायिता मर्त्यैर्यज्ञभागैर्यथोचितैः ॥ ३९ ॥ वृष्ट्यादिनानुगृह्णीमो मर्त्यान्सस्याभिवृद्धये ॥ निष्पादितास्वौषधीषु मर्त्या यज्ञैर्यजंति नः ॥ ४० ॥ एवं वयं प्रयच्छामः कामान्यज्ञादिपूजिताः ॥ अधो हि वर्षाम वयं मर्त्याश्चोर्ध्वं प्रवर्षिणः ॥ ४१ ॥

व्याप्त होनेके कारण सब प्राणी नष्ट होते हैं ॥ ३८ ॥ होमके विना हमारी तृप्तिका भी दूसरा उपाय नहीं है, मनुष्यगण यथोचित हमको यज्ञभागमें तृप्त करते हैं ॥ ३९ ॥ हम भी सस्यादि (अन्नादि) की सिद्धिके लिये जल वर्षाकर उनपर अनुग्रह करते हैं समस्त औषधी उत्पन्न होनेसेही मनुष्य उनके द्वारा हमारे उद्देशसे यज्ञ करते हैं ॥ ४० ॥ हमभी यज्ञादिद्वारा पूजित होकर उनकी अभिलाषानुसार समस्त विषय संपादन करते हैं, हम नीचेकी ओर वृष्टिधारा वर्षण करते हैं और मनुष्य ऊपरकी ओर घृतधारा बरसाते हैं ॥ ४१ ॥

हम जल वर्षाकर और मनुष्य हवि देकर प्रसन्न करते हैं, जो नित्य नैमित्तिकी क्रियायें हमको नहीं देते ॥ ४२ ॥ अर्थात् जो दुरात्मा नित्य नैमित्तिक समस्त क्रिया हमारे उद्देशसे अर्पण नहीं करते और लोभी होकर यज्ञभाग स्वयं भोजन करते हैं, हम उनका नाश करनेके लिये जल, अग्नि, सूर्य, वायु ॥ ४३ ॥ और पृथ्वीको दूषित करतेहैं और दुष्टजलादि भोग करनेसे उन अपकारी पापात्माओंके ॥४४॥ विनाशसूचक दारुण रोग प्रवर्त्तित होतेहैं. और जो मनुष्य हमको तृप्त करके शेषमात्र स्वयं भोजन करते हैं ॥ ४५ ॥ हम उन महात्माओंको समस्त पुण्यमय स्थान देते हैं, इस समय तो उनक कुछभी उपस्थित नहीं है, न कोई उपाय विदित है ॥ ४६ ॥ किन्तु किस प्रकारसे दग्ध सृष्टिका स्थापन हो और किस प्रकारसे दिनकी सृष्टि हो देवता

तोयवर्षेण हि वयं हविर्वर्षेण मानवाः ॥ येऽस्माकं न प्रयच्छंति नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥ ४२ ॥ क्रतुभागं दुरात्मानः स्वयं वाश्नंति लोलुपाः ॥ विनाशाय वयं तेषां तोयसूर्याग्निमारुताः ॥ ४३ ॥ क्षितिं च संदूषयामः पापानामपकारिणाम् ॥ दुष्टतोयादिदोषेण तेषां दुष्कृतकर्मणाम् ॥ ४४ ॥ उपसर्गाः प्रवर्त्तंते मरणाय सुदारुणाः ॥ ये त्वस्मान्प्रीणयित्वा तु भुंजते शेषमात्मना ॥ ४५ ॥ तेषां पुण्यतमाँल्लोकान्वितरामो महात्मनाम् ॥ तन्नास्ति सर्वमेताद्धि न चोपायव्यवस्थितम् ॥ ४६॥ कथं नु दिनसंगः स्यादन्योन्यमवदन्सुराः ॥ तेषामेव समेतानां यज्ञव्युच्छित्तिशंकिनाम् ॥ ४७॥ देवानां वचनं श्रुत्वा प्राह देवः प्रजापतिः ॥ तेजःपरं तेजसैव तपसा च तपस्तथा ॥ ४८॥ प्रशाम्यत्यमरास्तस्माच्छृणुध्वं वचनं मम ॥ पतिव्रताया माहात्म्यान्नोद्गच्छति दिवाकरः ॥ ४९ ॥ तस्य चानुदयाद्धानिर्मर्त्यानां भवतां यथा ॥ तस्मात्पतिव्रतामत्रेरनसूयां तपस्विनीम् ॥ ५० ॥

आपसमें इस प्रकार कहनेलगे, यज्ञविनाशकी शंका करनेवाले सब ॥ ४७ ॥ देवताओंके इस प्रकार वचन सुनकर देवताओंमें श्रेष्ठ प्रजापति ब्रह्माजीने कहा ॥४८॥ हे अमरगण ! देखो, तेजसे परम तेज और तपसे तपका विनाश होता है, अत एव मेरा वचन सुनो. देखो-पतिव्रताके माहात्म्यसे सूर्य उदय नहीं होता है सूर्यके उदय न होनेसे तुम्हारी और मनुष्योंकी अत्यन्त हानि होतीहै, इस कारण तुम यदि सूर्योदय होनेकी अभिलाषा करते हो तो एक मात्र पतिव्रता तपस्विनी अत्रिमुनिकी पत्नी अनसूयाको ॥ ४९ ॥ ५० ॥

सूर्यके उदयकी कामनासे प्रसन्न करो। पुत्र बोला–अनन्तर जब देवताओंने जाकर उनको प्रसन्न किया, तब वह इनके द्वारा प्रसन्न होकर बोली "तुम अभिलषित विषयकी प्रार्थना करो" ॥५१॥ देवताओंने यह प्रार्थना करी कि, 'पहिलेकी समान दिन हो अर्थात् सूर्य निकले' अनसूयाने कहा–पतिव्रताकी महिमा कभी हीन होनेवाली नहीं है ॥ ५२ ॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ ! उस पतिव्रताका वैसा सन्मान करके भेजूंगी, जिस प्रकार फिर दिनरातकी स्थिति होजाय ॥ ५३ ॥ और जिस प्रकारसे उसका वह पति शापके कारण नाशको प्राप्त न हो सो करूंगी. पुत्रने कहा–अनसूया इस प्रकार देवताओंसे

प्रसादयत वै पत्नीं भानोरुदयकाम्यया ॥ पुत्र उवाच ॥ तैः सा प्रसादिता गत्वा प्राहेष्टं व्रियतामिति ॥ ५१ ॥ अथाचंत दिनं देवा भवत्विति यथा पुरा ॥ अनसूयोवाच ॥ पतिव्रताया माहात्म्यं न हीयेत कथं त्विति ॥५२॥ संमान्य तां तथा साध्वीं तथा प्रेष्याम्यहं सुरा ॥ यथा पुनरहोरात्रसंस्थानमुपजायते ॥ ५३ ॥ यथा च तस्याः स पतिर्न शापान्नाशमेष्यति ॥ पुत्र उवाच ॥ एवमुक्त्वा सुरांस्तस्या गत्वा सा मंदिरं शुभा ॥ ५४ ॥ उवाच कुशलं पृष्ट्वा धर्मं भर्तुस्तथात्मनः ॥ कच्चिन्नंदसि कल्याणि स्वभर्तुः सुखदायिनी ॥ ५५ ॥ कच्चिच्चाखिलदेवेभ्यो मन्यसे ह्यधिकं पतिम् ॥ भर्तुः शुश्रूषणादेव मया प्राप्तं महत्फलम् ॥ ५६ ॥ सर्वकामफलावाप्तिः पत्युः शुश्रूषणात्स्त्रियाः ॥ पंचर्णानि मनुष्येण साध्वि देयानि सर्वदा ॥ ५७ ॥ तथात्मवर्णधर्मेण कर्तव्यो धनसंचयः ॥ प्राप्तश्चार्थस्तथा पात्रे विनियोज्यो विधानतः ॥ ५८ ॥ सत्यार्जवतपोदानदयायुक्तो भवेत्सदा ॥ क्रिया च शास्त्रनिर्दिष्टा रागद्वेषविवर्जिता ॥ ५९ ॥

कह उसके मन्दिरको गई ॥ ५४ ॥ और उसकी तथा उसके स्वामीकी धर्मविषयक कुशल पूछी कि, हे कल्याणी ! हे भर्ताकी सुख देनेवाली ! तुम स्वामीका सुख देखनेसे आह्लादित तो होती हो ॥ ५५ ॥ और सब देवताओंकी अपेक्षा स्वामीको श्रेष्ठ तो जानती हो मैं केवलमात्र भर्त्ताकी शुश्रूषासेही महाफलको प्राप्त हुई हूं ॥५६॥ स्त्रीकी सब कामना पतिकी शुश्रूषासेही सफल होती है. हे साध्वि ! मनुष्यको पांच ऋण सर्वदा देनेयोग्य हैं ॥५७॥ अपने वर्णके धर्मानुसार धनसंचय करैं और वह संचित धन विधानानुसार उपयुक्त पात्रमें दान करैं ॥ ५८ ॥ और सदा सत्य, सरलता, तप, दान और दयापरायण हों, तथा प्रतिदिन श्रद्धासहित राग और द्वेषरहित ॥ ५९ ॥

यथाशक्ति समस्त शास्त्रोक्त क्रियाका अनुष्ठान करै, पुरुष इस प्रकार अपनी शक्तिके अनुसार स्वजातिविहित समस्त लोकोंको प्राप्त होते हैं ॥ ६० ॥ और महाक्लेशसे क्रमशः प्राजापत्यादि पवित्र धाममें जानेको समर्थ होते हैं, किन्तु स्त्रियें केवल पतिकी सेवासेही मनुष्यके दुःखोपार्जित इस सब पुण्यमेंसे अर्द्धांशको प्राप्त होती हैं. स्त्रियोंके पक्षमें यज्ञ श्राद्ध वा उपवासका कोई पृथक् विधान नहीं है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ वह केवलमात्र स्वामीकी शुश्रूषासेही समस्त अभिलषित लोकोंमें जानेको समर्थ हैं. इस कारण हे साध्वि ! हे महाभागे ! तुम स्वामीकी शुश्रूषामें सदा यत्नवती होओ । क्योंकि स्वामीही स्त्रीकी परम गति है ॥ ६३ ॥ देखो–पुरुष, देवता, पितर वा अतिथिगणोंके प्रति सत्क्रियानुसार जो पूजादि प्रदान करते हैं, अनन्यमन स्त्री केवलमात्र

कर्त्तव्याहरहः श्रद्धा पुरस्कारेण शक्तितः ॥ स्वजातिविहितानेवं लोकान्प्राप्नोति मानवः ॥ ६० ॥ क्लेशेन महता साध्वि प्राजापत्यादिकान्क्रमात् ॥ स्त्रियश्चैवं समस्तस्य नरैर्दुःखार्जितस्य वै ॥ ६१ ॥ पुण्यस्यार्द्धापहारिण्यः पतिशुश्रूषयैव हि ॥ नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न श्राद्धं नाप्युपोषितम् ॥ ६२ ॥ भर्तुः शुश्रूषयैवैता लोकानिष्टाञ्जयंति हि ॥ तस्मात्साध्वि महाभागे पतिशुश्रूषणं प्रति ॥ त्वया मतिः सदा कार्या यतो भर्त्ता परा गतिः ॥ ६३ ॥ यद्देवेभ्यो यच्च पित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भर्ताभ्यर्चनं सत्क्रियां च ॥ तस्यार्द्धं वै केवलानन्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव ॥ ६४ ॥ पुत्र उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रतिपूज्य तदादरात् ॥ प्रत्युवाचात्रिपत्नीं तामनसूयामिदं वचः ॥ ६५ ॥ धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि दैवस्याप्यवलोकतः ॥ यन्मे प्रकृतिकल्याणि श्रद्धां वर्धयसे पुनः ॥ ६६ ॥ जानाम्येतन्न नारीणां कश्चित्पतिसमागतिः ॥ तत्प्रीतिश्चोपकाराय इह लोके परत्र च ॥ ६७ ॥

स्वामीकी शुश्रूषासेही उसका अर्धांश भोग करती है ॥ ६४ ॥ पुत्र बोला--अत्रिपत्नी अनसूयाके यह वचन सुन द्विजरमणीने आदरसहित उसकी पूजा करके कहा ॥ ६५ ॥ हे स्वभावशुभदायिनी ! अब मैं धन्य और अनुगृहीत हुई, देवताओंने भी आज मेरे ऊपर दृष्टि पात की, क्योंकि तुमने आज फिर मेरी स्वामीके प्रति श्रद्धा बढादी ॥ ६६ ॥ मैंने जाना कि, स्त्रीकी पतिके समान और दूसरी गति नहीं है. उनके प्रसन्न होनेसे इस लोक और परलोकमें उपकार होता है ॥ ६७ ॥

हे यशस्विनी ! पतिके प्रसादसेही स्त्रियें इस लोक और पर लोकमें सुख भोगती हैं, क्योंकि भर्त्ताही एकमात्र स्त्रियोंका देवता है ॥ ६८ ॥ हे महाभागे ! हे शुभे ! मानिनीने जब आपही मेरे स्थानमें आगमन किया है, तब मुझको वा मेरे स्वामीको क्या करना चाहिये ? इस विषयमें अनुमति दो ॥ ६९ ॥ अनसूयाने कहा—हे साध्वि ! तुम्हारे वचनानुसारही दिन रात्रिका भेद मिट जानेसे समस्त सत्क्रिया नष्ट होगई हैं, इस कारण यह देवता अत्यन्त दुःखी होकर देव-राज इन्द्रके सहित मेरे निकट आय ॥ ७० ॥ पूर्वके समान अखण्डित दिनरातके होनेकी प्रार्थना करते हैं; मैं इसीलिये तुम्हारे पास आईहूं मेरा वचन

पतिप्रसादादिह च प्रेत्य चैव यशस्विनी ॥ नारी सुखमवाप्नोति नार्या भर्त्ता हि दैवतम् ॥ ६८ ॥ सा त्वं ब्रूहि महाभागे प्राप्ताया मम मंदि-रम् ॥ आर्यायाः किं नु कर्त्तव्यं मयार्येणाप वा शुभे ॥ ६९ ॥ अनसूयोवाच ॥ एते देवाः सहेन्द्रेण मामुपागम्य दुःखिताः ॥ त्वद्वाक्या-पास्तसत्कर्मदिननक्तनिरूपणाः ॥ ७० ॥ याचंतेऽहर्निशासंस्थां यथावदविखंडिताम् ॥ अहं तदर्थमायाता शृणु चैतद्वचो मम ॥ ७१ ॥ दिनाभावात्समस्तानामभावो यागकर्मणाम् ॥ तदभावात्सुराः पुष्टिं नोपयांति तपस्विनि ॥ ७२ ॥ अह्नश्चैव समुच्छेदा-दुच्छेदः सर्वकर्मणाम् ॥ तदुच्छेदादनावृष्ट्या जगदुच्छेदमेष्यति ॥ ७३ ॥ तत्त्वमिच्छसि धैर्येण जगदुद्धर्त्तुमापदः ॥ प्रसीद साध्वि लोकानां पूर्ववद्वर्त्ततां रविः ॥ ७४ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ मांडव्येन महाभागे शप्तो भर्त्ता ममेश्वरः ॥ सूर्योदये विनाशं त्वं प्राप्स्यसीत्य-तिमन्युना ॥ ७५ ॥

सुनो ॥ ७१ ॥ हे तपस्विनी ! दिनके अभावमें समस्त योगकर्मका अभाव हुआ है और यज्ञके न होनेसे देवताओंकी पुष्टि नहीं होती ॥ ७२ ॥ दिनके न होनेसे सब कर्म नष्ट होगये हैं, और कर्मोंके नष्ट होनेसे अनावृष्टि होगई है. जिससे कि, सब जगत् नष्ट होना चाहता है ॥ ७३ ॥ ऐसी आपदासे जगत्को रक्षित करनेकी यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हे साध्वि ! लोकोंपर प्रसन्न होओ, और सूर्यदेवभी पहिलेकी समान उदित हों ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणीने कहा—हे महाभागे ! मांडव्यमुनिने अत्यन्त क्रोधित होकर मेरे भर्त्ताको इस प्रकार शाप दिया है कि, " सूर्य उदय होतेही तेरा पति मर जायगा " ॥ ७५ ॥

अनसूया बोली--हे कल्याणी ! यदि तुम्हारी अभिलाषा हो तो मैं तुम्हारे स्वामीकी देह पूर्ववत् करूंगी ॥ ७६ ॥ हे वरवर्णिनी ! पतिव्रता स्त्रीकी महिमा सम्यक् प्रकार मुझको आराधनीय है अतएव मैं तुम्हारा सन्मान करूंगी ॥७७॥ पुत्रने कहा–ब्राह्मणीके " तथास्तु " कहनेपर तपस्विनी अनसूयाने अर्घ्य उद्यत करके जब सूर्यदेवका आवाहन किया, तब दश दिन क्रमागत रात्रि थी, अर्थात् उस समयतक दश रात्रियोंका प्रमाण बीतगया था ॥ ७८ ॥ अनन्तर प्रफुल्ल कमलके समान लालवर्ण उरुमण्डल भगवान् विवस्वान्‌ने जैसेही उदयाचलमें आरोहण किया ॥७९॥ इसी बीचमें उसके भर्ता ब्राह्मणका प्राण नष्ट हुआ और वह जैसे ही पृथ्वीमें गिरा, द्विजरमणीने उसी समय उसको पकड लिया ॥ ८० ॥ अनसूया बोली हे भद्रे ! तुम विषाद मत करो, मैंने केवल

अनसूयोवाच ॥ यदि ते रोचते भद्रे ततस्तद्वचनादहम् ॥ करोमि पूर्ववद्देहं भर्त्तारं वचनात्तव ॥ ७६ ॥ मयापि सर्वथा स्त्रीणां माहात्म्यं वरवर्णिनी ॥ पतिव्रतानामाराध्यमिति संमानयामि ते ॥ ७७ ॥ पुत्र उवाच ॥ तथेत्युक्ते तथा सूर्यमाजुहाव तपस्विनी ॥ अनसूयार्घ्यमुद्यम्य दशार्धरात्रे तदा निशि ॥ ७८ ॥ ततो विवस्वान्भगवान्फुल्लपद्मारुणाकृतिः ॥ शैलाधिराजमुदयमारुरोहोरुमंडलः ॥ ७९ ॥ समनंतरमेवास्या भर्त्ता प्राणैर्व्ययुज्यत ॥ पपात च महीपृष्ठे पतंतं जगृहे च सा ॥ ८० ॥ अनसूयोवाच ॥ न विषादस्त्वया भद्रे कर्तव्यः पश्य मे बलम् ॥ पतिशुश्रूषयावाप्तं तपसः किं चिरेण मे ॥ ८१ ॥ तथा भर्तृसमं नान्यमपश्यं पुरुषं क्वचित् ॥ रूपतः शीलतो बुद्ध्या वाङ्माधुर्यादिभूषणैः ॥ ८२॥ तेन सत्येन विप्रोऽयं व्याधिमुक्तः पुनर्युवा ॥ प्राप्तोऽनुजीवितं भार्यासहायः शरदां शतम् ॥८३॥ यथा भर्तृसमं नान्यमहं पश्यामि दैवतम् ॥ तेन सत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः ॥ ८४ ॥

मात्र पतिकी सेवासे जो तपोबल प्राप्त किया है, वह तुम्हें अभी दिखाई देंगी ॥ ८१ ॥ रूप, शील, बुद्धि, वाक्य और मधुरता इत्यादि सद्गुणोंके द्वारा कभी किसी पुरुषको यदि स्वामीके समान नहीं जानती हूं ॥ ८२ ॥ तो उसी सत्यके बलसे यह ब्राह्मण व्याधिमुक्त और युवा हो, फिर जीवन प्राप्त कर पत्नीके सहित सौ वर्ष जीवित रहै ॥ ८३ ॥ मैं यदि अन्य देवताको स्वामीके समान नहीं जानती हूं, तो इसी सत्यसे यह ब्राह्मण रोगरहित होकर फिर जीवित हो ॥ ८४ ॥

और काय, मन, वचनसे स्वामीकी आराधनामें यदि नित्य मेरा उद्यम है तो यह द्विजवर जीवित हो ॥ ८५ ॥ पुत्रने कहा—अनन्तर वह ब्राह्मण व्याधिसे छूटकर युवाकलेवर हो अजर अमरकी समान देहकी प्रभासे घरको प्रकाशमान करता हुआ उठ खडा हुआ ॥ ८६ ॥ और पुष्पवृष्टि तथा देवताओंके बाजोंकी ध्वनि होनेलगी, फिर देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर अनसूयासे कहा ॥ ८७ ॥ देवता बोले—हे कल्याणी ! तुमने देवताओंका बडा कार्य संपादन किया है अत एव वर ग्रहण करो । हे सुव्रते ! सूर्य उदयके कारण तुम वर मांगो ॥ ८८ ॥ हे तपस्विनी ! देवता तुमको वर देनेके लिये उद्यत हुए हैं, अनसूया बोली—हे पितामह इत्यादि देवताओ ! आप यदि मेरे प्रति प्रसन्न होकर वर देनेके अभिलाषी हुए हैं और मुझको वर देनेके

कर्मणा मनसा वाचा भर्तुराराधनं प्रति ॥ यथा ममोद्यमो नित्यं तथायं जीवताद्द्विजः ॥ ८५ ॥ पुत्र उवाच ॥ ततो विप्रः समुत्तस्थौ व्याधिमुक्तः पुनर्युवा ॥ स्वाभाभिर्भासयन्वेश्म वृंदारक इवाजरः ॥ ८६ ॥ ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिर्देववाद्यानि सस्वनुः ॥ लेभिरे च मुदं देवा अनसूयामथाब्रुवन् ॥ ८७ ॥ देवा ऊचुः ॥ वरं वृणीष्व कल्याणि देवकार्यं महत्कृतम् ॥ आदित्योदयसद्भावाद्वरं वरय सुव्रते ॥ ८८ ॥ त्वया यस्मात्ततो देवा वरदास्ते तपस्विनि ॥ अनसूयोवाच ॥ यदि देवाः प्रसन्ना मे पितामहपुरोगमाः ॥ ८९ ॥ वरदा वरयोग्या च यद्यहं भवतां मता ॥ तद्यांतु मम पुत्रत्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ९० ॥ योगं च प्राप्नुयां भर्तृसहिता क्लेशमुक्तये ॥ पुत्र उवाच ॥ एवमस्त्विति देवास्तां ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ९१ ॥ उक्त्वा जग्मुर्यथान्यायमनुमान्य तपस्विनीम् ॥ ततः काले बहुतिथे द्वितीयो ब्रह्मणः सुतः ॥ ९२ ॥ स्वभार्यां भगवानत्रिरनसूयामपश्यत ॥ ऋतुस्नातां सुचार्वंगीं लोभनीयतमाकृतिम् ॥ ९३ ॥

योग्य विचारा है, तो यह वर दो. जिससे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर मेरे पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण करें ॥ ८९ ॥ ९० ॥ और मैं स्वामीके सहित क्लेशमुक्तिके निमित्त योगको प्राप्त हूं । पुत्रने कहा—तब ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादिदेवता " तथास्तु " कहकर ॥ ९१ ॥ उस तपस्विनीका यथाविधि सन्मान करके चले गये । फिर कुछ काल बीतनेपर ब्रह्माजीके दूसरे पुत्र ॥ ९२ ॥ भगवान् अत्रिने एक दिन सर्वांगसुन्दरी मनोहर मूर्त्ति अपनी पत्नीको ऋतुसे निवृत्त होकर स्नान किये देख ॥ ९३ ॥

कामके वशीभूत हो मनमें उस अनिन्दिताकी भजन करी। उसके संग मनमें संभोग करनेसे मुनिवरका जो तेज स्खलित हुआ था ॥ ९४ ॥ वेगवान् पवनने उस तेजको वहन करके ऊर्ध्वमें और तिर्यक् भावमें प्रवाहित किया, ब्रह्मतेजसम्पन्न शुक्ल कान्ति रजोगुणस्वरूप उस तेजने गिरनेके समय चन्द्ररूपसे दशों दिशाओंका आश्रय किया, समस्त प्राणियोंके जीवनाधार उन्हीं सोम अर्थात् ब्रह्मरूपी चन्द्रने प्रजापति अत्रिके मानस पुत्र रूपमें अनसूयासे जन्मग्रहण किया था ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ यह सब तत्त्वोंकी आयु और आधार है, महात्मा विष्णुनेभी अत्यन्त संतुष्ट होकर अपना अंशप्रदानपूर्वक सत्त्वगुणावलम्बी द्विजोत्तम दत्तात्रेय नामसे जन्मग्रहण किया है, विष्णुने दत्तात्रेयके नामसे प्रसिद्ध होकर अनसूयाका स्तन पिया था ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ यही अत्रिके दूसरे

सकामो मनसा भेजे स मुनिस्तामनिंदिताम् ॥ तस्याभिपश्यतस्तां तु विकारो योऽभ्यजायत ॥ ९४ ॥ तमपोवाहपवनास्तिर्यगूर्ध्वं च वेगवान् ॥ ब्रह्मरूपं च शुक्लाभं पतमानं समंततः ॥ ९५ ॥ सोमरूपं रजोरूपं दिशस्तं जगृहुर्दश ॥ स सोमो मानसो जज्ञे तस्यामत्रेः प्रजापतेः ॥ ९६ ॥ पुत्रः समस्ततत्त्वानामायुराधार एव च ॥ तुष्टेन विष्णुना जज्ञे दत्तात्रेयो महात्मना ॥ ९७ ॥ स्वशरीरात्समुत्पन्नः सत्त्वोद्रिक्तो द्विजोत्तमः ॥ दत्तात्रेय इति ख्यातः सोऽनसूयास्तनं पपौ ॥ ९८ ॥ विष्णुरेवावतीर्णोऽसौ द्वितीयोऽत्रेः सुतोऽभवत् ॥ सप्ताहात्प्रच्युतो मातुरुदरात्कुपितो यतः ॥ ९९ ॥ हैहयेंद्रमुपावृत्तमपराध्यन्तमुद्धतम् ॥ दृष्ट्वात्रौ कुपितः सद्यो दग्धुकामः सहैहयम् ॥ १०० ॥ गर्भवासमहायासदुःखामर्षसमन्वितः ॥ दुर्वासास्तमसा युक्तो रुद्रांशः सोऽभ्यजायत ॥ १ ॥ इति पुत्रत्रयं तस्या जज्ञे ब्रह्मेशवैष्णवम् ॥ सोमो ब्रह्माभवद्विष्णुर्दत्तात्रेयोऽभ्यजायत ॥ २ ॥

विष्णुरूप पुत्र हैं, जो क्रोधके कारण माताके उदरसे सात दिनमेंही जन्मे थे ॥ ९९ ॥ उन्मार्गगामी हैहयाधिपतिके उद्धत स्वभावसे अत्रिमुनिका अपमान रूप अपराध करनेसे, वह यह देख कुपित हो हैहयको दग्ध करनेके निमित्त ॥ १०० ॥ गर्भवासरूप महाक्लेश और दुःखसे अमर्षयुक्त हो तमोगुणप्रधान रुद्रके अंशसे श्रीदुर्वासाजीका जन्म हुआ ॥ १ ॥ इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महादेव इन तीनोंने अनसूयाके पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण किया, ब्रह्माने चन्द्ररूपमें, विष्णुने दत्तात्रेय रूपमें ॥ २ ॥

और महादेवने दुर्वासा रूपमें देवताओंके वरदानसे जन्म ग्रहण किया था। वह प्रजापति सोम अर्थात् चंद्रमा अपनी शीतल किरणोंके द्वारा लता, औषधि और मनुष्योंको ॥ ३॥ तृप्त करके स्वर्गधाममें वर्त्तमान सदा रहते हैं और विष्णुके अंशसे उत्पन्न दत्तात्रेयजी दुष्टदैत्योंका विनाश ॥ ४ ॥ और साधु वैष्णवोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करते हुए प्रजापालनमें तत्पर हुए और भगवान् अज दुर्वासा ॥ ५ ॥ रुद्रसंबंधी शरीर अवलम्बन करके नेत्र, मन और वचन द्वारा उद्धत हो अपमान करनेवाले दुष्टोंका विनाश करने लगे, इसके पीछे भगवान् अत्रिने चन्द्रमाको सोमत्वका पद देकर प्रजापति किया ॥ ६ ॥ विष्णुके अंशसे उत्पन्न दत्तात्रेयजी योग अवलम्बमें विषयभोग और दुर्वासा मातापिताको छोडकर उत्तम व्रत ॥ ७ ॥ अवलम्बन करके उन्मत्तभावसे पृथ्वीमें

दुर्वासाः शंकरो जज्ञे वरदानाद्दिवौकसाम् ॥ सोमः स्वरश्मिभिः शीतैर्वीरुदौषधिमानवान् ॥३॥ आप्याययन्सदा स्वर्गे वर्त्तते स प्रजापतिः ॥ दत्तात्रेयः प्रजाः पाति दुष्टदैत्यनिबर्हणात् ॥४॥ शिष्टानुग्रहकृद्योगी ज्ञेयश्चांशः स वैष्णवः ॥ निर्दहत्यवमंतारं दुर्वासा भगवानजः ॥ ५ ॥ रौद्रभावं समाश्रित्य दृङ्मनोवाग्भिरुद्धतः ॥ सोमत्वं भगवानत्रिः पुनश्चक्रे प्रजापतिः ॥ ६ ॥ दत्तात्रेयोऽपि विषयान्योगस्थो दद्दशे हरिः ॥ दुर्वासाः पितरं त्यक्त्वा मातरं चोत्तमं व्रतम् ॥ ७ ॥ उन्मत्ताख्यं समाश्रित्य परिबभ्राम मेदिनीम् ॥ मुनिपुत्रवृतो योगी दत्तात्रेयोऽप्यसंगिताम् ॥ ८ ॥ अभीप्समानः सरसि निममज्ज चिरं विभुः ॥ तथापि तं महात्मानमतीव प्रियदर्शनम् ॥ ९ ॥ तत्यजुर्न कुमारास्ते सरसस्तीरसंश्रयाः ॥ दिव्ये वर्षशते पूर्णे यदा तेन त्यजंति तम् ॥११०॥ तत्प्रीत्या सरसस्तीरं सर्वे मुनिकुमारकाः ॥ ततो दिव्यांबरधरां सुरूपां सुनितंबिनीम् ॥ ११ ॥

विचरण करने लगे. जो कि, दत्तात्रेय परमयोगी थे, इस कारण मुनिपुत्रगण सदाही इनको घेरे रहते ॥८॥ वह उनके छोडनेकी अभिलाषासे सरोवरमें बहुत दिनोंतक निमग्न रहते तथापि वह अत्यन्त प्रियदर्शन और महात्मा थे ॥ ९ ॥ इस कारण मुनिकुमारोंने उनको नहीं छोडा और उसी सरोवरके तटपर वास करने लगे. इस प्रकार दिव्य शतवर्ष बीतजानेपर भी खडेरहे ॥ ११० ॥ जब उनके प्रति प्रीतिसे सब मुनिकुमारोंने उनको नहीं छोडा तब दिव्य वस्त्र धारण किये स्वरूपवान् नितम्बिनी ॥ ११ ॥

कल्याणी एक स्त्रीको संग लेकर मुनिवर दत्तात्रेयजी जलसे अवतीर्ण हुए फिर विचारा कि मैं स्त्रीके निकट स्थिति करताहूं, ऐसा समझकर यह मुझको छोड देंगे ॥ १२ ॥ और मैंभी निःसंग होनेपर योगपरायण हो अकेला रहूंगा, किन्तु तो भी जब मुनिकुमारोंने इनको नहीं छोडा ॥ १३ ॥ तब वह उस कामिनीके संग मद्यपान करने लगे और विचारा कि–"भार्याके सहित मद्यपानमें रत जानकर छोडदेंगे" ॥ १४ ॥ किन्तु तोभी उन मुनिकुमारोंने गीत वाद्यादि रमणीसंभोग और उनके संसर्गसे दूषित विक्रियायुक्त मुनिको महात्मा जानकर नहीं छोडा ॥ १५ ॥ वह योगीश्वर दत्तात्रेय वारुणी पान करकेभी चाण्डालके घरमें स्थित वायुके समान दूषित नहीं हुए ॥ १६ ॥ जो हो वह योगवित् योगीश्वर दत्तात्रेयजी पत्नीके सहित सुरापानमें रत हुए तपस्या कर-

नारीमादाय कल्याणीमुत्ततार जलान्मुनिः ॥ स्त्रीसंनिकर्षिणं ह्येते परित्यक्ष्यंति मामिति ॥ १२ ॥ मुनिपुत्रास्ततो योगे स्थास्यामीति विचिंतयन् ॥ तथापि ते मुनिसुता न त्यजंति यदा मुनिम् ॥ १३ ॥ ततः सह तया नार्या मद्यपानमथाकरोत् ॥ सुरापानरतं तेन सभार्यं तत्यजुस्ततः ॥ १४ ॥ गीतवाद्यादिवनिताभोगसंसर्गदूषितम् ॥ मन्यमाना महात्मानं तया सह बहिष्क्रियम् ॥१५॥ नावाप दोषं योगीशो वारुणीं स पिबन्नपि ॥ अंतावसायिवेश्मांतर्मातरिश्वा स्पृशन्निव ॥ १६ ॥ सुरां पिबन्सपत्नीकस्तपस्तेपे स योगवित् ॥ योगीश्वरश्चिंत्यमानो योगिभिर्मुक्तिकांक्षिभिः ॥ १७ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य कार्त्तवीर्योऽर्जुनो बली ॥ कृतवीर्ये दिवं याते मंत्रिभिः सपुरोहितैः ॥ १८ ॥ पौरैश्चात्माभिषेकार्थं समाहूतोऽब्रवीदिदम् ॥ नाहं राज्यं करिष्यामि मंत्रिणो नरकोत्तरम् ॥ १९ ॥ यदर्थं गृह्यते शुल्कं तदनिष्पादयन्वृथा ॥ पण्यानां द्वादशं भागं भूपालाय वणिग्जनः ॥ १२० ॥

नेलगे, इस परभी यह मुमुक्षु योगिजनोंके चिन्तनीय हुएथे ॥ १७ ॥ बलवान् कार्त्तवीर्यके स्वर्ग जानेके पीछे कुछ काल बीतनेपर पुरवासी, मंत्री और पुरोहितोंने एकत्र मिलकर उसके पुत्र अर्जुनको स्वीय राज्यमें अभिषिक्त करनेके लिये बुलाया, उसने उनके द्वारा बुलाये जाकर यह कहा–हे मंत्रिगण! मैं राज्य नहीं करूंगा, क्योंकि राज्यका परिणाम नरकभोग है ॥ १८ ॥ १९ ॥ देखो, इसीलिये कर ग्रहण किया जाता है जिसका लेना बडा दुर्घट है, वैश्यगण व्यापारी वस्तुका बारहवां भाग राजाको ॥ १२० ॥

देकर रक्षकोंके द्वारा चोरोंके भयसे रक्षित होकर जाते आते हैं, ग्वालिये घृत तक्रादि (मठादि) का छठा भाग और किसान भी सब धान्योंका छठा भाग ॥ २१ ॥ राजाको देकर यदि यह दूसरेको दें तो इनसे सब व्यापारी वस्तुओंका अधिक भागलेना चाहिये ॥ २२ ॥ अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदोंका साधन अतिथि सत्कार, वैश्वदेव यह इष्ट कहाता है ॥ २३ ॥ बावडी, कुए, सरोवर, देवताओंके स्थान बनवाना और अर्थियोंको दान देना पूर्त्त कहाता है ॥ २४ ॥ चौरकर्मा अर्थात् अधिक कर लेनेवाले राजाको इष्टापूर्त्तका नाशक कहा जाता है, जो अन्य वृत्तिको प्राप्त कर दूसरोंसे प्रजा पलवाता है ॥ २५ ॥ और छठा भाग लेता है, वह राजा निःसन्देह नरकको जाता है. पूर्वकालमें पण्डितोंने प्रजाकी रक्षा करनेके लियेही राजाका वेतनस्वरूप

दत्त्वात्मरक्षिभिमार्गे रक्षितो याति दस्युतः ॥ गोपाश्च घृततक्रादेः षड्भागं च कृषीवलाः ॥ २१ ॥ दत्त्वान्यद्भूभुजेर्दद्युर्यदि भागं ततोऽधिकम् ॥ पण्यादीनामशेषाणां वणिजो गृह्णतस्ततः ॥ २२ ॥ अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव साधनम् ॥ आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ॥ २३ ॥ वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ॥ अन्नप्रदानमर्थिभ्यः पूर्त्तमित्यभिधीयते ॥ २४ ॥ इष्टापूर्त्तविनाशाय तद्राज्ञश्चौरकर्मिणः ॥ यदन्यैः पाल्यते लोकस्तद्वृत्त्यंतरसंश्रितः ॥ २५ ॥ गृह्णतो बलिषड्भागं नृपतेर्नरको ध्रुवम् ॥ निरूपितमिदं राज्ञः पूर्वं रक्षणवेतनम् ॥ २६ ॥ अरक्षंश्चोरतश्चोरस्तद्धनं नृपतेर्भवेत् ॥ तस्माद्यदि तपस्तप्त्वा प्राप्तो योगित्वमीप्सितम् ॥ २७ ॥ भुवः पालनसामर्थ्ययुक्त एको महीपतिः ॥ पृथिव्यामस्त्रभृन्नाद्याप्यहमेवर्द्धिसंयुतः ॥ २८ ॥ ततो भविष्ये नात्मानं करिष्ये पापभागिनम् ॥ तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा मंत्रिमध्यस्थितोऽब्रवीत् ॥ २९ ॥

छठा भाग निरूपण किया है ॥ २६ ॥ राजा उसको ग्रहण करके यदि रीतिके अनुसार प्रजाकी रक्षा न करें तो चोरी करना हुआ, और इस कारण वह चोरीके पापमें पापी होता है, अतएव यदि तपस्या करके योगित्व लाभ करसकूं ॥ २७ ॥ और पृथ्वीमें शस्त्रधारी मान्य तथा पृथ्वीका पालन करनेमें सामर्थ्ययुक्त होकर एक मात्र नरपति होसकूं तभी मैं इस प्रकार ऋद्धिमान् होकर राज्य करूंगा ॥ २८ ॥ नहीं तो वृथा आत्माको पापभागी करनेकी इच्छा नहीं करता. इस प्रकार अर्जुनका निश्चय जान मंत्रियोंके बीचमें बैठे हुए ॥ २९ ॥

बुद्धिमान् बडी आयुवाले मुनियोंमें श्रेष्ठ गर्ग नामक एक मुनि भक्ति और कृपापूर्वक राजाको प्रसन्न करतेहुए कहने लगे ॥ १३० ॥ हे राजकुमार ! जो आपको सम्यक् प्रकार राज्यशासन करनेकी इच्छा हो तो जो मैं कहता हूं, सो सुनो और उसे करो ॥ ३१ ॥ अर्थात् सह्याद्रि पर्वतपर आश्रम बनाकर स्थित तीनों भुवनके पालन करनेवाले महात्मा दत्तात्रेयजीकी आराधना करो ॥ ३२ ॥ जो परमयोगी, महाभाग और सर्वत्र समदर्शी हैं, जो जगत्‌की रक्षा करनेके लिये विष्णुके अंशसे जन्म ग्रहण करके पृथ्वीतलमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ ३३ ॥ और जिनकी आराधना करके सहस्रनयन इन्द्र दैत्योंको मारकर दैत्योंसे हरण किये अपने पदको प्राप्त हुए हैं ॥ ३४ ॥ अर्जुनने कहा–किस प्रकार देवताओंने प्रतापी दत्तात्रेयजीकी आराधना की थी और इन्द्र भी किस

गर्गो नाम महाबुद्धिर्मुनिर्भूपवयोतिगः ॥ भक्त्या तु कृपयाविष्टस्तं तोषयितुमर्हति ॥ १३० ॥ यद्येवं कर्त्तुकामस्त्वं राज्यं सम्यक्प्रशासितुम् ॥ ततः शृणुष्व मे वाक्यं कुरुष्व च नृपात्मज ॥ ३१ ॥ दत्तात्रेयं महात्मानं सह्यद्रोणीकृताश्रमम् ॥ तमाराधय भूपाल पाति यो भुवनत्रयम् ॥ ३२ ॥ योगयुक्तं महात्मानं सर्वत्र समदर्शिनम् ॥ विष्णोरंशं जगद्धातुरवतीर्णं धरातले ॥ ३३ ॥ यमाराध्य सहस्राक्षः प्राप्तवान्पदमात्मनः ॥ हृतं दुरात्मभिर्दैत्यैर्जघान च दितेः सुतान् ॥ ३४ ॥ अर्जुन उवाच ॥ कथमाराधितो देवैर्दत्तात्रेयः प्रतापवान् ॥ कथं वापहृतं दैत्यैरिंद्रत्वं प्राप वासवः ॥ ३५ ॥ गर्ग उवाच ॥ दैत्यानां देवतानां च युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥ दैत्यानामीश्वरे जंभे देवानां च शचीपतौ ॥ ३६ ॥ तेषां तु युध्यमानानां दिव्यः संवत्सरो गतः ॥ ततो देवाः पराभूता दैत्या विजयिनोऽभवन् ॥ ३७ ॥ विप्रचित्तिमुखैर्देवा दानवैस्ते पराजिताः ॥ पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ३८ ॥

प्रकारसे दैत्योंसे हरे हुए अपने पदको प्राप्त हुए थे ? ॥ ३५ ॥ गर्गजीने कहा–किसी समय देवता और असुरोंका भयंकर युद्ध हुआ, तब जम्भ दैत्योंका अधिपति और शचीपति इन्द्र देवताओंके अधिनायक हुए थे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार युद्ध करनेमें दिव्य संवत्सर बीतगया. तदनन्तर युद्धमें देवताओंकी हार और दैत्योंकी जीत हुई ॥ ३७ ॥ अनन्तर देवतागण विप्रचित्ति इत्यादि प्रधान प्रधान दानवोंसे हारकर इधर उधर भागनेलगे और शत्रुओंके जीतनेमें निरुत्साह हो ॥ ३८ ॥

दैत्यसेनाके वध करनेकी इच्छासे बृहस्पतिके निकट जाय वालखिल्य ऋषियोंके सहित मंत्रणा (परामर्श) करने लगे ॥ ३९ ॥ बृहस्पतिजी बोले–हे देवताओ ! तुम भक्तिसहित तपोधन महात्मा विकृताचारी अर्थात् जिनका आचरण अच्छा नहीं है, अत्रिपुत्र दत्तात्रेयको संतुष्ट करनेकी चेष्टा करो ॥ १४० ॥ वह वरद संतुष्ट होकर दैत्योंका नाश करनेके निमित्त तुमको वर देंगे, तब तुम मिलकर दैत्य और दानवोंको मारसकोगे ॥ ४१ ॥ गर्गजी बोले–देवता बृहस्पतिजीके दत्तात्रेयके प्रसादसे तुम अवश्य दैत्योंको मार सकोगे, इस प्रकार कहनेपर दत्तात्रेयजीके आश्रममें गये ॥ ४२ ॥ और देखा कि वह महात्मा लक्ष्मीजीके सहित युक्त होकर सुरापानमें रत होरहे हैं और गंधर्वगण उनके निकट गान करते हैं ॥ ४३ ॥ देवता उनके निकट जाय प्रणामपूर्वक सब अर्थ सिद्ध

बृहस्पतिमुपागम्य दैत्यसैन्यवधेप्सवः ॥ अमंत्रयंत सहिता वालखिल्यैः सहर्षिभिः ॥ ३९ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ दत्तात्रेयं महाभागमत्रेः पुत्रं तपोधनम् ॥ विकृताचरणं भक्त्या संतोषयितुमर्हथ ॥ १४० ॥ स वो दैत्यविनाशाय वरदो दास्यते वरम् ॥ ततो हनिष्यथ सुराः सहितान्दैत्यदानवान् ॥ ४१ ॥ गर्ग उवाच ॥ हंतुं शक्ता न संदेहो दत्तात्रेयप्रसादतः ॥ इत्युक्तास्ते तदा जग्मुर्दत्तात्रेयाश्रमं सुराः ॥ ४२ ॥ ददृशुश्च महात्मानं क्षांतं लक्ष्म्या समन्वितम् ॥ उद्गीयमानं गन्धर्वैः सुरापानरतं मुनिम् ॥ ४३ ॥ ते तस्य गत्वा प्रणतिं चक्रुः सर्वार्थसाधनीम् ॥ भक्त्या तस्योपजह्रुश्च मद्यपस्य सुरादिकम् ॥ ४४ ॥ तिष्ठंतमनुतिष्ठंति यांतं यांति दिवौकसः ॥ आराधयामासुरधः स्थितास्तिष्ठंतमासने ॥ ४५ ॥ स प्राह देवान्प्रणतान्दत्तात्रेयः किमिष्यते ॥ मत्तो भवद्भिर्येनेयं शुश्रूषा क्रियते मम ॥ ४६ ॥ देवा ऊचुः ॥ दानवैर्मुनिशार्दूल जंभाद्यैर्भूर्भुवादिकम् ॥ हृतं त्रैलोक्यमाक्रम्य क्रतुभागाश्च कृत्स्नशः ॥ ४७ ॥

करनेवाली स्तुति करनेलगे और उनको भक्ष्य भोज्य तथा माल्यादि लानेलगे ॥ ४४ ॥ उनके बैठनेपर येभी बैठते और गमन करनेपर ये भी गमन करते, इस प्रकार देवताओंने उनके आसनके निम्न भागमें बैठकर मुनिकी आराधना करीथी ॥ ४५ ॥ अनन्तर दत्तात्रेयजीने प्रणत देवताओंसे कहा तुम मेरे निकट क्या प्रार्थना करतेहो, जिससे इस प्रकार मेरी सेवा कर रहे हो ? ॥ ४६ ॥ देवता बोले–हे मुनिशार्दूल ! जम्भ इत्यादि दानवोंने हमको आक्रमण करके भूर्भुवादि तीनों लोक और सब यज्ञभाग हरण किया है ॥ ४७ ॥

हे पापरहित ! आप उनके विनाश करनेमें मन लगाकर हमारी रक्षा कीजिये. आपके प्रसादसे हम फिर स्वर्गको प्राप्त करैं, यही हमारी अभिलाषा है ॥ ४८॥ दत्तात्रेयजी बोले—मैं मद्यपानमें आसक्त, अजितेंद्रिय और निरन्तर अपवित्र हूं, हे देवताओ ! फिर तुम किस प्रकारसे मेरे द्वारा शत्रुओंके जीतनेकी इच्छा करते हो ? ॥ ४९ ॥ देवता बोले--हे जगन्नाथ ! आपने विद्याप्रक्षालित पवित्र अन्तःकरणमें ज्ञानरूपी किरणोंका सन्निवेश किया है, अतएव आप निष्पाप और किसी विषयमें लिप्त नहीं हैं ॥ १५० ॥ दत्तात्रेय बोले—हे देवताओ ! यथार्थही मुझमें विद्या है और मैं समदर्शी हूं, किन्तु इस स्त्रीके संसर्गसे अपवित्र होगया हूं ॥ ५१ ॥ क्योंकि उससे सेवित होकर स्त्रीसंसर्ग करनेसे यह अत्यन्त दोषकी खानि स्वरूप है देवता इस प्रकार सुनकर फिर कहने-

तद्वधे कुरु बुद्धिं त्वं परित्राणाय नोऽनघ ॥ त्वत्प्रसादादभीप्सामः पुनः प्राप्तुं त्रिविष्टपम् ॥ ४८ ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ मद्यासक्तोऽहमुच्छिष्टो न चैवाहं जितेंद्रियः ॥ कथमिच्छथ मत्तोपि देवाः शत्रुपराभवम् ॥ ४९ ॥ देवा ऊचुः ॥ अनघस्त्वं जगन्नाथ न लेपस्तव विद्यते ॥ विद्याक्षालनशुद्धांतर्निविष्टज्ञानदीधिते ॥१५०॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ सत्यमेतत्सुरा विद्या ममास्ति समदर्शिनः ॥ अस्यास्तु योषितः संगादहमुच्छिष्टतां गतः ॥ ५१ ॥ स्त्रीसंभोगोऽतिदुःखाय सातत्येनोपसेवितः ॥ एवमुक्तास्ततो देवाः पुनर्वचनमब्रुवन् ॥ ५२ ॥ देवा ऊचुः ॥ अनघेयं मुनिश्रेष्ठ जगन्माता न दुष्यति ॥ या सा विद्या तव विभो सर्वज्ञस्य हृदि स्थिता ॥ ५३ ॥ यथांशुमाला सूर्यस्य द्विजचंडालसंगिनी ॥ न दुष्यति जगन्नाथ तथेयं वरवर्णिनी ॥५४॥ गर्ग उवाच ॥ एवमुक्तस्ततो देवैर्दत्तात्रेयोऽब्रवीदिदम् ॥ प्रहस्य त्रिदशान्सर्वान्यद्येतद्भवतां मतम् ॥ ५५ ॥ तदाहूयासुरान्सर्वान्युद्धाय सुरसत्तमाः ॥ इहानयत मद्दृष्टिगोचरं मा विलंब्यताम् ॥ ५६ ॥

लगे ॥ ५२ ॥ देवता बोले—हे अनघ ! हे मुनिश्रेष्ठ ! हे जगन्नाथ ! यह दूषित नहीं होती. हे विभो ! जो विद्या तुम सर्वज्ञके हृदयमें स्थित है ॥ ५३ ॥ हे जगन्नाथ ! जिस प्रकार सूर्यकी किरणें ब्राह्मण और चाण्डालादिके संसर्गसे पवित्र वा दूषित नहीं होती इसी प्रकार यह जगन्माताभी आपके संसर्गसे दूषित नहीं है ॥ ५४ ॥ गर्गजी बोले—मुनिवर दत्तात्रेयजीने देवताओंका इस प्रकार वचन सुनकर कुछेक हँसते हुए उनसे कहा हे त्रिदशगण ! यदि तुम्हारा मन ऐसा ही है ॥ ५५ ॥ तो हे सुरसत्तम ! तुम सब असुरोंको युद्धके निमित्त बुलाकर इस स्थानमें मेरे दृष्टिगोचर करो, विलम्ब मत करो ॥ ५६ ॥

क्योंकि मेरी दृष्टिपातरूप अग्निद्वारा उनका बल और तेज क्षीण होगा और वह सब मेरे दर्शनसे तत्काल मृत्युको प्राप्त होंगे ॥ ५७ ॥ गर्गजी बोले- उनके इस प्रकार वचन सुनकर देवताओंने युद्धके निमित्त असुरोंको बुलाया, महाबलवान् असुरोंनेभी युद्धमें आय, कोपमें भर देवताओंपर आक्रमण किया ॥ ५८ ॥ अनन्तर सब देवता दानवोंकी मारसे चित्तमें भय पाय शरणकी इच्छा कर दत्तात्रेयजीके आश्रममें गये ॥५९ ॥ दैत्योंनेभी उनका विनाश करनेके लिये उसी आश्रममें जाकर मदसे आलसी महात्मा दत्तात्रेयजीको देखा ॥ १६० ॥ और उनके वामपार्श्वमें बैठी हुई संपूर्ण जगत्‌की इष्टदायिनी शुभकारिणी चन्द्रमुखी उनकी पत्नी लक्ष्मीको देखा ॥ ६१ ॥ दैत्य उस नीले कमलके समान नेत्रवाली पीन श्रोणि पीन स्तनवाली

मद्दृष्टिपातहुतभुक्प्रक्षीणबलतेजसः ॥ येन नाशमशेषास्ते प्रयांति मम दर्शनात् ॥ ५७ ॥ गर्ग उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवैर्दैत्या महाबलाः ॥ आहवाय समाहूता जग्मुर्देवगणाश्रमम् ॥ ५८ ॥ ते हन्यमाना दैतेयैर्देवाः सर्वे भयातुराः ॥ दत्तात्रेयाश्रमं जग्मुः समस्ताः शरणार्थिनः ॥५९॥ तमेव विविशुर्दैत्याः कालयंतो दिवौकसः ॥ ददृशुस्तं महात्मानं दत्तात्रेयं मदालसम् ॥ १६० ॥ वामपार्श्वस्थिता- मिष्टामशेषजगतः शुभाम् ॥ भार्यां चास्य सुचार्वंगीं लक्ष्मीमिंदुनिभाननाम् ॥ ६१ ॥ नीलोत्पलाभनयनां पीनश्रोणिपयोधराम् ॥ सुदता मधुराभाषां सर्वयोषिद्गुणैर्युताम् ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वाग्रतस्तदा दैत्याः साभिलाषमनोभवाः ॥ न शेकुरुद्धता दैत्या मनसा वोढुमा- तुराः ॥ ६३ ॥ त्यक्त्वा देवान्स्त्रियं तां तु हर्तुकामा हतौजसः ॥ प्रेरितास्तेन पापेन ह्यासक्तास्ते ततोऽब्रुवन् ॥ ६४ ॥ स्त्रीरत्नमेतत्त्रैलोक्य- सारं चेद्विदितं भवेत् ॥ कृतकृत्यास्ततः सर्वे इति नो भावितं मनः ॥ ६५ ॥

मधुरभाषिणी और स्त्रीके सब गुणोंसे युक्त ललनाको ॥ ६२ ॥ सन्मुख देखकर दैत्यगण उसके लेनेमें अत्यन्त अभिलाषी हुए और उद्धत कामकी पीडासे आतुर हो मनमें धैर्य धारण न करसके ॥ ६३ ॥ और देवताओंको छोडकर उस कामिनीके हरण करनेमें अभिलाषी हुए, वह इस पापसे मुग्ध और हतवीर्य होकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ६४ ॥ कि, यह स्त्रीरत्नही तीनों लोकोंका सार है, हम यदि इस ललनारत्नको ग्रहण करसके तभी कृतकार्य हों और हमारा चित्तभी भावनारहित हो ॥ ६५ ॥

अतएव हे दानवगण ! हम इस स्त्रीको पालकीमें चढाकर अपने घर लेजायँगे, इस विषयमें निश्चिन्त होओ ॥ ६६ ॥ गर्गजी बोले–तदनन्तर उन सानुराग दैत्योंने आपसमें इस प्रकार परामर्श कर कामबाणसे पीडित हो साध्वी दत्तात्रेयपत्नीको उठाकर ॥ ६७ ॥ पालकीमें चढाया और दैत्य तथा दानव एकत्र मिलित हो, मस्तकपर पालकी रख अपने स्थानकी ओरको चले ॥ ६८ ॥ तब मुनिवर दत्तात्रेयने कुछेक हँसकर देवताओंसे कहा–हे देवताओ ! तुम्हारा भाग्य फिरा है, यह देखो, लक्ष्मी सप्त स्थानमें अतिक्रम करके दानवोंके मस्तकपर चढी है, अत एव यह उनको छोडकर अन्यके निकट जायगी ॥ ६९ ॥ देवता बोले–हे जगन्नाथ ! यह वर्णन कीजिये. किस किस स्थान पर लक्ष्मीजीके जानेसे मनुष्योंका भला और किस किस स्थानपर

तस्मात्सर्वे समुत्क्षिप्य शिबिकायां सुरार्दनाः ॥ आरोप्य स्वमधिष्ठानं नयाम इति निश्चिताः ॥ ६६ ॥ गर्ग उवाच ॥ सानुरागास्ततस्ते तु मुनेरंतिकमागमन् ॥ तस्य तां योषितं साध्वीं समुत्क्षिप्य स्मरातुराः ॥ ६७ ॥ शिबिकायां समारोप्य सहिता दैत्यदानवाः ॥ शिरःसु शिबिकां कृत्वा स्वस्थानाभिमुखा ययुः ॥ ६८ ॥ दत्तात्रेयस्तथा देवान्विहस्येदमथाब्रवीत् ॥ दिष्ट्या च हंत दैत्यानामेषा लक्ष्मीः शिरोगता ॥ सप्तस्थानान्यतिक्रम्य लयमन्यमुपेष्यति ॥ ६९ ॥ देवा ऊचुः ॥ कथयस्व जगन्नाथ केषु स्थानेष्ववस्थिता ॥ पुरुषस्य फलं किं वा प्रयच्छत्यथ नश्यति ॥ १७० ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ नृणां पादस्थिता लक्ष्मीर्निलयं संप्रयच्छति ॥ सक्थ्नोश्च संस्थिता वस्त्रं रत्नं नानाविधं वसु ॥ ७१ ॥ कलत्रदा गुह्यसंस्था क्रोडस्थापत्यदायिनी ॥ मनोरथान्पूरयति पुरुषाणां हृदि स्थिता ॥ ७२ ॥ लक्ष्मीर्लक्ष्मीवतां श्रेष्ठा कंठस्था कंठभूषणम् ॥ अभीष्टबंधुदारैश्च तथाश्लेषं प्रवासिभिः ॥ ७३ ॥

जानेसे बुरा फल होता है ॥ १७० ॥ दत्तात्रेयजीने कहा लक्ष्मी मनुष्यके पैरमें रहनेसे गृहप्रदान करती है सक्थिनी अस्थिमें स्थित होनेसे वस्त्र और नाना प्रकारके रत्न देती है ॥ ७१ ॥ गुह्यस्थानमें लक्ष्मीके वास करनेसे स्त्री मिलती है और गोदीमें रहनेसे पुत्र प्राप्त होता है तथा हृदयमें स्थित होनेसे पुरुषके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं ॥ ७२ ॥ सर्वप्रधान लक्ष्मी देवी कंठस्थानमें स्थित होनेसे लक्ष्मीवान्को कंठभूषण प्राप्त होता है और प्रवासी प्रियतम बंधु और स्त्रीके सहित समागम होता है ॥ ७३ ॥

समुद्रतनया लक्ष्मी यदि मुखमें स्थित हो तो सुन्दर वाक्य, लावण्य, आज्ञा सफल और कवित्वलाभ होता है ॥ ७४ ॥ और मस्तकमें स्थित होनेपर उसको छोडकर अन्यका आश्रय ग्रहण करती है, वही यह लक्ष्मी दानवोंके मस्तकपर पहुँची है, अब इनको परित्याग करेगी ॥ ७५ ॥ अतएव तुम अस्त्र शस्त्र ग्रहण कर निर्भयचित्तसे उनको विनाश करो मेरे दृष्टिपातसे वह निस्तेज होगये हैं ॥ ७६ ॥ क्योंकि पराई स्त्रीके संग बलात्कार करनेसे पुण्य दग्ध और पराक्रम नष्ट हो जाता है, इस कारण तुम निःशंक होकर इनका नाश करो ॥ ७७ ॥ गर्गजी बोले--तदनन्तर देवता पैने अस्त्र शस्त्रोंसे असुरोंको मारने लगे हे राजनन्दन ! मस्तकमें लक्ष्मीको स्थापन करके असुर इस प्रकार मरेथे, ऐसा सुना है ॥ ७८ ॥ फिर लक्ष्मीदेवी उनके मस्तकसे कूदकर महामुनि दत्तात्रेय-

मृष्टान्नं वाक्यलावण्यमाज्ञामवितथां तथा ॥ मुखस्थिता कवित्वं च यच्छत्युदधिसंभवा ॥ ७४ ॥ शिरोगता संत्यजाति ततोऽन्यं याति चाश्रयम् ॥ सेयं शिरोगता दैत्यान्परित्यजाति सांप्रतम् ॥ ७५ ॥ प्रगृह्यास्त्राणि वध्यन्तां तस्मादेते सुरारयः ॥ न भेतव्यं भृशं त्वेते मया निस्तेजसः कृताः ॥ ७६ ॥ परदारावमर्शाच्च दग्धपुण्या हतौजसः ॥ तस्मादेतेऽभिहन्यंतां भवद्भिरविशंकितैः ॥ ७७ ॥ गर्ग उवाच ॥ ततस्ते विविधैरस्त्रैर्वध्यमानाः सुरारयः ॥ शिरःसु लक्ष्म्याप्याक्रांता विनेशुरिति नः श्रुतम् ॥ ७८ ॥ लक्ष्मीश्चोत्पत्य संप्राप्ता दत्तात्रेयं महामुनिम् ॥ स्तूयमाना सुरैः सेंद्रैर्दैत्यनाशान्मुदान्वितैः ॥ ७९ ॥ प्रणिपत्य ततो देवा दत्तात्रेयं महामुनिम् ॥ जय कृष्ण जगन्नाथ दैत्यांतक हर प्रभो ॥ १८० ॥ नारायणाच्युतानंत वासुदेवाक्षयाजर ॥ त्वत्प्रसादात्सुखं लक्ष्मी राज्यं संपज्जनार्दन ॥ ८१ ॥ शार्ङ्गधन्वंश्चक्रपाणे भक्तानां नित्यवत्सल ॥ इति स्तुत्वा नाकपृष्ठं यथापूर्वं गताः सुराः ॥ ८२ ॥

जीके निकट आगई, और दैत्योंके नाशसे प्रसन्न हो इन्द्रके सहित सब देवता उनकी स्तुति करनेलगे ॥ ७९ ॥ फिर महामुनि दत्तात्रेयजीको प्रणाम कर हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! हे दैत्यांतक ! हे हर ! हे प्रभो ! आपकी जय हो ॥ १८० ॥ हे नारायण ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे वासुदेव ! हे अक्षय ! हे अजर ! हे जनार्दन ! आपके प्रसादसे सुख लक्ष्मी राज्य संपत्तिको हमने प्राप्त किया ॥ ८१ ॥ हे शार्ङ्गधन्वन् ! हे चक्रपाणि ! आप नित्य भक्तोंपर कृपा करते हैं, इसी प्रकार स्तुति कर देवता लोग जहांसे आये थे, वहींको चलेगये ॥ ८२ ॥

अत एव हे राजेन्द्र ! तुम यदि मनोभिलषित अतुल ऐश्वर्य प्राप्त करनेकी इच्छा करते हो तो शीघ्रही उन मुनिवर दत्तात्रेयजीकी आराधना करो ॥ १८३॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ पुत्रने कहा--नरपति कार्त्तवीर्यने गर्गऋषिके इस प्रकार वचन सुनकर दत्तात्रेय मुनिके आश्रममें जाय भक्तिसहित उनकी पूजा करी ॥ १ ॥ चरणसंवाहन (पैरोंका दाबना) इत्यादि करके अर्घ्य, फूल, माला, सुगंधि, जल, फल और चन्दनादि उनके लिये लानेलगे ॥ २ ॥ ऐसेही अन्नादि भी लाते थे और उनका उच्छिष्ट आप खातेथे इस कारण मुनिने संतुष्ट होकर उनसे इस प्रकार कहा ॥ ३ ॥
जिस प्रकार पहिले देवताओंसे मद्यपान इत्यादि अपने निन्दित कर्म कहे थे. फिर बोले, देखो--यह स्त्री जो मेरे निकट स्थित है, इससे मैं निन्दित रमण

तथा त्वमपि राजेंद्र यदिच्छसि यथेप्सितम् ॥ प्राप्तमैश्वर्यमतुलं तूर्णमाराधयस्व तम् ॥ १८३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ पुत्र उवाच ॥ इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा कार्त्तवीर्यो नरेश्वरः ॥ दत्तात्रेयाश्रमं गत्वा तं भक्त्या समपूजयत् ॥ १ ॥ पादसंवाहनाद्येन अर्घ्यार्घाहरणेन च ॥ स्रक्चंदनादिगंधांबुफलाद्यानयनेन च ॥ २ ॥ तथान्नसाधनैस्तस्य उच्छिष्टापोहनेन च ॥ परितुष्टो मुनिर्भूपं तमुवाच तथैव सः ॥ ३ ॥ यथैवोक्ताः पुरा देवा मद्यभोज्यादिकुत्सनम् ॥ स्त्री चेयं मम पार्श्वस्थेत्येतद्भोगात्तुकुत्सितः ॥ ४ ॥ सदैवाहं न मामेवमुपरोद्धुं त्वमर्हसि ॥ अशक्तमुपकाराय शक्तमाराधयस्व भोः ॥ ५ ॥ पुत्र उवाच ॥ तेनैवमुक्तो मुनिना स्मृत्वा गर्गवचश्च तत् ॥ ६ ॥ प्रत्युवाच प्रणम्यैनं कार्त्तवीर्यस्ततोऽर्जुनः ॥ अर्जुन उवाच ॥ देवस्त्वं हि पुराणो यः स्वां मायां समुपाश्रितः ॥ ७ ॥

किया करता हूं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! मैं इस प्रकारके समस्त निन्दनीय कार्योंमें व्याप्त रहताहूं अतएव मेरी समान उपकार करनेमें असमर्थ पुरुषकी सेवा करनेसे क्या होगा ? जो पुरुष समर्थ हो, उसकी आराधना करो ॥ ५॥ पुत्रने कहा--मुनिके इस प्रकार कहनेपर गर्गमुनिके वह वचन स्मरण करके ॥६॥ कार्त्तवीर्यार्जुन दत्तात्रेयजीको प्रणामपूर्वक कहने लगे. अर्जुनने कहा--हे देव ! आपने मुझको ऐसा मोहित क्यों किया है, आप अपनी मायाके संग मिलित हुए हैं, अर्थात् मुझ अज्ञानीको अपनी मायासे किसलिये भुलावा देते हो ? ॥ ७ ॥

अतएव आप पापरहित हैं, यह देवी सब संसारकी अरणि स्वरूप है, इस कारण यहभी निष्पाप है, राजाके इस प्रकार कहनेपर मुनिवर अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर बोले ॥ ८ ॥ हे पृथ्वीमण्डलको वशीभूत करनेवाले महावीर्यवान् कार्त्तवीर्यार्जुन ! वर मांगो, तुमने जो मेरे गुप्तनाम उच्चारण किये हैं ॥ ९ ॥ इससे मुझको अत्यन्त संतोष उत्पन्न हुआहै, हे राजन् ! जो मनुष्य मेरा गंधमाल्यादिसे पूजन करते हैं ॥ १० ॥ जो मद्यमांसरूप उपहार और घृतयुक्त मिष्टान्न देकर लक्ष्मीसहित ब्राह्मणकी पूजाके संग संगीत ॥ ११ ॥ तथा वीणा, वेण और शंख इत्यादि मनोहर बाजे बजाते हैं, मैं पुत्र स्त्री और धनादि प्रदान करके उनको परमसंतुष्ट करता हूं ॥ १२ ॥ और जो अवधूत कहकर तिरस्कार करते हैं उनको मारताहूं; सो जो तुम्हारे मनमें इच्छा हो, वह

अनघस्त्वं तथैवेयं देवी सर्वभवारणिः ॥ इत्युक्तः प्रीतिमान्देवो भूयस्तं प्रत्युवाच ह ॥ ८ ॥ कार्त्तवीर्यं महावीर्यं वशीकृतमहीतलम् ॥ वरं वृणीष्व गुह्यं मे त्वया नाम यदीरितम् ॥ ९ ॥ तेन तुष्टिः परा जाता त्वय्यद्य मम पार्थिव ॥ ये च मां पूजयिष्यंति गंधमाल्यादि-भिर्नराः ॥ १० ॥ मांसमद्योपहारैश्च मृष्टान्नैश्चात्मसंमतैः ॥ लक्ष्म्या समेतं गीतैश्च ब्राह्मणानां तथार्च्चनैः ॥ ११ ॥ वाद्यैर्मनोरमैर्वीणा-वेणुशंखादिभिस्तथा ॥ तेषामहं परां पुष्टिं पुत्रदारधनादिकीम् ॥ १२ ॥ प्रदास्याम्यवधूतश्च हनिष्याम्यवमन्यताम् ॥ स त्वं वरय भद्रं मे वरं यं मनसेच्छसि ॥ १३ ॥ प्रसादसुमुखस्तेऽहं गुह्यनामप्रकीर्त्तनात् ॥ कार्त्तवीर्य उवाच ॥ यदि देव प्रसन्नस्त्वं तत्प्रयच्छर्द्धि-मुत्तमाम् ॥ १४ ॥ यथा प्रजां पालयेयं न चाधर्ममवाप्नुयाम् ॥ परानुस्मरणं ज्ञानमप्रतिद्वंद्वतां रणे ॥ १५ ॥

वर मांगो, तुम्हारा कल्याण हो ॥ १३ ॥ तुमने जो मेरे गुप्त नामकीर्त्तन किये हैं, इस कारण मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं. कार्त्तवीर्यने कहा--हे देव ! यदि आप प्रसन्न हुए हैं तो मुझको ऐसी उत्तम ऋद्धि प्रदान कीजिये ॥ १४ ॥ जिससे सहजमें ही सब प्रजाका पालन करसकूं और पापभागी न हूं और शत्रुओंके अनुसरणमें ज्ञानकी प्राप्ति हो तथा समरमें कोई सन्मुख न ठहरसके ॥ १५ ॥

अरणि–घर्षण द्वारा अग्नि जलानेका काष्ठ वा सूर्य ।

मा० पु०

॥७४॥

लघुतागुणयुक्त सहस्र बाहु हो जानेकी इच्छा करताहूं. जल, आकाश, भूमि, पर्वत और पाताल इत्यादि सब स्थानोंमेंही असंगगति और श्रेष्ठ मनुष्यके हाथमें मृत्यु यह सब लाभ करनेकी अभिलाषा करता हूं. हे देव ! मैं उन्मार्गप्रवृत्त मनुष्योंको सन्मार्ग दिखानेवाला हूं ॥ १६ ॥ १७ ॥ अक्षय धन दान करनेसे श्लाघनीय अतिथिलाभ करूं, राज्यमें मेरा नाम उच्चारण करनेसे अनष्टद्रव्यता हो अर्थात् कोई धनहीन न रहै ॥ १८॥ और आपके चरणकमलोंमें मेरी भक्ति सदा अचल होकर वर्त्तमान रहै, दत्तात्रेयजी बोले—हे वत्स ! तुमने जो जो कहा, वह सब होगा ॥ १९ ॥ और मेरे प्रसादसे तुम चक्रवर्त्ती

सहस्रमाप्तुमिच्छामि बाहूनां लघुतागुणम् ॥ असंगा गतयः संतु शैलाकाशांबुभूमिषु ॥ १६॥ पातालेषु च सर्वेषु वधश्चाप्यधिकान्नरात् ॥ तथा मार्गप्रवृत्तस्य संतु सन्मार्गदेशिकाः ॥ १७ ॥ संतु मेऽतिथयः श्लाघ्या वित्तं वान्यत्तथाक्षयम् ॥ अनष्टद्रव्यता राष्ट्रे ममानुस्मरणेन च ॥ १८ ॥ त्वयि भक्तिश्च देवास्तु नित्यमव्यभिचारिणी ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ य एते कीर्तिताः सर्वे तान्वत्स समवाप्स्यसि ॥ १९ ॥ मत्प्रसादात्प्रभविता चक्रवर्तित्वमैश्वरम् ॥ पुत्र उवाच ॥ प्रणिपत्य ततस्तस्मै दत्तात्रेयाय सोऽर्जुनः ॥ २० ॥ आनीय प्रकृतीः सम्यग-भिषेकमगृह्णत ॥ आगताश्चापि गंधर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः ॥ २१ ॥ ऋषयश्च वसिष्ठाद्या मेर्वाद्याः पर्वतास्तथा ॥ गंगाद्याः सरितः सर्वाः समुद्रा रत्नसंभवाः ॥ २२ ॥ प्लक्षाद्याश्च तथा वृक्षा देवा वै वासवादयः ॥ वासुकिप्रमुखा नागा अभिषेकार्थमागताः ॥ २३ ॥ तार्क्ष्याद्याः पक्षिणश्चैव पौरा जानपदास्तथा ॥ संभाराः संभृताः सर्वे दत्तात्रेयप्रसादतः ॥ २४ ॥

भा० टी०

अ० १७

राजा होगे. पुत्रने कहा तब उन कार्त्तवीर्यार्जुनने मुनिवर दत्तात्रेयजीको प्रणाम करके ॥ २० ॥ समस्त प्रजाको बुलाय सम्यक् प्रकारसे अभिषेक ग्रहण किया, उस समय समस्त गंधर्व, अप्सरागण ॥ २१ ॥ वसिष्ठ आदि ऋषिगण, सुमेरु इत्यादि पर्वत गंगा इत्यादि सब नदियाँ जलयुक्त सब समुद्र ॥ २२ ॥ प्लक्ष इत्यादि सब वृक्ष, इन्द्रादि सब देवता, वासुकी इत्यादि नाग ॥ २३ ॥ गरुडादि पक्षी, तथा नगर और पुरवासी समस्त लोक मुनिवर दत्तात्रेयजीके प्रसादसे सब सामग्री सजाय अभिषेकके लिये आये ॥ २४ ॥

और ब्रह्मादि देवताओंने अग्नि प्रज्वलित करी, फिर दत्तात्रेयस्वरूपी नारायणने अभिषेक किया ॥ २५ ॥ अनन्तर समुद्र, नदी और ऋषियोंने अभिषेक किया और "हैहय राज्यमें स्थित हुए" यह घोषणा सर्वत्र होगई ॥ २६ ॥ मुनिवर दत्तात्रेयके प्रसादसे अतुल ऐश्वर्यको प्राप्त हो महाबल हैहयने राज्यमें अवस्थान करके आज्ञा दी कि, जो अबसे मेरे अतिरिक्त अस्त्र ग्रहण करेगा ॥ २७ ॥ वह परहिंसारत वा दस्यु मेरे हाथसे मारा जायगा राजाके इस प्रकार आज्ञा करनेपर उनके राज्यमें उनके अतिरिक्त और कोई आयुधधारी मनुष्य वर्त्तमान नहीं रहा ॥ २८ ॥ सब भूमिके एक राजा कार्त्तवीर्यार्जुनही मनुष्यव्याघ्र और पराक्रमी हुए, तब वही ग्रामपालक, वही पशुपालक ॥ २९ ॥ और वही क्षेत्ररक्षक थे, दूसरा नहीं. ब्राह्मणरक्षक,

अथ संज्वाल्य तैर्वह्निं देवैर्ब्रह्मादिभिः सह ॥ नारायणेनाभिषिक्तो दत्तात्रेयस्वरूपिणा ॥२५॥ समुद्रैश्च नदीभिश्च ऋषिभिश्चाभिषेचितः ॥ आघोषयामास तदा स्थितो राज्ये स हैहयः ॥ २६ ॥ दत्तात्रेयात्परामृद्धिमवाप्यातिबलान्वितः ॥ अद्यप्रभृति यः शस्त्रं मामृतेऽन्यो ग्रहीष्यति ॥ २७ ॥ हंतव्यः स मया दस्युः परहिंसारतोऽपि वा ॥ इत्याज्ञप्तेन तद्राज्ये कश्चिदायुधभृन्नरः ॥ २८॥ तमृते पुरुषव्याघ्रं बभूवोरुपराक्रमम् ॥ स एव ग्रामपालोऽभूत्पशुपालः स एव च ॥२९॥ क्षेत्रपालः स एवासीद्द्वितीयो न च रक्षिता ॥ तपस्विनां पालयिता सार्थपालश्च सोऽभवत् ॥ ३० ॥ दस्युव्यालाग्निशस्त्रारिभयेष्वब्धौ निमज्जताम् ॥ अन्यासु चैव मग्नानामापत्सु परवीरहा ॥ ३१ ॥ स एव संस्मृतः सद्यः समुद्धर्त्ताभवन्नृणाम् ॥ अनष्टद्रव्यता चासीत्तस्मिञ्छासति पार्थिवे ॥ ३२ ॥ तेनेष्टं बहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ तपश्च तप्तुं सुमहत्संग्रामे चातिचेष्टितम् ॥ ३३ ॥

तपस्विरक्षक और वही अर्थपालक हुए ॥ ३० ॥ वह परवीरघातक राजाही केवल मात्र चोर, सर्प, अग्नि, शस्त्र, शत्रु और भयंकर समुद्र वा अन्यान्य आपदामें निमग्न मनुष्योंकी रक्षा करनेवाले हुए ॥ ३१ ॥ एक मात्र उनका नाम उच्चारण करकेही मनुष्यगण सब आपदाओंसे उत्तीर्ण होने लगे, उन राजाने जब राज्य शासन किया, तब राज्यमें किसीका द्रव्य नष्ट न हुआ ॥ ३२ ॥ उन्होंने नाना प्रकारके यज्ञ यजन करके दक्षिणासहित समाप्त किये और महत् तपस्याचारी तथा संग्राममें बडी चेष्टावाले हुए ॥ ३३ ॥

तब इनकी अत्यन्त समृद्धि और मान देखकर अंगिरा मुनिने कहा—"अन्य कोई राजा इनके समान नहीं हुआ ॥ ३४ ॥ और न यज्ञ, दान, तपस्या व संग्राम चेष्टा किसी विषयमें कार्त्तवीर्यके समान नहीं होगा, इसमें संदेह नहीं।" वह राजा जिस दिन दत्तात्रेयके निकटसे अतुल ऐश्वर्यको प्राप्त हुए हैं ॥ ३५॥ उन्होंने उसी दिन दत्तात्रेयका याग किया था और उनकी सब प्रजाने भी भूपतिकी ॥ ३६ ॥ परम ऋद्धि देखकर सावधान चित्तसे उसी दिन याग किया था, यही उन बुद्धिमान् दत्तात्रेयजीका माहात्म्य है ॥ ३७ ॥ उन चराचर गुरु, अन्तहीन, शार्ङ्गधन्वा, शंख, चक्र, गदाधारी अप्रमेय अनन्तदेव दत्तात्रे-

तस्यर्द्धिंमहिमानं च दृष्ट्वा प्राहांगिरा मुनिः ॥ न नूनं कार्त्तवीर्यस्य गतिं यास्यंति पार्थिवाः ॥ ३४ ॥ यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा संग्रामे चातिचेष्टितैः ॥ दत्तात्रेयादिने यस्मिन्संप्राप्तार्द्धिंर्नरेश्वरः ॥ ३५ ॥ तस्मिन्तस्मिन्दिने यागं दत्तात्रेयस्य सोऽकरोत् ॥ तथैव च प्रजाः सर्वास्तस्मिन्नहनि भूपते ॥ ३६ ॥ तस्यर्द्धिं परमां दृष्ट्वा यागं चक्रुः समाधिना ॥ इत्येतत्तस्य माहात्म्यं दत्तात्रेयस्य धीमतः ॥ ३७ ॥ विष्णोश्चराचरगुरोरनंतस्य महात्मनः ॥ प्रादुर्भावः पुराणेषु कथ्यते शार्ङ्गधन्वनः ॥ ३८ ॥ अनंतस्याप्रमेयस्य शंखचक्रगदाभृतः ॥ एतस्य परमं रूपं यश्चिंतयाति मानवः ॥ ३९ ॥ स सुखी स च संसारात्समुत्तीर्णोऽचिराद्भवेत् ॥ सदैव वैष्णवानां च भक्त्याहं सुलभोऽस्मि भोः ॥ ४० ॥ पत्रपुष्पफलेनाहं पूजितो मोक्षदोऽस्मि वै ॥ इत्येवं यस्य वै वाचस्तं कथं नाश्रयेज्जनः ॥ ४१ ॥ अधर्मस्य विनाशाय धर्माधारार्थमेव च ॥ अनादिनिधनो देवः करोति स्थितिपालनम् ॥ ४२ ॥

यरूपी विष्णुकी उत्पत्ति सब पुराणोंमें नाना प्रकारसे कही गई है, जो मनुष्य नारायणके इस परमरूपकी चिन्ता करते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वही सुखी होते हैं और तत्काल संसारबंधनसे छूट जाते हैं जो सदा कहते हैं कि, हे वैष्णवगण ! मैं भक्तिद्वारा सदाही तुमको सुलभ हूं। पत्र, पुष्प, फलोंद्वारा पूजित हुआभी मैं मुक्ति देता हूं, ऐसी जिनकी प्रतिज्ञा है, फिर मनुष्य उनका आश्रय क्यों न करैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ वह अनादि निधनदेवही धर्माचरणके करने और अधर्म विनाशके निमित्त स्थिति और पालनादि करते हैं ॥ ४२ ॥

हे पिता ! अब अलर्क नामक ब्राह्मणका वृत्तान्त आपसे कहता हूं कि, जिनसे दत्तात्रेयजीने योगमार्ग वर्णन किया है वह महात्मा अलर्कमहाराज जगत्में प्रसिद्ध राजर्षि और अपने पिताके भक्त थे ॥ ४३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ पुत्रने कहा—हे पिता ! पूर्वकालमें शत्रुजित् नामक महावीर्यवान् एक राजा थे, उनके यज्ञमें सोमपान करके शचीपति इन्द्र अत्यन्त संतुष्ट हुए थे ॥ १ ॥ उन राजाके महावीर्यवान् और अत्यन्त पराक्रमी, अरिमर्दन सर्वलक्षणोंसे युक्त ऋतुध्वज नामसे विख्यात एक पुत्र हुआ ॥ २ ॥ वह बुद्धिमें बृहस्पतिके समान, विक्रममें इन्द्रके समान

तथैव जन्म चाख्यातमालर्कं कथयामि ते ॥ यथा च योगः कथितो दत्तात्रेयेण तस्य वै ॥ पितृभक्तस्य राजर्षेरलर्कस्य महात्मनः ॥४३॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे दत्तात्रेयोपाख्यानं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ पुत्र उवाच ॥ प्रागबभूव महावीर्यः शत्रुजिन्नाम पार्थिवः ॥ तुतोष यस्य यज्ञेषु सोमावाप्त्या पुरंदरः ॥ १ ॥ तस्यात्मजो महावीर्यो बभूवारिविदारणः ॥ नाम्ना ऋतध्वजः ख्यातः सर्वलक्षण-संयुतः ॥ २ ॥ बुद्धिविक्रमलावण्यैर्गुरुशुक्राश्विनां समः ॥ स समानवयोबुद्धिसत्त्वविक्रमचेष्टितैः ॥ ३॥ नृपपुत्रो नृपसुतैर्नित्यमास्ते समावृतः ॥ कदाचिच्छास्त्रसद्भावविवेककृतनिश्चयः ॥ ४ ॥ कदाचित्काव्यसंलापगीतनाटकसंभवैः ॥ तथैवाक्षविनोदैश्च शस्त्रास्त्रविनयेषु च ॥ ५ ॥ योग्यो नियुद्धनागाश्वस्यंदनाभ्यासतत्परः ॥ रेमे नृपेंद्रपुत्रोऽसौ नरेंद्रतनयैर्वृतैः ॥ ६ ॥

और लावण्यमें अश्विनीकुमारके समान थे । राजपुत्र जिन राजनन्दनोंके सहित मिलित रहते. वह भी वयस, बुद्धि, सत्त्व, विक्रम और चेष्टामें राजपुत्रसे किसी प्रकार कम नहीं थे, वह कभी शास्त्र पढनेसे उत्पन्न विवेक विषयमें व्रतनिश्चय होकर अवस्थान करते ॥ ३ ॥ ४ ॥ कभी काव्यकी चर्चामें गीत श्रवणमें और नाटकसंभव गीतादिमें मन लगाकर प्रसन्न रहते, कभी अक्षविनोद अर्थात् पाश खेलनेमें, कभी अस्त्रशस्त्रमें, कभी विनयमें ॥ ५॥ कभी योग्य पुरुषोंके संग मल्लयुद्ध विषयमें और कभी हाथी घोडे तथा रथादिके अभ्यासमें तत्पर होकर राजपुत्रोंके संग खेलते ॥ ६ ॥

जिस प्रकार दिन आनन्दसे बीतताथा, वैसेही रातभी सुखसे बीतजाती थी, जिस स्थानपर वह क्रीडा किया करते थे, वहां सैकडों ब्राह्मणोंके पुत्र सैकडों राजाओं और वैश्योंके बालक ॥ ७ ॥ समान आयुमान् प्रीतिपूर्वक आन आनकर खेला करते. इस प्रकार कुछ काल बीतनेपर नागलोकसे महीतलमें ॥८॥ नागराज अश्वतरके दो पुत्र ब्राह्मणका रूप धारण करके आये, यह दोनोंही तरुण और प्रियदर्शन थे ॥ ९ ॥ यह उन राजनन्दन और ब्राह्मण पुत्रोंके संग नाना प्रकारके विनोद करते हुए प्रीतिपूर्वक वास करने लगे ॥१०॥ वह राजपुत्र ब्राह्मणपुत्र और वैश्यपुत्र तथा वह दोनों नागकुमार सबही एकत्र स्नान,

यथैव हि दिवा तद्वद्रात्रावपि मुदा युतः ॥ तेषां तु क्रीडतां तत्र द्विजभूपविशां सुताः ॥ ७ ॥ समानवयसः प्रीत्या रंतुमायांत्यनेकशः ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य नागलोकान्महीतलम् ॥८॥ कुमारावागतौ नागौ पुत्रावश्वतरस्य तु ॥ ब्रह्मरूपप्रतिच्छन्नौ तरुणौ प्रियदर्शनौ ॥९॥ तौ तैर्नृपसुतैः सार्द्धं तथैवान्यैर्द्विजात्मजैः ॥ विनोदैर्विविधैस्तत्र तस्थतुः प्रीतिसंयुतौ ॥१०॥ सर्वे च ते नृपसुतास्ते च ब्रह्मविशां सुताः ॥ नागराजात्मजौ तौ च स्नानसंवाहनादिकाम् ॥ ११ ॥ वस्त्रगंधान्नसंयुक्तां चक्रुर्भोगभुजिक्रियाम् ॥ अहन्यहन्यनुप्राप्ते तौ च नागकुमारकौ ॥ १२ ॥ आजग्मतुर्मुदा युक्तौ प्रीत्या सूनोर्महीपतेः ॥ स च ताभ्यां नृपसुतः परं निर्वाणमाप्तवान् ॥ १३ ॥ विनोदैर्विविधैर्हास्यसंलापादिभिरेव च ॥ विना ताभ्यां न बुभुजे न सस्नौ न पपौ मधु ॥१४॥ न रेमे च न जग्राह शास्त्राण्यात्मगुणर्द्धये ॥ रसातले च तौ रात्रिं विना तेन महात्मना ॥ १५ ॥

यानारोहण ॥ ११ ॥ वस्त्र पहरना, गंधानुलेपन और भोगानुसार भोजन करने लगे । इस प्रकार राजपुत्रकी प्रीतिसे आह्लादयुक्त हो वह दोनों नागराजके पुत्र नित्य आने जाने लगे और राजपुत्रभी उनसे परम प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥ १३ ॥ अर्थात् उनके नाना प्रकार आमोद प्रमोद और हास्य संलापादि द्वारा अत्यन्त सुखी हुए थे, यही क्या उनके विना भोजन, स्नान और मधुपान नहीं करते ॥ १४ ॥ तथा क्रीडा और आत्मगुण वृद्धिके निमित्त शस्त्रभी ग्रहण नहीं करते, दोनों नागनन्दनभी उन महात्मा राजपुत्रके विना रात्रि ॥ १५ ॥

दीर्घ श्वास लेते हुए रसातलमें बिताय दिनमें उनके निकट आते. इस प्रकार कुछ काल बीतनेपर नागराज अश्वतरने एक दिन दोनों पुत्रोंसे पूछा—हे प्रियद-र्शन पुत्रो ! तुम मृत्युलोकमें ऐसे प्रीतिमान् क्यों हुए हो । बहुत दिन हुए दिनके समयमें तुमको इस पातालमें नहीं देखता ॥ १६ ॥ १७ ॥ रात्रि होनेपर ही देखता हूं, इसका क्या कारण है ! जडने कहा—स्वयं पिताके इस प्रकार पूछने पर वह दोनों पुत्र महाभाग उरगाधिपतिसे प्रणामपूर्वक हाथ जोड-कर कहने लगे । पुत्रोंने कहा—हे तात ! मर्त्यलोकमें शत्रुजित् नामक राजाके एक पुत्र हैं और उनका नाम ऋतुध्वज विख्यात है ॥ १८ ॥ १९ ॥ वह रूपवान्, सरलचित्त, शूर, मानी, प्रियवादी, प्रसिद्ध यशवान्, वाग्मी, विद्वान् मित्रतायुक्त और गुणोंके आकर (खान) स्वरूप हैं ॥ २० ॥ वह मान करने

निःश्वासपरमौ नीत्वा जग्मतुस्तं दिने दिने ॥ मर्त्यलोके परा प्रीतिर्भवतोः केन पुत्रकौ ॥ १६ ॥ सहेति च प्रलपितौ तावुभौ नागदारकौ दृष्टयोरत्र पाताले बहूनि दिवसानि मे ॥ १७ ॥ दिवारजन्यामेवोभौ पश्यामि प्रियदर्शनौ ॥ जड उवाच ॥ इति पित्रा स्वयं पृष्टौ प्रणि-पत्य कृतांजली ॥ १८ ॥ प्रत्यूचतुर्महाभागावुरगाधिपतेः सुतौ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ पुत्रः शत्रुजितस्तात नाम्नाख्यात ऋतध्वजः ॥ १९ ॥ रूपवानार्जवोपेतः शूरो मानी प्रियंवदः ॥ अनावृतकथो वाग्मी विद्वान्मैत्रो गुणाकरः ॥ २० ॥ मान्यमानयिता धीमान्ह्रीमान्विनयभू-षणः ॥ तस्योपचारसप्रीतिसंभोगापहृतं मनः ॥२१ ॥ नागलोकेऽन्यलोके वा न रतिं विंदते पितः ॥ तद्वियोगेन नौ तात निशा पाताल-शीतला ॥ २२ ॥ परितापाय तत्संगश्चाह्लादाय रविर्दिवा ॥ पितोवाच ॥ पुत्रः पुण्यवतो धन्यः स यस्यैवं भवद्विधैः ॥ २३ ॥

योग्य पुरुषोंका मान करते हैं, वह बुद्धिमान्, लज्जावान् और विनयसे विभूषित हैं उनके इन उपचार और प्रीतिसम्भोग द्वारा हमारा मन अत्यन्त खिंच-कर ॥ २१ ॥ नागलोक, भूलोक वा अन्य किसी स्थानमें प्रसन्नताको प्राप्त नहीं होता. हे पिता ! उनसे वियोग होनेपर पातालकी शीतल निशाभी हमको ॥ २२ ॥ तापकी देनेवाली होती है और उनके संग मिलित रहनेसे रवितापान्वित दिनभी हमको आह्लादजनक होता है ॥ पिताने कहा—वह पुण्य-शील पुत्र धन्य है, क्योंकि तुम सरीखे गुणवान् पुरुषभी ॥ २३ ॥

पीछेमें जिनके गुण कीर्त्तन करते हैं अनेक शास्त्र जाननेवाले पंडित भी कुत्सभावसंपन्न होते हैं और अनेक मूर्खभी सुशील होते हैं ॥ २४ ॥ किन्तु मैं विचारताहूं कि, शास्त्रज्ञ और सुशील वह राजपुत्रही अत्यन्त धन्य हैं, क्योंकि मित्रद्वारा जिसका मित्रतागुण प्रकाशित होताहै और शत्रुद्वारा जिसका पराक्रम प्रगट होता है ॥ २५ ॥ अनेक संतान होने परभी उसके द्वाराही पिता पुत्रवान् कहा जाता है जो हो, उस उपकारीके निमित्त तुमने कुछ विचारा भी है ? ॥ २६ ॥ हे वत्स ! उस मित्रका चित्त संतुष्ट करनेके लिये कुछ कार्य तुमने किया है ? देखो—इस संसारमें वही धन्य है और उसी अच्छे जन्मवालेका जन्म लेना सफल है ॥ २७ ॥ जो अर्थियोंको विमुख नहीं करता और मित्रके निमित्त दुर्बल नहीं है. अतएव मेरे घरमें सुवर्ण, रत्न, वाहन, आसन

परोक्षस्यापि गुणिभिः क्रियते गुणकीर्तनम् ॥ संति शास्त्रविदोऽशीलाः संति मूर्खाः सुशीलिनः ॥ २४ ॥ शास्त्रशीले समं मन्ये यस्मिन्धन्यतर तु तम् ॥ यस्य मित्रगुणान्मित्राण्यमित्राश्च पराक्रमम् ॥२५॥ कथयंति सदा सत्सु पुत्रवांस्तेन वै पिता ॥ तस्योपकारिणः काच्चिद्भवद्भ्यामभिवांछितम् ॥ २६ ॥ किंचिन्निष्पादितं वत्सौ परितोषाय चेतसः ॥ स धन्यो जीवितं तस्य तस्य जन्मसु जन्मनः ॥ २७ ॥ यस्यार्थिनो न विमुखा मित्रार्थे न च दुर्बलः ॥ मद्गृहे यत्सुवर्णादि रत्नं वाहनमासनम् ॥ २८ ॥ यद्वान्यत्प्रीतये तस्य तद्देयमविशंकया ॥ धिक्तस्य जीवितं पुंसो मित्राणामपकारिणः ॥२९॥ प्रतिरूपमकुर्वन्यो जीवामीत्यवगच्छति ॥ उपकारं सुहृद्वर्गेष्वपकारं च शत्रुषु ॥३०॥ नृमेघो वर्षति प्राज्ञास्तस्येच्छंति सदोन्नतिम् ॥ पुत्रावूचतुः ॥ किं तस्य कृतकृत्यस्य कर्तुं शक्येत केनचित् ॥ ३१ ॥

इत्यादि ॥ २८ ॥ जो कुछ है, तुम उनको प्रसन्न करनेके लिये अशंकित चित्तसे वह दे सकते हो, क्याकि मित्रोंका अपकार करनेवालेके जीवनको धिक्कार है ॥ २९ ॥ जो पुरुष उपकारी मित्रका प्रति उपकार न करके जीवन धारण करनेकी इच्छा करते हैं, उनके जीवनको धिक्कार है और जो पुरुषरूपी मेघ बंधुवर्गका उपकार और शत्रुवर्गका अपकाररूप जलकी वर्षा करते हैं, देवता सदाही उनकी उन्नतिसाधन करनेकी इच्छा करते हैं. पुत्रने कहा हे पिता ! मैं उन कृतकृत्यका क्या उपकार कर सकताहूं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

जिनके निकट याचकजन अभिलषित पदार्थद्वारा सदा अर्चित होते हैं; उनका उपकार करनेकी मेरी भी सामर्थ्य नहीं है, उनके घर जो रत्न हैं, पातालमें वह सब कहां हैं ॥ ३२ ॥ उनके यहांके वाहन, आसन, यान, भूषण, वस्त्र हमारे यहां नहीं है, उनके निकट जैसा विज्ञान हैं, अन्य कहीं भी वह नहीं है ॥ ३३ ॥ हे तात ! वह पण्डितोंका भी संदेहहरण करनेवाले हैं. जो हो, केवल उनका एक कार्य है किन्तु विचारसे हमारे वह साध्य नहीं है ॥ ३४॥ हिरण्यगर्भ गोविन्द और शिवादिके अतिरक्त वह दूसरेके असाध्य है, अर्थात् दूसरा कोई उस कार्यको नहीं कर सकता. पिता बोले -तथापि उनका वह जो उत्तम कार्य है, उसके सुननेकी इच्छा करताहूं ॥ ३५ ॥ चाहे वह साध्य असाध्य कैसाभी है, जो मनुष्य दृढतर उद्योगी

यस्य सर्वार्थिने गेहे सर्वकामैः सदार्चिताः ॥ यानि रत्नानि तद्गेहे पाताले तानि नः कुतः ॥३२॥ वाहनासनयानानि भूषणान्यंबराणि च ॥ विज्ञानं यच्च तत्रास्ति तदन्यत्र न विद्यते ॥ ३३ ॥ प्राज्ञानामप्यसौ तात सर्वसंदेहहृत्तमः ॥ एकं तस्यास्ति कर्त्तव्यमसाध्यं तच्च नो मतम् ॥ ३४ ॥ हिरण्यगर्भगोविंदशर्वादीनां वराहते ॥ पितोवाच ॥ तथापि श्रोतुमिच्छामि तस्य यत्कार्यमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ असाध्यमथवा साध्यं किं चासाध्यं विपश्चिताम् ॥ देवत्वममरेशत्वं तत्पूज्यत्वं च मानवाः ॥ ३६ ॥ प्रयांति वांछितं चान्यद्दृढं ये व्यवसायिनः ॥ नाविज्ञातं न चागम्य नाप्राप्यं दिवि चेह वा ॥ ३७ ॥ उद्यतानां मनुष्याणां यतचित्तेंद्रियात्मनाम् ॥ योजनानां सहस्राणि याति गच्छन्पिपीलिकः ॥ ३८॥ अगच्छन्वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ॥ क्व भूतलं क्व च ध्रौव्यं स्थानं यत्प्राप्तवान्ध्रुवः ॥ ३९ ॥

होते हैं, वह देवत्व वा इन्द्रत्व अथवा उनके पूज्यभावको प्राप्त होनेमें समर्थ होतेहैं ॥ ३६ ॥ दृढव्यवसायी पुरुषही मनोवांछितको प्राप्त होते हैं, कोई वस्तु स्वर्गमें भी अविज्ञात, अगम्य और अप्राप्त नहीं है ॥ ३७॥ जो मन, इन्द्रिय और आत्माको वश करके अधिक उद्योगी होते हैं. वह मनोरथको प्राप्त होते हैं, देखो–छोटी चैंटी अधिक उद्योगी होनेसे गमन करते करते हजार योजन जासकतीहैं ॥ ३८ ॥ किन्तु पक्षिराज गरुड उद्योगहीन होनेसे एक पगभी जानेमें समर्थ नहीं होते, क्योंकि अनुद्योगी मनुष्यको गम्य वा अगम्य कुछ नहीं है, देखो--उत्तानपाद राजाके पुत्र ध्रुव ॥ ३९ ॥

पृथ्वीमें अवस्थान करके जिस अन्य दुर्लभ स्थानको प्राप्त हुए हैं, वह ध्रौव स्थान कहां ? और पृथ्वी कहां अतएव हे पुत्रो ! वह साधु महाभाग राजपुत्र जिससे कार्यवान् हो, वह कहो ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और तुमभी जिसके द्वारा मित्रता ऋणसे मुक्त होसको । पुत्रोंने कहा हे तात ! उन महात्माने पूर्व- वृत्तान्त इस प्रकारसे कहाहै ॥ ४१ ॥ उन सद्वृत्तशाली महात्मा राजपुत्रकी कौमार अवस्थामें जिस प्रकार हुआथा, सो सुनो । एक शत्रुजित् नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण है ॥ ४२ ॥ एक दिन गालव नामक बुद्धिमान् द्विजश्रेष्ठने सुन्दर घोडा ग्रहण करके मेरे आश्रममें आय राजासे कहाथा ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! कोई पापकारी दैत्योंमें अधम मेरे आश्रममें आनकर सबही ध्वंस करताहै वह रात दिन सिंह हाथी ओर अन्यान्य अल्पकाय वनचारी जन्तुका रूप

उत्तानपादनृपतेः पुत्रः सद्भूमिगोचरः ॥ तत्कथ्यतां महाभागो कार्यवान्येन पुत्रको ॥ ४० ॥ स भूपालसुतः साधुर्येनानृण्यं लभेत वाम् ॥ पुत्रावूचतुः ॥ तेनाख्यातमिदं तात पूर्ववृत्तं महात्मना ॥ ४१ ॥ कौमारके यथा तस्य वृत्तं सद्वृत्तशालिनः ॥ तस्य शत्रुजितं तातं पूर्वं कश्चिद्द्विजोत्तमः ॥ ४२ ॥ गालवोऽभ्यागमद्धीमान्गृहीत्वा तुरगोत्तमम् ॥ प्रत्युवाच च राजानं समुपेत्याश्रमं मम ॥४३॥ कोऽपि दैत्या- धमो राजन्विध्वंसयति पापकृत् ॥ तत्तद्रूपं समास्थाय सिंहेभवनचारिणाम् ॥ ४४ ॥ अन्येषां चातिकायानामहर्निशमकारणात् ॥ समा- धिध्यानयुक्तस्य मौनव्रतरतस्य च ॥ ४५ ॥ तथा करोति विघ्नानि यथा नेच्छामि पार्थिव ॥ दग्धुं कोपाग्निना सद्यः समर्थास्तं वयं न तु ॥ ४६ ॥ दुःखार्जितस्य तपसो व्ययमिच्छामि पार्थिव ॥ एकदा तु मया राजन्नतिनिर्विण्णचेतसा ॥ ४७ ॥ तत्क्लेशितेन निःश्वासो निरीक्ष्यांबरमुज्झितः ॥ ततोऽबरतलात्सद्यः पतितोऽयं तुरंगमः ॥ ४८ ॥

धारण करके इस प्रकार विघ्न करता है कि, मेरे समाधिध्यानयुक्त वा मौनव्रत अवलम्बन करनेपरभी मेरा मन विचलित होता है. हे राजन् ! आपही उसे कोपाग्निमें दग्ध करनेको समर्थ हैं, इस विषयमें मैं असमर्थ हूं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ क्योंकि समर्थ होकर भी मैं ऐसे अनुचित कार्यमें बहुत दिनोंकी दुःखोपार्जित तपस्या व्यय करनेकी इच्छा नहीं करता. जो हो, हे राजन् ! मैंने एक दिन उसके द्वारा अतिदुःखित चित्तसे ॥ ४७ ॥ क्लेशित होकर आकाशमें दीर्घ श्वास छोडा, तब उसी समय आकाशसे यह घोडा गिरा ॥ ४८ ॥

और जो आकाशवाणी हुई वह कहताहूं, हे नरनाथ ! सुनो " हे द्विजश्रेष्ठ ! तुमको जो अश्व मिला है, यह सूयक समान विना थके समस्त पृथ्वीवलय गमन करनेमें समर्थ है. पाताल, आकाश, जलमें इसकी गति नहीं रुकती ॥ ४९ ॥ ५० ॥ समस्त दिशा तथा पर्वतोंमें भी विना रोक टोकके चल सकता है जो कि, यह अश्व विना थके समस्त पृथ्वीवलयमें जानेको समर्थ है । इस कारण यह सब लोकोंमें " कुवलय " नामसे विख्यात होगा और जो पापी दानवाधम तुमको रात दिन क्लेश देता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! शत्रुजित् नामक राजाका पुत्र ऋतध्वज इस अश्वरत्नपर चढकर उसको वध करेंगे ॥ ५३ ॥ और इस अश्वरत्नद्वारा ख्यातिलाभ करेंगे. इसीलिये मैं आपके निकट आयाहूं, आप भी तपस्याके विघ्न करनेवालेको ॥ ५४ ॥ निवारण

वाक्चाशरीरिणी प्राह नरनाथ शृणुष्व तत् ॥ अश्रांतः सकलं भूमेर्वलयं तुरगोत्तमः ॥ ४९ ॥ समर्थः क्रांतुमर्केण तवायं प्रतिपादितः ॥ पातालांबरतोयेषु नास्य प्रतिहता गतिः ॥५०॥ समस्तादिक्षु व्रजतो न संगः पर्वतेषु च ॥ यतो भूवलयं सर्वमश्रांतोऽयं चरिष्यति ॥५१॥ ततः कुवलयो नाम्ना ख्यातिं लोकेषु यास्यति ॥ क्लिश्नात्यहर्निशं पापो यश्च त्वां दानवाधमः ॥ ५२ ॥ तमप्येनं समारुह्य द्विजश्रेष्ठ हनिष्यति ॥ शत्रुजिन्नाम भूपालस्तस्य पुत्र ऋतध्वजः ॥५३॥ प्राप्यैतदश्वरत्नं च ख्यातिमेतेन यास्यति ॥ सोऽहं त्वामनुसंप्राप्तस्तपसो विघ्नकारिणम् ॥ ५४ ॥ तं निवारय भूपाल भागभाङ्नृपतिर्यतः ॥ तदेतदश्वरत्नं ते मया भूप निवेदितम् ॥ ५५ ॥ पुत्रमाज्ञापय तथा यथा धर्मो न लुप्यते ॥ स तस्य वचनाद्राजा तं वै पुत्रमृतध्वजम् ॥ ५६ ॥ तदश्वरत्नमारोप्य कृतकौतुकमंगलम् ॥ अप्रैषयत धर्मात्मा गालवेन समं तदा ॥ ५७ ॥ स्वमाश्रमपदं सोऽपि तमादाय ययौ मुनिः ॥५८॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे पितापुत्रसंवादे मदालसोपाख्याने कुवलयाश्वीयेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

कीजिये । हे भूपाल ! मेरे दिये इस अश्वरत्नको ग्रहण करके ॥ ५५ ॥ पुत्रको इस प्रकार आज्ञा दीजिये कि, जिससे धर्मलोप न हो. तब धर्मात्मा राजा शत्रुजित्ने ब्राह्मणका यह वचन सुन, ऋतध्वज पुत्रको ॥ ५६ ॥ कौतुक और मंगलाचार इत्यादि कराय, उस अश्वरत्नपर चढाय मुनिवर गालवके संग भेजा ॥ ५७ ॥ और मुनिने भी उनको संग लेकर अपने आश्रमकी ओर प्रस्थान किया ॥ ५८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

पिता बोले–मुनिवर गालवके संग जाकर राजकुमारने जो कियाथा, सो कहो। हे पुत्रो! तुम्हारी कथा अत्यन्त विचित्र है ॥ १ ॥ पुत्रोंने कहा–भूपालनंदन ऋतध्वजने गालवमुनिके मनोहर आश्रममें वास करके ब्रह्मवादियोंके समस्त विघ्न दूर किये थे ॥ २ ॥ वीर कुवलयाश्व जो गालवमुनिके आश्रममें वास करते हैं, मदके गर्वसे वह दानवाधम यह बात नहीं जानसका ॥ ३ ॥ इसी कारण वह सूकरमूर्त्ति धारण करके संध्योपासनमें तत्पर हुए ब्राह्मण गालवजीको धर्षण करने लगा ॥ ४ ॥ तब मुनिके शिष्य ऊँचे स्वरसे चीत्कार करने लगे। राजपुत्र भी उसी समय शरासनधारणपूर्वक उस अश्वपर शीघ्रतासहित चढ वराहको लक्ष्य करके दौडे ॥ ५ ॥ और मनोहर चित्रतासे शोभित धनुष बलपूर्वक खैंचकर अर्द्धचन्द्रबाणसे उसको

पितोवाच ॥ गालवेन समं गत्वा नृपपुत्रेण तेन यत् ॥ कृतं तत्कथ्यतां पुत्रौ विचित्रायुधयोधिना ॥ १ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ स गालवाश्रमे रम्ये तिष्ठन्भूपालनंदनः ॥ सर्वविघ्नोपशमनं चकार ब्रह्मवादिनाम् ॥ २ ॥ वीरः कुवलयाश्वं तं वसंतं गालवाश्रमे ॥ मदावलेपोपहतो नाजानाद्दानवाधमः ॥ ३ ॥ ततस्तं गालवं विप्रं संध्योपासनतत्परम् ॥ सौकरं रूपमास्थाय प्रधर्षयितुमागमत् ॥ ४ ॥ मुनिशिष्यैरथोत्कुष्टे शीघ्रमारुह्य तं हयम् ॥ अन्वधावद्वराहं तं नृपपुत्रः शरासनी ॥ ५ ॥ आजघान च बाणेन चंद्रार्धाकारवर्चसा ॥ आकृष्य बलवच्चापं चारुचित्रोपशोभितम् ॥ ६ ॥ नाराचाभिहतः शीघ्रमात्मत्राणपरो मृगः ॥ गिरिपादपसंबाधां सोऽत्यक्रामन्महाटवीम् ॥ ७ ॥ तमन्वधावद्वेगेन तुरगोऽसौ मनोजवः ॥ चोदितो राजपुत्रेण पितुरादेशकारिणा ॥ ८ ॥ अतिक्रम्याथ वेगेन योजनानि सहस्रशः ॥ धरण्यां विवृते गर्ते निपपात लघुक्रमः ॥ ९ ॥ तस्यानंतरमेवाथ स चाश्वी नृपतेः सुतः ॥ निपपात महागर्ते तिमिरौघसमावृते ॥ १० ॥

ताडन किया ॥ ६ ॥ तब वह दैत्य उनके बाणसे आहत हो आत्मरक्षा करनेमें तत्पर होकर पर्वत और महावनमें भ्रमण करने लगा ॥ ७ ॥ और पिताकी आज्ञा पालन करनेवाले राजपुत्रके द्वारा प्रेरित होकर वह मनकी समान वेगवान् अश्वभी वेगसहित उसके पीछे पीछे गया ॥ ८ ॥ फिर वह लघुक्रम दानव वेगसहित सहस्र योजन अतिक्रम करके पृथ्वीके गर्भमें स्थित एक बडे गढेमें गिरा ॥ ९ ॥ इसके पीछे वह अश्वारोही राजपुत्रभी वैसेही उस अंधकारसे व्याप्त महागर्तमें गिरे ॥ १० ॥

किन्तु उस समय वह सूकर राजपुत्रको दिखाई नहीं दिया अनन्तर वह जब प्रकाशित पातालमें घुसे, तबभी उस दैत्यको नहीं देखा ॥ ११ ॥ उस समय सुवर्णमय सैकडों महलोंसे व्याप्त परकोटेसे शोभित अमरावतीके समान एक पुरी उनको दिखाई दी ॥ १२ ॥ उन्होंने उस पुरीमें प्रवेश करके एक मनुष्यकोभी नहीं देखा फिर इधर उधर भ्रमण करते करते शीघ्रतायुक्त वहां एक रमणीको देखा ॥ १३ ॥ राजपुत्रने उस कृशाङ्गीसे पूछा " तुम किसके द्वारा प्रेरित होकर किसके निकट जातीहो ? " उस भामिनीने उनके इस प्रकार पूछनेपर कुछ उत्तर नहीं दिया बरन वेगसहित महलपर चढगई राजपुत्रनेभी वैसेही अश्वको एक स्थानमें बांध विस्मयोत्फुल्लनेत्र हो निःशंक चित्तसे उस कामिनीका अनुसरण किया अर्थात् वहभी उसका वृत्तान्त पूछनेके लिये

ततो नादृश्यत मृगः स तस्मिन्राजसूनुना ॥ प्रकाशं च स पातालमपश्यत्तत्र चार्चिषा ॥ ११ ॥ ततोऽपश्यत्स सौवर्णं प्रासादशतसंकुलम् ॥ पुरंदरपुरप्रख्यं पुरं प्राकारशोभितम् ॥ १२ ॥ तत्प्रविश्य स नापश्यत्तत्र कंचिन्नरं पुरे ॥ भ्रमता च ततो दृष्टा तत्र योषित्त्वरान्विता ॥ १३ ॥ सा पृष्टा तेन तन्वंगी प्रस्थिता क्वेति कस्य वा ॥ नोवाच किंचित्प्रासादमारुरोह च भामिनी ॥१४॥ सोऽप्यश्वमेकतो बद्धा तामेवानुससार वै ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनो निःशंको नृपतेः सुतः ॥ १५ ॥ ततोऽपश्यत्सुविस्तीर्णे पर्यंके सर्वकांचने ॥ निषण्णां कन्यकामेकां कामयुक्तां रतिं यथा ॥ १६ ॥ विस्पष्टेंदुमुखीं सुभ्रूं पीनश्रोणिपयोधराम् ॥ बिंबाधरोष्ठीं तन्वंगीं नीलोत्पलविलोचनाम् ॥ १७ ॥ रक्ततुंगनखां श्यामां मृदुताम्रकरांघ्रिकाम् ॥ करभोरुं सुदशनां नीलसूक्ष्मास्थिरालकाम् ॥ १८ ॥

उसी कोठेपर चढगये ॥ १४ ॥ १५ ॥ उन्होंने उस स्थानमें प्रवेश करके देखा कि, सकामा रतिके समान साक्षात् चन्द्रमुखी पीनश्रोणी और मनोहर कुचोंवाली एक रमणी सुवर्णके बने बडे पर्यंकके ऊपर पौढ रहीहै. उसके बिम्बाफलकी समान ओष्ठ, कृशाङ्गी और नीले कमलके समान दोनों नेत्र हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ उसके नख रक्तवर्ण और कुछेक ऊंचे, नवीनवय श्यामा शरीर कोमल, हाथ और पैरके तलुए रक्तवर्ण, दोनों ऊरू हाथीके सूंडकी समान, दांत सुन्दर नीलवर्ण अलकें स्थिर और सूक्ष्म थीं ॥ १८ ॥

१ शीतकालमें जिसका देह सुखोष्ण और ग्रीष्मकालमें सुख शीतल होताहै, तपे हुए सुवर्णके समान जिसका वर्ण है, उस स्त्रीको " श्यामा " कहते हैं।

राजपुत्रने अनंगलताकी समान उस सर्वाङ्गसुन्दरी कामिनीको देखकर उसको रसातलकी देवता जाना ॥ १९ ॥ शुभमयी रमणीने भी नीलवर्ण और घूँघरवाले केशोंसे विराजित चौडी छातीवाले पुष्ट स्कन्ध और पीन बाहु राजनन्दनको देखकर मनमें विचारा कि, यही रतिपति कामदेव हैं ॥ २० ॥ तब वह कृशाङ्गी महाभाग्यवती चित्तमें क्षोभको प्राप्त हो सहसा उठी और उसी समय लज्जा, विनय तथा दीनताके वश होगई ॥ २१ ॥ और विचारने लगी कि, " यह कौन हैं ? क्या यह देवता हैं ? वा यक्ष हैं ? या गंधर्व हैं अथवा यह उरग किंवा विद्याधर हैं या कोई पुण्यवान् मनुष्य इस स्थानमें आया है ? " ॥२२॥ वह मदिरेक्षणा लाल नेत्रोंवाली वहां इस भांति नानाप्रकारकी चिन्ता करके दीर्घ निःश्वास परित्यागपूर्वक बैठतेही तत्काल मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिर पडी ॥ २३ ॥ तब राजपुत्रभी उसी समय कामबाणके आघातसे व्यथितहृदय हो " भय नहीं, भय नहीं " कहकर उसको समझाने

तां दृष्ट्वा चारुसर्वांगीमनंगांगलतामिव ॥ सोऽमन्यत्पार्थिवसुतस्तां रसातलदेवताम् ॥ १९ ॥ सा च दृष्ट्वैव तं बाला नीलकुंचितमूर्धजम् ॥ पीनोरःस्कंधबाहुं तममंस्त मदनं शुभा ॥ २० ॥ उत्तस्थौ च शुभाचारा चित्तक्षोभमवाप सा ॥ लज्जाविस्मयदैन्यानां सद्यस्तन्वी वशं गता ॥ २१ ॥ कोऽयं देवोऽथ यक्षो नु गंधर्वो वोरगोऽपि वा ॥ विद्याधरो वा संप्राप्तः कृतपुण्या पतिर्नरः ॥ २२ ॥ एवं विचिंत्य बहुधा निःश्वस्य च महीतले ॥ उपविश्य तदा भेजे सा मूर्च्छामिंदिरेक्षणा ॥ २३ ॥ सोऽपि कामशराघातमवाप्य नृपतेः सुतः ॥ तां समाश्वासयामास न भेतव्यमिति ब्रुवन् ॥ २४ ॥ सा च स्त्री या तदा दृष्टा पूर्वं तेन महात्मना ॥ तालवृंतमुपादाय पर्यवीजयदाकुला ॥ २५ ॥ समाश्वस्ता तदा पृष्टा तेन सा मोहकारणम् ॥ किंचिल्लज्जान्विता बाला तस्यै सख्यै न्यवेदयत् ॥ २६ ॥ सा चास्मै कथयामास नृपपुत्राय विस्तरात् ॥ मोहस्य कारणं सर्वं तद्दर्शनसमुद्भवम् ॥ २७ ॥

लगे ॥ २४ ॥ और जो स्त्री उन महात्मा राजपुत्रको प्रथम दिखाई दीथी, वह ललना अत्यन्त व्याकुल होकर तालका पंखा ले उनकी पवन करने लगी ॥ २५ ॥ अनन्तर राजपुत्रने उसको समझा बुझाकर मूर्च्छाका कारण पूंछा, किन्तु उस लज्जावती कामिनीने उनसे कुछ न कहकर अपनी सखीसे सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २६ ॥ तब उस भामिनीने भी उनके पूछनेपर उनके दर्शनसे हुई मूर्च्छाका कारण और रमणीका समस्त वृत्तान्त विस्तारसहित राजपुत्रके निकट वर्णन किया ॥ २७ ॥

उसने जो वृत्तान्त यथातथ्य कहा, सो सुनो—सखीने कहा हे प्रभो ! स्वर्गमें विश्वावसुनामक जो प्रसिद्ध गंधर्वराज है ॥ २८ ॥ यह सुभ्रू उन्हींकी कन्या है, मदालसा इसका नाम है, एक दिन यह उद्यानमें क्रीडा कर रही थी, इसी अवसरमें वज्रकेतु दानवका पुत्र पातालवासी उग्रमूर्ति शत्रुविदारण पातालकेतु नामक विख्यात दुरात्मा दानवने तमोमयी माया फैलाकर ॥ २९ ॥ ३० ॥ इस असहाय बालाको हरण किया है. अब आनेवाली त्रयोदशीमें वह दुष्टबुद्धि असुर इससे विवाह करेगा ॥ ३१ ॥ किन्तु शूद्र जिस प्रकार वेदश्रुतिका अधिकारी नहीं है इसी प्रकार वह भी इस सुन्दरीका योग्य पात्र नहीं

यथा तया समाख्यातं तद्वृत्तांतं च भामिनी ॥ सख्युवाच ॥ विश्वावसुरिति ख्यातो दिवि गंधर्वराट्प्रभो ॥ २८ ॥ तस्येयमात्मजा सुभ्रूर्नाम्नाख्याता मदालसा ॥ वज्रकेतोः सुतश्चोग्रो दानवोऽरिविदारणः ॥ २९ ॥ पातालकेतुर्विख्यातः पातालांतरसंश्रयः । तेनेयमुद्यानगता कृत्वा मायां तमोमयीम् ॥ ३० ॥ अपहृत्य समानीता बालेयं दुष्टबुद्धिना ॥ आगामिन्यां त्रयोदश्यामुद्वक्ष्याति किलासुरः ॥ ३१ ॥ स तु नार्हति चार्वंगीं शूद्रो वेदश्रुतिं यथा ॥ अतीते च दिने बालां चात्मव्यापादनोद्यताम् ॥ ३२ ॥ सुरभिः प्राह नायं त्वां प्राप्स्यते दानवाधमः ॥ मर्त्यलोकमनुप्राप्तं य एनं भेत्स्यते शरैः ॥३३॥ स ते भर्ता महाभागे ह्यचिरेण भविष्यति ॥ अहं त्वस्याः सखी नाम्ना कुंडलेति मनस्विनी ॥ ३४ ॥ सुता विंध्यवतः पत्नी वीरपुष्करमालिनः ॥ हते भर्त्तरि शुंभेन तीर्थात्तीर्थमनुव्रता ॥ ३५ ॥ चरामि दिव्यया गत्या परलोकार्थमुद्यता ॥ पातालकेतुर्दुष्टात्मा वाराहं वपुरास्थितः ॥ ३६ ॥

है. जो हो, कल जिस समय यह आत्मघात करनेको उद्यत हुई ॥ ३२ ॥ उसी समय सुरभिने कहा कि—" यह अधम दानव तुमको प्राप्त नहीं करसकेगा " इस मृत्युलोकसे आनकर जो पुरुष इसको बाणोंसे छेदन करेगा ॥ ३३ ॥ वही पुरुष तत्काल तुम्हारा भर्त्ता होगा. मैं इसकी सखी हूं और मेरा नाम कुण्डला है ॥ ३४ ॥ मैं विन्ध्यवान्की मनस्विनी कन्या और वीर पुष्करमालीकी पत्नी हूं, मेरे स्वामी शुंभके हाथसे मारे गये हैं, उनके परलोकके लिये उद्यत हो मैं दिव्य गतिसे तीर्थ तीर्थमें विचरण करती हूं, दुष्टात्मा पातालकेतुने आज सूकररूप धारण कियाथा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

मुनियोंकी रक्षा करनेके लिये किसी पुरुषने बाणसे उसको विद्ध किया है, यह सत्य है वा नहीं मैं इसी बातकी खोजमें शीघ्र आईथी ॥ ३७ ॥ यहां आनकर देखा कि, उस दानवाधमको सत्यही किसी पुरुषने ताडन किया है. और यह जो मूर्च्छित हुईथी, अब इसका भी कारण सुनिये ॥ ३८ ॥ हे मानद ! आपका दर्शन करतेही यह बाला आपके प्रति अत्यन्त प्रीतिमती हुई है, क्योंकि आप देखनेमें देवपुत्रके समान और मनोहर वाक्य इत्यादि अनेक प्रकार गुणशाली हैं ॥ ३९ ॥ किन्तु जिस मनुष्यने इस दानवको विद्ध किया है. उस पुरुषके अतिरिक्त यह दूसरेकी भार्या नहीं होसकती, इसी कारण यह अत्यन्त मोहको प्राप्त हुईथी ॥ ४० ॥ क्योंकि इसको जीवन पर्यन्त दुःखही भोगना पडेगा देखो इसका मन आपके प्रति अनुरक्त है, किन्तु अन्य

केनापि विद्धो बाणेन मुनीनां त्राणकारणे ॥ तथाहं तत्त्वतोऽन्विष्य त्वरिताहमिहागता ॥ ३७ ॥ सत्यमेव स केनापि ताडितो दौष्ट्यमाचरन् ॥ इयं च मूर्च्छामगमद्येन तत्कारणं शृणु ॥ ३८ ॥ त्वयि प्रीतिमती बाला दर्शनादेव मानद ॥ देवपुत्रोपमे चारुवाक्यरूपादिशालिनि ॥ ३९ ॥ भार्या चान्यस्य विहिता येन विद्धः स दानवः ॥ एतस्मात्कारणान्मोहं महांतमियमागता ॥ ४० ॥ यावज्जीवं च तन्वंगी दुःखमेवोपभोक्ष्यति ॥ त्वय्यस्या हृदयं रागि भर्त्ता चान्यो भविष्यति ॥ ४१ ॥ यावज्जिवमतो दुःखं सुरभ्या नान्यथा वचः ॥ अहं त्वस्याः प्रभो प्रीत्या दुःखितात्र समागता ॥ ४२ ॥ यतो विशेषो नैवास्ति स्वसखीनिजदेहयोः ॥ यद्येषाभिमतं वीर पतिमाप्नोति शोभना ॥४३॥ ततस्त्वहं तपः कुर्यां निर्व्यलीकेन चेतसा ॥ त्वं तु को वा किमर्थं वा संप्राप्तोऽत्र महामते ॥ ४४ ॥ देवो दैत्यो नु गंधर्वः पन्नगः किन्नरोऽपि वा ॥ न ह्यत्र मानुषगतिर्न चेदृङ्मानुषी गतिः ॥ ४५ ॥

पुरुष इसके भर्त्ता होंगे ॥ ४१ ॥ कारण कि, सुरभिका वचन कभी मिथ्या नहीं होगा इसको यावज्जीवन दुःखही भोगना पडेगा. हे प्रभो ! स्नेहके वश हो दुःखित चित्तसे मैं इसके निकट आई हूं ॥ ४२ ॥ क्योंकि सखीके देहमें और अपनी देहमें कोई विशेषता नहीं है अर्थात् मैं अपने देहको इसके देहसे पृथक् नहीं समझती हूं, यह शोभना यदि अपनी इच्छानुसार वीर पतिको प्राप्त हो ॥ ४३ ॥ तो मैं स्वस्थ चित्तसे तपस्या करूं. हे महामते ! आप कौन हैं ? और किसलिये यहां आये हैं ? ॥ ४४ ॥ क्या आप देवता हैं, अथवा दैत्य, गंधर्व, पन्नग वा उरग हैं ? क्योंकि मनुष्य यहां नहीं आ सकता और मनुष्यका देह भी ऐसा नहीं होता ॥ ४५ ॥

अतएव मैंने जिस प्रकार आपसे अपना सत्य वृत्तान्त कहा है, इसी प्रकार आपभी मुझसे अपना सब सत्य सत्य वृत्तान्त कहिये. कुवलयाश्वने कहा—हे धर्म जाननेवाली ! " तुम कौन हो और किस कारण इस स्थानमें आये हो ?" कहकर जो तुमने पूँछा है ॥ ४६ ॥ मैं वह सब क्रमसे कहताहूं, हे निर्मलबुद्धिमती ! सुनो, मैं राजा शत्रुजितका पुत्र हूं, हे शुभे ! मैं पिताके द्वारा प्रेरित होकर ॥ ४७ ॥ मुनियोंकी रक्षा करनेके लिये गालवमुनिके आश्रममें आयाथा और वहां मैं धर्मचारी मुनियोंकी रक्षा करता था ॥ ४८ ॥ उसी समयमें कोई सूकरमूर्त्ति धारण करके उनके कार्यमें विघ्न करनेको आया । जब मैंने उसको अर्द्धचन्द्र बाणसे विद्ध किया ॥ ४९ ॥ तब वह अत्यन्त वेगसे दौडने लगा

तत्त्वमाख्याहि कोऽसि त्वं यथैवावितथं मया ॥ कुवलयाश्व उवाच ॥ यन्मां पृच्छसि धर्मज्ञे कस्त्वं किं वा समागतः ॥ ४६ ॥ तच्छृणुष्वामलप्रज्ञे कथयाम्यादितस्तव ॥ राज्ञः शत्रुजितः पुत्रः पित्रा संप्रेषितः शुभे ॥ ४७ ॥ मुनिरक्षणमुद्दिश्य गालवाश्रममागतः ॥ कुर्वतो मम रक्षां च मुनीनां धर्मचारिणाम् ॥ ४८ ॥ विघ्नार्थमागतः कोऽपि शौकरं वपुरास्थितः ॥ मया स विद्धो बाणेन चंद्रार्द्धाकारवर्चसा ॥ ४९ ॥ अपक्रांतोऽतिवेगेन तमस्म्यनुगतो हयी ॥ पपात सहसा गर्त्ते सक्रोघोऽश्वश्च मामकः ॥ ५० ॥ सोऽहमश्वं समारूढस्तमस्येकः परिभ्रमन् ॥ प्रकाशमासादितवान्दृष्टा च भवती मया ॥ ५१ ॥ पृष्टा च न च मे किंचिद्भवत्या दत्तमुत्तरम् ॥ त्वां चैवानुप्रविष्टोऽहमिमं प्रासादमुत्तमम् ॥ ५२ ॥ इत्येतत्कथितं सत्यं न देवोऽहं न दानवः ॥ न पन्नगो न गंधर्वः किन्नरो वा शुचिस्मिते ॥ ५३ ॥ समस्ताः पूज्यपक्षा वै देवाद्या मम कुंडले ॥ मनुष्योऽस्मि विशंका ते न कर्त्तव्यात्र कर्हिचित् ॥ ५४ ॥

और मैं भी घोडेपर चढाहुआ उसके पीछे पीछे दौडा । अनन्तर उसके एक गढेमें गिरनेपर मैं भी घोडेके सहित उसमें गिरा । फिर मैं घोडेपर चढाहुआ अकेला भ्रमण करते करते जब प्रकाश स्थानमें आनकर उपस्थित हुआ, तब मैंने तुम्हें देखा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ तुमसे पूछनेपर जब तुमने कुछ उत्तर नहीं दिया तब मैं तुम्हारा अनुसरण करके इस सुन्दर महलमें उपस्थित हुआ ॥ ५२ ॥ यह मैंने तुमसे सब सत्यही कहा है हे शुचिस्मिते ! देवता, दानव, पन्नग, गंधर्व वा किन्नर, मैं इनमें कोई नहीं हूं ॥ ५३ ॥ मैं मनुष्य हूं, हे कुण्डले ! देवता इत्यादि सबही मेरे पूज्य हैं, मेरे मनुष्य होनेमें तुम किसी प्रकारकी शंका मत करो ॥ ५४ ॥

पुत्रोंने कहा–हे पिता ! तब वह भामिनी कन्या मदालसा अत्यन्त आह्लादित होकर लज्जासे मौन हो केवल सखीका सुन्दर वदन देखने लगी, कुछ कहा नहीं ॥५५॥ तब सखीने अत्यन्त प्रसन्न चित्त होकर मदालसासे कहा–हे सखि ! सुरभिका वचन करनेमें तत्पर इन्होंने यथार्थ ही कहा है, फिर राजपुत्रसे कहा ॥ ५६ ॥ कुण्डला बोली–हे वीर ! आपने जो जो कहा यह सब सत्य और निःसन्देह है, नहीं तो आपको देखकर इसका हृदय आपमें इतनी स्थिरताको प्राप्त क्यों होता ? ॥५७॥ क्योंकि अधिक कान्ति चन्द्रमाकोही प्राप्त होती है, प्रभा सूर्यकोही प्राप्त होती है, ऐश्वर्य धन्य पुरुषको ही प्राप्त होता है और धृति धीर पुरुषको और क्षान्ति उत्तमकोही प्राप्त होती है ॥५८॥ अत एव आपने जो इस पापी दानवाधमको विद्ध किया है, इस विषयमें संशय

पुत्रावूचतुः ॥ ततः प्रहृष्टा सा कन्या सखीवदनमुत्तमम् ॥ लज्जाजडं वीक्षमाणा किंचिन्नोवाच भामिनी ॥५५॥ तत्सखी पुनरप्येनां प्रहृष्टा प्रत्युवाच ह ॥ यथावत्कथितं तेन सुरभ्या वचनानुगम् ॥ ५६ ॥ कुंडलोवाच ॥ वीर सत्यमसंदिग्धं भवताभिहितं वचः ॥ नान्यत्र हृदयं ह्यस्य दृष्ट्वा स्थैर्यं प्रयास्यति ॥५७॥ चंद्रमेवाधिका कांतिः समुपैति रविं प्रभा ॥ भूतिर्धन्यं धृतिर्धीरं क्षांतिरभ्योति चोत्तमम् ॥५८॥ त्वयैव विद्धो संदिग्धं स पापो दानवाधमः ॥ सुरभिः सा गवां माता कथं मिथ्या वदिष्यति ॥ ५९ ॥ तद्धन्येयं सभाग्या च त्वत्संबंधमवेत्य वै ॥ कुरुष्व वीर यत्कार्यं विधिनैव समाहितम् ॥ ६० ॥ पुत्रावूचतुः ॥ परवानहमित्याह राजपुत्रः सदा पितुः ॥ सा च तं चिंतयामास तुंबुरुं तत्कुले गुरुम् ॥ ६१ ॥ स चापि तत्क्षणात्प्राप्तो निगृहीतसमित्कुशः ॥ मदालसायाः संप्रीत्या कुंडलागौरवेण च ॥ ६२ ॥

नहीं है, गोमाता सुरभि कभी मिथ्या नहीं कहेगी ॥ ५९ ॥ अत एव आपके संग संबंध लाभ करके यह सखी धन्य और भाग्यवती हुई, सुतरां हे वीर ! विधिके अनुसार जो कर्त्तव्य है, आप उसका अनुष्ठान कीजिये ॥ ६० ॥ नागपुत्रोंने कहा हे पितः ! राजपुत्र ! बोले मैं पराधीन हूं मैं उन पिताकी आज्ञाके विना किस प्रकार इस बालासे विवाह करसक्ताहूं ? कुण्डला बोली आप ऐसा न कहैं यह देवकन्या है इससे विवाह कीजिये तब राजपुत्रके तथास्तु कहनेपर उनके संग विवाहमें संगत हो उस कन्या मदालसाने अपने कुलगुरु तुम्बुरुको मनमें स्मरण किया ॥ ६१ ॥ चिन्ता करतेही वह मंत्रवित् तुम्बुरुभी उसी समय समिध और कुश ग्रहण करके वहां उपस्थित हुए, फिर मदालसाकी प्रीति और कुण्डलाके गौरवसहित आये ॥ ६२ ॥

और घृतकी आहुति देकर अग्निको प्रज्वलित किया मंगलके साज सजाये वैवाहिक विधानानुसार मदालसाको मिलित कराय वहांसे अपने स्थानको गये ॥ ६३ ॥ अर्थात् वह बुद्धिमान् अपने आश्रममें तप करनेके निमित्त चलेगये तब सखी कुण्डलाने मदालसासे कहा हे वरानने ! मैं अब कृतार्थ हुई ॥ ६४ ॥ रूपशालिनी तुमको इनके संग मिलित देखकर मैं प्रसन्न हुई अब मैं निर्विकल्प मनसे तप करूंगी ॥ ६५ ॥ अब जिससे फिर मुझको इस प्रकार न होना पडे वैसा करनेको तीर्थके जलसे स्नान कर पापरहित हो जाऊंगी फिर वह राजपुत्रसे नम्रताद्वारा कहने लगी ॥ ६६ ॥ अभिलषित स्थानमें जानेके लिये अपनी सखीके स्नेहसे व्याकुल हो बोली। कुण्डला बोली–हे अपरिमितबुद्धिशालिन् ! प्राज्ञ पुरुषभी आपके समान पुरुषको उपदेश देनेमें समर्थ

प्रज्वाल्य पावकं हुत्वा मंत्रवित्कृतमंगलाम् ॥ वैवाहिके विधौ कन्यां प्रतिपाद्य यथागतम् ॥६३॥ जगाम तपसे धीमान्स्वमाश्रमपदं ततः ॥ सा चाह तां सखी बालां कृतार्थास्मि वरानने ॥ ६४ ॥ संयुक्काममुना दृष्ट्वा त्वामहं रूपशालिनीम् ॥ तपस्तप्स्येऽहमतुलं निर्व्यलीकेन चेतसा ॥ ६५ ॥ तीर्थांबुधौतपापा च भवित्री नेदृशी यथा ॥ तं चाह राजपुत्रं सा प्रश्रयोपनतं वचः ॥ ६६ ॥ गंतुकामा निजसखी स्नेहविक्लवभाषिणी ॥ कुण्डलोवाच ॥ पुंभिरप्यमितप्रज्ञ नोपदेशो भवद्विधे ॥ ६७ ॥ दातव्यः किमुत स्त्रीभिरतो नोपादिशामि ते ॥ किं त्वस्यास्तनुमध्यायाः स्नेहाकृष्टेन चेतसा ॥ ६८ ॥ त्वया विश्रंभिता चास्मि स्मारयाम्यारिसूदन ॥ भर्त्तव्या रक्षितव्या च भार्या हि पतिना सदा ॥ ६९ ॥ धर्मार्थकामसंसिद्ध्यै भार्या भर्तुः सहायिनी ॥ या च भार्या च भर्ता च परस्परमनुव्रतौ ॥ ७० ॥

नहीं होते ॥ ६७ ॥ मैं स्त्री हूं मेरी तो बात ही क्या है ? अतएव आपको उपदेश नहीं देती किन्तु इस सखीके स्नेहसे मेरा मन अत्यन्त खिंचगया है ॥ ६८ ॥ और आपके द्वारा विश्वासित होनेके कारण हे अरिसूदन ! आपको किंचित् स्मरण कराती हूं कि, पतिको भार्याकी सदा रक्षा और पालना करनी चाहिये ॥ ६९ ॥ भार्या भर्त्ताकी सहायिनी होने पर सम्यक् प्रकार धर्म अर्थ और कामकी सिद्धिका निमित्त होती है भार्या और भर्ता दोनोंही जब परस्परमें वशीभूत होते हैं ॥ ७० ॥

तभी धर्म अर्थ और काम इन तीनोंकी संगति होती है धर्मादि त्रिवर्ग भार्यामें समाहित होनेके कारण पुरुष जिस प्रकार भार्याके विना कभी धर्म अर्थ ॥७१॥ वा काम लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता इसी प्रकार भार्या भी स्वामीके विना धर्मादिसाधनमें ॥ ७२ ॥ समर्थ नहीं होती क्योंकि धर्म अर्थ और काम दोनोंको सम्यक् प्रकारसे आश्रय करके स्थित है, देखो हे राजनन्दन! देवता पितृ भृत्य और अतिथियोंका पूजन ॥७३॥ न होनेसे यह धर्माचरण करनेमें समर्थ नहीं होता पुरुषके अनायास लब्ध अर्थ भी अपने घर लानेपर ॥ ७४ ॥ स्त्रीके न होनेसे वा कुभार्याके संसर्गसे वह सम्पूर्णही क्षयको प्राप्त होता है भार्याके न होनेमें जो काम नहीं रहता, यह तो प्रत्यक्षही प्रतीत होता है ॥७५॥ अधिक क्या स्त्री और पुरुष दोनोंही यदि समान धर्म

तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि संगतम् ॥ कथं भार्यामृते धर्ममर्थं वा पुरुषः प्रभो ॥ ७१ ॥ प्राप्नोति काममर्थं वा तस्या त्रितयमाहितम् ॥ तथैव भर्त्तारमृते भार्या धर्मादिसाधने ॥ ७२ ॥ न समर्था त्रिवर्गोऽयं दांपत्यं समुपाश्रितः ॥ देवतापितृभृत्यानामतिथीनां च पूजनम् ॥ ७३ ॥ न पुंभिः शक्यते कर्त्तुमृते भार्या नृपात्मज ॥ प्राप्तोऽपि चार्थो मनुजैरानीतोऽपि निजं गृहम् ॥ ७४ ॥ क्षयमेति विना भार्यां कुभार्यासंग्रहेऽपि वा ॥ कामस्तु तस्य नैवास्ति प्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते ॥ ७५ ॥ दंपत्योः सहधर्मेण त्रयीधर्ममवाप्नुयात् ॥ पुत्राणां योनिरन्या वै नान्यतो भार्यया विना ॥ पितॄन्पुत्रैस्तथैवान्नसाधनैरतिथीनपि ॥ ७६॥ पूजाभिरमरांस्तद्वत्साध्वीं भार्यां नरोऽवति ॥ स्त्रियाश्चापि विना भर्त्रा धर्मकामार्थसंततिः ॥ ७७ ॥ नैव तस्मात्त्रिवर्गोऽयं दांपत्यमधिगच्छति ॥ एतन्मयोक्तं युवयोर्गमिष्यामि यथेप्सितम् ॥ ७८ ॥ वर्ध त्वमनया सार्द्धं धनपुत्रसुखायुषा ॥ पुत्रावूचतुः ॥ इत्युक्त्वा संपरिष्वज्य स्वसखीं तं नमस्य च ॥ ७९ ॥

अवलम्बन करैं तो त्रयीधर्मलाभ करनेमें समर्थ होते हैं मनुष्यगण यदि साध्वी पत्नीको प्राप्त हों तो पुत्रोत्पादनसे पितरोंको अन्नादि साधनसे अतिथिको ॥ ७६ ॥ और पूजादिद्वारा देवताओंको प्रसन्न करनेमें समर्थ होते हैं, स्वामीके विना स्त्रीके भी धर्म अर्थ और कामका सम्यक् प्रकार विस्तार नहीं होता ॥७७॥ क्योंकि यह त्रिवर्ग दोनोंके भावमेंही आश्रित है जो हो, आप दोनोंके निकट मेरा केवल यही निवेदन है कि, अब अनुमति कीजिये मैं यथाभिलषित स्थानमें चली जाऊं ॥ ७८ ॥ आशीर्वाद करतीहूं कि, आप इसके संग मिलित होकर धन पुत्र सुख और आयुद्वारा वर्द्धित हों। नागराजके पुत्रोंने कहा-कुण्डला इस प्रकार कह अपनी सखीको आलिंगन और राजपुत्रको नमस्कार करके ॥ ७९ ॥

दिव्यगतिसे अपने अभिलषित स्थानको चलीगई उस शत्रुजित्के पुत्र ऋतुध्वजनेभी तिस समय मदालसाको उस घोडेपर चढाय ॥ ८० ॥ पातालसे निकलनेकी जैसेही इच्छा करी वैसेही दानवोंने जान लिया " पातालकेतु स्वर्गसे जिस कन्यारत्नको लायाथा उसकोही कोई हरण करता है " यह कहकर दानव चीत्कार करने लगे. तदतन्तर दानवसैन्यने पातालकेतुके संग मिलित होकर परिघ, खड्ग, गदा, शूल और बाण इत्यादि ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ समस्त दानवोंकी सेनाने पातालकेतुके साथ आयुध ग्रहण किये और वह ठहरो ठहरो कहते कहते ॥ ८३ ॥ राजनन्दनके ऊपर शर और शूल इत्यादि

जगाम दिव्यया गत्या यथाभिप्रेतमात्मनः ॥ सोऽपि शत्रुजितः पुत्रस्तामारोप्य तुरंगमम् ॥ ८० ॥ निर्गंतुकामः पातालाद्विज्ञातो दनुसंभवैः ॥ ततस्तैः सहसोत्क्रुष्टं ह्रियते ह्रियते त्विति ॥ ८१ ॥ कन्यारत्नं यदानीतं दिवः पातालकेतुना ॥ ततः परिघनिस्त्रिंशगदाशूलशरायुधम् ॥ ८२ ॥ दानवानां बलं प्राप्तं सह पातालकेतुना ॥ तिष्ठतिष्ठेति जल्पन्तस्ते तदा दानवोत्तमाः ॥ ८३॥ शरवर्षैस्तथा शूलैर्ववर्षुर्नृपनंदनम् ॥ स तु शत्रुजितः पुत्रस्ततस्तान्प्रतिवीर्यवान् ॥ ८४ ॥ चिच्छेद शरजालेन प्रहसन्निव लीलया ॥ क्षणेन पातालतलमासिशक्त्यृष्टिसायकैः ॥ ८५ ॥ छिन्नैः संछन्नमत्यर्थमृतध्वजशरोत्करैः ॥ ततोऽस्त्रं त्वाष्ट्रमादाय चिक्षेप प्रति दानवान् ॥ ८६ ॥ तेन ते दानवाः सर्वे सह पातालकेतुना ॥ ज्वालामालातितीव्रेण स्फुटदस्थिचयास्तदा ॥ ८७ ॥ निर्दग्धाः कापिलं तेजः समासाद्येव सागराः ॥ ततः स राजपुत्रोऽश्वी निहत्यासुरसत्तमान् ॥ ८८ ॥

अस्त्रोंकी वर्षा करने लगे. तब अत्यन्त बलशाली शत्रुजित्के पुत्रने ॥ ८४ ॥ हँसते हँसते लीलापूर्वकही उनके समस्त अस्त्र अपने बाणोंसे काट डाले तब ऋतध्वजके बाणोंसे छिन्न भिन्न असि, शक्ति, ऋष्टि और बाणोंसे क्षणकालमेंही पातालतल ॥ ८५ ॥ परिपूर्ण होगया और ऋतध्वजने बडे बाण छोडे और छिन्न भिन्न करदिये फिर राजपुत्रने त्वाष्ट्र अस्त्र ग्रहण करके दानवोंपर चलाया ॥ ८६ ॥ तब उस ज्वालामालायुक्त भयंकर अस्त्रने पातालकेतुके सहित दानवोंकी अस्थियोंको तोड डाला ॥ ८७ ॥ और वह क्षणकालमेंही कपिलमुनिके तेजसे सगरके पुत्रोंकी समान भस्म होगये. तदन्तर वह राज-

पुत्र असुरकुल निहत करके उस स्त्रीरत्नके सहित घोडेपर चढकर पिताके नगरमें आये और पिताको प्रणाम करके सब वृत्तान्त कहा ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ पातालगमन, कुण्डलाका दर्शन, मदालसाप्राप्ति, दानवोंके संग युद्ध ॥ ९० ॥ अस्त्रद्वारा उनका निधन और पुनरागमन इत्यादि समस्त वृत्तान्त पितासे निवेदन किया. तब वह चारुचेता पुत्रका चरित्र इस प्रकार सुनकर ॥ ९१ ॥ अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुत्रको आलिंगन करके कहने लगे हे वत्स ! तुझ सत्पुत्रने मुझको तारदिया ॥ ९२॥ जिसके द्वारा धर्मशील मुनिगण भयसे रक्षित हुए हैं मैं भी उसी महात्मा सत्पात्रद्वारा तारित हुवा. हे वत्स ! मेरे पूर्वपुरुषगण जिसके द्वारा ख्यात हुएथे और मैंने जिसको विस्तारित किया था ॥ ९३ ॥ हे वीर ! पराक्रमशाली तुम्हारे द्वारा वह यश और भी बहुत हुआ

स्त्रीरत्नेन समं तेन समागच्छत्पितुः पुरम् ॥ प्रणिपत्य च तत्सर्वं स तु पित्रे न्यवेदयत् ॥ ८९ ॥ पातालगमनं चैव कुंडलायाश्च दर्शनम् ॥ तद्वन्मदालसाप्राप्तिं दानवैश्चापि संगरम् ॥९०॥ वधश्च तेषामस्त्रेण पुनरागमनं तथा ॥ इति श्रुत्वा पिता तस्य चरितं चारुचेतसः ॥९१॥ प्रीतिमानभवच्चैनं परिष्वज्याह चात्मजम् ॥ सत्पुत्रेण त्वया पुत्र तारितोऽहं महात्मना ॥९२॥ भयेभ्यो मुनयस्त्राता येन सद्धर्मचारिणा ॥ मत्पूर्वैः ख्यातिमानीतं मया विस्तारितं पुनः ॥ ९३ ॥ पराक्रमवता वीर त्वया तद्बहुलीकृतम् ॥ यदुपात्तं यशः पित्रा धनं वीर्यमथापि वा ॥९४॥ तन्न हापयते यस्तु स नरो मध्यमः स्मृतः ॥ तद्वीर्यादाधिकं यस्तु पुनरन्यत्स्वशक्तितः ॥९५॥ निष्पादयति तं प्राज्ञा वदंति नरमुत्तमम् ॥ यः पित्रा समुपात्तानि धनवीर्ययशांसि वै ॥९६॥ न्यूनतां नयति प्राज्ञास्तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ तन्मया ब्राह्मणत्राणं कृतमासीद्यथा त्वया ॥ ९७ ॥

देखो यश बल वा धन पिताके द्वारा जो उपार्जित होता है ॥ ९४ ॥ जो उसको नष्ट नहीं करता है अर्थात् रक्षित करता है वह पुरुष मध्यम है और जो व्यक्ति उसकी अपेक्षा आधिक वीर्यशाली होकर अपनी शक्तिसे उसको अधिक करता है ॥ ९५ ॥ पंडितगण उसको उत्तम पुरुष कहकर कीर्त्तन करते हैं और जो व्यक्ति पितृउपार्जित यश बल वा धनको ॥ ९६ ॥ नष्ट करता है उस पुरुषको अधम पुरुष कहकर पंडितगण कीर्त्तन करते हैं. जो हो हे वत्स ! मैंने पूर्वमें तुम्हारी समान केवलमात्र ब्राह्मणोंकी रक्षा की थी ॥ ९७ ॥

तुमने पातालगमन असुरविनाशन और ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेसे मेरी अपेक्षा अधिक कार्य किया है अतएव तुम उत्तम पुरुष हो ॥ ९८ ॥ हे बालक ! तुम धन्य हो और ऐसे गुणाधिक तुम सरीखे पुत्रको लाभ करके मैं पुण्यवानोंमें श्लाघनीय हुआ हूं ॥ ९९ ॥ हे वत्स ! जो पुरुष पुत्र द्वारा प्रज्ञा दान वा पराक्रममें अधिक नहीं होता मेरा विचार है कि, वह पुरुष पुत्रजनित प्रीतिलाभ नहीं करसकता ॥ १०० ॥ जो पुरुष पिताद्वारा लोकमें विख्यात होता है उसके जन्मको धिक्कार है किन्तु जो पुरुष पुत्रद्वारा ख्यातिलाभ करता है उसी सुजन्माका जन्म सार्थक है ॥ १ ॥ जो मनुष्य निज नामसे विख्यात होता है वही धन्य है और जो पुरुष मातृपक्ष द्वारा विख्यात होताहै वह नराधम है ॥ २ ॥ जो हो हे वत्स ! तुम धन बल और सुखद्वारा वर्द्धित

पातालगमनं यच्च यच्चासुरविनाशनम् ॥ एतदभ्यधिकं वत्स तेन त्वं पुरुषोत्तमः ॥ ९८ ॥ तद्धन्योऽस्म्यथवा न त्वमहमेव गुणाधिकः ॥ त्वां पुत्रमीदृशं प्राप्य श्लाघ्यं पुण्यवतामपि ॥ ९९ ॥ न सत्पुत्रकृतां प्रीतिमन्यः प्राप्नोति मानवः ॥ पुत्रेण नातिशयितो यः प्रज्ञादानविक्रमैः ॥ १०० ॥ धिक्तस्य जन्म यः पित्रा लोके विज्ञायते नरः ॥ यत्पुत्राख्यातिमभ्योति तस्य जन्म सुजन्मनः ॥ १ ॥ आत्मज्ञानी यतो धन्यो मध्यः पितृपितामहैः ॥ मातृपक्षेण मात्रा च ख्यातिं याति नराधमः ॥ २ ॥ तत्पुत्रधनवीर्यैस्त्वं विवर्धस्व सुखेन च ॥ गंधर्वतनया चेयं मा वियुज्यतु वै त्वया ॥३॥ इति पित्रा बहुविधं प्रियमुक्त्वा पुनः पुनः ॥ परिष्वज्य स्वमावासं सभार्यः स विसर्जितः ॥ ४ ॥ स तया भार्यया सार्धं रेमे तत्र पितुः पुरे ॥ अन्येषु च तथोद्यानवनपर्वतसानुषु ॥ ५ ॥ श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ प्रणिपत्य च सा शुभा ॥ प्रातः प्रातस्ततस्तेन प्रणिपत्य सुमध्यमा ॥ १०६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे कुवलयाश्वीये एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

होओ और इस गंधर्वतनयाका तुमसे कभी वियोग न हो ॥ ३ ॥ राजपुत्र पिताके द्वारा इस प्रकार सुनकर और आलिंगित होकर भार्याके सहित अपने वासस्थानको चले गये ॥ ४ ॥ और उस पत्नी मदालसाके संग मिलित होकर पिताके भवन और अन्यान्य उद्यान वन और पर्वतसानु सबमें क्रीडा करने लगे ॥ ५ ॥ और वह शुभमयी सुमध्यमा मदालसा भी प्रतिदिन प्रातःकालमें सास और श्वशुरके दोनों चरणोंकी वन्दना करके उनके संग प्रसन्न रहने लगी ॥ १०६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

नागपुत्र बोले कि, अनन्तर कुछ काल बीतनेपर राजा शत्रुजित्‌ने पुत्र ऋतध्वजसे फिर कहा हे वत्स ! तुम ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेके लिये शीघ्र जाओ और पृथ्वीमें विचरण करो ॥ १ ॥ प्रतिदिन प्रातःकालमें इस अश्वपर चढकर ब्राह्मणश्रेष्ठगणोंकी बाधारहित रक्षा करो ॥ २ ॥ पापात्मा और दुर्वृत्त सैकडों दानव हैं वह दानव जिससे मुनियोंको बाधा न करसकें तुम वैसाही आचरण करो ॥ ३ ॥ राजनन्दन इस प्रकार पिताकी आज्ञा पाय वही करने लगे. वह प्रतिदिन पूर्वाह्न समयमें पृथ्वीपर्यटन करके पिताके चरणयुगलकी वन्दना करते और शेष समयमें सुमध्यमाके संग क्रीडा करते ॥ ४ ॥ ५ ॥ उन्होंने इस प्रकारका विचरण करते करते एक समय देखा कि, पातालकेतु दानवका अनुज (भाई) तालकेतु यमुनातटपे आश्रम करके अवस्थान करता

पुत्रावूचतुः ॥ ततः काले बहुतिथे गते राजा पुनः सुतम् ॥ प्राह गच्छाशु विप्राणां त्राणाय चर मेदिनीम् ॥ १ ॥ अश्वमेतं समारुह्य प्रातः प्रातर्दिने दिने ॥ आबाधा द्विजमुख्यानामन्वेष्टव्या सदैव हि ॥२॥ दुर्वृत्ताः संति शतशो दानवाः पापबुद्धयः ॥ तेभ्यो न स्याद्यथा बाधा मुनीनां त्वं तथा कुरु ॥ ३ ॥ स तथोक्तस्तदा पित्रा तथा चक्रे नृपात्मजः ॥ परिक्रम्य महीं कृत्स्नां ववंदे चरणौ पितुः ॥ ४ ॥ अहन्यहानि संप्राप्ते पूर्वाह्णे नृपनंदनः ॥ ततश्च शेषं दिवसं तया रेमे सुमध्यया ॥ ५ ॥ एकदा तु चरन्सोऽथ ददर्श यमुनातटे ॥ पातालकेतोरनुजं तालकेतुं कृताश्रमम् ॥ ६ ॥ मायावी दानवः सोऽथ मुनिरूपं समाश्रितः ॥ स प्राह राजपुत्रं तं पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ७ ॥ राजपुत्र ब्रवीमि त्वां तत्कुरुष्व यदीच्छसि ॥ न च ते प्रार्थनाभंगः कार्यः सत्यप्रतिश्रव ॥ ८ ॥ यक्ष्ये यज्ञेन धर्माय कर्त्तव्याश्च मयेष्टयः ॥ चिंतये तत्र कर्त्तव्या नास्ति मे दक्षिणा यतः ॥९॥ ततः प्रयच्छ मे वीर दक्षिणार्थं स्वभूषणम् ॥ यदेतत्कंठलग्नं ते रक्ष चेमं ममाश्रमम् १०॥

है ॥ ६ ॥ इस मायावी दानवने मुनिरूप अवलम्बन किया था वह पहला वैर स्मरण करके राजपुत्रसे कहने लगा ॥ ७ ॥ कि, हे राजपुत्र ! जो कहता हूं यदि इच्छा हो तो वह करो । हे सत्यप्रतिज्ञ ! आपने कभी किसीकी प्रार्थना भंग नहीं करी है ॥ ८ ॥ हे राजतनय ! मैं यज्ञ करूंगा और अभिलषित इष्टि (यज्ञाङ्गविशेष) तथा अग्निचयन करूंगा, किन्तु मुझमें दक्षिणा देनेकी सामर्थ्य नहीं है ॥ ९ ॥ अतएव हे वीर ! सुवर्णप्रदानके लिये अपना अंगभूषण कंठका यह अलंकार (गहना) मुझे दो और मेरे आश्रमकी रक्षा करो ॥ १० ॥

प्रजाके पुष्टिकारक वैदिक वारुणमंत्रसे यादःपति वरुणदेवका जलमें स्तव करके जबतक मैं न लौटूं आप तबतक मेरे आश्रमकी रक्षा कीजिये ॥ ११ ॥ मैं शीघ्रही आता हूं. उन कहते हुए मुनिको प्रणाम करके उन्होंने अपने कंठका भूषण प्रदान किया ॥ १२ ॥ और कहा, हे महाभाग ! विश्वस्त हृदयसे जाइये मैं जबतक इसी आश्रमके समीप रहूंगा ॥ १३ ॥ जबतक आप लौटकर नहीं आवेंगे, तबतक मैं आपकी आज्ञानुसार यहां रहूंगा, मेरे रहनेसे कोई आपको बाधा नहीं करेगा ॥ १४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप निःशंक होकर गमन करके अभिलषित विषय सम्पादन कीजिये. वह मायामुनि तालकेतु

यावदंतर्जले देवं वरुणं यादसां पतिम् ॥ वैदिकैर्वारुणैर्मंत्रैः प्रजानां पुष्टिहेतुकैः ॥ ११ ॥ अभिष्टूय त्वरायुक्तः समभ्येमीति वादिनम् ॥ तं प्रणम्य ततः प्रादात्स तस्मै कंठभूषणम् ॥ १२ ॥ प्राह चैनं भवान्यातु निर्व्यलीकेन चेतसा ॥ स्थास्यामि तावदत्रैव तवाश्रमसमीपतः ॥१३॥ तवादेशान्महाभाग यावदागमनं तव ॥ न तेऽत्र कश्चिदाबाधां करिष्यति मयि स्थिते ॥१४॥ विश्रब्धस्त्वं मुनिश्रेष्ठ कुरुष्व च मनोगतम् ॥ एतदुक्तस्ततस्तेन स ममज्ज नदीजले ॥१५॥ अरक्षत्सोऽपि तस्यैव मायाविहितमाश्रमम् ॥ गत्वा जलाशयात्तस्मात्तालकेतुश्च तत्पुरम् ॥ १६ ॥ मदालसायाः प्रत्यक्षमन्येषां चैतदुक्तवान् ॥ वीरः कुवलयाश्वोऽसौ ममाश्रमसमीपतः ॥ १७ ॥ केनापि दुष्टदैत्येन कुर्वन्रक्षां तपस्विनाम् ॥ युध्यमानो यथाशक्ति निघ्नन्ब्रह्मद्विषो युधि ॥ १८ ॥ मायामाश्रित्य पापेन भिन्नः शूलेन वक्षसि ॥ म्रियमाणेन तेनेदं दत्तं मे कंठभूषणम् ॥ १९ ॥

राजनन्दनसे इस प्रकार सुनकर नदीके जलमें निमग्न हुआ ॥ १५ ॥ राजनन्दन उसके मायारचित आश्रमकी रक्षा करनेलगे अनन्तर तालकेतु उस जलाशयसे निकल राजा शत्रुजित्के नगरमें आय ॥ १६ ॥ मदालसा और अन्यान्यलोकोंके सामने यह बात कहनेलगा कि, वीर कुवलयाश्व मेरे आश्रमके समीप ॥१७॥ तपस्वियोंकी रक्षा करतेथे उन्होंने किसी दुष्ट दानवके सहित यथाशक्ति युद्ध किया और ब्रह्मद्वेष्टा असुरपर प्रहार किया ॥ १८ ॥ परन्तु वह उस पापात्मा दानवके मायारूपी शूलसे वक्षःस्थलमें विदारित हुए हैं उन्होंने उसके द्वारा मृतक होते समय मुझको यह कंठभूषण देदिया है ॥ १९ ॥

और वनमें शूद्रतापसोंके द्वारा अग्निसंयोगको प्राप्त हुए हैं और वह नेत्रोंमें आँसू भरे दुःखसे हींसता हुआ ॥ २० ॥ घोडा उस दुरात्मा दानवने ग्रहण कर लिया उस पापात्मा नृशंसके द्वारा यह समस्तही घटना देखी है ॥ २१ ॥ अब जो कर्त्तव्य हो आप वह समस्त उत्तरकालिक विधि सम्पादन कीजिये और यह हृदयाश्वासदायक उनका कंठभूषण ग्रहण कीजिये मैं तपस्वी हूं मेरा सुवर्णसे क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार कहकर तालकेतु कुवलयाश्वका कंठभूषण स्थापन कर जहांसे आया था वहींको चलागया ॥ २२ ॥ २३ ॥ तब वहाँके मनुष्यगण शोकसे पीडित और मूर्च्छित होकर गिर पडे फिर चेतना लाभ करके राजा राजमहिषी ॥ २४ ॥ और अन्यान्य सब राजस्त्रियें अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगीं मदालसाने उनका कंठभूषण देख ॥ २५ ॥

प्रापितश्चाग्निसंयोगं तरुवेश्मसु तापसैः ॥ कृतार्तहेपाशब्दो वै त्रस्तः साश्रुविलोचनः ॥ २० ॥ नीतः सोऽश्वश्च तेनैव दानवेन दुरात्मना ॥ एतन्मया नृशंसेन दृष्टं दुष्कृतकारिणा ॥ २१ ॥ यदत्रानंतरं कृत्यं कुरुष्वात्तरकालिकम् ॥ हृदयाश्वासनं चैतद्गृह्यतां कण्ठभूषणम् ॥ २२ ॥ नास्माकं हि सुवर्णेन कृत्यमस्ति तपस्विनाम् ॥ इत्युक्त्वोत्सृज्य तद्भूमौ स जगाम यथागतम् ॥ २३ ॥ निपपात जनः सोऽथ शोकार्त्तो मूर्च्छयातुरः ॥ क्षणेन चेतनां प्राप्य सर्वास्ता नृपयोषितः ॥ २४ ॥ राजपत्न्यश्च राजा च विलेपुरतिदुःखिताः ॥ मदालसा तु तद्दृष्ट्वा तदीयं कंठभूषणम् ॥ २५ ॥ तत्याज सुप्रियान्प्राणाञ्श्रुत्वा विनिहतं प्रियम् ॥ ततः पुरे महाक्रंदः पौराणां भवनेष्वभूत् ॥ २६ ॥ यथैव तस्य नृपतेः स्वगृहे समवर्तत ॥ राजा च तां मृतां दृष्ट्वा विना भर्त्रा मदालसाम् ॥ २७ ॥ प्रत्युवाच जनं सर्वं विमृश्य स्वस्थमानसः ॥ न रोदितव्यं पश्यामि भवतामात्मनस्तथा ॥ २८ ॥ सर्वेषामेव संचिंत्य संबंधानामनित्यताम् ॥ किं नु शोचामि तनयं किं नु शोचाम्यहं स्नुषाम् ॥ २९ ॥

और स्वामीकी मरणवार्ता सुन अत्यन्त कातर होकर शीघ्रही प्रिय प्राण परित्याग किया तब राजाके भवनमें जिस प्रकार क्रन्दनध्वनि हुई उसी प्रकार पुरवासी प्रजाके प्रत्येक भवनमें रुदनका महाशब्द होने लगा अनन्तर राजा शत्रुजित् पुत्रवधू मदालसाको भर्त्ताके वियोगसे प्राणरहित देख ॥ २६ ॥ २७ ॥ विचारसहित मनको सावधान कर समीपवर्त्ती मनुष्योंसे कहने लगे तुमको और हमको रोना नहीं चाहिये ॥ २८ ॥ मैं देखताहूं कि, समस्त प्राणियोंके संबन्धकी अनित्यता है क्या मैं पुत्रका शोच करूं वा पुत्रवधूको शोचूं ॥ २९ ॥

दोनों कृतकृत्य होनेके कारण अशोचनीय हैं क्योंकि जिस मेरे पुत्रने मेरी शुश्रूषा और मेरेही वचनानुसार ब्राह्मणोंकी रक्षामें तत्पर होकर ॥ ३० ॥ जब प्राणत्याग किया है तब उस पुत्रके लिये शोक करना बुद्धिमान्को उचित नहीं है जो देह अवश्यही जायगा मेरे पुत्रने उस देहको ब्राह्मणोंके निमित्त ॥ ३१ ॥ त्याग किया है तब वह शोचनीय नहीं है वरन् कल्याणकारी है और इस सत्कुलोत्पन्न ललनाने जब स्वामीका अनुगमन किया है ॥ ३२ ॥ तब फिर वह भी शोचनीय किस प्रकार होसक्ती है ? क्योंकि स्वामीके अतिरिक्त स्त्रीका अन्य देवता नहीं है यह स्वामीके वियोग होनेपर यदि जीवित रहती तो मेरी बांधवगणोंकी और अन्यान्य दयावान् मनुष्योंकी शोचनीय दशा होती इसने जब स्वामीकी मरणवार्त्ता सुनकर तत्काल प्राणत्याग किया

विमृश्य कृतकृत्यत्वान्मन्ये शोच्यावुभावपि ॥ मच्छुश्रूषुर्मद्वचनाद्द्विजरक्षणतत्परः ॥ ३० ॥ प्राप्तो मेऽद्य सुतो मृत्युं कथं शोच्यः स धीमताम् ॥ अवश्यं याति यद्देहं तद्द्विजानां कृते यदि ॥ ३१ ॥ मम पुत्रेण संत्यक्तं नन्वभ्युदयकारि तत् ॥ इयं च सत्कुलोत्पन्ना भर्त्तैवमनुव्रता ॥ ३२ ॥ कथं तु शोच्या नारीणां भर्तुरन्यन्न दैवतम् ॥ अस्माकं बांधवानां च तथान्येषां दयावताम् ॥ ३३ ॥ शोच्या ह्येषा भवेदेवं यदि भर्त्रा वियोगिनी ॥ या तु भर्तुर्वधं श्रुत्वा तत्क्षणादेव भामिनी ॥३४ ॥ भर्तारमनुयातेयं न शोच्याऽतो विपश्चिताम् ॥ ताः शोच्या या वियोगिन्यः सह भर्त्रा कुलांगनाः ॥ ३५ ॥ कष्टभ्रांत्या न गच्छन्ति कष्टदाः स्युः कुलात्मनोः ॥ भर्तुर्वियोगस्त्वनया नानुभूतः कृतज्ञया ॥ ३६ ॥ दातारं सर्वसौख्यानामिह चामुत्र चोभयोः ॥ लोकयोः का हि भर्त्तारं नारी मन्येत मानुषम् ॥ ३७ ॥

है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ तब यह पंडितगणोंको अशोचनीय है जो रमणी स्वामीके मरनेपर भी जीवन धारण करती हैं वही शोकके योग्य हैं ॥ ३५ ॥ और जो स्वामीके सहित गमन करती हैं वह तो कभी शोचनीय नहीं हैं और जो कष्ट जानकर गमन नहीं करतीं वह अपने कुलको कष्ट देती हैं इसने कृतज्ञा होनेसे भर्त्ताके वियोगका अनुभव नहीं किया ॥ ३६ ॥ इस लोक और परलोक दोनों लोकके समस्त सुखदाता स्वामीको कौन स्त्री मनुष्य समझती है ? ॥ ३७ ॥

हमारा पुत्र वा पुत्रवधू या मैं किंवा उसकी माता हम कोई शोकके उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि ब्राह्मणोंके निमित्त प्राणपरित्यागकारी उस पुत्रके द्वारा हम सबकाही उद्धार हुआ है ॥ ३८ ॥ मेरा महामति पुत्र अर्द्धमुक्त देहका परित्याग करनेके कारण ब्राह्मणसे मुझसे और धर्मसे उऋण हुआ है ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त संग्राममें प्राणत्याग करनेसे माताका सतीत्व वंश निर्मलता और निजशूरता इन सबका कुछभी उसके द्वारा त्याग नहीं हुआ ॥ ४० ॥ कुवलयाश्वकी माता पुत्रकी मरणवार्त्ता स्वामीके सुननेके पीछे सुन स्वामीको देख प्रसन्न चित्तसे उनके समान कहनेलगी ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! मुनिकी रक्षा करते २ संतान निहत हुई है यह सुनकर जिस प्रकार सुखी हुई हूं माता वा बहन किसीके द्वारा मैं इस प्रकार सुखी नहीं

न स शोच्यो न चैवेह नायं तज्जननी न च ॥ त्यजता ब्राह्मणार्थाय प्राणान्सर्वे स्म तारिताः ॥ ३८ ॥ विप्राणां मम धर्मस्य गतः स तु महामतिः ॥ आनृण्यमर्द्धमुक्तस्य त्यागाद्देहस्य मे सुतः ॥३९॥ मातुः सतीत्वं मद्वंशवैमल्यं शौर्यमात्मनः ॥ संग्रामे संत्यजन्प्राणान्सोऽविंदद्द्विजरक्षणात् ॥ ४० ॥ ततः कुवलयाश्वस्य माता भर्तुरनंतरम् ॥ श्रुत्वा पुत्रवधं तादृक्प्राह हृष्टा तु तं पतिम् ॥ ४१ ॥ न मे मात्रा न मे स्वस्रा प्राप्ता प्रीतिर्नृपेदृशी ॥ श्रुत्वा मुनिपरित्राणे हतं पुत्रं यथा मया ॥ ४२ ॥ शोचतां ब्राह्मणानां ये निःश्वसेनातिदुःखिताः ॥ म्रियंते व्याधिना क्लिष्टास्तेषां माता वृथा प्रजा ॥ ४३ ॥ संग्रामे युध्यमाना ये भीता गोद्विजरक्षणे ॥ क्षुण्णाः शस्त्रैर्विपद्यंते त एव भुवि मानवाः ॥ ४४ ॥ अर्थिनां मित्रवर्गस्य विद्विषां च पराङ्मुखः ॥ यो न याति पिता तेन पुत्री माता च वीरसूः ॥४५॥ गर्भक्लेशः स्त्रियो मन्ये साफल्यं भजते तदा ॥ यदारिविजयी वा स्यात्संग्रामे वा हतः सुतः ॥ ४६ ॥

होसकी ॥ ४२ ॥ जो शोचनीय बान्धवगणोंके लिये अति दुःखसे श्वास लेते हुए व्याधिसे क्लिष्ट होकर जीवन विसर्जन करते हैं उनकी माता वृथा संतानजननी है ॥ ४३ ॥ जो गौ वा ब्राह्मणोंकी रक्षामें संग्राममें निर्भय चित्तसे युद्ध कर शस्त्रके द्वारा विपन्न होता है पृथ्वीमें उसकोही मनुष्य कहाजाता है ॥ ४४ ॥ अर्थी मित्र और शत्रुगण जिससे पराङ्मुख नहीं होते उसीके द्वारा पिता पुत्रवान् कहाकर विख्यात होता है ॥ ४५ ॥ पुत्र जब संग्राममें मृतक होता अथवा शत्रुको जीतकर लौटता है तभी स्त्रीके गर्भक्लेशकी सफलता होती है ॥ ४६ ॥

नागपुत्रोंने कहा—अनन्तर राजा शत्रुजित्ने पुत्रवधूका संस्कार किया और नगरके बाहिर स्नान करके पुत्रके उद्देश्यसे उदकांजलि दी ॥४७॥ इधर दानवाधम तालकेतु उसी प्रकार यमुनाजलसे निकल प्रणामपूर्वक मधुरवचनद्वारा राजपुत्रसे कहने लगा ॥ ४८ ॥ हे भूपालपुत्र ! मैं आपके द्वारा कृतार्थ हुआ आपने इस स्थानमें अविचलित भावसे स्थिति कर मेरा वांछित कार्य किया है ॥४९॥ इस कारण महात्मा जलपति वरुणका यज्ञकार्य जो मेरा अभिलषित था वह मेरी मायासे सिद्ध हुआ है. अतएव हे राजपुत्र ! अब आप जाइये ॥५०॥ तब राजपुत्र मुनिको प्रणाम करके गरुड और वायुके समान विक्रम-

पुत्रावूचतुः ॥ ततः स राजा संस्कारं पुत्रपत्नीमिलंभयत् ॥ निर्गम्य च बहिः स्नातो ददौ पुत्राय चोदकम् ॥४७॥ तालकेतुश्च निर्गम्य तथैव यमुनाजलात् ॥ राजपुत्रमुवाचेदं प्रणयान्मधुरं वचः ॥४८॥ गच्छ भूपालपुत्र त्वं कृतार्थोऽहं कृतस्त्वया ॥ वांछितं तु कृतं कार्यं त्वय्यत्राविचले स्थिते ॥ ४९ ॥ वारुणं यज्ञकार्यं च जलेशस्य महात्मनः ॥ तन्मया साधितं सर्वं यन्ममासीदभीप्सितम् ॥ ५० ॥ प्रणिपत्य स तं प्रागाद्राजपुत्रः पुरं पितुः ॥ समारुह्य तमेवाश्वं सुपर्णानिलविक्रमम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे कुवलयाश्वीये विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ पुत्रावूचतुः ॥ स राजपुत्रः संप्राप्य वेगादात्मपुरं ततः ॥ पित्रोर्ववंदिषुः पादौ दिदृक्षुश्च मदालसाम् ॥१॥ स ददर्श तदुद्विग्नमप्रहृष्टमुखं पुरम् ॥ पुनश्च विस्मिताकारं प्रहृष्टवदनं पुनः ॥२॥ अन्यमुत्फुल्लनयनं दिष्ट्या दिष्ट्येति वादिनम् ॥ परिष्वजंतमन्योन्यमतिकौतूहलान्वितम् ॥ ३ ॥ स राजपुत्रो मित्रं तु उत्फुल्लनयनं शुभम् ॥ आलिलिंग तदा काले सौहृदेन परेण च ॥ ४ ॥

शाली उस घोडेपर चढकर पिताके नगरमें चले गये ॥५१॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥२०॥ नागपुत्रोंने कहा—राजपुत्र ऋतध्वजने पिता माताके चरणोंकी वन्दना और मदालसाके देखनेकी इच्छासे शीघ्र नगरमें पहुंच देखा ॥१॥ कि, पुरवासी मनुष्यगण अत्यन्त उद्विग्न हैं और फिर प्रसन्नमुख होकर तिस समय विस्मित और प्रहृष्टवदन हुए ॥२॥ और उत्फुल्लनेत्रोंसे " भाग्य भाग्य कहने लगे ' और परमस्नेह तथा कौतूहलसे परस्परको आलिंगन करने लगे ॥ ३ ॥ और उस राजपुत्रने खिले नेत्रवाले अपने उत्तम मित्रको परमप्रेमसे उस समय हृदयसे लगाया ॥ ४ ॥

तब पुरवासी उनको देखकर धन्य भाग्य २ ऐसा कहनेलगे हे बडे कल्याणवाले! दीर्घजीवी होओ, तुम्हारे समस्त शत्रु विनष्ट हों ॥ ५ ॥ और माता पिता तथा हमारे चित्तको परम आह्लादित करो इस प्रकार कहते २ उनके आगे और पीछे एकत्र हुए ॥ ६ ॥ उन्होंने उनसे परिवेष्टित और तत्कालज आनन्दसे आनन्दित होकर पिताके मन्दिरमें प्रवेश किया तब पिता माता और अन्यान्य बन्धुगण ॥ ७ ॥ उनको आलिंगन करके चिरंजीवी होओ यह कल्याणमय आशीर्वाद देने लगे इसके पीछे राजपुत्रने उनको प्रणाम करके हे तात! यह क्या? इस प्रकार विस्मित चित्तसे पूछा ॥ ८ ॥ तब उन्होंने राजपुत्रसे सब वृत्तान्त ज्यों त्योंका कह दिया. राजपुत्र उस प्राणप्रिय भार्या मदालसाकी मृत्युवार्त्ता सुनकर पिता माताको सन्मुख देख लज्जा और शोकसागरमें निमग्न

ततः पौरास्तदालोक्य दिष्ट्या दिष्ट्येति वादिनः ॥ चिरंजीवोरुकल्याण हतास्ते परिपंथिनः ॥ ५ ॥ पित्रोः प्रह्लादय मनस्तथास्माकमकंटकः ॥ इत्येवंवादिभिः पौरैः पुरः पृष्ठे च संवृतः ॥ ६ ॥ तत्क्षणप्रभवानंदः प्रविवेश पितुर्गृहम् ॥ पिता च तं परिष्वज्य माता चान्ये च बांधवाः ॥ ७ ॥ चिरंजीवोरुकल्याण ददौ चास्मै तदाशिषः ॥ प्रणिपत्य ततः सोऽथ किमेतदिति विस्मितः ॥ ८ ॥ पप्रच्छ पितरं चाथ सोऽस्मै सर्वं तदुक्तवान् ॥ स भार्यां तां मृतां श्रुत्वा हृदयेष्टां मदालसाम् ॥९॥ पितरौ च पुरा दृष्ट्वा लज्जाशोकविमध्यगः ॥ चिंतयामास सा बाला मां श्रुत्वा निधनं गतम् ॥ १० ॥ तत्याज जीवितं साध्वी धिङ्मां निष्ठुरमानसम् ॥ ११ ॥ मत्कृते निधनं प्राप्तां यज्जीवाम्यतिनिर्घृणः ॥ पुनः स चिंतयामास परिसंस्तभ्य मानसम् ॥ १२ ॥ मोहोद्गममपास्यैवं निःश्वस्योच्छ्वस्य चातुरः ॥ मृतेति सा मन्निमित्तं त्यजामि यदि जीवितम् ॥ १३ ॥

हो चिन्ता करने लगे कि हा! जब उस साध्वी बालाने मेरी मरणवार्त्ता सुनकर ॥ ९ ॥ १० ॥ प्राण परित्याग किया है तब इस निष्ठुरमनवाले मुझको धिक्कार है, हा! मैं नृशंस और अनार्य हूं जो उस मृगलोचनाके विना जीता हूं ॥ ११ ॥ मेरे निमित्त जिसने प्राण त्याग किया है, उस मृगलोचनाके विना यदि मैं जीवित रहूं तो निःसन्देह अत्यन्त निर्दयी हूं फिर वह चिन्ताकर मनको रोक ॥ १२ ॥ अत्यन्त कातर हो लम्बे २ श्वास लेते हुए मोहको रोककर फिर चिन्ता करने लगे, उस कामिनीने मेरे लिये प्राण त्याग किया है मैं भी यदि उसके निमित्त प्राण त्याग करूं ॥ १३ ॥

तो मैंने उसका क्या उपकार कियाहै किन्तु यह स्त्रियोंकोही श्लाघनीय है यदि हा प्रिये! हा प्रिये! कहकर वारम्वार रोदन करूं ॥ १४ ॥ वह भी प्रशंसनीय नहीं है क्योंकि हम पुरुष हैं और मैं बलवान् होकरभी शोकाकुल और दीन होकर यदि रक्तहीन हो जाऊं तो ॥ १५ ॥ शत्रु तिरस्कार करेंगे क्योंकि वैरियोंका नाश और पिताकी सेवा करना मेरा एकमात्र कार्य है ॥ १६ ॥ कारण कि, मेरा जीवन इसीके अधीन है अतएव यह जीवन परित्याग करना कभी उचित नहीं है किन्तु मैं विचार करताहूं कि, अन्य स्त्रीगमनका भी मेरा त्याग है ॥ १७ ॥ यद्यपि इससे भी उस तन्वङ्गीका कोई उपकार नहीं होसकता तो भी मेरा यही कर्त्तव्य है इससे उसका उपकार हो वा अपकार हो मैं इस प्रकार नृशंसताका आचरण करूंगा ॥ १८ ॥ जिसने मेरे निमित्त प्राणतक त्याग कर

किं मयोपकृतं तस्याः श्लाघ्यमेतत्तु योषिताम् ॥ यदि रोदिमि वा दीनं हा प्रियेति वदन्मुहुः ॥ १४ ॥ तथाप्यश्लाघ्यमेतन्नो वयं हि पुरुषाः किल ॥ अथ शोकजडो दीनोऽसृजा हीनो बलान्वितः ॥ १५ ॥ विपक्षस्य भविष्यामि ततः परिभवास्पदम् ॥ मयारिशातनात्कार्यं राज्ञः शुश्रूषणं पितुः ॥ १६ ॥ जीवितं तस्य चायत्तं संत्याज्यं तत्कथं मया ॥ किं त्वत्र मेऽन्यत्कर्त्तव्यं त्यागो भोगस्य योषितः ॥ १७ ॥ स चापि नोपकाराय तन्वंग्याः किं तु सर्वथा ॥ मयानृशंस्यं कर्त्तव्यं नापकार्युपकारि वा ॥ १८ ॥ या मदर्थेऽत्यजत्प्राणांस्तदर्थेऽल्पमिदं मम ॥ पुत्रावूचतुः ॥ इति कृत्वा मतिं सोऽथ निष्पाद्योदकदानिकम् ॥ १९ ॥ क्रियाश्चानंतरं कृत्वा प्रत्युवाच ऋतध्वजः ॥ यदि सा मम तन्वंगी न स्याद्भार्या मदालसा ॥ २० ॥ अस्मिञ्जन्मनि नान्या मे भवित्री सहचारिणी ॥ तामृते मृगशावाक्षीं गंधर्वतनयामहम् ॥ २१ ॥ न भोक्ष्ये योषितं कांचिदिति सत्यं मयोदितम् ॥ स धर्मचारिणीं पत्नीं तां मुक्त्वा गजगामिनीम् ॥ २२ ॥

दिया है उसके लिये तो यह सामान्य कार्य है। नागपुत्र बोले, ऋतध्वजने इस प्रकार निश्चय कर जलदान आदि करके ॥ १९ ॥ और तदनन्तर समस्त कर्त्तव्य क्रिया सम्पादन करके कहा जब वह मेरी भार्या तन्वङ्गी मदालसा नहीं है ॥ २० ॥ तो इस जन्ममें दूसरी कोई स्त्री मेरी सहचारिणी नहीं होसकेगी मैं सत्य कहता हूं कि, उस मृगशावाक्षी गन्धर्वतनयाके अतिरिक्त मैं ॥ २१ ॥ दूसरी स्त्रीसे संभोग नहीं करूंगा यह मेरा सत्य वचन है मैं उस सद्धर्मचारिणी गजगामिनी पत्नीको परित्यागकर ॥ २२ ॥

अन्य किसी स्त्रीको अंगीकार नहीं करूंगा, यह भी यथार्थ कहता हूं, नागपुत्र बोले हे तात ! वह उस मदालसाके अतिरिक्त अन्य सब स्त्रीसंभोग त्याग-कर ॥ २३ ॥ स्वभाव और सम्पद्द्वारा अपनी समान अवस्थावालोंके साहित सदा क्रीडा करते रहते हैं । हे पितः ! उनके पक्षमें यही एकमात्र प्रधान कर्त्तव्य कार्य है. हे तात ! इसमें किसीकी सामर्थ्य नहीं है ॥ २४ ॥ यह ईश्वरको भी अत्यन्त दुष्प्राप्य है. दूसरे मनुष्यकी तो फिर बात ही क्या है । जडने कहा उनके इस प्रकार वचन सुनकर पिता नागराज अश्वतर अत्यन्त विचारमें पडगये ॥ २५ ॥ और विचारपूर्वक हँसते हँसते दोनों पुत्रोंसे कहने

कांचिन्नान्यां करिष्यामि तेन सत्यं मयोदितम् ॥ एवं सर्वान्परित्यज्य स्त्रीभोगांस्तात सर्वदा ॥२३॥ क्रीडन्नास्ते समं तुल्यैर्वयस्यैः शीलसं-पदा ॥ एतत्तस्य परं कार्यं तात तत्केन साध्यते ॥ २४ ॥ कर्तुमत्यंतदुःष्प्राप्यमीश्वरैः किमुतेतरैः ॥ जड उवाच ॥ इति वाक्यं तयोः श्रुत्वा विमर्शमगमत्पिता ॥ २५ ॥ विमृश्य चाह तौ पुत्रौ नागराट्प्रहसन्निव ॥ यद्यशक्यमिति श्रुत्वा न करिष्यंति मानवाः ॥ २६ ॥ कर्मण्युद्यमसुद्योगहान्या हानिस्ततः परम् ॥ आरभेत नरः कर्म स्वपौरुषमहापयन् ॥ २७ ॥ निष्पत्तिः कर्मणां दैवे पौरुषे च व्यव-स्थिता ॥ तस्मादहं तथा यत्नं करिष्ये पुत्रकार्यतः ॥ २८ ॥ तपश्चर्यां समास्थाय यथैतत्साध्यतेऽचिरात् ॥ पुत्र उवाच ॥ एवमुक्त्वा स नागेंद्रः प्लक्षावतरणं गिरेः ॥२९॥ तीर्थं हिमवतो गत्वा तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥ तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिस्तत्र देवीं सरस्वतीम् ॥ ३० ॥

लगे, सामर्थ्यसे बाहर होनेके कारण मनुष्यगण जो कर्मका उद्योग नहीं करते ॥ २६ ॥ उस उद्योगहानिसे ही उनकी अत्यन्त हानि होती है, अपना पौरुष नष्ट न करके मनुष्य कार्य आरंभ करते हैं ॥२७॥ क्योंकि दैव वा पौरुषमें ही कर्मकी निष्पत्ति स्थित है अतएव हे दोनों पुत्रो ! मैं ऐसा करूंगा जिससे कार्य बने ॥ २८ ॥ मैं तपस्याका आचरण कर ऐसा यत्न करूंगा जिससे यह शीघ्र सिद्ध हो । पुत्रने कहा यह बात कहकर वह नागराज अश्वतर हिमा-लयपर्वतके प्लक्षावतरण नामक तीर्थमें जाकर ॥२९॥ दुश्चर तपस्या करने लगे इसके उपरान्त वह उसीमें मन लगाये परिमित भोजन कर तीनों कालमें

स्नान करके वचन द्वारा सरस्वतीका स्तवन करने लगे। अश्वतर बोले—मैं शुभमयी जगज्जननी देवीके आराधनाकी इच्छा करके ॥ ३०॥ ३१॥ उन ब्रह्मका स्थान सरस्वतीको मस्तक द्वारा प्रणामपूर्वक स्तुति करताहूं, हे देवी ! मोक्षयुक्त वा अर्थयुक्त सत् असत् स्वरूप जो सब पद हैं ॥ ३२॥ वह समस्तही तुममें असंयुक्त होकर भी संयुक्तकी समान सम्यक् प्रकार अवस्थित रहते हैं हे देवि ! तुम परं अक्षर हो और तुममें ही सब प्रतिष्ठित हैं ॥ ३३ ॥ किन्तु समस्त अक्षर परमाणुके समान तुममें ही स्थित हैं अक्षरस्वरूप परमब्रह्म और क्षरात्मक यह विश्वभी तुममें ही अवस्थित है। अनल और भौमके समस्त परमाणु जिस प्रकार काष्ठमें अवस्थान करते हैं ॥ ३४॥ इसी प्रकार परब्रह्म और अशेष जगत् तुममेंही विद्यमान है। हे देवि ! ओंकार अक्षर संस्थान

तन्मना नियताहारो भूत्वा त्रिषवणाप्लुतः ॥ अश्वतर उवाच ॥ जगद्धात्रीमहं देवीमारिराधयिषुः शुभाम् ॥३१॥ स्तोष्ये प्रणम्य शिरसा ब्रह्मयोनिं सरस्वतीम् ॥ सदसद्देवि यत्किंचिन्मोक्षवंधार्थवत्पदम् ॥ ३२ ॥ तत्सर्वं त्वय्यसंयोगं योगवद्देवि संस्थितम् ॥ त्वमक्षरं परं देवि यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ३३ ॥ अक्षरं परमं ब्रह्म जगच्चैतत्क्षरात्मकम् ॥ दारुण्यवस्थितो वह्निर्भौमाश्च परमाणवः ॥ ३४ ॥ तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः ॥ ओंकाराक्षरसंस्थानं यत्ते देवि स्थिरास्थिरम् ॥३५॥ तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद्देवि नास्ति च ॥ त्रयो लोकास्त्रयो देवास्त्रैविद्यं पावकत्रयम् ॥ ३६ ॥ त्रीणि ज्योतींषि वर्गाश्च त्रयो धर्मादयस्तथा ॥ त्रयो गुणास्त्रयः शब्दास्त्रयो दोषास्तथाश्रमाः ॥ ३७ ॥ त्रयः कालास्तथावस्थाः पितरोऽहर्निशादयः ॥ एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति ॥ ३८ ॥ विभिन्नदर्शिनामाद्या ब्रह्मणो हि सनातना ॥ सोमसंस्था हविःसंस्थाः पाकसंस्थाश्च सप्त याः ॥ ३९ ॥

और स्थिरास्थिर ॥ ३५ ॥ अर्थात् सदसत् सम्पूर्ण पदार्थ तुममेंही वर्त्तमान रहते हैं. हे मातः ! तीन लोक तीन वेद तीन विद्या तीन अग्नि ॥ ३६ ॥ तीन ज्योति तीन वर्ग तीन धर्मादि तीन गुण तीन शब्द तीन दोष तीनों आश्रम ॥ ३७ ॥ तीन काल तीन अवस्था एवं पितृ और दिन रात इत्यादि यावतीय वस्तु जो तीन मात्राका स्वरूप हैं ॥ ३८ ॥ पृथक्पृथक् सम्प्रदाययुक्त पुरुषोंके लिये सोमसंस्था हविःसंस्था और पाकसंस्थारूपसे आद्य और सनातन सप्तविध व्याहृति वेदमें निरूपित हुई हैं ॥ ३९ ॥

ब्रह्मवादिगण एकमात्र तुम्हारे ही कीर्त्तनमें वह सम्पूर्ण समाहित करते हैं. हे मातः ! उल्लिखितरूपके अतिरिक्त आपका और एक जो अनिर्देश्य परमरूप है जिसको अर्द्धमात्रा कहते हैं ॥ ४० ॥ वह भी इसी प्रकार अविकारी अक्षय और अशेष है. हे मातः ! मेरी ऐसी शक्ति नहीं है कि, जिसके द्वारा आपके इस परमरूपका निर्देश करनेमें समर्थ हूं ॥ ४१ ॥ क्योंकि वदन जिह्वा तालु और ओष्ठादिद्वारा उसका उच्चारण नहीं होता. इन्द्र वसुगण ब्रह्मा चन्द्र सूर्य वा अन्यान्य ज्योतिर्मय पदार्थ समस्त उसका स्वरूप है ॥ ४२ ॥ वही विश्वका आवास विश्वका स्वरूप विश्वका ईश्वर और परमेश्वर है । सांख्य वेदान्त और तर्कशास्त्रमें जो कथित हुआ है वेदकी अनेक शाखाओंसे जो स्थिरीकृत हुआ है ॥ ४३ ॥ जिसका आदि मध्य और अन्त नहीं है जो सत् और

तास्त्वदुच्चारणाद्देवि क्रियंते ब्रह्मवादिभिः ॥ अनिर्देश्यं तथा चान्यदर्द्धमात्राश्रितं परम् ॥४०॥ अविकार्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम् ॥ तवैव च परं रूपं यन्न शक्यं मयेरितुम् ॥ ४१ ॥ न चास्येन न वा जिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते ॥ इंद्रोऽपि वसवो ब्रह्मा चंद्रार्कौ ज्योतिरेव च ॥ ४२ ॥ विश्वावासं विश्वरूपं विश्वेशं परमेश्वरम् ॥ सांख्यवेदांतवेदोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम् ॥४३ ॥ अनादिमध्यनिधनं सदसन्नः सदेव तु ॥ एकं त्वनेकमप्येकं भवभेदसमाश्रितम् ॥ ४४ ॥ अनाख्यं षड्गुणाख्यं च. षट्काख्यं त्रिगुणाश्रयम् ॥ नानाशक्तिमतामेकं शक्तिवैभाविकं परम् ॥ ४५ ॥ सुखासुखमहत्सौख्यं रूपं तव विभाव्यते ॥ एवं देवि त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलं जगत् ॥ ४६ ॥ अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम् ॥ येऽर्था नित्या ये विनश्यंति चान्ये ये वा स्थूला ये च सूक्ष्माच्च सूक्ष्माः ॥ ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा तेषां सत्यं त्वत्त एवोपलब्धिः ॥ ४७ ॥

असत् है संसारके भेद समाश्रयमें जो एक अनेक और नानाप्रकार है ॥ ४४ ॥ जिसकी आख्या नहीं है एवं गुणषट्क और वर्ग समस्त ही जिसकी आख्या हैं जो त्रिगुणलम्बी हैं जो नाना प्रकार शक्तिमान् मनुष्योंकी शक्तिका परमविभवसंपन्न ॥ ४५ ॥ और जो सुख असुख तथा महासुखरूप है हे मातः ! तुममें ही वह सब लक्षित होता है हे देवि ! इसी प्रकार सकल और निष्कल समस्त जगत् ही तुम्हारे द्वारा व्याप्त हुआ है ॥ ४६ ॥ और जो अद्वैतावस्थित एवं द्वैतावस्थित ब्रह्म है वह भी तुम्हारे द्वारा व्याप्त हुआ है जो अर्थ नित्य और जो अनित्य है जो स्थूल और जो सूक्ष्म है और जो पृथ्वी वा

अंतरिक्षमें या अन्यत्र विद्यमान है हे देवि ! तुमसेही उन सब पदार्थोंकी प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥ हे मातः ! जो वस्तु मूर्तियुक्त वा अमूर्त्त है जो सब प्राणियोंमें कुछ कुछ विद्यमान है जो स्वर्गमें पृथ्वीतलमें अन्तरिक्षमें वा अन्यान्य स्थानमें वर्त्तमान है हे देवि ! तुम्हारे स्वर और व्यञ्जनद्वाराही उन सब पदार्थोंका ज्ञान होता है ॥ ४८ ॥ विष्णुजिह्वासरस्वतीने नागराजके द्वारा इस प्रकार स्तुतिको प्राप्त होकर महात्मा अश्वतर नागसे कहा ॥ ४९ ॥ सरस्वती बोली--हे कम्बलभ्राता उरगाधिप ! मैं तुमको वर दूंगी अतएव तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो सो कहो वही दूंगी ॥ ५० ॥ अश्वतरने कहा हे मातः ! मेरे पूर्व सहाय कम्बल और मुझे इन दोनोंकोही समस्त स्वरका संबन्ध अर्थात् श्रुति ग्राम और मूर्च्छनादि समस्तही प्रदान कीजिये ॥ ५१ ॥ सरस्वतीने

यच्चामूर्तं यच्च मूर्तं समस्तं यद्वा भूतेष्वेकमेकं च किंचित् ॥ यद्दिव्येऽस्ति क्ष्मातले खेऽन्यतो वा तत्संबंधं त्वत्स्वरैर्व्यंजनैश्च ॥ ४८ ॥ जड उवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वती ॥ प्रत्युवाच महात्मानं नागमश्वतरं ततः ॥ ४९ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ वरं ते कंबलभ्रातः प्रयच्छाम्युरगाधिप ॥ तदुच्यतां प्रदास्यामि यत्ते मनसि वर्त्तते ॥ ५० ॥ अश्वतर उवाच ॥ साहाय्यं देवि देहि त्वं पूर्वं कंबलमेव च ॥ समस्तस्वरसंबद्धमुभयोः संप्रयच्छ च ॥ ५१ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ सप्त स्वरा ग्रामरागाः सप्त पन्नगसत्तम ॥ गीतकानि च सप्तैव तावत्यश्चापि मूर्च्छनाः ॥ ५२ ॥ तानाश्चैकोनपंचाशत्तथा ग्रामत्रयं च यत् ॥ एतत्सर्वं भवान्वेत्ता कंबलश्चैव तेऽनघ ॥ ५३ ॥ ज्ञास्यते मत्प्रसादेन भुजगेंद्र परं तथा ॥ चतुर्विधं परं तालं त्रिप्रकारं लयत्रयम् ॥ ५४ ॥ गतित्रयं तथा तालं मया दत्तं चतुर्विधम् ॥ एतद्भवान्मत्प्रसादात्पन्नगेंद्रापरं च यत् ॥ ५५ ॥

कहा हे पन्नगसत्तम ! तुम और कम्बल दोनोंही आजसे मेरे प्रसादद्वारा उत्तम गायक होंगे और सप्त स्वर ग्रामके सात राग सात गीत समस्त मूर्च्छना ॥ ५२ ॥ एकोनपंचाशत् (४९) प्रकारकी ताल और तीन प्रकार ग्राम हे अनघ ! तुम यह समस्तही कम्बलके सहित गान करसकोगे ॥ ५३ ॥ हे पन्नगाधिप ! और भी चार प्रकारके पद तीन प्रकारकी ताल त्रिविध लय मेरे प्रसादसे जानोगे ॥ ५४ ॥ तीन प्रकारकी गति और चार प्रकार वाद्य ताल तुमको प्रदान करती हूं तुमको मेरे प्रसादसे यह और इसके सिवाय समस्त भली प्रकार विदित होगा ॥ ५५ ॥

और इन सबके अन्तर्गत एवं आयत्त स्वर और व्यंजन, सम्मित जो कुछ वर्तमान है वह समस्त विषय तुमको और कम्बलको प्रदान किया ॥ ५६ ॥ अधिक क्या हे सर्पराज ! स्वर्ग मर्त्य और पातालमें तुम दोनोंही समस्त विषयके प्रणेता होगे और इससे तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं रहेगा. जडने कहा-- विष्णुकी जिह्वास्वरूपिणी सरस्वती ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ कमलनयना यह कहकर तत्काल अन्तर्धान होगई फिर पन्नगराज उनको नहीं देखसके उनके वरप्रसादसे दोनों भाई पूर्वकथित सम्पूर्ण विषयके ज्ञाता हुए ॥ ५९॥ पद ताल और स्वरादि विषयमें उनकी अद्वितीय व्युत्पत्ति उत्पन्न हुई तब कैलासशिखरमें स्थित ईश्वर ॥ ६० ॥ पापनाशी कामका अंग हरनेवाले शंकरकी तन्त्रीलयसहित सप्तस्वरसे गान कर आराधना करने लगे ॥ ६१ ॥ एवं वाक्य और

आस्यांतर्गतमायत्तं स्वरव्यंजनयोश्च यत् ॥ तदशेषं मया दत्तं भवतः कंबलस्य च ॥ ५६ ॥ यथा नान्यस्य भूलोके पाताले वापि पन्नग ॥ प्रणेतारौ भवंतौ च सर्वस्याद्य भविष्यतः ॥ ५७ ॥ पाताले देवलोके च भूलोके चैव पन्नगौ ॥ जड उवाच ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी सर्वजिह्वा सरस्वती ॥ ५८ ॥ जगामादर्शनं सद्यो नागस्य कमलेक्षणा ॥ तयोश्च तद्यथावृत्तं भ्रात्रोः सर्वमजायत ॥ ५९ ॥ विज्ञानमुभयोरग्र्यं पदतालस्वरादिकम् ॥ ततः कैलासशैलेंद्रशिखरस्थितमीश्वरम् ॥ ६० ॥ गीतकैः सप्तभिर्नागौ तंत्रीलयसमन्वितैः ॥ आरिराधयिषू देवमनंगांगहरं हरम् ॥ ६१ ॥ प्रचक्रतुः परं यत्नमुभौ संहृतवाक्कलौ ॥ प्रातर्निशायां मध्याह्ने संध्ययोश्चापि तत्परौ ॥ ६२ ॥ ततः कालेन महता स्तूयमानो वृषध्वजः ॥ तुतोष गीतिकैस्तौ च प्राह संगृह्यतां वरः ॥ ६३ ॥ ततः प्रणम्याश्वतरः कंबलेन समं तदा ॥ विज्ञापयन्महादेवं शितिकंठमुमापतिम् ॥ ६४ ॥ यदि नौ भगवन्प्रीतो देवदेव त्रिलोचन ॥ ततो यथाभिलषितं वरमेनं प्रयच्छ नौ ॥ ६५ ॥

इन्द्रियसमूह संयमनपूर्वक महेश्वरकी उपासना करनेकी इच्छासे प्रभात मध्याह्न सायंकाल और रात्रिमें तत्परतासहित यत्न करनेलगे ॥ ६२ ॥ भूतपति महादेवजीने बहुत दिनोंके पीछे संगीत द्वारा परम प्रसन्न होकर उन दोनोंसे कहा तुम वर मांगो ॥ ६३ ॥ तब कम्बलके सहित अश्वतरने प्रणामपूर्वक शितिकंठ उमानाथ महेश्वरसे कहा ॥ ६४ ॥ आप देवदेव त्रिनयन और सर्वशक्तिमान् हैं यदि हमारे प्रति प्रसन्न हुए हो तो हमारा अभिलषित यह वर प्रदान कीजिये ॥ ६५ ॥

कुवलयाश्वकी स्त्री मदालसाने जीवन विसर्जन किया है उसने जिस अवस्थामें प्राण त्याग किया है उसी अवस्थामें मेरी कन्या होकर जन्मग्रहण करै ॥ ६६ ॥ पहिले उसमें जिस प्रकार क्षान्ति विद्यमान थी उसी प्रकार क्षान्ति हो और वह जातिस्मरा पूर्ववत् योगिनी और योगजननी होकर मेरे घर जन्मग्रहण करै ॥ ६७ ॥ महादेवजीने कहा हे पन्नगश्रेष्ठ ! तुमने जो कहा मेरे प्रसादसे वह सब होगा इसमें संदेह नहीं अब सुनो हे फणिश्रेष्ठ ! ॥ ६८ ॥ जब श्राद्धका समय प्राप्त हो तब पवित्र और सावधान मन होकर तुम स्वयं मध्यम पिण्ड भोजन करो और मेरा ध्यान कर पितरोंका यजन करो ॥ ६९ ॥ मध्यमपिण्ड भोजन करनेसे मंगलदायिनी मदालसाने जिस अवस्थामें प्राणत्याग किया है तुम्हारे मध्यम फणसे उसी अवस्थामें उत्पन्न होगी ॥ ७० ॥

मृता कुवलयाश्वस्य पत्नी देव मदालसा ॥ तेनैव वयसा सद्यो दुहितृत्वं प्रयातु मे ॥ ६६ ॥ जातिस्मरा यथापूर्वं तद्वत्क्षांतिसमन्विता ॥ योगिनी योगमाता च जायतां वचनात्तव ॥ ६७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ यथोक्तं पन्नगश्रेष्ठ सर्वमेतद्भविष्यति ॥ मत्प्रसादादसंदिग्धं शृणु चेदं भुजंगम ॥ ६८ ॥ श्राद्धावसाने प्राश्नीथा मध्यमं पिण्डमात्मना ॥ कामं चेमामनुध्यायन्कुरु त्वं पितृपूजनम् ॥ ६९ ॥ तत्क्षणादेव सा सुभ्रूर्भवतो मध्यमात्फणात् ॥ समुत्पत्स्याति कल्याणी तथारूपा यथा मृता ॥ ७० ॥ स्वयमेवोपभुंजस्व ततः सर्वं भविष्याति ॥ उत्पत्स्यते ततः सा तु सत्यं वै मध्यमात्फणात् ॥ ७१ ॥ एतच्छ्रुत्वा ततस्तौ तु प्राणिपत्य महेश्वरम् ॥ रसातलमनुप्रातौ परितोषसमन्वितौ ॥ ७२ ॥ तथा च कृतवाञ्छ्राद्धं स नागः कंबलानुजः ॥ पिंडं च मध्यमं तद्वद्यथावदुपभुक्तवान् ॥ ७३ ॥ उपभुक्ते ततः पिंडे तस्य सा तनुमध्यमा ॥ जज्ञे निःश्वसतः सद्यस्तद्रूपा मध्यमात्फणात् ॥ ७४ ॥

तुम इस प्रकार कामना करके पितृतर्पणका अनुष्ठान करो तो तत्काल श्वास छोडनेके समयमें तुम्हारे मध्यम फणसे वह सुभ्रू जिस अवस्थामें मरी है उसी अवस्थामें उत्पन्न होगी ॥ ७१ ॥ दोनों भाई यह वचन सुनकर महेश्वरको प्रणाम करके प्रसन्नचित्तसे फिर रसातलमें उपस्थित हुए ॥ ७२ ॥ इसके उपरान्त अश्वतरने उसी प्रकार श्राद्ध और उसी प्रकार यथा नियमसे मध्यम पिण्ड भोजन किया ॥ ७३ ॥ अन्तमें अपने अभिलषित विषयका ध्यान करते करते श्वास छोडतेही तत्काल उनके मध्यम फणसे कृशाङ्गी मदालसा उसी रूपमें उत्पन्न हुई ॥ ७४ ॥

अश्वतरने यह वार्त्ता किसीके निकट प्रकाश न करके अपने घरमें उस सुदतीको स्त्रियोंके सहित गुप्तभावसे रक्खा ॥ ७५ ॥ इधर उनके दोनों पुत्र मूर्त्तिमान् दोनों सुरकुमारोंकी समान नित्य आनन्दपूर्वक आनकर ऋतध्वजके संग क्रीडा करने लगे ॥ ७६ ॥ एक दिन पन्नगपतिने पुलकित होकर उन दोनोंसे कहा. मैंने पहिले तुमसे जो कहा है, तुम उसको क्यों नहीं करते हो ? ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ स्नेहवान् पिताके इस प्रकार कहनेपर दोनों पुत्र महामति ऋतध्वजके नगरमें जाकर उनके संग क्रीडा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ७९ ॥ तदनन्तर बातोंही बातोंके प्रसंगमें प्रणयप्रदर्शनपूर्वक कुवलयाश्वको अपने घर लेजा-

न चापि कथयामास कस्यचित्स भुजंगमः ॥ अंतर्गृहे तां सुदतीं स्त्रीभिर्गुप्तामधारयत् ॥ ७५ ॥ तौ चानुदिनमागत्य पुत्रौ नागपतेः सुखम् ॥ ऋतुध्वजेन सहितौ चिक्रीडातेऽमराविव ॥ ७६ ॥ एकदा तु स तौ प्राह स नागोऽश्वतरो मुदा ॥ तन्मया पूर्वमुक्तं तु क्रियते किं नु तत्तथा ॥ ७७ ॥ स राजपुत्रो युवयोरुपकारी ममांतिकम् ॥ किं नु नानीयते वत्सावुपकाराय मानदः ॥ ७८ ॥ एवमुक्तौ पुनस्तेन पुत्रौ स्नेहवता तु तौ ॥ गत्वा तस्य पुरं सख्यू रेमाते तेन धीमता ॥ ७९ ॥ ततः कुवलयाश्वं तं कृत्वा किंचित्कथांतरम् ॥ अब्रूतां प्रणिपातेन स्वगृहागमनं प्रति ॥ ८० ॥ तावाह नृपपुत्रोऽसौ नन्विदं भवतोर्गृहम् ॥ धनवाहनवस्त्रादि यन्मदीयं तदेव वाम् ॥ ८१ ॥ यस्य वां वांछितं दातुं धनं रत्नमथापि वा ॥ तद्दीयतां द्विजसुतौ यदि वां प्रणयो मयि ॥ ८२ ॥ एतावताहं दैवेन वंचितोऽस्मि दुरात्मना ॥ यद्भवद्भ्यां मम त्वं नो मदीये क्रियतां गृहे ॥ ८३ ॥ यदि वां मे प्रियं कार्यमनुग्राह्योऽस्मि वा यदि ॥ तद्धने मम गेहे च ममत्वमनुकल्प्यताम् ॥ ८४ ॥

नेका अनुरोध किया ॥ ८० ॥ राजकुमारने उनसे कहा मेरा यह घर और धन यान वसन इत्यादि जो कुछ विद्यमान है सब तुम्हाराही है ॥ ८१ ॥ यदि मेरे प्रति तुम्हारी प्रीतिका संचार हुआ है तो मुझको धन वा रत्न जो अर्पण करनेकी इच्छा करी है सो दो ॥ ८२ ॥ तुम जब मेरे घरको अपने घरकी समान नहीं समझते तो मैं दुरात्मा दैवके द्वाराही वंचित हुआ हूं ॥ ८३ ॥ मेरा प्रिय अनुष्ठान करना यदि तुमको कर्त्तव्य हो और यदि मुझको अनुग्रहका पात्र विचारते हो तो मेरे घर और मेरे धनमें ममत्व स्थापन करो अर्थात् अपनाही समझो ॥ ८४ ॥

जो तुम्हारा है, सो मेरा और मेरा जो कुछ है वह समस्त तुम्हाराही है मैंने जो कहा इसकोही यथार्थ जानो वस्तुतः तुम मेरे बाहर रहनेवाले प्राणस्वरूप हो ॥८५॥ अत एव हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! इस प्रकार भिन्न अर्थवाले वचन नहीं कहना, मैं अन्तरके सहित तुमको शपथ देता हूं तुम प्रणयप्रदर्शनपूर्वक मुझपर प्रसन्न होओ ॥८६॥ तब दोनों पन्नगपुत्रोंने स्नेहार्द्रमुख होकर कुछेक प्रीतिका कोप दिखाकर राजपुत्रसे कहा ॥८७॥ हे राजपुत्र ! तुमने जो कहा हमभी सदा यही विचारते हैं, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, अत एव किसी भांति अन्यथा नहीं समझना ॥ ८८ ॥ किन्तु हमारे पिताने स्वयं यह वारंवार कहा है कि, कुवलयाश्वको देखनेकी मेरी इच्छा है ॥ ८९ ॥ तब कुवलयाश्वने वरासनसे उठ " स्वयं पिताने यह बात कहीहै " इस प्रकार कह भूमिपर स्थित

युवयोर्यन्मदीयं तन्मामकं युवयोः स्वयम् ॥ एतत्सर्वं विजानीथ सखा प्राणो बहिश्चरः ॥ ८५ ॥ पुनर्नैवं विभिन्नार्थं वक्तव्यं द्विजसत्तमौ ॥ मत्प्रसादपरौ प्रीत्या शापितौ हृदयेन मे ॥ ८६ ॥ ततः स्नेहार्द्रवदनौ तावुभौ नागनंदनौ ॥ ऊचतुर्नृपतेः पुत्रं किंचित्प्रणयकोपितम् ॥ ८७ ॥ ऋतुध्वज न संदेहो यथैवाह भवानिदम् ॥ तथैव चास्मन्मनसि नात्र चिंत्यमतोऽन्यथा ॥ ८८ ॥ किं त्वावयोः समं पित्रा प्रोक्तमेतन्महात्मना ॥ द्रष्टुं कुवलयाश्वं तमिच्छामीति पुनः पुनः ॥ ८९ ॥ तत कुवलयाश्वोऽथ समुत्थाय वरासनात् ॥ यथाह तातेति वदन्प्रणाममकरोद्भुवि ॥ ९० ॥ कुवलयाश्व उवाच ॥ धन्योऽहमतिपुण्योऽहं कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ॥ यत्तातो मामभिद्रष्टुं करोति प्रवणं मनः ॥ ९१ ॥ तदुत्तिष्ठत गच्छाम ताताज्ञां क्षणमप्यहम् ॥ नातिक्रांतुमिहेच्छामि पद्भ्यां तस्य शपाम्यहम् ॥९२॥ जड उवाच ॥ एवमुक्त्वा ययौ सोऽथ सह ताभ्यां नृपात्मजः ॥ प्राप्तश्च गोतमीं पुण्यां निर्गम्य नगराद्बहिः ॥ ९३ ॥

होकर प्रणाम किया ॥ ९० ॥ और कुवलयाश्व कहने लगे. मैं ही धन्य और मैंही पुण्यवान् हूं मेरी समान और कोई भी दिखाई नहीं देता क्योंकि मुझको देखनेके लिये पिता स्वयं अत्यन्त उत्सुक हुए हैं ॥ ९१ ॥ अत एव उठो अभी चलें, मुहूर्त्तमात्रको भी उनकी आज्ञा उल्लंघन करनेकी हमारी इच्छा नहीं है. उनके चरणस्पर्शपूर्वक इस विषयमें मैं शपथ करता हूं ॥ ९२ ॥ जडने कहा--ऋतध्वजने इस प्रकार कहकर उनके संग गमन किया फिर नगरसे निकल पवित्र जलवाली गोमतीपर उपस्थित हुए ॥ ९३ ॥

उसके मध्यमें होकर वह तीनों जने गमन करने लगे. राजकुमारने समझा कि, गोमतीनदीके पारही दोनों सखाओंका घर है ॥ ९४ ॥ तदनन्तर उन्होंने राजकुमारको खेंचकर पातालमें लेजाकर प्राप्त किया राजकुमारने पातालमें जाकर देखा कि, इन दोनों पन्नगपुत्रोंने छद्मवेष छोडकर अपना वेष धारण किया है ॥ ९५ ॥ फणोंमें स्थित मणिकी सहायतासे उनका हृदय प्रकाशित और स्वस्तिक चिह्न प्रकाशित होउठा है उनका स्वरूप देख राजकुमारने विस्मयविकसित नेत्रोंसे ॥ ९६ ॥ हँसकर प्रणयपूर्वक साधुवाद दिया तदनन्तर देवताओंकेभी माननीय शान्तचरित्र पितृदेव अश्वतरके सन्मुख राजकुमारके आनेकी

तन्मध्येन ययुस्ते वै नागेंद्रनृपनंदनाः ॥ मेने च राजपुत्रोऽसौ पारे तस्यास्तयोर्गृहम् ॥ ९४ ॥ ततश्चाकृष्य पातालं ताभ्यां नीतो नृपात्मजः ॥ पाताले ददृशे चोभौ स पन्नगकुमारकौ ॥ ९५ ॥ फणामणिकृतोद्द्योतौ व्यक्तस्वस्तिकलक्षणौ ॥ विलोक्य तौ सुरूपांगौ विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ९६ ॥ विहस्य चाब्रवीत्प्रेम्णा साधु भो द्विजसत्तमौ ॥ कथयामासतुस्तौ तु पितरं पन्नगेश्वरम् ॥ ९७ ॥ शांतमश्वतरं नागं माननीयं दिवौकसाम् ॥ रमणीयं ततोऽपश्यत्पातालं स नृपात्मजः ॥९८॥ कुमारैस्तरुणैर्वृद्धैरुरगैरुपशोभितम् ॥ तथैव नागकन्याभिः क्रीडंतीभिरितस्ततः ॥ ९९ ॥ चारुकुंडलहाराभिस्ताराभिर्गगनं यथा ॥ गीतशब्दैस्तथान्यत्र वीणावेणुस्वरानुगैः ॥ १०० ॥ मृदंगपणवातोद्यहारि वेश्मशताकुलम् ॥ वीक्षमाणः स पातालं ययौ शत्रुजितः सुतः ॥ १ ॥ सह ताभ्यामभीष्टाभ्यां पन्नगाभ्यामरिंदमः ॥ ततः प्रविश्य ते सर्वे नागराजनिवेशनम् ॥ २ ॥

वार्त्ता कही राजकुमार ऋतध्वजने देखा कि, वह पातालनगर अत्यन्त मनोहर है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ बालक युवा वृद्ध सब जातीय सर्प शोभायमान हैं नागनान्दिनी उनके चारों ओर क्रीडा करती हुई विचरण करती हैं ॥ ९९ ॥ उनके हार और कुण्डल अतीव मनोहर और उनकी समीपतासे तारोंकी मालासे विभूषित आकाशमण्डलके समान पातालनगरकी शोभा सम्पादित हुई है इसके किसी किसी स्थानमें संगीत ध्वनि होती है उसके संग संग वेणु और वीणासमूह शब्दायमान होते हैं ॥ १०० ॥ मृदंग पणव और आतोद्य (वाद्यविशेषके) शब्दसे वह प्रतिध्वनित है उसमें सैकडों मनोरम गृह विराजमान हैं राज-

नन्दन पातालको देखते देखते उन प्रियतम समान अवस्थावाले दोनों सखाओंके संग गमन करने लगे. तदनन्तर सबने पन्नगके स्थानमें प्रविष्ट होकर ॥ १ ॥ २ ॥
देखा कि, वह महात्मा वहां स्थिति करते हैं उनका बिछौना दिव्यवस्त्रका है गलेमें दिव्यमाला और कानोंमें मणिमय कुण्डल विराजमान हैं ॥ ३ ॥
स्वच्छ मुक्ताफल लतामय मनोरम हारके रहनेसे उनकी शोभा असीम हो रही है। उनके हाथमें केयूर और वह सुवर्णके आसनपर विराजमान हैं ॥ ४ ॥
मणि मूंगे और वैडूर्यमें खचित होनेके कारण उनका प्रकृतरूप तिरोहित हुआ है. तदनन्तर उन्होंने राजपुत्रको दिखाया कि, यही हमारे पिता हैं ॥ ५ ॥
अनन्तर पिताके निकट भी राजपुत्रका परिचय देकर कहा कि, "यही वह वीर कुवलयाश्व हैं" तब ऋतध्वजने पन्नगपतिके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ६ ॥

ददृशुस्तं महात्मानमुरगाधिपतिं स्थितम् ॥ दिव्यमाल्यांबरधरं मणिकुंडलभूषणम् ॥ ३ ॥ स्वच्छमुक्ताफललताहारिहारोपशोभितम् ॥
केयूरिणं महाभागमासने सर्वकांचने ॥ ४ ॥ मणिविद्रुमवैडूर्यजालांतरितरूपके ॥ स ताभ्यां दर्शितस्तस्य तातोऽस्माकमसा-
विति ॥ ५ ॥ वीरः कुवलयाश्वोऽयं पित्रे चासौ निवेदितः ॥ ततो ननाम चरणौ नागेंद्रस्य ऋतुध्वजः ॥ ६ ॥ समुत्थाप्य बलाद्गाढं स
नागः परिषस्वजे ॥ मूर्ध्नि चैवमुपाघ्राय चिरं जीवेत्युवाच ह ॥ ७ ॥ निहतामित्रवर्गश्च पित्रोः शुश्रूषणं कुरु ॥ वत्स धन्यस्य कथ्यंते
परोक्षस्यापि ते गुणाः ॥ ८ ॥ भवतो मम पुत्राभ्यामाभ्यां ये मे निवेदिताः ॥ तदेतैरेव वर्द्धेथा मनोवाक्कायचेष्टितैः ॥ ९ ॥ जीवितं
गुणिनः श्लाघ्यं जीवन्नपि मृतोऽगुणी ॥ गुणवान्निर्वृतिं पित्रोः शत्रूणां हृदये ज्वरम् ॥ ११० ॥

पन्नगराजने भी उनको बलपूर्वक उठाय आलिंगन और शिर सूंघकर कहा तुम चिरंजीवी होओ ॥ ७ ॥ और शत्रुकुल संहार करके पिता माताकी शुश्रूषा करो हे वत्स! तुम धन्य हो क्योंकि मेरे पुत्र पीछेमें भी तुम्हारे अलौकिक गुणोंका विषय ॥ ८ ॥ कीर्त्तन करते हैं इससे भी तुम्हारा मन वाक्य शरीर और चेष्टा सर्वांशमें वृद्धिको प्राप्त होगी ॥ ९ ॥ जो पुरुष गुणवान् हैं उनका प्राणधारणही श्लाघाका विषय है जो पुरुष निर्गुण है वह जीवित अवस्थामें मृतकके समान है। जो पुरुष गुणवान् हैं वह पिता माताकी शान्ति करते शत्रुकुलको ताप देते ॥ ११० ॥

और महाजनोंका विश्वास उत्पादन करके अपना मंगल साधन करते हैं. देवता पितृ बन्धु विप्र एवं मित्र प्रार्थी और विभवादि ॥ ११ ॥ तथा बन्धुजन गुणवान्‌के दीर्घजीवनकी कामना करते हैं गुणवान् व्यक्ति दूसरोंकी बुराईसे निवृत्त दुःखियोंके प्रति दया दिखाते हैं ॥ १२ ॥ और दुःखी पुरुषको आश्रयप्रदान करते हैं सुतरां उनकाही जन्म सफल है. जडने कहा--वह राजपुत्रसे यह कहकर उनकी अर्चना करनेमें उत्कंठित हुए और दोनों पुत्रोंसे कहा हम सब इकट्ठे हो क्रमानुसार स्नानादि क्रिया कर ॥ १३ ॥ १४ ॥ अपनी इच्छानुसार मधुपान इत्यादि उपभोग और भक्षण करके कुवलयाश्वके

करोत्यात्महितं कुर्वन्विश्वासं च महाजने ॥ देवताः पितरो विप्रा मित्रार्थिविभवादयः ॥ ११ ॥ बांधवाश्च तथेच्छंति जीवितं गुणिनश्चिरम् ॥ परवादनिवृत्तानां दुर्गतेषु दयावताम् ॥ १२ ॥ गुणिनां सफलं जन्म संश्रितानां विपद्गतैः ॥ पुत्र उवाच ॥ एवमुक्त्वा स तं वीरं पुत्राविदमथाब्रवीत् ॥ १३ ॥ पूजां कुवलयाश्वस्य कर्त्तुकामो भुजंगमः ॥ स्नानादिककर्म कृत्वा सर्वमेव यथाक्रमम् ॥ १४ ॥ मधुपानादिसंभोगमाहारं च यथेप्सितम् ॥ ततः कुवलयाश्वेन हृदयोत्सवभूतया ॥ १५ ॥ कथया स्वल्पकं कालं स्थास्यामो हृष्टचेतसः ॥ अनुमेने च तं मौनी वचः शत्रुजितः सुतः ॥ १६ ॥ तथा चकार च पतिः पन्नगानामुदारधीः ॥ १७ ॥ समेत्य तैरात्मजभूपनंदनैर्महोरगाणामधिपः स सत्यवाक् ॥ मुदो युतोऽन्नानि मधूनि चात्मवान्यथोपजोषं बुभुजे स भोगभाक् ॥ ११८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे कुवलयाश्वीये पातालप्रवेशो नामैकाविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

सहित उत्सव करते हुए ॥ १५ ॥ प्रसन्नमनसे कुछ काल निवास करेंगे ऋतध्वजने इसपर कोई बात नहीं कही और मौनभावसे स्थिति कर उसी बातका अनुमोदन किया ॥ १६ ॥ तब उदारमति पन्नगराजने तदनुरूप कार्यका अनुष्ठान किया ॥ १७ ॥ वह भोगभागी आत्मवान् सत्यभाषी पन्नगराज अश्वतरपुत्र राजकुमारके सहित मिलित होकर प्रसन्नचित्तसे अन्न और मधु सम्यक् प्रकारसे भोग करने लगे ॥ ११८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

जडने कहा—अनन्तर पन्नगपति महात्मा अश्वतरके आहार करनेपर उनके दोनों पुत्र और राजकुमार उनकी उपासनामें प्रवृत्त हुए ॥ १ ॥ तब महात्मा भुजङ्गाधिपतिने अनुरूप वचनप्रयोगपूर्वक राजकुमारको प्रसन्न करके कहा हे भद्र! ॥ २ ॥ तुम मेरे घर आये हो पुत्र जिस प्रकार शंका छोडकर पितासे बातें करता है उसी प्रकार तुम बातें करो, कहो तुम्हारा क्या प्रिय करूं? ॥ ३ ॥ सो तुमभी मेरे निकट स्वच्छन्द प्रकाश करो क्या सुवर्ण क्या चांदी क्या वसन क्या वाहन अथवा अन्य जिस किसी वस्तुकी अभिलाषा हो वह अत्यन्त दुर्लभ होनेपरभी मुझसे मांगो ॥ ४ ॥ कुवलयाश्वने कहा हे भगवन्! आपके प्रसादसे मेरे पिताके घर सुवर्णादि समस्त वस्तुही विद्यमान हैं अभीतक मुझको ऐसी वस्तुका कोई प्रयोजन नहीं हुआ ॥ ५ ॥ मेरे पिता जब

पुत्र उवाच ॥ कृताहारं महात्मानमधिपं पवनाशिनाम् ॥ उपासांचक्रिरे पुत्रौ भूपालतनयस्तथा ॥ १ ॥ कथाभिरनुरूपाभिः प्रहृष्टात्मा भुजंगमः ॥ प्रीतिं संजनयामास पुत्रसख्युरुवाच ह ॥ २ ॥ तव भद्र सुखं ब्रूहि गेहमभ्यागतस्य यत् ॥ कर्तव्यमुत्सृजाशंकां पितरीव सुते मयि ॥ ३ ॥ हिरण्यं वा सुवर्णं वा वस्त्रं वाहनमासनम् ॥ यद्वाभिमतमत्यर्थं दुर्लभं तच्छृणुष्व माम् ॥४॥ कुवलयाश्व उवाच ॥ भवत्प्रसादाद्भगवन्सुवर्णादि गृहे मम ॥ पितुरस्ति ममाद्यापि न किंचित्कार्यमीदृशैः ॥ ५ ॥ ताते वर्षसहस्रायुः शासतीमां वसुंधराम् ॥ तथैव त्वयि पातालं न मे याच्ञोन्मुखं मनः ॥ ६ ॥ ते सुभाग्याः सुपुण्याश्च येषां पितरि जीवति ॥ तृणं कोटिसमं वित्तं तारुण्यं वित्तकोटिषु ॥ ७ ॥ मित्राणि तुल्यशिष्टानि तद्वद्देहमनामयम् ॥ जने वा ध्रियते वित्तं यौवनं किं तु नास्ति मे ॥ ८ ॥ असत्यर्थे नृणां याच्ञाप्रवणं जायते मनः ॥ सत्यशेषे कथं याच्ञां मम जिह्वा करिष्यति ॥ ९ ॥

सहस्र वर्ष हुए इस पृथ्वीका शासन करते थे और आपभी पातालपुरमें वास करते थे तब कभी मेरा मन प्रार्थना करनेमें अग्रेसर नहीं हुआ ॥ ६ ॥ क्योंकि जिन पुरुषोंके पिता जीवित हैं वही पुरुष धन्य हैं इसी कारण जो यौवनकालमें करोड करोड वित्तको भी सामान्य तृणकी समान समझते हैं वही परम पुण्यवान् और वही स्वर्गीय महापुरुष हैं ॥ ७ ॥ विचार करके देखो मेरे मित्रगण अनुरूप शिष्टाचारसम्पन्न हैं मेरा शरीरभी रोगरहित है यौवनभी है क्या नहीं है ॥ ८ ॥ मेरे पिताकी विलक्षण धनसम्पत्तिके अधिकारी हैं और जिनके अर्थ नहीं है उनकाही अन्तःकरण याचनामें लगता है किंतु मेरे यहां धनका अभाव नहीं है सुतरां मेरी रसना याचना करनेमें उद्यत क्यों हो? ॥ ९ ॥

मेरे घर धन है वा नहीं जिनको चिन्ता करनी नहीं पडती और जो कोई पितारूपी वृक्षकी भुजलताकी छायामें रहते हैं वही यथार्थमें सुखी हैं ॥ १० ॥ किन्तु जो कोई बाल्यकालसेही पितृहीन होकर परिवारके भरण पोषणमें नियुक्त होते हैं मेरे विचारमें विधाताने उन सब पुरुषोंको सुख स्वादसे भ्रष्टकरके वंचित किया है ॥११॥ मैं आपके अनुग्रहसे पिताके दियेहुए असंख्य असंख्य धनरत्नादि अपनी इच्छानुसार प्रतिदिन अर्थियोंको देता हूं ॥ १२॥ विशेषकर जब अपनी चूडामणिद्वारा आपके चरणकमलोंका स्पर्श किया है और आपका अंगसंगलाभ किया है तब यहां वह मुझको समस्तही लाभ हुए इसमें सन्देह नहीं ॥१३॥ जडने कहा--पन्नगराज इस प्रकार विनययुक्त वचन सुनकर प्रसन्नतासहित अपने दोनों पुत्रके हितकारी उन राजपुत्रसे कहने लगे ॥१४॥

यैर्न चिंत्यं धनं किंचिन्मम गेहेऽस्ति नास्ति वा ॥ पितृबाहुतरुच्छायां संश्रिताः सुखिनो हि ते ॥१०॥ ये तु बाल्यात्प्रभृत्येव विना पित्रा कुटुंबिनः ॥ ते सुखास्वादविभ्रंशान्मन्ये धात्रैव वंचिताः ॥ ११ ॥ तद्वयं तत्प्रसादेन धनरत्नादिसंचयम् ॥ पितृभक्ताः प्रयच्छामः कामतो नित्यमर्थिनाम् ॥ १२ ॥ तत्सर्वमिह संप्राप्तं यदंघ्रियुगलं तव ॥ मच्चूडामणिना घृष्टं यच्चांगस्पर्शमाप्तवान् ॥ १३ ॥ पुत्र उवाच ॥ इत्येवं प्रश्रितं वाक्यमुक्तः पन्नगसत्तमः ॥ प्राह राजसुतं प्रीत्या पुत्रयोरुपकारिणम् ॥ १४ ॥ यदि रत्नसुवर्णादि मत्तो वाप्तुं न ते मनः ॥ यदन्यन्मनसः प्रीत्यै ब्रूहि तत्ते ददाम्यहम् ॥ १५ ॥ कुवलयाश्व उवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन प्रार्थितस्य गृहे मम ॥ सर्वमस्ति विशेषेण संप्राप्तं तव दर्शनात् ॥ १६ ॥ कृतकृत्योऽस्मि चैतेन सफलं जीवितं मम ॥ यदंगसंश्लेषामितस्तव देवस्य मानुषः ॥ १७ ॥

यदि मुझसे सुवर्णरत्नादि लेनेकी तुम्हारी इच्छा न हो तो और कुछ जिससे तुम्हारी आन्तरिक प्रीतिका संचार हो सो कहो मैं तुमको वही दूंगा ॥ १५ ॥ कुवलयाश्वने कहा हे भगवन् ! आपके प्रसादसे मेरे घरमें प्रार्थनीय समस्तही वस्तु विद्यमान हैं. और विशेष करके इस समय आपका दर्शन करनेसे वह भली भांति समस्त वस्तु मुझको लाभ होगई ॥ १६॥ आप देवते हैं मैं मनुष्य होकरभी जो आपके अंगसंगको प्राप्त हुआ इससे मैं अपनेको कृतार्थ मानता हूं और इससे मेरा जीवनधारणभी सफल होगया ॥ १७ ॥

हे पन्नगेश्वर ! आपकी चरणरेणुने जो मेरे मस्तकके स्थानका अधिकार किया है. इससे मुझको कौनसी वस्तु नहीं मिली ॥ १८ ॥ तो भी मुझको यदि आप अभिलषित वर देना कर्त्तव्य समझते हैं तो यही वर दीजिये कि, मेरे अन्तरसे पुण्य कर्मका संस्कार किसी समयमें दूर न हो ॥ १९ ॥ मेरे विचारमें सुवर्ण मणि रत्नादि वाहन गृह आसन स्त्री अन्न पान पुत्र मनोहर माल्य और अनुलेपन ॥ २० ॥ एवं गीत वाद्य इत्यादि अन्यान्य सब अभिलषित वस्तु सह सबही पुण्यरूप वनस्पतिका फल है ॥ २१ ॥ अत एव कृतचित्त हो उसकी जडके सेवन करनेका यत्न करना सब मनुष्योंका कर्त्तव्य है

ममोत्तमांगे त्वत्पादरजसा यदिहास्पदम् ॥ कृतं तेनैव न प्राप्तं किं मया पन्नगेश्वर ॥ १८ ॥ यदि त्ववश्यं दातव्यो वरो मे मनसेप्सितः ॥ तत्पुण्यकर्मसंस्कारो हृदयान्मा व्यपैतु मे ॥ १९ ॥ सुवर्णमणिरत्नादि वाहनं गृहमासनम् ॥ स्त्रियोऽन्नपानं पुत्राश्च चारुमाल्यानुलेपनम् ॥ २० ॥ एते च विविधा भोगा गीतवाद्यादिकं च यत् ॥ सर्वमेतन्मम मतं फलं पुण्यवनस्पतेः ॥ २१ ॥ तस्मान्नरेण तन्मूलसेके यत्नः कृतात्मना ॥ कर्त्तव्यः पुण्यसक्तानां न किंचिद्भुवि दुर्लभम् ॥ २२ ॥ अश्वतर उवाच ॥ एवं भविष्यति प्राज्ञ तव धर्माश्रिता मतिः ॥ सत्यं चैतत्फलं सर्वं धर्मस्योक्तं यथा त्वया ॥ २३ ॥ तथाप्यवश्यं मद्गेहमागतेन त्वयाधुना ॥ ग्राह्यं यन्मानुषे लोके दुष्प्रापं भवतो मतम् ॥२४॥ पुत्र उवाच ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स तदा नृपनंदनः ॥ मुखावलोकनं चक्रे पन्नगेश्वरपुत्रयोः ॥२५॥ ततस्तौ प्रणिपत्योभौ राजपुत्रस्य यन्मतम् ॥ तात्पितुः सकलं वीरौ कथयामासतुः स्फुटम् ॥ २६ ॥

जो मनुष्य पुण्यासक्त हैं पृथ्वीमें उनके निकट कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है ॥ २२ ॥ अश्वतरने कहा हे प्राज्ञ ! यही होगा तुम्हारा मन सदाही धर्मपथ अवलम्बन करके रहेगा तुमने जो जो कहा सबही सत्य है वरन यही धर्मका एकमात्र फल है ॥ २३ ॥ तथापि जब तुम मेरे घर आये हो तो नरलोकमें जो तुमको दुष्प्राप्य हो वह तुमको अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये ॥ २४ ॥ जडने कहा–राजपुत्रने पन्नगपतिका यह वचन सुनकर उनके पुत्रोंके मुखकी ओर देखा ॥ २५ ॥ तब उन दोनोंने प्रणामपूर्वक राजकुमारकी जो कुछ इच्छा थी वह सब स्पष्ट रूपसे पिताके निकट निवेदन करी ॥ २६ ॥

दोनों पुत्र बोले इनकी प्रियतमा पत्नीने किसी दुरात्मा दानवसे छली जाकर इनका मृत्यु संवाद सुन परम प्रियतम जीवन विसर्जन किया है ॥ २७ ॥ कुबुद्धि दैत्यने वैर करके ही ऐसा आचरण किया था. इनकी प्रणयिनीका नाम मदालसा था, वह गन्धर्वपतिकी कन्या थी ॥ २८ ॥ हे पितः ! मदालसाके प्राण परित्याग करनेपर इन्होंने उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाशकी वासनासे यह प्रतिज्ञा करी है मदालसाके अतिरिक्त और किसी स्त्रीको पत्नीरूपमें ग्रहण नहीं करूंगा ॥ २९ ॥ यह महावीर ऋतध्वज उस सर्वांगसुंदरीको देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक हैं. हे तात ! यदि ऐसा करसके तो इनका यथार्थ उपकार हो ॥ ३० ॥ अश्वतरने कहा एकवार पंचभूत सहितोंके वियोग होनेपर फिर पूर्ववत् संयोग होना स्वप्न वा शम्बरकी रची आसुरी मायाके अति-

तातास्य पत्नी दयिता श्रुत्वेमं विनिपातितम् ॥ अत्यजद्दयिता प्राणान्विप्रलब्धा दुरात्मना ॥२७॥ केनापि कृतवैरेण दानवेन कुबुद्धिना ॥ गंधर्वराजस्य सुता नाम्नाख्याता मदालसा ॥ २८ ॥ कृतज्ञोऽयं ततस्तात प्रतिज्ञां कृतवानिमाम् ॥ नान्या भार्या भवित्री मे वर्जयित्वा मदालसाम् ॥ २९ ॥ द्रष्टुं तां चारुसर्वांगीमयं वीरो ऋतध्वजः ॥ तात वांछति यद्येतत्क्रियते तत्कृतं भवेत् ॥ ३० ॥ अश्वतर उवाच ॥ भूतैर्वियोगिनो योगस्तादृशैरेव तादृशः ॥ कथमेतद्विना स्वप्नं मायां वा शंबरोदिताम् ॥ ३१ ॥ पुत्र उवाच ॥ प्रणिपत्य भुजंगेशं पुत्रः शत्रुजितस्ततः ॥ प्रत्युवाच महात्मानं प्रेमलज्जासमन्वितः ॥ ३२ ॥ मायामयीमप्यधुना मम तातो मदालसाम् ॥ यदि दर्शयते मन्ये परं कृतमनुग्रहम् ॥ ३३ ॥ अश्वतर उवाच ॥ तस्मात्पश्येह वत्स त्वं मायां चेद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ अनुग्राह्यो भवान्गेहे बालोऽप्यभ्यागतो गुरुः ॥ ३४ ॥

रिक्त अन्य किसी प्रकार सम्भव नहीं है ॥ ३१ ॥ जडने कहा—तब शत्रुजित्नन्दन ऋतध्वजने महात्मा भुजंगपतिको प्रणाम करके प्रेम और लज्जासहित कहा ॥ ३२ ॥ हे तात ! आप यदि इस समय उस मदालसाको माया करकेभी दिखासके तो मैं जानूंगा कि आपने मेरे प्रति परम अनुग्रह किया ॥ ३३ ॥ अश्वतर बोले हे वत्स ! यदि माया देखनेकी इच्छा हो तो देखिये क्योंकि तुम इस प्रकार अनुग्रहके पात्र हो यद्यपि बालक होकर भी मेरे घर आये हो तथापि अतिथि होनेसे गुरुके समान माननीय हो ॥ ३४ ॥

पन्नगराजने यह कहकर उस घरमें छिपीहुई मदालसाको उस स्थानमें बुलाया और राजकुमारको दिखाया ॥ ३५ ॥ तथा सबको मोहित करनेके लिये कुछेक वृथा अव्यक्त मंत्र उच्चारणपूर्वक राजकुमारको मदालसा दिखाकर कहा हे वत्स ! तुम्हारी पत्नी मदालसा यही तो नहीं है तुम देखो ॥ ३६ ॥ राजकुमार मदालसाको देखते ही लज्जा छोड तत्काल प्रिये ! यह वचन कहते कहते उसके सन्मुख हुए ॥ ३७ ॥ अश्वतरने यह देख शीघ्र उनको निषेध करके कहा ! हे पुत्र ! यह माया है, इसको स्पर्श न करना मैंने पहलेही कहा है ॥ ३८ ॥ स्पर्शादि करते ही माया तत्काल अन्तर्धान होजाती है यह

पुत्र उवाच ॥ आनयामास नागेंद्रो गृहे गुप्तां मदालसाम् ॥ दर्शयामास च तदा राजपुत्राय तां शुभाम् ॥ ३५ ॥ तेषां संमोहनार्थाय जजल्प च ततः स्फुटम् ॥ सेयं न वेति ते भार्या राजपुत्र मदालसा ॥ ३६ ॥ जड उवाच ॥ स दृष्ट्वा तां तदा तन्वीं तत्क्षणाद्विगतत्रपः ॥ प्रियेति तामभिमुखं ययौ वाचमुदीरयन् ॥ ३७॥ निवारयामास च तं नागः सोऽश्वतरस्त्वरन् ॥ अश्वतर उवाच ॥ मायेयं पुत्र मा स्प्राक्षीः प्रागेव कथितं तव ॥ ३८ ॥ अंतर्द्धानमुपैत्याशु माया संस्पर्शनादिभिः ॥ ततः पपात मेदिन्यां स तु मूर्च्छापरिप्लुतः ॥ ३९ ॥ हा प्रियेति वदन्सोऽथ चिंतयामास भामिनीम् ॥ मोहो ममायं नो वेति नालं प्रत्ययवानहम् ॥ ४० ॥ अहो ममेत्यहं चेति बलं प्रत्यययोर्महत् ॥ येनाहं पातनोऽरीणां विना शस्त्रं निपातितः ॥ ४१ ॥ ममेति दर्शितानेन मिथ्यामायेति विस्फुटम् ॥ वाय्वंबुतेजसां भूमेराकाशस्य च चेष्टया ॥ ४२ ॥ पुत्र उवाच ॥ ततः कुवलयाश्वं स समाश्वास्य भुजंगमः ॥ कथयामास तत्सर्वं मृतसंजीवनादिकम् ॥ ४३ ॥

वचन सुनतेही ऋतध्वज मूर्च्छित हो पृथ्वीमें गिरगये ॥ ३९ ॥ और हा प्रिये कहकर उसकी चिन्ता करने लगे क्या मुझको मोह होगया है वा कुछ और है, विश्वास नहीं होता ॥ ४० ॥ यह मेरी ही है यह मुझे बलपूर्वक विश्वास होता है जिसने मुझ अरियोंका निपातन करनेवालेको विना शस्त्र निपातन किया है ॥ ४१ ॥ मुझे इन्होंने प्रत्यक्ष मिथ्या माया दिखाई है वा वायु जल तेज आकाशकी यह चेष्टा है ॥ ४२ ॥ जडने कहा—अनन्तर भुजंगपति अश्वतरने राजकुमार कुवलयाश्वको समझा बुझाकर जिस प्रकारसे मृत मदालसाको फिर जीवित किया था वह सबही कहा ॥ ४३ ॥

तब कुवलयाश्व अपनी प्रणयिनीको पानेसे अत्यन्त आनन्दित हुए और अपने अश्वरत्नको स्मरण किया स्मरण करते ही वह अश्व उस स्थानमें आनकर उपस्थित हुआ तब राजकुमारने पन्नगपतिको प्रणाम कर स्त्रीसहित घोडेकी पीठपर चढ अपने शोभायमान पुरको प्रस्थान किया ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य निरन्तर भक्तिपूर्वक इस कथाको सुनते हैं वह वेदपाठके फलको अवश्य प्राप्त होते हैं जो पृथ्वीमें बडा दुर्लभ है ॥ ४५ ॥ उसको सब कामकी प्राप्ति और नित्य सुख मिलता है और उस पुरुषको लोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ॥ ४६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ पुत्रने कहा ऋतध्वजने अपने पुरमें पहुँचकर परलोकगत मदालसाको जिस प्रकार फिर पाया था वह समस्त पिता माताके निकट

ततः प्रहृष्टः प्रतिलभ्य कांतां प्रणम्य नागं निजमाजगाम ॥ संस्तूयमानः स्वपुरं तमश्वमारुह्य संचिंतितमभ्युपेतम् ॥ ४४ ॥ शृणुयाद्भक्तिपूर्वं यो नैरंतर्येण मानवः ॥ वेदघोषफलं तेन प्राप्तं वै भुवि दुर्लभम् ॥ ४५ ॥ संप्राप्नोति सुखं नित्यं सर्वकामसमन्वितः ॥ लोके च दुर्लभं तस्य नास्ति किंचिन्न विद्यते ॥ ४६ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे मदालसोपाख्याने पुनर्मदालसां प्राप्य पातालान्निर्गमो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ पुत्र उवाच ॥ आगम्य स्वपुरं सोऽथ पित्रोः सवमशेषतः ॥ कथयामास तन्वंगी यथा प्राप्ता पुनर्मृता ॥१॥ ननाम सापि चरणौ श्वश्रूश्वशुरयोः शुभा ॥ स्वजनं च यथापूर्वं वंदनाश्लेषणादिभिः ॥ २ ॥ पूजयामास तन्वंगी यथा न्यायं यथा वयः ॥ ततो महोत्सवो जज्ञे पौराणां तत्र वै पुरे ॥ ३ ॥ ऋतध्वजश्च सुचिरं तया रेमे सुमध्यया ॥ निर्झरेषु च शैलानां निम्नगापुलिनेषु च ॥ ४ ॥ काननेषु च रम्येषु वनेषूपवनेषु च ॥ पुण्यक्षयं वांछमाना सापि कामोपभोगतः ॥ ५ ॥

आनुपूर्विक वर्णन किया ॥ १ ॥ कल्याणी कृशांगी मदालसाने भी सास और श्वशुरके चरणोंमें प्रणाम करके ॥ २ ॥ अवस्था और गुरुत्वानुसार स्वजनोंकी यथायोग्य वन्दना और आलिंगनादि करके पूजा करी तदनन्तर पुरीमें पुरवासियोंका महोत्सव प्रवृत्त हुआ ॥ ३ ॥ इस ओर राजकुमार ऋतध्वजने सुमध्यमा मदालसाके संग गिरिनिर्झर नदीपुलिन ॥ ४ ॥ और मनोहर वन उपवनमें बहुत कालतक विहार किया मदालसा भी कामोपभोगद्वारा पुण्यक्षयकी वासनासे ॥ ५ ॥

मनोहर कान्ति ऋतध्वजके संग अनेक प्रकारके मनोहर स्थानोंमें विहार करने लगी. इस प्रकार बहुत दिन बीतनेपर नरपति शत्रुजित् ॥ ६॥ विधानानुसार पृथ्वीका शासन कर कालधर्मके वशीभूत हुए तब पुरवासियोंने उनके पुत्र ॥ ७॥ उदाराचारचेष्टित महात्मा ऋतध्वजको राज्यपदमें प्रतिष्ठित किया। कुमार भी औरस पुत्रकी समान सम्यक् प्रकारसे प्रजापालन करने लगे ॥ ८ ॥ इसी समयमें मदालसाके गर्भसे प्रथम पुत्रने जन्मग्रहण किया पिताने उस मतिमान् पुत्रका नाम "विक्रान्त" रक्खा ॥ ९ ॥ पुत्रसन्तान होनेसे भृत्यगण अत्यन्त प्रसन्नताको प्राप्त हुए और मदालसा हँसने लगी उस पुत्रके पैर फैलाकर सोनेमें तथा ॥ १० ॥ अस्फुटस्वरसे क्रन्दन करनेमें प्रवृत्त होनेपर मदालसा उसको समझानेके मिससे कहने लगी हे वत्स ! तुम शुद्ध और नामहीन

सह तेनातिकांतासु रेमे रम्यासु भूमिषु ॥ ततः कालेन महता शत्रुजित्स नराधिपः ॥ ६ ॥ सम्यक् प्रशास्य वसुधां कालधर्ममुपेयिवान् ॥ ततः पौरा महात्मानं पुत्रं तस्य ऋतुध्वजम् ॥ ७ ॥ अभ्यषिंचंत राजानमुदाराचारचेष्टितम् ॥ सम्यक्पाल्यतस्तस्य प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ ८ ॥ मदालसायाः संजज्ञे पुत्रः प्रथमजस्ततः ॥ तस्य चक्रे पिता नाम विक्रांत इति धीमतः ॥ ९ ॥ तुतुषुस्तेन वै भृत्या जहास च मदालसा ॥ सा वै मदालसा पुत्रं बालमुत्तानशायिनम् ॥ १० ॥ उल्लापनच्छलेनाह रुदमानमविस्वरम् ॥ शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम कृतं च ते कल्पनयाधुनैव ॥ ११ ॥ पंचात्मकं देहमिदं न तेऽस्ति नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः ॥ न वा भवान्रोदिति वै स्वजन्मा शुद्धोयमासाद्य महीसमूहम् ॥ १२ ॥ विकल्प्यमानो विविधैर्गुणार्थैर्गुणाश्च भौताः सकलेंद्रियेषु ॥ भूतानि भूतैः परिदुर्बलानि वृद्धिं समायांति यथेह पुंसः ॥ १३ ॥

हो अब कल्पनामात्रकी सहायतासे ही तुम्हारा नामकरण हुआ है ॥ ११ ॥ तुम इस देहको पंचभूतात्मक जानना अतएव यह देह जिस प्रकार तुम्हारा नहीं है तुम इसी प्रकार इसके भी नहीं हो सुतरां तुम किस कारण रुदन करते हो ? वा तुम क्रन्दन नहीं करते यह शब्द इन राजकुमारको आश्रय करके स्वयंही आविर्भूत होता है ॥ १२ ॥ नाना प्रकार भौतिक गुण और अगुण सब तुम्हारी इन्द्रियोंमें विकल्पित हुए हैं अतीव दुर्लभ भूतसमूह जिस प्रकार भूतकी सहायतासे अन्न और जलदानादि द्वारा वर्द्धित होते हैं ॥ १३ ॥

इस जलादिकी समान तुम्हारी उस प्रकार वृद्धि वा क्षय कुछ नहीं है तुम्हारा यह देह आच्छादन मात्र है यह भी शीर्ण हो जायगा इसलिये तुम मोहमें अभिभूत नहीं होना ॥ १४ ॥ शुभाशुभ कर्मसे ही अपने शरीरमें यह आच्छादन हुआ जानो क्या पिता क्या पुत्र क्या माता क्या स्त्री क्या आत्मीय ॥ १५॥ क्या अपना कोई कुछ नहीं है तुम इनका बहुत मान नहीं करना जो पुरुष मूढचित्त हैं वही दुःखको दुःखोपशमका हेतु और भोगोंको सुखका कारण समझते हैं ॥ १६ ॥ जो पुरुष अविद्यासे अन्धे हैं वही मोहाच्छन्न चित्त हैं, वह उस दुःखको ही सुख जानते हैं स्त्रीके हँसनेमें अस्थि दिखाई देती है उसके नेत्रोंमें वसाकी कलुषता दिखाई देती है ॥ १७ ॥ उसके पीनोन्नत स्तनादि भी घन मांसपिण्डमात्र हैं. उसका रतिस्थान भी वैसाही है. सुतरां

अन्नांबुपानादिभिरेव कस्य न तेऽस्ति वृद्धिर्न च तेऽस्ति ह्यानिः ॥ त्वं कंचुके शीर्यमाणे निजेऽस्मिंस्तस्मिन्स्वदेहे मूढतां मा व्रजेथाः ॥ १४ ॥ शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढैः कंचुकस्ते पिनद्धः ॥ तातेति किंचित्तनयेति किंचिदंबेति किंचिद्दयितेति किंचित् ॥ १५ ॥ ममेति किंचिन्न ममेति किंचिद्भौतं संघं बहुधा मा लपेथाः ॥ दुःखानि दुःखोपगमाय भोगान्सुखाय जानाति विमूढचेताः ॥ १६ ॥ तान्येव दुःखानि पुनः सुखानि जानाति विद्वानविमूढचेताः ॥ हासोऽस्थिसंदर्शनमक्षियुग्ममत्युज्ज्वलं यत्कलुषं वसायाः ॥ १७ ॥ कुचादिपीनं पिशितं घनं तत्स्थानं रतेः किं नरको न योषित् ॥ यानं क्षितौ यानगतश्च देहो देहेऽपि चान्यः पुरुषो निविष्टः ॥१८॥ ममत्वमुर्व्यां न तथा यथा स्वे देहेऽतिमात्रं च विमूढतैषा ॥१९॥ त्यज धर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज ॥ उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तत्त्यज ॥ २० ॥ वर्धमानं सुतं सा तु राजपत्नी दिने दिने ॥ तमुल्लापादिना बोधमनयन्निर्मलात्मकम् ॥ २१ ॥

रमणी क्या साक्षात् नरकस्वरूप नहीं है ? भूमिमें यान, यानमें देह और उसी देहमें अन्य पुरुष निविष्ट रहता है ॥ १८ ॥ जैसी अपने देहमें ममता है ऐसी तो पृथ्वीमें भी नहीं मानता यही मूढता है. कारण कि, देह पृथ्वीका सूक्ष्म अंश मात्र है ॥ १९ ॥ धर्म अधर्म सत्य अनृत त्यागन करो इन दोनोंके त्यागन करनेके उपरान्त जिससे त्यागन किया जायगा उसे त्यागन करो ॥ २० ॥ जडने कहा--इस प्रकार पुत्र दिन दिन जिस प्रकार वृद्धिको प्राप्त होने लगा राजमहिषी मदालसा भी उसी प्रकार खिलानेके बहाने उस निर्मलात्मा पुत्रको आतमबोध ॥ २१ ॥

देनेमें प्रवृत्त हुई पुत्र क्रम क्रमसे जिस प्रकार पिताके समीप बल और बुद्धिको प्राप्त हुआ माताके उपदेशसे भी उसी प्रकार आत्मज्ञान लाभ करने लगा ॥ २२ ॥ जननीके समीप जन्मसे आत्मज्ञानविषयमें उपदेशको प्राप्त होकर ज्ञानोदय और ममता दूर होनेसे कुमार गार्हस्थ्य धर्ममें एकबार ही स्पृहा-रहित होगये ॥ २३ ॥ कुछ काल पीछे मदालसाके गर्भसे दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, पिताने इस पुत्रका नाम " सुबाहु " रक्खा. उस समयभी मदालसा हँसी ॥ २४ ॥ वह उस पुत्रको भी बाल्यावस्थासे पूर्वोक्तनियमानुसार आत्मबोधप्रदान करने लगी. इस कारण दूसरे पुत्रका मन भी वैसाही ज्ञानलाभ करके विरक्त होगया ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त तीसरे पुत्रके उत्पन्न होनेपर नरपतिने उसका नाम " शत्रुमर्दन " रक्खा. पुत्रका नाम सुनकर सुभ्रू मदालसा

यथा यथा बलं लेभे यथा लेभे मतिं पितः ॥ तथा तथात्मबोधं च सोऽवापन्मातृभाषितैः ॥ २२ ॥ इत्थं तया स तनयो जन्मप्रभृति बोधितः ॥ चकार न मतिं प्राज्ञो गार्हस्थ्यं प्रति निर्ममः ॥ २३ ॥ द्वितीयोऽस्याः सुतो जज्ञे तस्य नामाकरोत्पिता ॥ सुबाहुरयमित्युक्ते सा जहास मदालसा ॥ २४ ॥ तमप्येवं यथापूर्वं बालमुल्लापवादिनी ॥ प्राह बाल्यात्स च प्राप तथा बोधं महामतिः ॥ २५ ॥ तृतीयं तनयं जातं तं राजा शत्रुमर्दनम् ॥ यदाह तेन सा सुभ्रूर्जहासातिचिरं पुनः ॥ २६ ॥ तथैव सोऽपि तन्वंग्या बालत्वादेव बोधितः ॥ क्रिया-श्चकार निष्कामा न किंचित्फलकारणम् ॥ २७ ॥ चतुर्थस्य सुतस्याथ चिकीर्षुर्नाम भूपतिः ॥ ददर्श तां शुभाचारामीषद्धासां मदाल-साम् ॥ २८ ॥ तामाह राजा हसंतीं किंचित्कौतूहलान्वितः ॥ क्रियमाणेऽसकृन्नाम्नि कथ्यतां हास्यकारणम् ॥ २९ ॥ विक्रांतश्च सुबा-हुश्च यथान्यः शत्रुमर्दनः ॥ शोभनानीति नामानि तानि मन्ये कृतानि वै ॥ ३० ॥

बहुत समयतक हँसती रही ॥ २६ ॥ कृशाङ्गी मदालसा इस पुत्रको भी बाल्यकालसे पूर्ववत् आत्मज्ञान प्रदान करने लगी, तब यह कुमारभी निष्काम और क्रियाहीन हो गया ॥ २७ ॥ अन्तमें चौथे पुत्रके उत्पन्न होनेपर राजाने उसके नामकरणमें उत्सुक हो मदालसाकी ओर देखा, मदालसा कुछेक हँसी ॥ २८ ॥ तब राजाने यह देख कौतूहलके वश होकर कहा पुत्र उत्पन्न होनेके पीछे मेरे नामकरणमें समुद्यत होतेही तुम हँसती हो इसका क्या कारण है ? ॥ २९ ॥ मैंने पुत्रोंका जो विक्रान्त सुबाहु और शत्रुमर्दन नाम रक्खा है मेरे विचारसे यह नाम सब प्रकार युक्तिसंगत हुए हैं ॥ ३० ॥

मा० पु०

॥९९॥

क्योंकि क्षत्रियोंका शौर्य और दर्पसंयुक्त नाम रखना उपयुक्त है, जो हो ! हे भद्रे ! यदि यह तीनों नाम तुम्हारे विचारमें उत्तम न हों ॥ ३१ ॥ तो तुम स्वयं चौथे पुत्रका नामकरण करो, मदालसाने कहा हे राजन् ! आपकी आज्ञा प्रतिपालन करना मेरा सर्वथा कर्त्तव्य है ॥ ३२ ॥ अत एव आप जिस प्रकार कहते हैं, उसके अनुसार मैं ही चौथे पुत्रका नामकरण करूंगी यह धर्मज्ञ पुत्र " अलर्क " नामसे पृथ्वीतलमें विख्यात होगा ॥ ३३ ॥ आपका यह कनिष्ठ पुत्र महाबुद्धिमान् होगा । पुत्र बोला–माताने पुत्रका " अलर्क " यह नामकरण किया यह असंबद्ध नाम सुनकर ॥ ३४ ॥ महीपतिने हँसते

योग्यानि क्षत्रबंधूनां शौर्याटोपयुतानि च ॥ असंत्येतानि वै भद्रे यदि ते मनसि स्थितम् ॥ ३१ ॥ तदस्य क्रियतां नाम चतुर्थस्य सुतस्य मे ॥ मदालसोवाच ॥ मयाज्ञा भवतः कार्या महाराज यथात्थ माम् ॥ ३२ ॥ तथा नाम करिष्यामि चतुर्थस्य सुतस्य ते ॥ अलर्क इति धर्मज्ञः ख्यातिं लोके गमिष्यति ॥ ३३ ॥ कनीयानेष ते पुत्रो मतिमांश्च भविष्यति ॥ पुत्र उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा नाम पुत्रस्य कृतं मात्रा महीपतिः ॥ ३४ ॥ अलर्क इत्यसंबद्धं प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥ भवत्या यदिदं नाम मत्पुत्रस्य कृतं शुभे ॥ ३५ ॥ किमीदृशमसंबद्धमर्थः कोऽस्य मदालसे ॥ मदालसोवाच ॥ कल्पनेयं महाराज कृता सा व्यावहारिकी ॥ ३६ ॥ त्वत्कृतानां तथा नाम्नां शृणु भूप निरर्थताम् ॥ वदंति पुरुषाः प्राज्ञा व्यापिनं पुरुषं सतः ॥ ३७ ॥ क्रांतिश्च गतिरुद्दिष्टा देशाद्देशांतरं तु या ॥ सर्वगो न प्रयातीह व्यापी देहेश्वरो यतः ॥ ३८ ॥

भा० टी०

अ० २३

हँसते कहा हे कल्याणी ! तुमने मेरे पुत्रका जो नामकरण किया ॥ ३५ ॥ यह अत्यन्त असंबद्ध है. हे मदालसे ! इसका क्या अर्थ है ! मदालसा बोली, हे महाराज ! नामकरण लोकाचार और कल्पना मात्र है ॥ ३६ ॥ हे भूप ! " नाम रखना होगा " यह समझकर एक नाम रख लिया आपने जो सब नाम रक्खे हैं, उनका भी किसी प्रकार अर्थ नहीं है. सुनिये–जो पुरुष पण्डित हैं, वह आत्माको सर्वव्यापी कहते हैं ॥ ३७ ॥ एक देशसे अन्य देशकी गतिकोही क्रान्ति कहते हैं आत्मा सर्वगत सर्वव्यापी और देहका ईश्वर है सुतरां उसकी गति संभव नहीं है ॥ ३८ ॥

इस कारणही मेरे विचारमें विक्रान्त नामका कोई अर्थ नहीं है। हे महीपते! आत्मा सब प्रकार मूर्त्तिहीन है अतएव आपने जो दूसरे पुत्रका सुबाहु नाम-करण किया है ॥ ३९ ॥ उसकाभी किसी प्रकार अर्थ न हो सकताहै तीसरे पुत्रका जो अरिमर्दन नाम रक्खाहै ॥ ४० ॥ मेरे विचारमें वहभी निरर्थक है उसका कारण सुनिये एक मात्र आत्मा समस्त शरीरोंमें विराजमान रहता है ॥ ४१ ॥ सुतरां उसका शत्रु वा मित्र कौन सम्भावना कर सकताहै भूतके द्वाराही भूतगण मर्दित होते हैं जो मूर्त्तिहीन है उसका फिर मर्दन किस प्रकार संभव हो सकता है ? ॥ ४२ ॥ क्रोध इत्यादिका पृथग्भाव होनेसे यह कल्प-

ततो विक्रांतसंज्ञेयं मता मम निरर्थिका ॥ सुबाहुरिति या संज्ञा कृतान्यस्य सुतस्य ते ॥३९॥ निरर्था साप्यमूर्त्तस्य पुरुषस्य महीपते ॥ पुत्रस्य यत्कृतं नाम तृतीयस्यारिमर्दनः ॥४०॥ मन्ये तच्चाप्यसंबद्धं शृणु वाप्यत्र कारणम् ॥ एक एव शरीरेषु सर्वेषु पुरुषो यदा ॥४१॥ तदास्य राजन्कः शत्रुः को वा मित्रमिहेष्यते ॥ भूतैर्भूतानि मर्द्यंते अमूर्त्तो मर्द्यते कथम् ॥४२॥ क्रोधादीनां पृथग्भावात्कल्पनेयं निर-र्थिका ॥ यदि संव्यवहारार्थमसन्नाम प्रकल्प्यते ॥ ४३ ॥ नाम्नि कस्मादलर्काख्ये नैरर्थ्यं भवतो मतम् ॥ एवमुक्तस्तया साधु महिष्या स महीपतिः ॥ ४४ ॥ तथेत्याह महाबुद्धिर्दयितां तथ्यवादिनीम् ॥ तं चापि सा सुतं सुभ्रूर्यथा पूर्वसुतांस्तथा ॥ ४५ ॥ प्राहावबोधजननं तामुवाच स पार्थिवः ॥ करोषि किमिदं मूढे ममाभावाय संततेः ॥ ४६ ॥

नाभी निरर्थक है अर्थात् आत्मा सब प्रकार दोषरहित है वह किस शत्रुको मर्दन करेगा ? यदि लोकाचारके कारणही इस प्रकार अर्थहीन नामकी कल्पना करी जाती है ॥ ४३ ॥ तो मैंने जो " अलर्क " नाम रक्खा है वह किस प्रकार आपके मतसे अर्थहीन हो सकता है ? महिषीके इस प्रकार साधुवाक्य उच्चारण करनेपर महाबुद्धि महीपतिने ॥ ४४ ॥ सत्यभाषिणी दयितासे कहा तुमने जो जो कहा सब सत्य है अतन्तर सुभ्रू मदालसा चौथे पुत्रकोभी पहिले तीनोंकी समान ॥ ४५ ॥ आत्मज्ञानकी शिक्षा देनेमें उद्यत हुई तब महीपतिने कहा हे मूढे ! यह क्या करती है मेरी सन्तानका अभाव करती है ॥ ४६ ॥

इस प्रकार दूषणीय आत्मज्ञान देकर पहिले पुत्रोंका जिस प्रकार अमंगल विधान किया है इस पुत्रको भी क्या वैसाही करेगी ? मेरा प्रिय अनुष्ठान करना यदि तुम कर्त्तव्य समझती हो और मेरा वचन प्रतिपालन करना यदि उचित समझती हो ॥ ४७॥ तो इस पुत्रको प्रवृत्तिमार्गमें नियोजित करो । हे देवी ! पुत्रको कर्ममार्गमें प्रवृत्त करनेसे कर्ममार्ग नष्ट नहीं होगा ॥ ४८ ॥ हे साध्वी ! तो पिण्डके लुप्त होनेकी भी सम्भावना नहीं है पितृगण शुभाशुभकर्मवश सुरलोकमें वास तिर्यग्योनि सम्भोग ॥ ४९ ॥ नरत्वप्राप्ति और दूसरी योनियोंमें संक्रमणपूर्वक भूख प्याससे अत्यन्त कातर और क्षीण होनेपर ॥ ५० ॥ मनुष्य कर्ममार्गमें अवस्थित होकर पिण्डोदक समर्पण कर सदा उनका और उन्हींके अनुसार देवता और अतिथिगणोंका सम्यक् प्रीतिविधान करते हैं ।

दुष्टावबोधदानेन यथा पूर्वसुतेषु मे ॥ यदि ते मत्प्रियं कार्यमनुग्राह्यं वचो मम ॥ ४७ ॥ तदेनं तनयं मार्गे प्रवृत्तं सन्नियोजय ॥ कर्ममार्गः समुच्छेदं नैव देवि गमिष्यति ॥ ४८ ॥ पितृपिण्डनिवृत्तिश्च नैव साध्वि भविष्यति ॥ पितरो देवलोकस्थास्तथा तिर्यक्त्वमागताः ॥ ४९ ॥ तद्वन्मनुष्यतां याता भूतवर्गेषु ये स्थिताः ॥ सपुण्यानसपुण्यांश्च क्षुत्क्षामांस्तृट्परिप्लुतान् ॥ ५० ॥ पिंडोदकप्रदानेन नरः कर्मण्यवस्थितः ॥ सदाप्याययते सुभ्रूस्तद्वद्देवातिथीनपि ॥ ५१ ॥ देवैर्मनुष्यैः पितृभिः प्रेतैर्भूतैः सगुह्यकैः ॥ वयोभिः कृमिभिः कीटैर्नर एवोपजीव्यते ॥ ५२ ॥ तस्मात्तन्वंगि मे पुत्रं यत्कार्यं क्षत्रयोनिभिः ॥ ऐहिकामुष्मिकायालं तत्कर्म प्रतिपादय ॥ ५३ ॥ तेनैवमुक्ता सा साध्वी वरनारी मदालसा ॥ अलर्कं नाम तनयं प्रोवाचोल्लापवादिनी ॥ ५४ ॥ पुत्र वर्द्धस्व मे भर्त्तुर्मनो नंदय कर्मभिः ॥ ऐहिकामुष्मिकफलं तत्सम्यक्परिपालय ॥ मित्राणामुपकाराय दुर्हृदां नाशनाय च ॥ ५५ ॥

बरन क्या देवता क्या मनुष्य क्या पितृगण क्या प्रेत क्या भूत क्या गुह्यक क्या पक्षी क्या कृमि कीट सबही मनुष्यको आश्रय करके जीवका निर्वाह करते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ अतएव हे तन्वङ्गी ! क्षत्रियोंको जो कर्त्तव्य है और जो ऐहिक पारलौकिक फललाभार्थ उचित है मेरे इस पुत्रको वैसीही शिक्षा दो ॥ ५३ ॥ वरनारी मदालसाने पतिका यह वचन सुनकर " अलर्क " नामक पुत्रसे खिलानेके बहाने कहा ॥ ५४ ॥ हे पुत्र ! वर्द्धित होओ मित्रोंके उपकारार्थ और शत्रुकुलके विनाशार्थ कर्मानुष्ठान द्वारा मेरे पतिका अन्तर आनन्दित करो ॥ ५५ ॥

हे पुत्र ! तुम धन्य हो क्योंकि तुम निःशत्रु होकर बहुतकाल पर्यन्त वसुमती (पृथ्वी) का पालन करो तुम्हारे पालन गुणसे सम्पूर्ण लोकोंको सुखसंचार होगा तो परम धर्मसंचयके कारण अमरत्वलाभ करसकोगे ॥ ५६ ॥ तुम प्रति पर्वके दिन ब्राह्मणोंका तृप्तिविधान करो बन्धुवर्गकी अभिलाषा पूर्ण करो हृदयमें पराये हितके साधनकी इच्छा करो और पराई स्त्रीमें मन नहीं लगाओ ॥ ५७ ॥ सदा मुरारिको हृदयमें ध्यान करो और उनके ध्यानसे अन्तःकरणके कामादि छः शत्रुओंको जीतो ज्ञानसे मायाको निवारण करो जगत्की अनित्यताको विचार करते रहो ॥ ५८ ॥ अर्थके प्राप्त होनेमें पांच वस्तुओंको

धन्योऽसि रे यो वसुधामशत्रुरेकश्चिरं पालयितासि पुत्र ॥ तत्पालनादिंद्रसमोपभोग्यं धर्मं फलं प्राप्स्यासि चामरत्वम् ॥ ५६ ॥ धरामरान्पर्वसु तर्पयेथाः समीहितं बंधुषु पूरयेथाः ॥ हितं परस्मै हृदि चिंतयेथा मनः परस्त्रीषु निवर्तयेथाः ॥ ५७ ॥ सदा मुरारिं हृदि चिंतयेथास्तद्ध्यानतोंतः षडरीञ्जयेथाः ॥ मायां प्रबोधेन निवारयेथा ह्यनित्यतामेव विचिंतयेथाः ॥ ५८ ॥ अर्थागमाय क्षितिपाञ्जयेथा यशोर्ज्जनायार्थमपि व्ययेथाः ॥ परापवादश्रवणाद्बिभीथा विपत्समुद्राज्जनमुद्धरेथाः ॥ ५९ ॥ यज्ञैरनेकैर्विबुधानजस्रमन्नैर्द्विजान्प्रीणय संश्रितांश्च ॥ स्त्रियश्च कामैरतुलैश्चिराय युद्धैश्चारींस्तोषयितासि वीर ॥ ६० ॥ बालो मनो नंदय बांधवानां गुरोस्तथाज्ञाकरणैः कुमारः ॥ स्त्रीणां युवा सत्कुलभूषणानां वृद्धो वने वत्स वनेचराणाम् ॥ ६१ ॥

जय करना और यश प्राप्तिके निमित्त व्यय करो पराई निन्दा सुननेसे डरो जनोंको विपत्तिके सागरसे उद्धार करो ॥ ५९ ॥ अनेक प्रकारके यज्ञानुष्ठान द्वारा देवताओंका एवं निरंतर दान देनेसे ब्राह्मण और आश्रित जनोंको प्रसन्न करो. हे वीर ! नाना प्रकारके अनुपमभोगद्वारा स्त्रीगण और संग्रामद्वारा शत्रुओंका सन्तोष साधन करोगे ॥ ६० ॥ तुम बालकपनमें बान्धवोंका, कौमारमें आज्ञापालनद्वारा पिता माताका, यौवनमें सत्कुलभूषण नारीका और बुढापेमें वनवासी होकर वनचरोंकी प्रीति साधन करोगे ॥ ६१ ॥

हे वत्स ! तुम राज्यपदमें प्रतिष्ठित होकर सुहृद्गणोंका आनन्द सम्पादन करोगे साधुओंकी रक्षा करके यज्ञानुष्ठान एवं गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षा विधानार्थ समरमें दुष्ट और शत्रुओंका विनाश करके परलोकमें प्रस्थान करोगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ पुत्रने कहा-जननी मदालसा इस प्रकार खिलानेके मिष जब नित्य उपदेश देनेमें उद्यत हुई तब बालक अलर्क बुद्धि और अवस्थासहित बढनेलगा ॥ १ ॥ क्रमानुसार कौमार अवस्था प्राप्त होनेपर महाबुद्धि ऋतध्वजनन्दन अलर्कने यज्ञोपवीतको प्राप्त हो मातासे प्रणाम करके कहा ॥ २ ॥ हे अम्ब ! मैं विनयपूर्वक पूंछताहूं ऐहिक और पारलौकिक दोनों सुखके निमित्त मुझको जिस प्रकार कार्यानुष्ठान करना उचित है वह तुम सब विस्तारसहित कहो ॥ ३ ॥

राज्यं कुर्वन्सुहृदो नंदयेथाः साधूत्रक्षंस्तात यज्ञैर्यजेथाः ॥ दुष्टान्निघ्नन्वैरिणश्चाजिमध्ये गोविप्रार्थे वत्स मृत्युं भजेथाः ॥ ६२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे प्रवृत्तिमार्गानुशासनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ पुत्र उवाच ॥ एवमुल्लाप्यमानस्तु स तु मात्रा दिने दिने ॥ ववृधे वयसा बालो बुद्ध्या चालर्कसंज्ञितः ॥ १ ॥ स कौमारकमासाद्य ऋतध्वजसुतस्तदा ॥ कृतोपनयनः प्राज्ञः प्रणिपत्याह मातरम् ॥ २ ॥ मया यदंब कर्त्तव्यमैहिकामुष्मिकाय वै ॥ सुखाय वद तत्सर्वं प्रश्रयावनतस्य मे ॥ ३ ॥ ममार्थं चैव धर्मार्थं प्रजानां चैव यद्धितम् ॥ श्रेयसे यच्च तत्सर्वं प्रजारंजनमादितः ॥ ४ ॥ मदालसोवाच ॥ वत्स राज्याभिषिक्तेन प्रजारंजनमादितः ॥ कर्त्तव्यमविरोधेन स्वधर्मश्च महीभृताम् ॥ ५ ॥ व्यसनानि परित्यज्य सत्यमूलहराणि वै ॥ आत्मा रिपुभ्यः संरक्ष्यो बहिर्मंत्रविनिर्गमात् ॥ ६ ॥ दुष्टादुष्टांश्च जानीयादमात्यानरिदोषतः ॥ अष्टधा नाशमाप्नोति स्वचक्रात्स्यंदनाद्यथा ॥ ७ ॥

मेरा धर्म अर्थ और प्रजाका जिस प्रकार हित हो और प्रजापालनसे मुक्तिकी प्राप्ति हो वह तुम सब यथायोग्य वर्णन करो। मदालसा बोली हे वत्स ! राज्य पदमें अभिषिक्त होकर अपने धर्मके अनुसार प्रजारंजन करनाही नरपतिका प्रथम कर्त्तव्य है ॥ ४ ॥ ५ ॥ सत्यके मूलविनाशक व्यसनोंको त्यागकरके जिससे किया हुआ मंत्र बाहर निकलकर शत्रुगण तिरस्कार न करसके इस प्रकारके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होकर शत्रुओंसे अपनी रक्षा करना परम कर्त्तव्य है ॥ ६ ॥ शत्रुके योगसे अमात्योंकी दुष्टता अदुष्टता जाने वक्र चक्रवाले रथसे गिरनेसे जैसे आठ प्रकारसे आघात होता है ॥ ७ ॥

उसी प्रकार राजा मन्त्रणा बाहर निकल जानेपर निःसन्देह क्षयको प्राप्त होता है शत्रुओंके दोषसे अमात्यवर्ग दूषित हुए हैं वा नहीं अर्थात् शत्रुओंने धनादि द्वारा अमात्यवर्गको दूषित किया है वा नहीं यत्नपूर्वक दूतोंके द्वारा राजाको यह अवश्य जानना चाहिये ॥ ८ ॥ क्या मित्र क्या आप्त क्या बन्धु किसीका विश्वास करना राजाको उचित नहीं है किन्तु कार्यवश समयान्तरमें शत्रुका भी विश्वास करना चाहिये ॥ ९ ॥ नरपतिको कामके वशीभूत न होकर स्थानवृद्धि और क्षय जानना उचित है और वह सन्धि विग्रहादि छः गुणोंमें गुणवान् हो ॥ १० ॥ प्रथम तो आपको, फिर अमात्यगणको, फिर भृत्यगण और फिर प्रजाको वशीभूत करके अन्तमें शत्रुओंसे विरोध करे ॥ ११ ॥ जो प्रथम आत्मा इत्या-

तथा राजाप्यसंदिग्धं बहिर्मंत्रविनिर्गमात् ॥ चरैश्चरास्तथा शत्रोरन्वेष्टव्याः प्रयत्नतः ॥ ८ ॥ विश्वासो न तु कर्तव्यो राज्ञा मित्राप्तबंधुषु ॥ कार्ययोगादमित्रेषु विश्वसीत नराधिपः ॥ ९ ॥ स्थानवृद्धिक्षयज्ञेन षाड्गुण्यविदितात्मना ॥ भवितव्यं नरेन्द्रेण न कामवशवर्तिना ॥ १० ॥ प्रागात्ममंत्रिणश्चैव ततो भृत्या महीभृता ॥ ज्ञेयाश्चानंतरं पौरा विरुध्येत ततोऽरिभिः ॥ ११ ॥ यस्त्वेतानाविजित्यैव वैरिणो विजिगीषते ॥ सो जितात्माजितामात्यः शत्रुवर्गेण बाध्यते ॥ १२ ॥ तस्मात्कामादयः पूर्वं जेयाः पुत्र महीभृता ॥ तज्जये हि जयो राज्ञो राजा नश्यति तैर्जितः ॥ १३ ॥ कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मानस्तथैव च ॥ हर्षश्च शत्रवो ह्येते नाशाय कुमहीभृताम् ॥ १४ ॥ कामप्रसक्तमात्मानं स्मृत्वा पांडुं निपातितम् ॥ निवर्त्तयेत्तथा क्रोधादनुह्रादं हतात्मजम् ॥ १५ ॥

दिको विना जीते शत्रुको पराजय करनेकी इच्छा करता है वह अजितात्मा राजा अमात्योंसे विजित होकर शत्रुओंके वशीभूत होता है ॥ १२॥ हे पुत्र ! इसी कारण प्रथम कामादि शत्रुओंको जीतना चाहिये उनको जीतनेसे अवश्यही जय प्राप्त होती है किन्तु कामादिके द्वारा परास्त होनेपर राजा नाशको प्राप्त हो जाताहै ॥ १३ ॥ काम क्रोध लोभ मद मान और हर्ष यही शत्रु और यही राजाके विनाशके कारण हैं ॥ १४ ॥ पांडुराजा कामके वश होकरही नष्ट हुये हैं, अनुह्रादको क्रोधके वश होकरही पुत्रधनसे वंचित होना पडाहै ॥ १५ ॥

लोभके वश होकरही ऐल विनाशको प्राप्त हुए हैं, मदके कारणही वेन राजाको ब्राह्मणोंके द्वारा निहत होना पडा है, अनायुषका पुत्र अभिमानके कारणही निपतित हुआ है और पुरंजयको हर्षके वश होकरही मरना पडा है ॥ १६ ॥ किन्तु महात्मा राजा मरुत्तने इन समस्त शत्रुओंको पराजय करके अखिल संसारको जीता था नरपति इन सबको स्मरण करके समस्त दोषोंको परित्याग करै ॥ १७ ॥ काक कोकिल भ्रमर मृग व्याल मयूर हंस कुक्कुट और लोह नरपति इनके निकटसे चरित शिक्षा ग्रहण करै ॥ १८ ॥ *राजा शत्रुके प्रति उलूक जिस प्रकार कोई आडम्बर न करके शत्रुओंको नष्ट करताहै शत्रुके

हतमैलं तथा लोभान्मदाद्वेनं द्विजैर्हतम् ॥ मानादनायुषः पुत्रं हतं हर्षात्पुरंजयम् ॥ १६ ॥ एभिर्जितैर्जितं सर्वं मरुत्तेन महात्मना ॥ स्मृत्वा विवर्जयेदेतान्षड्दोषांश्च महीपतिः ॥ १७ ॥ काककोकिलभृंगाणां बकव्यालशिखंडिनाम् ॥ हंसकुक्कुटलोहानां शिक्षेत चरितं नृपः ॥ १८ ॥ कौशिकस्य क्रियां कुर्याद्विपक्षे मनुजेश्वरः ॥ चेष्टां पिपीलिकानां च काले भूपः प्रदर्शयेत् ॥ १९ ॥ ज्ञेयाग्निविस्फुलिंगानां बीजचेष्टा च शाल्मलेः ॥ चंद्रसूर्यस्वरूपं च नीत्यर्थं पृथिवीक्षिता ॥ २० ॥

प्रति ऐसाही व्यवहार करना राजाको कर्त्तव्य है पिपीलिकाके समान यथाकालमें संचयी हो ॥ १९ ॥ अग्निकी चिनगारी और शाल्मलीबीजके समान व्यापनशील होना राजाको उचित है वह चन्द्र सूर्यके समान राजनीति प्रयोगपूर्वक पृथ्वीको देखें अर्थात् चन्द्र और सूर्य जिस प्रकार सबके गृहमें किरण विस्तार करते हैं एवं कभी तीक्ष्ण और कभी मृदु होते हैं इसी प्रकार राजनीति प्रयोग करके उदयशील होना राजाको उचित है ॥ २० ॥

---

* इनका तात्पर्य यही है कि, काककी समान आलस्यरहित और सावधान हो, कोकिलके समान संचयशील हो, मृगके समान सहसा शत्रुके वशीभूत न हो, सर्प जिस प्रकार स्वल्प मात्र विषसे बडे जीवका प्राण ध्वंस करता है इसी प्रकार अल्प बलकी सहायतासे अधिक बलवान् शत्रुके मारनेकी चेष्टा करै, मयूरके समान अपनी सम्पत्ति विस्तृत करै, हंसके समान गुणग्राही हो, कुक्कुट अर्थात् मुरगेके समान यथा समयमें उठें और स्त्रियोंकी विपद्से रक्षा करै एवं लोहेके समान कठिन और बहु कर्मसम्पादक होना चाहिये।

व्यभिचारिणी पद्म शरभ शूलिका गुर्विणीस्तन गोपाङ्गना नरपति इन सबके निकटसे राजा शिक्षा ग्रहण करै अर्थात् बन्धकी व्यभिचारिणी जिस प्रकार परपुरुषके चित्तको आनन्द देती है राजाकोभी इसी प्रकार प्रजाका चित्त प्रसन्न करना चाहिये. वह पद्मके सदृश सब पुरुषोंका चित्त हरण करैं उनको शरभ अष्टापदजीवके समान विक्रम प्रकाश करना चाहिये, शूलिकाके समान शत्रुको एकबारही ध्वंस करैं गर्भिणीके स्तन जिस प्रकार होनेवाली सन्तानका प्रतिपालन करनेके लिये दुग्ध संग्रह कर रखते हैं राजाभी इसी प्रकार भविष्यत्के लिये संचयशील होनेका यत्न करैं और गोपाङ्गना जिस प्रकार एक मात्र दूधसे नानाप्रकार द्रव्य प्रस्तुत करती है राजाको भी इसी प्रकार कल्पनापटु होना चाहिये ॥ २१ ॥ नीतिपूर्वक दण्डसे पृथ्वीको देखे अर्थात् नीतिपूर्वक दण्डसे अर्थसंग्रह करै और चाण्डालस्त्रीसे बुद्धि सीखे कि, वह किसी व्यवहारसे सुख नहीं मोडती ॥ २२ ॥ पृथ्वी पालन करना हो तो इन्द्र,

बंधकीपद्मशरभशूलिकागुर्विणीस्तनात् ॥ एवं साम्ना च भेदेन प्रदानेन च पार्थिव ॥ २१ ॥ दंडेन च प्रकुर्वीत नीत्यर्थं पृथिवीक्षिता ॥ प्रज्ञा नृपेण वा देया तथा चंडालयोषितः ॥ २२ ॥ शक्रार्कयमसोमानां तद्वद्वायोर्महीपतिः ॥ रूपाणि पंच कुर्वीत महीपालनकर्मणि ॥ २३ ॥ यथेंद्रश्चतुरो मासान्वार्योघेणैव भूतलम् ॥ आप्याययेत्तथा लोकान्परिचारैर्महीपतिः ॥ २४ ॥ मासानष्टौ यथा सूर्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ॥ सूक्ष्मेणैवाभ्युपायेन तथा शुल्कादिना नृपः ॥२५॥ यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ॥ तथा प्रियाप्रिये राजा दुष्टादुष्टे समो भवेत् ॥२६॥ पूर्णेंदुमालोक्य यथा प्रीतिमाञ्जायते नरः ॥ एवं यत्र प्रजाः सर्वा निर्वृतास्तच्छशिव्रतम् ॥२७॥

सूर्य, यम, चन्द्र और वायु इन पांचों देवताके अनुरूप आचरण करना चाहिये ॥ २३ ॥ अर्थात् इन्द्र जिस प्रकार चार मास वर्षणद्वारा पृथ्वीवासियोंको तृप्त करते हैं, राजाभी इसी प्रकार अर्थादि दानसे सबको प्रसन्न करै ॥ २४ ॥ सूर्य जिस प्रकार किरणोंके द्वारा आठ मास जल सोखते हैं, इसी प्रकार सूक्ष्म उपायसे करादि ग्रहण करना महीपतिका कर्त्तव्य है ॥ २५ ॥ काल प्राप्त होनेपर यम जिस प्रकार क्या प्रिय क्या द्वेषी सबको ही निगृहीत करते हैं, इसी प्रकार राजाभी क्या प्रिय क्या अप्रिय क्या दुष्ट सर्वत्र समदर्शी हो ॥ २६ ॥ पूर्ण चन्द्रमाके देखनेसे जिस प्रकार समस्त मनुष्य प्रसन्न होते हैं, जिसके शासनमें प्रजा भी उसी प्रकार सुख अनुभव करैं उस राजाका आचरणही यथार्थ चन्द्रमाके अनुरूप है ॥ २७ ॥

वायु जिस प्रकार गुप्तभावसे सर्वभूतोंमें विचरण करता है राजा भी इसी प्रकार चार द्वारा नगरवासी अमात्य और बांधव इत्यादिके चरित्रादिका खोज करै ॥ २८ ॥ काम लोभ वा अर्थ अथवा अन्य किसी कारणसे जिसका मन आकृष्ट नहीं होता, वही राजा स्वर्गको जाता है ॥ २९ ॥ जो मूढ कुमार्गमें पडे हुए हैं अपने धर्मसे चलायमान होगये हैं, जो उनको अपने धर्मपर लाता है वह राजा स्वर्गको प्राप्त करता है ॥ ३० ॥ हे वत्स! जिस राजाके राज्यमें वर्णधर्म वा आश्रमधर्म किसी प्रकारसे नष्ट नहीं होते वह क्या इस लोक क्या परलोक दोनों लोकोंमें ही निरन्तर सुख भोगता है ॥ ३१ ॥ बुद्धिमान् पुरुषोंकी परामर्शसे सदा कार्य करना और सबको स्वस्वधर्म स्थापन करना ही राजाका एकमात्र कार्य है, और यही उसकी सिद्धि लाभका कारण

मारुतः सर्वभूतेषु निगूढश्चरते यथा ॥ एवं चरेन्नृपश्चारैः पौरामात्यारिबंधुषु ॥ २८ ॥ न लोभार्थैर्न कामार्थैर्नार्थार्थैर्यस्य मानसम् ॥ पदार्थैः कृष्यते धर्मात्स राजा स्वर्गमृच्छति ॥ २९ ॥ उत्पथग्राहिणो मूढान्स्वधर्माच्चलितान्नरान् ॥ यः करोति निजे धर्मे स राजा स्वर्गमृच्छति ॥ ३० ॥ वर्णधर्मा न सीदंति यस्य राष्ट्रे तथाश्रमाः ॥ राज्ञस्तस्य सुखं तात परत्रेह च शाश्वतम् ॥ ३१ ॥ एतद्राज्ञः परं कृत्यं तथैतद्वृद्धिकारणम् ॥ स्वधर्मे स्थापनं नॄणां चाल्यते न कुबुद्धिभिः ॥ ३२ ॥ पालनेनैव भूतानां कृतकृत्यो महीपतिः ॥ सम्यक्पालयिता भागं धर्मस्याप्नोति वै यतः ॥ ३३ ॥ एवमाचरते राजा चातुर्वर्ण्यस्य रक्षणम् ॥ स सुखी विहरत्येष शक्रस्यैति सलोकताम् ॥ ३४ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्याने चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ पुत्र उवाच ॥ तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा सोऽलर्को मातरं पुनः ॥ पप्रच्छ वर्णधर्मांश्च धर्मान्ये चाश्रमेषु च ॥ १ ॥

है ॥ ३२ ॥ राजा प्रजाका सम्यक् प्रकार पालन करने पर जिस प्रकार कृतकृत्य होता है, उसी प्रकार उसको धर्मका अंश भी प्राप्त होता है ॥ ३३॥ जो राजा चारों वर्णकी रक्षाके लिये इस प्रकार नियममें स्थित रहता है वह इस लोकमें परमसुखसे विहार कर अन्तमें इन्द्रका सालोक्य प्राप्त करते है ॥ ३४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ पुत्रने कहा—अलर्क जननीके इस प्रकार वचन सुनकर फिर वर्णधर्म और आश्रमधर्मका विषय पूँछने लगा ॥ १ ॥

अलर्कने कहा—हे महाभागे ! तुमने राजधर्मका तो वर्णन किया किन्तु अब मैं वर्णधर्म और आश्रमधर्म सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥ मदालसा बोली—हे वत्स ! दान अध्ययन और यज्ञ यह तीन ब्राह्मणके धर्म हैं इनके अतिरिक्त चौथा धर्म और कुछ नहीं है अन्य धर्म उसके पक्षमें आपत्तिमें हैं ॥ ३ ॥ विशुद्धभावसे याजन (यज्ञ कराना) अध्यापन और पवित्र भावसे प्रतिग्रह यह तीनही ब्राह्मणजातिके जीविकार्थ व्यवसाय जानने ॥ ४ ॥ दान अध्ययन और यज्ञ करना यह तीन क्षत्रियोंके धर्म हैं एवं पृथ्वीकी रक्षा और शस्त्र चलाना यह दो कर्म उनकी जीविका हैं ॥ ५ ॥ वैश्यके भी धर्म तीन हैं—दान अध्ययन और यज्ञ और पशुपालन वाणिज्य एवं कृषि यह तीन उनकी जीविका हैं ॥ ६ ॥ दान यज्ञ उपरोक्त

अलर्क उवाच ॥ कथितोऽयं महाभागे राज्यतंत्राश्रितस्त्वया ॥ मम धर्मोहमिच्छामि श्रोतुं वर्णाश्रमात्मकम् ॥ २ ॥ मदालसोवाच ॥ दानमध्ययनं यज्ञो ब्राह्मणस्य त्रिधोदितः ॥ धर्मो नान्यश्चतुर्थोऽस्ति धर्मस्तस्यापदं विना ॥ ३ ॥ याजनाध्यापने शुद्धस्तथा पुत्र प्रतिग्रहः ॥ एतत्सम्यक्समाख्यातं त्रितयं चास्य जीविका ॥४॥ दानमध्ययनं यज्ञाः क्षत्रियस्याप्ययं त्रिधा ॥ धर्मः प्रोक्तः क्षिते रक्षा शस्त्राजीवश्च जीविका ॥ ५ ॥ दानमध्ययनं यज्ञो वैश्यस्यापि त्रिधैव सः ॥ वाणिज्यं पाशुपाल्यं च कृषिश्चैवास्य जीविका ॥ ६ ॥ दानं यज्ञोऽथ शुश्रूषा द्विजातीनां त्रिधा मया ॥ व्याख्यातः शूद्रधर्मोऽपि जीविका कारुकर्मजा ॥७॥ तद्वद्द्विजातिशुश्रूषा पोषणं क्रयविक्रयैः ॥ वर्णधर्मास्त्विमे प्रोक्ताः श्रूयतामाश्रमाश्रयाः ॥ ८ ॥ स्ववर्णधर्मात्संसिद्धिं नरः प्राप्नोति न च्युतः ॥ प्रयाति नरकं प्रेत्य प्रतिषिद्धानिषेवणात् ॥ ९ ॥ यावत्तु नोपनयनं क्रियते वै द्विजन्मनः ॥ कामचेष्टोक्तिभक्षस्तु तावद्भवात पुत्रक ॥ १० ॥

तीनों वर्णोंकी सेवा यह तीन शूद्रजातिके धर्म हैं एवं कारुकार्य ॥ ७ ॥ विप्रसेवा पशुपोषण और क्रय विक्रय ही उनकी जीविका है यह मैंने सब वर्णोंका धर्म कहा अब आश्रमधर्म सुनो ॥ ८ ॥ स्वस्ववर्णधर्मका पालन करनेसेही सब प्रकार सिद्धिलाभ करते हैं और वर्णधर्मके विरुद्ध आचरण करनेसेही नरकमें जाते हैं ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! जबतक द्विजातिगणका उपनयन संस्कार (जनेऊ) सम्पन्न न हो तबतक वह अपनी इच्छानुसार व्यवहार आलाप और आहारादि करसक्ते हैं ॥ १० ॥

उपनयन होनेपर ब्रह्मचारी रूपसे गुरुके घर वास कर तिस काल इस स्थानमें जिस प्रकार धर्माचरण करै वह कहती हूं सुनो ॥ ११ ॥ स्वाध्याय अग्नि-शुश्रूषा स्नान भिक्षार्थ भ्रमण प्रथम गुरुको निवेदन करके फिर उनकी आज्ञानुसार आप भोजन करै ॥ १२ ॥ गुरुके कार्यसाधनमें उद्योग, उनका सन्तोष उत्पादन और गुरुके द्वारा बुलाये जानेपर उनके कार्यमें तत्परता और अनन्यचित्तताके सहित अध्ययन उस ब्रह्मचारीको करना चाहिये ॥ १३ ॥ गुरुदेवके मुखसे एक दो अथवा समस्त वेद पढ उनके चरणोंकी वन्दना कर आज्ञाग्रहणपूर्वक दक्षिणा समर्पण करैं ॥ १४ ॥ फिर गार्हस्थ्य धर्मकी इच्छा हो तो गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये वा अपनी अभिलाषाके अनुसार वानप्रस्थाश्रम वा चतुर्थाश्रम अवलम्बन करै ॥ १५ ॥ या नैष्ठिक ब्रह्मचारी

कृतोपनयनः सम्यग्ब्रह्मचारी गुरोर्गृहे ॥ वसेत तत्र धर्मोऽस्य कथ्यते तन्निबोध मे ॥ ११ ॥ स्वाध्यायोऽथाग्निशुश्रूषा स्नानं भिक्षाटनं तथा ॥ गुरोर्निवेद्य तच्चाद्यमनुज्ञातेन सर्वदा ॥ १२ ॥ गुरोः कर्माणि सोद्योगः सम्यक्प्रीत्युपपादकः ॥ तेनाहूतः पठेच्चैव तत्परो नान्य-मानसः ॥ १३ ॥ एकं द्वौ सकलान्वापि वेदान्प्राप्य गुरोर्मुखात् ॥ अनुज्ञातो वरां दत्त्वा दक्षिणां गुरवे ततः ॥ १४ ॥ गार्हस्थ्याश्रम-कामस्तु गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ वानप्रस्थाश्रमं वापि चतुर्थं वेच्छयात्मनः ॥ १५ ॥ तथैव वा गुरोर्गेहे द्विजो निष्ठामवाप्नुयात् ॥ गुरो-रभावे तत्पुत्रे तच्छिष्ये तत्सुतं विना ॥१६॥ शुश्रूषुर्निरभिमानो ब्रह्मचर्याश्रमं वसेत् ॥ उपावृत्तस्ततस्तस्माद्गृहस्थाश्रमकाम्यया ॥ १७॥ ततोऽसमानर्षिकुलां तुल्यां भार्यामरोगिणीम् ॥ उद्वहेन्न्यायतोऽव्यंगां गृहस्थाश्रमकारणात् ॥ १८ ॥ स्वकर्मणा धनं लब्ध्वा पितृदेवा-तिथींस्तथा ॥ सम्यक्संप्रीणयेद्भक्त्या पोषयेच्चाश्रितांस्तथा ॥ १९ ॥

होकर गुरुके घरही वास करसकता है यदि गुरु न हों तो उनके पुत्रके निकट और पुत्रके अभावमें उनके शिष्यके निकट ॥ १६ ॥ सेवापरायण और अभिमानरहित होकर ब्रह्मचर्याश्रममें वास करना चाहिये फिर गृहस्थाश्रमकी इच्छासे गुरुके घरसे लौटकर ॥ १७ ॥ गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होनेपर अपने अनुरूप कन्यासे विवाह करैं कन्याका रोगरहित असमान कुलगोत्र सम्पन्न और विकलाङ्गसे रहित होना आवश्यक है ॥ १८ ॥ स्वीय कर्मद्वारा न्याया-नुसार अर्थ उपार्जित करके भक्तिसहित यथाविधि पितर देवता और अतिथिगणकी तृप्तिविधान और आश्रितजनोंका पोषण करै ॥ १९ ॥

भृत्य पुत्र दीन अन्ध पतित और पशु पक्षियोंको अपनी शक्तिके अनुसार अन्नदान द्वारा पालन करना चाहिये ॥ २० ॥ ऋतुकालमें स्त्रीगमन और शक्तिके अनुसार पंचयज्ञका अनुष्ठान करै यही गृहस्थका एक मात्र धर्म है ॥ २१ ॥ विभवके अनुसार सादर पितृगण देवतागण अतिथिगण और ज्ञातिगणको अर्पण करके स्वयं भृत्यगणसहित अवशिष्ट भोजन करै ॥ २२ ॥ मैंने यह संक्षेपसे गृहस्थाश्रम धर्म कहा अब वानप्रस्थ धर्म वर्णन करती हूं एकाग्रचित्तसे सुनो ॥ २३ ॥ बुद्धिमान् पुरुष सन्तान सन्ततिकी पूर्णता अपने देहकी अवनति देखकर आत्मशुद्धिके लिये वानप्रस्थाश्रममें गमन करै ॥ २४ ॥ वहां

भृत्यात्मजाज्ञामयोऽथ दीनार्थिपतितानपि ॥ यथाशक्त्यान्नदानेन वयांसि पशवस्तथा ॥ २० ॥ एष धर्मो गृहस्थस्य ऋतावभिगमस्तथा ॥ पंचयज्ञविधानं तु यथाशक्ति न हापयेत् ॥ २१ ॥ पितृदेवातिथिज्ञातिभुक्तशेषं स्वयं नरः ॥ भुंजीत च समं भृत्यैर्यथाविभवमात्मनः ॥ २२ ॥ एष तूद्देशतः प्रोक्तो गृहस्थस्याश्रमो मया ॥ वानप्रस्थस्य धर्मं ते कथयाम्यवधार्यताम् ॥ २३ ॥ अपत्यसंततिं दृष्ट्वा प्राज्ञो देहस्य चानतिम् ॥ वानप्रस्थाश्रमं गच्छेदात्मनः शुद्धिकारणात् ॥ २४ ॥ तत्रारण्योपभोगश्च तपोभिश्चात्मकर्षणम् ॥ भूमौ शय्या ब्रह्मचर्यं पितृदेवातिथिक्रियाः ॥ २५ ॥ होमस्त्रिषवणं स्नानं जटावल्कलधारणम् ॥ मौनादिकरणं चैव वन्यस्नेहनिषेवणम् ॥ २६ ॥ इत्येष पापशुद्ध्यर्थमात्मनश्चोपकारकः ॥ वानप्रस्थाश्रमस्तस्माद्भिक्षोस्तु चरमोऽपरः ॥ २७ ॥ चतुर्थस्य स्वरूपं तु श्रूयतामाश्रमस्य मत ॥ यश्च धर्मोऽस्य धर्मज्ञैः प्रोक्तस्तात महात्मभिः ॥ २८ ॥

वनके फल मूलादि भक्षण तपस्याचरणद्वारा आत्माका उत्कर्ष संपादन कर भूतलमें शयन ब्रह्मचर्यानुष्ठान पितृ देव और अतिथिकी परिचर्या ॥ २५ ॥ होम तीनों सन्ध्याओंमें स्नान जटावल्कल धारण निरन्तर योगाभ्यास और वन्यस्नेहोंका सेवन करै ॥ २६ ॥ इस प्रकार पापशुद्धिके निमित्त और आत्माका उपकार करनेके लिये वानप्रस्थाश्रम आश्रय करना चाहिये इस आश्रमके पीछे भिक्षुनामक चरम आश्रम है ॥ २७ ॥ हे पुत्र ! महात्मा धर्मज्ञ पुरुषोंने इस चौथे आश्रमका स्वरूप जिस प्रकार कहा है वह कहती हूं सुनो ॥ २८ ॥

सर्व संगपरित्याग ब्रह्मचर्य रोषशून्यता इन्द्रियदमन एक स्थानमें बहुत दिनोंतक वास नहीं करना ॥ २९ ॥ कर्म विसर्जन भिक्षालब्ध अन्नका एकवार मात्र भोजन आत्मज्ञानके बोधकी इच्छा और आत्मदर्शन यह समस्तही चतुर्थाश्रमका कर्त्तव्य है ॥ ३० ॥ चतुर्थाश्रममें जिस प्रकार धर्मानुष्ठान करना होता है वह तुमसे कहा अब अन्यान्य वर्ण और आश्रमोंका साधारणतः जो कर्त्तव्य है सो सुनो ॥ ३१ ॥ सत्य शौच अहिंसा अनसूया क्षमा आनृशंस्य अकृपणता और सन्तोष यह आठ गुण सब वर्णाश्रम धर्मका साधारण धर्म कहा गया है ॥ ३२ ॥ मैंने यह तुम्हारे निकट सम्पूर्ण वर्णाश्रमधर्म संक्षेपसे वर्णन किया सबको ही अपने अपने वर्णाश्रम धर्मका प्रतिपालन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ जो पुरुष सदा स्वधर्ममें स्थिति करता है जबतक चौदह इन्द्रका पतन

सर्वसंगपरित्यागो ब्रह्मचर्यमकोपता ॥ जितेंद्रियत्वमावासे नैकस्मिन्वसतिश्चिरम् ॥ २९ ॥ अनारंभस्तथाहारो भिक्षान्नं चैककालिकम् ॥ आत्मज्ञानाववबोधश्च तथा चात्मावलोकनम् ॥ ३० ॥ चतुर्थे त्वाश्रमे धर्मा मयायं ते निवेदितः ॥ सामान्यमन्यवर्णानामाश्रमाणां च मे शृणु ॥ ३१ ॥ सत्यं शौचमहिंसा च अनसूया तथा क्षमा ॥ आनृशंस्यमकार्पण्यं संतोषश्चाष्टमो गुणः ॥ ३२ ॥ एते संक्षेपतः प्रोक्ता धर्म वर्णाश्रमेषु च ॥ एतेषु नित्यधर्मेषु नित्यं तिष्ठेत्समंततः ॥ ३३ ॥ स याति ब्रह्मलोकं हि यावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ यश्चोल्लंघ्य स्वकं धर्मं स्ववर्णाश्रमसंज्ञितम् ॥ ३४ ॥ नरोऽन्यथा प्रवर्त्तेत स दंड्यो भूभृतो भवेत् ॥ ये च स्वधर्मसंत्यागात्पापं कुर्वंति मानवाः ॥ ३५ ॥ उपेक्षतस्तान्नृपतेरिष्टापूर्तं प्रयात्यधः ॥ तस्माद्राज्ञा प्रयत्नेन सर्वे वर्णाः स्वधर्मतः ॥ ३६ ॥ प्रवर्त्ततेऽन्यथा दंड्याः स्थाप्याश्चैव स्वकर्मसु ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे मदालसानुशासनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

नहीं होता तबतक वह ब्रह्मलोकमें वास करता है जो मनुष्य स्वीय वर्णाश्रमसंज्ञित स्वधर्म उल्लंघनपूर्वक ॥ ३४ ॥ धर्मान्तरमें प्रवृत्त होता है वह मनुष्य राजाके द्वारा दण्डनीय होता है जो व्यक्ति स्वधर्मविसर्जनपूर्वक पापानुष्ठान करता है ॥ ३५ ॥ उसको दण्ड न करके उपेक्षा करनेसे नरपतिका इष्टापूर्त्त विनाशको प्राप्त होता है इसी कारण नरपति विशेष यत्नसहित वर्णमात्रकोही निज निज धर्ममें स्थापन करै ॥ ३६ ॥ और इसके विरुद्धाचरणमें प्रवृत्त होनेपर उनको दंड देकर स्वकर्ममें स्थापन करै ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अलर्कने कहा–जो गृहस्थाश्रमी पुरुषका कर्त्तव्य है जिसका अनुष्ठान न करनेसे बंधन और करनेसे मोक्ष लाभ होता है ॥ १ ॥ जो मनुष्योंके उपकारका हेतु जो वर्जनीय और कर्त्तव्य है मैं वह समस्त विषय पूंछता हूं विस्तारसहित वर्णन करो ॥ २ ॥ मदालसा बोली–हे वत्स ! मनुष्य गृहस्थाश्रम अवलम्बन करके इन अखिल जीवोंका पोषण करता है और उसी पुण्यके प्रभावसे समस्त वांछित लोक लाभ करता है ॥ ३ ॥ पितृगण ऋषिगण देवगण भूतगण नरगण कृमि कीट पतंगगण पक्षिगण पशुगण और असुरगण ॥ ४ ॥ यह समस्तही गृहस्थाश्रमीका अवलम्बन करके जीवन यात्रा निर्वाह करते हैं और उनके ही सहित इनकी तृप्तिविधान होता है "गृहस्थ हमको अन्न देगा वा नहीं" यह चिन्ता करके गृहीके मुखकी ओर देखते हैं ॥ ५ ॥ हे वत्स ! गृहस्थही वेदमयी धेनुरूपमें

अलर्क उवाच ॥ यत्कार्यं पुरुषेणेह गार्हस्थ्यमनुवर्त्तता ॥ बन्धश्च स्यादकरणे क्रियायां यस्य चोच्छ्रितिः ॥ १ ॥ उपकाराय यन्नृणां यच्च वर्ज्यं गृहे सताम् ॥ यथा च क्रियते तन्मे यथा यत्पृच्छतो वद ॥ २ ॥ मदालसोवाच ॥ वत्स गार्हस्थ्यमास्थाय नरः सर्वमिदं जगत् ॥ पुष्णाति तेन लोकांश्च स जयत्यभिवांछितान् ॥ ३ ॥ पितरो मुनयो देवा भूतानि मनुजास्तथा ॥ कृमिकीटपतंगाश्च वयांसि पशवोऽसुराः ॥ ४ ॥ गृहस्थमुपजीवंति ततस्तृप्तिं प्रयांति च ॥ मुखं चास्य निरीक्षंते अपि नो दास्यतीति वै ॥ ५ ॥ सर्वस्याधारभूतेयं वत्स धेनुस्त्रयीमयी ॥ यस्यां प्रतिष्ठितं विश्वं विश्वहेतुश्च या मता ॥ ६ ॥ ऋक्पृष्ठासौ यजुर्मध्या सामवक्त्रशिरोधरा ॥ इष्टापूर्तविषाणा च साधुसूक्ततनूरुहा ॥ ७ ॥ शांतिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता ॥ आजीव्यमाना जगतां साऽक्षया नापचीयते ॥ ८ ॥ स्वाहाकारो स्वधाकारो वषट्कारश्च पुत्रक ॥ हंतकारस्तथैवान्यस्तस्याः स्तनचतुष्टयम् ॥ ९ ॥

सबका आधारभूत होकर रहता है अखिल ब्रह्माण्ड इस धेनुमेंही प्रतिष्ठित और यह धेनुही ब्रह्माण्डका कारण है ॥ ६ ॥ ऋग्वेद इस धेनुकी पीठ, यजुर्वेद मध्य, सामवेद मुख और ग्रीवा इष्टापूर्त्त, उसका सींग साधुसूक्त रोम ॥ ७ ॥ शान्ति और पुष्टि कर्म उसका मलमूत्र एवं वर्ण और आश्रमही इस धेनुकी प्रतिष्ठा है इस धेनुका क्षय नहीं है. सुतरां समस्त विश्वको अवलम्बनपूर्वक जीवन धारण करनेपरभी उसका क्षय होनेकी आशंका नहीं है ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! स्वाहा स्वधाकार वषट्कार और हन्त यह इस धेनुके चार स्तन हैं ॥ ९ ॥

इन चार स्तनोंमें देवगण स्वाहाकार, पितृगण स्वधाकार, ऋषिगण वषट्कार ॥ १० ॥ और मनुष्यगण सदा हन्तकार स्तन पान करते हैं. हे पुत्र ! इस प्रकारसे यह त्रयीमयी धेनुही सबकी तृप्ति सम्पादन करती है ॥ ११ ॥ इन चारों स्तनोंको यह चार जाति पान करती हैं जो यथा समयमें नियुक्त न किये जांय तो यह धेनु अवमानित होती है ॥ १२ ॥ जिनसे मनुष्य सब देवतादिको संतुष्ट करते हैं. उस त्रयीकी नष्टता साधन करनेसे महापापी होता है ॥ १३ ॥ अन्धतामिस्र और तामिस्र नामक दोनों प्रकारके नरकोंमें निमग्न होता है. अमर इत्यादि इस धेनुके वत्स हैं जो व्यक्ति यथा समयमें उन वत्सोंको ॥ १४ ॥ उपरोक्त स्तनपान कराता है सुरपुरमें उसकी गति होती है हे पुत्र ! इसीलिये नित्य स्वीय देहके अनुसार सुरगण, मुनिगण, पितृगण,

स्वाहाकारं स्तनं देवाः पितरश्च स्वधामयम् ॥ मुनयश्च वषट्कारं देवभूतसुरेतराः ॥ १० ॥ हंतकारं मनुष्याश्च पिबंति सततं स्तनम् ॥ एवमाप्याययत्येषा देवादीनखिलांस्त्रयी ॥ ११ ॥ एतद्वत्सचतुष्कं तु नरस्तनचतुष्टये ॥ न नियुंज्याद्यथाकालं तेन स्युस्ते विमानिताः ॥ १२ ॥ देवादीनखिलान्येषु संतर्पयति मानवः ॥ तेषामुच्छेदकर्त्ता यः पुरुषोऽत्यंतपापकृत् ॥१३ ॥ स तमस्यंधतामिस्रे तामिस्रे च निमज्जति ॥ यस्त्वेता मानवो धेनुं स्वैर्वत्सैरमरादिभिः ॥१४॥ प्रापयत्युचिते काले स स्वर्गायोपपद्यते ॥ तस्मात्पुत्र मनुष्येण देवर्षिपितृमानवाः ॥ १५ ॥ भूतानि चानुदिवसं पोष्याणि स्वतनुर्यथा ॥ तस्मात्स्नातः शुचिर्भूत्वा देवर्षिपितृतर्पणम् ॥ १६ ॥ प्रजापतेस्तथैवाद्भिः काले कुर्यात्समाहितः ॥ सुमनोगंधधूपैश्च देवानभ्यर्च्य मानवः ॥ १७ ॥ ततोऽग्नेस्तर्पणं कुर्याद्दद्याच्च बलिमित्यथ ॥ ब्रह्मणे गृहमध्ये तु विश्वेदेवेभ्य एव च ॥१८॥ धन्वंतरिं समुद्दिश्य प्रागुदीच्यां बलिं क्षिपेत् ॥ प्राच्यां शक्राय याम्यायां यमाय बलिमाहरेत् ॥१९॥

नरगण ॥ १५ ॥ और भूतगणोंका पोषण करना सबको उचित है इसी कारण स्नानपूर्वक पवित्र होकर सावधान मनसे सुरगण, पितृगण, मुनिगण॥१६॥ और प्रजापति, जलदानसहित इनका तर्पण करना चाहिये चन्दन और गन्ध धूपादिद्वारा देवताओंकी पूजा करके ॥ १७ ॥ फिर अग्नितर्पणपूर्वक बलि दे । ब्रह्माको विश्वेदेवको ॥ १८ ॥ और धन्वन्तरिको गृहमध्यमें पूर्व और उत्तर दिशामें उद्देश्य करके बलिप्रदान करैं. इन्द्रको पूर्व दिशामें, यमको दक्षिण दिशामें ॥ १९ ॥

वरुणको पश्चिमदिशामें और सोमको उत्तर दिशामें बलिप्रदान करना चाहिये । घरके द्वारदेशमें धाता और विधाताके उद्देश्यसे बलि देवे ॥ २० ॥ अर्यमाको घरके बहिर्भागमें सब ओरसे बलिप्रदान करै तदनन्तर निशाचर और समस्त भूतके उद्देश्यसे आकाशमार्गमें बलि आहरण करै ॥ २१ ॥ पितरोंको बलि देनेके लिये दक्षिणाभिमुखसे बैठे । अनन्तर गृही तत्पर और एकाग्रचित्त हो ॥ २२ ॥ आचमनके लिये जल ग्रहण कर तत्तत् स्थानमें उस उस देवताके उद्देश्यसे जलदान करै ॥ २३ ॥ गृहस्वामी इस प्रकारसे गृहबलि प्रदान करके पवित्र भावसे भूतसमूहकी तृतिके निमित्त सादर उत्सर्ग विधि समाहित करै ॥ २४ ॥ कुत्ता श्वपच और पक्षी इनके लिये पृथ्वीमें बलिप्रदान करै इसको ही वैश्वदेवबलि कहते हैं सायंकाल और प्रातःकालमें यह बलिप्रदान

प्रतीच्यां वरुणायाथ सोमायोत्तरतो बलिम् ॥ दद्याद्धात्रे विधात्रे च बलिं द्वारे गृहस्य च ॥२०॥ अर्यम्णेऽथ बहिर्दद्याद्गृहेभ्यश्च समंततः ॥ नक्तंचरेभ्यो भूतेभ्यो बलिमाकाशतो हरेत् ॥ २१ ॥ पितॄणां निर्वपेच्चैव दक्षिणाभिमुखः स्थितः ॥ गृहस्थस्तत्परो भूत्वा सुसमाहितमानसः ॥२२॥ ततस्तोयमुपादाय तेषामाचमनाय वै ॥ स्थानेषु निक्षिपेत्प्राज्ञस्तास्ता उद्दिश्य देवताः ॥ २३ ॥ एवं गृहबलिं कृत्वा गृहे गृहमतिः शुचिः ॥ आप्यायनाय भूतानां कुर्यादुत्सर्गमादरात् ॥२४॥ श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि ॥ वैश्वदेवं हि नामैतत्सायं प्रातरुदाहृतम् ॥२५॥ आचम्य च ततः कुर्यात्प्राज्ञो द्वारावलोकनम् ॥ मुहूर्तस्याष्टमं भागमुदीक्ष्यो ह्यतिथिर्भवेत् ॥२६॥ अतिथिं तत्र संप्राप्तमन्नाद्येनोदकेन च ॥ संपूजयेद्यथाशक्ति गंधपुष्पादिभिस्तथा ॥२७॥ न मित्रमतिथिं कुर्यान्नैकग्रामनिवासिनम् ॥ अज्ञातकुलनामानं तत्कालसमुपस्थितम् ॥ २८ ॥ बुभुक्षुमागतं श्रांतं याचमानमकिंचनम् ॥ ब्राह्मणं प्राहुरतिथिं स पूज्यः शक्तितो बुधैः ॥ २९ ॥

करना चाहिये ॥ २५ ॥ बुद्धिमान् गृही इस प्रकार वैश्वदेवबलिप्रदानपूर्वक आचमन करके द्वारावलोकन करै. मुहूर्तके अष्टम भागतक अतिथिकी प्रतीक्षा करै ॥ २६ ॥ अतिथिके आनेपर अपनी शक्तिके अनुसार जल अन्नादि और गन्ध पुष्पादि द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिये ॥ २७ ॥ मित्र वा एक ग्रामवासी मनुष्यको अतिथि नहीं करना, जिस पुरुषका कुल नाम ज्ञात न हो जो तत्काल आया हुआ हो ॥ २८ ॥ वास्तविक आहारकी अभिलाषासे जिसका आगमन हो जो थका हुआ याचक और जिसके पास कुछ नहीं हो पंडितगण ऐसे ब्राह्मणकोही अतिथि कहते हैं शक्तिके अनुसार ऐसेही अतिथिकी पूजा करनी चाहिये ॥ २९ ॥

बुद्धिमान् गृही अतिथिका गोत्र वेद शाखा अथवा स्वाध्यायका विषय कुछभी नहीं पूछे अतिथि सुन्दर वा कुरूप किसी प्रकारका क्यों न हो उसको मूर्तिमान् प्रजापतिस्वरूप विचारना चाहिये ॥ ३० ॥ नित्य अवस्थान न करनेके कारणही ऐसे अभ्यागतको अतिथि कहा जाता है. अतिथिकी तृप्तिसाधन होनेपर गृही नृयज्ञ (अतिथियज्ञ) के ऋणसे मुक्ति लाभ करता है ॥ ३१ ॥ जो पुरुष अतिथिको विना दिये स्वयं भोजन करता है वह किल्विषभोजी (पापभोक्ता है) केवल पापभोगी होता है तथा दूसरे जन्ममें वह विष्ठा भोजन करता है ॥ ३२ ॥ अतिथि जिसके घरसे निराश होकर लौटता है वह उसका पुण्य लेकर अपना पाप उसे दे जाता है ॥ ३३ ॥ अतिथिको जल वा शाक एवं जो स्वयं भोजन करै वह समर्पण करके शक्तिके अनुसार सादर

न पृच्छेद्गोत्रचरणं स्वाध्यायं चापि पंडितः ॥ शोभनाशोभनाकारं तं मन्येत प्रजापतिम् ॥ ३० ॥ अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ तस्मिंस्तृप्ते नृयज्ञोत्थादृणान्मुच्येद्गृहाश्रमी ॥३१॥ तस्यादत्त्वा तु यो भुंक्ते स्वयं किल्बिषभुङ्‌ नरः ॥ स पापं केवलं भुंक्ते पुरीषं चान्यजन्मनि ॥ ३२ ॥ अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ॥ स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥ ३३ ॥ अप्यंबुशाकदानेन यच्चाप्यश्नाति स स्वयम् ॥ पूजयेत नरः शक्त्या तेनैवातिथिमादरात् ॥ ३४ ॥ कुर्याच्चाहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन च ॥ पितॄनुद्दिश्य विप्रांश्च भोजयेद्विप्रमेव वा ॥ ३५ ॥ अन्नस्याग्रं तदुद्धृत्य ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ भिक्षां च याचितां दद्यात्परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम् ॥ ३६ ॥ ग्रासप्रमाणा भिक्षा स्यादग्रं ग्रासचतुष्टयम् ॥ अग्रं चतुर्गुणं प्राहुर्हंतकारं द्विजोत्तमाः ॥ ३७ ॥ भोजनं हंतकारं वा अग्रं भिक्षामथापि वा ॥ अदत्त्वा तु न भोक्तव्यं यथाविभवमात्मनः ॥ ३८ ॥

उसकी पूजा करै ॥ ३४ ॥ नित्य जल और अन्नादिद्वारा श्राद्ध और पितरोंके उद्देश्यसे एक वा बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ ३५ ॥ अन्नका अग्रभाग तोडकर ब्राह्मणको अर्पण करना चाहिये परिव्राजक और ब्रह्मचारीके मांगनेपर उसको भिक्षा दे ॥ ३६ ॥ एक ग्रासको भिक्षा ग्रासचतुष्टयको अग्र और अग्रचतुष्टयको हन्तकार कहा जाता है ॥ ३७ ॥ अपने विभवके अनुसार हन्तकार वा अग्र अथवा भिक्षा विना दिये कभी स्वयं भोजन न करै ॥ ३८ ॥

अतिथिसत्कारके पीछे अभीष्ट ज्ञाति बन्धु याचक विकल बालक वृद्ध और आतुर इनको भोजन कराना चाहिये ॥ ३९ ॥ अन्य किसी अकिंचन पुरुषके क्षुधार्त होकर प्रार्थना करनेपर उसको भी आहार दे सम्पत्ति होनेपर समर्थ पुरुषको भोजन कराना चाहिये ॥ ४० ॥ जो ज्ञाति श्रीमान्‌के विद्यमान होनेपर दुःखी होती है जो पुरुष अवसन्नावस्थामें जिस पापका अनुष्ठान करता है श्रीमान् ज्ञातिकोभी उस पापके अंशका भागी होना पडता है ॥ ४१ ॥ संध्याकालमें भी इसी विधिका अनुष्ठान करे अतिथिके सूर्यास्तकालमें आनेपर शक्तिके अनुसार शयन आसन और भोजन द्वारा उसकी पूजा करनी

पूजयित्वातिथीनिष्टाञ्ज्ञातीन्बंधूंस्तथार्थिनः ॥ विकलान्बालवृद्धांश्च भोजयेच्चातुरांस्तथा ॥ ३९ ॥ वांछते क्षुत्परीतात्मा यश्चान्योऽन्नमकिंचनः ॥ कुटुंबिना भोजनीयः स्वसमं विभवे सति ॥ ४० ॥ श्रीमंतं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति ॥ सीदता यत्कृतं तेन तत्पापं स समश्नुते ॥ ४१ ॥ सायं चैष विधिः कार्यः पूर्वोक्तं तत्र चातिथिम् ॥ पूजयेच्च यथाशक्ति शयनासनभोजनैः ॥ ४२ ॥ एवमुद्वहतस्तात गार्हस्थ्यं भारमास्थितम् ॥ स्कंधे विधाता देवाश्च पितरश्च महर्षयः ॥ ४३ ॥ श्रेयोभिवर्षिणः सर्वे भवंत्यतिथिबांधवाः ॥ पशुपक्षिमृगास्तृप्ता ये चान्ये सूक्ष्मकीटकाः ॥ ४४ ॥ गाथाश्चात्र महाभाग स्वयमत्रिरगायत ॥ ताः शृणुष्व महाभाग गृहस्थाश्रमसंस्थिताः ॥ ४५ ॥ देवान्पितॄंश्चातिथींश्च तद्वत्संपूज्य बांधवान् ॥ जामयश्च गुरूंश्चैव गृहस्थे विभवे सति ॥ ४६ ॥ श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि ॥ वैश्वदेवं हि नामैतत्कुर्यात्सायं तथा दिने ॥ ४७ ॥

चाहिये ॥ ४२ ॥ हे तात ! इस प्रकार अपने कन्धेपर रक्खा हुआ गार्हस्थ्य भार वहन करनेसे विधातासे देवता पितर महर्षि ॥ ४३ ॥ अतिथि बान्धव एवं पशु पक्षी और सूक्ष्म कीट सबही अत्यन्त प्रसन्न होकर उसका कल्याण करते हैं ॥ ४४ ॥ हे महाभाग ! महाभाग अत्रि इसके उपलक्षमें स्वयं जो गाथा गान करगये हैं तुम वह गृहस्थाश्रम संज्ञित गाथा सुनो ॥ ४५ ॥ यदि सम्पत्ति हो तो गृही पुरुष देव पितर अतिथि बन्धु ज्ञाति और गुरुकी पूजा करके ॥ ४६ ॥ श्वगण श्वपच और पक्षियोंके उद्देश्यसे भूतलमें अन्नप्रदान करे वैश्वदेव नामक यह बलिकर्म पूर्वाह्नमें और सायंकालमें करना चाहिये ॥ ४७ ॥

मांस अन्न शाक अथवा घरमें जो कुछ वस्तु विद्यमान हो वह नियमको पूरा किये विना स्वयं भोजन न करै ॥ ४८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसा-ख्याने भाषाटीकायां षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ मदालसा बोली कि, हे पुत्र ! गृहस्थके कर्त्तव्य कर्म तीन प्रकारके हैं नित्य, नैमित्तिक और नित्य-नैमित्तिक इन तीनोंका विषय कहती हूं सुनो ॥ १ ॥ मैंने जिस पंचयज्ञाश्रित कर्मका विषय वर्णन किया उसकोही नित्य कहते हैं इसके अतिरिक्त पुत्र-जन्मक्रियाको नैमित्तिक ॥ २ ॥ और पर्वश्राद्धादिको पंडितगण नित्यनैमित्तिक कर्म कहते हैं तिनमें प्रथम तुम्हारे निकट नैमित्तिक कर्मका विषय वर्णन

मांसमन्नं तथा शाकं गृहे यच्चोपसाधितम् ॥ न च तत्स्वयमश्नीयाद्विधिवद्यन्न निर्वपेत् ॥४८॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्याने षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ मदालसोवाच ॥ नित्यं नैमित्तिकं चैव नित्यनैमित्तिकं तथा ॥ गृहस्थस्य त्रिधा कर्म तन्निशामय पुत्रक ॥ १ ॥ पंचयज्ञाश्रितं नित्यं यदेतत्कथितं तव ॥ नैमित्तिकं तथा चान्यत्पुत्रजन्मक्रियादिकम् ॥ २ ॥ नित्यनैमित्तिकं ज्ञेयं पर्व-श्राद्धादि पंडितैः ॥ तत्र नैमित्तिकं वक्ष्ये श्राद्धमाभ्युदयं तव ॥ ३ ॥ पुत्रजन्मनि यत्कार्यं जातकर्म समं नरैः ॥ विवाहादौ च कर्त्तव्यं सर्वं सम्यक्क्रमोदितम् ॥ ४ ॥ पितरश्चात्र संपूज्याः ख्याता नांदीमुखास्तु ये ॥ पिंडांश्च दधिसंमिश्रान्दद्याद्यवसमन्वितान् ॥ ५ ॥ उदङ्-मुखः प्राङ्मुखो वा यजमानः समाहितः ॥ वैश्वदेवविहीनं तत्केचिदिच्छंति मानवाः ॥ ६ ॥ युग्माश्चात्र द्विजाः कार्यास्ते पूज्याश्च प्रद-क्षिणम् ॥ एतं नैमित्तिकं वृद्धौ तथान्यच्चौर्ध्वदैहिकम् ॥ ७ ॥

करती हूं ॥ ३ ॥ पुत्रजन्मके समय मनुष्य जिस प्रकार जातकर्म करते हैं विवाहादिमेंभी क्रमानुसार समानरूपसे वैसेही करैं ॥ ४ ॥ विवाहादि कार्यमें नान्दीमुखनामक प्रसिद्ध पितरोंकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करै उसी समय यजमान सावधान हो पूर्वमुख वा उत्तरमुख बैठकर पितरोंके उद्देश्यसे यव और दधिमिश्रित पिण्डसमर्पण करै. कोई कोई कहते हैं इसमें वैश्वदेव बलिके देनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ५ ॥ ६ ॥ इसमें दो ब्राह्मणोंकी कल्पनापूर्वक प्रद-क्षिणाकरके अर्चना करैं यही वृद्धिश्राद्धमें नैमित्तिक कहा गया है इसके अतिरिक्त मृत्युके दिन ॥ ७ ॥

जो एकोद्दिष्टनामक और्ध्वदेहिक नैमित्तिक कार्य सम्पादित होता है वह सुनो—इसमें किसी प्रकारका देवकर्म करना नहीं होता ॥ ८ ॥ तथा आवाहन वा अग्नौकरणभी नहीं है एकमात्र कुशप्रयोगकी ही विधि प्रतिपादित है. उच्छिष्टके निकट प्रेतके उद्देश्यसे एकमात्र पिण्डप्रदान करे ॥ ९ ॥ और उसका नामस्मरण करके अपसव्य हो तिलसहित जल प्रोक्षण करना चाहिये। उस समय इस प्रकार कहे कि, "अमुकके उद्देश्यसे यह तिलसहित जलप्रदान करताहूं यह अक्षय हो और वह इस तिलोदकद्वारा परमप्रीति अनुभव और प्रदर्शन करें" ॥१०॥ तब ब्राह्मण कहें कि "हमने प्रसन्नता अनुभव करी" संवत्सरपर्यन्त प्रतिमासमें ही इसी प्रकार अनुष्ठान करे ॥ ११ ॥ फिर संवत्सर काल पूरा होनेपर वा जिस समय उसके करनेकी विधि है उसी समय सापण्डीकरण

मृताहनि तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं शृणुष्व तत् ॥ दैवहीनं तथैकार्घ्यं तथैवैकपवित्रकम् ॥८॥ आवाहनं न कर्त्तव्यमग्नौकरणवर्जितम् ॥ प्रेतस्य पिंडमेकं च दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ॥ ९ ॥ तिलोदकं चापसव्यं तन्नामस्मरणान्वितम् ॥ अक्षय्यममुकस्येति स्थाने विप्रविसर्जने ॥ १० ॥ अभिरम्यतामिति ब्रूयाद्ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह ॥ प्रतिमासं भवेदेतत्कार्यमावत्सरान्नरैः ॥ ११॥ अथ संवत्सरे पूर्णे यदा वा क्रियते नरैः ॥ सपिंडीकरणं कार्यं तस्यापि विधिरुच्यते ॥ १२ ॥ तच्चापि दैवरहितमेकार्घ्यैकपवित्रकम् ॥ नैवाग्नौकरणं तत्र तच्चावाहनवर्जितम् ॥ १३ ॥ अपसव्यं च तत्रापि भोजयेदयुजो द्विजान् ॥ विशेषस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासं क्रियाधिकः ॥ १४ ॥ तं कथ्यमानमेकाग्रो वदंत्या मे निशामय ॥ तिलगंधोदकैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ॥ १५ ॥

करना चाहिये सपिण्डीकरणकी भी विधि कहती हूं सुनो ॥ १२ ॥ यह सपिण्डीकरणभी देवकार्यविहीन अग्नौकरणहीन और आवाहनहीन हैं, एकमात्र अर्घ्य और कुशप्रदानकी ही इसमें विधि प्रतिपादित है ॥ १३ ॥ दक्षिण दिशामें प्रतिकूल दिशामें जलसहित पिण्डादि पूर्वोक्त विधानसे अर्पण करके अयुग्म एक तीन पांच आदि ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये पर्वश्राद्धादि ही नित्यनैमित्तिक कहागया है उसमें विशेष यही है कि, प्रतिमासमें अतिरिक्त कार्य करे ॥ १४ ॥ वहभी कहती हूं एकाग्रचित्त होकर सुनो—हे वत्स! सतिल गन्धोदकयुक्त चार पात्र स्थापन करे ॥ १५ ॥

तिनमें तीन पितरोंके उद्देश्यसे और अपर एकको प्रेतके उद्देश्यसे कल्पना करनी चाहिये पितरोंके उद्देश्यसे स्थापित तीनों पात्रमें प्रेतपात्र और अर्घ्यप्रसेक करना चाहिये ॥ १६ ॥ फिर " ये समाना " इत्यादि मंत्र जपता हुआ पूर्व कथित प्रकारसे अवशिष्ट कार्य सम्पादन करै स्त्रियोंके उद्देश्यमेंभी इसी प्रकार एकोद्दिष्टकी विधि है ॥ १७ ॥ किन्तु पुत्रके न होनेसे उसका सापिण्डकिरण नहीं होता प्रतिसंवत्सरमें स्त्रीके उद्देश्यसे इसी भांति नियमानुसार एकोद्दिष्ट करै ॥१८॥ पुरुषके समान स्त्रीकेभी मृत्युदिनमें सामर्थ्यके अनुसार एकोद्दिष्ट करना चाहिये पुत्रके न होनेमें सपिंड सपिण्डके अभावमें सहोदर ॥१९॥ और जो माताका सापिण्ड है अथवा समानोदक और जो माताका दौहित्र (दोहता) है वह इस प्रकार कार्यानुष्ठान करै ॥२०॥ मातामहके उद्देश्यसे कन्याका

कुर्यात्पितॄणां त्रितयमेकं प्रेतस्य पुत्रक ॥ पात्रत्रये प्रेतपात्रमर्घ्यं चैव प्रसेचयेत् ॥१६॥ ये समाना इति जपन्पूर्ववच्छेषमाचरेत् ॥ स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोदिष्टमुदाहृतम् ॥ १७ ॥ सापिंडीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते ॥ प्रतिसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः ॥ १८ ॥ मृताहानि यथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितम् ॥ पुत्राभावे सपिंडास्तु तदभावे सहोदकाः ॥ १९ ॥ मातुः सपिंडा ये च स्युर्येऽन्ये मातुः सहोदकाः ॥ कुर्युरेवं विधिं सम्यगपुत्रस्य सुतासुताः ॥ २० ॥ कुर्युर्मातामहायैवं पुत्रिकास्तनयास्तथा ॥ द्व्यामुष्यायणसंज्ञास्तु मातामहपितामहान् ॥ २१ ॥ पूजयेयुर्यथान्यायं श्राद्धैर्नैमित्तिकैरपि ॥ सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तॄणाममंत्रकम् ॥ २२ ॥ तदभावे च नृपतिः कारयेत्स्वकुटुंबिना ॥ तज्जातीयैर्नरैः सम्यग्दाहाद्याः सकलाः क्रियाः ॥ २३ ॥ सर्वेषामेव वर्णानां बांधवो नृपतिर्यतः ॥ एतास्ते कथिता वत्स नित्या नैमित्तिकाः क्रियाः ॥ २४ ॥

पुत्र इस प्रकार कार्य करै इसको ही " द्व्यामुष्यायण " कहते हैं नैमित्तिक श्राद्धद्वारा मातामह और पितामहकी ॥२१॥ विधानानुसार पूजा करै. सबके अभावमें स्त्रियें अपने अपने पतिका कार्य करैं किन्तु इसमें किसी प्रकारसे किसी मंत्रका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ २२ ॥ यदि स्त्री भी न हो तो राजा मृत पुरुषके आत्मीयगणोंके द्वारा और सजातीय पुरुषोंके द्वारा उसका दाहादि सम्पूर्ण कर्म सम्पादन करै ॥२३॥ क्योंकि राजा सब वर्णोंका बांधव है हे वत्स ! यह मैंने तुमसे नित्य और नैमित्तिक विषय वर्णन किया ॥ २४ ॥

अब श्राद्धाश्रित अन्य प्रकार नित्य नैमित्तिक क्रियाका विषय सुनो–चन्द्रमाका क्षयात्मक कालही दर्श अर्थात् अमावास्या कहागयाहै, वह दर्शही इस विषयका निमित्तस्वरूप और सदा उसकी नित्यता सूचित करता है, इस कारण ही इसको नित्यनैमित्तिकी क्रिया कहते हैं ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ मदालसा बोली–हे वत्स ! सपिंडीकरणमें और पितृपिंडमें पिताके प्रपितामहका अधिकार नहीं है वह लेपभोजियों (लेपभागी जनों) में गिनने योग्य हैं ॥ १ ॥ जो उनमें चतुर्थस्थानीय और पुत्रका लेप अन्नभोजी हैं वह संबंधहीन हैं. वह उप-

क्रियां श्राद्धाश्रयामन्यां नित्यनैमित्तिकीं शृणु ॥ दर्शस्तत्र निमित्तं वै कालश्चंद्रक्षयात्मकः ॥ नित्यतां नियतः कालस्तस्य संसूचयत्यथ ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे मदालसोपाख्यानेऽलर्कानुशासने गार्हस्थ्यकथने नैमित्तिकादिश्राद्धकल्पो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ मदालसोवाच ॥ सपिंडीकरणादूर्ध्वं पितुर्यः प्रपितामहः ॥ सुत लेपभुजो याति प्रलुप्तपितृपिंडकः ॥१॥ तेषामन्यश्चतुर्थो यः पुत्र लेपभुजान्नभुक् ॥ सोऽपि संबंधतो हीनमुपभोगं प्रपद्यते ॥ २ ॥ पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ पिंडसंबंधिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः ॥३॥ लेपसंबंधिनश्चान्ये पितामहपितामहात् ॥ प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः ॥४॥ इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः संबंधः साप्तपौरुषः ॥ यजमानात्प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेपभुजस्तथा ॥५॥ ततोऽन्ये पूर्वजाः स्वर्गे ये चान्ये नरकौकसः ॥ ये च तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः ॥ ६ ॥ तान्सर्वान्यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन्यथाविधि ॥ समाप्याययते वत्स येन येन शृणुष्व तत् ॥ ७ ॥

भोगमात्रको प्राप्त होता है ॥ २ ॥ पिता पितामह और प्रपितामह यह तीन जने पिंडसंबन्धी हैं ॥ ३ ॥ पितामहके पितामहसे तीन पुरुष लेपसम्बन्धी हैं उनमें यजमान सप्तम हैं ॥ ४ ॥ मुनियोंने इस प्रकारसे सात पुरुषका सम्बन्ध स्थिर किया है. यजमानसे ऊपरके पुरुष अनुलेपसम्बन्धी हैं ॥५॥ स्वर्गवासी पूर्व पुरुषगण और नरकवासी अपरापर सब पुरुष और जो तिर्यग्योनिगत और भूतादिमें स्थित हुए हैं ॥ ६ ॥ यजमान जिस जिस प्रकारके विधानानुसार श्राद्ध करके उनकी तृप्ति साधन करै. हे वत्स ! उसका वर्णन करती हूं सुनो ॥ ७ ॥

मनुष्य पृथ्वीतलमें अन्न बखेरते हैं उससे पिशाचयोनिप्राप्त पुरुषोंकी तृप्ति होती है ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! स्नानके वस्त्रसे निचोडा जो जल पृथ्वीमें गिरता है उससे वृक्षयोनि प्राप्त पुरुषोंकी तृप्ति होती है ॥ ९ ॥ वंशमें जिन्होंने देवत्व लाभ किया है गात्रसे जो जलकी बूंदें पृथ्वीमें गिरती हैं उनसे वह तृप्त होते हैं ॥ १० ॥ पिण्ड उठानेके समय जो अन्न पृथ्वीमें गिरता है तिर्यग्योनिगत पूर्व पुरुषगण उससे तृप्त होते हैं ॥ ११ ॥ जिन पुरुषोंने क्रियाके योग्य होकर भी असंस्कृत अवस्था और बाल्यवयसमें दग्ध होकर जविन परित्याग किया है. विकीर्ण अन्न और बुहारे जलको भोजन करनेसे वह तृप्त होते हैं ॥ १२ ॥ ब्राह्मण भोजन करनेके पीछे आचमनके समयमें जो जल फेंक देते हैं और उनके चरण धोनेके समय जो जल पृथ्वीमें गिरता है, अन्यान्य

अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि ॥ तेन तृप्तिमुपायांति ये पिशाचत्वमागताः ॥ ८ ॥ यदंबुस्नानवस्त्रोत्थं भूमौ पतति पुत्रक ॥ तेन ये तरुतां प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजायते ॥ ९॥ यास्तु गात्रांबुकणिकाः पतंति धरणीतले ॥ ताभिराप्यायनं तेषां ये देवत्वं कुले गताः ॥१०॥ उद्धृतेष्वथ पिंडेषु याश्चान्नकणिका भुवि ॥ ताभिराप्यायनं तेषां ये तिर्यक्त्वं कुले गताः ॥ ११ ॥ ये वा दग्धाः कुले बालाः क्रियायोग्या ह्यसंस्कृताः ॥ विपन्नास्तेऽन्नविकिरसंमार्जनजलाशिनः ॥ १२ ॥ भुक्त्वा चाचामतां यच्च जलं यच्चांघ्रिशोधने ॥ ब्राह्मणानां तथैवान्ये तेन तृप्तिं प्रयांति वै ॥१३॥ पिशाचत्वमनुप्राप्ताः क्रिमिकीटत्वमेव ये ॥ एवं यो यजमानस्य यश्च तेषां द्विजन्मनाम् ॥ १४ ॥ कश्चिज्जलान्न-विक्षेपः शुचिरुच्छिष्ट एव वा ॥ तेन तेन कुले तत्र तत्तद्योन्यंतरं गताः ॥१५॥ प्रयांत्याप्यायनं वत्स सम्यक्छ्राद्धक्रियावताम् ॥ अन्यायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः ॥ १६ ॥ तृप्यंते तेन चांडालपुल्कसाद्यासु योनिषु ॥ एवमाप्यायनं वत्स बहूनामपि बांधवैः ॥ १७ ॥

सब उसको ही पान करके तृप्त होते हैं ॥ १३॥ हे वत्स ! जो पिशाचत्वको प्राप्त हुए हैं तथा जो कृमि कीटपनेको प्राप्त हुए हैं जो यजमान उन ब्राह्मणोंके निमित्त ॥ १४ ॥ पवित्र वा अपवित्र जल छोडता है, उस जलसे वे योन्यन्तरको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ अच्छी प्रकार श्राद्ध करनेसे सम्यक् प्रकार तृप्त होते हैं. जो मनुष्य अन्यायके द्वारा उपार्जित किये धनसे श्राद्ध करता है ॥ १६ ॥ चांडाल और पुल्कसादियोनिगत पितर उसके द्वारा तृप्त होते हैं. हे वत्स ! इस प्रकारसे बान्धवगण ॥ १७ ॥

श्राद्धानुष्ठानपूर्वक जो जलबिन्दु और अन्नप्रदान करते हैं, उससे उनके अनेक पितृपुरुषोंकी तृप्ति होती है. इस प्रकार भक्तिमान् होकर शाकद्वाराभी यथाविधि श्राद्ध करना चाहिये ॥ १८ ॥ श्राद्धका अनुष्ठान करनेसे उसके वंशमें हुए किसीको भी अवसन्न होना नहीं पडता. हे वत्स! अब मैं श्राद्धका नित्य नैमित्तिक काल वर्णन करती हूं ॥ १९ ॥ और जिस विधिके अनुसार श्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये वहभी कहती हूं. सुनो—प्रति महीने जब चन्द्रमाका क्षय होताहै, उसी अमावास्यामें विधानानुसार श्राद्ध करना उचित है ॥ २० ॥ इसके अतिरिक्त पौषमासादिकी कृष्णाष्टमीमें भी श्राद्ध करना अवश्य कर्त्तव्य है. अब श्राद्धका अच्छा अच्छा काल कहती हूं श्रवण करो—यदि श्रेष्ठ ब्राह्मण प्राप्त होजाय तो सूर्य और चन्द्रके ग्रहणकालमें अयनमें ॥ २१ ॥

श्राद्धं कुर्वद्भिरन्नांबुशाकैरपि हि जायते ॥ तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि ॥ १८ ॥ कुर्वीत कुर्वतः श्राद्धं कुले कश्चिन्न सीदति ॥ तस्य कालानहं वक्ष्ये नित्यनैमित्तिकात्मकान् ॥१९॥ विधिना येन च नरैः क्रियते तन्निबोध मे ॥ कार्यं श्राद्धममावास्यां मासि मास्युडुपक्षये ॥ २० ॥ तथाष्टकास्वप्यवश्यमिष्टकालान्निबोध मे ॥ विशिष्टब्राह्मणप्राप्तौ सूर्येंदुग्रहणेऽयने ॥ २१ ॥ विषुवद्रविसंक्रांतिव्यतीपातेषु पुत्रक ॥ श्राद्धार्हद्रव्यसंपत्तौ तथा दुःस्वप्नदर्शने ॥ २२ ॥ जन्मर्क्षग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत चेच्छया ॥ विशिष्टः श्रोत्रियो योगी वेदविज्ज्येष्ठसामगः ॥ २३ ॥ त्रिणाचिकेतः श्रुतवान्विहितव्रतकारकः ॥ त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णः षडंगवित् ॥ २४ ॥ दौहित्रऋत्विक् जामाता स्वस्रीयः श्वशुरस्तथा ॥ पंचाग्निकर्मनिष्ठश्च तपोनिष्ठोऽथ मातुलः ॥ २५ ॥

विषुव समय (विषवती) में रविसंक्रमणमें व्यतीपातमें श्राद्धोपयुक्त वस्तु प्राप्त होनेपर दुःस्वप्न देखनेमें ॥ २२ ॥ जन्मनक्षत्रमें और ग्रहपीडा संघटित होनेपर इच्छापूर्वक श्राद्धका अनुष्ठान करे. जो पुरुषश्रेष्ठ भावसम्पन्न श्रोत्रिय योगी वेदज्ञ ज्येष्ठ साम गानेवाले ॥ २३ ॥ नाचिकेतप्रणीत तीन उनिषद्के उपासक त्रिमधु त्रिसुपर्ण और षडङ्गवेत्ता हैं ॥ २४ ॥ जो पुरुष दौहित्र ऋत्विक् जामीता भागिनीपुत्र और श्वशुर हैं जो पुरुष पंचाग्निकर्मनिष्ठ और तपःपरायण हैं जो पुरुष मातुल (मामा) ॥ २५ ॥

जो माता पिताका भक्त है जो शिष्यसंबन्धी और बान्धव है ऐसा उत्तम ब्राह्मणही श्राद्धका उपयुक्त पात्र है ॥ २६ ॥ अवकीर्णी (ब्रह्मचर्यादिरहित) रोगी स्थूलाङ्ग हीनाङ्ग दो विवाहिताके गर्भसे उत्पन्न एकचक्षु कुण्ड (जीवितभर्तृकाका गर्भजात जारजपुत्र), गोलक (पतिके मरनेपर औरसे उत्पन्न कुपुत्र) ॥ २७ ॥ बन्धुद्रोही कुनखी क्लीब काले दांतवाला निराकृति (हीनाकृति) पिताके द्वारा शापित क्रूर सोमविक्रयी (शराब बेंचनेवाला) ॥ २८ ॥ कन्यादूषयिता वेदव्यवसायी गुरु वा पितृत्यागी भृतकाध्यापक (वेतनग्रहणपूर्वक अध्यापनकारी) अमित्र परपूर्वापति (जो नारी पहिले दूसरेकी स्त्री थी उसका स्वामी) ॥ २९ ॥ देवत्यागी अग्नित्यागी शूद्रीपति (बारह वर्षकी अनूढा ऋतुमती स्त्रीका पति) दूषित और अपरापर गर्हित कर्मके अनुष्ठान

मातापितृपराश्चैव शिष्यसंबंधिबांधवाः ॥ एते द्विजोत्तमाः श्राद्धे समस्ताः केतनक्षमाः ॥ २६ ॥ अवकीर्णी तथा रोगी न्यूनांगस्त्वधिकांगकः ॥ पौनर्भवस्तथा काणः कुंडो गोलोऽथ पुत्रक ॥ २७ ॥ मित्रध्रुक्कुनखी कुष्ठी श्यावदंतो निराकृतिः ॥ अभिशस्तस्तथा स्तेयः पिशुनः सोमविक्रयी ॥ २८ ॥ कन्यादूषयिता वैद्यो गुरुपित्रोस्तथोज्झकः ॥ भृतकाध्यापको मित्रं परदुष्टापतिस्तथा ॥ २९ ॥ वेदोज्झश्चाग्निसंत्यागी वृषलापत्यदूषितः ॥ यथान्ये च विकर्मस्था वर्ज्याः पैत्र्येषु वै द्विजाः ॥ ३० ॥ निमंत्रयेत पूर्वेद्युः पूर्वोक्तान्द्विजसत्तमान् ॥ दैवे नियोगे पित्र्ये च तांस्तथैवोपकल्पयेत् ॥३१॥ तैश्च संयमिभिर्भाव्यं यश्च श्राद्धं करिष्यति ॥ श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽनुगच्छति ॥ ३२ ॥ पितरस्तु तयोर्मासं तस्मिन्रेतासि शेरते ॥ गत्वा च योषितं श्राद्धे यो भुंक्ते यस्तु गच्छति ॥ ३३ ॥ रेतोमूत्रकृताहारास्तं मासं पितरस्तयोः ॥ तस्मात्तु प्रथमं कार्यं प्राज्ञेनोपनिमंत्रणम् ॥ ३४ ॥

करनेवाले ब्राह्मणको पितृकर्ममें परित्याग करे ॥ ३० ॥ श्राद्धके पहिले दिन पूर्वकथित ब्राह्मणश्रेष्ठको निमंत्रण करना चाहिये क्या देवकार्य क्या पितृकार्य दोनों कार्योंमेंही उसको ब्राह्मण करना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो श्राद्धका अनुष्ठान करे उसको समयपूर्वक रहना चाहिये जो पुरुष श्राद्ध कर और श्राद्ध भक्षण करके मैथुन करता है ॥ ३२ ॥ उसके पिता एक महीनेतक उस शुक्रमें शयन करते हैं. जो पुरुष नारी संग करके श्राद्धमें आहार वा गमन करता है ॥ ३३ ॥ उन दोनोंके पितृपुरुष एकमासतक शुक्र और मूत्रपान करके स्थिति करते हैं इस कारणही बुद्धिमान् पुरुष प्रथम पूर्वदिनमें निमन्त्रण

करै ॥ ३४ ॥ कार्यके दिन ब्राह्मणके न मिलनेपरभी नारीसंगीको कभी ब्राह्मणपदमें नियुक्त न करै. यथासमयमें भिक्षार्थ अभ्यागत संयमी यतीको ॥ ३५ ॥ प्रणामादि द्वारा प्रसन्न करके संयत चित्तसे भोजन करावै शुक्लपक्षकी अपेक्षा कृष्णपक्ष जिस प्रकार पितरोंको प्रिय है ॥ ३६ ॥ इसी प्रकार पूर्वाह्नकी अपेक्षा अपराह्नही उनके अधिक सन्तोषका कारण है घर आये हुए ब्राह्मणसे स्वागत पूछ भलीभाँति उसकी अर्चना करके ॥ ३७ ॥ कुश हाथमें लिये उसको आसनपर बैठाले पितृकार्यमें अयुग्म और देवकार्यमें युग्म ब्राह्मण श्रेष्ठकोही वरण करना चाहिये ॥ ३८ ॥ अथवा अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रतिकर्ममें

अप्राप्तौ तद्दिने चापि वर्ज्या योषित्प्रसंगिनः ॥ भिक्षार्थमागतान्वापि काले संयमिनो यतीन् ॥ ३५ ॥ भोजयेत्प्रणिपाताद्यैः प्रसाद्य यतमानसः ॥ यथैव शुक्लपक्षाद्वै पितॄणामसितः प्रियः ॥ ३६ ॥ तथापराह्णः पूर्वाह्णात्पितॄणामतिरिच्यते ॥ संपूज्य स्वागतेनैतानभ्युपेतान्गृहे द्विजान् ॥ ३७ ॥ पवित्रपाणिराचांतानासनेषूपवेशयेत् ॥ पितॄणामयुजः कामं युग्मान्दैवे द्विजोत्तमान् ॥ ३८ ॥ एकैकं वा पितॄणां च देवानां च स्वशक्तितः ॥ तथा मातामहानां च तुल्यं वा वैश्वदैविकम् ॥ ३९ ॥ पृथक्तयोस्तथा चान्ये केचिदिच्छंति मानवाः ॥ प्राङ्मुखान्दैवसंकल्पान्पित्र्यान्कुर्यादुदङ्मुखान् ॥ ४० ॥ तथा मातामहानां च विधिरुक्तो मनीषिभिः ॥ विष्टरार्थे कुशान्दत्त्वा संपूज्यार्घ्यादिना ततः ॥ ४१ ॥ पवित्रकाणि दत्त्वा वै तेभ्योऽनुज्ञामवाप्य च ॥ कुर्यादावाहनं प्राज्ञो देवानां मंत्रतो द्विजः ॥ ४२ ॥ यवांभोभिस्ततश्चार्घ्यं दत्त्वा वै वैश्वदैविकम् ॥ गंधमाल्यादिधूपं च दत्त्वा सम्यक्सदीपकम् ॥ ४३ ॥

एक ब्राह्मणको वरण करै मातामहके पक्षमें भी इसी प्रकार विधि वा वैश्वदेवविधि निर्दिष्ट है ॥ ३९ ॥ कोई २ मनुष्य पृथक् प्रकारसे व्यवस्थाकी इच्छा करते हैं पूर्वमुख होकर देवकार्य एवं उत्तरमुख होकर पितृकार्य ॥ ४० ॥ और मातामहका कार्य समापन करै. मनीषिगणोंने इसी प्रकार विधि निरूपित करी है इसी समयमें आसनके लिये कुश प्रदान करै और अर्घ्यादिसे पूजा करै ॥ ४१ ॥ फिर पवित्रकादि अर्पणपूर्वक अभ्यागत ब्राह्मणकी आज्ञा ले मंत्रपाठसहित देवताओंको आवाहन करना चाहिये ॥ ४२ ॥ यवसंयुक्त जलद्वारा विश्वदेवके उद्देश्यसे अर्घ्यप्रदानपूर्वक गन्ध माल्य धूप दीप ॥ ४३ ॥

और जलदान करके दक्षिण दिशामें पितरोंका समस्त कर्म सम्पादन करै तदनन्तर द्विगुणदर्भ प्रदानपूर्वक उसकी आज्ञा ले ॥ ४४ ॥ मन्त्रोच्चारण सहित पितरोंका आवाहन करना चाहिये ॥ हे महाभाग ! इसी समय पितरोंके प्रीतिविधानमें निरत होकर अपसव्य हो दक्षिण दिशामें यथार्थ तिलयुक्त अर्घ्यप्रदान करै. इसके पीछे ब्राह्मणोंकी अग्निकार्य करो इस प्रकार आज्ञा पाय ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ अग्निमें विधानानुसार व्यञ्जन और क्षाररहित अन्नकी आहुति देनी चाहिये "अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा" अर्थात् जो कव्य वहन करते हैं उसी अग्निको प्रसन्न करनेके लिये मैं यह अन्न प्रदान करता हूं यह वचन उच्चारण करके प्रथम आहुति दे ॥ ४७ ॥ फिर "सोमाय वै पितृमते स्वाहा" इस प्रकार वचन उच्चारणसहित दूसरी आहुति देनी चाहिये इसके पीछे

अपसव्यं पितॄणां च सर्वमेवोपकल्पयेत् ॥ दर्भांश्च द्विगुणान्दत्त्वा तेभ्योऽनुज्ञामवाप्य च ॥ ४४ ॥ मंत्रपूर्वं पितॄणां च कुर्यादावाहनं बुधः ॥ अपसव्यं तथैवार्घ्यं यथार्थं च तथा तिलैः ॥ ४५ ॥ निष्पादयेन्महाभाग पितॄणां प्रीणने रतः ॥ अग्नौकार्यमनुज्ञातः कुरुष्वेति ततो द्विजैः ॥ ४६ ॥ जुहुयाद्व्यंजनक्षारवर्जमन्नं यथाविधि ॥ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहेति प्रथमाहुतिः ॥ ४७ ॥ सोमाय वै पितृमते स्वाहेत्यन्या तथा भवेत् ॥ यमाय प्रेतपतये स्वाहेति तृतीयाहुतिः ॥ ४८ ॥ हुतावशिष्टं दद्याच्च भाजनेषु द्विजन्मनाम् ॥ भाजनालंभनं कृत्वा दत्त्वा चान्नं यथाविधि ॥ ४९ ॥ यथासुखं जुषध्वं भोरिति वाच्यमनिष्ठुरम् ॥ भुंजीरंश्च ततस्तेऽपि तच्चित्ता मौनिनः सुखम् ॥५०॥ यद्यदिष्टतमं तेषां तत्तदन्नमसत्वरम् ॥ अक्रुध्यंश्च नरो दद्यात्संस्तवेन प्रलोभयेत् ॥ ५१ ॥ रक्षोघ्नांश्च जपेन्मंत्रांस्तिलैश्च विकिरेन्महीम् ॥ सिद्धार्थकैश्च रक्षार्थं श्राद्धं हि प्रचुरच्छलम् ॥ ५२ ॥

"यमाय प्रेतपतये स्वाहा" यह वचन उच्चारण करके तीसरी आहुति दे ॥४८॥ होमके अन्तमें जो अवशिष्ट रहे वह ब्राह्मणोंके पात्रमें प्रदान करै उसी समय आप यथासुखसे "यह अन्न भोजन कीजिये" मधुर वचनसे यह बात कहै तब ब्राह्मण मौनभावसे तद्गत चित्त हो यथा सुखसहित वह भोजन करैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ जो अन्न उनको प्रिय हो क्रोधपरित्यागपूर्वक धीरे धीरे उनको सम्भवानुसार प्रलोभित करके वही प्रदान करना चाहिये ॥ ५१ ॥ रक्षोघ्नमंत्र जप करके समस्त भूमिमें तिल बखेरे रक्षाके निमित्त सरसोंभी बखेरना चाहिये क्योंकि श्राद्ध स्वतःही अनेक छिद्रपूर्ण है ॥ ५२ ॥

अनन्तर आप पुष्टि तृप्तिजनक अन्न भोजन करके " तृप्त हुए " यह वचन उच्चारण करनेपर ब्राह्मणभी " तृप्ताः स्मः " अर्थात् " तृप्त हुए " इस प्रकार कहैं तब उनकी आज्ञा ग्रहण कर भूमितलमें सर्वत्र अन्न बखेरना चाहिये ॥ ५३ ॥ और आचमनार्थ विधानानुसार एक एक वार जल प्रदान करै फिर आज्ञा ग्रहण कर संयत वाक्य संयत मन और संयताकार हो ॥ ५४॥ तिलसहित अन्नसे पिण्ड बनाय दक्षिण दिशामें पितरोंके उद्देश्यसे कुशाओंके ऊपर उच्छिष्टके निकट अर्पण करै ॥ ५५ ॥ तिस समय सावधान हो पितरोंके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक पितृतीर्थ योगमें उनको जलदान करै ॥ ५६ ॥ यह मातामहके उद्देश्यसे भी इसी विधानानुसार पिण्ड समर्पण करके गंधमाल्यादि समन्वित आचमन प्रदान करै ॥ ५७ ॥ अनन्तर अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा देकर

पृष्टैस्तृप्तैश्च तृप्ताः स्थः तृप्ताः स्म इति वादिभिः ॥ अनुज्ञातो नरस्त्वन्नं विकिरेद्भुवि सर्वतः ॥ ५३ ॥ तद्वदाचमनार्थाय दद्यादंभः सकृत्सकृत् ॥ अनुज्ञां च ततः प्राप्य यतवाक्कायमानसः ॥ ५४ ॥ सतिलेन ततोऽन्नेन पिंडान्सर्वेण पुत्रक ॥ पितॄनुद्दिश्य दर्भेषु दद्यादुच्छिष्टसंनिधौ ॥ ५५ ॥ पितृतीर्थेन तोयं च दद्यात्तेभ्यः समाहितः ॥ पितॄन्संचिंत्य तद्भक्त्या यजमानो नृपात्मज ॥ ५६ ॥ तद्वन्मातामहानां च दद्यात्पिडान्यथाविधि ॥ गंधमाल्यादिसंयुक्तान्दद्यादाचमनं ततः ॥ ५७ ॥ दत्त्वा च दक्षिणां शक्त्या सुस्वधास्त्विति तान्वदेत् ॥ तैश्च तुष्टैस्तथेत्युक्त्वा वाचयेद्वैश्वदैविकान् ॥ ५८ ॥ प्रीयंतामिति भद्रं वो विश्वेदेवा इतीरयेत् ॥ तथेति चोक्ते तैर्विप्रैः प्रार्थनीयास्तदाशिषः ॥ ५९ ॥ विसर्जयेत्प्रियाण्युक्त्वा प्रणिपत्य च भक्तितः ॥ आद्वारमनुगच्छेच्च आगच्छेच्चानुमोदितः ॥ ६० ॥

उनसे सुस्वधास्तु इत्यादि मंत्र पाठ करावे जब वह प्रसन्न होकर उस मंत्रका पाठ करें तो उसके द्वारा " हे विश्वदेव ! ॥ ५८ ॥ आप संतुष्ट हो आपका श्रेयःसाधन अर्थात् कल्याण हो " इत्यादि वैश्वदैविक मंत्रपाठ करावे. जब वह मंत्रका पाठ कर चुके तब उनके समीप आशीर्वाद प्रार्थना करना चाहिये ॥ ५९ ॥ अनन्तर प्रिय वचन कह सबको भक्तिसहित प्रणाम कर विदा दे विदाके समय द्वारदेश पर्यन्त उनका अनुगमन करना चाहिये, उनके अनुमोदन करनेपर लौट आवै ॥ ६० ॥

अन्तमें नित्य किया करके अतिथिगणोंको भोजन दे कोई कोई पुरुष पितरोंके नित्य क्रिया करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ६१ ॥ कोई कोई इसके विरुद्ध मत प्रकाश करते हैं, परन्तु अवशिष्ट कर्म पूर्ववत् समापन करै. किसी किसीके मतसे पृथक् पाकपूर्वक पितृकार्य करनेकी आवश्यकता नहीं होती और किसीके मतसे पृथक् पाक करना चाहिये ॥ ६२ ॥ फिर वह अन्न भृत्यगणके सहित भोजन करै. हे धर्मज्ञ ! इस प्रकारसे अथवा जिसके द्वारा ब्राह्मणोंका सन्तोष हो, उसी प्रकार सावधान हो पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये दौहित्र कुतुप[1] और तिल श्राद्धमें यह तीन पवित्र हों ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ और कोप मार्गमें भ्रमण एवं त्वरा यह तीन वर्जित हैं ब्राह्मणश्रेष्ठोंने इस प्रकार निरूपण किया है. हे पुत्र ! श्राद्धमें रजत (चांदी)

ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च तथातिथीन् ॥ नित्यक्रियां पितृणां च केचिदिच्छंति सत्तमाः ॥ ६१ ॥ न पितृणां तथैवान्ये शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥ पृथक्पाकेन चेत्यन्ये केचित्पूर्वं च पूर्ववत् ॥ ६२ ॥ ततस्तदन्नं भुंजीत सह भृत्यादिभिर्नरः ॥ एवं कुर्वीत धर्मज्ञः श्राद्धं पित्र्यं समाहितः ॥ ६३ ॥ यथा वा द्विजमुख्यानां परितोषोऽभिजायते ॥ त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रं कुतुपस्तिलाः ॥ ६४ ॥ वर्ज्यानि चाहुर्विप्रैश्च कोपोऽध्वगमनं त्वरा ॥ राजतं च तथा पात्रं शस्तं श्राद्धेषु पुत्रक ॥ ६५ ॥ रजतस्य तथा कार्यं दर्शनं दानमेव वा ॥ राजते हि स्वधा दुग्धा पितृभिः श्रूयते मही ॥ ६६ ॥ तस्मात्पितृणां रजतमभीष्टं प्रीतिवर्धनम् ॥ ६७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासने श्राद्धकल्पो नामाष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ मदालसोवाच ॥ अतः परं शृणुष्वेमं पुत्र भक्त्या यदाहृतम् ॥ पितृणां प्रीतये यद्यद्वर्ज्यं वा प्रीतिकारकम् ॥ १ ॥

पात्र श्रेष्ठ है ॥ ६५ ॥ रौप्य दान वा रौप्य दर्शन करना अवश्य उचित है। इस प्रकार सुना है कि, पितरोंने रौप्य पात्रमें वसुमतीसे स्वधारूपी दूध दोहन कियाथा ॥ ६६ ॥ इसी कारण रौप्य पितरोंका अभीष्ट और प्रीतिवर्द्धक है ॥ ६७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ मदालसा बोली-हे पुत्र ! अनन्तर पितरोंकी प्रीति संपादन करनेके लिये भक्तिपूर्वक जो जो आहरण करना चाहिये एव जो वर्जित है और जिससे प्रसन्न होते हैं वह कहती हूं सुनो ॥ १ ॥

---

[1] कुतुप दिनके पंचदश भागका अष्टमांश ।

हविष्यान्नसे वह एक महीने तृप्त रहते हैं. मत्स्य, मास द्वारा पितामहगण दो महीने तक तृप्त रहते हैं ॥ २ ॥ हरिणका मांस उनको तीन महीने तृप्त रखता है, खरगोशके मांससे चार महीने उनका पोषण होता है ॥ ३ ॥ पक्षीके मांस द्वारा पांच महीने, सूकरके मांससे छः महीने, वार्ध्रीणसके ❀ मांससे सात महीने, ऐण मृगके मांससे आठ महीने ॥ ४ ॥ रुरु मृगके मांससे नौ महीने और गवयके मांससे दश महीने तक पितृगण तृप्ति लाभ करते हैं इसमें संशय नहीं ॥ ५ ॥ औरभ्रमांस ग्यारह महीने तक पितरोंको तृप्तिप्रद है, गव्य दुग्ध और खीर द्वारा सम्वत्सर तक उनको तृप्तिलाभ होता है ॥ ६ ॥ गंडार-

मासं तृप्तिः पितॄणां च हविष्यान्नेन जायते ॥ मासद्वयं मत्स्यमांसैस्तृप्तिं यांति पितामहाः ॥ २ ॥ त्रीन्मासान्हारिणं मांसं विज्ञेयं पितृतृप्तये ॥ पुष्णाति चतुरो मासाञ्छशस्य पिशितं पितॄन् ॥ ३ ॥ शाकुनं पंच वै मासान्षण्मासान्सूकरामिषम् ॥ छागलं सप्त वै मासानैणेयं चाष्टमासिकीम् ॥ ४ ॥ करोति तृप्तिं नव वै रुरोर्मांसं न संशयः ॥ गवयस्यामिषं तृप्तिं करोति दशमासिकीम् ॥ ५ ॥ तथैकादश मासांस्तु औरभ्रं पितृतृप्तिदम् ॥ संवत्सरं तथा गव्यं पयः पायसमेव वा ॥ ६ ॥ वार्ध्रीणसामिषं लोहं कालशाकं तथा मधु ॥ दौहित्रामिषमन्यच्च दत्तमात्मकुलोद्भवैः ॥ ७ ॥ अनंतां वै प्रयच्छांति तृप्तिं गौरीसुतस्तथा ॥ पितॄणां नात्र संदेहो गयाश्राद्धं च पुत्रक ॥ ८ ॥ राजश्यामाकश्यामाको तद्वच्चैव प्रशातिका ॥ नीवाराः पौष्कराश्चैव वन्यानि पितृतृप्तये ॥ ९ ॥ यवव्रीहिसगोधूमातिलमुद्गाः ससर्षपाः ॥ प्रियंगवः कोद्रवाश्च निष्पावाश्चातिशोभनाः ॥ १० ॥

मांस (लोह) कालशाक, मधु, दौहित्रका दि[illegible] आमिष वा निजवंशोद्भव अन्य जिस किसी पुरुषका दियाहुआ मांस ॥ ७ ॥ एवं गौरीसुत और गयाश्राद्ध, हे पुत्र ! इन सबके द्वारा वह अनन्त तृप्तिलाभ करते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ समा, राजश्यामाक, पसाईके चावल, नीवार और पौष्कर, यह तीनों धान्य पितरोंको परम प्रसन्नतादायक हैं ॥ ९ ॥ इनके अतिरिक्त यव, व्रीहि, गेहूं, तिल, मूंग, सरसों, प्रियंगु, कोविदार और निष्पाव, यह सब भी उनके अत्यन्त तृप्तिजनक हैं ॥ १० ॥

❀ " त्रिः पिबन्ति कृतं क्लीबं श्वेतं वृद्धमजापतिम् ॥ वार्ध्रीणसं तु तं प्राहुर्मुनयो यज्ञकर्मणि " ॥ अर्थात् जो श्वेत वर्ण, नपुंसक किया और वृद्ध जिस बकरेके जलपानसमयमें दोनों कान ओर नासिका जलमें डूबती हैं, उसको " वार्ध्रीणस " कहते हैं । मुनियोंके मतसे यह श्राद्धादिमें अति प्रशस्त है ।

और मकई, राजमाष (लोविया) विप्रूषी और मसूर श्राद्धकर्ममें यह सब द्रव्य गर्हित कहे गये हैं, अतएव इन सबको श्राद्धकर्ममें त्यागदे ॥ ११ ॥ लहसन. गाजर, प्याज, पिंडमूलक (मूली) करंभ तथा वर्णहीन और रसहीन अन्यान्य वस्तु ॥ १२ ॥ गान्धारिका (कचूर) अलाबु (तुंबी) खारी लवण, लाल-गोंद और प्रत्यक्ष लवण ॥ १३ ॥ श्राद्धमें यह सब द्रव्य भी वर्जित हैं. वाणीसे गर्हित अर्थात् जिस वस्तुका उच्चारण श्रेष्ठ न हो और उत्कोचसे प्राप्त हो, या पतितका आया हुआ धन ॥ १४ ॥ और अन्यान्यसे आया हुआ तथा घृणित कन्याशुल्कद्वारा लब्ध द्रव्य अर्थात् कन्यापर लिया हुआ द्रव्य इत्यादिकाभी त्याग करै. दुर्गन्धपूर्ण और फेनयुक्त जल, तथा अल्प जल ॥१५॥ और जिससे गौकी तृप्ति नहीं हो सकती वा बासी जल या अपेय जल

वर्ज्या मर्कटकाः श्राद्धे राजमाषास्तथाणवः ॥ विप्रूषिका मसूराश्च श्राद्धकर्मणि गर्हिताः ॥ ११ ॥ लशुनं गृंजनं चैव पलांडुः पिंडमूलकम् ॥ करंभं यानि चान्यानि हीनानि रसवर्णतः ॥ १२ ॥ गांधारिकमलावूनि लवणान्यूषराणि च ॥ आरक्ता ये च निर्यासाः प्रत्यक्षलवणानि च ॥ १३ ॥ वर्जयेत्तानि वै श्राद्धे यच्च वाचा न शस्यते ॥ यच्चाप्युत्कोचतः प्राप्तं पतिताद्यदुपार्जितम् ॥ १४ ॥ अन्यायकन्याशुल्कोत्थं द्रव्यं चात्र विगर्हितम् ॥ दुर्गंधि फेनिलं चांबु तथैवाल्पतरोदकम् ॥ १५ ॥ न लभेद्यत्र गौस्तृप्तिं नक्तं यच्चाप्युपाहृतम् ॥ यन्न सर्वापचोत्सृष्टं यच्चाभोज्यनिपानजम् ॥ १६ ॥ तद्वर्ज्यं सलिलं तात सदैव पितृकर्मणि ॥ मार्गमाविकमौष्ट्रं च सर्वमेकशफं च यत् ॥ १७ ॥ माहिषं चामरं चैव धेन्वा गोश्चाप्यनिर्दशम् ॥ पित्रर्थं मे प्रयच्छस्वेत्युक्त्वा यच्चाप्युपाहृतम् ॥ १८ ॥ वर्जनीयं सदा सद्भिस्तत्पयश्राद्धकर्मणि ॥ वर्ज्या जंतुमती रूक्षा क्षितिः प्लुष्टा तथाग्निना ॥ १९ ॥

अथवा अभोज्योंके बनाये कूपादिका जल ॥ १६ ॥ हे तात ! ऐसा जलभी पितृकार्यमें सर्वथा त्यागदे । मृग, ऊंट, बकरी और एक खुरवाले जितने पशु हैं यह भी तथा ॥ १७ ॥ भैंसका दूध, चमर गाय (सुरागाय) का दूध, वा व्यानेके पीछे जिसको दश दिन नहीं बीते हैं ऐसी गायका दूध " मेरे पितृकार्यके लिये प्रदान करो " इस प्रकार कहकर लाया हुआ जो किसी भाँतीका दूध है ॥ १८ ॥ साधु पुरुष यह सब दूध श्राद्धकर्ममें त्याग देते हैं जो स्थान कीटादिसे पूर्ण रूखा, अग्निसे जलाहुआ ॥ १९ ॥

और दुर्गन्धपूर्ण है तथा अनिष्ट स्थानकी मिट्टी और कुवाक्य कहना श्राद्धकर्ममें त्याग करे और कुलहिंसक तथा कुलका तिरस्कार करनेवाले श्राद्धमें वर्जित हैं ॥ २० ॥ नीच कुलवाला, ब्रह्महत्यारा, रोगी, अन्त्यज (नीच), नग्न और पातकी, यह दृष्टिसे ही श्राद्ध क्रियाको नष्ट कर देते हैं ॥ २१ ॥ नपुंसक, विद्ध, मुरगा, ग्रामसूकर, कुत्ता और राक्षस इनके देखनेसेही श्राद्ध हत होजाता है ॥ २२ ॥ इसी कारण गोपनभावसे पृथ्वीमें तिल बखेरै । हे वत्स ! इस प्रकार अनुष्ठान करनेसे दोनोंकी रक्षा होती है ॥ २३ ॥ मृतकके पातकवाला वा सूतकवालेसे सम्पर्क करनेवाला अथवा काक सूकरसे स्पर्श किया हुआ, सदा रोगी, पतित और मलिन अर्थात् पातकी पुरुषोंके द्वारा पितामहगणको पुष्टिलाभकी संभावना नहीं है ॥२४॥ श्राद्धमें ऐसे पुरुषको वर्जन

अनिष्टा दुष्टशब्दोग्रा दुर्गंधा श्राद्धकर्मणि ॥ कुलापमानकाः श्राद्धे व्यायुज्य कुलहिंसकाः ॥२०॥ कुलाधमो ब्रह्महा च तथा वै रोगिणोऽन्त्यजाः ॥ नग्नाः पातकिनश्चैव घ्नंति दृष्ट्या पितृक्रियाम् ॥ २१ ॥ अपुमानपविद्धश्च कुक्कुटो ग्रामसूकरः ॥ श्वा चैव हंति श्राद्धानि यातुधानाश्च दर्शनात् ॥ २२ ॥ तस्मात्सुसंवृतो दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम् ॥ एवं रक्षा भवेच्छ्राद्धे कृता तातोभयोरपि ॥ २३ ॥ शावसूतकिसंस्पृष्टं दीर्घरोगिभिरेव च ॥ पतितैर्मलिनैश्चैव पुष्णाति न पितामहान् ॥ २४ ॥ वर्जनीयं तथा श्राद्धे सदोदक्यादिदर्शनम् ॥ चंडशौंडसमा भाषा यजमानेन चादरात् ॥ २५ ॥ केशकीटावपन्नं च तथा श्वभिरवेक्षितम् ॥ पूति पर्युषितं चैव वार्ताक्यभिषवांस्तथा ॥ २६ ॥ वर्जनीया हि वै श्राद्धे तथा वस्त्रानिलाहतम् ॥ श्रद्धया परया दत्तं पितॄणां नामगोत्रतः ॥ २७ ॥ यदाहाराश्च ते जातास्तदाहारत्वमेति तत् ॥ तस्माच्छ्रद्धायुतं पात्रे यच्छ त्वं पितृकर्माणि ॥ २८ ॥

करै और रजस्वलाका दर्शन भी उस समय परित्याग करे । यजमान मुंडित समस्त और सुरासक्त पुरुषका स्पर्श यत्नसहित परित्याग करे ॥ २५ ॥ केश और कीटयुक्त कुत्तेके द्वारा देखाहुआ, पूतिगन्धपूर्ण, बासी, बैंगन (वस्त्रकी पवनसे युक्त) द्रव्य श्राद्धमें परित्याग करे । परम श्रद्धासहित पितरोंके नाम और गोत्रानुसार जो कुछ अर्पण कियाजाय ॥ २६ ॥ २७ ॥ वही उनके आहाररूपमें परिणत होता है इसी कारण श्राद्धमें पितरोंका सन्तोष साधनके लिये पात्रको जिमावै ॥ २८ ॥

श्रद्धावान् होकर समस्त श्रेष्ठवस्तु विधानानुसार समर्पण करे. विद्वान् पुरुष श्राद्धमें सदा योगियोंको भोजन करावे ॥ २९ ॥ क्योंकि पितृगणही योगके एक मात्र आधार हैं, अतएव योगीकी सदा पूजा करनी चाहिये । सहस्र ब्राह्मणोंकी अपेक्षा एकमात्र योगीको सबसे पहिले भोजन करानेसे ॥ ३० ॥ जलमें नौका जिस प्रकार आरोहीको उद्धार करती है, इसी प्रकार वह भी यजमान और भोक्ता सबको उद्धार करता है। ब्रह्मवादिगण इस स्थलमें पितृगाथा कीर्त्तन करगये हैं ॥ ३१ ॥ पूर्वकालमें पितरोंने महीपति ऐलके उद्देश्यसे यह गाथा गाई थी । उन्होंने इस प्रकार कहाथा कि " हमारे पुत्रोंमें कब ऐसा सर्वोत्तम पुत्र जन्म ग्रहण करेगा " ॥ ३२॥ जो योगियोंके भोजनसे बचेहुए अन्नद्वारा पृथ्वीतलमें हमको पिण्ड समर्पण करेगा । अथवा हमारी एक मासकी तृप्तिके

तथा तच्चैव दातव्यं पितृणां तृप्तिमिच्छता ॥ योगिनश्च सदा श्राद्धे भोजनीया विपश्चिता ॥ २९ ॥ योगाधारा हि पितरस्तस्मात्तान्भोजयेत्सदा ॥ ब्राह्मणानां सहस्रस्य योगी त्वग्रासनी यदि ॥ ३० ॥ यजमानं च भोक्तृंश्च नौरिवांभसि तारयेत् ॥ पितृगाथास्तथैवात्र श्रूयंते ब्रह्मवादिभिः ॥ ३१ ॥ या गीताः पितृभिः पूर्वमैलस्यासन्महीपतेः ॥ कदा नः संततावग्र्यः कस्याचिद्भविता सुतः ॥ ३२ ॥ यो योगिभुक्तशेषान्नैर्भुवि पिंडं प्रदास्यति ॥ गयायामथवा पिंडं खड्गमांसं महाहविः ॥ ३३ ॥ कालशाकं तिलाढ्यं वा कृसरं मासतृप्तये ॥ वैश्वदेव्यं च सौम्यं च खड्गमांसं परं हविः ॥ ३४ ॥ विषाणवर्ज्यखड्गात्स्यामासूर्यान्नाशयामहे ॥ तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि ॥ ३५ ॥ मधुसर्पिःसमायुक्तं पायसं दक्षिणायने ॥ तस्मात्संपूजयेद्भक्त्या स्वपितॄन्यतमानसः ॥ कामानभीप्सन्सकलान्पापाच्चात्मविमोचनम् ॥ ३६॥ वसून्रुद्रांस्तथादित्यान्नक्षत्रग्रहतारकाः ॥ प्रीणयंति मनुष्याणां पितरः श्राद्धतर्पिताः ॥ ३७ ॥

लिये गयाधाममें उत्कृष्ट हविस्वरूप गैंडेका मांस ॥ ३३ ॥ कालशाक, तिलयुक्त खिचडी इन सब वस्तुओंके द्वारा पिंडप्रदान करेगा । वैश्वदेव और सौम्यबालिके विषयमें गैंडेका मांसही परम हवि कहा गया है ॥ ३४॥ सींगविहीन गैंडेका मांस प्राप्त होनेपर जबतक सूर्यकी स्थिति रहती है, हम तबतक उसको भोजन करते हैं । त्रयोदशीतिथियुक्त मघानक्षत्रमें विधानानुसार ॥ ३५ ॥ श्राद्ध और दक्षिणायनमें मधु घृतयुक्त पायस (खीर) प्रदान करे । हे पुत्र ! इस प्रकार भक्तिसहित एकाग्र मनसे पूजा करनेपर संपूर्ण कामना पूरी होती है और समस्त पाप दूर होते हैं । श्राद्धमें पितरोंको तृप्त करनेसे वसु, रुद्र,

आदित्य, ग्रह, नक्षत्र और तारका सबही प्रसन्न होते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ श्राद्धद्वारा पितरोंकी तृप्ति साधन करनेसे वह आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख और राज्य प्रदान करते हैं ॥ ३८ ॥ हे पुत्र ! यह मैंने तुमसे शास्त्रविहित श्राद्धविधिका वर्णन किया । हे वत्स ! अब काम्यश्राद्धकी तिथि वर्णन करती हूं, सुनो ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ मदालसा बोली हे वत्स ! प्रतिपत् तिथिमें श्राद्धका अनुष्ठान करनेसे धनलाभ होता है। इसी प्रकार द्वितीयामें सम्पत्तिलाभ, तृतीयामें वरप्राप्ति और चतुर्थीतिथिमें श्राद्ध करनेसे शत्रुका विनाश

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥ प्रयच्छंति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः ॥ ३८ ॥ एतत्ते कथितं पुत्र श्राद्धकर्म यथोदितम् ॥ काम्यानां श्रूयतां वत्स श्राद्धानां तिथिकीर्त्तनम् ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेऽलर्कानुशासने श्राद्धकल्पो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ मदालसोवाच ॥ प्रतिपद्धनलाभाय द्वितीया द्विपदप्रदा ॥ वरार्थिनी तृतीया तु चतुर्थी शत्रुनाशिनी ॥ १ ॥ श्रियं प्राप्नोति पंचम्यां षष्ठ्यां पूज्यो भवेन्नरः ॥ राजाधिपत्यं सप्तम्यामष्टम्यां वृद्धिमुत्तमाम् ॥ २ ॥ स्त्रियो नवम्यां प्राप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम् ॥ वेदांस्तथाप्नुयात्सर्वानेकादश्यां क्रियापरः ॥ ३ ॥ द्वादश्यां जयलाभं च प्राप्नोति पितृपूजकः ॥ प्रजां बुद्धिं पशून्वृद्धिं स्वातंत्र्यं पुष्टिमुत्तमाम् ॥ ४ ॥ दीर्घमायुस्तथैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम् ॥ अवाप्नोति न संदेहो श्राद्धं श्रद्धापरो नरः ॥ ५ ॥

होता है ॥ १ ॥ पंचमीमें श्राद्ध करनेसे स्त्रीलाभ, षष्ठीमें सर्व जनसमाजमें पूजा, सप्तमीमें गणाधिपत्य और अष्टमीमें श्राद्ध करनेसे अनुत्तम बुद्धिलाभ होता है ॥ २ ॥ नवमीमें श्राद्ध करनेसे रमणीका लाभ, दशमीमें समस्त कामना पूर्ण और एकादशी तिथिमें श्राद्ध करनेसे समस्त वेदमें अभिज्ञतालाभ होता है ॥ ३ ॥ जो पुरुष द्वादशी तिथिमें पितरोंकी पूजा करता है, उसको जयलाभ, पुत्रलाभ, पशुलाभ, मेधालाभ, बुद्धिलाभ, स्वाधीनतालाभ और पुष्टिलाभ होता है ॥ ४ ॥ जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर त्रयोदशीतिथिमें यथासंभव अन्नद्वारा श्राद्ध सम्पादन करता है उसको दीर्घ परमायु और ऐश्वर्यलाभ होता है

इसमें सन्देह नहीं. जिसके पितर यौवनमें मृत्युको प्राप्त हुए हैं अथवा शस्त्राघातसे जीवन परित्याग किया है ॥ ५ ॥ ६ ॥ वह पुरुष उनकी तृप्ति करनेके लिये चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करै. पवित्र होकर यत्नसहित अमावास्यामें श्राद्ध करनेसे ॥ ७ ॥ संपूर्ण परिपूर्ण कामना होती हैं और अक्षय स्वर्गलाभ होता है जो पुरुष कृत्तिकानक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करता है उसको स्वर्गभोग होता है ॥ ८ ॥ जो पुरुष अपत्य (सन्तान) की कामना करता है, उसको रोहिणीनक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये. मृगशिरा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे ओजस्विता, आर्द्रामें शौर्य और पुनर्वसुनक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे क्षेत्रादि लाभ होता है ॥ ९ ॥ पुष्य नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे पुष्टिलाभ, आश्लेषामें श्रेष्ठ पुत्र, मघामें स्वजनोंमें प्राधान्य और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे सौभाग्यलाभ होता है ॥ १० ॥

यथा संभावितान्नेन श्रद्धासंपत्समन्वितः ॥ विकृत्या पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः ॥ ६ ॥ तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता ॥ श्राद्धं कुर्वन्नमावास्यां यत्नेन पुरुषः शुचिः ॥ ७ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गं चानंत्यमश्नुते ॥ कृत्तिकासु पितॄनर्चन्स्वर्गं प्राप्नोति मानवः ॥ ८ ॥ अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्ये तेजस्वितां लभेत् ॥ शौर्यमार्द्रासु चाप्नोति क्षेत्रादि च पुनर्वसौ ॥ ९ ॥ पुष्टिं पुष्ये सदाभ्यर्च्य आश्लेषासु वरान्सुतान् ॥ मघासु स्वजनश्रेष्ठ्यं सौभाग्यं फल्गुनीषु च ॥ १० ॥ प्रदानशीलो भवति सापत्यश्चोत्तरासु वै ॥ प्रयाति श्रेष्ठतां सत्सु हस्ते श्राद्धप्रदो नरः ॥ ११ ॥ रूपयुक्तस्तु चित्रासु तथापत्यान्यवाप्नुयात् ॥ वाणिज्यलाभदा स्वातिर्विशाखा पुत्रकामदा ॥ १२ ॥ कुर्वतश्चानुराधासु लभंते चक्रवर्तिताम् ॥ आधिपत्यं च ज्येष्ठासु मूले चारोग्यमुत्तमम् ॥ १३ ॥ आषाढासु यशःप्राप्तिरुत्तरासु विशोकताम् ॥ श्रवणेन शुभाँल्लोकान्धनिष्ठासु धनं महत् ॥ १४ ॥

उत्तराफाल्गुनीमें श्राद्ध करनेसे दानशील और पुत्रवान् होजाता है और जो पुरुष हस्तनक्षत्रमें श्राद्धका अनुष्ठान करता है उसको निःसन्देह श्रेष्ठता प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ चित्रानक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे रूप और अपत्यलाभ होता है, स्वातीमें वाणिज्य, विशाखामें पुत्र और कामनासिद्धि ॥ १२ ॥ अनुराधामें चक्रवर्त्तित्व, ज्येष्ठामें आधिपत्य, मूलमें आरोग्य ॥ १३ ॥ पूर्वाषाढामें यशःप्राप्ति, उत्तराषाढामें शोकराहित्य, श्रवणमें शुभलोकप्राप्ति और धनिष्ठा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे बहुत धनलाभ होता है ॥ १४ ॥

अभिजित् नक्षत्रमें श्राद्धका अनुष्ठान करनेसे समस्त वेदोंमें अभिज्ञ होजाता है, शतभिषामें श्राद्ध करनेसे वैद्यकशास्त्रमें सिद्धिलाभ होता है, पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे आविक (भेड बकरी) लाभ, उत्तराभाद्रपदामें विद्या गोलाभ ॥ १५ ॥ रेवतीमें सुवर्ण, चांदीके अतिरिक्त अन्यान्य धातु, अश्विनीमें अश्व और भरणी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे दिर्घायुलाभ होता है ॥ १६ ॥ इस कारणही तत्त्ववित् पुरुषको इन सब नक्षत्रोंमें काम्यश्राद्धका आचरण करना चाहिये ॥ १७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ मदालसा बोली—हे पुत्र! इस प्रकारसे साधुगृही सदाचारपरायण हो हव्य कव्य और अन्नदानपूर्वक पितृगण, देवगण, आतिथिगण तथा बांधवगणकी पूजा करै ॥ १ ॥ इनके अतिरिक्त भूतगण, भृत्य-

वेदविद्यां चाभिजिति भिषविसद्धिं च वारुणे ॥ अजाविकं प्रोष्ठपदे विद्या गावस्तथोत्तरे ॥ १५ ॥ रेवतीषु तथा कुप्यमाश्विनिषु तुरंगमान् ॥ श्राद्धं कुर्वंस्तथाप्नोति भरणीष्वायुरुत्तमम् ॥ १६ ॥ तस्मात्काम्यानि कुर्वीत ऋक्षेष्वेतेषु तत्त्ववित् ॥ १७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानेऽलर्कानुशासने श्राद्धकल्पो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ मदालसोवाच ॥ एवं पुत्र गृहस्थेन देवताः पितरस्तथा ॥ संपूज्य हव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिबांधवाः ॥ १ ॥ भूतानि भृत्या विकलाः पशुपक्षिपिपीलिकाः ॥ भिक्षवो याचमानास्तु ये चान्ये वसता गृहे ॥ २ ॥ सदाचारवता तात साधुना गृहमेधिना ॥ पापं भुंक्ते समुल्लंघ्य नित्यं नैमित्तिकीः क्रियाः ॥ ३ ॥ अलर्क उवाच ॥ कथितं मे त्वया मातर्नित्यं नैमित्तिकं च यत् ॥ नित्यं नैमित्तिकं चैव त्रिविधं कर्म पौरुषम् ॥ ४ ॥ सदाचारमहं श्रोतुमिच्छामि कुलनंदिनि ॥ यं कुर्वन्सुखमाप्नोति परत्रेह च मानवः ॥ ५ ॥

गण, पशु, पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक, याचक और अपरापर जो कोई प्रार्थना करै ॥ २ ॥ उन उन सबकी यथाविधि पूजा करै। गृही मनुष्य नित्य नैमित्तिकी क्रियाको उल्लंघन करनेसे पापका भागी होता है ॥ ३ ॥ अलर्कने कहा हे मातः! तुमने मुझसे नित्य नैमित्तिक और नित्यनैमित्तिक इन तीन प्रकृत पुरुषोचित कर्मका विषय वर्णन किया ॥ ४ ॥ हे कुलनन्दिनी ! जिसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य क्या इस लोक, क्या पर लोक दोनोंमें सुखका भागी होता है. अब मैं वही सदाचारका विषय सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ५ ॥

मदालसा बोली–गृहस्थ सर्वदा सदाचारका प्रतिपालन करै, जो पुरुष आचारहीन है, किसी लोकमें उसको सुख मिलनेंकी संभावना नहीं है। जो पुरुष सदाचारको उल्लंघन करके संसारमार्गमें प्रवृत्त होता है, उसका यज्ञ, दान और तपस्या सब अमंगलका कारण होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ दुराचारी पुरुष कभी दीर्घजीवी नहीं हो सकता, अतएव सदाचारमें यत्नशील होना चाहिये। सदाचार द्वारा अलक्षण दूर होता है ॥ ८ ॥ हे पुत्र! मैं उस सदाचारके स्वरूपका वर्णन करती हूं, तुम एकाग्र मनसे सुनकर तिसके अनुरूप कार्यका अनुष्ठान करो ॥ ९ ॥ गृही पुरुष त्रिवर्गसाधनमें यत्न करै। त्रिवर्गकी सिद्धि होनेपर वह गृहस्थ क्या इस लोक क्या परलोक दोनोंमेंही सिद्धिलाभ करता है ॥ १० ॥ आत्मवान् होकर उपार्जित अर्थका चतुर्थांश पार-

मदालसोवाच ॥ गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिपालनम् ॥ न ह्याचारविहीनस्य सुखमत्र परत्र वा ॥ ६ ॥ यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये ॥ भवंति यः सदाचारं समुल्लंघ्य प्रवर्त्तते ॥ ७ ॥ दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विंदते महत् ॥ कार्यो यत्नः सदाचारे आचारो हंत्यलक्षणम् ॥ ८ ॥ तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य पुत्रक ॥ समाहितमनाः श्रुत्वा तथैव परिपालय ॥ ९ ॥ त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्त्तव्यो गृहमेधिना ॥ तत्संसिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च ॥ १० ॥ पादेनार्थस्य पारत्र्यं कुर्यात्संचयमात्मवान् ॥ अर्धेन चात्मभरणं नित्यनैमित्तिकान्वितम् ॥ ११ ॥ पादं चात्मार्थमायस्य मूलभूतं विवर्द्धयेत् ॥ एवमाचरतः पुत्र अर्थः साफल्यमृच्छति ॥ १२ ॥ तद्वत्पापनिषेधार्थं धर्मः कार्यो विपश्चिता ॥ परत्रार्थं तथा चान्यः काम्योऽत्रैव फलप्रदः ॥ १३ ॥

लौकिक धर्मके लिये संचय करना गृहीका कर्त्तव्य है। अर्द्धांशद्वारा आत्मपोषण और नित्य नैमित्तिकादि क्रियासाधन करै ॥ ११ ॥ और अवशिष्टको मूलधनस्वरूप बढावे। हे पुत्र! इस प्रकारका आचरण करनेसेही अर्थकी सफलता साधित होती है ॥ १२ ॥ अर्थविषयमें जिस प्रकार आचरण करै पाप दूर होनेके लिये भी वैसाही धर्मसंचय करना चाहिये। धर्म दो प्रकारका है काम्य और निष्काम। निष्काम धर्म परलोकमें फलप्रदान करता है और काम्यधर्म इस लोकमें फलप्रद है ॥ १३ ॥

विघ्न और व्ययके कारण काम्य और निष्काम कर्म अविरोधपूर्वक इन दोनों धर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये । त्रिवर्गके अविरोधसे कामभी दो प्रकार है ॥ १४ ॥ धर्म, अर्थ और काम, यह त्रिवर्ग जिस प्रकार परस्पर अनुबद्ध हैं, इसी प्रकार इनको परस्पर विना बन्धे भी विचारै. मैं इनके अनुबंधादिका वर्णन करती हूं सुनो ॥ १५ ॥ धर्म और धर्मके अनुबंधनिमित्त धर्म आत्माके लिये बाधक नहीं होता, इनके योगमें काम जिस भाँति दो प्रकार है, ऐसेही कामद्वारा धर्म और अर्थभी दो अंशोंमें विभक्त जानना चाहिये अर्थात् धर्म और धर्मानुबंधार्थ धर्म, इन दोनोंके योगमें काम जिस प्रकार धर्मानुबद्ध काम अर्थानुबद्ध काम यह दो भागमें विभक्त है, इसी प्रकार कामद्वारा धर्म और अर्थ भी दो भागमें विभक्त हुआ है ॥ १६ ॥ गृही पुरुष ब्राह्ममुहूर्तमें

प्रत्यवायभयात्कामस्तथान्यश्चाविरोधवान् ॥ द्विधा कामो निगदितस्त्रिवर्गोऽस्याविरोधतः ॥ १४ ॥ परस्परानुबंधांश्च सर्वानेतान्विचिंतयेत् ॥ विपरीतानुबंधांश्च धर्मादींस्ताञ्छृणुष्व मे ॥ १५ ॥ धर्मो धर्मानुबंधार्थो धर्मो नात्मार्थबाधकः ॥ उभाभ्यां च द्विधा कामस्तेन तौ च द्विधा पुनः ॥ १६ ॥ ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिंतयेत् ॥ कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ॥ १७ ॥ उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः ॥ समुत्थाय तथाचम्य प्राङ्मुखो नियतः शुचिः ॥ १८ ॥ पूर्वां संध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम् ॥ उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि ॥ १९ ॥ असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यं च वर्जयेत् ॥ असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवां च पुत्रक ॥ २० ॥ सायंप्रातस्तथा होमं कुर्वीत नियतात्मवान् ॥ नोदयास्तमये बिंबमुदीक्षेत विवस्वतः ॥ २१ ॥

उठकर धर्म, अर्थ, धर्मार्थमूलक कायक्लेश और वेदतत्त्वार्थ इन सबकी चिन्ता करै ॥१७॥ फिर शय्यात्यागपूर्वक आचमन करके नियत और पवित्र भावसे पूर्वमुख बैठ ॥१८॥ नक्षत्र रहते रहते पूर्वसंध्याका आचरण करै । इसी प्रकार सूर्यदेवके रहते रहते सायंसंध्या करनी चाहिये । अनापत्कालमें यथाविधि संध्याकी उपासना करै, कभी इसके अन्यथा न करै ॥ १९ ॥ हे पुत्र ! असत् वाक्य, अनृत वाक्य और कर्कश वाक्य त्याग करना अवश्य कर्त्तव्य है, तथा असत् शास्त्र, असत् वाद और असत् सेवाभी परित्याग करै ॥ २० ॥ नियतात्मा होकर प्रातःकाल और सायंकालमें होमका अनुष्ठान करना चाहिये । उदयकाल और अस्तगमनसमयमें सूर्यके बिम्बका दर्शन न करै ॥ २१ ॥

बाल काढना, दर्पणमें मुख देखना, दंतधावन, और देवतर्पण, यह सब कार्य दिनके पूर्वाह्णमें करने चाहिये ॥ २२ ॥ ग्राम, निवास, तीर्थ, क्षेत्र, पथ (मार्ग) जुताहुआ खेत और गौओंका स्थान इन सब स्थानोंमें मल मूत्र त्यागना अनुचित है ॥ २३ ॥ पराई स्त्रीको नग्न नहीं देखे और स्वीय मल-कोभी देखना अनुचित है, ऋतुमती स्त्रीको नहीं देखे और उसको स्पर्श तथा उसके संग वार्त्तालापभी नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥ जलमें विष्ठा मूत्र त्याग, वा मैथुनकार्य नहीं करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष मलमूत्र, केश, भस्म, कपाल ॥ २५ ॥ तुष, अंगार, अस्थि, रज्जू, वसनादि, मार्गकी मृत्तिका इन सबके ऊपर कभी न बैठे ॥ २६ ॥ गृही मनुष्य अपनी सम्पत्तिके अनुसार सबसे पहिले पितर, देवता, नरगण और भूतगणकी पूजा करके

केशप्रसाधनादर्शदर्शनं दंतधावनम् ॥ पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च तर्पणम् ॥ २२ ॥ ग्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणां चैव वर्त्मनि ॥ न मूत्रमनुतिष्ठेत न कृष्टे न च गोव्रजे ॥ २३ ॥ नग्नां परस्त्रियं नेक्षेन्न पश्येदात्मनः शकृत् ॥ उदक्यादर्शनं स्पर्शो वर्ज्यं संभाषणं तथा ॥ २४ ॥ नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा निष्ठीवं न समाचरेत् ॥ नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रं केशभस्मकपालिकाः ॥ २५ ॥ तुषांगारास्थिचूर्णानि रजो वस्त्राणि कानिचित् ॥ नाधितिष्ठेत्तथा प्राज्ञः पथि पत्राणि वा भुवि ॥ २६ ॥ पितृदेवमनुष्याणां भूतानां च तथार्चनम् ॥ कृत्वा विभवतः पश्चाद्गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥ २७ ॥ उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा स्वाचांतो वाग्यतः शुचिः ॥ भुंजीतान्नं च तच्चित्तो ह्यंतर्जानुः सदा नरः ॥ २८ ॥ उपघातमृते दोषं नान्नस्योदीरयेद्बुधः ॥ प्रत्यक्षं लवणं वर्ज्यमन्नमत्युष्णमेव च ॥ २९ ॥ न गच्छन्नैव तिष्ठन्वै विण्मूत्रोत्सर्गमाचरन् ॥ कुर्वीत नैव चाचामेन्न किंचिदपि भक्षयेत् ॥ ३० ॥

फिर स्वयं भोजन करै ॥ २७ ॥ आचमनके अन्तमें संयतवाक्य, पवित्र और अन्तर्जानु होकर पूर्वमुख वा उत्तरमुख बैठ एकाग्रमनसे अन्न भोजन करै ॥ २८ ॥ किसी प्रकारका अनिष्ट वा उत्तेजना न करनेपर किसी अन्नका दोष प्रकाशित नहीं करना चाहिये प्रत्यक्ष अधिक लवण और अत्यन्त उष्ण अन्न सर्वथा वर्जित है ॥ २९ ॥ आत्मवान् मनुष्य चलते वा बैठे बैठे मल मूत्र परित्याग न करै। आचमनके अन्तमें किंचित्मात्रभी आहार करना अनुचित है ॥ ३० ॥

उच्छिष्ट शरीरसे किसीके संगभी वार्त्तालाप न करै और इस अवस्थामें वेदाध्ययन भी परित्याग करै। विशेष करके उच्छिष्ट देहसे गौ, ब्राह्मण, अग्नि और अपने मस्तकको स्पर्श न करै ॥ ३१ ॥ उच्छिष्ट शरीरसे स्वेच्छानुसार चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रका दर्शन करना अनुचित है। टूटा आसन टूटी शय्या और टूटे पात्र सर्वथा वर्जित हैं ॥ ३२ ॥ अभ्युत्थान इत्यादि (उठकर) खडा होना इत्यादि सत्कारसहित गुरुको आसन प्रदान करे। प्रणामपूर्वक उनसे अनुकूल वार्त्ता करै ॥ ३३ ॥ और गमनकालमें उनका अनुगमन करना चाहिये। उनसे प्रतिकूल वचनप्रयोग करना कभी उचित नहीं है. एक वस्त्रसे आहार वा देवपूजा करना निषिद्ध है ॥ ३४ ॥ द्विजातिगणकी निन्दा नहीं करै और बुद्धिमान् पुरुष कभी अग्निमें मूत्रादि त्याग न करै, नग्न होकर स्नान वा

उच्छिष्टो नालपेत्किंचित्स्वाध्यायं च विवर्जयेत् ॥ गां ब्राह्मणं तथा चाग्निं स्वमूर्धानं च न स्पृशेत् ॥ ३१ ॥ न च पश्येद्रविं नेन्दुं न नक्षत्राणि कामतः ॥ भिन्नासनं तथा शय्यां भाजनं च विवर्जयेत् ॥ ३२ ॥ गुरूणामासनं देयमभ्युत्थानादि सत्कृतम् ॥ अनुकूलं तथालापमभिवादनपूर्वकम् ॥ ३३ ॥ तथानुगमनं कुर्यात्प्रतिकूलं न संलपेत् ॥ नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत न कुर्याद्देवतार्चनम् ॥ ३४ ॥ न गर्हयेद्द्विजान्नाग्नौ मेहं कुर्वीत बुद्धिमान् ॥ न स्नायीत नरो नग्नो न शयीत कदाचन ॥३५॥ न पाणिभ्यामुभाभ्यां च कण्डूयेत शिरस्तथा ॥ न चाभीक्ष्णं शिरःस्नानं कार्यं निष्कारणं नरैः ॥ ३६ ॥ शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत् ॥ अनध्यायेषु सर्वेषु स्वाध्यायं च विवर्जयेत् ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणानलगोसूर्यान्न मेहेत कदाचन ॥ उदङ्मुखो दिवा रात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुखः ॥ ३८ ॥ आबाधासु यथाकामं कुर्यान्मूत्रपुरीषयोः ॥ दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धं चैनं प्रसादयेत् ॥ ३९ ॥

शयन करना अनुचित है ॥ ३५ ॥ दोनों हाथोंसे कभी मस्तक न खुजावे, विना कारण स्नान वा सदा शिरसे स्नान करना उचित नहीं है ॥ ३६ ॥ और शिरःस्नानके अन्तमें किसी अंगमें तेल नहीं मलना चाहिये। सब अनध्यायके दिनोंमें वेदाध्ययन परित्याग करै ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण, अग्नि, गौ और सूर्यके सन्मुख कभी विष्ठा मूत्रादि त्याग न करै। दिनमें उत्तरमुख और रात्रि कालमें दक्षिणमुख होकर ॥ ३८ ॥ पीडा होनेमें इच्छानुसार मल मूत्र परित्याग करै। गुरुका दुष्कृत (पाप) किसीके निकट प्रकाश न करै, उनके क्रुद्ध होनेपर उनको प्रसन्न करना चाहिये ॥ ३९ ॥

और यदि कोई दूसरा उनकी झूंठी निन्दा करै तो उसमें कर्णपात न करै विप्र, राजा, दुःखातुर ॥ ४० ॥ अपनी अपेक्षा अधिक विद्यावान्, गुर्विणी स्त्री, भयातुर, युवा, मूक, अन्ध, बधिर, मत्त, उन्मत्त ॥ ४१ ॥ पुंश्चली, वैर करनेवाला, बालक और पतित इन सब पुरुषोंको पथ (मार्ग) प्रदान करै । देवमन्दिर चैत्य वृक्ष चतुष्पथ (चौराहा) ॥ ४२ ॥ अपनी अपेक्षा अधिक विद्यावान्, गुरु और देवता बुद्धिमान् पुरुषको इन सबकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये दूसरे किसी पुरुषका पहराहुआ जूता वस्त्र और माल्यादि न पहिरै ॥ ४३ ॥ और दूसरेका धारण किया हुआ जनेऊ, विभूषण और कमण्डलु धारण

परीवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम् ॥ पन्था देयो ब्राह्मणानां राज्ञो दुःखातुरस्य च ॥ ४० ॥ विद्याधिकस्य गुर्विण्या भारार्त्तस्य यवीयसः ॥ मूकान्धबधिराणां च मत्तस्योन्मत्तकस्य च ॥ ४१ ॥ पुंश्चल्या कृतवैरस्य बालस्य पतितस्य च ॥ देवालयं चैत्यतरुं तथैव च चतुष्पथम् ॥ ४२ ॥ विद्याधिकं गुरुं चैव बुधः कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ उपानद्वस्त्रमाल्यादि धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥ ४३ ॥ उपवीतमलंकारं करकं चैव वर्जयेत् ॥ प्रशस्तानि च कर्माणि कुर्वाणा दीर्घजीविनः ॥ ४४ ॥ चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पञ्चदश्यां च पर्वसु ॥ तैलाभ्यङ्गं तथा भोगं योषितश्च विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥ न क्षिप्तपादजंघश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥ न चापि विक्षिपेत्पादौ पादं पादेन नाक्रमेत् ॥ ४६ ॥ मर्माभिघातमाक्रोशं पैशुन्यं च विवर्जयेत् ॥ दम्भाभिमानतैक्ष्ण्यानि न कुर्वीत विचक्षणः ॥ ४७ ॥ मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपान्मायिनस्तथा ॥ न्यूनाङ्गांश्चाधिकाङ्गांश्च नोपहासेन दूषयेत् ॥ परस्य दण्डं नोद्यच्छेच्छिक्षार्थं पुत्रशिष्ययोः ॥ ४८ ॥

न करै, प्रशस्तकर्म करनेसे दीर्घजीवी होता है ॥ ४४ ॥ चतुर्दशी अष्टमी पंचदशी और पर्वके दिन तैलमर्दन और स्त्रीसंग परित्याग करै ॥ ४५ ॥ बुद्धिमान् पुरुष चरण जंघा फैलाकर न बैठे और चरणद्वारा चरण आक्रमण करना तथा लात मारनाभी निषिद्ध है ॥ ४६ ॥ किसीको भी मर्मव्यथा नहीं देनी चाहिये और लोकोंके प्रति कोसना और चुगली परित्याग करै तथा बुद्धिमान् पुरुषको दंभ, अभिमान और तीक्ष्ण व्यवहार परित्याग करना चाहिये ॥ ४७ ॥ मूढ, उन्मत्त, दुःखी, आपदाग्रस्त, विरूप, मायावी, हीनाङ्ग और अधिकाङ्ग इन सबको हास्यद्वारा दूषित करना अनुचित है । अन्यके प्रति दंडका

विधान न करै और उपदेशप्रदानार्थ पुत्र और शिष्यके प्रति दंडविधान करना अनुचित नहीं है ॥ ४८ ॥ पावोंसे आक्रमणपूर्वक आसनपर नहीं बैठे केवल आत्मोदरपूरणके अर्थ संयाव (मोहनभोग) कृसर (खिचडी) और मांस प्रस्तुत न करना चाहिये ॥४९॥ प्रातःकाल और सायंकालमें अतिथिकी पूजा करके फिर स्वयं भोजन करै वाणीको रोक पूर्वमुख वा उत्तरमुख बैठकर दन्तधावन करै ॥ ५० ॥ जो काष्ठादि वर्जित हैं, दन्तधावनार्थ उनका व्यवहार नहीं करना चाहिये । उत्तरको शिर कर वा पश्चिमको शिर कर शयन न करै ॥ ५१ ॥ दक्षिण वा पूर्वदिशामें मस्तक रखकर शयन करना चाहिये दुर्गन्धपूर्ण जलमें और रात्रिकालमें स्नान करना अनुचित है ॥ ५२ ॥ केवल मात्र चन्द्र सूर्यके ग्रहणादिकालमेंही रात्रिमें स्नान करसकता है, स्नानके

तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञः पादेनाक्रम्य चासनम् ॥ संयावं कृसरं मांसं नात्मार्थमुपसाधयेत् ॥ ४९ ॥ सायंप्रातश्च भोक्तव्यं कृत्वा चातिथिपूजनम् ॥ उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वाग्यतो दन्तधावनम् ॥ ५० ॥ कुर्वीत सततं वत्स वर्जयेद्वर्ज्यवीरुधः ॥ नोदक्छिराः स्वपेज्जातु न च प्रत्यक्छिरा नरः ॥ ५१ ॥ शिरस्यगस्त्यमास्थाय शयीताथ पुरन्दरम् ॥ न तु गन्धवतीष्वप्सु स्नायीत न तथा निशि ॥ ५२ ॥ उपरागे परं स्नानमृते दिनमुदाहृतम् ॥ अपमृज्यान्न चास्नातो गात्राण्यम्बरपाणिभिः ॥ ५३॥ न चापि धूनयेत्केशान्वाससी न च धूनयेत् ॥ नानुलेपनमादद्यादस्नातः कर्हिचिद्बुधः ॥ ५४ ॥ न चापि रक्तवासाः स्याच्चित्रासितधरोऽपि वा ॥ न च कुर्याद्विपर्यासं वाससोर्नापि भूषणे ॥५५॥ वर्ज्यं च विदशं वस्त्रमत्यन्तोपहतं च यत् ॥ केशकीटावपन्नं च क्षुण्णं श्वभिरवेक्षितम् ॥ ५६ ॥ अवलीढवपन्नं च सारोद्धरणदूषितम् ॥ पृष्ठमांसं वृथामांसं वर्ज्यमांसं च पुत्रक ॥ ५७ ॥

पीछे वस्त्र वा हस्त द्वारा देहमार्जन करना निषिद्ध हैं ॥५३॥ एवं गीले केश वा गीले वस्त्रका फटकारना अनुचित है, बुद्धिमान् पुरुष विना स्नान किये कभी चन्दनादि धारण न करै ॥ ५४ ॥ लाल वर्ण, काले वर्ण, अथवा चित्रित वस्त्र नहीं पहरने चाहिये, पहिरनेके और उत्तरीय वस्त्र तथा विभूषण इन सबको विपरीतभावसे नहीं पहिरै ॥ ५५ ॥ दशाशून्य, जीर्ण और छिन्नवस्त्र सर्वथा वर्जित हैं, केश और कीटसे युक्त (विकृत) कुत्तेका देखा हुआ ॥ ५६ ॥ वा चाटा हुआ और जिसका सार निकाल लिया हो, दूषित अन्न, पृष्ठमांस, वृथा मांस ॥ ५७ ॥

वर्जित मांस और प्रत्यक्ष लवण हे पुत्र ! यह सब कभी भोजन न करै । हे वत्स ! बहुत दिनोंका धरा और बासी अन्न त्यागदे ॥ ५८ ॥ हे नृपनन्दन ! पिट्ठी, शाक, इक्षु और दुग्ध, इन सबका विकार भोजन न करै, मांसविकार बहुत दिनोंका होनेपर वह भी वर्जित है ॥ ५९ ॥ सूर्यके उदयकालमें वा अस्तगमनसमयमें शयन करना छोड दे, स्नानके पीछे भी शयन करना अनुचित है और बैठा बैठाभी न सोवे, तथा अन्यमनस्क अर्थात् दूसरी ओरको भी मन लगाकर शयन नहीं करना चाहिये ॥ ६० ॥ सेज वा मृत्तिकामें 'हा !' कहकर न बैठे, उत्तरीय परित्यागपूर्वक एक वस्त्रसे भोजन न करै, बात कहते कहते भी भोजन करना निषिद्ध है और जो सामने बैठा हो, उसको विना दिये आहार करना उचित

न भक्षयीत सततं प्रत्यक्षलवणानि च ॥ वर्ज्यं चिरोषितं पुत्र भक्तं पर्युषितं च यत् ॥ ५८ ॥ पिष्टशाकेक्षुपयसां विकारा नृपनन्दन ॥ तथा मांसविकाराश्च ते च वर्ज्याश्चिरोषिताः ॥ ५९ ॥ उदयास्तमने भानोः शयनं च विवर्जयेत् ॥ नास्नातो नैव संविष्टो न चैवान्यमना नरः ॥ ६० ॥ न चैव शयने नोर्व्यामुपविष्टो न शब्दवत् ॥ न चैकवस्त्रो न वदन्प्रेक्षतामप्रदाय च ॥ ६१ ॥ भुंजीत पुरुषः स्नातः सायंप्रातर्यथाविधि ॥ परदारा न गन्तव्याः पुरुषेण विपश्चिता ॥ ६२ ॥ इष्टापूर्त्तायुषां हन्त्री परदारगतिर्नृणाम् ॥ न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते ॥ ६३ ॥ यादृशं पुरुषस्येह परदाराभिमर्शनम् ॥ देवार्चनाग्निकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम् ॥ ६४ ॥ कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम् ॥ अफेनाभिरगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात् ॥ ६५ ॥

नहीं है ॥ ६१ ॥ प्रातःकाल और सायंकालमें विधानानुसार स्नान करके फिर भोजन करै, बुद्धिमान् कभी परस्त्रीगमन न करै ॥ ६२ ॥ क्योंकि परस्त्रीगमन करनेसे इष्टापूर्त्त विनष्ट होता है और परमायुका ह्रास होता है, परदाराभिमर्शन पुरुषके पक्षमें जिस प्रकार परमायुका ह्रास करनेवाला है, ऐसा इस लोकमें और पाप कुछभी नहीं है. देवताओंकी पूजा, अग्निकार्य और गुरुजनोंको प्रणाम करना सर्वथा उचित है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ सम्यक् आचमन करके अन्नभोजन कार्यसमापन करै । हे पुत्र ! फेनशून्य निर्गंध निर्मल पवित्र जल सादर ग्रहणपूर्वक ॥ ६५ ॥

पूर्वमुख या उत्तरमुख होकर आचमन करना चाहिये. जलके भीतरकी, वासगृहकी, वल्मीककी, चूहेके भट्टेकी ॥ ६६ ॥ और शौचक्रियासे बचीहुई, यह पांच प्रकारकी मृत्तिका ग्रहण न करै। एकाग्रमनसे हाथ पैर धो और सम्यक् प्रकारसे शौच कर ॥ ६७ ॥ दोनों जानु समेटकर बैठे तीन वार वा चार वार जलपानसहित आचमन करै। दो बार मुखके इधर उधर और मुखगह्वरमें एवं दो बार मस्तक और इन्द्रियद्वार मार्जनपूर्वक ॥ ६८ ॥ सम्यक् प्रकार आचमन करके पवित्र भावसे क्रियानुष्ठान करे। सदा यत्नपूर्वक एकाग्र मनसे देवता, ऋषि और पितरोंका ॥ ६९ ॥ कार्य करना चाहिये। हुचकी और खखार त्याग करनेसे आचमन करना उचित है और वस्त्र पहरनेके पीछेभी आचमन करै ॥ ७० ॥ छींक अवलेहन (चाटना) वमन और निष्ठीवन होने-

आचामेत्पुत्र पुण्याभिः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥ अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात् ॥ ६६ ॥ कृतशौचावशिष्टाच्च वर्जयेत्पञ्च वै मृदः ॥ प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च समभ्युक्ष्य समाहितः ॥ ६७ ॥ अन्तर्जानुस्तथाचामेत्त्रिश्चतुर्वा पिबेदपः ॥ परिमृज्य द्विरास्यान्तं खानि मूर्धानमेव च ॥६८॥ सम्यगाचम्य तोयेन क्रियां कुर्वीत वै शुचिः ॥ देवतानामृषीणां च पितॄणां चैव यत्नतः ॥६९॥ समाहितमना भूत्वा कुर्वीत सततं नरः ॥ क्षुत्त्वा निष्ठीव्य वासश्च परिधायाचमेद्बुधः ॥ ७० ॥ क्षुतेऽवलीढे वान्ते च तथा निष्ठीवनादिषु ॥ कुर्यादाचमनं स्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनम् ॥ ७१ ॥ कुर्वीतालम्बनं चापि दक्षिणश्रवणस्य वै ॥ यथा विभवतो ह्येतत्पूर्वाभावे ततः परम् ॥ ७२ ॥ अविद्यमाने पूर्वोक्ते उत्तरप्राप्तिरिष्यते ॥ न कुर्याद्दन्तसंघर्षं नात्मनो देहताडनम् ॥ ७३ ॥ स्वप्नाध्यापनभोज्यानि स्वाध्यायं च विवर्जयेत् ॥ सन्ध्यायां मैथुनं चापि तथा प्रस्थानमेव च ॥ ७४ ॥

पर आचमन, गोपृष्ठावलोकन, सूर्यदर्शन ॥ ७१ ॥ और दहिना कान छूना चाहिये। इन सबमें पूर्व पूर्वका अभाव होनेपर विभवके अनुसार परस्पर कार्यका अनुष्ठान करै ॥ ७२ ॥ क्योंकि पूर्व पूर्वके अभावमें परस्परकी क्रिया ही श्रेष्ठ कही गई है दन्तद्वारा दन्तघर्षण न करै और अपने देहका ताडन करनाभी अनुचित है ॥ ७३ ॥ क्या प्रातःसंध्या क्या सायंसंध्या, दोनों कालमें शयन, अध्ययन और भोजन परित्याग करै । संध्याकालमें मैथुनक्रिया और प्रस्थान न करै ॥ ७४ ॥

हे वत्स ! भक्तिसहित पूर्वाह्णमें देवताओंकी, मध्याह्नमें नरगणोंकी और अपराह्णमें पितरोंकी पूजा करे ॥७५॥ शिरसे स्नान करके पितरोंके और देवताओंके क्रियानुष्ठानमें प्रवृत्त होना चाहिये पूर्वमुख वा उत्तरमुख होकर (बाल) हजामत बनवावे ॥ ७६ ॥ जो कन्या सद्वंशोत्पन्न होकरभी रोगिणी, विकलाङ्गी, विकृत, पिंगल वर्ण, वाचाल (बहुत बोलनेवाली) वा समस्त दोषोंसे दूषित हो, ऐसी कन्याको ग्रहण करना उचित नहीं है ॥ ७७ ॥ जो पुरुष कल्याणकी कामना करै, वह सर्वाङ्गपूर्ण, सौम्य नाम, सर्व सुलक्षण विभूषित कन्यासे विवाह करे ॥ ७८ ॥ पिता वा माताकी सात वा पांच पीढी छोडकर अन्य कन्यासे विवाह करना चाहिये । स्त्रीकी रक्षा करना और ईर्षा त्यागना उचित है । दिनमें शयन वा मैथुनक्रिया नहीं करना चाहिये ॥ ७९ ॥ जिससे

पूर्वाह्णे तात देवानां मनुष्याणां च मध्यमे ॥ भक्त्या तथापराह्णे च कुर्वीत पितृपूजनम् ॥ ७५ ॥ शिरःस्नातश्च कुर्वीत दैवं पैत्र्यमथापि वा ॥ प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि श्मश्रुकर्म च कारयेत् ॥ ७६ ॥ व्यङ्गां विवर्जयेत्कन्यामकुलां चापि रोगिणीम् ॥ विकृतां पिंगलां चैव वाचालां सर्वदूषिताम् ॥ ७७ ॥ अव्यंगांगीं सौम्यनाम्नीं सर्वलक्षणलक्षिताम् ॥ तादृशीमुद्वहेत्कन्यां श्रेयःकामो नरः सदा ॥ ७८ ॥ उद्वहेत्पितृमात्रोश्च सप्तमीं पंचमीं तथा ॥ रक्षेद्दारान्त्यजेदीर्षां दिवा च स्वप्नमैथुने ॥ ७९ ॥ परोपतापकं कर्म जन्तुपीडां च वर्जयेत् ॥ उदक्याः सर्ववर्णानां वर्ज्या रात्रिचतुष्टयम् ॥ ८० ॥ स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पंचमीमपि वर्जयेत् ॥ ततः षष्ठ्यां व्रजेद्रात्र्यां श्रेष्ठा युग्मासु पुत्रक ॥ ८१ ॥ पर्वाणि वर्जयेन्नित्यमृतुकालेऽपि योषितः ॥ तस्मान्नित्यं नरो गच्छेच्छेषयुग्मासु पुत्रक ॥ ८२ ॥

दूसरे पुरुषको संताप हो और जिससे जीवगण क्लेश अनुभव करैं ऐसे कार्यका परित्याग करना उचित है । समस्त वर्णही चार दिन ऋतुमती नारीका संग परित्याग करै ॥ ८० ॥ हे पुत्र ! जो पुरुष कन्या उत्पन्न होनेकी अभिलाषा नहीं करता, वह पंचम रात्रिमें स्त्रीसंग परित्याग करके छठी रात्रिमें सहवास करै । क्योंकि युग्म रात्रिही नारीसहवासमें श्रेष्ठ कहीगई है ॥ ८१ ॥ स्त्रीके ऋतुकालके दिन और चौदस अमावस अष्टमी तथा संक्रान्ति संभोगमें त्यागदे और शेष युग्म रात्रियोंमें गमन करै ॥ ८२ ॥

युग्म रात्रिमें नारीसंग करनेसे पुत्र और अयुग्म रात्रियोंमें कन्याकी उत्पत्ति होती है. सुतरा यदि पुत्र प्राप्त होनेकी इच्छा हो तो युग्म रात्रिमें ही सहवास करे ॥ ८३ ॥ यदि पूर्वाह्णमें नारीसंग किया जाय तो विधर्मी पुत्र उत्पन्न होता है और सायंकालमें स्त्रीसंग करनेसे नपुंसकका जन्म होता है. हे पुत्र! क्षौर-कर्म अर्थात् हजामतके पीछे, वमनके पीछे, नारीसंगके पीछे ॥ ८४ ॥ और श्मशानभूमिमें गमन करनेपर सवस्त्र स्नान करना चाहिये हे पुत्र! देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्त्वनिष्ठ महात्मा ॥ ८५ ॥ गुरुजन, पतिव्रता स्त्री, यज्ञशील और तपःपरायण पुरुष, इनकी असत्य निन्दा वा हास्य करना उचित नहीं

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥ तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेत सदा नरः ॥ ८३ ॥ विधर्मिणोऽह्नि पूर्वाख्ये संध्याकाले च षण्ढकाः ॥ क्षुरकर्माणि वान्ते च स्त्रीसंभोगे च पुत्रक ॥ ८४ ॥ स्नायीत चैलवान्प्राज्ञः कटभूमिमुपेत्य च ॥ देववेदद्विजातीनां साधुसभ्यमहात्मनाम् ॥ ८५ ॥ गुरोः पतिव्रतानां च तथा यज्वितपस्विनाम् ॥ परीवादं न कुर्वीत परिहासं च पुत्रक ॥ ८६ ॥ कुर्वतामविनीतानां न श्रोतव्यं कथंचन ॥ देवपित्र्यातिथेयाश्च क्रियाः कुर्वीत वै बुधः ॥ ८७ ॥ स्वाध्यायं चापि कुर्वीत यथाशक्त्या ह्यतंद्रितः ॥ नोत्कृष्टशय्यासनयोर्नापकृष्टस्य चारुहेत् ॥ ८८ ॥ न चामङ्गल्यवेषः स्यान्न चामङ्गल्यवाग्भवेत् ॥ धवलाम्बरसंवीतः सितपुष्पविभूषितः ॥ ८९ ॥ नोद्धतोन्मत्तमूढैश्च नाविनीतैश्च पण्डितः ॥ गच्छेन्मैत्रीं न चाशीलैर्न च चौर्यादिदूषितैः ॥ ९० ॥ न चातिव्ययशीलैश्च न लुब्धैर्नापि वैरिभिः ॥ नानृतकैस्तथा क्रूरैः सहासीत कदाचन ॥ न बन्धकीभिर्न न्यूनैर्बन्धकीपतिभिस्तथा ॥ ९१ ॥

है ॥ ८६ ॥ अविनीत मनुष्य यदि इनकी निन्दा करे तो उसमें कर्णपात न करे । बुद्धिमान्‌को देवता, पितर अतिथिकी क्रियाका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ८७ ॥ यथाशक्ति सावधानतासे वेद पढे, अपनी अपेक्षा उत्कृष्ट वा अपकृष्ट मनुष्यकी शय्या वा आसनपर न बैठे ॥ ८८ ॥ अमंगल वेष धारण करना उचित नहीं है. और अमंगल वचन भी परित्याग करे. श्वेतवस्त्र और सित कुसुमका व्यवहार करे ॥ ८९ ॥ उद्धत, उन्मत्त, मूर्ख, अविनयी, असच्चरित्र, चौर्यादि दोषसे दूषित ॥ ९० ॥ अपरिमित खर्च करनेवाला, लुब्ध, शत्रु, व्यभिचारिणी, हीन, बन्धकीका स्वामी ॥ ९१ ॥

नीचाशय, निन्दित, सर्वदा शंकी और दैवपरायण, बुद्धिमान् पुरुषको इन सबके संग मित्रता नहीं करनी चाहिये ॥ ९२ ॥ सदाचारपरायण साधुपुरुषोंके सहित मित्रता स्थापन करनी चाहिये । बुद्धिमान्, पिशुनतारहित शक्तिमान् और जो कार्यमें उद्योगशील हैं ऐसे पुरुषोंके संग मैत्री स्थापन करे ॥ ९३ ॥ पण्डित पुरुष सर्वदा वेदज्ञ, विद्वान्, व्रतपरायण और स्नातक पुरुषके संग स्थिति करे । सुहृद्, दीक्षित, भूपति, स्नातक, श्वशुर और ऋत्विक् यह छः जन अर्घ्यप्रदानके उपयुक्त पात्र हैं. इनके घर आनेपर पूजा करनी चाहिये ॥ ९४ ॥ हे पुत्र ! पूर्वोक्त अर्घार्ह छः जनोंके घर समागम होनेपर संवत्सर बीते घर आनेपर विभवके अनुसार यथासमयमें उनकी मधुपर्कसहित पूजा करै॥ ९५ ॥ और यदि कल्याणलाभकी इच्छा हो तो उनकी आज्ञामें रहना चाहिये

सार्द्धं न बलिभिः कुर्यान्न च न्यूनैर्न निन्दितैः ॥ न सर्वशङ्किभिर्नित्यं न च दैवपरैर्नरैः ॥९२॥ कुर्वीत साधुभिर्मैत्रीं सदाचारावलम्बिभिः ॥ प्राज्ञैरपिशुनैः शक्तैः कर्मण्युद्योगभागिभिः ॥ ९३॥ वेदविद्याव्रतस्नातैः सहासीत सदा बुधः ॥ सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्वशुरैः सह ॥ ऋत्विगादीन्षडर्घार्हानर्चयेच्च गृहागतान् ॥९४॥ यथा विभवतः पुत्र द्विजान्संवत्सरोषितान् ॥ अर्चयेन्मधुपर्केण यथाकालमतन्द्रितः ॥९५॥ तिष्ठेच्च शासने तेषां श्रेयस्कामो द्विजोत्तमः ॥ न च तान्विवदेद्धीमानाक्रुष्टश्चापि तैः सदा ॥ ९६ ॥ सम्यग्गृहार्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात् ॥ संपूजयेत्ततो वह्निं दद्याच्चैवाहुतीः क्रमात् ॥ ९७ ॥ प्रथमं ब्रह्मणे दद्यात्प्रजानां पतये ततः ॥ तृतीयां चैव गुह्येभ्यः कश्यपाय तथापराम् ॥ ९८ ॥ ततोऽनुमतये दत्त्वा दद्याद्गृहबलिं ततः ॥ पूर्वं ख्यातो मया यस्ते नित्यकर्मक्रियाविधिः ॥९९ ॥ वैश्वदेवं ततः कुर्याद्बलयस्तत्र मे शृणु ॥ यथास्थानविभागं तु देवानुद्दिश्य वै पृथक् ॥ १०० ॥

उनके क्रोध प्रकाश करनेपर भी उनसे विवाद करना बुद्धिमान्‌को उचित नहीं है ॥९६ ॥ सम्यक् प्रकारसे गृहपूजा करके क्रमानुसार अग्निकी अर्चनापूर्वक आहुतिप्रदान करै॥९७॥ ब्रह्माजीके उद्देश्यसे पहिली आहुति, प्रदानपूर्वक प्रजापतिको दूसरी, गुह्यक गणको तीसरी और कश्यपको चौथी आहुति देवे॥९८॥ फिर अनुमतिके उद्देश्यसे पंचमाहुतिप्रदानपूर्वक पहिले तुमसे नित्यकर्मक्रिया विधिके उपलक्षमें जिस प्रकार वर्णन किया है, उसीके अनुसार गृहबलिप्रदान करना चाहिये ॥ ९९ ॥ फिर वैश्वदेवबलिप्रदान करै उसका नियम सुनो । स्थानविभागके अनुसार देवताओंके उद्देश्यसे पृथक्पृथक् बलि देनी चाहिये॥१००॥

अनन्तर पर्जन्य (मेघ) अन्न और धरित्री इनको तीन बलि और वायुको बलिप्रदानपूर्वक पूर्वादि क्रमसे प्रतिदिशामें समस्त दिशाको यथाक्रमसे बलिप्रदान करै ॥ १ ॥ फिर उत्तर दिशामें ब्रह्मा, अन्तरिक्षमें सूर्य, विश्वेदेवगण विश्वभूतगण ॥ २ ॥ उषा और भूतपति, क्रमशः इनके उद्देश्यसे बलिप्रदान करके " स्वधा नमः " यह वाक्य उच्चारणपूर्वक दक्षिण दिशामें पितरोंके उद्देश्यसे बलिप्रदान करै ॥ ३ ॥ अनन्तर अन्नावशेषकी कामना करके अपसव्य हो, वायुकोणमें " यक्ष्मैतत्ता " इत्यादि मंत्रपाठसहित जलाधारसे जल लेकर विधानानुसार जलदान करै ॥ ४ ॥ फिर अन्नका अग्रभाग तोड हन्तकारकी कल्पना कर यथाविधान और यथान्याय ब्राह्मणको देवे ॥ ५ ॥ तदनन्तर स्वीय स्वीय तीर्थयोगमें विधानानुसार कार्य सम्पादन करै, देवादिके उद्देश्यसे

पर्जन्याद्भ्यो धरित्र्यै च दद्याच्च मणिके त्रयम् ॥ ततो धातुर्विधातुश्च दद्याद्द्वारे गृहस्य तु ॥ वायवे च प्रतिदिशं दिग्भ्यः प्राच्यादितः क्रमात् ॥ १ ॥ ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय सूर्याय च यथाक्रमम् ॥ विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च ॥२॥ उषसे भूतपतये दद्याच्चोत्तरतस्ततः ॥ स्वधा नम इतीत्युक्त्वा पितृभ्यश्चापि दक्षिणे ॥ ३ ॥ कृत्वापसव्यं वायव्यां यक्ष्मैतत्तेति भाजनात् ॥ अन्नावशेषमिच्छन्वै तोयं दद्याद्यथाविधि ॥ ४ ॥ ततोन्नाग्रं समुद्धृत्य हन्तकारोपकल्पनम् ॥ यथाविधि यथान्यायं ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥५॥ कुर्यात्कर्माणि तीर्थेन स्वेन स्वेन यथाविधि ॥ देवादीनां तथा कुर्याद्ब्राह्मेणाचमनक्रियाम् ॥ ६ ॥ अंगुष्ठोत्तरतो रेखा पाणेर्या दक्षिणस्य तु ॥ एतद्ब्राह्ममिति ख्यातं तीर्थमाचमनाय वै ॥ ७ ॥ तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पैत्रं तीर्थमुदाहृतम् ॥ पितॄणां तेन तोयादि दद्यान्नान्दीमुखादृते ॥८॥ अंगुल्यग्रे तथा दैवं तेन दिव्यक्रियाविधिः ॥ तीर्थं कनिष्ठिकामूले कायं तेन प्रजापतेः ॥ ९ ॥

ब्राह्मतीर्थद्वारा आचमन करना चाहिये ॥ ६ ॥ दहिने हाथकी अंगुष्ठाङ्गुलीकी उत्तर दिशामें जो रेखा विद्यमान है, वही ब्राह्मतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है, इसी तीर्थके द्वारा आचमन करै ॥ ७ ॥ तर्जनी और अंगुठ, इन दोनों अंगुलियोंका मध्यस्थलही पितृतीर्थके नामसे विख्यात है। नान्दीमुखके अतिरिक्त अन्यान्य समस्त क्रियामें भी पितरोंके उद्देश्यसे इसी पितृतीर्थद्वारा जलादि प्रदान करै ॥ ८ ॥ अंगुलीके अग्रभागमेंही देवतीर्थ विद्यमान है, देवक्रियाविधि उसके द्वाराही समापन करनी चाहिये। कनिष्ठाके मूलदेशमें कायनामक तीर्थ विराजित है, उसके द्वारा प्रजापतिका

कार्य सम्पन्न करै ॥ ९ ॥ इस प्रकारसे इन सब तीर्थोंके द्वारा सदा देवता और पितरोंकी क्रियाका अनुष्ठान करै, अन्यतीर्थद्वारा कभी न करै ॥ ११० ॥ ब्राह्मतीर्थद्वाराही आचमन करना विधिसिद्ध है. पितृतीर्थद्वारा पितृकार्य, देवतीर्थद्वारा देवकार्य और कायतीर्थ द्वारा प्रजापतिका कार्य करै ॥ ११ ॥ प्रजापतिका कार्य जिस प्रकारसे प्राजापत्य तीर्थ अर्थात् कायतीर्थद्वारा संपादित करना चाहिये. नान्दीमुखकी पिण्डोदक-क्रियाभी उसी प्रकार कायतीर्थद्वारा संपन्न करै ॥ १२ ॥ एक साथ जल और अग्नि धारण करना बुद्धिमान् पुरुषको कर्त्तव्य नहीं है। गुरु वा देवताके सामने पांव न फैलावे ॥ १३ ॥ जो गाय बछडेको स्तन पिलानेमें उद्यत हो, उसको न बुलावे और अंजलि (चुल्लू)

एवमेभिः सदा तीर्थैर्देवानां पितृभिः सह ॥ सदा कार्याणि कुर्वीत नान्यत्तीर्थेन कर्हिचित् ॥ ११० ॥ ब्राह्मेणाचमनं शस्तं पित्र्यं पैत्रेण सर्वदा ॥ देवतीर्थेन देवानां प्राजापत्यं निजेन च ॥ ११ ॥ नान्दीमुखानां कुर्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम् ॥ प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किंचित्प्रजापतेः ॥ १२ ॥ युगपज्जलमग्निं च बिभृयान्न विचक्षणः ॥ गुरुदेवान्प्रति तथा न च पादौ प्रसारयेत् ॥ १३ ॥ नाचक्षीत धयन्तीं गा जलं नाञ्जलिना पिबेत् ॥ शौचकालेषु सर्वेषु गुरुष्वल्पेषु वा पुनः ॥ १४ ॥ न विलम्बेत शौचार्थं न मुखेनानलं धमेत् ॥ तत्र पुत्र न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् ॥ १५ ॥ ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी ॥ जितामित्रो नृपो यत्र बलवान्धर्म-तत्परः ॥ १६ ॥ तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कुतः कुनृपतः सुखम् ॥ यत्राप्रधृष्यो नृपतिर्यत्र सस्यवती मही ॥ १७ ॥

द्वारा जल न पीवे अधिक हो वा कम हो ॥ १४ ॥ सब प्रकारकी शौचक्रियामें शीघ्रता करै और मुखद्वारा अर्थात् फूँकसे अग्नि प्रज्वलित न करै और हे पुत्र ! जहां यह चार वस्तु न हों, वहां वास न करै ॥ १५ ॥ ऋण (कर्ज) देनेवाला, वैद्य श्रोत्रिय और सजला नदी । जिस राज्यमें शत्रुओंका जीतनेवाला धर्मनिष्ठ बलवान् राजा वास करता हो ॥ १६ ॥ उस देशमें बुद्धिमान् पुरुषको सदा वास करना चाहिये। क्योंकि कुरा-जाके राज्यमें सुखकी संभावना कहां है ? जिस राज्यका राजा दुर्द्धर्ष और जिस स्थानकी भूमि सस्य (धान्य) वती है ॥ १७ ॥

जहां पौर (पुरवासी) नियममें तत्पर और नित्य न्यायमार्गानुवर्त्ती हैं और जिस स्थानके समस्त मनुष्य मात्सर्यहीन हैं, उस स्थानमें वास करनेसे सुखोदय होता है ॥ १८ ॥ जिस स्थानके कृषकगण सदा अतिभोगरहित हैं, जिस स्थानमें असंख्य असंख्य औषधी उत्पन्न होती हैं बुद्धिमान् पुरुषको उसी स्थानमें वास करना चाहिये ॥ १९ ॥ हे पुत्र ! जिस स्थानमें जिगीषु अर्थात् (जीतनेकी इच्छावाले) पूर्वशत्रु और सदा उत्सवोन्मत्त इन तीन प्रकारके मनुष्य वास करते हैं वहां वास करना उचित नहीं है ॥ १२० ॥ सुशील सहवासियोंमें बुद्धिमान्‌को वास करना चाहिये । हे वत्स ! यह मैंने तुम्हारे हितकी कामनासे सब वर्णन किया ॥ १२१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ मदालसा

पौराः सुसंयता यत्र सततं न्यायवर्त्तिनः ॥ यत्रामत्सरिणो लोकास्तत्र वासः सुखोदयः ॥ १८ ॥ यस्मिन्कृषीवला राष्ट्रे प्रायशो नातिभोगिनः ॥ यत्रौषधान्यशेषाणि वसेत्तत्र विचक्षणः ॥ १९ ॥ तत्र पुत्र न वस्तव्यं यत्रैतत्त्रितयं सदा ॥ जिगीषुः पूर्ववैरश्च जनश्च सततोत्सवः ॥ १२० ॥ वसेन्नित्यं सुशीलेषु सहवासिषु पण्डितः ॥ इत्येतत्कथितं पुत्र मया ते हितकाम्यया ॥ १२१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे अलर्कानुशासने सदाचारवर्णनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ मदालसोवाच ॥ अतः परं शृणुष्व त्वं वर्ज्यावर्ज्यप्रतिक्रियाम् ॥ भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहाक्तं चिरसंभृतम् ॥ १ ॥ अस्नेहाश्चापि गोधूमयवगोरसविक्रियाः ॥ शशकः कच्छपो गोधा श्वावित्खड्गोऽथ पुत्रक ॥ २ ॥ भक्ष्या ह्येते तथा वर्ज्यौ ग्रामशूकरकुक्कुटौ ॥ पितृदेवादिशेषं च श्राद्धे ब्राह्मणकाम्यया ॥ ३ ॥

बोली—हे वत्स ! अब वर्ज्यावर्ज्य द्रव्यकी प्रतिक्रियाका वर्णन करतीहूं सुनो—बासी अन्न बहुत दिनका संगृहीत स्नेहद्रव्य ॥ १ ॥ और घीरहित गेहूँका द्रव्य यव और दुग्धविकार (फटा दूध) भोजन न करै, खरगोश, कछुआ, गोय, श्वावित् (साही–सेही) खड्गी[1] हे पुत्र ! इन सब जीवोंका मांस ॥ २ ॥ भक्षण करसकता है किन्तु ग्राम्यसूकर और ग्रामकुक्कुट (मुरगा) अभक्ष्य हैं अर्थात् इनको भोजन नहीं करना चाहिये ब्राह्मणोंके लिये श्राद्धमें पितृदेवताओंका जो अवशिष्ट रहता है ॥ ३ ॥

---

१ गैंडा ।

वह मांस और यज्ञादिमें प्रोक्षित और औषधार्थ आयाहुआ मासभोजन दूषणीय नहीं हैं. शंख, पाषाण, सुवर्ण, चाँदी, रज्जु, वसन ॥ ४ ॥ शाक, मूल, फल, विदल, अन्न, चर्म (चमडा), मणि, हीरा, मूँगा, मोती ॥ ५ ॥ और मनुष्यका देह यह सब जलमें धुलनेसे शुद्ध होते हैं धातुपात्र और चमसकी जलसे शुद्धि हो जाती है ॥ ६ ॥ ताँबा, काँसा, राँग, सीसा इनका खटाईके जलसे तथा क्षारसे विधिपूर्वक शौच करना चाहिये ॥ ७ ॥ जलद्वारा लौहमय पदार्थकी घर्षण द्वारा पाषाणकी और स्नेहजलसे घृतयुक्त पात्रकी शुद्धि होती है ॥ ८ ॥ छाजधान्य, मृग, चर्म, मूसल, ओखली और

प्रोक्षितं चौषधार्थं च खादन्मांसं न दुष्यति ॥ शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणां रज्जूनामथ वाससाम् ॥ ४ ॥ शाकमूलफलानां च तथा विदलचर्मणाम् ॥ मणिवज्रप्रवालानां तथा मुक्ताफलस्य च ॥ ५॥ गात्राणां च मनुष्याणामम्बुना शौचमिष्यते ॥ पात्राणां चमसानां च वारिणा शुद्धिरिष्यते ॥ ६ ॥ ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुषः सीसकस्य च ॥ शौचं यथार्थं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिणा ॥ ७ ॥ तथायसानां तोयेन ग्राव्णः संघर्षणेन च ॥ सस्नेहानां च भाण्डानां शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥ ८ ॥ शूर्पधान्याजिनानां च मुशलोलूखलस्य च ॥ संहतानां च वस्त्राणां प्रोक्षणात्संचयस्य च ॥ ९ ॥ वल्कलानामशेषाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते ॥ तृणकाष्ठौषधीनां च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ १० ॥ आविकानां समस्तानां केशानां चापि मेध्यता ॥ सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः ॥ ११ ॥ साम्बुना तात भवति उपघातवतां सदा ॥ तथा कार्पासिकानां च विशुद्धिर्जलभस्मना ॥ १२ ॥ नागदन्तास्थिशृङ्गाणां तत्क्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ पुनः पाकेन भाण्डानां पार्थिवानां च मेध्यता ॥ १३ ॥

मलिन वस्त्र यह सब वस्तु जलमें प्रोक्षण करनेसे शुद्ध होती है ॥९॥ सब प्रकारका वल्कल और मृत्तिकाभी जलके संयोगसे शुद्ध होती है. तृण काष्ठ और समस्त औषधि जलसे प्रोक्षण करनेपर शुद्ध होतीहैं ॥१०॥ मेषके रोमसे बने वस्त्र और केश, इन दोनों वस्तुके किसी प्रकार दूषित होनेपर जलयुक्त सरसोंके कल्क वा तिलकल्कद्वारा शुद्ध करै॥११॥और इनके बिगडनेसे जलद्वारा ही इनकी शुद्धि हो जाती है, तथा जल और भस्मसे कार्पासनिर्मित्त वस्तुक शुद्धि होती है ॥ १२ ॥ हाथीदांत और उसकी अस्थि, सींग इनकी तत्काल वैसेही शुद्धि है, मिट्टीका पात्र दूसरी वार पकानेसे शुद्ध होता है ॥ १३ ॥

भिक्षालब्ध वस्तु, शिल्पकारका हाथ, बाजारकी वस्तु, स्त्रीजातिका मुख, बालकका मुख, अपना मुख और वृद्धपुरुषका मुख स्वयं पवित्र हैं ॥ १४ ॥ मार्गमें आताहुआ, अविज्ञात, दासवर्गादिद्वारा ताडनाको प्राप्त हुआ, बहुत दिनोंका अतीत, अनेक बखेडोंवाला और लघुजन वाक्यमात्रसे ही शुद्ध होता है ॥ १५ ॥ बहुत बालक और वृद्ध तथा आतुर मनुष्यका कर्म, यह भी स्वभावसेही शुद्ध है, कर्मसमापनके पीछे अंगारशाला, जिसका बालक स्तन नहीं छोडता ऐसी स्त्री ॥ १६ ॥ और गंधरहित, बुद्बुदरहित और स्रोतःसंयुक्त जल विशुद्ध है, कालसे तथा बुहारने और गौके चरनेसे भूमि शुद्ध होजाती है ॥ १७ ॥ लीपनेसे, खुरचनेसे, जल छिडकनेसे तथा मार्जन और अर्चन, इन सबके द्वारा गृहकी शुद्धि करनी चाहिये। हे तात ! मृत्तिका, सलिल

शुचिर्भैक्षं कारुहस्तैः पण्यं यच्च प्रसारितम् ॥ योषिन्मुखं बालमुखमात्मवृद्धमुखं तथा ॥ १४ ॥ रथ्यागतमविज्ञातं दासवर्गादिनाहृतम् ॥ वाक्प्रशस्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु ॥ १५ ॥ अतिप्रभूतं बालं च वृद्धातुरविचेष्टितम् ॥ कर्मान्ताङ्गारशालाश्च स्तनन्धयसुताः स्त्रियः ॥ १६ ॥ अभ्यस्य च तथा वाचः स्रवन्त्योऽनन्धबुद्बुदाः ॥ भूमिर्विशुध्यंते कालाद्दाहमार्जनगोक्रमैः ॥ १७ ॥ लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्मसंमार्जनार्चनात् ॥ केशकीटावपन्नेऽन्ने गोघ्राते मक्षिकान्विते ॥ १८ ॥ मृदंबुभस्मना तात प्रोक्षितव्यं विशुद्धये ॥ औदुम्बराणामम्लेन क्षारेण त्रपुसीसयोः ॥१९॥ भस्माम्बुभिश्च कांस्यानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च ॥ अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च ॥ २० ॥ अन्येषां चैव तद्रव्यैर्वर्णगन्धापहारतः ॥ चांडालैरंत्यजैश्चैव म्लेच्छैरस्पृश्यजातिभिः ॥ २१ ॥

और भस्मद्वारा प्रोक्षण करके केश कीटसंयुक्त, गौके सूंघे और मक्षिकायुक्त द्रव्यादिकी शुद्धि करै, ताम्रके बने पात्रादिकी खटाईसे, रांग और सीसेकी क्षारसे ॥ १८ ॥ १९ ॥ तथा कांसेकी भस्म और जलसे शुद्धि करनी चाहिये, जो सब द्रव्य अमेध्य वस्तुसे संसक्त हो मिट्टी और जलद्वारा उनकी गंध दूर करनेपर ॥ २० ॥ एवं अन्यान्य वस्तुका वर्ण और गंध दूर करनेसे वह शुद्ध होता है । चाण्डाल, अन्त्यज, म्लेच्छ और छूनेके अयोग्य जातियोंसे ॥ २१ ॥

छुआ और धोया धान्य सब कार्योंमें अयोग्य हैं, यह द्रोणसे कमती धान्यमें जानना ॥ २२ ॥ और जो धान्य द्रोणपरिमाणसे आधिक हो, वह प्रोक्षणसेही शुद्ध हो जाता है, गलीमें पडेहुए धान्यको देखकर यत्नसे प्रणाम करना चाहिये ॥ २३ ॥ और उसे उठाकर शिरपर धरे, अन्यथा लक्ष्मी कोध करती है, जितने जलमें गौकी तृप्ति हो सकती है जो अपने स्वभावमें स्थित हो, पृथ्वीमें हो ॥ २४ ॥ और चाण्डाल तथा कव्याद द्वारा मारेहुए जीवोंका मांस भी शुद्ध कहा गया है हे वत्स ! गलियोंमें पडे पुराने वस्त्र वायुद्वाराही शुद्ध होते हैं ॥ २५ ॥ धूलि, अग्नि, अश्व, गौ, छाया, सूर्यादिकी किरणें,

स्पृष्टमक्षालितं धान्यमनर्हं सर्वकर्मणि ॥ द्रोणादधस्तु यद्धान्यं तस्यायं विधिरुच्यते ॥ २२ ॥ द्रोणादूर्ध्वं तु यद्धान्यं प्रोक्षणादेव शुध्यति ॥ रथ्यासु पतितं धान्यं दृष्ट्वा यत्नेन वंदयेत् ॥ २३ ॥ उद्धृत्य मूर्ध्नां चादद्याल्लक्ष्मीर्नश्यति चान्यथा ॥ शुचिगोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ॥ २४ ॥ तथा मांसं च चंडालक्रव्यादादिनिपातितम् ॥ रथ्यागतं च चेलादि तात वाताच्छुचि स्मृतम् ॥ २५ ॥ गजोऽग्निरश्वो गौश्छायारश्मयः पवनो मही ॥ विप्रुषो मक्षिकाद्याश्च दुष्टसङ्गाददोषिणः ॥ २६ ॥ अजाश्वौ मुखतो मेध्यौ न गोर्वत्सस्य चाननम् ॥ मातुः प्रस्रवणं मेध्यं शकुनिः फलपातने ॥ २७ ॥ आसनं शयनं यानं नावः पथि तृणानि च ॥ सोमसूर्यांशुपवनैः शुध्यन्ते तानि पण्यवत् ॥ २८ ॥ रथ्याप्रसर्पणे स्नाने क्षुतपानान्नकर्मसु ॥ आचामेत यथान्यायं वासो विपरिधाय च ॥ २९ ॥

वायु, पृथ्वी, जलकी बूँदें और मक्खी इत्यादि दुष्टके संसर्गसे भी दूषित नहीं होतीं अर्थात् इनका स्पर्श अपवित्र स्थानोंपर रहनेसे भी यह शुद्ध है ॥ २६ ॥ बकरी और अश्वका मुख पवित्र है, गोवत्सका मुख अपवित्र है, गौका मल, मूत्र, माताका दूध और पक्षीका गिराया फल पवित्र है ॥ २७ ॥ आसन, शय्या, यान, नौका, मार्गमें स्थित तृण, चंद्र सूर्यके किरण और वायु, यह सब बाजारके द्रव्यकी समान शुद्ध हैं ॥ २८ ॥ मार्गभ्रमण, स्नान, छींक पान और मलमूत्रविसर्जन, इन सब कार्योंके पीछे तथा वस्त्रपरिवर्त्तनके पीछे यथाविधि आचमन करना चाहिये ॥ २९ ॥

१ बत्तीस शेरका एक द्रोण होताहै।

मार्गकी कीच, जल, ईंट और कीचसे लिप्त द्रव्यादिके संसर्गदोषसे दूषित होनेपर वह वायुके संसर्गसे शुद्ध होता है ॥ ३० ॥ अन्नका ढेर यदि किसी प्रकारसे दूषित होजाय तो उसका अग्रभाग पृथक् करके त्याग करै फिर जल और मृत्तिकाद्वारा आचमन करे शेष अंश जल छिडकनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३१ ॥ विना जाने दुष्टान्नभोजन करनेपर तीन रात्रि उपवासी रहै और जानबूझकर भोजन करनेसे विधानानुसार उस दोषके शान्त करनेको प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ३२ ॥ ऋतुमती स्त्री, श्वान, गीदड आदि, सूतिका, चाण्डाल और शववाहक अर्थात मृतक उठानेवाला इन सबका स्पर्श होनेपर स्नान करके शुद्ध होताहै ॥ ३३ ॥ स्नेहयुक्त मनुष्यके अस्थिका स्पर्श होनेसे स्नान कर शुद्ध होता है । और

स्पृष्टानामप्यसंस्पृश्यैर्वैरिथ्याकर्दमांभसाम् ॥ पंकेष्टरचितानां च मेध्यता वायुसंगमात् ॥ ३० ॥ प्रभूतोपहतादन्नादग्रमुद्धृत्य संत्यजेत् ॥ शेषस्यप्रोक्षणं कुर्यादाचम्याद्भिस्तथा मृदा ॥ ३१ ॥ उपवासस्त्रिरात्रं तु दुष्टभक्ष्याशिनो भवेत् ॥ अज्ञाते ज्ञानपूर्वं तु तद्दोषोपशमेन तु ॥ ३२ ॥ उदक्याश्वशृगालादीन्सूतिकान्त्यावसायिनः ॥ स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः ॥ ३३ ॥ नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नातः शुध्यति मानवः ॥ आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ॥ ३४ ॥ न लंघयेत्तथैवासृक्ष्ठीवनोद्वर्तनानि च ॥ नोद्यानादौ विकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥ ३५ ॥ न चालपेज्जनद्विष्टां वीरहीनां तथा स्त्रियम् ॥ गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि क्षिपेद्बहिः ॥ ३६ ॥ पंचपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिणा ॥ स्नायीत देवखातेषु गंगाह्रदसरित्सु च ॥ ३७ ॥

स्नेहरहित अस्थिस्पर्श करनेपर आचमन करके गोस्पर्श और सूर्यका दर्शन करनेसे ही शुद्ध होताहै ॥ ३४ ॥ रुधिर, खखार और उबटन उल्लंघन करना उचित नहीं है । बुद्धिमान् पुरुष कभी असमय उद्यानादिमें स्थिति न करै ॥ ३५॥ निन्दित और अवीरा नारीके संग वात करनाभी अनुचित है, उच्छिष्ट मल मूत्र और पैरोंका धोयाहुआ जल घरके बाहर फेकना चाहिये ॥ ३६ ॥ पंच पिंड विना उद्धार किये जलमें स्नान न करै । देवखात, गंगा, ह्रद और नदी इन समस्त जलमें स्नान करै ॥ ३७ ॥

जो व्यक्ति देवता, पितृ, सच्छास्त्र, यज्ञ, मंत्र इत्यादिकी निन्दा करते हैं, हे पुत्र ! उनके संग बातचीत वा उनको स्पर्श करनेपर सूर्यका दर्शन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३८ ॥ ऋतुमती स्त्री, अन्त्यज (चाण्डालादि), पतित, शव, विधर्मी, सूतिका (नवप्रसूता), नपुंसक, विवस्त्र पुरुष, अन्त्यावसायी ॥ ३९ ॥ सूतनिर्यातक (प्रसवसंबंधीय) द्रव्यादिका बाहर निकालनेवाला और परस्त्रीपरायण, इन सबका दर्शन करनेपर सूर्यका दर्शन करके शुद्धिलाभ करना बुद्धिमान् मनुष्यका कर्त्तव्य है ॥ ४० ॥ अभक्ष्य द्रव्य, नवप्रसूता नारी, नपुंसक, मार्जारी (बिलाई), चूहा, कुत्ता, मुरगा, पतित, आविद्ध (पितामाताके द्वारा त्यागा हुआ व्यक्ति वा परित्यक्त दूषित द्रव्यादि), चाण्डाल, मृतहारी ॥ ४१ ॥ रजस्वला स्त्री, ग्राम्य सूकर और सूतिकाशौचदूषित व्यक्ति

देवतापितृसच्छास्त्रयज्ञमन्त्रादिनिन्दकैः ॥ कृत्वा तु स्पर्शनालापं शुध्येतार्कावलोकनात् ॥ ३८ ॥ अवलोक्य तथोदक्यामन्त्यजं पतितं शवम् ॥ विधर्मिसूतिकाषण्डविवस्त्रान्त्यावसायिनः ॥ ३९ ॥ मृतनिर्यातकाश्चैव परदाररताश्च ये ॥ एतदेव हि कर्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः ॥ ४० ॥ अभोज्यसूतिकाषण्ढमार्जाराखुश्वकुक्कुटान् ॥ पतिताविद्धचण्डालमृतहारांश्च धर्मवित् ॥ ४१ ॥ संस्पृश्य शुध्यते स्नानादुदक्याग्रामसूकरौ ॥ तद्वच्च सूतिकाशौचदूषितौ पुरुषावपि ॥ ४२ ॥ अतः परं शृणुष्व त्वं स्त्रीधर्मान्नु विस्तरात् ॥ उदुंबरे वसेन्नित्यं भवानी सर्वदेवता ॥ ४३ ॥ ततः सा प्रत्यहं पूज्या गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ अशून्या देहली कार्या प्रातःकाले विशेषतः ॥ ४४ ॥ यस्य शून्या भवेत्सा तु शून्यं तस्य कुलं भवेत् ॥ पादस्य स्पर्शनं तत्र असंपूज्य च लंघनम् ॥ ४५ ॥ कुर्वन्नरकमाप्नोति तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ प्रातःकाले स्त्रिया कार्यं गोमयेनानुलेपनम् ॥ ४६ ॥

इन सबका स्पर्श करनेपर स्नान करके शुद्ध होताहै ॥ ४२ ॥ अब तुम विस्तारसहित स्त्रीधर्मको सुनो भवानी और सब देवता नित्य उदुंबरमें बसते हैं ॥ ४३ ॥ गंध, पुष्प और अक्षत आदिसे उनका नित्य पूजन करना चाहिये । विशेष करके प्रातःकालके समय देहलीको शून्य न रक्खे जिस पुरुषकी देहली शून्य रहती है, उसका कुलभी शून्य होजाताहै देहलीको चरणसे स्पर्श करना और विना पूजे लाँघना ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ऐसा करनेसे नरक होता है इस कारण उल्लंघन न करै, बरन प्रातःकालमें स्त्रियोंको गोबरसे लीपना चाहिये ॥ ४६ ॥

क्योंकि प्रतिदिन घर लीपनेसे दुःख दिखाई नहीं देता, बुहारी दिये विना जिसके घरमें सूर्यकी किरणें पडती हैं ॥ ४७ ॥ उससे पितर देवता और माता विमुख होजाती हैं, रात्रिके पिछले पहरमें जो धान्यका संस्कार इत्यादि करती है ॥ ४८ ॥ वह अज्ञानताके कारण ऐसा करनेसे जन्म जन्ममें बांझ होती है और जो स्त्रियें संध्या होनेपर घरमें बुहारी नहीं देतीं ॥ ४९ ॥ वह जन्म जन्ममें स्वामी और धनसे हीन होती हैं और जो स्त्री लिपी भूमिमें स्वस्तिक (सथिया) नहीं करती है ॥५०॥ उस स्त्रीका धन तथा आयु और यशका नाश होजाता है। बुहारी, चूल्हा, सिलबट्टा ॥५१॥ इन्हें पैरसे कभी आक्रमण

प्रत्यहं सदने तस्मान्नैव दुःखानि पश्यति ॥ स्पृशंति रश्मयो यस्य गृहं संमार्जनादृते ॥ ४७ ॥ भवन्ति विमुखास्तस्य पितरो देवमातरः ॥ निशायाः पश्चिमे यामे धान्यसंस्करणादिकम् ॥४८॥ कुरुते या तु मोहेन वंध्या जन्मनि जन्मनि ॥ सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते मार्जनं न करोति या ॥ ४९ ॥ भर्तृहीना भवेत्सा तु निःस्वा जन्मनि जन्मनि ॥ अकृतस्वस्तिकां या तु कामलिप्तां च मेदिनीम् ॥ ५० ॥ तस्याः स्त्रिया विनश्यन्ति वित्तमायुर्यशस्तथा ॥ मार्जनीचुल्लिकाष्ठीवद्दृषदश्चोपलं तथा ॥ ५१ ॥ नाक्रमेदंघ्रिणा जातु पुत्रदारधनक्षयात् ॥ उलूखलं च मुसलं तथा चैव तु घर्षणम् ॥ ५२ ॥ पदाक्रमणात्पापीयान्नाप्नोत्युत्तमतां गतिम् ॥ भिन्नासनं योगपट्टं तथैव मृगचर्म च ॥ ५३ ॥ कृष्णाविकं तथा तात वर्जयेत्पुत्रवान्गृही ॥ दक्षिणाभिमुखो यस्तु विदिक्संमुख एव च ॥ ५४ ॥ केशान्संस्कुरुते मर्त्यो धननाशं च विन्दति ॥ अनूढस्तु न कुर्वीत भुक्त्वा दन्तविशोधनम् ॥ ५५ ॥

न करै करनेसे पुत्र स्त्री और धनका क्षय होता है. इसी प्रकार ओखली तथा मूसलके वृथा घर्षणसे ॥ ५२ ॥ और चरणसे आक्रमण करनेपर पुरुष पापी होकर उत्तम गतिको प्राप्त नहीं होता, टूटे हुए आसन, योगपट्ट तथा मृगचर्म ॥ ५३ ॥ और काला कम्बल, हे तात ! इन वस्तुओंका पुत्रवान् पुरुषको सेवन नहीं करना चाहिये जो पुरुष दक्षिणकी ओरको मुख करके अथवा विदिशाओंकी ओरको मुख करके ॥ ५४ ॥ बालोंका संस्कार करता है, उसके धनका नाश होजाता है, कँारे बालकको भोजन करके दांत कुरेदने उचित नहीं है ॥ ५५ ॥

खडाऊंपर चढना, तिलोंसे तर्पण, आधी धोती शिरसे ओढना जिसका पिता जीवित हो, वह इन बातोंको न करै ॥ ५६ ॥ वह पुरुष अमावसमें श्राद्ध और तदर्थ स्नान न करै, खडाऊंपर न चढै, योगपट्ट ॥ ५७ ॥ गयाश्राद्ध यह जीवितपितावाला न करै, दीपककी बहेडेकी और कुरंटकी छाया ॥ ५८ ॥ जीनेकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सदा त्यागनी चाहिये और जो पुरुष धोतीसे शिरकी हवा करते हैं ॥ ५९ ॥ स्थाली चर्म और सूर्पसे जो हवा करते हैं, उनका पुण्य नष्ट होजाताहै. अलर्क बोले--तुमने जो यह सूतिकादिक भोज्य कहेहैं ॥ ६० ॥ सो अब मैं तुमसे इनके यथाथ लक्षण सुननेकी इच्छा

पादुकारोहणं चैव तिलैश्चापि सतर्पणम् ॥ न जीवत्पितृकः कुर्यादर्धकक्षोत्तरीयकम् ॥ ५६ ॥ दर्शश्राद्धं न कुर्वीत दर्शस्नानं कथंचन ॥ पादुकारोहणं चैव योगपट्टकमेव च ॥५७॥ न जीवत्पितृकः कुर्याद्गयाश्राद्धं तथैव च ॥ दीपभांडमयीच्छाया बिभीतककुरंटजा ॥ ५८ ॥ वर्जनीया सदा पुत्र यदि जीवितुमिच्छति ॥ अधोवस्त्रेण यो वायुं कुरुते शिरसि द्विज ॥ ५९॥ स्थालेन चर्मशूर्पाभ्यां सुकृतं तस्य नश्यति ॥ अलर्क उवाच ॥ भवत्या कीर्तिता भोज्या य एते सूतिकादयः ॥ ६० ॥ अमीषां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतो लक्षणानि ह ॥ मदालसोवाच ॥ ब्राह्मणी ब्राह्मणस्येह यावरोधत्वमागता ॥ ६१ ॥ तावुभौ सूतिकेत्युक्तौ तयोरन्नं विगर्हितम् ॥ न जुहोत्युचिते काले नाश्नाति न ददाति च ॥ ६२ ॥ पितृदेवार्चनाद्धीनः पंढः स परिगीयते ॥ दंभार्थे यजते यश्च तप्यते च तपस्तथा ॥ ६३ ॥ न परार्थमिहेत्युक्तः स मार्जारः स्मृतो बुधैः ॥ विभवे सति नैवात्ति न ददाति जुहोति च ॥ ६४ ॥

करताहूं। मदालसा बोली–जो ब्राह्मणी ब्राह्मणकी स्त्री हुई है अथात् ब्राह्मणने उसे करलियाहै ॥ ६१ ॥ वह दोनों सूतिका और उनका अन्न गर्हित है। जो पुरुष समयपर हवन, भोजन और दान नहीं करता ॥ ६२ ॥ जो पितर और देवताकी पूजासे हीन है, वह षण्ढ कहलाताहै और जो मनुष्य दिखाईके लिये तप और हवन करता है ॥ ६३ ॥ वह परमार्थ नहीं है, पण्डितोंने उसको मार्जार कहाहै। धन होनेपर जो हवन, दान और भोजन नहीं करता ॥ ६४ ॥

उसे चूहा कहाहै उसका अन्न भोजन करनेपर व्रत करनेसे शुद्ध होता है. जो पुरुष सभामें प्राप्त हुए मनुष्योंका पक्षपात करताहै ॥ ६५॥ उसको देवताओंने कुक्कुट (मुरगा) कहाहै. उसका अन्नभी गर्हित है । जो पुरुष अपना धर्म छोडकर पराये धर्मका आश्रय करताहै ॥ ६६ ॥ वह पुरुष आपत्तिके विना ऐसा करनेसे पतित कहा गयाहै । देवत्यागी, गुरुत्यागी, गुरुस्त्रीत्यागी ॥ ६७॥ गौ ब्राह्मण और स्त्रीका वध करनेवाला अपविद्ध कहलाता है. जिन पुरुषोंके कुलमें वेद, शास्त्र और व्रत नहीं हैं ॥ ६८ ॥ पण्डितोंने उनको नग्न कहाहै, उनका अन्नभी निन्दित है आशा कराकर फिर न दे अथवा देनेवालेसे निषेध करदे ॥ ६९ ॥ जो पुरुष शरणमें आयेहुएको छोडताहै वह नराधम चण्डाल होता है, जो बांधव साधु और ब्राह्मणोंसे त्यागा गया है ॥ ७० ॥ जो

तमाहुराखुस्तस्यान्नं भुक्त्वा कृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥ सभागतानां मर्त्यानां पक्षपातं समाश्रयेत् ॥६५॥ तमाहुः कुक्कुटं देवास्तस्याप्यन्नं विगर्हितम् ॥ स्वधर्मं यः समुच्छिद्य परधर्मं समाश्रयेत् ॥६६॥ अनापदि स विद्वद्भिः पतितः परिकीर्तितः ॥ देवत्यागी गुरुत्यागी गुरुपत्न्युज्झकस्तथा ॥६७॥ गोब्राह्मणस्त्रीवधकृदपविद्धः प्रचक्षते ॥ येषां कुले न वेदोऽस्ति न शास्त्रं नैव च व्रतम् ॥६८॥ ते नग्नाः कीर्तिताः सद्भिस्तेषामन्नं विगर्हितम् ॥ आशाकर्त्तुस्त्वदाता च दातुश्च प्रतिषेधकः ॥ ६९ ॥ शरणागतं यस्त्यजति स चांडालो नराधमः ॥ यो बांधवैः परित्यक्तः साधुभिर्ब्राह्मणैरपि ॥ ७० ॥ कुंडाशी यश्च तस्यान्नं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ यो नित्यकर्मणो हानिं कुर्यान्नैमित्तिकस्य च ॥ ७१ ॥ भुक्त्वान्नं तस्य शुद्ध्यै च त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ यस्य चानुदिनं हानिर्गृहे नित्यस्य कर्मणः ॥ यश्च ब्राह्मणसन्त्यक्तः किल्बिषी स नराधमः ॥ ७२ ॥ नित्यस्य कर्मणो हानिं न कुर्वीत कदाचन ॥ तस्य त्वकरणे बन्धः केवलं मृतजन्मसु ॥ ७३ ॥

वर्णसंकरके यहां भोजन करता है वह चान्द्रायण करनेसे शुद्ध होताहै, जो नित्य और नैमित्तिक कर्मकी हानि करताहै ॥७१॥ वह भोजन करने उपरान्त तीन रात व्रत करनेसे शुद्ध होताहै. जिस घरमें नित्यकर्मकी प्रतिदिन हानि होतीहै, और जो ब्राह्मणोंसे त्यागाहुआहै, वह पापी मनुष्योंमें अधम है ॥७२॥ नित्यकर्मकी कभी हानि न करै, नित्यकर्मका अनुष्ठान करनेसे मरण जन्ममें संघटित होताहै, केवल मात्र मरणकालमें और जन्मकालमें नित्यकर्मका अनुष्ठान न करनेसे कोई दोष नहीं होता ॥ ७३ ॥

जन्माशौच और मरणाशौचमें ब्राह्मणगण दश दिनतक दान होमादि नित्यकर्मसे रहित होकर स्थित रहैं और क्षत्रियगण बारह दिन, वैश्यगण पंद्रह दिन ॥ ७४ ॥ और शूद्रगण एक मासतक इसी प्रकारके आचरणमें रहैं. रोग और ग्रहादिकी बाधामें भी नित्यकर्मकी विधि छूट जाती है ॥ ७५ ॥ उसमें पादकृच्छ्र व्रत करै और गोदान करनेसे शुद्ध होताहै. इसके पीछे शास्त्रोक्तविधानसे सब अपने अपने कार्यका अनुष्ठान करै ॥ ७६ ॥ सगोत्रीयगण बहिर्भागमें मृतदेह दग्ध कर प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और नवम दिनमें प्रेतके उद्देश्यसे जलदान करैं ॥ ७७ ॥ चौथे दिनमें भस्म और अस्थिचयन करना चाहिये और अस्थिसंचयनके पीछे उसका अंग स्पर्श करना उचित है ॥ ७८ ॥ संचयके पीछे समानोदक पुरुष सब क्रिया समापन करै मृत दिवसमें सपिण्ड और

दशाहं ब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमादिवर्जितः ॥ क्षत्रियो द्वादशाहं च वैश्यो मासार्द्धमेवच च ॥ ७४ ॥ शूद्रस्तु मासमासीत नित्यकर्मविवर्जितः ॥ रोगग्रहादिविधिना नित्य कर्मविधिच्युतः ॥ ७५ ॥ पादकृच्छ्रं ततः कृत्वा गां दत्त्वा शुद्धिमाप्नुयात् ॥ ततः परं निजं कर्म कुर्युः सर्वे यथोदितम् ॥ ७६ ॥ प्रेताय लिलं देयं बहिर्गेहाच्च गोत्रिकैः ॥ प्रथमेऽह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा ॥ ७७ ॥ भस्मास्थिचयनं कार्यं चतुर्थे गोत्रिकैर्दिने ॥ ऊर्ध्वं संचयनात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते ॥ ७८ ॥ सोदकैस्तु क्रियाः सर्वाः कार्या संचयनात्परम् ॥ स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहनि तथोभयोः ॥ ७९ ॥ वृक्षाहिगोदंष्ट्रिशस्त्रतोयोद्बंधनवह्निषु ॥ विषप्रपातादिमृते प्रायो नाशकयोरपि ॥ ८० ॥ बाले देशान्तरस्थे च तथा प्रव्रजिते मृते ॥ सद्यः शौचमथान्यैश्च त्र्यहमुक्तमशौचकम् ॥ ८१ ॥ नैवौर्ध्वदैहिकं कार्यं न च कार्योदकक्रिया ॥ गर्भस्रावे तदेवोक्तं पूर्णकालेन शुध्यति ॥ ८२ ॥

समानोदक व्यक्तिका स्पर्श करना चाहिये ॥७९॥ वृक्ष, सर्प, पशु, श्वापद, शस्त्र, जल, फांस, वह्नि, विष और पर्वतसे गिरने प्रायोपवेशन करने और अनशन करने इत्यादिमें मृत्यु होनेपर सगोत्र और समानोदक व्यक्तिका एक दिन आशौच होताहै ॥८०॥ बालक देशान्तरवासी और प्रव्रज्याश्रमीकी मृत्यु होनेपर तत्काल आशौच होता है किसी किसीके मतसे त्रिरात्र आशौचकी व्यवस्था है ॥ ८१ ॥ फिर इनकी और्ध्वदैहिक क्रिया और जलदान नहीं होता । गर्भस्रावमें भी यही विधि है पूर्णकालमें शुद्धि होती है ॥ ८२ ॥

ब्राह्मणोंके यहां गर्भपातमें एक दिनरात, क्षत्रियोंके तीन दिन, वैश्योंके छः दिन और शूद्रोंकी बारह दिनमें शुद्धि होतीहै ॥ ८३ ॥ एक पुरुषके मरनेपर उसीके आशौचमें अपर किसी सपिंडकी मृत्यु होनेपर प्रथम पुरुषके मृत दिनकी गणनामें परव्यक्तिकी आशौचशुद्धिक्रिया पूर्ण करे ॥ ८४ ॥ जन्माशौचमेंभी सपिण्ड और समानोदक पुरुषकी इसी प्रकार विधि निर्दिष्ट है ॥ ८५ ॥ पुत्र उत्पन्न होनेपर पिताको सवस्त्र स्नान करना चाहिये और मृत्युमें सब बंधु सवस्त्र स्नान करें, यह भगवान् भृगुने कहा है ॥ ८६ ॥ यदि एकके जन्म ग्रहण करनेपर अन्य एक जन्म ले तो पाहिलेके जन्मकी शुद्धिके दिन उसकीभी

ब्राह्मणानामहोरात्रं क्षत्रियाणां दिनत्रयम् ॥ षड्रात्रमपि वैश्यानां शूद्राणां द्वादशाह्निकम् ॥ ८३ ॥ सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन्मृतो यदि ॥ पूर्वाशौचसमाख्यातैः कार्या तस्य दिनैः क्रिया ॥ ८४ ॥ एष एव विधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सूतके॥ सपिण्डानां सपिण्डेषु यथावत्सोदकेषु च ॥ ८५ ॥ जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते ॥ मृते हि सर्वबन्धूनामित्याह भगवान्भृगुः ॥ ८६ ॥ तत्रापि यदि चान्यस्मिञ्जाते जायेत चापरः ॥ तत्रापि शुद्धिरुद्दिष्टा पूर्वजन्मवतो दिनैः ॥ ८७ ॥ दशद्वादशमासार्द्धमाससंख्यैर्दिनैर्गतैः ॥ स्वाः स्वाः कर्मक्रियाः कुर्युः सर्वे वर्णा यथाविधि ॥ ८८ ॥ प्रेतमुद्दिश्य कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं ततः परम् ॥ सपिंडीकरणं चैव कार्यमावत्सरान्नरैः ॥ ८९ ॥ ततः पितृत्वमापन्ने दर्शपूर्णादिभिस्त्रिभिः ॥ प्रीणयंस्तस्य कर्तव्यं यथाश्रुतिनिदर्शनम् ॥ ९० ॥ दानानि चैव देयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभिः ॥ यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे ॥ ९१ ॥ तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥ प्रेतं प्रेतं समुद्दिश्य भूमिधेन्वादिकं स्वकम् ॥ ९२ ॥

शुद्धि हो सकतीहै ॥ ८७ ॥ ब्राह्मणादि समस्त वर्णही विधानानुसार दश दिन, बारह दिन, पक्ष और एक मासका अवलम्बन करके निज निज वर्णके अनुसार कार्यादि निर्वाह करे ॥८८॥ फिर प्रेतके उद्देश्यसे एकोद्दिष्ट करना चाहिये और वर्ष दिनतक सपिण्डीकरण करलेना चाहिये ॥ ८९ ॥ अनन्तर प्रेतके पितृत्व प्राप्त होनेमें दर्शपौर्णमासको वेदानुसार पितरकी तृप्ति करनी चाहिये ॥ ९० ॥ और ब्राह्मणोंके निमित्त दान देने चाहिये, जो जो लोकमें इष्ट और अपनेको प्रिय हो वा प्रिय वस्तु घरमें हो ॥९१॥ वह अक्षयकी इच्छा करनेवालेको गुणीके निमित्त देनी चाहिये, प्रेतके उद्देश्यसे भूमि धेनु आदि ॥९२॥

देनेसे पितर संतुष्ट होते हैं. हे पुत्र ! फिर आशौचके पूर्ण होनेपर सलिल, सवारी और शस्त्रका स्पर्श करके ॥ ९३ ॥ तथा चाबुक, दण्ड स्पर्श कर सब वर्ण क्रमानुसार निज निज कार्य करैं अपने वर्णानुसार क्रिया करनेसे मंगल होता है ॥ ९४ ॥ और पवित्र होकर क्रिया करनेसे दोनों लोकमें मंगल होता है. बुद्धिमान्‌को नित्य प्रति तीन वेदका पाठ करना चाहिये ॥ ९५ ॥ धर्मानुसार धन उपार्जन करके यत्नसहित यज्ञका अनुष्ठान करै और हे पुत्र ! जिससे आत्मा निंन्दित न हो वह कर्म करै ॥ ९६ ॥ जो महाजनोंके समीप गोपनीय नहीं है, निःशंक होकर ऐसे कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये.

दद्याद्येनास्य संप्रीताः पितरः संति पुत्रक ॥ पूर्णैस्तु दिवसैः स्पृष्ट्वा सलिलं वाहनायुधम् ॥ ९३ ॥ प्रतोददण्डौ च तथा सम्यग्वर्णाः कृतक्रियाः ॥ स्ववर्णधर्मनिर्दिष्टमुपादानं तथा क्रियाः ॥ ९४ ॥ कुर्युः समस्ताः शुचिनः परत्रेह च भूतिदाः ॥ अध्येतव्या त्रयी नित्यं भवितव्यं विपश्चिता ॥ ९५ ॥ धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यं चापि यत्नतः ॥ यच्चापि कुर्वतो नात्मा जुगुप्सामेति पुत्रक ॥ ९६ ॥ तत्कर्त्तव्यमशंकेन यन्न गोप्यं महाजने ॥ एवमाचरतो वत्स पुरुषस्य गृहे सतः ॥ धर्मार्थकामसंप्राप्त्या परत्रेह च शोभनम् ॥ ९७ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेऽलर्कानुशासने धर्माधर्मनिरूपणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ जड उवाच ॥ स एवमनुशिष्टः सन्मात्रा संप्राप्य यौवनम् ॥ ऋतत्वजसुतश्चक्रे सम्यग्दारपरिग्रहम् ॥ १ ॥ पुत्रांश्चोत्पादयामास यज्ञैश्चाप्ययजद्विभुः ॥ पितुश्च सर्वकालेषु चकाराज्ञानुपालनम् ॥ २ ॥ ततः कालेन महता संप्राप्य चरमं वयः ॥ चक्रेऽभिषेकं पुत्रस्य तस्य राज्ये ऋतध्वजः ॥ ३ ॥

हे वत्स! गृहस्थाश्रमी इस प्रकार आचरण करनेसे धर्म, अर्थ और काम यह त्रिवर्गलाभ और इस लोक तथा परलोक दोनोंमें कल्याणलाभ करते हैं ॥९७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ जडने कहा--जननीके इस प्रकार अनुशासन करनेपर ऋतध्वजनंदनने यौवनको प्राप्त हो सम्यक् विधानानुसार विवाह किया ॥ १ ॥ क्रमशः पुत्र उत्पादन और विविध यज्ञका अनुष्ठानपूर्वक निरन्तर पिताकी आज्ञामें रहने लगे ॥ २ ॥ अनन्तर दीर्घकाल बीतनेपर जब चरम अवस्था उपस्थित हुई, तब धर्मात्मा महाभाग महीपति ऋतध्वजने तपस्याके लिये स्त्रीसहित वनमें

जानेकी इच्छा करके पुत्रको युवराज्यपदमें अभिषिक्त किया ॥ ३ ॥ ४ ॥ तब मदालसा पुत्रका कामभोग निवृत्त करनेकी अभिलाषासे शेष वचनोंके द्वारा इस प्रकार कहनेलगी । मदालसा बोली-जब तुमको प्रिय वा बन्धुके वियोगका असह्य दुःख प्राप्त हो वा शत्रुबाधा वा धननाशसे दुःख हो ॥५॥६॥ हे वत्स ! गृहस्थ सदाही ममतापरायण है, सुतरां स्वाभाविकही दुःखका आस्पदस्वरूप है. इसी कारण कहतीहूं कि, गृहस्थ धर्मावलम्बी होकर राज्य-शासन करते करते दुःसह दुःख उपस्थित हो, तिस समय मेरी दीहुई इस अंगुलीयसे पत्र बाहर करके इसके मध्यस्थ सूक्ष्माक्षरोंसे लिखित शासन पाठ

भार्यया सह धर्मात्मा यियासुस्तपसेवनम् ॥ अवतीर्णो महीरक्षो महाभागो महीपतिः ॥ ४ ॥ मदालसा च तनयं प्राहेदं पश्चिमं वचः ॥ कामोपभोगसंसर्गप्रहाणाय सुतस्य वै ॥ ५ ॥ मदालसोवाच ॥ यदा दुःखमसह्यं ते प्रियबन्धुवियोगजम् ॥ ६ ॥ भवेत्तत्कुर्वतो राज्यं गृहधर्मावलम्बिनः ॥ दुःखायतनभूतो हि ममत्वालम्बनो गृही ॥ ७ ॥ तदास्मात्पुत्र निष्कृष्य मद्दत्तादंगुलीयकात् ॥ वाच्यं ते शासनं पट्टे सूक्ष्माक्षरनिवेशितम् ॥ ८ ॥ जड उवाच ॥ इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै सौवर्णं सांगुलीयकम् ॥ आशिषश्चापि या योग्याः पुरुषस्य गृहे सतः ॥ ९ ॥ ततः कुवलयाश्वोऽसौ सा च देवी मदालसा ॥ पुत्राय दत्त्वा तद्राज्यं तपसे काननं गतौ ॥ १० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ जड उवाच ॥ सोऽप्यलर्को यथान्यायं पुत्रवन्मुदिताः प्रजाः ॥ पालयामास धर्मात्मा स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः ॥ १ ॥

करना ॥ ७ ॥ ८ ॥ जडने कहा-मदालसाने इस प्रकार कहकर अपनी सुवर्णकी अँगूठी प्रदानपूर्वक पुत्रको गृहस्थके उपयुक्त आशीर्वाद दिया ॥ ९ ॥ तदनन्तर कुवलयाश्व पुत्रको राज्यप्रदानपूर्वक तपस्यार्थ देवी मदालसाके सहित वनमें चलेगये ॥ १० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ जडने कहा-धर्मात्मा अलर्कके न्यायानुसार पुत्रके समान प्रजापालन करनेसे उन्होंने परम आनंद प्राप्त किया और सब स्वस्वहित कार्यानुष्ठानमें प्रवृत्त हुए ॥ १ ॥

मा० पु०

॥१३०॥

उन्होंने दुष्ट पुरुषोंमें दंडविधान और शिष्टपुरुषोंका पालन करके परमानंदलाभ और अनेक प्रकारके श्रेष्ठ यज्ञ संपादन किये ॥ २ ॥ कालक्रमसे उनके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए। वह सब महाबल पराक्रान्त, धर्मात्मा, महात्मा और कुमार्गके नष्ट करनेवाले थे ॥ ३ ॥ अलर्क आत्मवान् होकर धर्मके सहित अर्थका और अर्थके सहित धर्मका रक्षण एवं धर्म और अर्थ इन दोनोंके अविरोधमें विषयभोग करनेलगे ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गके अनुसारी होकर पृथ्वी पालन करते करते उनको बहुत वर्ष एक दिनकी समान बीतगये ॥ ५ ॥ प्रियतम विषय संभोग करके भी उनको वैराग्यका संचार और धर्म अर्थोपार्जनके प्रति पूर्णताका उदय न हुआ ॥ ६ ॥ अलर्कका सुबाहु नामक एक भाई पहिलेसे ही वनवास आश्रय करताथा,

दुष्टेषु दंडं शिष्टेषु सम्यक्च परिपालनम् ॥ कुर्वन्परां मुदं लेभे इयाज च महामखैः ॥ २ ॥ अजायंत सुताश्चास्य महाबलपराक्रमाः ॥ धर्मात्मानो महात्मानो विमार्गपरिपन्थिनः ॥ ३ ॥ चकार सोऽर्थं धर्मेण धर्ममर्थेन वा पुनः ॥ तयोश्चैवाविरोधेन बुभुजे विषयानपि ॥ ४ ॥ एवं बहूनि वर्षाणि तस्य पालयतो महीम् ॥ धर्मार्थकामसक्तस्य जग्मुरेकमहर्यथा ॥ ५ ॥ वैराग्यं नास्य संजज्ञे भुंजतो विषयान्प्रियान् ॥ न चाप्यलमभूत्तस्य धर्मार्थोपार्जनं प्रति ॥६॥ तं तथा भोगसंसर्गप्रमत्तमजितेन्द्रियम् ॥ सुबाहुर्नाम शुश्राव भ्राता तस्य वनेचरः ॥७॥ तं बुबोधयिषुः सोऽथ चिरं ध्यात्वा महामतिः ॥ तद्वैरिसंश्रयं तस्य श्रेयोऽमन्यत भूपतेः ॥ ८ ॥ ततः स काशिभूपालमुदीर्णबलवाहनम् ॥ स्वराज्यमाप्तुमागच्छद्बहुशः शरणं कृती ॥ ९॥ सोऽपि चक्रे बलोद्योगमलर्कं प्रति पार्थिवः ॥ दूतं च प्रेषयामास राज्यमस्मै प्रदीयताम् ॥ १० ॥

भा० टी०

अ० ३४

उसने अलर्ककी भोग संभोगमें प्रमत्तता और परायणताका विषय सुना ॥ ७ ॥ इस कारण उस महामतिने भ्राताको तत्त्वज्ञान होनेकी इच्छासे बहुत कालतक चिन्ता करके अन्तमें उनके शत्रुका आश्रय ग्रहण करनाही श्रेष्ठ समझा ॥ ८ ॥ अनन्तर कार्यकुशल सुबाहुने स्वीय राज्यलाभकी वासनासे महाबल बलवाहनयुक्त काशीपतिकी अनेक बार शरण ग्रहण की ॥ ९ ॥ काशीराजनेभी अलर्कके प्रतिकूल सेनाका उद्योग करके उनके निकट दूत भेजा और यह कहलाभेजा कि, "सुबाहुको राज्य प्रदान करो" ॥ १० ॥

क्षत्रधर्मवित् अलर्कने इस बातको स्वीकार न करके काशिराजके दूतको यह उत्तर दिया कि ॥ ११ ॥ "मेरे बडे भ्राता मेरे निकट आनकर विनयपूर्वक राज्यको प्रार्थना करै मैं आक्रमणके भयसे कणिकामात्र भूमि नहीं दूंगा" ॥ १२ ॥ महामति सुबाहुने प्रार्थना नहीं करी. क्योंकि प्रार्थना करना क्षत्रियोंका धर्म नहीं है, एक मात्र वीर्यही उनका धन है ॥ १३ ॥ तदनन्तर काशिराज सब सेनासे परिवृत हो महीपति अलर्कके राज्यपर आक्रमण करनेके लिये आये ॥ १४ ॥ उन्होंने अपने सामन्तराजाओंके सहित मिलित होकर उनके अन्य भृत्योंसाहित आगमनपूर्वक आक्रमणके पीछे अलर्कको

सोऽपि नैच्छत्तदा दातुमाज्ञा पूर्वं स्वधर्मवित् ॥ प्रत्युवाच च तं दूतमलर्कः काशिभूभृतः ॥ ११ ॥ मामेवाभ्येत्य हार्देन याचतां राज्यमग्रजः ॥ नाक्रांत्या संप्रदास्यामि भयेनाल्पामपि क्षितिम् ॥ १२ ॥ सुबाहुरपि नो याच्ञां चकार मतिमांस्तदा ॥ न धर्मः क्षत्रियस्येति याच्ञावीर्यधनो हि सः ॥१३॥ ततः समस्तसैन्येन काशीशः परिवारितः ॥ आक्रान्तुमभ्यगाद्राष्ट्रमलर्कस्य महीपतेः ॥१४॥ अनन्तरैश्च संश्लेषमभ्येत्य तदनन्तरम् ॥ तेषामन्यतमैर्भृत्यैः समाक्रम्यानयद्वशम् ॥ १५ ॥ अपीडयंश्च सामंतांस्तस्य राष्ट्रोपरोधनैः ॥ तथा दुर्गांतपालांश्च चक्रे चाटविकान्वशे ॥ १६ ॥ कांश्चिच्चोपप्रदानेन कांश्चिद्भेदेन पार्थिवान् ॥ साम्नैवान्यान्वशं निन्ये निभृतास्तस्य येऽभवन् ॥१७॥ ततः सोऽल्पबलो राजा परचक्रावपीडितः ॥ कोशक्षयमवापोच्चैः पुरं चारुध्यतारिणा ॥१८॥ इत्थं संपीड्यमानस्तु क्षीणकोशो दिने दिने ॥ विषादमागात्परमं व्याकुलत्वं च चेतसः ॥ १९ ॥

अपने वशीभूत करलिया ॥ १५ ॥ उन्होंने भ्राताका राज्य अवरोधपूर्वक सामन्तगणोंको पीडित, दुर्गपाल और आटविक गण (वनवासी) को वशीभूत ॥ १६ ॥ और किसीको अर्थदानद्वारा, किसीको भेद द्वारा और किसीको सामद्वारा अपने वशमें कर लिया ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे अलर्क परचक्रद्वारा पीडित होकर क्षीणबल और क्षीणकोष होगये और उनका पुरभी शत्रुके द्वारा अवरुद्ध होगया ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे दिन दिन क्षीणकोष और शत्रुके द्वारा पीडित होनेसे वह अत्यन्त विषादको प्राप्त हुए और उनका चित्त व्याकुल होगया ॥ १९ ॥

क्रमानुसार अत्यन्त आर्त्तभावको प्राप्त होनेपर जननी मदालसाने पहले जो बात कहीथी, वही अँगूठीका विषय उनको स्मरण हुआ ॥ २० ॥ तब उन्होंने स्नानपूर्वक पवित्र होकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराया और वह निबद्ध शासन बाहर करके देखा, उसमें स्पष्ट स्पष्ट रूपसे अक्षर लिख रहेथे ॥ २१ ॥ माताका लिखाहुआ वह शासनपत्र पढतेही उनका शरीर पुलकायमान और दोनों नेत्र आनन्दसे उत्फुल्ल होगये ॥ २२ ॥ शासनमें लिखाथा कि, " सर्वान्तःकरणसे संग परित्याग करे " यदि संगत्यागमें समर्थ न हो तो वह संग साधुओंके सहित करना चाहिये क्योंकि साधुसंगही जगतका औषधीस्वरूप है ॥ २३ ॥ सर्वान्तःकरणसे कामका परित्याग करना उचित है, यदि उसके त्याग करनेमें समर्थ न हो तो मुक्ति कामनाके प्रतिही उसका करना

आर्तिं स परमां प्राप्य तत्सस्मारांगुलीयकम् ॥ यदुद्दिश्य पुरा प्राह माता तस्य मदालसा ॥ २० ॥ ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा वाचयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ निष्कृष्य शासनं तस्माद्ददृशे प्रस्फुटाक्षरम् ॥ २१ ॥ तत्रैव लिखितं मात्रा वाचयामास पार्थिवः ॥ प्रकाशपुलकांगोऽसौ प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः ॥ २२ ॥ संगः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते ॥ स सद्भिः सह कर्त्तव्यः सतां संगो हि भेषजम् ॥ २३ ॥ कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः ॥ मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्यापि भेषजम् ॥ २४ ॥ वाचयित्वा तु बहुशो नृणां श्रेयः कथं त्विति ॥ मुमुक्षयेति निश्चित्य सा च तत्सङ्गतो यतः ॥ २५ ॥ ततः स साधुसम्पर्कं चिन्तयन्पृथिवीपतिः ॥ दत्तात्रेयं महाभागमगच्छत्परमार्तिमान् ॥ २६ ॥ तं समेत्य महात्मानमकल्मषमसङ्गिनम् ॥ प्रणिपत्याभिसम्पूज्य यथान्यायमभाषत ॥ २७ ॥

उचित है, क्योंकि वही उसकी महौषध है ॥ २४ ॥ इसी प्रकार वारम्वार माताके दिये शासनका पाठ करके क्या करनेसे मनुष्यको कल्याणलाभ हो मोक्षकामनाही उस कल्याण लाभ होनेका उपाय है और सत्संगही उस मुमुक्षाके साधनका कारण है ॥ २५ ॥ इस प्रकार निश्चय कर साधुसंगलाभकी चिन्ता करनेलगे । अतीव आर्त्तभावातुर नरपति इस प्रकारसे चिन्ता करके अन्तमें महाभाग दत्तात्रेयके निकट गये उन्होंने निष्पाप निःसंग और महानुभाव दत्तात्रेयको प्रणामपूर्वक पूजा करके न्यायानुसार कहा ॥ २६ ॥ २७ ॥

हे ब्रह्मन् ! आप मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये, आपही शरणार्थिगणोंका आश्रय हैं, मैं विषयभोगकी कामना करताहुआ दुःखसे अभिभूत होगयाहूं, आप मेरा दुःख दूर कीजिये ॥ २८ ॥ दत्तात्रेय बोले—हे पार्थिव ! मैं अभी तुम्हारा दुःख दूर करूंगा. हे पृथ्वीपते ! तुम सत्य कहो, किस कारण तुमको दुःखका उदय हुआ है ? ॥२९॥ तुम किसके हो ? किसका दुःख है ? पहले यह विचार करो । अंग अंगिभाव तथा निरंग इन सब अंगोंका विचार करो ॥३०॥ जडने कहा—महामति दत्तात्रेयके इस प्रकार पूछनेपर महीपति त्रिविध दुःखका स्थान और आत्मा इन दो विषयकी चिन्ता करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ३१ ॥ उदारमति धीरप्रकृति नरपति पुनः पुनः अनेक वार आत्मद्वारा आत्मविचार करके हँसते हुए कहनेलगे ॥ ३२ ॥ मैं भूमि जल नहीं, ज्योति नहीं अनिल

ब्रह्मन्कुरु प्रसादं मे शरण्यः शरणार्थिनाम् ॥ दुःखापहारं कुरु मे दुःखार्त्तस्यातिकामिनः ॥ २८ ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ दुःखापहारमद्यैव करोमि तव पार्थिव ॥ सत्यं ब्रूहि किमर्थं ते दुःखं तत्पृथिवीपते ॥ २९ ॥ कस्य त्वं कस्य वा दुःखं तत्त्वमेव विचार्यताम् ॥ अंगान्यंगी निरंगं च सर्वांगानि विचिंतय ॥ ३० ॥ जड उवाच ॥ इत्युक्तश्चिन्तयामास स राजा तेन धीमता ॥ त्रिविधस्यापि दुःखस्य स्थानमात्मानमेव च ॥ ३१ ॥ स विमृश्य चिरं राजा पुनः पुनरुदारधीः ॥ आत्मानमात्मना धीरः प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥ ३२ ॥ नाहमुर्वी न सलिलं न ज्योतिरनिलो न च ॥ नाकाशं किं तु शारीरं समेत्य सुखमिष्यते ॥ ३३॥ न्यूनातिरिक्ततां याति पञ्चकेऽस्मिन्सुखासुखम् ॥ यदि स्यान्मम किं न स्यादन्यस्थेऽपि हितं मयि ॥ ३४ ॥ नित्यप्रभूतसद्भावे न्यूनाधिक्यान्नतोन्नते ॥ तथा च ममता त्यक्ता विशेषेणोपलभ्यते ॥ ३५ ॥

नहीं और आकाश भी नहीं हूं. किन्तु शरीरआश्रयपूर्वक सुखकी वासना करताहूं ॥३३॥ इस पांचभौतिक शरीरमें सुख दुःख उपस्थित होकर न्यूनातिरिक्तता प्राप्त होतीहै ॥ ३४ ॥ यदि इस प्रकार हो उसमें भी मेरी क्या हानि ? क्योंकि वे शरीर नहीं, शरीरसे स्वतंत्रभावमें अवस्थित हूं. मेरी न्यूनता अतिरिक्तताकी संभावना नहीं है मुझको नित्य प्रभूत सद्भाव उपस्थित होताहै, न्यूनाधिक्य वशतः नत और उन्नत भी होताहूं अतएव ममता त्यागकर विशेषरूपसे ज्ञानकी उपलब्धि करनाही उचित है । मैं तन्मात्रावस्थित सूक्ष्म तृतीयांशमें अवस्थित हूं, मेरा शरीर भी भूतसद्भावसंघटित है सुतरां सुख और.

दुःखकी संभावना कहां है ? ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ सुख और दुःख मनमेंही स्थिति करते हैं, वह मनकाही धर्म है जब मैं वह मन भी नहीं हूं, तब मुझको सुख भी नहीं और दुःख भी नहीं है ॥ ३७ ॥ जब मैं अहंकार नहीं, मन नहीं और बुद्धि भी नहीं हूं, तब मुझमें अन्तःकरणजनित पारक्य दुःख अर्थात् दूसरेका दिया दुःख किस प्रकारसे संभव होसकता है ? ॥ ३८ ॥ मैं शरीर नहीं, मन नहीं, मैं शरीर और मनसे पृथक् हूं अत एव सुख मनमें हो वा शरीरमें स्थिति करै मेरा उसमें क्या ? अर्थात् मेरी उसमें हानि भी नहीं और फल भी नहीं है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार शरीरके अग्रज (बडे भाई) ही राज्यकी

तन्मात्रावस्थिते सूक्ष्मे तृतीयांशे च पश्यतः ॥ तथैव भूतसद्भावं शरीरं किं सुखासुखम् ॥ ३६ ॥ मनस्यवस्थितं दुःखं सुखं वा मानसं च यत् ॥ यतस्ततो न मे दुःखं सुखं वा न ह्यहं मनः ॥ ३७ ॥ नाहङ्कारो न च मनो बुद्धिर्नाहं यतस्ततः ॥ अन्तःकरणजं दुःखं पारक्यं मम तत्कथम् ॥ ३८ ॥ नाहं शरीरं न मनो यतोऽहं पृथक्छरीरान्मनसस्तथाहम् ॥ तत्सन्तु चेतस्यथवापि देहे सुखानि दुःखानि च किं ममात्र ॥ ३९ ॥ राज्यस्य वांछां कुरुतेऽग्रजोऽस्य देवस्य चेत्पंचमयः स राशिः ॥ गुणप्रवृत्त्या मम किं नु तत्र तत्स्थः स चाहं च शरीरतोऽन्यः ॥ ४० ॥ न यस्य हस्तादिकमप्यशेषं मांसं न चास्थीनि शिराविभागः ॥ कस्तस्य नागाश्वरथादिकोशैः स्वल्पोऽपि सम्बन्ध इहास्ति पुंसः ॥ ४१ ॥ तस्मान्न मेऽरिर्न च मेऽस्ति दुःखं न मे सुखं नापि पुरं न कोशम् ॥ न चाश्वनागादिबलं न तस्य नान्यस्य वा कस्यचिद्वा ममास्ति ॥ ४२ ॥

प्रार्थना करते हैं, यदि यह शरीर पांचभौतिक है तो उसकी गुणप्रवृत्तिमें मेरी क्या आवश्यकता है ? क्या अग्रज ? क्या मैं ? दोनों ही देहसे पृथक् पदार्थ हैं ॥ ४० ॥ जिसके हस्तादि अवयव मांस अस्थि और शिरा विभाग कुछ नहीं है, घोडा, हाथी और रथादि कोषमें उसकी क्या आवश्यकता है ? इसमें पुरुषका कोई संबंध नहीं दीखता ॥ ४१ ॥ अतएव मेरे शत्रुको दुःख, सुख, पुर, कोष, अश्वगजादि और सैन्य भी नहीं है. जिस प्रकार मेरा कुछ नहीं है इसी प्रकार मेरे अग्रजका और अन्यान्य किसी पुरुषका भी यह सब नहीं है ॥ ४२ ॥

एक मात्र आकाश ही जिस प्रकार घटी, कुम्भ और कमण्डलु भेदसे अनेक दिखाई देताहै. इसी प्रकार आत्मा एक मात्र होकरभी सुबाहु काशिराज और मेरे इत्यादि देहके भेदसे नाना बोध होते हैं ॥ ४३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ जडने कहा—अनन्तर नरपति विनयसे नम्र हो महात्मा विप्र दत्तात्रेयको प्रणाम करके कहनेलगे ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! सम्यक् प्रकार दृष्टिका उदय होनेसे मुझको अब कुछभी दुःख नहीं है. असम्यक् दर्शी मनुष्यही सदा दुःखसागरमें निमग्न होतेहैं ॥ २ ॥ मनुष्यकी बुद्धि जिस जिसमें आसक्त होजातीहै उसी उसी विषयसे दुःख उत्पन्न होताहै ॥ ३ ॥ घरके पालेहुए मुरगेको बिल्लीके भक्षण करनेपर जिस प्रकार दुःखका उदय होताहै ममताशून्य कलविङ्क वा मूषकके भक्षित होनेपर

यथा घटीकुम्भकमण्डलुस्थमाकाशमेकं बहुधा हि दृष्टम् ॥ तथा सुबाहुः स च काशिपोऽहं मन्ये च देहेषु शरीरभेदैः ॥ ४३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे आत्मविवेको नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ जड उवाच ॥ दत्तात्रेयं ततो विप्रं प्रणिपत्य स पार्थिवः ॥ प्रत्युवाच महात्मानं प्रश्रयावनतो वचः ॥ १ ॥ सम्यक्प्रपश्यतो ब्रह्मन्मम दुःखं न किंचन ॥ असम्यग्दर्शिनो मग्नाः सर्वदैवासुखार्णवे ॥ २ ॥ यस्मिन्यस्मिन्ममत्वेन बुद्धिः पुंसः प्रजायते ॥ ततस्ततः समादाय दुःखान्येव प्रयच्छति ॥ ३ ॥ मार्जारभक्षिते दुःखं यादृशं गृहकुक्कुटे ॥ न तादृङ्ममताशून्ये कलविङ्केऽथ मूषिके ॥ ४ ॥ सोऽहं न दुःखी न सुखी यतोऽहं प्रकृतेः परः ॥ यो भूताभिभवो भूतैः सुखदुःखात्मको हि सः ॥ ५ ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ एवमेतन्नरव्याघ्र यथैतद्व्याहृतं त्वया ॥ ममेति मूलं दुःखस्य न ममेति च निर्वृतिः ॥ ६ ॥ मत्प्रश्नादेव तं ज्ञानमुत्पन्नमिदमुत्तमम् ॥ ममेति प्रत्ययो येन क्षिप्तः शाल्मलितूलवत् ॥ ७ ॥

वैसे दुःखकी संभावना नहीं है. क्योंकि ममता तो मुरगेमें रहतीहै ॥ ४ ॥ मैं सुखीभी नहीं और दुःखीभी नहीं हूं क्योंकि मैं प्रकृतिके अतीत हूं भूतगणके द्वारा भूताभिभवही सुखदुःखात्मक है अर्थात् जो इस संसारमें आसक्त रहता है उसीको सुख दुःख होता है ॥ ५ ॥ दत्तात्रेयने कहा—हे नरव्याघ्र ! तुमने जो कहा यह सत्य है ममताही दुःखका कारण और ममताही सुखका मूल है ॥ ६ ॥ मेरे पूछतेही तुम्हारे हृदयमें इस अनुत्तमज्ञानका उदय हुआ है इस ज्ञानके बलसेही तुम्हारी ममता रुईके समान उडगई है ॥ ७ ॥

अहंकाररूपी अंकुरसेही अज्ञानरूपी महावृक्षकी उत्पत्ति हुई है. ममत्व उस वृक्षका स्कन्ध है, गृह क्षेत्र उसकी उच्चशाखा, स्त्री पुत्रादि उसके पल्लव हैं ॥८॥ धन धान्य उसके बृहत् पत्र, पुण्यापुण्य प्रधान कुसुम, सुखदुःख उसका महाफल ॥ ९ ॥ और मोहाभिभूत होकर जो सम्यक् सम्बन्ध किया जाता है वही इस वृक्षका थांवला है वह वृक्ष दिनमें बढता है और यह वृक्षही मुक्तिमार्गको ढककर स्थित है यह वृक्ष बनाये रखनेकी कामनारूप भृङ्गमालासे समाकीर्ण है ॥ १० ॥ जो पुरुष संसारपथमें थकगये हैं और भ्रान्तिज्ञान सुखके अधीन हो इस वृक्षकी छायाका आश्रय करते हैं उनको किस प्रकार मोक्षलाभ होगा ? ॥ ११ ॥ जो पुरुष विद्यारूपी कुठारको सत्संगरूपी पत्थरके द्वारा तेजकरके उससे ममतावृक्षके छेदन करनेमें समर्थ होतेहैं ॥ १२ ॥ वही

अहमित्यंकुरोत्पन्नो ममेति स्कन्धवान्महान् ॥ गृहक्षेत्रोच्चशाखश्च पुत्रदारादिपल्लवः ॥ ८ ॥ धनधान्यमहापत्रो नैककालप्रवर्धितः ॥ पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्च सुखदुःखमहाफलः ॥ ९ ॥ अपवर्गपथव्यापी मूढसम्पर्कसेचनः ॥ विधित्साभृङ्गमालाढ्योऽकृत्यज्ञानमहातरुः ॥ १० ॥ संसाराध्वपरिश्रान्ता ये तच्छायां समाश्रिताः ॥ भ्रान्तिज्ञानसुखाधीनास्तेषामात्यान्तिकं कुतः ॥ ११ ॥ येस्तु सत्सङ्गपाषाणशितेन ममतातरुः ॥ छिन्नो विद्याकुठारेण ते गतास्तेन वर्त्मना ॥ १२ ॥ प्राप्य ब्रह्मवनं शीतं नीरजस्कमकण्टकम् ॥ प्राप्नुवन्ति परां प्राज्ञा निर्वृतिं वृत्तिवर्जिताः ॥ १३ ॥ भूतेन्द्रियमयं स्थूलं न त्वं राजन्न चाप्यहम् ॥ न तन्मात्रं मया वाच्यं नैवान्तःकरणात्मकौ ॥ १४ ॥ कं वा पश्यामि राजेंद्र प्रधानमिदमावयोः ॥ यतः परो हि क्षेत्रज्ञसंघातो हि गुणात्मकः ॥ १५ ॥

उस मार्गद्वारा ब्रह्मरूप वनमें उपस्थित होते हैं यह वन अतिशय शीतल, रजोविहीन और कंटकविहीन है. इस वनमें उपस्थित होनेसे वृत्तिरहित होकर परमबुद्धि और निर्वृतिलाभ होताहै ॥ १३ ॥ हे भूपते । तुमभी भूतेन्द्रियमय वा स्थूल नहीं हो और मैंभी नहीं हूं । हम दोनोंमें कोईभी तन्मात्र नहीं और अन्तःकरणात्मक भी नहीं हैं ॥ १४ ॥ हे राजेन्द्र ! हम दोनोंमें किसीकोभी प्रधान अर्थात् प्रकृतिमय देखते हो ? क्योंकि क्षेत्रज्ञ पुरुष, प्रकृतिके अतीत और पांचभौतिक पदार्थही गुणात्मक और प्रकृतिका विषयीभूत है ॥ १५ ॥

हे राजन् ! मशक और गूलर अर्थात् गूलरमें मच्छर, इषीका (सींक) और मुंज तथा मछली और जल यह जिस प्रकार एक होकर भी पृथक् भावयुक्त हैं, क्षेत्र और आत्माको भी इसी प्रकार जानना चाहिये ॥ १६ ॥ अलर्कने कहा—हे भगवन् ! आपके प्रसादसे मुझको प्रधान और चिच्छक्तिका विवेक करनेवाला अनुत्तम ज्ञानका उदय हुआ ॥ १७ ॥ किन्तु मेरा चित्त विषयोंमें खींचा रहनेसे मैं स्थिरता धारण नहीं करसकता और किस प्रकार प्रकृतिके बंधनसे छूटूंगा, यहभी नहीं जानसकता ॥१८॥ किस प्रकारसे फिर पुनर्जन्म ग्रहण करना न हो ? किस प्रकारसे निर्गुणत्व प्राप्त हो, किस प्रकारके अनुष्ठानसे

मशकोदुम्बरेषीकामुञ्जमत्स्याम्भसां यथा ॥ एकत्वेऽपि पृथग्भावस्तथा क्षेत्रात्मनोर्नृप ॥ १६ ॥ अलर्क उवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेन ममाविर्भूतमुत्तमम् ॥ ज्ञानं प्रधानचिच्छक्तिविवेककरमीदृशम् ॥ १७ ॥ किन्त्वत्र विषयाक्रान्ते स्थैर्यवत्त्वं न चेतासि ॥ न चापि वेद्मि मुच्येयं कथं प्रकृतिबन्धनात् ॥ १८ ॥ कथं न भूयां भूयश्च कथं निर्गुणतामियाम् ॥ कथं च ब्रह्मणैकत्वं व्रजेयं शाश्वतेन वै ॥ १९ ॥ तन्मे योगं तथा ब्रह्मन्प्रणतायाभियाचते ॥ सम्यग्ब्रूहि महाप्राज्ञ सत्सङ्गो ह्युपकृन्नृणाम् ॥ २० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयालर्क-संवादे पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ ज्ञानपूर्वो वियोगो योऽज्ञानेन सह योगिनः ॥ सा मुक्तिर्ब्रह्मणा चैक्यमनैक्यं प्राकृतैर्गुणैः ॥ १ ॥ योगे च शक्तिर्विदुषां येन श्रेयः परं भवेत् ॥ मुक्तिर्योगात्तथा योगः सम्यग्ज्ञानान्महीपते ॥ संगदोषोद्भवं दुःखं मम-त्वासक्तचेतसाम् ॥ २ ॥

शाश्वत ब्रह्मके सहित एकता प्राप्त हो ॥ १९ ॥ ऐसे योगका मुझको सम्यक् प्रकारसे उपदेश कीजिये । हे महाप्राज्ञ ! मैं प्रणत होकर आपके निकट प्रार्थना करता हूं । सत्संगही मनुष्यका उपकारसाधन करता है ॥ २० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५॥ दत्तात्रेयने कहा—योगारूढ पुरुषोंका ज्ञानलाभके द्वारा अज्ञानसे जो वियोग होता है, उसीको मुक्ति कहा जाता है और प्राकृतिक गुणोंके सहित अनैक्यही साक्षात् ब्रह्मके सहित एकता कही गई है ॥ १ ॥ हे महीपते ! योगसे मोक्ष, सम्यक ज्ञानसे योग, दुःखसे सम्यक् ज्ञान और ममतासक्त चित्तसेही दुःखका आविर्भाव होता है ॥ २ ॥

अतएव मुमुक्षु पुरुष यत्नसहित संग परित्याग करैं। विषयासक्ति छोडतेही " मेरा " यह ज्ञान दूर होजाता है ॥ ३ ॥ निर्ममताही सुखका कारण और वैराग्यका संचार होनेपरही संसारके समस्त दोष * स्पष्टरूपसे हृदयङ्गम कर सकता है. ज्ञानसे जिस प्रकार वैराग्यका उदय होता है, वैराग्यसेभी इसी प्रकार ज्ञानका आविर्भाव होता है ॥ ४ ॥ जिस स्थानमें वास किया जाय उसीको गृह, जिसके द्वारा जीवन धारण किया जाय उसीको भोज्य, जिसके द्वारा मोक्ष लाभ हो उसीको ज्ञान और इसके अन्यथा होनेसे उसको अज्ञान कहा जाता है ॥ ५ ॥ हे पार्थिव ! पुण्यापुण्यका उपभोग होनेसे कामनाविहीन होकर नित्यक्रियाका अनुष्ठान करनेपर ॥ ६ ॥ पूर्वोपार्जित कर्मका क्षय होनेपर और अपूर्व कर्मका असंचय होनेसेही वारंवार शरीरबंधन प्राप्त नहीं होता है

तस्मात्सङ्गं प्रयत्नेन मुमुक्षुः संत्यजेन्नरः ॥ सङ्गाभावे ममेत्यस्याः ख्यातेर्हानिः प्रजायते ॥ ३ ॥ निर्ममत्वं सुखायैव वैराग्याद्दोषदर्शनम् ॥ ज्ञानादेव च वैराग्यं ज्ञानं वैराग्यपूर्वकम् ॥ ४ ॥ तद्गृहं यत्र वसतिस्तद्भोज्यं येन जवीति ॥ यन्मुक्तये तदेवोक्तं ज्ञानमज्ञानमन्यथा ॥ ५ ॥ उपभोगेन पुण्यानामपुण्यानां च पार्थिव ॥ कर्त्तव्यामिति नित्यानामकामकरणात्तथा ॥ ६ ॥ असंचयादपूर्वस्य क्षयात्पूर्वार्जितस्य च ॥ कर्मणो बन्धमाप्नोति शरीरं च पुनः पुनः ॥ ७॥ कर्मणा मोक्षमाप्नोति वैपरीत्येन तस्य तु ॥ एतत्ते कथितं ज्ञानं योगं चेमं निबोध मे ॥ यं प्राप्य ब्रह्मणो योगी शाश्वतान्नान्यतां व्रजेत् ॥ ८ ॥ प्रागेवात्मात्मना जेयो योगिनां स हि दुर्जयः ॥ कुर्वीत तज्जये यत्नं तस्योपायं शृणुष्व मे ॥ ९ ॥ प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ॥ प्रत्याहारेण विषयान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ १० ॥

राजन् ! यह जो तुम्हारे निकट वर्णन किया इसीको योग कहते हैं। इस योगके लाभ होतेही योगिजन शाश्वत ब्रह्मके अतिरिक्त और किसीकोभी आश्रय नहीं करते ॥ ७ ॥ ८ ॥ सबसे पहिले आत्माके द्वारा आत्माको जय करना चाहिये। क्योंकि यह आत्माही योगियोंको दुर्ज्ञेय है. सुतरां उसके जीतनेमें यत्नवान् होना उचित है। जिस प्रकार आत्माको जीतना चाहिये वह कहता हूं सुनो ॥ ९ ॥ दोषोंको प्राणायामद्वारा, पापोंको धारणाद्वारा, विषयोंको प्रत्याहारद्वारा और समस्त अनीश्वर गुणोंको ध्यानद्वारा दग्ध करै ॥ १० ॥

* दोष-अर्थात् संसारकी असारता और अनित्यतादि।

जिस प्रकार दहनद्वारा पर्वतकी समस्त धातु निर्दोषताको प्राप्त होती हैं इसी प्रकार प्राणवायुको निगृहीत करनेसेही इंद्रियकृत समस्त दोष दग्ध होते हैं ॥ ११ ॥ योगवित् पुरुष प्रथम प्राणायामका साधन करै। प्राण और अपान इन दोनों वायुका निरोधही प्राणायाम कहा गया है ॥ १२ ॥ प्राणायाम तीन प्रकारका है, लघु मध्यम और उत्तरीय. हे अलर्क ! इन तीनों प्राणायामका प्रमाण कहता हूं सुनो ॥ १३ ॥ लघुप्राणायाम द्वादशमात्रायुक्त, मध्यम उससे द्विगुण और उत्तम वा उत्तरीय प्राणायाम उससे त्रिगुण मात्रायुक्त कहागया है ॥ १४ ॥ निमेष और उन्मेष इन दोनोंका समयही मात्राका काल कहकर निर्दिष्ट है अर्थात् यही एक मात्रा है. इस प्रकार द्वादश मात्रा होनेसेही लघुप्राणायाम होताहै ॥ १५ ॥ प्रथम प्राणायाम द्वारा स्वेद (पसीना) दूसरेके द्वारा वेपथु

यथा पर्वतधातूनां ध्मातानां दह्यते मलम् ॥ तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणनिग्रहात् ॥ ११ ॥ प्रथमं साधनं कुर्यात्प्राणायामस्य योगवित् ॥ प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः ॥ १२ ॥ लघुमध्योत्तरीयाख्यः प्राणायामस्त्रिधोदितः ॥ तस्य प्रमाणं वक्ष्यामि तदलर्क शृणुष्व मे ॥ १३ ॥ लघुर्द्वादशमात्रस्तु द्विगुणः स तु मध्यमः ॥ त्रिगुणाभिस्तु मात्राभिरुत्तमः परिकीर्त्तितः ॥ १४ ॥ निमेषोन्मेषणे मात्रा कालो लघ्वक्षरस्तथा ॥ प्राणायामस्य संख्यार्थं स्मृतो द्वादशमात्रिकः ॥ १५ ॥ प्रथमेन जयेत्स्वेदं मध्यमेन च वेपथुम् ॥ विषादं हि तृतीयेन जयेद्दोषाननुक्रमात् ॥ १६ ॥ मृदुत्वं सेव्यमानास्तु सिंहशार्दूलकुञ्जराः ॥ यथा यान्ति तथा प्राणो वश्यो भवति योगिनः ॥ १७ ॥ वश्यं मत्तं यथेच्छातो नागं नयति हस्तिपः ॥ तथैव योगी छन्देन प्राणं नयति साधितम् ॥ १८ ॥

अर्थात् कम्प, और तीसरे प्राणायामद्वारा यथाक्रमसे विषादादि दोषोंको जीतना चाहिये ॥ १६ ॥ सिंह व्याघ्र और हाथी जिस प्रकार सेवा द्वारा मृदुत्व (कोमलता) को प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार प्राण और प्राणायाम द्वारा योगियोंमें वशता प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ हाथीवान् जिस प्रकार वशीभूत मत्त हाथीको अपनी इच्छानुसार चलाता है योगिजनभी इसी प्रकार प्राण साधित होनेपर उसके द्वारा सहजमें ही अपनी इच्छानुसार कार्य करसकते हैं ॥ १८ ॥

साधित सिंह जिस प्रकार मृगगणोंको निहत करता है किन्तु मनुष्यादिको नहीं मारता। इसी प्रकार प्राणवायुकी साधना करनेसे पापही नष्ट होते हैं शरीर नष्ट नहीं होता ॥ १९ ॥ अतएव योगी पुरुष सदा प्राणायामपरायण होनेमें यत्नवान् हो। प्राणायामकी अवस्था चार प्रकारकी है, उसके द्वारा मुक्तिफल प्राप्त होजाताहै, अब वही कहताहूं, सुनो ॥२०॥ हे महीपते! प्राणायाम चार प्रकारका है। ध्वस्ति, प्राप्ति, संवित् और प्रसाद। अब क्रमानुसार इनका स्वरूप वर्णन करताहूं, सुनो ॥ २१ ॥ जिस अवस्थामें दुष्ट और अदुष्ट समस्त कर्मोंका फल क्षयको प्राप्त हो और चित्तकी मलीनता दूर होजाय, उसको ध्वस्ति कहतेहैं ॥ २२ ॥ योगी पुरुष जिस अवस्थामें लोभमोहात्मक ऐहिक और आमुष्मिक समस्त कामको निरंतर स्वयं निरुद्ध करतेहैं, उस अवस्था

यथा हि साधितः सिंहो मृगान्हंति न मानवान् ॥ तद्वन्निषिद्धपवनः किल्बिषं न नृणां तनुम् ॥१९॥ तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेत् ॥ श्रूयतां मुक्तिफलदं तस्यावस्थाचतुष्टयम् ॥२०॥ ध्वस्तिः प्राप्तिस्तथा संवित्प्रसादश्च महीपते ॥ स्वरूपं शृणु चैतेषां कथ्यमानमनुक्रमात् ॥ २१ ॥ कर्मणामिष्टदुष्टानां जायते फलसंक्षयः ॥ चेतसोऽपकषायत्वं यत्र सा ध्वस्तिरुच्यते ॥ २२ ॥ ऐहिकामुष्मिकान्कामाँल्लोभमोहात्मकान्स्वयम् ॥ निरुध्यास्ते सदा योगी प्राप्तिः सा सार्वकालिकी ॥ २३ ॥ अतीतानागतानर्थान्विप्रकृष्टतिरोहितान् ॥ विजानातीन्दुसूर्यर्क्षग्रहाणां ज्ञानसम्पदा ॥ २४ ॥ तुल्यप्रभावस्तु यदा योगी प्राप्नोति संविदम् ॥ तदा संविदिति ख्याता प्राणायामस्य सा स्थितिः ॥२५॥ यान्ति प्रसादं येनास्य मनः पंच च वायवः ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स प्रसाद इति स्मृतः ॥२६॥ शृणुष्व च महीपाल प्राणायामस्य लक्षणम् ॥ युञ्जतश्च सदा योगं यादृग्विहितमानसम् ॥ २७ ॥

को प्राप्ति कहागयाहै ॥ २३ ॥ योगिजन जिस अवस्थामें ज्ञानसम्पत्तिवशतः चन्द्र सूर्य और ग्रह नक्षत्रकी सदृश ज्ञानशक्तिको प्राप्त होकर ॥ २४ ॥ अतीत, अनागत और तिरोहित यह दूरस्थ सब विषय जान सकतेहैं, उसी अवस्थाको संवित् कहा जाताहै ॥ २५॥ जिस अवस्था द्वारा योगीका चित्त, पंचवायु, इन्द्रिय, इन्द्रियोंके विषयसमूहसे शुद्धिलाभ करता है, उसी अवस्थाको प्रसाद कहतेहैं ॥ २६ ॥ हे महीपाल! अब प्राणायामके लक्षण और योगके आरंभमें जिस प्रकार आसनका अनुष्ठान करना चाहिये सो सुनो ॥ २७ ॥

पद्मासन, अर्द्धासन, स्वस्तिकासन इत्यादि आसनावलम्बनपूर्वक हृदयमें प्रणवजप करके योगानुष्ठानमें प्रवृत्त होवे ॥ २८ ॥ सरलभावसे सम आसनमें बैठकर दोनों चरणोंको सकोड मुखको मूँद और दोनों ऊरु सम्यक् प्रकारसे अग्रभागमें विष्टब्ध (स्तब्ध) करके ॥२९॥ संयुक्त मनसे इस प्रकार स्थित होना चाहिये कि, जिससे हस्तद्वारा लिंग और अंडकोशका (स्पर्श) न हो उसी समय शिर कुछेक ऊपरको उठा हो और दांतसे दांतोंका स्पर्श न करे ॥ ३० ॥ और केवल मात्र अपनी नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि रक्खे, अन्य किसी ओर न देखे। इसी अवस्थामें योगवित् पुरुष रजोगुणद्वारा तामसी वृत्तिका और सत्त्वगुण द्वारा राजसिक वृत्तिका ॥ ३१ ॥ विनाश करके केवल मात्र निर्मल तत्त्वमें अवस्थानपूर्वक योगाभ्यासमें नियुक्त हो इन्द्रियके विषयसे एवं मन

पद्ममर्द्धासनं चापि तथा स्वस्तिकमासनम् ॥ आस्थाय योगं युंजीत कृत्वा च प्रणवं हृदि ॥ २८ ॥ समः समासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ ॥ संवृतास्यस्तथैवोरू सम्यग्विष्टभ्य चाग्रतः ॥ २९ ॥ पार्ष्णिभ्यां लिङ्गवृषणावस्पृशन्प्रयतः स्थितः ॥ किंचिदुन्नामिताशिरा दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ॥ ३० ॥ संपश्यन्नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ रजसा तमसो वृत्तिं सत्त्वेन रजसस्तथा ॥ ३१ ॥ संछाद्य निर्मले सत्त्वे स्थितो युञ्जीत योगवित् ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्राणादीन्मन एव च ॥ ३२ ॥ निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥ यस्तु प्रत्याहरेत्कामान्सर्वाङ्गानीव कच्छपः ॥३३॥ सदात्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ स बाह्याभ्यन्तरं शौचं निष्पाद्याकंठनाभितः ॥ ३४ ॥ पूरयित्वा बुधो देहं प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥ प्राणायामा दश द्वौ च धारणा साभिधीयते ॥ ३५ ॥

और प्राणादिको ॥ ३२ ॥ निगृहीत करके कच्छप जिस प्रकार अपने समस्त अंगोंको सकोडलेता है इसी प्रकार प्रत्याहारमें प्रवृत्त होना चाहिये ॥ ३३ ॥ इस प्रकारसे कामसमूहको प्रत्याहरणपूर्वक केवल मात्र आत्मामेंही सदा आसक्त होकर स्थित रहनेसे आत्मा द्वारा आत्माका दर्शन प्राप्त हो जाता है। विचक्षण योगी कंठसे नाभिदेशपर्यन्त बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धिविधानपूर्वक ॥ ३४ ॥ देह परिपूर्ण करके प्रत्याहार साधन करे। प्राणायाम दशविध और धारणा दो प्रकार कही गई है ॥ ३५ ॥

मा० पु०
॥१२६॥

तत्त्वदर्शी योगिजनोंने योगाभ्यासमें दोही प्रकारकी धारणाका निर्देश किया है । नियतात्मा होकर योगसाधन करनेसे ॥ ३६॥ योगीके समस्त दोष प्रशमित होते हैं, शान्ति प्राप्त होती है, पृथक् रूपसे समस्त प्राकृतगुण और परब्रह्मका दर्शनलाभ होता है ॥ ३७॥ एवं आकाशादि परिमाणु और विशुद्ध आत्माका साक्षात्कार लाभ किया जाता है । इस प्रकारसे योगी नियताहारपूर्वक प्राणायाममें निरत हो ॥ ३८ ॥ शनैः शनैः योगभूमि जय करता हुआ अपने घरकी समान उसीमें आरूढ होवे. इस प्रकार भूमिके विजित न होनेसे उसके द्वारा कामादि दोष व्याधिसमूह ॥ ३९ ॥ और मोहकी वृद्धि प्राप्त होती है.

द्वे धारणे स्मृते योगे योगिभिस्तत्त्वदृष्टिभिः ॥ तथा वै योगयुक्तस्य योगिनो नियतात्मनः ॥ ३६ ॥ सर्वे दोषाः प्रणश्यन्ति स्वस्थश्चै-वोपजायते ॥ वीक्षते च परं ब्रह्म प्राकृतांश्च गुणान्पृथक् ॥ ३७ ॥ व्योमादिपरमाणूंश्च तथात्मानमकल्मषम् ॥ इत्थं योगी यताहारः प्राणायामपरायणः ॥ ३८ ॥ जितां जितां शनैर्भूमिमारोहेत यथा गृहम् ॥ दोषान्व्याधींस्तथा मोहमाक्रान्ता भूरनिर्जिता ॥ ३९ ॥ विवर्धयति नारोहेत्तस्माद्भूमिमनिर्जिताम् ॥ प्राणानामुपसंरोधात्प्राणायाम इति स्मृतः ॥ ४० ॥ धारणेत्युच्यते चेयं धार्यते यन्मनो यया ॥ शब्दादिभ्यः प्रवृत्तानि यदक्षाणि यतात्मभिः ॥ ४१ ॥ प्रत्याह्रियन्ते योगेन प्रत्याहारस्ततः स्मृतः ॥ उपायश्चात्र कथितो योगि-भिः परमर्षिभिः ॥ ४२ ॥ येन व्याध्यादयो दोषा न जायन्ते हि योगिनः ॥ यथा तोयार्थिनस्तोयं यन्त्रनालादिभिः शनैः ॥ ४३ ॥

भा० टी०
अ० ३६

अतएव अनिर्जिता भूमिमें आरोहण न करै जिसके द्वारा पंचप्राण संयत होते हैं उसीको प्राणायाम कहते हैं ॥ ४० ॥ जिसके द्वारा मनको धारण किया जाय वही धारणा कहाती है और नियतात्मा पुरुष जिस अवस्थामें इन्द्रियसमूहको शब्दादि स्व स्व विषयसे ॥४१ ॥ प्रत्याहरण करते हैं उसीको प्रत्याहार कहते हैं. योगसिद्ध ऋषियोंने इस विषयमें जो उपाय निरूपण किया है ॥ ४२ ॥ उसके द्वारा योगीके शरीरमें व्याधि इत्यादि आक्रमण नहीं करसकती, जलार्थी जिस प्रकार यंत्रनालादिके सहित धीरे धीरे जलपान करते हैं ॥ ४३ ॥

योगी पुरुषभी उसी प्रकार श्रम जीतकर वायुपान करते हैं. प्रथम नाभिमें, फिर हृदयमें, फिर वक्षस्थलमें ॥ ४४ ॥ फिर कंठमें, वदनमें, नासाग्रमें, लोचनमें, भ्रूमें, ऊर्द्ध्वप्रदेशमें और अन्तको उस परब्रह्ममें धारणा करनी चाहिये ॥ ४५ ॥ धारणा यह दशविध कहकर निर्दिष्ट है इन दश प्रकारकी धारणासिद्धिसे ब्रह्मसारूप्यलाभ होता है. हे राजेन्द्र ! योगी पुरुष सिद्धिलाभार्थ अधिक भाषण क्षुधा थकावट और चित्तकी चंचलता ॥ ४६ ॥ दूर करके यत्नपूर्वक योगाभ्यासमें प्रवृत्त हों । अतिशीत और अतिग्रीष्मके समय एवं अति वायुवहनकालमें ॥४७॥ ध्यानतत्पर होकर योगाभ्यास नहीं करना चाहिये ।

आपिबेयुस्तथा वायुं पिबेद्योगी जितश्रमः ॥ प्राङ्नाभ्यां हृदये चाथ तृतीये च तथोरसि ॥ ४४ ॥ कंठे मुखे नासिकाग्रे नेत्रभ्रूमध्यमूर्द्धसु ॥ किञ्च तस्मात्परस्मिंश्च धारणा परमा स्मृता ॥ ४५ ॥ दशैता धारणाः प्राप्य प्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम् ॥ नाध्मातः क्षुधितः श्रान्तो न च व्याकुलचेतनः ॥ ४६ ॥ युञ्जीत योगं राजेन्द्र योगी सिद्ध्यर्थमादृतः ॥ नातिशीते न चोष्णे वै न द्वन्द्वे नानिलात्मके ॥ ४७ ॥ कालेष्वेतेषु युञ्जीत न योगं ध्यानतत्परः ॥ स शब्दाग्निजलाभ्याशे जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ॥ ४८ ॥ शुष्कपर्णचये नद्यां श्मशाने ससरीसृपे ॥ सभये कूपतीरे वा चैत्यवल्मीकसंचये ॥ ४९ ॥ देशेष्वेतेषु तत्त्वज्ञो योगाभ्यासं विवर्जयेत् ॥ सत्त्वस्यानुपपत्तौ च देशकालं विवर्जयेत् ॥ ५० ॥ नासतो दर्शनं योगे तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ दोषानेताननादृत्य मूढत्वाद्यो युनक्ति वै ॥ ५१ ॥

सशब्द स्थानमें अग्नि और जलके निकट पुरानी गोशालामें, चौराहेमें ॥ ४८ ॥ सूखे पत्तोंसे पूर्ण स्थानमें, नदीतटमें श्मशानमें सर्पादिसे युक्त स्थानमें कूपतीरमें, चैत्यवृक्षमें और वल्मीकसमूहके टीलेमें ॥ ४९ ॥ तत्त्ववित् पुरुष योगाभ्यास न करे. सात्त्विकभावकी भलीभांति सिद्धि न होनेपर अर्थात् जिस स्थानमें सात्त्विक वस्तु प्राप्त न हो वह देशकालभी परित्याग करना चाहिये ॥५०॥ और योगमें असत् बातोंका देखना भी उचित नहीं है अतएव वह वर्जन करे । जो पुरुष मूर्खताके वश होकर इन सब स्थानोंका विचार न करके योगाभ्यासका अनुष्ठान करता है ॥ ५१ ॥

---

१ मनकी धारणा करना अर्थात् स्वपदमें रखकर आत्मदर्शन करना ।

वह सब दोष उत्पन्न होकर उसके कार्यमें विघ्न साधन करते हैं. सो कहताहूं सुनो—उस योगीको बहरापन, जडता, गूंगापन, स्मृतिलोप, अन्धता ॥ ५२ ॥ और तत्क्षण ज्वर होता है प्रमादवश इन सब दोषोंका आविर्भाव होनेपर उनकी शान्तिके लिये जिस प्रकारसे चिकित्सा करे ॥ ५३ ॥ वहभी सुनो भली भांति उष्ण कियाहुआ यवागू स्निग्ध करके भक्षणपूर्वक उदरमें धारण करै ॥ ५४ ॥ वात गुल्म और अफरा तथा उदररोग शान्त होनेके लिये यवागू अवश्य भक्षण करै. इसका भक्षण करनेसे वायु और वायुग्रंथिरोगभी नष्ट होता है ॥ ५५॥ और कंप होनेपर मनमें बडे बोझका पर्वत धारण करै अर्थात् मनके चंचल होनेपर प्रलयकालीन स्थिर महाशैलकी धारणा करै वाक्शक्ति विलुप्त होनेसे वाक्यधारणा करनी चाहिये और श्रवणशक्तिके नष्ट होने-

विघ्नाय तस्य वै दोषा जायन्ते तन्निबोध मे ॥ बाधिर्यं जडता लोपः स्मृतेर्मूकत्वमन्धता ॥ ५२ ॥ ज्वरश्च जायते सद्यस्तत्तदज्ञानयोगिनः ॥ प्रमादाद्योगिनो दोषा यद्येते स्युश्चिकित्सितम् ॥ ५३ ॥ तेषां नाशाय कर्त्तव्यं योगिनां तन्निबोध मे ॥ स्निग्धां यवागूमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रैव धारयेत् ॥ ५४ ॥ वातगुल्मप्रशान्त्यर्थमुदावर्त्ते तथोदरे ॥ यवागूं वापि पवनं वायुग्रन्थिं प्रतिक्षिपेत् ॥ ५५ ॥ तद्वत्कंपे महाशैलं स्थिरं मनसि धारयेत् ॥ विघाते वचसो वाचं बाधिर्ये श्रवणेंद्रियम् ॥ ५६ ॥ यथैवाम्रफलं ध्यायेत्तृष्णार्त्तो रसनेन्द्रियम् ॥ यस्मिन्यस्मिन्रुजा देहे तस्मिंस्तदुपकारिणीम् ॥ ५७ ॥ धारयेद्धारणामुष्णे शीतां शीते च दाहिनीम् ॥ कीलं शिरसि संस्थाप्य काष्ठं काष्ठेन ताडयेत् ॥ ५८ ॥ लुप्तस्मृतेः स्मृतिः सद्यो योगिनस्तेन जायते ॥ द्यावापृथिव्यौ वाय्वग्नी व्यापिनावपि धारयेत् ॥ ५९ ॥

पर ॥ ५६ ॥ तृष्णार्त्त पुरुष जिस प्रकार रसनेन्द्रियमें लाभ होनेकी चिन्ता करता है ऐसेही श्रवणेन्द्रियकी धारणा करता रहै. इस प्रकार जिस जिस देहमें व्याधि उपस्थित हो उस उस देहमेंही तदुपकारिणी धारणा धारण करै ॥ ५७ ॥ उष्णमें शीतल धारणा और शीतलमें उष्ण धारणाका अनुगामी होना चाहिये शिरमें सूक्ष्म कीलकका स्थापनपूर्वक काष्ठद्वारा उस कीलककाष्ठको ठोकनेसे ॥ ५८ ॥ लुप्तस्मृति रोगीकी तत्काल स्मृतिशक्तिका फिर उदय होता है अथवा स्मृतिशक्ति विलुप्त होनेसे आकाश, पृथ्वी, वायु और अग्निकी धारणा करै ॥ ५९ ॥

अमानुष सत्त्वके जनित विघ्नसमूहमें चिकित्सा इस प्रकार निर्दिष्ट है योगियोंके हृदयमें अमानुष सत्त्वके प्रविष्ट होनेपर वह ॥ ६० ॥ वायु और अग्निकी धारणासे उसको दग्ध करै. हे नृपते ! इस प्रकार सर्वान्तःकरणसे शरीरकी रक्षाविधान करना योगवित् पुरुषको उचित है ॥ ६१ ॥ क्योंकि शरीरही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्गके साधनका मूल है प्रवृत्ति स्वरूप वर्णन और विस्मय इन दो कारणोंसे ही योगीका विज्ञान नष्ट हो जाता है. इसी कारण प्रवृत्ति गुप्त रक्खै ॥ ६२ ॥ अचंचलता, आरोग्यता, अनिष्ठुरता, देहमें सुगंधिका संचार, मूत्र और पुरीषकी अल्पता, कान्ति, प्रसाद और मधुर स्वर,

अमानुषात्सत्त्वजाद्वा बाधास्त्विवाति चिकित्सितम् ॥ अमानुषं सत्त्वमन्तर्योगिनं प्रविशेद्यदि ॥ ६० ॥ वाय्वग्निधारणेनैनं देहसंस्थं विनिर्दहेत् ॥ एवं सर्वात्मना रक्षा कार्या योगविदा नृप ॥ ६१ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ॥ प्रवृत्तिलक्षणाख्यानाद्योगिनो विस्मयात्तथा ॥ विज्ञानं विलयं याति तस्माद्गोप्याः प्रवृत्तयः ॥ ६२ ॥ अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वं गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पम् ॥ कान्तिः प्रसादः स्वरसौम्यता च योगप्रवृत्तेः प्रथमं हि चिह्नम् ॥ ६३ ॥ अनुरागं जनो याति परोक्षे गुणकीर्त्तनम् ॥ न बिभ्यति च सत्त्वानि सिद्धेर्लक्षणमुत्तमम् ॥ ६४॥ शीतोष्णादिभिरत्युग्रैर्यस्य बाधा न विद्यते ॥ न भीतिमेति चान्येभ्यस्तस्य सिद्धिरुपस्थिता ॥६५॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे जडोपाख्याने योगनिरूपणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ उपसर्गाः प्रवर्तन्ते दृष्टे ह्यात्मनि योगिनः ॥ ये तांस्ते संप्रवक्ष्यामि समासेन निबोध मे ॥ १ ॥

यह सब योगप्रवृत्तिके प्रथम चिह्न हैं ॥ ६३ ॥ जिस अवस्थामें मनुष्य अनुरागी होकर परोक्षमें अर्थात् पीछे गुणोंका कीर्त्तन करैं और किसी जीवको भय प्राप्त न हो, उसी समय सिद्धिका उत्तम लक्षण समझना चाहिये ॥ ६४ ॥ अत्यन्त उग्र शीत और उष्णादि जिसको बाधा देनेमें समर्थ न हों, तथा दूसरेसे जिसको भयका संचार न हो, उसीको सिद्धि लाभ हुई जाने ॥ ६५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६॥ दत्तात्रेयने कहा—आत्माका दर्शन होनेपर योगियोंको जो सब उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, वह संक्षेपसे कहताहूं, सुनो ॥ १ ॥

उस समयमें नाना प्रकारकी काम्य क्रिया और मानसोचित नाना भाँतिके भोग भोगनेकी इच्छा होती है। स्त्री, दान, फल, विद्या, माया, कूप्य (कूपका जल), धन, स्वर्ग ॥ २॥ अमरत्व, देवेन्द्रत्व, नाना प्रकार रसायन, वायु भरे (स्थानमें कूदना), यज्ञ, जल और अग्निमें प्रवेश ॥३॥ समस्त श्राद्ध और दानसमूहका फल, तथा नियम इत्यादि विषयमें योगीकी कामना उदय होती है। उस काल वह उपवास, पूर्त्तादि कर्म, देवतार्चन ॥४॥ जब जब उस उस कर्मसे संलग्न होनेकी वांछा करे मनके इस प्रकार होनेपर योगी तब २ यत्न सहित उसको उस उस विषयसे निवृत्त करे ॥ ५ ॥ इस प्रकारसे निवृत्त करके मनको ब्रह्मसाक्षी कर सकनेसेही उपसर्गसे मुक्तिलाभ होजाताहै ॥ ६॥ इन समस्त उपसर्गके जीतनेपर फिर सात्त्विक राजसिक और तामसिक भेदसे

काम्याः क्रियास्तथा कामान्मानुषानभिवाञ्छति ॥ स्त्रियो दानफलं विद्यां मायां कुप्यं धनं दिवम् ॥ २ ॥ देवत्वममरेशत्वं रसायनवयः-क्रियाम् ॥ मरुत्प्रपतनं यज्ञं जलाग्न्यावेशनं तथा ॥ ३ ॥ श्राद्धानां सर्वदानानां फलानि नियमांस्तथा ॥ तथोपवासात्पूर्त्ताच्च देवताभ्यर्चनादपि ॥ ४ ॥ तेभ्यस्तेभ्यश्च कर्मभ्य उपसृष्टोऽभिवाञ्छति ॥ चित्तमित्थं वर्तमानं यत्नाद्योगी निवर्तयेत् ॥ ५ ॥ ब्रह्मसङ्गि मनः कुर्वन्नुपसर्गात्प्रमुच्यते ॥ उपसर्गैर्जितैरेभिरुपसर्गास्ततः पुनः ॥ ६ ॥ योगिनः संप्रवर्तन्ते सात्त्वराजसतामसाः ॥ प्रातिभः श्रावणो दैवो भ्रमावर्त्तौ तथापरौ ॥ ७ ॥ पञ्चैते योगिनां योगविघ्नाय कटुकोदयाः ॥ वेदार्थाः काव्यशास्त्रार्था विद्याशिल्पान्यशेषतः ॥ ८ ॥ प्रतिभान्ति यदस्येति प्रातिभः स तु योगिनः ॥ शब्दार्थानखिलान्वेत्ति शब्दं गृह्णाति चैव यत् ॥ ९॥ योजनानां सहस्रेभ्यः श्रावणः सोऽभिधीयते ॥ समन्ताद्वीक्षते चाष्टौ स यदा देवयोनयः ॥ १० ॥

अपरापर विघ्न आनकर योगीको आक्रमण करते हैं. उनमें प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्त्त ॥ ७ ॥ यह पांच प्रकारके उपसर्ग योगमें विघ्नसाधन करनेके लिये भयंकर रूपसे आविर्भूत होते हैं जिसके द्वारा निखिल वेदार्थ समस्त काव्य शास्त्रार्थ यावतीय विद्या और शिल्प ॥ ८ ॥ योगीके चित्तमें प्रतिभात हो उसकोही प्रातिभ कहते हैं जिसके द्वारा सम्पूर्ण शब्दका अर्थ विदित होजाय ॥ ९ ॥ और सहस्र सहस्र योजन दूरका शब्द भी श्रवणगोचर हो वही श्रावण कहा गया है। जिसके द्वारा मूर्त्तिमान् देवताके समान योगी उन्मत्तकी सदृश आठों दिशाओंका दर्शन करता है ॥ १० ॥

पंडितगण उसीको दैव उपसर्ग कहते हैं जिसके द्वारा योगीका चित्त सम्पूर्ण आचारभ्रंशके कारण और मनके दोषोंके कारण निरालम्बभावसे भ्रमण करता है ॥ ११ ॥ उसीको भ्रम कहते हैं जिसके प्रभावसे ज्ञानावर्त्त जलावर्त्तके समान आकुल होकर ॥ १२ ॥ चित्तको विनाश करता है उसीको आवर्त्त उपसर्ग कहते हैं. योगिगण इन समस्त उपसर्गोंके प्रभावद्वारा सब देवयोनि ॥ १३ ॥ और योगसे भ्रष्ट होकर वारंवार संसारचक्रमें लौटते हैं इसी कारण योगी मनोमय मनके बनाये श्वेत कम्बलसे आवृत होकर ॥ १४ ॥ (शरीरमंडलमें गुरु ज्ञानको अवलोकन करै, कारण कि बुद्धिमान्‌को ज्ञानपूर्वक योग करना जानना चाहिये ॥ १५ ॥) मनमें एक मात्र परब्रह्मकीही चिन्ता कर उनकाही ध्यान करना योगीको कर्त्तव्य है. योगी पुरुष

उपसर्गं तमप्याहुर्दैवमुन्मत्तवद्बुधाः ॥ भ्राम्यते यन्निरालम्बं मनोदोषेण योगिनः ॥ ११ ॥ समस्ताचारविभ्रंशाद्भ्रमः स परिकीर्तितः ॥ आवर्त इव तोयस्य ज्ञानावर्त्तो यदाकुलः ॥१२॥ नाशयेच्चित्तमावर्त उपसर्गः स उच्यते ॥ एतैर्नाशितयोगास्तु सकला देवयोनयः ॥१३॥ उपसर्गैर्महाघोरैरावर्तन्ते पुनः पुनः ॥ प्रावृत्य कम्बलं शुक्लं योगी तस्मान्मनोमयम् ॥ १४ ॥ (शरीरमंडले दृष्ट्वा गुरुज्ञानं ततो हि यत् ॥ ज्ञानपूर्वोपि यो योगो ज्ञातव्यो वै विपश्चिता) ॥ १५ ॥ चिन्तयेत्परमं ब्रह्म कृत्वा तत्प्रवणं मनः ॥ योगयुक्तः सदा योगी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥ १६ ॥ सूक्ष्मास्तु धारणाः सप्त भूराद्या मूर्ध्नि धारयेत् ॥ धरित्रीं धारयेद्योगी तत्सौक्ष्म्यं प्रतिपद्यते ॥ १७ ॥ आत्मानं मन्यते चोर्वीं तद्गंधं च जहाति सः ॥ तथैवाप्सु रसं सूक्ष्मं तद्वद्रूपं च तेजसि ॥ १८ ॥ स्पर्शं वायौ तथा तद्वद्बिभ्रतस्तस्य धारणाम् ॥ व्योम्नः सूक्ष्मां प्रवृत्तिं च शब्दं तद्वज्जहाति सः ॥ १९ ॥ मनसा सर्वभूतानां मनस्याविशते यदा ॥ मानसीं धारणां बिभ्रन्मनः सूक्ष्मं च जायते ॥२०॥

निरंतर जितेन्द्रिय, लघुभोजी और योगयुक्त होकर ॥ १६ ॥ भूरादि सात प्रकारकी सूक्ष्म धारणा मस्तकमें धारण करै. वह धरित्रीको धारण करै तो उसको उसका सूक्ष्म विदित होगा ॥१७॥ वह आत्माकी इस प्रकार चिन्ता करनेसे धरित्रीका बंधन छेदन करनेमें समर्थ होगा. इसी प्रकारसे जलमें सूक्ष्म रस, तेजमें रूप ॥ १८ ॥ वायुमें स्पर्श और आकाशमें सूक्ष्म प्रवृत्ति और शब्दधारणपूर्वक परित्याग करना चाहिये ॥१९॥ जब मनद्वारा समस्त भूतकी मनमें प्रविष्ट होकर मानसी धारणा करी जाय, तबही सूक्ष्म मन उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

इस प्रकारसे योगी पुरुष समस्त भूतकी बुद्धिमें प्रविष्ट होकर अनुत्तम सूक्ष्मबुद्धिस्वरूपलाभ करके उसको परित्याग करता है ॥ २१ ॥ हे अलर्क ! जो योगी इन सात प्रकारके सूक्ष्म भावको भलीभांति जानकर परित्याग करता है, उसको फिर जन्मग्रहण करना नहीं पडता ॥ २२ ॥ आत्मवान् पुरुष इन सात प्रकारकी धारणाका सूक्ष्मत्व वारंवार दृष्टिगोचर करके वारंवार सिद्धिविसर्जनपूर्वक परमगतिको प्राप्त हो ॥ २३ ॥ हे महीपते ! वह जिस जिस भूतमें अनुरागी होता है, उस उस भूतमेंही आसक्तिमान् होकर विनाशको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ अतएव जो देही परस्परसंसक्त भूतगणको जानकर परित्याग

तद्वद्बुद्धिमशेषाणां सत्त्वानामेत्य योगवित् ॥ परित्यजति सम्प्राप्य बुद्धिसौक्ष्म्यमनुत्तमम् ॥२१॥ परित्यजति सूक्ष्माणि सप्त त्वेतानि योग-वित् ॥ सम्यग्विज्ञाय योऽलर्क तस्यावृत्तिर्न विद्यते ॥ २२ ॥ एतासां धारणानां तु सप्तानां सौक्ष्म्यमात्मवान् ॥ दृष्ट्वा दृष्ट्वा ततः सिद्धिं त्यक्त्वा त्यक्त्वा परां व्रजेत् ॥ २३ ॥ यस्मिन्यस्मिंश्च कुरुते भूते रागं महीपते ॥ तस्मिंस्तस्मिन्समासक्तिं संप्राप्य स विनश्यति ॥ २४ ॥ तस्माद्विदित्वा सूक्ष्माणि संसक्तानि परस्परम् ॥ परित्यजति यो देही स परं प्राप्नुयात्पदम् ॥ २५ ॥ एतान्येव तु संधाय सप्त सूक्ष्माणि पार्थिव ॥ भूतादीनां विनाशोऽत्र सद्भावज्ञस्य मुक्तये ॥ २६ ॥ गन्धादिषु समासक्तिं सम्प्राप्य स विनश्यति ॥ पुन-रावर्त्तते भूप स ब्रह्मापरमानुषम् ॥ २७ ॥ सप्तैता धारणा योगी समतीत्य यदिच्छति ॥ तस्मिंस्तस्मिँल्लयं सूक्ष्मे भूते याति नरेश्वर ॥ २८ ॥ देवानामसुराणां वा गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ देहेषु लयमायाति संगं नाप्नोति च क्वचित् ॥ २९ ॥

करता है, वही देही परमपदलाभ करता है ॥ २५ ॥ हे पार्थिव ! यह सप्तविध सूक्ष्म संधान करके भूतादिमें विगतराग होसकनेसेही सद्भावज्ञ पुरुष मुक्ति-लाभ करता है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! गंधादिमें आसक्ति प्राप्त होनेसेही नष्ट होना पडता है और फिर उसको संसारचक्रमें लौटना होता है ॥ २७ ॥ हे नरेश्वर ! योगी पुरुष इन सात प्रकारकी धारणाको अतिक्रम करके गमन करनेकी इच्छा करनेपर उस उस सूक्ष्म भूतमें लयको प्राप्त होताहै और देवता, दानव, गंधर्व, पन्नग और राक्षस इनके शरीरमें विलीन होजाता है, किन्तु किसीमें आसक्त नहीं होता ॥ २८ ॥ २९ ॥

वह अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, हे नरव्याघ्र ! ॥ ३० ॥ और कामावसायित्व इन अष्टविध निर्वाणप्रद ऐश्वरिक गुणोंका अधिकारी होता है ॥ ३१ ॥ जिसके द्वारा सूक्ष्मसेभी सूक्ष्मतर होसके उसका नाम अणिमा है. जिसके द्वारा क्षिप्रकारिता अर्थात् सब कार्योंमें शीघ्रता उत्पन्न हो उसको लघिमा कहते हैं. जिसके द्वारा सबका पूजनीय होजाय उसका नाम महिमा है. जिसके द्वारा समस्त अभिलाषित प्राप्त हो उसको प्राप्ति कहते हैं ॥ ३२ ॥ जिसके द्वारा व्यापित्वशक्ति उत्पन्न हो, उसका नाम प्राकाम्य है. जिसके प्रभावसे सबका ईश्वर हो जाय उसको ईशित्व कहते हैं और जिसके प्रभावसे सब वशीभूत हो उसका नाम वशित्व है. यह वशित्वही योगिजनोंका सातवां गुण कहागया है ॥ ३३ ॥ जिसके द्वारा अपनी इच्छा-

अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च ॥ प्राकाम्यं च तथेशित्वं वशित्वं च तथापरम् ॥ ३० ॥ यत्र कामावसायित्वं गुणानेतांस्त-थैश्वरान् ॥ प्राप्नोत्यष्टौ नरव्याघ्र परं निर्वाणसूचकान् ॥ ३१ ॥ सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽणीयाञ्छीघ्रत्वं लघिमा गुणः ॥ महिमाऽशेषपूज्य-त्वात्प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्य यत् ॥ ३२ ॥ प्राकाम्यमस्य व्यापित्वादीशित्वं चेश्वरो यतः ॥ वशित्वाद्वशिमा नाम योगिनः सप्तमो गुणः ॥ ३३ ॥ यत्रेच्छास्थानमप्युक्तं यत्र कामावसायिता ॥ ऐश्वर्यकारणैरेभिर्योगिनः प्रोक्तमष्टधा ॥ ३४ ॥ मुक्तिसंसूचकं भूप परं निर्वाणमात्मनः ॥ ततो न जायते नैव वर्द्धते न विनश्यति ॥ ३५ ॥ नापि क्षयमवाप्नोति परिणामं न गच्छति ॥ छेदं क्लेदं तथा दाहं शोषं भूरादितो न च ॥ ३६ ॥

नुसार जहां तहां गमन और इच्छानुसार सब कार्य साधन होसके उसकाही नाम कामावसायिता है, इन आठ प्रकार गुणोंके प्रभावसे ईश्वरके समस्त कार्य करनेमें समर्थ होता है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! यह सब गुण मुक्तिकी सूचना कर देते हैं अर्थात् इन सब गुणोंके प्रकाशित होनेपरही जानना चाहिये कि, योगी शीघ्रही मुक्तिलाभ करेगा, इसके निर्वाणलाभ होनेका समय उपस्थित है, अब उसको जन्मग्रहण करना नहीं पडेगा वृद्धिको प्राप्त होना नहीं पडेगा, तथा विनष्ट होनाभी नहीं पडेगा ॥ ३५ ॥ क्षयको प्राप्त नहीं होना पडेगा और उसका कोई परिणामभी नहीं होगा उसको फिर कभी भूरादिभू-तवर्गसे छिन्न भिन्न, क्लिन्न (गीला) दग्ध वा शुष्कभी होना नहीं पडेगा ॥ ३६ ॥

शब्दादि सब उसको अपहृत करनेमें समर्थ नहीं होंगे, शब्दादि विषयके संग उसका फिर कोई संबंध नहीं रहता और शब्दादिका भोक्ता भी होना नहीं पडता और उनके संग उसका फिर कोई स्पर्श नहीं रहता ॥ ३७ ॥ हे महीपते ! जिस प्रकार एक स्वर्णखंडको अपद्रव्यकी समान बाहर दग्ध करके निर्दोष करनेपर अवर एक स्वर्णखंडके सहित उसका संयोग होता है ॥ ३८ ॥ किसी प्रकार उसका प्रभेद दिखाई नहीं देता इसी प्रकार योग अग्निद्वारा रागद्वेषादिरूप दोषोंको भस्म करनेसे योगीभी ब्रह्मके सहित सम्यक् प्रकारसे मिलित होते हैं ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार अग्निमें अग्नि डालीजाय तो वह तुल्यताको प्राप्त होती है एवं तदात्मा और तन्मय होजातीहै और उसका प्रभेद स्थिर नहीं किया जाता ॥ ४० ॥ इसी प्रकार दोषोंके दग्ध होनेपर

भूतवर्गादवाप्नोति शब्दाद्यैर्ह्रियते न च ॥ न चास्य सन्ति शब्दाद्यास्तद्भोक्ता तैर्न युज्यते ॥ ३७ ॥ यथा हि कानकं खण्डमपद्रव्यवदग्निना ॥ दग्धदोषं द्वितीयेन खण्डेनैक्यं व्रजेन्नृप ॥ ३८ ॥ न विशेषमवाप्नोति तद्वद्योगाग्निना यतिः ॥ निर्दग्धदोषस्तेनैक्यं प्रयाति ब्रह्मणा सह ॥ ३९ ॥ यथाग्निरग्नौ संक्षिप्तः समानत्वमनुव्रजेत् ॥ तदाख्यस्तन्मयो भूतो न गृह्येत विशेषतः ॥ ४० ॥ परेण ब्रह्मणा तद्वत्प्राप्यैक्यं दग्धकिल्बिषः ॥ योगी याति पृथग्भावं न कदाचिन्महीपते ॥ ४१ ॥ यथा जलं जलेनैक्यं निक्षिप्तमुपगच्छति ॥ तथात्मा साम्यमभ्येति योगिनः परमात्मनि ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे योगिसिद्धिर्नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥ अलर्क उवाच ॥ भगवन्योगिनश्चर्य्यां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ब्रह्मवर्त्मन्यनुसरन्यथा योगी न सीदति ॥ १ ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ मानापमानौ यावेतौ प्रत्युद्वेगकरौ नृणाम् ॥ तावेव विपरीतार्थौ योगिनः सिद्धिकारकौ ॥ २ ॥

जब योगी ब्रह्मके संग एकवारही संयुक्त होते हैं, तब फिर उनको कभी पृथग्भाव भोगना नहीं पडता ॥ ४१ ॥ जल जिस प्रकार जलमें गिरकर समानभाव धारण करताहै, योगी पुरुषोंका आत्मा भी वैसेही परमात्मामें मिलित होकर साम्यता अर्थात् समानताको प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ अलर्कने कहा—हे भगवन् ! योगियोंका आचार और जिस प्रकार ब्रह्मपथके अनुगामी होनेसे वह नाशको प्राप्त नहीं होते । वह विषय यथार्थ सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ दत्तात्रेयने कहा । मान और अपमान यह दोनोंही सबकी प्रीति और उद्वेगके कारण हैं,

यदि यह दोनों योगीके निकट विपरीतार्थ हों अर्थात् अपमानको मान और मानको अपमान समझै तो सिद्धिप्रद होते हैं ॥ २ ॥ मान और अपमान यही दो अमृत और विष कहेगये हैं, तिनमें अपमान अमृत और मानही विषम विष है योगी भलीभाँति देखकर वैर रक्खैं ॥ ३॥ वस्त्रसे छानकर जलपान करैं, सदा सत्यसे पवित्रहुए वचन कहैं और बुद्धिपूर्वक भलीभांति विचार कर चिन्ता करैं ॥ ४ ॥ योगवित् पुरुष आतिथ्य, श्राद्ध, यज्ञ, यात्रा और महोत्सवमें कभी कहीं न जाय और सिद्धिके लिये महाजनोंके निकट जानाभी उचित नहीं है ॥५॥ जिस समय गृहस्थका घर अग्निविहीन और धूमरहित हो, जब गृहस्थ मनुष्य भोजन करके निश्चिन्त हो, योगी पुरुष नित्य उसी समय भिक्षाके लिये जाय ॥६॥ मनुष्य जिससे तिरस्कार वा अपमान करें, ऐसे

मानापमानौ यावेतौ तावेवाहुर्विषामृते ॥ अपमानोऽमृतं तत्र मानस्तु विषमं विषम् ॥ ३ ॥ चक्षुःपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाणीं बुद्धिपूतं च चिन्तयेत् ॥ ४ ॥ आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषु देवयात्रोत्सवेषु च ॥ महाजनेषु सिद्ध्यर्थं न गच्छेद्योगवित्क्वचित् ॥ ५ ॥ व्यस्ते विधूमे व्यङ्गारे सर्वस्मिन्भुक्तवज्जने ॥ अटेत योगविद्भैक्ष्यं न तु तेष्वेव नित्यशः ॥ ६ ॥ यथैवमवमन्यंते जनाः परिभवन्ति च ॥ तथा युक्तश्चरेद्योगी सतां वर्त्म न दूषयन् ॥७॥ भैक्ष्यं चरेद्गृहस्थेषु यायावरगृहेषु च ॥ श्रेष्ठा तु प्रथमा चेति वृत्तिरस्योपादिश्यते ॥ ८ ॥ अथ नित्यं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्यतिः ॥ श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु ॥ ९ ॥ अत ऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टापतितेषु च ॥ भैक्ष्यचर्य्या विवर्णेषु जघन्या वृत्तिरिष्यते ॥ १० ॥ भैक्ष्यं यवागूं तक्रं वा पयो यावकमेव वा ॥ फलं मूलं प्रियंगुं वा कणपिण्याकसक्तवः ॥ ११ ॥

कार्यका अनुष्ठानपूर्वक साधुजनोंकी पदवी किसी प्रकार दूषित न करके योगीको भ्रमण करना चाहिये ॥ ७ ॥ गृही पुरुषोंके घरसे और यायावर पुरुषोंके घरसे भिक्षा करनी उचित है, किन्तु प्रथमावृत्तिही प्रधान कही गई है ॥ ८ ॥ जो गृही लज्जावान्, श्रद्धावान्, चतुर, श्रोत्रिय और महात्मा हैं, तथा जो गृहस्थ दूषित और पतित नहीं हैं, उनके घरसेही यतिगण भिक्षा करैं, विवर्ण पुरुषोंके यहांसे भिक्षा करनेपर उसको जघन्यवृत्ति कहते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ यवागू, मट्ठा, दुग्ध, यावक, कुलथी, फल, मूल, प्रियंगु, कण, पिण्याक और सत्तू, इन सब वस्तुओंकी योगी पुरुषोंको भिक्षा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

यह सब वस्तु उनका कल्याणकर और सिद्धिदायक आहार कहकर निर्दिष्ट हैं अतएव परम सावधान और भक्तियुक्त होकर यह सब द्रव्य उपभोग करने चाहिये ॥ १२ ॥ योगी पुरुष भोजनके पूर्वमें मौनावलम्बनसाहित प्रथमतः एकवार जलपान करके सावधान हो " प्राणाय स्वाहा " इस वाक्यसे आहार करैं। यही योगियोंकी प्रथमा आहुति कही गई है ॥ १३ ॥ फिर क्रमानुसार " अपानाय " कहकर दूसरी आहुति, " समानाय " कहकर तीसरी " उदानाय " कहकर चौथी और " व्यानाय " कहकर पांचवीं आहुति प्रदान करैं ॥ १४ ॥ फिर प्राणायामद्वारा पृथक् करते हुए अपनी इच्छानुसार शेष भोजन पूर्ण करै, तदनन्तर फिर एकवार जलपान करके आचमनके पीछे हृदयको स्पर्श करना चाहिये ॥ १५ ॥ अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ

इत्येते च शुभाहारा योगिनां सिद्धिकारकाः ॥ तत्प्रयुंज्यान्मुनिर्भक्त्या परमेण समाधिना ॥ १२ ॥ अपः पूर्वं सकृत्प्राश्य तूष्णीं भूत्वा समाहितः ॥ प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुतिः स्मृता ॥ १३ ॥ अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा ॥ उदानाय चतुर्थी स्याद्व्यानायेति च पंचमी ॥ १४ ॥ प्राणायामैः पृथक्कृत्वा शेषं भुञ्जीत कामतः ॥ अपः पुनः सकृत्प्राश्य आचम्य हृदयं स्पृशेत् ॥ १५ ॥ अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च त्यागोऽलोभस्तथैव च ॥ व्रतानि पंच भिक्षूणामहिंसा परमाणि वै ॥ १६ ॥ अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् ॥ नित्यस्वाध्याय इत्येते नियमाः परिकीर्तिताः ॥ १७ ॥ सारभूतमुपासीत ज्ञानं यत्कार्यसाधकम् ॥ ज्ञानानां बहुता येयं योगविघ्नकरी हि सा ॥ १८ ॥ इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत् ॥ अपि कल्पसहस्रेषु नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥

और अहिंसा, यह पांच भिक्षुकके परम व्रत हैं ॥ १६ ॥ और क्रोधशून्यता, गुरुशुश्रूषा, शौच, आहारकी लघुता और नित्य वेदाध्ययन यह पांच उनके नियम कहे गये हैं ॥१७॥ सारस्वरूप कार्यसिद्धि करनेवाले ज्ञानकी आलोचना करनी ही उचित है, क्यों कि, अनेक प्रकारकी ज्ञानविषयक चर्चा करनेसे योगमें विघ्न होता है ॥ १८ ॥ जो योगी "यह ज्ञेय है यह जानना उचित है" कहकर तृषित चित्तसे भ्रमण करते हैं सहस्र कल्पमें भी उनको ज्ञेय पदार्थ लाभ होनेकी संभावना नहीं है ॥ १९ ॥

संगपरित्यागपूर्वक जितक्रोध, लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर बुद्धियोग द्वारा विधान करके चित्तको ध्यानमें निमग्न करैं ॥ २० ॥ निर्जन प्रदेश गुहा और वनमें जाकर नित्ययुक्त हो सर्वदा सम्यक् विधानसे ध्यानमें निविष्ट होना चाहिये ॥ २१ ॥ वाग्दंड कर्मदण्ड और मनोदण्ड, यह तीन जिसके वशीभूत हैं उसीको त्रिदण्डी और यह महायति कहाजाता हैं ॥ २२ ॥ जो इस सदसदात्मक गुणागुणमय दृश्यमान जगत्‌को आत्ममय विचारते हैं हे राजन् ! कौन पुरुष उनका प्रिय और कौन पुरुष उनका अप्रिय होता है ? ॥ २३ ॥ जो विशुद्धबुद्धियुक्त, क्या लोहा क्या कंचन दोनोंमेंही जिसका समान ज्ञान है, और जो पुरुष समस्त भूतमें समाहित होकर सर्वाधार शाश्वत अव्यय ब्रह्मकोही सर्वत्र विराजित देखता है, उसको फिर पुनर्जन्म ग्रहण करना नहीं

त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारी जितेन्द्रियः ॥ विधाय बुद्ध्या द्वाराणि मनो ध्याने निवेशयेत् ॥ २० ॥ शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वनेषु च ॥ नित्ययुक्तः सदा योगी ध्यानं सम्यगुपक्रमेत् ॥ २१ ॥ वाग्दण्डः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः ॥ यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी महायतिः ॥ २२ ॥ सर्वमात्ममयं यस्य सदसज्जगदीदृशम् ॥ गुणागुणमयं तस्य कः प्रियः को नृपाप्रियः ॥ २३ ॥ विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकाञ्चनः समस्तभूतेषु समः समाहितः ॥ स्थानं परं शाश्वतमव्ययं च यतिर्हि गत्वा न पुनः प्रजायते ॥ २४ ॥ वेदाच्छ्रेष्ठाः सर्वयज्ञक्रियाश्च यज्ञाज्जाप्यं ज्ञानमार्गश्च जप्यात् ॥ ज्ञानाद्ध्यानं संगरागव्यपेतं तस्मिन्प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः ॥ २५ ॥ समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः ॥ समाप्नुयाद्योगमिमं महात्मा विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः ॥ २६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे योगिचर्याकथनं नाम अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

पडता ॥ २४ ॥ निखिल वेद और सब प्रकारकी यज्ञक्रियाही श्रेष्ठ हैं । उस यज्ञकी अपेक्षा जप, जपकी अपेक्षा ज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्गकी अपेक्षा निःसंग रागविहीन ध्यानही श्रेष्ठ है, इस ध्यानयोगमें प्राप्त होनेसे शाश्वत ब्रह्मकी उपलब्धि होती है ॥ २५ ॥ जो महात्मा सावधान ब्रह्मपरायण, प्रमादशून्य, पवित्र ऐकान्तिक अनुरागी और जियतेन्द्रिय होकर यह योग लाभ करते हैं, आत्मामें आत्माका संयोग होकर उनको मुक्तिलाभ होता है ॥ २६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

दत्तात्रेयने कहा--इस प्रकार जो योगी सम्यक् विधानसे योगयुक्त होते हैं, शतशत जन्मान्तरमें भी फिर वह स्वपदसे निवृत्त नहीं होसकते ॥ १ ॥ जो विश्वरूपी, विश्वके ईश्वर और विश्वभावन हैं, विश्वही जिनके पाद हैं, विश्वही जिनकी ग्रीवा और विश्वही जिनका मस्तक है, योगी उन्हीं परमात्माको प्रत्यक्ष करके ॥ २ ॥ उनको प्राप्त करनेके लिये यह पवित्र "ॐ" एकाक्षर जप करैं यही उनका अध्ययन होगा, और इस ओंकारका स्वरूप श्रवण करैं ॥ ३ ॥ अकार उकार और मकार, यह तीन अक्षर ही ओंकारका स्वरूप हैं, और इन्हींको तीन मात्रा जानना चाहिये। यह तीनों मात्रा क्रमानुसार सात्विक राजसिक और तामसिक अर्थात् अकार सात्विक, उकार राजसिक और मकार तामसिक है ॥ ४ ॥ इसके अतिरिक्त ओंकारकी और एक अर्द्ध मात्रा है, वह सात्विकादि तीनों गुणोंसे परे अर्थात् निर्गुण है, ऊर्ध्वमें अवस्थित और योगी पुरुषोंको गम्य है, इसने गान्धारस्वरका आश्रय किया है इसलिये यह

दत्तात्रेय उवाच ॥ एवं यो वर्त्तते योगी सम्यग्योगव्यवस्थितः ॥ न स व्यावर्तितुं शक्यो जन्मान्तरशतैरपि ॥ १ ॥ दृष्ट्वा च परमात्मानं प्रत्यक्षं विश्वरूपिणम् ॥ विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वभावनम् ॥ २ ॥ तत्प्राप्तये महत्पुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत् ॥ तदेवाध्ययनं तस्य स्वरूपं शृण्वतः परम् ॥ ३ ॥ अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम् ॥ एतास्तिस्रः स्मृता मात्राः सात्त्वराजसतामसाः ॥ ४ ॥ निर्गुणा योगिगम्यान्या चार्धमात्रोर्ध्वसंस्थिता ॥ गान्धारीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसंश्रया ॥ ५ ॥ पिपीलिकागतिस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते ॥ यथा प्रयुक्त ओङ्कारः प्रतिनिर्याति मूर्द्धनि ॥ ६ ॥ तथोङ्कारमयो योगी त्वक्षरे त्वक्षरो भवेत् ॥ प्राणो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म वेध्यमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ओमित्येतत्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नयः ॥ ८ ॥

गान्धारी नामसे विख्यात है ॥ ५ ॥ यह मात्रा पिपीलिका (चैंटी) की समान गति और स्पर्शयुक्त है, यह शिरोभागमें दिखाई देती है ओंकार प्रयुक्त होकर जिस प्रकार शिरोदेशके प्रति गमन करती है ॥ ६ ॥ इसी प्रकार योगयुक्त पुरुष अक्षर अक्षरमें ओंकारमय होता है। प्राण धनुःस्वरूप, एवं आत्मा बाण और ब्रह्मको लक्ष्यस्वरूप जानना चाहिये ॥ ७ ॥ प्रमादहीन शरके समान ब्रह्मको संविद्ध करसकनेसे ही तन्मय हो सकता है ओंकार तीनों वेद, तीनों लोक, तीनों अग्नि ॥ ८ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, ऋक्, साम, यजुःस्वरूप है, परमार्थतः ओंकारकी मात्रा साढे तीन हैं ॥९॥ इस ओंकारमें संयुक्त होनेसेही योगी उसमें विलीन होते हैं। अकार भूर्लोक उकार भुवर्लोक ॥१०॥ और सव्यञ्जन मकार स्वर्लोक कहकर निरूपित हुआ है, उसकी पहिली मात्रा व्यक्ता, दूसरी अव्यक्ता ॥११॥ तीसरी चिच्छक्ति और चौथी मात्रा परमपद कही गई है इस प्रकार क्रमानुसार इनको योगभूमि जानना चाहिये ॥ १२ ॥ "ॐ" इस अक्षरका केवल उच्चारण करते ही समस्त सदा सत् असत् गृहीत होते हैं। पहिली मात्रा ह्रस्व, दूसरी मात्रा दीर्घ ॥१३॥ और तीसरी मात्रा प्लुतस्वरूप है। किन्तु अर्द्ध-

विष्णुर्ब्रह्मा हरश्चैव ऋक्सामानि यजूंषि च ॥ मात्राः सार्द्धाश्च तिस्रश्च विज्ञेयाः परमार्थतः ॥ ९ ॥ तत्र युक्तस्तु यो योगी स तल्लयमवाप्नुयात् ॥ अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारश्चोच्यते भुवः ॥ १०॥ सव्यञ्जनो मकारश्च स्वर्लोकः परिकल्प्यते ॥ व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीयाव्यक्तसंज्ञिता ॥ ११ ॥ मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्धमात्रा परं पदम् ॥ अनेनैव क्रमेणैता विज्ञेया योगभूमयः ॥ १२ ॥ ओमित्युच्चारणात्सर्वं गृहीतं सदसद्भवेत् ॥ ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दैर्घ्यसंयुता ॥ १३ ॥ तृतीया च प्लुतार्धाख्या वचसः सा न गोचरा ॥ इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोंकारसंज्ञितम् ॥ १४ ॥ यस्तु वेद नरः सम्यक्तथा ध्यायति वा पुनः ॥ संसारचक्रमुत्सृज्य त्यक्तत्रिविधबन्धनः ॥ १५ ॥ प्राप्नोति ब्रह्मणि लयं परमे परमात्मनि ॥ आक्षीणकर्मबन्धश्च ज्ञात्वा मृत्युमरिष्टतः ॥१६॥ उत्क्रान्तिकाले संस्मृत्य पुनर्योगित्वमृच्छति ॥ तस्मादसिद्धयोगेन सिद्धयोगेन वा पुनः ॥ ज्ञेयान्यरिष्टानि सदा येनोत्क्रांतौ न सीदति ॥ १७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे योगधर्मे ओंकारवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

मात्राका स्वरूप वर्णन करना असाध्य है। इस प्रकारसे जो योगी ओंकारसंज्ञक अक्षरस्वरूप परब्रह्मको ॥१४ ॥ जानकर उनका ध्यान करते हैं वह संसारचक्र उल्लंघनपूर्वक तीनों बंधनको छोडकर ॥१५॥ उस परमात्मा परब्रह्ममें विलीन होते हैं यदि उनके कर्मबंधनका क्षय न हो तो वह अरिष्टद्वारा मृत्युको जानकर ॥१६॥ मरणकालमें जातिस्मृतिलाभपूर्वक फिर योगित्वको प्राप्त होतेहैं। इसी कारण सिद्ध योगी क्या असिद्धयोगी अरिष्टका सबकोही ज्ञान होना चाहिये। अरिष्टके जानलेनेसे मृत्युकालमें दुःखको प्राप्त होना नहीं पडता ॥१७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

दत्तात्रेयने कहा—हे महाराज ! अब तुम्हारे निकट समस्त अरिष्ट कहता हूं सुनो । योगी पुरुष इन सबको देखकर अपनी मृत्यु जाने ॥ १ ॥ जो पुरुष देवमार्ग ध्रुव शुक्र सोम अपनी छाया और अरुन्धती इन सबको नहीं देखसकता वह संवत्सरके पीछे ही मृत्युमुखमें गिरता है ॥ २ ॥ जो पुरुष सूर्यके बिम्बको रश्मिविहीन और अग्निको अंशुमान् देखे ग्यारह महीनेसे अधिक उसको जीवन धारण करना नहीं पडता ॥ ३ ॥ स्वप्नमें मूत्र, पुरीष और वमन इन सबमें सुवर्ण वा रजतका दर्शन करनेसे वह पुरुष केवल दश महीने प्राणधारण करके कालग्रासमें गिरता है ॥४॥ जो पुरुष प्रेत और पिशाचादि, गंधर्वनगर और स्वर्णवर्ण वृक्ष देखताहै, उसको केवल नौ महीने जीवित रहना पडता है ॥५॥ जो पुरुष सहसा स्थूल होकर कृश और फिर कृश होकर अक-

दत्तात्रेय उवाच ॥ अरिष्टानि महाराज शृणु वक्ष्यामि तानि ते ॥ येषामालोकनान्मृत्युं निजं जानाति योगवित् ॥१॥ देवमार्गं ध्रुवं शुक्रं सोमच्छायामरुन्धतीम् ॥ यो न पश्येन्न जीवेत्स नरः संवत्सरात्परम् ॥ २ ॥ अरश्मिबिम्बं सूर्यस्य वह्निं चैवांशुमालिनम् ॥ दृष्ट्वैकादशमासेभ्यो नरो नोर्ध्वं तु जीवति ॥ ३ ॥ वान्ते मूत्रपुरीषे च यः स्वर्णं रजतं तथा ॥ प्रत्यक्षं कुरुते स्वप्ने जीवेत्स दशमासिकम् ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा प्रेतपिशाचादीन्गन्धर्वनगराणि च ॥ सुवर्णवर्णान्वृक्षांश्च नव मासान्स जीवति ॥५ ॥ स्थूलः कृशः कृशः स्थूलो योऽकस्मादेव जायते ॥ प्रकृतेश्च निवर्तेत तस्यायुश्चाष्टमासिकम् ॥६॥ खण्डं यस्य पदं पार्ष्ण्यां पादस्याग्रे च वा भवेत् ॥ पांसुकर्दमयोर्मध्ये सप्त मासान्स जीवति ॥ ७ ॥ गृध्रः कपोतः काकोलो वायसो वापि मूर्द्धनि ॥ क्रव्यादो वा खगो नीलः षण्मासायुःप्रदर्शकः ॥ ८ ॥ हन्यते काकपंक्तीभिः पांसुवर्षेण वा नरः ॥ स्वां छायामन्यथा दृष्ट्वा चतुः पंच स जीवति ॥ ९ ॥

स्मात् स्थूल होजाय, उसकी परमायु आठ मासपर्यन्त अवशिष्ट जाने इसके पीछे प्रकृति भ्रष्ट होजाती है॥६॥ रेते वा कीचडके भीतर पैर डालनेसे जिसकें पार्ष्णि (एडी) या पैरके अग्रभागका चिह्न खंडित दिखाई दे, वह केवल सात महीने जीवन धारण करता है ॥ ७ ॥ गृद्ध, कबूतर, काकोल (उल्लू काक अथवा क्रव्याद वा अन्य कोई नीलवर्ण मांसाहारी पक्षी उडकर मस्तकमें बैठे तो छः मासकी आयु जाने ॥ ८ ॥ जो काकश्रेणी और धूलि वर्षनेर आघातको प्राप्त होताहै जो पुरुष अपने शरीरकी छायाको विपरीत देखता है चार महीने वा पांच महीने वह जीवित रहताहै ॥ ९ ॥

विनाही मेघ दक्षिणदिशामें बिजलीके देखनेसे और रात्रिकालमें इन्द्रधनुषके देखनेसे मनुष्य केवल दो वा तीन महीने जीवित रहता है ॥ १० ॥ घृत, तेल, दर्पण और जल इन सबमें नेत्र डालनेसे स्वीयमूर्ति जिसको दिखाई न दे और अपने देहको मस्तकशून्य देखे एक माससे अधिक कालतक उसको जीवन धारण करना नहीं पडता ॥ ११ ॥ हे राजन् ! जिसके गात्रसे मुर्देकीसी गंध निर्गत होती है, वह योगी केवल अर्द्धमास जीवित रहता है ॥ १२ ॥ स्नान करतेही जिसका हृदय और पैर सूख जांय और जलपान करते ही फिर तत्काल तृष्णासे जिसका कण्ठ शुष्क हो वह केवल दशदिनमात्र जीवित रहताहै ॥ १३ ॥ वायु छिन्नभिन्न होकर जिस पुरुषका मर्मस्थान विभिन्न करदे और जलस्पर्श करनेसे जिसको रोमांच न हो, उसका मृत्युकाल उपस्थित ही

अनभ्रे विद्युतं दृष्ट्वा दक्षिणां दिशमाश्रिताम् ॥ रात्राविन्द्रधनुश्चापि जीवितं हि त्रिमासिकम् ॥ १० ॥ घृते तैले तथादर्शे तोये वा नात्मनस्तनुम् ॥ यः पश्येदशिरस्कां वा मासादूर्ध्वं न जीवति ॥ ११ ॥ यस्य बस्तसमो गन्धो गात्रे शवसमोऽपि वा ॥ तस्यार्द्धमासिकं ज्ञेयं योगिनो नृप जीवितम् ॥ १२ ॥ यस्य वै स्नातमात्रस्य हृत्पादमवशुष्यते ॥ पिबतश्च जलं शोषो दशाहं सोऽपि जीवति ॥ १३ ॥ संभिन्नो मारुतो यस्य मर्मस्थानानि कृन्तति ॥ हृष्यते नाम्बुसंस्पर्शात्तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ १४ ॥ ऋक्षवानरयानस्थो गायन्यो दक्षिणां दिशम् ॥ स्वप्ने प्रयाति तस्यापि न मृत्युः कालमिच्छति ॥ १५ ॥ रक्तकृष्णाम्बरधरा गायन्ती हसती च यम् ॥ दक्षिणाशां नयेन्नारी स्वप्ने सोऽपि न जीवति ॥ १६ ॥ नग्नं क्षपणकं स्वप्ने हसमानं महाबलम् ॥ एवं संवीक्ष्य वलगन्तं विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥ १७ ॥ आमस्तकतलाद्यस्तु निमग्नं पङ्कसागरे ॥ स्वप्ने पश्यत्यथात्मानं स सद्यो म्रियते नरः ॥ १८ ॥

जाने ॥ १४ ॥ जो पुरुष स्वप्नमें ऋक्ष और वानरके यानमें चढकर गाता हुआ दक्षिण दिशामें जाय उसकी मृत्यु अति निकट जाने ॥ १५ ॥ स्वप्नमें लाल काले वस्त्र पहिरे स्त्री हास्यमुखसे गान करते करते जिसको दक्षिण दिशामें ले जाय, उसको शीघ्रही मृत्युमुखमें गिरना पडता है ॥ १६ ॥ स्वप्नमें महाबल नग्न क्षपणक बौद्धसंन्यासीको अकेला हँसते हँसते जाता देखनेसे जाने कि उसका मृत्युकाल बहुत निकट है ॥ १७ ॥ जो पुरुष स्वप्नमें अपने देहको मस्तकपर्यन्त कींचके सागरमें निमग्न देखे, शीघ्रही उसकी मृत्यु संघटित होती है ॥ १८ ॥

स्वप्नमें केश, अंगार, भस्म, सर्प और सूखी नदी यह सब देखनेसे दश दिनके पीछे ग्यारहवें दिन मृत्यु होती है ॥ १९ ॥ स्वप्नमें कराल और विकटाकार काले वर्ण पुरुष सशस्त्र आनकर पाषाणद्वारा जिसको आघात करैं, शीघ्रही उसकी मृत्यु होतीहै ॥ २० ॥ सूर्योदयके समय जिस व्यक्तिके सन्मुख, पीछे अथवा चारों ओर होकर गीदडी गमन करैं, वह शीघ्रही मृत्युमुखमें पतित होता है ॥ २१ ॥ भोजन करके उठतेही जिस मनुष्यका हृदय फिर तत्काल भूखसे व्याकुल हो और दन्तघर्ष उपस्थित हो, उसकी आयु निःसंदेह शेष हुई है ॥ २२ ॥ जिसकी नासिकामें दीपगंध विदित न हो, जो दिनमें और रात्रिकालमें भयको प्राप्त हो और दूसरेके नेत्रमें जो पुरुष अपना प्रतिबिम्ब नहीं

केशाङ्गारांस्तथा भस्म भुजङ्गान्निर्जलां नदीम् ॥ दृष्ट्वा स्वप्ने दशाहात्तु मृत्युरेकादशे दिने ॥१९॥ करालैर्विकटैः कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः ॥ पाषाणैस्ताडितः स्वप्ने सद्यो मृत्युं लभेन्नरः ॥ २०॥ सूर्योदये यस्य शिवा क्रोशन्ती याति संमुखम् ॥ विपरीतं परीतं वा स सद्यो मृत्युमृच्छति ॥ २१ ॥ यस्य वै भुक्तमात्रस्य हृदयं बाध्यते क्षुधा ॥ जायते दन्तघर्षश्च स गतायुर्न संशयः ॥ २२ ॥ दीपगन्धं न यो वेत्ति त्रस्यत्याह्नि तथा निशि ॥ नात्मानं परनेत्रस्थं वीक्षते न स जीवति ॥ २३ ॥ शक्रायुधं चार्द्धरात्रे दिवा ग्रहगणांस्तथा ॥ दृष्ट्वा मन्येत संक्षीणमात्मजीवितमात्मवित् ॥ २४ ॥ नासिका वक्रतामेति कर्णयोर्नमनोन्नती ॥ नेत्रं च वामं स्रवति यस्य तस्यायुरुद्गतम् ॥ २५ ॥ आरक्ततामेति मुखं जिह्वा वा श्यामतां यदा ॥ तदा प्राज्ञो विजानीयान्मृत्युमासन्नमात्मनः ॥ २६ ॥ उष्ट्ररासभयानेन यः स्वप्ने दक्षिणां दिशम् ॥ प्रयाति तं च जानीयात्सद्यो मृत्युं नरेश्वर ॥ २७ ॥

देखसके उसके जीवनको निःशेष हुआ जाने ॥ २३ ॥ यदि आधी रातके समयमें इन्द्रधनुष और दिनमें ग्रहगण दिखाई दें तो आत्मवित् पुरुष उस परमायुका क्षय हुआ जाने ॥ २४ ॥ जिसकी नासिका टेढी हो जाय, दोनों कान ऊंचे नीचे हों और वामनेत्रसे अश्रु गिरते रहें, उसकी परमायु पूरी हुई जाने ॥ २५ ॥ मुख लोहित वर्ण और रसना श्याम वर्ण होनेसेही बुद्धिमान् पुरुष अपना मृत्युकाल निकट जाने ॥ २६ ॥ जो पुरुष स्वप्नमें ऊंट और गधेके यानमें चढकर दक्षिणदिशामें जाय, शीघ्रही उसकी मृत्यु होती है, इसमें संदेह नहीं ॥ २७ ॥

दोनों कर्ण ढकनेसे स्वीय शब्द जिसको सुनाई न आवै और जिसके नेत्रोंकी ज्योति विलुप्त होजाय वह पुरुष शीघ्रही जीवन त्याग करता है ॥ २८ ॥ जो पुरुष स्वप्नमें गर्त (गढे) में गिरकर बाहर निकलनेके लिये द्वार न पावे सुतरां उठनेमें असमर्थ हो, उसका परमायु निःशेष हुआ समझे ॥ २९ ॥ जिस पुरुषकी दृष्टि ऊर्ध्वभागमें स्थित नहीं होती, लोहितवर्ण होकर वारंवार घूर्णित और चंचल हो जाय और जिसका मुख ऊष्मा (गरमी) से परिपूर्ण और नाभि शीत होजाय उसको वह देह त्यागकर दूसरा देह ग्रहण करना पडता है ॥ ३० ॥ जो पुरुष स्वप्नमें अग्नि वा जलके भीतर प्रवेश करके फिर बाहर न निकल सके उसका जीवन निःशेष हुआ जाने ॥ ३१ ॥ जो पुरुष दिनमें वा रात्रिकालमें दुष्टभूतगणोंसे ताडनाको प्राप्त हो सात रात्रिमें उसको मृत्यु-

पिधाय कर्णौ निर्घोषं न शृणोत्यात्मसम्भवम् ॥ नश्यते चक्षुषोर्ज्योतिर्यस्य सोऽपि न जीवति ॥२८॥ पततो यस्य वै गर्तं स्वप्ने द्वारं पिधीयते ॥ न चोत्तिष्ठति यः श्वभ्रात्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ २९ ॥ ऊर्ध्वा च दृष्टिर्न च संप्रतिष्ठा रक्ता पुनः संपरिवर्तमाना ॥ मुखस्य चोष्मा शिशिरा च नाभिः शंसंति पुंसामपरं शरीरम् ॥ ३० ॥ स्वप्नेऽग्निं प्रविशेद्यस्तु न च निष्क्रमते पुनः ॥ जलप्रवेशादपि वा तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ ३१ ॥ यश्चाभिहन्यते दुष्टैर्भूतै रात्रावथो दिवा ॥ स मृत्युं सप्तरात्रान्ते नरः प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ३२ ॥ स्ववस्त्रममलं शुक्लं रक्तं पश्यत्यथोऽसितम् ॥ यः पुमान्मृत्युमासन्नं तस्यापि हि विनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥ स्वभाववैपरीत्यं तु प्रकृतेश्च विपर्ययः ॥ कथयन्ति मनुष्याणां समासन्नौ यमान्तकौ ॥ ३४ ॥ येषां विनीतः सततं येऽस्य पूज्यतमा मताः ॥ तानेव चावजानाति तानेव च विनिन्दति ॥ ३५ ॥ देवान्नार्चयते वृद्धान्गुरून्विप्रांश्च निन्दति ॥ मातापित्रोर्न सत्कारं जामातॄणां करोति च ॥ ३६ ॥

मुखमें गिरना होता है ॥ ३२ ॥ जो पुरुष अपने शुक्लवर्ण पहरे वस्त्रको लोहित वर्ण वा कृष्णवर्ण देखताहै उसका मृत्युकाल निकटही जानना चाहिये ॥ ३३ ॥ स्वभावकी विपरीतता और प्रकृतिका विपर्यय होनेसे यम और अन्तक उस मनुष्यके निकट होते हैं ॥ ३४ ॥ बुद्धिमान् पुरुष निश्चय जाने कि काल प्राप्त होनेपरही मनुष्य पूजनीय पुरुषोंका और जिनके निकट सदा विनीत भावसे रहना उचित है उनका अपमान और निन्दा करता है ॥ ३५ ॥ देवताओंकी पूजासे विमुख होता है वृद्ध और ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, माता पिताका सत्कार तथा जामाताका आदर ॥ ३६ ॥

करनेसे विमुख होता है एवं योगी ज्ञानी और अन्यान्य महात्मा सबके ही असत्कारमें उद्यत होता है उसकी आयु समाप्त जाने ॥ ३७ ॥ हे अवनी-पते ! योगिगण यत्नसहित निरन्तर जान रक्खें कि, यह सब अरिष्ट संवत्सरके अन्तमें दिनरात फलप्रदान करते हैं ॥ ३८ ॥ वह इन समस्त अति भीषण फलोंके प्रति भली भांति दृष्टि रक्खें । यह सब फल सहजमें ही जाने जाते हैं । हे नरेश्वर ! इन समस्त फलको सम्यक् विधानसे जानकर उनके आगम-नका समय सदा मनमें रखना चाहिये ॥ ३९ ॥ इस प्रकारसे योगी उपस्थिति कालको जानकर भलीभांति निर्भयस्थान आश्रयपूर्वक योगमें अभिनिविष्ट

योगिनां ज्ञानविदुषामन्येषां च महात्मनाम् ॥ प्राप्ते तु काले पुरुषस्तद्विज्ञेयं विचक्षणैः ॥ ३७ ॥ योगिनां सततं यत्नादरिष्टान्यवनीपते ॥ संवत्सरान्ते तज्ज्ञेयं फलदानि दिवानिशम् ॥ ३८ ॥ विलोक्याविशदा चैषां फलपंक्तिः सुभीषणा ॥ विज्ञाय कार्यो मनसि स च कालो नरेश्वर ॥ ३९ ॥ ज्ञात्वा कालं च तं सम्यगभयस्थानमाश्रितः ॥ युञ्जीत योगी कालोऽसौ यथा नास्याफलो भवेत् ॥४०॥ दृष्ट्वा-रिष्टं तथा योगी त्यक्त्वा मरणजं भयम् ॥ तत्स्वभावं तदालोक्य कालो यावद्विपाकदः ॥ ४१ ॥ तस्य भागे तथैवाह्नो योगं युञ्जीत योग-वित् ॥ पूर्वाह्णे चापराह्णे च मध्याह्ने चापि तद्दिने ॥ ४२ ॥ यत्र वा रजनीभागे तदरिष्टं निरीक्षितम् ॥ तत्रैव तावद्युञ्जीत यावत्प्राप्तं हि त-द्दिनम् ॥ ४३ ॥ ततस्त्यक्त्वा भयं सर्वं जित्वा यं कालमात्मवान् ॥ तत्रैवावसथे स्थित्वा यत्र वा स्थैर्यमात्मनः ॥ ४४ ॥

हो जिससे कालका बल न चलै ॥ ४० ॥ अरिष्टके देखते ही योगी मृत्युजनित भय छोड उस अरिष्टके स्वभावकी पर्यालोचना (विचार) करके जिस समय वह समागत हो ॥ ४१ ॥ योगवित् पुरुष दिनके उसी भागमें योगमें निविष्ट हो । उसी दिनके पूर्वाह्णमें, मध्याह्नमें, वा अपराह्णमें ॥ ४२ ॥ अथवा रात्रिकालमें, या जिस समय अरिष्ट दिखाई दिया है, उसी कालमें योगनिविष्ट होना चाहिये । जबतक वह दिन न आवे, तबतक इसी प्रकारसे योगक्रियाका आचरण करै ॥ ४३ ॥ वह आत्मवान् होकर सब भय विसर्जन और तिस समयको पराजय करके उसी गृहमें अथवा अन्य जिस स्थानमें

मनकी स्थिरता हो ॥ ४४ ॥ ऐसे स्थानमें वास कर तीनों गुणोंको जीत योगयुक्त और परमात्मामें ऐकान्तिक चित्तसे अभिनिविष्ट हो और आत्माको तन्मय करके अन्तमें चित्तवृत्तिको भी सर्वथा विसर्जन करना चाहिये ॥ ४५ ॥ इस प्रकार करनेसेही वह इन्द्रियातीत, बुद्धिके अगोचर और वाक्यका अतीत परम निर्वाण लाभ कर सकते हैं ॥ ४६ ॥ हे अलर्क! मैंने यथार्थ रूपसे तुम्हारे निकट यह सब वर्णन किया । अब जिस उपायसे ब्रह्म पदार्थ लाभ किया जाता है वह संक्षेपसे कहताहूं सुनो ॥ ४७ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंका संयोग होनेसे ही चन्द्रकान्तमणिसे जल निकलता है चन्द्रमाकी किरणोंके सहित संयोग न होनेसे कभी जल नहीं निकलता, यही योगीके योगसिद्धिका उपाय है, अर्थात् योगमें मनको अभिनिविष्ट न करनेसे कभी

युञ्जीत योगं निर्जित्य त्रीन्गुणान्परमात्मनि ॥ तन्मयश्चात्मना भूत्वा चित्तमपि संत्यजेत् ॥ ४५ ॥ ततः परमनिर्वाणमतीन्द्रियमगोचरम् ॥ यद्बुद्धेर्यन्न चाख्यातुं शक्यते तत्समश्नुते ॥ ४६॥ एतत्सर्वं समाख्यातं तवालर्क यथार्थवत् ॥ प्राप्स्यसे येन तद्ब्रह्म संक्षेपात्तान्निबोध मे ॥ ४७ ॥ शशांकरश्मिसंयोगाच्चन्द्रकान्तमणिः पयः ॥ समुत्सृजति नायुक्तः सोपमा योगिनः स्मृता ॥ ४८ ॥ यथार्करश्मिसंयोगादर्ककान्तो हुताशनम् ॥ आविष्करोति नैकः सन्नुपमा सापि योगिनः ॥ ४९ ॥ पिपीलिकाखुनकुलगृहगोधाकपिंजलाः ॥ वसन्ति स्वामिवद्गेहे ध्वस्ते यान्ति ततोऽन्यतः ॥ ५० ॥ दुःखं तु स्वामिनो ध्वंसे तस्य तेषां न किंचन ॥ वेश्मनो यत्र राजेन्द्र सोपमा योगसिद्धये ॥ ५१ ॥

योगीके हृदयमें आनन्दरसका संचार नहीं होता, योगमें मनको नियुक्त करनेसेही वह आनन्द होता है ॥ ४८ ॥ सूर्यकी किरणोंका संयोग होनेपरही सूर्यकान्तमणिसे अग्नि निकलती है, सूर्यकी किरणोंका विना संयोग हुए नहीं निकल सकती । यहभी योगीके योगसिद्धिकी और एक उपमा है अर्थात् योगमें युक्त चित्त न होनेसे कभी योगी ब्रह्मके साक्षात्कारमें समर्थ नहीं होता॥ ४९ ॥ पिपीलिका, मूषिक, नकुल, गृहगोधा (घरकी गोय) और कपिञ्जल कबूतर यह गृहस्वामीकी समान विद्यमान रहते हैं अर्थात् उस स्थानमें सदा वास करते हैं उसके नष्ट होनेपर अन्य स्थानमें जाते हैं ॥ ५० ॥ गृहस्वामीके ध्वंस होनेसे वह कुछ भी दुःखी नहीं होते हे राजेन्द्र! यह भी योगीके योगसिद्धिकी तीसरी उपमा है, अर्थात् स्वभावसेही शरीरके पीछे शरीरका

आविर्भाव तिरोभाव होता है, अतएव उसके लिये दुःख वा ममताके वशीभूत होना अनुचित है योगी यह जानकर दुःखादि परित्यागपूर्वक योगसाधनमें मन लगावें ॥ ५१ ॥ देखो चेंटी अत्यन्त छोटी वस्तु होकरभी अत्यन्त सूक्ष्ममुखद्वारा (मट्टी खैंच २ कर ढेर) संचय करती है । यह भी योगीके लिये एक उपदेश है, अर्थात् यद्यपि ब्रह्मसाधन कठिन कार्य है किन्तु तोभी योगरूप सामान्य उपायके बलसेही उसको वशीभूत कियाजाताहै ॥ ५२ ॥ पशु पक्षी मनुष्य इत्यादि फल, पुष्प, पत्रान्वित वृक्षको नष्ट कर देते हैं । योगी यह देखकरभी सिद्धिलाभ करैं अर्थात् समृद्धि होनेसेही ध्वंस है समयमें कालके हाथसे अवश्य नष्ट होना पडेगा । इस प्रकार जानकरही योगिगण योगसाधनमें निविष्ट होकर निर्वाणलाभ करैं ॥ ५३ ॥ रुरुशावक (मृगविशेष) के सींगका अग्र-

मृद्देहिकाल्पदेहापि मुखाग्रेणाप्यणीयसा ॥ करोति मृद्भारचयमुपदेशः स योगिनः ॥ ५२ ॥ पशुपक्षिमनुष्याद्यैः पत्रपुष्पफलान्वितम् ॥ वृक्षं विलुप्यमानं तु दृष्ट्वा सिध्यन्ति योगिनः ॥ ५३ ॥ रुरुशावविषाणाग्रमालक्ष्य तिलकाकृतिम् ॥ सह तेन विवर्द्धन्तं योगी सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ द्रवपूर्णमुपादाय पात्रमारोहतो भुवः ॥ तुंगमंगं विलोक्योच्चैर्विज्ञातं किं न योगिना ॥ ५५ ॥ सर्वस्वे जीवनायालं निखाते पुरुषस्य या ॥ चेष्टां तां तत्त्वतो ज्ञात्वा योगिनः कृतकृत्यता ॥ ५६ ॥ तद्गृहं यत्र वसति तद्भोज्यं येन जीवति ॥ येन सम्पद्यते चार्थस्तत्सुखं ममतात्र का ॥ ५७ ॥

देश तिलकाकार होकरभी उसके संग संगमें वह वृद्धिको प्राप्त होताहै. इसी दृष्टान्तके अनुगामी होकर भी योगी सिद्धिलाभ करते हैं । अर्थात् योगचर्या कितनीही भारी क्यों न हो, धीरे धीरे अभ्यास करनेसे अवश्यही कृतकार्य हो सकताहै ॥ ५४ ॥ और भी देखो ! जब मनुष्य द्रवपरिपूर्ण पात्र हाथमें लेकर पृथ्वीसे ऊंचे स्थानमें आरोहण करताहै, तिस काल उसके अंगके प्रति सम्यक् प्रकार दृष्टि डालनेसे योगीको कोई विषय अज्ञात नहीं रहताहै ॥ ५५ ॥ मनुष्य जीवनके लिये अपना सर्वस्व नष्ट करनेकी जो चेष्टा करताहै, उसको सम्यक् प्रकार जाननेसे योगी कृतकृत्यताका लाभ करताहै ॥ ५६ ॥ जिस स्थानमें वास किया जाय वही गृह, जिसके द्वारा प्राण धारण हो, वही भोज्य और जिसके द्वारा अर्थ निष्पन्न हो, वही सुख कहा गया है, अतएव

इस विषयमें ममता करनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ५७॥ जिस प्रकार कारणद्वारा अपना चिन्तित कार्य साधित होता है, इसी प्रकार योगी पारलौकिक बुद्ध्यादिसेही ब्रह्मकी साधना करे ॥ ५८ ॥ जडने कहा—अनन्तर नरपति अलर्क विनयावनत हो अत्रिनन्दन दत्तात्रेयजीको प्रणाम करके आनन्दसहित कहने लगे ॥ ५९ ॥ हे ब्रह्मन् ! सौभाग्यसेही मुझको यह अतिउग्र, प्राणोंको संदेहमें डालनेवाला भयदायी शत्रुसे तिरस्कार प्राप्त हुआहै ॥ ६० ॥ सौभाग्यवशही वह काशिराज महाबल पराक्रान्त और समृद्धिमान् हुएहैं जिसके कारण मुझे तुम्हारी संगति प्राप्त हुई है ॥ ६१ ॥ मैं सौभाग्यसेही क्षीणबल हुआहूं, सौभाग्यसेही मेरे भृत्यगण मारे गये हैं और सौभाग्यसेही मेरा कोष क्षयको प्राप्त हुआ है तथा भयका संचार हुआ है ॥ ६२ ॥ सौभा-

अभ्यर्थितोऽपि तैः कार्यं करोति करणैर्यथा ॥ तथा बुद्ध्यादिभिर्योगी पारक्यैः साधयेत्परम् ॥ ५८ ॥ जड उवाच ॥ ततः प्रणम्यात्रि-पुत्रमलर्कः स महीपतिः ॥ प्रश्रयावनतो वाक्यमुवाचातिमुदान्वितः ॥५९ ॥ दिष्ट्या दैवैरिदं ब्रह्मन्पराभिभवसम्भवम् ॥ उपपादितमत्युग्रं प्राणसंदेहदं भयम् ॥ ६० ॥ दिष्ट्या काशिपतेर्भूरिबलसम्पत्पराक्रमः ॥ यदुच्छेदादिहायातः स युष्मत्सङ्गदो मम ॥ ६१ ॥ दिष्ट्या मंद-बलश्चाहं दिष्ट्या भृत्याश्च मे हताः ॥ दिष्ट्या कोषः क्षयं यातो दिष्ट्याहं भीतिमागतः ॥ ६२ ॥ दिष्ट्या त्वत्पादयुगुलं मम स्मृतिपथं गतम् ॥ दिष्ट्या त्वदुक्तयः सर्वा मम चेतसि संस्थिताः ॥ ६३ ॥ दिष्ट्या ज्ञानं ममोत्पन्नं भवतश्च समागमात् ॥ भवता चैव कारुण्यं दिष्ट्या ब्रह्मकृतं मयि ॥ ६४ ॥ अनर्थोऽप्यर्थतां याति पुरुषस्य शुभोदये ॥ तथेदमुपकाराय व्यसनं संगमात्तव ॥ ६५ ॥ सुबाहुरुप-कारी मे स च काशिपतिः प्रभो ॥ तयोः कृतेऽहं संप्राप्तो योगीश भवतोऽन्तिकम् ॥ ६६ ॥

ग्यवश ही आपके चरणयुगल मेरे स्मृतिपथमें उदित हुए हैं सौभाग्यवशही आपके सब वचनोंने मेरे हृदयमें स्थान पाया है ॥ ६३ ॥ और सौभाग्यवश ही आपका समागमलाभ होनेसे मुझको ज्ञानका उदय हुआ । हे ब्रह्मन् ! सौभाग्यवशही आपने मेरे प्रति दया प्रदर्शन करी है ॥ ६४ ॥ पुरुषका शुभोदय होनेपर अनर्थ भी अर्थरूपमें परिणत होता है इस भयंकर विपद्नेभी आपसे मिलाकर मेरा उपकार साधन किया ॥ ६५ ॥ हे प्रभो ! हे योगीश्वर ! जिनके लिये मैं आपके निकट उपस्थित हुआहूं वह सुबाहु और काशिराज दोनोंही मेरे परम उपकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६६ ॥

आपकी प्रसादरूप अग्निद्वारा मेरे अज्ञानरूप पाप दग्ध होगये हैं, जिससे फिर ऐसे दुःखको प्राप्त होना न पडे अब मैं उसीके अनुष्ठानमें यत्नवान् हूंगा ॥ ६७॥ हे ब्रह्मन् ! आप ज्ञानदाता और महात्मा हैं, आपकी आज्ञा होनेपरही मैं गृहस्थाश्रमको परित्याग करूंगा। यह आश्रम दुःखरूपी वृक्षका वनस्वरूप है ॥ ६८॥ दत्तात्रेयजी बोले-हे राजेन्द्र ! तुम गमन करो। तुम्हारा मंगल हो, मैंने तुमको जिस प्रकार उपदेश प्रदान किया, तुम ममता और अहंकाररहित होकर मुक्तिलाभ होनेके लिये उसीके अनुरूप कार्य करो ॥६९॥ जडने कहा-दत्तात्रेयजीके इस प्रकार कहनेपर अलर्क उनको प्रणाम करके शीघ्रतासहित अग्रज

सोऽहं तव प्रसादाग्निनिर्दग्धाज्ञानकिल्बिषः ॥ तथा यतिष्ये येनेदृङ्‌ भूयो दुःखभाजनम् ॥ ६७ ॥ परित्यजिष्ये गार्हस्थ्यमार्तिपादपका-ननम् ॥ त्वत्तोऽनुज्ञां समासाद्य ज्ञानदातुर्महात्मनः ॥ ६८ ॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ गच्छ राजेन्द्र भद्रं ते यथा ते कथितं मया ॥ निर्ममो निरहङ्कारस्तथा चर विमुक्तये ॥ ६९॥ जड उवाच ॥ एवमुक्तः प्रणम्यैनमाजगाम त्वरान्वितः ॥ यत्र काशिपतिर्भ्राता सुबाहुश्चास्य सोऽ-ग्रजः ॥ ७० ॥ समुत्पत्य महाबाहुं सोऽलर्कः काशिभूपतिम् ॥ सुबाहोरग्रतो वीरमुवाच प्रहसन्निव ॥७१॥ राज्यकामुक काशीश भुज्य-तां राज्यमूर्जितम् ॥ यथा च रोचते तद्वत्सुबाहोः संप्रयच्छ वा ॥ ७२ ॥ काशिराज उवाच ॥ किमलर्क परित्यक्तं राज्यं ते संयुगं विना ॥ क्षत्रियस्य न धर्मोऽयं भवांश्च क्षत्रधर्मवित् ॥ ७३ ॥ निर्जितामात्यवर्गस्तु त्यक्त्वा मरणजं भयम् ॥ संदधीत शरं राजा लक्ष्यमु-द्दिश्य वैरिणम् ॥ ७४ ॥

सुबाहु और काशीपतिके निकट उपस्थित हुए ॥ ७० ॥ उन्होंने महाबाहु काशीनाथके निकट सुबाहुके सन्मुख उपस्थित हो हँसते हँसते कहा ॥ ७१ ॥ हे काशीपते ! तुमने राज्यलाभकी कामना करी है, अत एव यह समृद्धिशाली साम्राज्य भोग करो अथवा सुबाहुको ददो, या तुम्हारी जो इच्छा हो, वही कर सकते हो ॥ ७२ ॥ काशीराजने कहा-हे अलर्क ! तुम विना युद्धके राज्य क्यों परित्याग करतेहो यह क्षत्रियोंका धर्म नहीं है, तुम भी क्षात्रधर्ममें विशारद हो ॥ ७३ ॥ नरपति अमात्यवर्गको जीतकर मरणभय परित्यागपूर्वक शत्रुको लक्ष्य निर्देश कर शरसंधान करे ॥ ७४ ॥

वह शत्रुको पराजय करके सिद्धिके लिये अभिलाषित अतिउत्तम भोगोंको भोगते अनेक श्रेष्ठ यज्ञका अनुष्ठान करें ॥ ७५ ॥ अलर्कने कहा—हे वीर ! पहिले मेरीभी इसी प्रकार वासना थी और मेरा मनभी ऐसीही धारणा करताथा। किन्तु अब उसके विपरीतभावका संचार हुआहै, उसका कारण सुनो ॥ ७६ ॥ मनुष्यमात्रकाही संग जिस प्रकार भौतिक है, उनका अन्तःकरण और गुणसमूहभी उसी प्रकार भूतकी समष्टिमात्र है ॥ ७७ ॥ हे नृपते ! केवल मात्र चिच्छक्तिरूपी ब्रह्महही सत्य है उसके अतिरिक्त जब और कोईभी सत्य नहीं है ऐसा ज्ञानलाभ हुआहै तब शत्रु, मित्र और प्रभुभृत्यकी कल्पना किस प्रकारसे होगी ॥ ७८ ॥ हे राजन् ! मैंने तुम्हारे भयसे अत्यन्त दुःखको प्राप्त होकर इस समय दत्तात्रेयके प्रसादसे ज्ञान प्राप्त कियाहै ॥ ७९ ॥ अब जितेन्द्रिय

तं जित्वा नृपतिर्भोगान्यथाभिलषितान्वरान् ॥ भुञ्जीत परमं सिद्ध्यै यजेत च महामखः ॥७५॥ अलर्क उवाच ॥ एवमीदृशकं वीर ममाप्यासीन्मनः पुरा ॥ साम्प्रतं विपरीतार्थं शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥७६॥ यथायं भौतिकः संघस्तथान्तःकरणं नृणाम् ॥ गुणास्तु सकलास्तद्वदशेषेष्वेव जन्तुषु ॥ ७७ ॥ चिच्छक्तिरेक एवायं यदा नान्योऽस्ति कश्चन ॥ तदा का नृपतेऽज्ञानान्मित्रारिप्रभुभृत्यता ॥ ७८ ॥ तन्मया दुःखमासाद्य त्वद्भयोद्भवमुत्तमम् ॥ दत्तात्रेयप्रसादेन ज्ञानं प्राप्तं नरेश्वर ॥ ७९ ॥ निर्जितेंद्रियवर्गस्तु त्यक्त्वा संगमशेषतः ॥ मनो ब्रह्मणि संधास्ये तज्जये परमो जयः ॥ ८० ॥ संसाध्यमन्यत्तत्सिद्ध्यै यतः किंचिन्न विद्यते ॥ इन्द्रियाणि च संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ॥८१॥ सोऽहं न तेऽरिर्न ममासि शत्रुः सुबाहुरेषो न ममापकारी ॥ दृष्टं मया सर्वमिदं यथात्मा अन्विष्यतां भूप रिपुस्त्वयान्यः ॥८२॥

होकर सम्यक् प्रकारसे समस्तसंग परित्यागपूर्वक मनको परब्रह्ममें अभिनिविष्ट करूंगा। ब्रह्मके जय होनेसेही समस्त जय हुई ॥ ८० ॥ एक मात्र जिनके अतिरिक्त और कोई विद्यमान नहीं है उनके साधनके लिये अन्यसाधना करना अनुचित है। जितेन्द्रिय होनेसेही सिद्धिलाभ करी जातीहै ॥ ८१ ॥ हे राजन् ! मैं तुम्हारा वैरी वा तुमभी मेरे शत्रु नहीं हो, इस सुबाहुनेभी मेरा कोई अपकार नहीं किया यह मैंने भलीभांतिसे जानलियाहै, अतएव तुम अब अन्य शत्रुको खोजो ॥ ८२ ॥

अलर्कके इस प्रकार कहनेपर काशिराज अत्यंत संतुष्ट हुआ और सुबाहु हर्षसे उठकर "परम सौभाग्य" कहकर भ्राताको अभिनन्दन करते हुए काशीश्वरसे कहनेलगे ॥ ८३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ सुबाहुने कहा हे नृपशार्दूल ! मैंने जिस कारण आपकी शरण ग्रहण कीथी सब प्राप्त किया । अब मैं जाताहूं । आप सुखी हों ॥ १ ॥ काशीपति बोले—हे सुबाहो ! आपने किसलिये मेरी शरण ग्रहण करीथी और आपका क्या कार्य सम्पादित हुआ ? सो कहो । यह जाननेके लिये मुझको परम कौतूहल उत्पन्न हुआहै ॥ २ ॥ अलर्क अपने पितृपैतामहिक समृद्ध राज्य भोग करताथा, आपने शत्रुको जीतकर वह राज्य छुडादेनेके लिये मुझको उत्तेजित किया ॥ ३ ॥ इसी कारण मैंने आपके भ्राताका राज्य आक-

इत्थं स तेनाभिहितो नरेंद्रो हृष्टः समुत्थाय ततः सुबाहुः ॥ दिष्ट्येति तं भ्रातरमाभिनंद्य काशिश्वरं वाक्यमिदं बभाषे ॥८३॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे अलर्कनिर्वेदो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ सुबाहुरुवाच ॥ यदर्थं नृपशार्दूल त्वामहं शरणं गतः ॥ तन्मया सकलं प्राप्तं यास्यामि त्वं सुखी भव ॥ १ ॥ काशिराज उवाच ॥ किंनिमित्तं भवान्प्राप्तो निष्पन्नोऽर्थश्च कस्तव ॥ सुबाहो तन्ममाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥ समाक्रांतमलर्केण पितृपैतामहं महत् ॥ राज्यं देहीति निर्जित्य त्वयाहमभिचोदितः ॥ ३ ॥ ततो मया समाक्रम्य राज्यमस्यानुजस्य ते ॥ एतत्ते बलमानीतं तद्भुङ्क्ष्व स्वकुलोचितम् ॥ ४ ॥ सुबाहुरुवाच ॥ काशिराज निबोध त्वं यदर्थमयमुद्यमः ॥ कृतो मया भवांश्चैव कारितोऽत्यन्तमुद्यमम् ॥ ५ ॥ भ्राता ममायं ग्राम्येषु सक्तो भोगेषु तत्त्ववित् ॥ विमूढौ बोधवन्तौ च भ्रातरावग्रजौ मम ॥ ६ ॥ तयोर्मम च यन्मात्रा बाल्ये स्तन्यं यथा मुखे ॥ तथाववोधो विन्यस्तः कर्णयोरवनीपते ॥ ७ ॥

मणपूर्वक अपने वशमें कर लिया है, अब आप स्ववंशोचित राज्य भोगिये ॥ ४ ॥ सुबाहुने कहा हे काशीपते ! मैंने जिस कारण ऐसा उद्यम कियाथा और आपको इसमें प्रवर्तित कियाथा. सो सुनो ॥ ५ ॥ मेरे यह अनुज तत्त्वज्ञानी होकरभी ग्राम्य भोगमें आसक्त थे मेरे दो अग्रज विमूढ होकरभी तत्त्ववित् हुए हैं ॥ ६ ॥ हे अवनीपते ! मेरी जननीने शैशवमें दोनों अग्रजके और मेरे मुखमें जिस प्रकार स्तन प्रदान कियाथा, वैसेही हमारे कानमें तत्त्वज्ञानकाभी उपदेश दियाथा ॥ ७ ॥

जो जो विषय मनुष्यमात्रको जानने उचित हैं हे राजन् ! माताने हमारे तीनों भाइयोंके हृदयमें वह सब प्रकाशित करदियेथे, किन्तु अलर्कको वह नहीं हुए ॥ ८ ॥ हे महीपते ! जिस प्रकार एक सार्थगत अर्थात् एक साथमें जानेवाली मनुष्योंमें एक मनुष्यके दुःखग्रसित होनेपर सब साधु दुःखित होतेहैं मेरीभी वही अवस्था हुई है ॥ ९ ॥ क्योंकि अलर्कके संग मेरा संबंध है, इनको इस देहमें मैंने भ्रातृकल्पना कियाहै, यह गार्हस्थ्यमोहमें अभिभूत होकर दुःखको प्राप्त होरहेथे ॥ १० ॥ इस कारण दुःख होनेपरही वैराग्यका उदय होगा, इस प्रकार स्थिर करके उद्योगार्थ आपका आश्रय ग्रहण कियाथा ॥ ११ ॥ हे अवनीपते ! इससे उस दुःखका संचार हुआ और उस दुःखसेही तत्त्वज्ञानका उदय होनेपर वैराग्यका संचार हुआहै सुतरां अब मैं कृतकार्य हुआहूं

तयोर्मम च विज्ञेयाः पदार्था ये मता नृभिः ॥ प्रकाश्यं मनसो नीतास्ते मात्रा नास्य पार्थिव ॥ ८ ॥ यथैकमर्थं यातानामेकास्मिन्नवसीदति ॥ दुःखं भवति साधूनां तथास्माकं महीपते ॥९॥ गार्हस्थ्यमोहमापन्ने सीदत्यस्मिन्नरेश्वर ॥ सम्बन्धिन्यस्य देहस्य बिभ्रति भ्रातृकल्पनाम् ॥ १० ॥ ततो मया विनिश्चित्य दुःखाद्वैराग्यभावना ॥ भविष्यतीत्यस्य भवानित्युद्योगाय संश्रितः ॥ ११ ॥ तदस्य दुःखाद्वैराग्यं संबोधादवनीपते ॥ समुद्भूतं कृतं कार्यं भद्रं तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥ १२ ॥ उष्ट्वा मदालसागर्भे पीत्वा तस्यास्तथा स्तनम् ॥ नान्यनारीसुतैर्यातं वर्त्म यात्विति पार्थिव ॥ १३ ॥ विचार्य तन्मया सर्वं युष्मत्संश्रयपूर्वकम् ॥ कृतं तच्चापि निष्पन्नं प्रयास्ये सिद्धये पुनः ॥ १४ ॥ उपेक्ष्यते सीदमानः स्वजनो बान्धवः सुहृत् ॥ यैर्नरेन्द्र न तान्मन्ये सेन्द्रिया विकला हि ते ॥ १५ ॥

इस समयमें प्रस्थान करताहूं, आपका कल्याण हो ॥ १२ ॥ हे पार्थिव ! यह अलर्क मदालसाके उदरमें स्थित हुआहै और उसका स्तनपान कियाहै, अतएव अन्यस्त्रीगर्भोत्पन्न पुत्रगण जिस मार्गमें जानेको समर्थ नहीं होते, यह उसी मार्गमें गमन करे ॥ १३ ॥ मैंने यह सब विचारकर आपका आश्रयग्रहणपूर्वक उसीके अनुरूप कार्यका अनुष्ठान कियाहै मेरा कार्यभी सम्पन्न हुआहै, अब फिर सिद्धिलाभके लिये गमन करताहूं ॥ १४ ॥ हे नरेन्द्र ! स्वजन, बांधव, और सुहृज्जनोंके दुःखी होनेपर जो व्यक्ति उनके प्रति उपेक्षा करताहै, मैं उसको विकलेन्द्रिय समझताहूं ॥ १५ ॥

सुहज्जन बन्धु और स्वजन इनके समर्थ होनेपरभी जो मनुष्य (दुःख) को प्राप्त होताहै, उसके वह सुहृज्जनादिही निन्दनीय एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसे च्युत होते हैं, उसको निन्दनीय होना नहीं पडता ॥ १६ ॥ हे सत्तम ! मैंने आपका संगलाभ करके इस प्रकार महत् कार्य सम्पन्न किया है, आप सुखी और ज्ञानमार्गी हो मैं अब जाताहूं ॥ १७ ॥ काशीराजने कहा—आपने साधुमति अलर्कका बडा उपकार साधन किया किन्तु मेरा उपकार करनेमें मन क्यों नहीं लगाते ॥ १८ ॥ साधुओंके संग साधुओंका मिलना फलदायकही होता है कभी विफल होनेवाला नहीं है, अत एव आपके संग मिलनेमें मेरा उन्नतिलाभही संगत है ॥ १९ ॥ सुबाहुने कहा—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यही चारों पुरुषार्थ कहे गये हैं, तिनमें आपका धर्म

सुहृदि स्वजने बन्धौ समर्थे योऽवसीदति ॥ धर्मार्थकाममोक्षेभ्यो वाच्यास्ते तत्र न त्वसौ ॥ १६ ॥ एतत्त्वत्सङ्गमाद्भूप मया कार्यं महत्कृतम् ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि ज्ञानभाग्भव सत्तम ॥ १७ ॥ काशिराज उवाच ॥ उपकारस्त्वया साधोरलर्कस्य कृतो महान् ॥ ममोपकाराय कथं न करोषि स्वमानसम् ॥ १८ ॥ फलदायी सतां सद्भिः संगमो नाफलो यतः ॥ तस्मात्त्वत्संश्रयाद्युक्ता मया प्राप्ता समुन्नतिः ॥ १९ ॥ सुबाहुरुवाच ॥ धर्मार्थकाममोक्षाख्यं पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ तत्र धर्मार्थकामास्ते सकलो हीयतेऽपरः ॥ २० ॥ तत्ते संक्षेपतो वक्ष्ये तदिहैकमनाः शृणु ॥ श्रुत्वा च सम्यगालोच्य यतेथाः श्रेयसे नृप ॥ २१ ॥ ममेति प्रत्ययो भूप न कार्योऽहमिति त्वया ॥ सम्यगालोच्य धर्मो हि धर्माभावे निराश्रयः ॥ २२ ॥ को वाहमिति संज्ञेयमित्यालोच्य त्वयात्मना ॥ बाह्यान्तर्गतमालोच्यमालोच्यापररात्रिषु ॥ २३ ॥

अर्थ और काम सिद्ध हुआ है, मोक्षमात्रका अभाव विद्यमान है ॥ २० ॥ अत एव आपसे कहताहूं एकाग्र चित्तसे सुनो। मुझसे सुनकर उसकी भलीभांति आलोचना करके कल्याणलाभके लिये यत्नवान् होओ ॥२१॥ हे भूप ! " यह मेरा " " यह मैं " इस प्रकार ममता और अहंकारके वशीभूत न होना सम्यक् प्रकारसे धर्मकी आलोचना करना। क्योंकि धर्मके अभावमेंही निराश्रय होना पडता है ॥ २२ ॥ आलोचना करनेसेही " मैं किसका हूं " यह सम्यक् प्रकार जाना जाता है। रात्रिके शेष भागमें आलोचना करके बाह्यान्तर्गत आलोचना करनी आरंभ करो ॥ २३ ॥

अव्यक्तसे प्रकृतिपर्यन्त अधिकारी, अचेतन व्यक्ताव्यक्त समस्त विषयको जानकर कौन ज्ञेय, कौन ज्ञाता और मैं कौन हूं, यह जानना चाहिये ॥ २४ ॥ यह सब विदित होनेसेही आप समस्त जानेंगे देहादि अनात्मवस्तुमें आत्मबोध और जो अपना नहीं है, उसको अपना जाननाही मूढता मात्र है ॥ २५ ॥ हे भूपते ! " वही मैं " लौकिक व्यवहारमें सर्वगत हूं । आपने जो विषय पूछा था, वह वर्णन किया । अब मैं जाताहूं ॥ २६ ॥ जब महाबुद्धिमान् सुबाहु काशीराजसे यह कहकर चलेगये । तब काशीपतिनेभी अलर्ककी सम्यक् प्रकार पूजा करके अपने नगरमें प्रस्थान किया ॥ २७ ॥ अलर्कभी अपने ज्येष्ठनंदनको राज्यपदमें प्रतिष्ठित करके सब संगपरित्यागपूर्वक आत्मसिद्धिके अर्थ वनवासी हुए ॥ २८ ॥ फिर बहुत काल बीतनेपर छन्दरहित और

अव्यक्तादिविशेषान्तमविकारमचेतनम् ॥ व्यक्ताव्यक्तं त्वया ज्ञेयं ज्ञाता कश्चाहमित्युत ॥२४॥ एतस्मिन्नेव विज्ञाते विज्ञातमखिलं त्वया ॥ अनात्मन्यात्मविज्ञानमस्वे स्वमिति मूढता ॥ २५ ॥ सोऽहं सर्वगतो भूप लोकसंव्यवहारतः ॥ मयेदमुच्यते सर्वं त्वया पृष्टो व्रजाम्यहम् ॥२६॥ एवमुक्त्वा ययौ धीमान्सुबाहुः काशिभूमिपम् ॥ काशिराजोऽपि संपूज्य सोऽलर्कं स्वपुरं ययौ ॥२७॥ अलर्कोऽपि सुतं ज्येष्ठमभिषिच्य नराधिपम् ॥ वनं जगाम सन्त्यक्तसर्वसङ्गः स्वसिद्धये ॥ २८ ॥ ततः कालेन महता निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥ प्राप्य योगर्द्धिमतुलां परं निर्वाणमाप्तवान् ॥ २९ ॥ पश्यञ्जगदिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ पाशैर्गुणमयैर्बद्धं बध्यमानं च नित्यशः ॥ ३० ॥ पुत्रादिभ्रातृपुत्रादिस्वपारक्यादिभावितैः ॥ आकृष्यमाणं करणैर्दुःखार्त्तं भिन्नदर्शनम् ॥ ३१ ॥ अज्ञानपङ्कगर्भस्थमनुद्धारं महामतिः ॥ आत्मानं च समुत्तीर्णं गाथामेतामगायत ॥ ३२ ॥

निष्परिग्रह हो अतुल योगसम्पत्तिलाभपूर्वक परमनिर्वाणपदवी लाभ करी ॥ २९ ॥ सुर असुर मनुष्यादि पूर्ण यह दृश्यमान संपूर्ण जगत् गुणमय पाशद्वारा बंधकर नित्यही बध्यमान होता है ॥ ३० ॥ पुत्रादि–भ्रातृ–पुत्रादि एवं अपने और पराये पुरुषोंके द्वारा यह पाश निर्मित है । यह भिन्न–दर्शन जगत् संसार उसी पाशमें आकृष्यमाण होनेके कारण दुःखसे पराभूत होगया है ॥ ३१ ॥ इसपरभी फिर अज्ञानरूपी कीचडमें निमग्न होनेसे निकलनेकाभी उपाय नहीं है । मतिमान् अलर्कने यह सब देखकर और " मेरा उद्धार हुआ है " इस भांति विचारकर यह गाथा गाई थी ॥ ३२ ॥

" अहो क्या कष्ट है ? मैं प्रथम राज्यभोग करताथा, अंतमें जाना--योगकी अपेक्षा परम सुख और कुछ नहीं है " ॥ ३३॥ पुत्रने कहा--हे तात ! आप मुक्तिलाभके लिये उस अनुत्तम योगका आचरण कीजिये तो ब्रह्मको प्राप्त होसकोगे, उस ब्रह्मके लाभ होनेसे फिर शोकमें अभिभूत होना नहीं पडेगा मैंभी गमन करूंगा ॥ ३४ ॥ यज्ञ और जपकी मुझको क्या आवश्यकता है ? कृतकृत्य मनुष्यका कार्य केवल ब्रह्मलाभके निमित्त है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५॥ अतएव मैं आपकी आज्ञा ग्रहण करके द्वन्द्वरहित और परिग्रहशून्य हो जिससे निर्वाण लोभवश मुक्तिके लिये उस विषयमें सम्यक् प्रकार यत्नवान् हूंगा ॥ ३६ ॥

अहो कष्टं यदस्माभिः पूर्वं राज्यमनुष्ठितम् ॥ इति पश्चान्मया ज्ञातं योगान्नास्ति परं सुखम् ॥ ३३ ॥ पुत्र उवाच ॥ तातैनं त्वं समातिष्ठ मुक्तये योगमुत्तमम् ॥ प्राप्स्यसे येन तद्ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचसि ॥ ३४ ॥ ततोऽहमपि यास्यामि किं यज्ञैः किं जपेन मे ॥ कृतकृत्यस्य करणं ब्रह्मभावाय कल्पते ॥ ३५ ॥ ततोऽनुज्ञामवाप्याहं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥ प्रयतिष्ये तथा मुक्तौ यथा यास्यामि निर्वृतिम् ॥ ३६ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ एवमुक्त्वा स पितरं प्राप्यानुज्ञां ततश्च सः ॥ ब्रह्मञ्जगाम मेधावी परित्यक्तपरिग्रहः ॥ ३७ ॥ सोऽपि तस्य पिता तद्वत्क्रमेण सुमहामतिः ॥ वानप्रस्थं समास्थाय चतुर्थाश्रममभ्यगात् ॥ ३८ ॥ तत्रात्मजं समासाद्य हित्वा बन्धं गुणादिकम् ॥ प्राप सिद्धिं परां प्राज्ञस्तत्कालोपात्तसन्मतिः ॥३९॥ एतत्ते कथितं ब्रह्मन्यत्पृष्टा भवता वयम् ॥ सुविस्तरं यथावच्च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ४० ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्विप्र पठेद्वा सुसमाहितः ॥ ४१ ॥

पक्षी बोले हे द्विज ! महा बुद्धिमान् वह जड पितासे इस प्रकार कह उनकी आज्ञा ग्रहणपूर्वक निष्परिग्रह होकर चलागया ॥ ३७ ॥ उसके महामति पितानेभी क्रमक्रमसे वानप्रस्थता अवलम्बनपूर्वक चतुर्थ आश्रममें प्रवेश किया ॥ ३८ ॥ वह पुत्रके सहित संगत होकर गुणादिबंधविसर्जनपूर्वक तत्कालोत्पन्न बुद्धिके प्रभावसे परम सिद्धिको प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपने मुझसे जो पूछाथा वह आपके निकट विस्तारसहित यथावत् वर्णन किया । अब और क्या सुननेकी इच्छा है, सो प्रकाश करो ॥ ४० ॥ हे विप्र ! जो इसको सुने वा सावधान होकर पढै ॥ ४१ ॥

सो अश्वमेधके अवभृथस्नानके फलको प्राप्त होता है। हे मुनिसत्तम! इसके सुननेसे वह सब मिलता है ॥४२॥ यही संसारमें भ्रमण करनेवालोंकी उत्तम रक्षा है इस अलर्क और दत्तात्रेयके संवादको सुनकर मनुष्य अशुभसे छूटजाताहै ॥४३॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥
जैमिनिने कहा हे द्विजश्रेष्ठगण! वैदिककर्म दो प्रकारका है; प्रवृत्ति और निवृत्ति! आपने वह विषय मुझसे सम्यक् प्रकार वर्णन किया ॥ १ ॥ अहो पिताके प्रसादसे आपने ऐसा ज्ञान प्राप्त किया है, उस ज्ञानके बलसे तिर्यक् योनिको प्राप्त होकर भी आपका मोह दूर हुआ है ॥२॥ आपका मन जब सिद्धि-

यदश्वमेधावभृथस्नातः प्राप्नोति वै फलम् ॥ सकलं तदवाप्नोति श्रुत्वैतन्मुनिसत्तम ॥ ४२॥ एतत्संसारभ्रमणपरित्राणमनुत्तमम् ॥ अलर्कात्रेयसंवादमशुभान्मुच्यते नरः ॥ ४३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे जडोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ सम्यगेतन्ममाख्यातं भवद्भिर्द्विजसत्तमाः ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्मवैदिकम् ॥ १ ॥ अहो पितृप्रसादेन भवतां ज्ञानमीदृशम् ॥ येन तिर्यक्त्वमप्येतत्प्राप्य मोहस्तिरस्कृतः ॥२॥ धन्या भवन्तः संसिद्ध्यै प्रागवस्थास्थितं यतः ॥ भवतां विषयोद्भूतैर्न मोहैश्चाल्यते मनः ॥ ३ ॥ दिष्ट्या भगवता तेन मार्कण्डेयेन धीमता ॥ भवन्तो वै समाख्याताः सर्वसन्देहहृत्तमाः ॥ ४ ॥ संसारेऽस्मिन्मनुष्याणां भ्रमतामतिसङ्कटे ॥ भवद्विधैः समं सङ्गो जायते नातपस्विनाम् ॥ ५ ॥ यद्यहं सङ्गमासाद्य भवद्भिर्ज्ञानदृष्टिभिः ॥ न स्यां कृतार्थस्तन्नूनं न मेऽन्यत्र कृतार्थता ॥ ६ ॥ प्रवृत्ते च निवृत्ते च भवतां ज्ञानकर्मणि ॥ मतिमस्तमलां मन्ये यथा नान्यस्य कस्यचित् ॥ ७ ॥

लाभार्थ पूर्वावस्थामेंही रहता है, तब आपही धन्य हैं, विषयजनित मोह आपके मनको विचलित नहीं करसकता ॥ ३ ॥ सौभाग्यवशही महामति भगवान् मार्कण्डेयजीने आपकी कथा कहीथी. आप सभी संदेह हरण करनेवाले हैं ॥ ४ ॥ इस संकटमय संसारमें जो भ्रमण करते हैं, आपकी समान तपस्वियोंसे मिलना उनके भाग्यमें कठिन है ॥५॥ आप ज्ञानदर्शी हैं आपका संग प्राप्त होकरभी यदि मेरा मनोरथ सिद्ध न हो तो फिर और कहीं भी होनेकी संभावना नहीं है ॥ ६ ॥ आपको प्रवृत्त और निवृत्त, इस दो प्रकारके ज्ञानकर्ममें ऐसी विशदबुद्धि प्राप्त हुई है, मेरे विचारमें ऐसी और किसीको नहीं है ॥ ७ ॥

हे द्विजश्रेष्ठगण ! यदि मेरे प्रति आपकी मति अनुग्रहवती हुई है तो मैं जो पूंछताहूं, वह विस्तारसहित कहिये ॥ ८ ॥ किस प्रकारसे इस स्थावरजंगमात्मक जगत्की सृष्टि हुई ? और फिर किस प्रकार प्रलयकालमें लयको प्राप्त होगी ? ॥ ९ ॥ किस प्रकार वंशसे देवता, ऋषि, पितृगण और भूतादिकी उत्पत्ति होती है, किस प्रकारसे सब मन्वन्तरोंका आविर्भाव होता है ? इसके अतिरिक्त वंशोंका आनुपूर्विक विवरण ॥ १० ॥ समस्त सृष्टि, समस्त प्रलय, कल्पविभाग, मन्वन्तरोंकी स्थिति ॥ ११ ॥ पृथ्वीका संस्थान और परिमाण, गिरि, शैल, सरित् और वनोंका विवरण ॥ १२ ॥ मृत्युलोक, स्वर्गलोक और

यदि त्वनुग्रहवती मयि बुद्धिर्द्विजोत्तमाः ॥ भवतां तत्समाख्यातुमर्हतेदमशेषतः ॥ ८ ॥ कथमेतत्समुद्भूतं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ कथं च प्रलयं काले पुनर्यास्यति सत्तमाः ॥९॥ कथं च वंशा देवर्षिपितृभूतादिसम्भवाः ॥ मन्वन्तराणि च कथं वंशानुचरितं च यत् ॥ १० ॥ यावत्यः सृष्टयश्चैव यावन्तः प्रलयास्तथा ॥ यथाकल्पविभागश्च या च मन्वन्तरस्थितिः ॥११॥ यथा च क्षितिसंस्थानं यत्प्रमाणं च वै भुवः ॥ यथास्थितिसमुद्राद्रिनिम्नगाः काननानि च ॥ १२ ॥ भूर्लोकादिश्च लोकानां गणः पातालसंश्रयः ॥ गतिस्तथार्कसोमादिग्रहर्क्षज्योतिषामपि ॥ १३ ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वमेतदाभूतसंप्लवम् ॥ उपसंहृते च यच्छेषं जगत्यस्मिन्भविष्यति ॥ १४ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ प्रश्नभारोऽयमतुलो यस्त्वया मुनिसत्तम ॥ पृष्टस्तं ते प्रवक्ष्यामस्तच्छृणुष्वेह जैमिने ॥ १५ ॥ मार्कण्डेयेन कथितं पुरा क्रौष्टुकये यथा ॥ द्विजपुत्राय शान्ताय व्रतस्नाताय धीमते ॥ १६ ॥ मार्कण्डेयं महात्मानमुपासीनं द्विजोत्तमैः ॥ क्रौष्टुकिः परिपप्रच्छ यदेतत्पृष्टवान्प्रभो ॥ १७ ॥

पातालसमूहका वृत्तान्त, एवं सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, ज्योतिष इत्यादिकी गति ॥ १३ ॥ यह सब प्रलयपर्यन्त सुननेकी इच्छा करता हूं । जगत् संसार प्रलयकालमें उपसंहृत होनेपर जो अवशेष रहताहै वह भी सुननेकी अभिलाषा करताहूं ॥ १४ ॥ पक्षी बोले–हे जैमिने ! हे मुनिसत्तम ! आपने हमारे ऊपर अतुलनीय प्रश्नभार डालाहै; तुम्हारे पूछनेसे हम कहतेहैं सुनो ॥ १५ ॥ पहले मार्कण्डेयजीने जिस प्रकार शान्तवृत्ति विद्यास्नातक क्रौष्टुकिके निमित्तसे कथन किया है सो कहेंगे ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! आपने जो पूछा, क्रौष्टुकिनेभी ब्राह्मणोंसे उपासित महात्मा मार्कण्डेयके निकट यही प्रश्न किया था ॥ १७ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! भृगुनन्दनने प्रसन्नचित्त होकर जो कहाथा मैं वही तुमसे कहताहूं सुनो ॥१८॥ जो जगत्‌कारण पद्मयोनि पितामहरूपसे इस विश्वको उत्पन्न करतेहैं विष्णुस्वरूपसे स्थिति विधान करतेहैं रौद्रस्वरूप रुद्ररूपसे प्रलयकालमें सबका संहार करतेहैं, उन्हीं जगन्नाथको प्रणाम करके हमभी वही सविशेष वर्णन करतेहैं सुनो ॥ १९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—पूर्वकालमें अव्यक्तयोनि ब्रह्माजीके उत्पन्न होतेही उनके चारों मुखसे वेदों और पुराणोंका आविर्भाव हुआ ॥ २० ॥ ऋषियोंने उस पुराणसंहिताको विविध अंशमें और वेदकोभी सहस्र सहस्र भागमें विभक्त किया ॥ २१ ॥ उन महात्माके विना उपदेश, धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वरीय भाव, इन चारोंके सिद्ध होनेकी संभावना नहीं है ॥२२॥ उनके मनसे सप्तर्षिगणोंके उत्पन्न होनेपर उन मानस ऋषियोंने

तस्य चाकथयत्प्रीत्या यन्मुनिर्भृगुनन्दनः ॥ तत्ते प्रकथयिष्यामः शृणु त्वं द्विजसत्तम ॥ १८ ॥ प्रणिपत्य जगन्नाथं पद्मयोनिं पितामहम् ॥ जगद्योनिं स्थितं सृष्टौ स्थितौ विष्णुस्वरूपिणम् ॥ प्रलये चान्तकर्त्तारं रौद्रं रुद्रस्वरूपिणम् ॥ १९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ उत्पन्नमात्रस्य पुरा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ पुराणमेतद्वेदाश्च मुखेभ्योऽनुविनिःसृताः ॥ २० ॥ पुराणसंहिताश्चक्रुर्बहुलाः परमर्षयः ॥ वेदानां प्रविभागश्च कृतस्तैस्तु सहस्रशः ॥ २१ ॥ धर्मज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च महात्मनः ॥ तस्योपदेशेन विना नहि सिद्धं चतुष्टयम् ॥२२॥ वेदान्सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्य मानसाः ॥ पुराणं जगृहुश्चाद्या मुनयस्तस्य मानसाः ॥ २३ ॥ भृगोः सकाशाच्च्यवनस्तेनोक्तं च द्विजन्मनाम् ॥ ऋषिभिश्चापि दक्षाय प्रोक्तमेतन्महात्मभिः ॥ २४ ॥ दक्षेण चापि कथितमिदमासीत्तदा मम ॥ तत्तुभ्यं कथयाम्यद्य कलिकल्मषनाशनम् ॥ २५ ॥ सर्वमेतन्महाभाग श्रूयतां मे समाधिना ॥ यथाश्रुतं मया पूर्वं दक्षस्य गदतो मुने ॥ २६ ॥

उनके निकटसे समस्त वेद और तदीय मानसोत्पन्न अन्यान्य आद्य ऋषियोंने पुराण ग्रहण किये ॥ २३ ॥ च्यवनने भृगुके समीपसे उस पुराणको लेकर ऋषियोंके निकट प्रकाश किया, महात्मा ऋषियोंने वह पुराण दक्षसे कहा ॥ २४ ॥ दक्षनेही वह हमको प्रदान कियाहै, तबसे वह हमारे पास रहताहै अब तुमसे कहतेहैं इसके प्रसादसे कलियुगमें पापसमूह नाशको प्राप्त होतेहैं ॥ २५ ॥ हे मुने ! हे महाभाग ! हमने पहिले दक्षके निकटसे जिस प्रकार सुनाहै, सावधानचित्त होकर हमसे वह सब सुनो ॥ २६ ॥

जो जगत्के कारण, जन्मरहित, और अव्यय हैं, जो चराचर जगत्के एक मात्र आश्रय और धाता हैं जो परमपदस्वरूप हैं ॥ २७ ॥ जो सृष्टि स्थिति प्रलयके कारण आदिपुरुष हैं जो उपमारहित और जिनमें समस्तही प्रतिष्ठित रहताहै ॥ २८ ॥ उन धीमान् हिरण्यगर्भको प्रणाम करके अनुत्तम प्रपंच सम्यक् प्रकार वर्णन करतेहैं ॥ २९ ॥ महत्से विशेषपर्यन्त जितने भौतिक–सृष्टि–विकार लक्षण पंचविध प्रमाण और षट्स्रोतके सहित आनुपूर्विक कहेंगे ॥ ३० ॥ हे महाभाग ! यह भूतसृष्टि पुरुषसे अधिष्ठित और इसी कारण नित्य होकरभी जिस प्रकार अनित्यकी समान अवस्थित रहती है वह भी वर्णन करते हैं, तुम सावधान होकर सुनो ॥३१॥ जो अव्यक्तनामसे कहीजातीहै, महर्षिगण जिसको सदसदात्मिका नित्य सूक्ष्मा प्रकृति कहतेहैं ॥३२॥

प्रणिपत्य जगद्योनिमजमव्ययमाश्रयम् ॥ चराचरस्य जगतो धातारं परमं पदम् ॥२७॥ ब्रह्माणमादिपुरुषमुत्पत्तिस्थितिसंयमे ॥ यत्कारणमनौपम्यं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ २८ ॥ तस्मै हिरण्यगर्भाय लोकतन्त्राय धीमते ॥ प्रणम्य सम्यग्वक्ष्यामि भूतवर्गमनुत्तमम् ॥ २९॥ महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् ॥ प्रमाणैः पंचभिर्गम्यं स्रोतोभिः षड्भिरन्वितम् ॥३०॥ पुरुषाधिष्ठितं नित्यमनित्यमिव च स्थितम् ॥ तच्छ्रूयतां महाभाग परमेण समाधिना ॥ ३१ ॥ प्रधानं कारणं यत्तदव्यक्ताख्यं महर्षयः ॥ यदाहुः प्रकृतिं सूक्ष्मां नित्यां सदसदात्मिकाम् ॥ ३२ ॥ ध्रुवमक्षय्यमजरममेयं नान्यसंश्रयम् ॥ गन्धरूपरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ॥ ३३ ॥ अनाद्यंतं जगद्योनिं त्रिगुणप्रभवाप्ययम् ॥ असाम्प्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥ ३४ ॥ प्रलयस्यानु तेनेदं व्याप्तमासीदशेषतः ॥ गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने ॥ ३५ ॥

जो नित्य अक्षय, अजर और अपरिमेय है जो किसीका आश्रय ग्रहण करके अवस्थित नहीं है, जो गंधविहीन, रूपविहीन, रसहीन और शब्दस्पर्शरहित है ॥ ३३ ॥ जो अनादि और अनन्त हैं, जो जगत्के उत्पत्ति स्थान हैं, जिनसे तीनों गुण उत्पन्न हुएहैं, जो अविनाशी हैं, जो सदा विद्यमान और अविज्ञेय हैं और जो सबके कारण हैं, वह प्रधानस्वरूप ब्रह्मही सबके आगे विराजित रहकर ॥ ३४ ॥ प्रलयके पीछे अखिल जगत्को सम्यक् प्रकारसे व्याप्त करके विराजमान रहतेहैं । तीनों गुण परस्पर अनुकूल और अव्याहत रूपसे उनमेंही अधिष्ठित रहतेहैं ॥ ३५ ॥

सृष्टिकालमें क्षेत्रज्ञके अधिष्ठानके कारण उनके उस उस गुणकी सहायतासे, सृष्टिकार्यमें उद्यत होनेपर प्रथम तो प्रधानतत्त्व आविर्भूत होकर महत्तत्त्वको आच्छन्न कर देताहै ॥ ३६ ॥ बीज जिस प्रकार त्वचाद्वारा ढका रहताहै प्रधानभी उसी प्रकार महत्तत्त्वको आवृत करताहै यह महत्तत्त्व त्रिविध है सात्त्विक, राजस और तामस ॥ ३७ ॥ फिर महत्तत्त्वसे अहंकारकी उत्पत्ति होती है। यह अहंकार भी तीन प्रकार है, वैकारिक, तैजस और तामस । यह तामस अहंकारही भूतादिके नामसे कहाहै ॥ ३८ ॥ महत्तत्त्व जिस प्रकार प्रधान तत्त्वके द्वारा समाच्छन्न होताहै, ऐसेही यह अहंकारभी महत्तत्त्वके द्वारा ढका रहताहै और उसीके प्रभावसे विकारको प्राप्त होकर शब्दतन्मात्रको सृजन कर देताहै ॥ ३९ ॥ शब्दलक्षण आकाश इस शब्दतन्मात्रसेही उत्पन्न होता है

गुणभावात्सृज्यमानात्सर्गकाले ततः पुनः ॥ प्रधानं तत्त्वमुद्भूतं महान्तं तत्समावृणोत् ॥ ३६ ॥ यथा बीजं त्वचा तद्वदव्यक्तेनावृतो महान् ॥ सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधोदितः ॥ ३७ ॥ ततस्तस्मादहंकारस्त्रिविधो वै व्यजायत ॥ वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्च स तामसः ॥ ३८ ॥ महता चावृतः सोऽपि यथा व्यक्तेन वै महान् ॥ भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः ॥ ३९ ॥ ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् ॥ आकाशं शब्दमात्रं तु भूतादिश्चावृणोत्ततः ॥४०॥ स्पर्शतन्मात्रमेवेह जायते नात्र संशयः ॥ बलवाञ्जायते वायुस्तस्य स्पर्शगुणो मतः ॥ ४१ ॥ वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह ॥ ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ४२ ॥ स्पर्शमात्रस्तु वै वायुरूपमात्रं समावृणोत् ॥ ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ॥ ४३ ॥ सम्भवन्ति ततो ह्यापश्चासन्वै ता रसात्मिकाः ॥ रसमात्रं तु ता ह्यापो रूपमात्रं समावृणोत् ॥ ४४ ॥

तब तामस अहंकार द्वारा शब्द मात्र आकाश आच्छादित होता है ॥ ४० ॥ इससे निःसन्देह स्पर्श तन्मात्रकी उत्पत्ति होती है, तब महाबली स्पर्शगुणयुक्त वायु उत्पन्न होता है ॥ ४१ ॥ शब्दमात्र आकाशसे स्पर्शमात्र आवृत रहता है इसीसे वायुकी विकृतिके कारण रूपमात्र उत्पन्न होता है वायुसे रूपगुणयुक्त ज्योतिका आविर्भाव हुआ ॥ ४२ ॥ स्पर्शमात्र वायुके द्वारा रूपमात्र आवृत होता है पीछे ज्योति विकृत होकर रसमात्रको उत्पन्न करती है ॥ ४३ ॥ इसीसे रसात्मक जल उत्पन्न होता है, वही रसात्मक जल रूपमात्रसे आवृत होता है ॥ ४४ ॥

फिर रसमात्र जल विकृत होकर गंधमात्रको उत्पन्न करताहै, उसीसे गंधगुणयुक्त पृथ्वीकी उत्पत्ति होतीहै ॥ ४५ ॥ इस प्रकारसे उन उन पदार्थोंमें जो तन्मात्रा है, उसके द्वाराही तन्मात्रताकी गिनती होतीहै, इसके लिये कोई विशेष वाचक नहीं होनेसे यह भी अविशेष है ॥ ४६ ॥ इस अविशेषके कारण वह शान्त, घोर वा मूढ भी नहीं हैं तामस अहंकारसेही इस प्रकार भूत तन्मात्राकी उत्पत्ति होती है ॥ ४७ ॥ सत्त्वोद्रिक्त सात्त्विक और वैकारिक अहंकारसे एक साथ वैकारिक सृष्टि प्रवर्त्तित होती है ॥ ४८ ॥ पंचज्ञानेन्द्रिय और पंचकर्मेन्द्रियको तैजसइन्द्रिय कहाहै वहां वैकारिक दश देवता हैं ॥ ४९ ॥

आपश्चापि विकुर्वन्त्यो गन्धमात्रं ससर्जिरे ॥ संघातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः ॥४५॥ तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्मृता ॥ अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततश्च ते ॥ ४६ ॥ न शान्ता नापि घोरास्ते न मूढाश्चाविशेषतः ॥ भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तु तामसात् ॥ ४७ ॥ वैकारिकादहंकारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्त्विकात् ॥ वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्संप्रवर्त्तते ॥ ४८ ॥ बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पंच कर्मेन्द्रियाणि च ॥ तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ॥ ४९ ॥ एकादशं मनस्तत्र देवा वैकारिकाः स्मृताः ॥ श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पंचमी ॥ ५० ॥ शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वक्ष्यते ॥ पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाक्पंचमी भवेत् ॥ ५१ ॥ गतिर्विसर्गो ह्यानन्दः शिल्पं वाक्यं च कर्म तत् ॥ आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समाविशत् ॥ ५२ ॥ द्विगुणो जायते वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः ॥ रूपं तथैवाविशतः शब्दस्पर्शगुणावुभौ ॥ ५३ ॥

मन ग्यारहवाँ है. उल्लिखित दश इन्द्रिय और ग्यारहवाँ मन, तहां वैकारिक देवता कहे गयेहैं. श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जीभ और नासिका ॥ ५० ॥ इनके द्वारा शब्दादिका बोध होताहै, इसी कारण यह बुद्धीन्द्रिय कही गई हैं चरण पायु (गुदा) उपस्थ हस्त और वाक्य ॥ ५१ ॥ इत्यादिको कर्मेन्द्रिय कहतेहैं. इनके द्वारा गति, मलत्याग, आनन्द, शिल्प और वाक्यकथन यह सब कार्य समापन होतेहैं, शब्दमात्र आकाश स्पर्शमात्रमें आविष्ट होकर ॥ ५२ ॥ द्विगुण वायुको उत्पन्न करताहै, किन्तु स्पर्शही उसका विशेषगुण है, शब्द और स्पर्श यह दोनों गुण रूपमें आविष्ट होकर ॥ ५३ ॥

अग्नि उत्पन्न करते हैं. यह अग्नि शब्द, स्पर्श और रूप इन तीन गुणसे युक्त है, अनन्तर शब्द, स्पर्श और रूप, यह रसमात्रमें आविष्ट होकर ॥ ५४ ॥ चौगुने रसात्मक जलको उत्पन्न कर देते हैं, अन्तमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस गंधमात्रमें आविष्ट होनेसे ॥ ५५ ॥ उनके संघटमें संहत होकर इस पृथ्वीको समावृत करतेहैं इसी कारण भूतगणमें पंचगुणसंपन्न स्थूलाकार भूमि दिखाई देतीहै ॥ ५६ ॥ इसी हेतु वह शान्त, घोर और मूढ कहकर परिगणित है, वह परस्पर अनुप्रवेशपूर्वक परस्परको धारण करतेहैं ॥ ५७ ॥ यह घनावृत समस्त लोकालोक भूमिके अन्तरमें सन्निविष्ट रहते हैं, नियतत्वके हेतु यह

त्रिगुणस्तु ततश्चाग्निः स शब्दस्पर्शरूपवान् ॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसमात्रं समाविशत् ॥ ५४ ॥ तस्माच्चतुर्गुणा ह्यापो विज्ञेयास्ता रसात्मिकाः ॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धं समाविशत् ॥ ५५ ॥ संहता गन्धमात्रेण आवृण्वंस्ते महीमिमाम् ॥ तस्मात्पंचगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु दृश्यते ॥ ५६ ॥ शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः ॥ परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम् ॥ ५७ ॥ भूमेरन्तस्त्विमं सर्वं लोकालोकं घनावृतम् ॥ विशेषाश्चेंद्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृताः ॥५८॥ गुणं पूर्वस्य पूर्वस्य प्राप्नुवंत्यूत्तरोत्तरम् ॥ नानावीर्याः पृथग्भूताः सप्तैते संहतिं विना ॥ ५९ ॥ नाशक्नुवन्प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥ समेत्यान्योन्यसंयोगमन्योन्याश्रयिणश्च ते ॥ ६० ॥ एकसंघातचिह्नाश्च संप्राप्यैक्यमशेषतः ॥ पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ॥ ६१ ॥ महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते ॥ जलबुद्बुदवत्तत्र क्रमाद्वै वृद्धिमागतम् ॥ ६२ ॥

इन्द्रियग्राह्य "विशेष" नामसे कहेहैं ॥ ५८ ॥ पहले पहले गुण उत्तरोत्तरमें अनुप्रवेश करतेहैं, यह नानावीर्यवान् सात पदार्थ जबतक परस्पर मिलित न होकर पृथक् भावमें अवस्थित रहतेहैं ॥ ५९ ॥ तबतक प्रजासृष्टिमें समर्थ नहीं होते। यह जिस समय परस्परमें मिलित होकर परस्परको अवलम्बनपूर्वक ॥ ६० ॥ सम्यक् प्रकार ऐक्यताको प्राप्त होते हैं एवं जिस समय पुरुषका अधिष्ठान और प्रकृतिका अनुग्रह लाभ करतेहैं ॥ ६१ ॥ उसी समय महत्से विशेषपर्यन्त इन सबमें अण्ड उत्पादन करते हैं। यह अण्ड जलबुद्बुदकी समान जलमें आश्रयपूर्वक क्रमशः वर्द्धित होता रहताहै ॥ ६२ ॥

हे महामते ! सलिलमें स्थित यह अंड भूतगणसे बृहत् है. ब्रह्मसंज्ञक क्षेत्रज्ञभी उस प्राकृत अण्डमें वृद्धिको प्राप्त होतेहैं ॥ ६३ ॥ वही प्रथम शरीरी और पुरुष नामसे अभिहित है, वही भूतगणके आदिकर्ता ब्रह्मा हैं, वही इन सबसे आगे विराजित होते हैं ॥६४॥ वही सचराचर त्रैलोक्य व्याप्त कर रहे हैं. मेरु उस बृहत् अण्डका पर्वत उसका जरायु ॥ ६५ ॥ और समुद्र उसका गर्भसलिल है । सुर असुर और मनुष्योंसे पूर्ण समस्त जगत् उस अंडेमेंही ॥६६॥ द्वीपादि, पर्वत, सागर और ज्योतिष्कसहित सब लोक उसमें स्थित, जल, वायु, अग्नि, और आकाश यह भूतादिसहित ॥६७॥ प्रत्येक उत्तरोत्तर दशगुण नियमसे बहिर्भागमें उस अंडेको परिवेष्टित किये रहतेहैं इसके अतिरिक्त उसी प्रमाणसे महत्तत्त्वने भी उनके संग अण्डको आच्छादित किया है ॥६८॥

भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे बृहत्तदुदकेशयम् ॥ प्राकृतेऽण्डे विवृद्धः सन्क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥ ६३ ॥ सवै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ॥ आदिकर्ता च भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥ ६४ ॥ तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं स चराचरम् ॥ मेरुस्तस्यानुसंभूतो जरायुश्चापि पर्वताः ॥६५॥ समुद्रा गर्भसलिलं तस्याण्डस्य महात्मनः ॥ तस्मिन्नण्डे जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥६६॥ द्वीपाद्यद्रिसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः ॥ जलानिलानलाकाशैस्ततो भूतादिना बहिः ॥ ६७॥ वृतमण्डं दशगुणैरेकैकत्वेन तैः पुनः ॥ महता तत्प्रमाणेन सहैवानेन वेष्टितः ॥ ६८ ॥ महांस्तैः सहितः सर्वैरव्यक्तेन समावृतः ॥ एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ॥ ६९ ॥ अन्योन्यमावृत्य च ता अष्टौ प्रकृतयः स्थिताः ॥ एषा सा प्रकृतिर्नित्या तदन्तः पुरुषश्च सः ॥ ७० ॥ ब्रह्माख्यः कथितो यस्ते समासाच्छ्रूयतां पुनः ॥ यथा मग्नो जले कश्चिदुन्मज्जञ्जलसम्भवम् ॥ ७१ ॥

प्रकृति इस महत्तत्त्वके सहित अंडेको आवरण करके शोभा पाती है । इस प्रकार सब प्राकृत आवरणद्वारा उक्त अंड आच्छादित है ॥ ६९ ॥ इसी प्रकारसे अष्ट प्रकृति परस्परको आवरण करके स्थित हैं इन प्रकृतिको नित्यस्वरूप जानना चाहिये इसके अन्तमें वह पुरुष है ॥ ७० ॥ तुम्हारे निकट जो ब्रह्मसंज्ञित पुरुषका उल्लेख किया, उनका विषय संक्षेपसे कहताहूं, सुनो । जलमें डूबा हुआ पुरुष जिस प्रकार जलके भीतरसे उठनेके समयमें जल और जलमें प्रगट ॥ ७१ ॥

द्रव्य फेंक देताहै, ब्रह्माको भी उसी प्रकार प्रकृतिका विभु जानना चाहिये । यह प्रकृतिही क्षेत्र और ब्रह्माही क्षेत्रज्ञ नामसे कथित हैं ॥ ७२ ॥ यही क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके लक्षण हैं, इस प्रकारही क्षेत्रज्ञाधिष्ठित प्राकृत सृष्टि अबुद्धिपूर्वक प्रथम बिजलीके समान आविर्भूत हुई है ॥ ७३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ क्रौष्टुकि बोले-हे भगवन् ! आपने अण्डेकी उत्पत्ति और ब्रह्माण्डमें महात्मा ब्रह्माजीका जन्म यथावत् वर्णन किया ॥ १ ॥ हे भृगुवंशोद्भव ! प्रलयके अवसानमें समस्त संहारको प्राप्त होनेपर जब सृष्टिका कुछभी विद्यमान नहीं था, इसके पीछे फिर किस प्रकारसे भूतगणकी उत्पत्ति हुई ? अब वही विषय आपसे सुननेकी अभिलाषा करताहूं ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-जिस समय यह विश्व प्रकृतिमें लीन होताहै, तब

वलयं क्षिपति ब्रह्मा स तथा प्रकृतिर्विभुः ॥ अव्यक्तं क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥ ७२ ॥ एतत्समस्तं जानीयात्क्षेत्रक्षेत्रज्ञलक्षणम् ॥ इत्येष प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः ॥ अबुद्धिपूर्वः प्रथमः प्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ॥७३॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे ब्रह्मोत्पत्तिर्नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ भगवंस्त्वण्डसंभूतिर्यथावत्कथिता मम ॥ ब्रह्माण्डे ब्रह्मणो जन्म तथा चोक्तं महात्मनः ॥१॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं त्वत्तो भृगुकुलोद्भव ॥ यदा न सृष्टिर्भूतानामस्ति किंतु न चास्ति वा ॥ काले वै प्रलयस्यान्ते सर्वस्मिन्नुपसंहृते ॥२॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ यदा तु प्रकृतौ याति लयं विश्वमिदं जगत् ॥ तदोच्यते प्राकृतोऽयं विद्वद्भिः प्रतिसंचरः ॥ ३ ॥ स्वात्मन्यवस्थितेऽव्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते ॥ प्रकृतिः पुरुषश्चैव साधर्म्येणावतिष्ठतः ॥४॥ तदा तमश्च सत्त्वं च समत्वेन गुणौ स्थितौ ॥ अनुद्रिक्तावनूनौ च ओतप्रोतौ परस्परम् ॥ ५ ॥ तिलेषु वा यथा तैलं घृतं पयसि वा स्थितम् ॥ तथा तमसि सत्त्वे च रजोऽप्यनुसृतं स्थितम् ॥ ६ ॥

विद्वद्गण उसीको प्राकृत प्रलय कहते हैं ॥ ३ ॥ प्रकृतिके आत्मामें अवस्थित होनेसे संपूर्ण सृष्ट पदार्थ संहारको प्राप्त होतेहैं जिस समय प्रकृति और पुरुष साधर्म्यमें अवस्थित होतेहैं ॥ ४ ॥ तिस कालमें सत्त्व और तम यह दो गुण समभावसहित अधिष्ठित होते हैं । तिस समय उनमें किसीकोभी किसी प्रकारकी वृद्धि वा न्यूनता विद्यमान नहीं रहती, वह दोनों परस्पर समभावसे मिलकर ताने बानेकी समान अधिष्ठित रहतेहैं ॥ ५ ॥ तिलमें तेल और दूधमें घृतके समान रजोगुणभी सत्त्व और तमोगुणमें प्राप्त होकर स्थित होताहै ॥ ६ ॥

सर्वेश्वर ब्रह्माकी परमायुका परिमाण द्विपरार्द्धपर्यन्त है। उनके दिनका परिमाण जिस प्रकार है, रात्रिकाभी उसी प्रकार है ॥७॥ (आठ सहस्रयुगका प्रजापतिका दिनरात होताहै इसी मानसे ब्रह्माजी सौ वर्ष जीते हैं ब्रह्माकी सौ अवस्था बीतनेसे विष्णुकी अवस्थाका प्रमाण है शिवके आधे निमेषमें १४००० चौदह सहस्र विष्णु होचुकते हैं और ब्रह्मा कितने होते हैं इसकी संख्या नहीं है यह क्षेपक है।) वह जगत्के आदि हैं, किन्तु उनका आदि कोई नहीं है। वह सबके कारण, अचिंत्यात्मा, परमेश्वर और क्रियाके अतीत है ॥८॥ वह जगत्पति परमेश्वर परम योगहेतु प्रकृति और पुरुषमें प्रविष्ट होकर उनको विक्षोभित करते हैं ॥ ९॥ मद गर्व वा वसन्त वायु जिस प्रकार नव युवतियोंके अन्तरमें प्रविष्ट होकर क्षोभित करते हैं योगमूर्तिमान् ब्रह्माभी इसी प्रकार प्रकृति

उत्पत्तिर्ब्रह्मणो यावदायुर्वै द्विपरार्द्धिकम् ॥ तावद्दिनं परेशस्य तत्समा संयमे निशा ॥७॥ (अष्टौ युगसहस्राणि अहोरात्रं प्रजापतेः ॥ अनेनैव तु मानेन शतं ब्रह्मा स जीवति ॥ पितामहशतेनैव विष्णोर्मानं विधीयते ॥ निमेषार्धेन शंभोस्तु सहस्राणि चतुर्दश ॥ विनश्यंति तथा विष्णोरसंख्याताः पितामहाः ॥) अहर्मुखे प्रबुद्धस्तु जगदादिरनादिमान् ॥ सर्वहेतुरचिन्त्यात्मा परः कोऽप्यपरक्रियः ॥ ८ ॥ प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्याशु जगत्पतिः ॥ क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ॥९॥ यथा मदो नवस्त्रीणां यथा वा माधवानिलः ॥ अनुप्रविष्टः क्षोभाय तथासौ योगमूर्त्तिमान् ॥ १० ॥ प्रधाने क्षोभ्यमाणे तु स देवो ब्रह्मसंज्ञितः ॥ समुत्पन्नोऽण्डकोषस्थो यथा ते कथितं मया ॥ ११ ॥ स एव क्षोभकः पूर्वं स क्षोभ्यः प्रकृतेः पतिः ॥ स संकोचविकाशाभ्यां प्रधानत्वेऽपि संस्थितः ॥ १२ ॥ उत्पन्नः स जगद्योनिरगुणोऽपि रजोगुणम् ॥ भुञ्जन्प्रवर्तते सर्गे ब्रह्मत्वं समुपाश्रितः ॥ १३ ॥

और पुरुषको विक्षोभित करते हैं ॥ १० ॥ प्रकृतिके क्षोभित होनेपर वह ब्रह्मा नामधारी देवता अंडकोषमें स्थित होकर समुत्पन्न होतेहैं । मैंने तुम्हारे निकट यह कहाहै ॥ ११ ॥ वह प्रथम तो क्षोभित करतेहैं, फिर प्रकृतिके पति होकर स्वयं विक्षोभित होते हैं। इस प्रकार संकोच और विकाशद्वारा वह प्रकृतिरूपमें विराजित रहते हैं ॥ १२ ॥ वह जगत्योनि निर्गुण होकरभी प्रगट होकर रजोगुण अवलम्बनपूर्वक ब्रह्माके रूपसे उत्पन्न हो सृष्टि करनेका उद्योग करते हैं ॥ १३ ॥

वह ब्रह्मरूपसे प्रजासृजनपूर्वक सत्त्वगुणकी अधिकताके कारण विष्णुमूर्त्ति धारण करके न्यायानुसार प्रजाका पालन करते हैं ॥ १४ ॥ तदनन्तर तमोगुणके उद्रेकसे रुद्रमूर्ति ग्रहण करके संपूर्ण विश्वका संहार करते हुए शयन करतेहैं इस प्रकारसे वह निर्गुण होकरभी उल्लिखित तीन कालमें तीनों गुणकी भजना करतेहैं ॥ १५ ॥ सबके जननक्षेत्र सर्वव्यापी वह ईश्वर इस प्रकारसे सृजन, रक्षण और संहार करनेके कारण ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर संज्ञाको प्राप्त हुए हैं ॥ १६ ॥ वह ब्रह्मत्वमें संपूर्ण लोकोंको उत्पन्न, रुद्रत्वमें निधन और विष्णुत्वमें उदासीन होकर अवस्थान करते हैं अर्थात् पालन करते हैं, स्वयम्भूकी यह तीन अवस्था हैं ॥ १७ ॥ ब्रह्माही साक्षात् रजोगुण, रुद्र तमोगुण और जगत्पति विष्णु सत्त्वगुण हैं ॥ १८ ॥ तिस प्रकारसे यह तीनों देवता तीनों

ब्रह्मत्वे स प्रजाः सृष्ट्वा ततः सत्त्वातिरेकवान् ॥ विष्णुत्वमेत्य धर्मेण कुरुते परिपालनम् ॥ १४ ॥ ततस्तमोगणोद्रिक्तो रुद्रत्वे चाखिलं जगत् ॥ उपसंहृत्य वै शेते त्रैलोक्यं त्रिगुणोऽगुणः ॥ १५ ॥ यथा प्राग्व्यापकः क्षेत्री पालको लावकस्तथा ॥ तथा स संज्ञामाप्नोति ब्रह्मविष्णुहरात्मिकाम् ॥ १६ ॥ ब्रह्मत्वे सृजते लोकान्रुद्रत्वे संहरत्यपि ॥ विष्णुत्वे चाप्युदासीनस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः ॥ १७ ॥ रजो ब्रह्मा तमो रुद्रो विष्णुः सत्त्वं जगत्पतिः ॥ एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयो गुणाः ॥ १८ ॥ अन्योन्यमिथुना ह्येते अन्योन्याश्रयिणस्तथा ॥ क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजन्ति परस्परम् ॥ १९ ॥ एवं ब्रह्मा जगत्पूर्वो देवदेवश्चतुर्मुखः ॥ रजोगुणं समाश्रित्य स्रष्टृत्वे स व्यवस्थितः ॥ २० ॥ हिरण्यगर्भो देवादिरनादिरुपचारतः ॥ भूपद्मकर्णिकासंस्थो ब्रह्माग्रे समजायत ॥ २१ ॥ तस्य वर्षशतं त्वेकं परमायुर्महात्मनः ॥ ब्राह्म्येणैव हि मानेन तस्य संख्यां निबोध मे ॥ २२ ॥

गुणरूपमें परस्पर निपुणभावसे परस्परको आश्रयपूर्वक विराजमान रहते हैं, क्षणमात्रकोभी इनका वियोग नहीं है और मुहूर्तमात्रके लियेभी कोई किसीको परित्याग नहीं करता ॥ १९ ॥ इस प्रकार जगत्के आदि देवदेव चतुरानन रजोगुण अवलम्बन करके सबके सृजनकार्यमें प्रवृत्त होतेहैं ॥ २० ॥ वह हिरण्यगर्भ देवादि और एक प्रकारसे अनादि हैं। वह भूपद्मकर्णिका अवलम्बनपूर्वक सबके आगे आविर्भूत होतेहैं ॥ २१ ॥ उन महात्माकी परमायुसंख्या ब्राह्ममानके शतवर्ष निरूपित है। उनकी संख्या कहताहूं, सुनो ॥ २२ ॥

पन्द्रह निमेषमें एक काष्ठा, तीस काष्ठामें एक कला, तीस कलामें एक मुहूर्त्त ॥ २३ ॥ और तीस मुहूर्त्तमें मनुष्यका एक दिनरात्र होताहै, तीस दिनरात्रमें अथवा दो पक्षमें एक मास होता है ॥२४॥ छः मासमें एक अयन, और दो अयनमें एक वर्ष होताहै। अयन दो प्रकार है दाक्षिणायन और उत्तरायण। इस प्रकार नरमानके एक वर्षमें देवताओंका एक अहोरात्र होताहै, तिनमें उत्तरायण उनका दिन है ॥ २५ ॥ दिव्यपरिमाणसे बारह हजार वर्षमें सत्यादि चार युग होतेहैं, उन चारों युगका विभाग कहताहूं, सुनो ॥२६॥ दिव्य चार हजार वर्षमें सत्ययुग होताहै, चार सौ वर्ष उसकी संध्या और ४०० वर्ष संध्यांश है ॥ २७ ॥ तीन हजार दिव्य वर्षमें त्रेतायुग होता, देवमानके तीन सौ वर्षमें उसकी संध्या और ३०० वर्ष संध्यांश होताहै ॥ २८ ॥

निमेषैर्दशभिः काष्ठा तथा पञ्चभिरुच्यते ॥ कलास्त्रिंशच्च वै काष्ठा मुहूर्तं त्रिंशदेव ताः ॥ २३ ॥ अहोरात्रं मुहूर्तानां नृणां त्रिंशत्तु वै स्मृतम् ॥ अहोरात्रैश्च त्रिंशद्भिः पक्षौ द्वौ मास उच्यते ॥२४॥ तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे ॥ तद्देवानामहोरात्रं दिनं तत्रोत्तरायणम् ॥२५॥ दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञिताम् ॥ चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं शृणुष्व मे ॥२६॥ चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां कृतमुच्यते ॥ शतानि सन्ध्या चत्वारि सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥२७॥ त्रेता त्रीणि सहस्राणि दिव्याब्दानां शतत्रयम् ॥ तस्य सन्ध्या समाख्याता संध्यांशश्च तथाविधः ॥२८॥ द्वापरं द्वे सहस्रे तु वर्षाणां द्वे शते तथा ॥ तस्य सन्ध्या समाख्याता द्वे शताब्दे तदंशकः ॥२९॥ कलिः सहस्रं दिव्यानामब्दानां द्विजसत्तम ॥ सन्ध्या सन्ध्यांशकश्चैव शतकौ समुदाहृतौ ॥ ३० ॥ एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या कविभिः कृता ॥ एतत्सहस्रगुणितमहो ब्राह्ममुदाहृतम् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन्मनवः स्युश्चतुर्दश ॥ भवन्ति भागशस्तेषां सहस्रं तद्विभज्यते ॥ ३२ ॥

द्वापर युगका परिमाण दो हजार दिव्य वर्ष है । दो सौ दिव्य वर्षमें उसकी संध्या और वर्ष २०० संध्यांश होताहै ॥ २९ ॥ हे मुनिसत्तम ! एक हजार दिव्य वर्षमें कलियुग होताहै, एवं उसकी संध्या और संध्यांश, दोनोंही एक शत २ दिव्यवर्ष हैं ॥ ३० ॥ कवियोंने इस प्रकारसे चारों युगका परिमाण बारह हजार दिव्य वर्षमें विभाग कियाहै, इसको सहस्र गुण करनेसे जो होताहै, वही ब्रह्माका एक दिन निरूपित है ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माके इस एक दिनमें यथा विभाग चौदह मनु उत्पन्न होतेहैं, उनका सहस्र विभाग कल्पित होताहै ॥ ३२ ॥

इन्द्रादि देवता, सप्तर्षिगण, मनुगण और मनुपुत्र नृपतिगण मन्वन्तरके सहित उत्पन्न होतेहैं और पूर्वके समान संहारको प्राप्त होतेहैं ॥ ३३ ॥ इकहत्तर चतुर्युगमें एक मन्वन्तर होता है, नरमानके अनुसार इसकी संख्या कहताहूं सुनो ॥ ३४॥ संपूर्ण तीस करोड सडसठ लाख बीस सहस्र ३०६७२००० मनुष्यवर्षही एक मन्वन्तरका परिमाण है, अब दिव्यमानके वर्षानुसार सुनो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ आठ लाख बावन हजार दिव्यवर्षमें एक मन्वन्तर होता है ॥ ३७ ॥ इस कालको चतुर्दशगुणित करनेसे ११९२८००० दिव्य वर्षका ब्रह्माका एक दिन होता है ४२९४०००००० यह मनुष्य वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन होता है हे ब्रह्मन् ! इस ब्राह्म दिनके अन्तमें जो प्रलय संघटित होता है पण्डितगण उसीको नैमित्तिक प्रलय कहते हैं ॥ ३८ ॥ भूर्लोक भुव-

देवाः सप्तर्षयः सेन्द्रा मनुस्तत्सूनवो नृपाः ॥ मनुना सह सृज्यन्ते संह्रियन्ते च पूर्ववत् ॥ ३३ ॥ चतुर्युगानां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः ॥ मन्वन्तरं तस्य संख्यां मानुषाब्दैर्निबोध मे ॥३४॥ त्रिंशत्कोट्यस्तु संपूर्णाः संख्याता संख्यया द्विज ॥ सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि च संख्यया ॥ ३५ ॥ विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं साधिकं विना ॥ एतन्मन्वन्तरं प्रोक्तं दिव्यैर्वर्षैर्निबोध मे ॥ ३६ ॥ अष्टौ वर्षसहस्राणि दिव्यया संख्यया युतम् ॥ द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ॥ ३७ ॥ चतुर्दशगुणो ह्येष कालो ब्राह्ममहः स्मृतम् ॥ तस्यान्ते प्रलयः प्रोक्तो ब्राह्मो नैमित्तिको बुधैः ॥ ३८ ॥ भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकस्तन्निवासिनः ॥ तदा विनाशमायांति महर्लोकश्च तिष्ठति ॥ ३९ ॥ तद्वासिनोऽपि तापेन जनलोकं प्रयान्ति वै ॥ एकार्णवे च त्रैलोक्ये ब्रह्मा स्वपिति वै निशि ॥ ४० ॥ तत्प्रमाणैव सा रात्रिस्तदन्ते सृज्यते पुनः ॥ एवं तु ब्रह्मणो वर्षमेकं वर्षशतं तु तत् ॥ ४१ ॥

र्लोक तथा स्वर्लोकके निवासी इन लोकोंके नाशको प्राप्त होनेपर महर्लोकमें जाकर रहतेहैं ॥ ३९ ॥ महर्लोकके निवासी प्रलयकालजनित तापसे जनलोकमें प्रस्थान करते हैं, तब त्रिभुवन एकार्णव होता है, ब्रह्मा रात्रिकालमें शयन करते हैं ॥ ४० ॥ दिनका परिमाण जिस प्रकार है, ब्रह्माजीकी रात्रिका परिमाणभी उसी प्रकार है । रात्रिके अन्तमें फिर सृजन कार्य आरंभ होताहै । इस प्रकार तीन सौ साठ दिनमें अर्थात् इतनी प्रलयमें ब्रह्माका एक वर्ष होता है ॥ ४१ ॥

एक शत वर्षको पर कहते हैं, इस प्रकार पञ्चाशत् वर्षमें एक परार्द्ध होताहै ॥ ४२ ॥ हे द्विजसत्तम! इस भाँतिसे ब्रह्माका एक परार्द्ध बीत गयाहै उसीकी अन्तमें पाद्म नामक महाकल्प उपस्थित हुआ था ॥ ४३ ॥ हे द्विज! अब दूसरा परार्द्ध विद्यमान है, इसीको वाराह कल्प कहते हैं, यही प्रथमकल्प कहकर परिकाल्पित है ॥ ४४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ क्रौष्टुकिने कहा—भगवान् प्रजापति प्रभु आदिस्रष्टा ब्रह्माजीने जिस प्रकार प्रजाको उत्पन्न किया था, वह मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे ब्रह्मन्! जगत्कारण भगवान् अना-

शतं हि तस्य वर्षाणां परमित्यभिधीयते ॥ पंचाशद्भिस्तथा वर्षैः परार्द्धमिति कीर्त्यते ॥ ४२ ॥ एकमस्य परार्द्धं तु व्यतीतं द्विजसत्तम ॥ यस्यान्तेऽभून्महाकल्पः पाद्म इत्यभिविश्रुतः ॥ ४३ ॥ द्वितीयस्य परार्द्धस्य वर्त्तमानस्य वै द्विज ॥ वाराह इति कल्पोऽयं प्रथमः परिकल्पितः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे ब्रह्मायुःप्रमाणकथनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ यथा ससर्ज वै ब्रह्मा भगवानादिकृत्प्रजाः ॥ प्रजापतिः पतिर्देवस्तन्मे विस्तरतो वद ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कथयाम्येष ते ब्रह्मन्ससर्ज भगवान्यथा ॥ लोककृच्छाश्वतः कृत्स्नं जगत्स्थावरजंगमम् ॥ २ ॥ पाद्मावसानसमये निशासुप्तोत्थितः प्रभुः ॥ सत्त्वोद्रिक्तस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमवैक्षत ॥ ३ ॥ इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥ ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥ ४ ॥ आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥ तासु शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः ॥ ५ ॥

दिने जिस प्रकार इस स्थावर जंगमपूर्ण समस्त जगत्को निर्माण किया था, वह आपसे कहताहूं ॥ २ ॥ पाद्म नामक प्रलयका अवसान होनेपर अर्थात् पाद्मकल्पके शेष होनेपर सत्त्वगुणद्वारा उद्रिक्त प्रभु ब्रह्माजी जब रात्रि बीतनेमें सोकर उठे तो संपूर्ण भुवनको शून्य देखा ॥ ३ ॥ उस समय जगत्कारण अव्यय ब्रह्मस्वरूपी नारायणके प्रति यह श्लोक कहा जाताहै कि ॥ ४ ॥ " सुनाहै. जल शब्दका नाम नार–तनु है। उसमें वह अयन शयन करते हैं, इस कारण वह नारायण नामसे कीर्तित होतेहैं" ॥ ५ ॥

नारायणने जागरित होकर पृथ्वीको उस जलमें डूबाहुआ अनुमान किया और उसके उद्धारकी कामनासे ॥ ६ ॥ पूर्व पूर्व कल्पमें मत्स्य कूर्मादिके समान वाराहमूर्ति धारण की ॥ ७ ॥ वह वेदयज्ञमें प्रभु वेदयज्ञरूप शरीरको धारण करके वह सर्वगामी सर्वभावन वाराहरूप धर जलमें प्रविष्ट हुए ॥ ८ ॥ और फिर पातालसे उद्धार कर पृथ्वीको जलके ऊपर स्थापन किया फिर जनलोकनिवासी महर्षियोंसे चिन्त्यमान वह जगत्पति प्रभु देखने लगे ॥ ९ ॥ कि यह जलमें नौकाकी समान डोलतीहै विस्तार होनेसे यह ठहरती नहीं ॥ १० ॥ इसके पीछे पृथ्वीको बराबर करके प्रथम तो पर्वतोंकी सृष्टि करी । प्रथम

विबुद्धः सलिले तस्मिन्विधायान्तर्गतां महीम् ॥ अनुमानात्समुद्धारं कर्तुकामस्तदा क्षितेः ॥ ६ ॥ अकरोत्स तनूरन्याः कल्पादिषु यथा पुरा ॥ मत्स्यकूर्मादिकास्तद्वद्वाराहं वपुरास्थितः ॥ ७ ॥ वेदयज्ञमयं दिव्यं वेदयज्ञमयो विभुः ॥ रूपं कृत्वा विवेशाप्सु सर्वगः सवसम्भवः ॥ ८ ॥ समुद्धृत्य च पातालान्मुमोच सलिले भुवम् ॥ जनलोकस्थितैः सिद्धैश्चिन्त्यमानो जगत्पतिः ॥ ९ ॥ तस्योपरि जलौघस्य महती नारिव स्थिता ॥ विस्तृतत्वात्तु देहस्य न मही याति संप्लवम् ॥१०॥ ततः क्षितिं समीकृत्य पृथिव्यां सोऽसृजाद्गिरीन् ॥ प्राक्सर्गे दह्यमाने तु तदा संवर्तकाग्निना ॥ ११ ॥ तनाग्निना विशीर्णास्ते पर्वता भुवि सर्वशः ॥ शैलौ एकार्णवे मग्ना वायुनापस्तु संहताः ॥१२॥ निषक्ता यत्र यत्रासंस्तत्र तत्राचलाभवन् ॥ भूविभागं ततः कृत्वा सप्तद्वीपापेशोभितम् ॥१३॥ भूराद्यांश्चतुरो लोकान्पूर्ववत्समकल्पयत् ॥ सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा ॥ १४ ॥ अबुद्धिपूर्वकस्तस्मात्प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥ तमोमोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ॥ १५ ॥ अविद्या पंचपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ पंचधावस्थितः सर्गो ध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ॥ १६ ॥

सृष्टिको सम्वर्तक अग्निने जलायाथा ॥ ११ ॥ सब पर्वत उस अग्निके सन्तापसे विशीर्णकलेवर होकर समुद्रमें डूब गये थे तब वहांका जलभी वायुद्वारा एकत्रित होगया ॥१२॥ अतएव पर्वत जिस जिस स्थलमें संलग्न हुएथे उसी उसी स्थानमें अचल होगये, अनन्तर सप्तद्वीप रूपमें भू विभाग करके ॥१३॥ पूर्ववत् भूर्लोकादि चार लोकका विभाग किया। पूर्व पूर्व कल्पके समान सृष्टि—विषयकी चिन्ता करते करते ॥ १४॥ तमोमय तमः मोह महामोह, तामिस्र और अंधतामिस्रनामक ॥१५॥ पंच अविद्या उन महात्मासे प्रादुर्भूत हुई, इस प्रकार चिन्ता करनेसे अप्रतिबोधयुक्त सृष्टि पांच प्रकारसे स्थित हुई॥१६॥

वह संवृतात्मक और पर्वतस्वरूप तथा अपने बहिर्भाग और अन्तर देशमें सबही अप्रकाशित थी, यह सृष्टि पर्वतप्रधान होनेके कारण मुख्य सर्गके नामसे कही गई है ॥ १७ ॥ उन्होंने यह असाधक सृष्टि देखकर फिर दूसरी सृष्टिकी इच्छा करी तब उनके ध्यानसे तिर्यक्स्रोत प्रवृत्त हुआ ॥ १८ ॥ सृष्टिकी चिन्ता करते २ उनसे तिर्यक्स्रोत प्रवाहित होनेके कारण यह तिर्यक्स्रोत कहाताहै; इससे अधिक तमोगुणवाले पशु आदिक अज्ञानी हुए ॥ १९ ॥ वह अज्ञानमें ज्ञान माननेवाले उन्मार्गगामी हुए वे अहंकारी अहंमानी अठ्ठाईस प्रकारके हुए ॥ २० ॥ यह सब अन्तःप्रकाश और परस्परको आवरण करके

बहिरन्तश्चाप्रकाशः संवृतात्मा नगात्मकः ॥ मुख्या नगा यतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम्॥१७॥ तं दृष्ट्वा साधकं सर्गममन्यदपरं पुनः ॥ तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्यक्स्रोतो ह्यवर्तत ॥ १८ ॥ यस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तिः सा तिर्यक्स्रोतस्ततः स्मृतः ॥ पश्वादयस्ते विख्यातास्तमःप्राया ह्यवेदिनः ॥१९॥ उत्पथग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥ अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्विधात्मकाः॥२०॥ अन्तःप्रकाशास्ते सर्वे आवृतास्तु परस्परम् ॥ तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ॥२१॥ ऊर्द्धस्रोतस्तृतीयस्तु सात्त्विकोर्द्धमवर्तत ॥ ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः ॥ २२ ॥ प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतःसमुद्भवाः ॥ तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गो हि स स्मृतः ॥२३॥ तस्मिन्सर्गेऽभवत्प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा ॥ ततोऽन्यं स तदा दध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम् ॥ २४ ॥ तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः ॥ ॥ प्रादुर्बभौ तदाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः ॥ २५ ॥

अवस्थित हैं इस सृष्टिको भी असाधक विचारकर फिर चिन्ता करनेसे अन्य ॥ २१ ॥ ऊर्ध्वपथगामी तीसरा सात्त्विक स्रोत प्रवाहित होनेलगा, उसमें जो उत्पन्न हुए, वह सुख प्रीतिकी अधिकाईवाले बाहर भीतर अनावृत ॥ २२ ॥ भीतर बाहर प्रकाशवाले और तुष्टात्मा थे, इस तीसरी सृष्टिको देवसर्ग कहते हैं ॥ २३ ॥ इस सृष्टिके उत्पन्न होनेसे ब्रह्माजीको अत्यन्त संतोष हुआ, तब वह फिर उत्तम साधक सर्गकी चिन्ता करनेलगे ॥ २४ ॥ तब उन यथार्थ चिन्तासमन्वित ब्रह्माजीके चिन्ता करने पर अव्यक्तसे अर्वाक्स्रोत नामक साधक सर्ग उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥

यह अर्वाक् ऊर्ध्वसे अग्र हुए हैं, इस कारण इसको अर्वाक्स्रोत सर्ग कहते हैं, इनमें प्रकाश अधिक तम थोडा, और रजोगुण बहुत है ॥२६॥ इसी कारण इनमें दुःख अधिक और वारंवार कार्य करते हैं, यह बाहर भीतर प्रकाशवाले साधक मनुष्य हैं ॥२७॥ पांचवीं सृष्टि अनुग्रहनामक है, विपर्यय सिद्धि, शांति, और सृष्टिद्वारा चार भागमें विभक्त है ॥२८॥ जो भूत और वर्त्तमान समस्त अर्थको जानतेहैं, उन भूतादिक और समस्त भूतोंकी सृष्टि छः सर्ग कहा गया है ॥२९॥ वह सबही स्त्री रखनेवाले सम्यक् विभाग विषयमें रत, प्रेरणामें निपुण और कुत्सितस्वभाव हैं, इनकोही भूतादिक कहतेहैं ॥३०॥ प्रथम जिससे

यस्मादर्वाग्व्यवर्तन्त ततोऽर्वाक्स्रोतसस्तु ते ॥ ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ॥ २६ ॥ तस्मात्ते दुःखबहुला भूयो भूयश्च कारिणः ॥ प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते ॥२७॥ पंचमोऽनुग्रहः सर्गः स चतुर्द्धा व्यवस्थितः ॥ विपर्ययेण सिद्ध्या च शांत्या तुष्ट्या तथैव च ॥ २८ ॥ निवृत्तं वर्तमानं च तेऽर्थं जानन्ति वै पुनः ॥ भूतादिकानां भूतानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ॥२९॥ ते परिग्राहिणः सर्वे संविभागरतास्तथा ॥ चोदनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्च ते ॥ ३०॥ प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ॥ तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ॥ ३१ ॥ वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चैन्द्रियकः स्मृतः ॥ इत्येष प्राकृतः सर्गः संभूतो बुद्धिपूर्वकः ॥३२॥ मुख्यः सर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥ तिर्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः स पंचमः ॥ ३३ ॥ तथोर्द्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ ततोर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥३४॥ अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः ॥ पंचैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ॥ ३५ ॥

ब्रह्माजीकी सृष्टि होती है; उसको महत् सृष्टि कहतेहैं, ब्रह्मांशकी सृष्टि दूसरी है, उसको भूतसर्ग कहते हैं ॥ ३१ ॥ ऐन्द्रियक वैकारिक सृष्टि तीसरी है; यही प्राकृत सर्ग और बुद्धिपूर्वक है ॥ ३२ ॥ मुख्य सर्ग चौथा है, स्थावरगणकोही मुख्य कहा गयाहै, कथित तिर्यक् योनिरूप तिर्यक्स्रोत पंचम सर्ग है ॥३३॥ ऊर्ध्वस्रोतकी सृष्टि छठी है, वह देवसर्गके नामसे कही गई है, इसके पीछे अर्वाक्स्रोत सातवीं सृष्टि है वह मानुष है ॥३४॥ अनुग्रह सर्ग आठवाँ

है, वह सात्त्विक और तामस भेदसे दो प्रकारका है यह पाँच वैकृत सृष्टि और पूर्वोक्त तीन प्राकृत सृष्टि हैं ॥ ३५॥ प्राकृत और विकारी कौमार नामक सृष्टि नवम है, इस भाँति प्रजापतिकी नवसंख्यक सृष्टि कही गई है ॥ ३६ ॥ यह प्राकृत और विकारीही जगत्के मूलकारण हैं, जो जगदीशने सृजन किये हैं, अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥ क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! आपने मुझसे जिस प्रकार सृष्टिप्रकरण वर्णन किया, वह अतिसंक्षेपसे हुआहै, अतएव हे ब्रह्मन् ! अब देवता इत्यादिकी उत्पत्ति विस्तारसहित कहिये ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे ब्रह्मन् ! पूर्वजन्मके शुभ अशुभ कर्मसेही फिर उत्पत्ति होतीहै, कारण कि वह प्रलयमें संहृत होतेहैं, मुक्त नहीं होते ॥ २ ॥ देवता

प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ॥ इत्येते वै समाख्याता नव सर्गाः प्रजापतेः ॥३६ ॥ प्राकृता वैकृताश्चैव जगतो मूलहेतवः ॥ सृजतो जगदीशस्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे प्राकृतवैकृतसर्गवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ समासात्कथिता सृष्टिः सम्यग्भगवता मम ॥ देवादीनां भवं ब्रह्मन्विस्तरात्तु ब्रवीहि मे ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कुशलाकुशलैर्ब्रह्मन्भाविता पूर्वकर्मभिः ॥ ख्यात्या तया ह्यनिर्मुक्ताः प्रलये ह्युपसंहृताः ॥ २ ॥ देवाद्याः स्थावरान्ताश्च प्रजा ब्रह्मंश्चतुर्विधाः ॥ ब्रह्मणः कुर्वतः सृष्टिं जज्ञिरे मानसास्तदा ॥ ३ ॥ ततो देवासुरपितॄन्मानुषांश्च चतुष्टयम् ॥ सिसृक्षुरम्भस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ॥ ४ ॥ युक्तात्मनस्तमोमात्रा उद्रिक्ताभूत्प्रजापतेः ॥ सिसृक्षोर्जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे ततः ॥ ५ ॥ उत्ससर्ज ततस्ता तु तमोमात्रात्मिकां तनुम् ॥ सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत ॥ ६ ॥

इत्यादिसे स्थावर पर्यन्त चार प्रकारकी प्रजाके प्रलयकालमें नष्ट होनेपर ब्रह्माजीने फिर उसकी सृष्टिके निमित्त इच्छा की, तब अपने मनसे ॥ ३ ॥ देवता, असुर, पितर और मनुष्य, यह चार प्रकार प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छासे उन्होंने जलमें अपना अंश निक्षेप किया ॥ ४ ॥ सृष्टिकी इच्छा करनेवाले प्रजापतिमें तमोगुणका उद्रेक होनेके कारण पहिले उनकी जंघासे असुरगण उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ इसी निमित्त उनको तमोगुणात्मक शरीर प्रदान किया और वही शरीर त्यक्त होकर तत्काल तमोगुणात्मिका रात्रिके नामसे विख्यात हुआ ॥ ६ ॥

अनन्तर प्रजापति अन्य शरीर ग्रहण करके प्रसन्नताको प्राप्त हुए, उसमें सत्त्वगुणका उद्रेक होनेके कारण उनके मुखसे देवताओंकी सृष्टि होनेपर ॥ ७ ॥ उनको सात्त्विकशरीर दिया; तब त्यागाहुआ सत्त्वगुणबहुल कलेवरही दिन नामको प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥ फिर सत्त्वमय दूसरा शरीरग्रहणपूर्वक पितरोंकी इच्छासे पितरोंको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ पितरोंको उत्पन्न करके प्रभुने उस शरीरको भी परित्याग किया, तब वही दिन रात्रिके अभ्यन्तर स्थित संध्यारूपमें परिणत हुआ ॥ १० ॥ इसके पीछे रजोमात्रात्मिका अन्य तनु ग्रहणपूर्वक रजोगुणबहुल मनुष्य सृष्टि उत्पन्न करी ॥ ११ ॥ मनुष्योंको उत्पन्न करके

अन्यां तनुमुपादाय सिसृक्षुः प्रीतिमाप सः ॥ सत्त्वोद्रेकास्ततो देवा मुखतस्तस्य जज्ञिरे ॥७॥ उत्ससर्ज च भूतेशस्तनुं तामप्यसौ विभुः ॥ सा चापविद्धा दिवसं सत्त्वप्रायमजायत ॥८॥ सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम् ॥ पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जज्ञिरे ॥९॥ सृष्ट्वा पितॄनुत्ससर्ज तनुं तामपि स प्रभुः ॥ सा चोत्सृष्टाभवत्सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थिता ॥ १० ॥ रजोमात्रात्मिकामन्यां तनुं भेजेऽथ स प्रभुः ॥ ततो मनुष्याः सम्भूता रजोमात्रसमुद्भवाः ॥ ११ ॥ सृष्ट्वा मनुष्यान्स विभुरुत्ससर्ज तनुं ततः ॥ ज्योत्स्ना समभवत्सा च नक्तांतेऽहर्मुखे च या ॥१२॥ इत्येतास्तनवस्तस्य देवदेवस्य धीमतः ॥ ख्याता रात्र्यहनी चैव सन्ध्या ज्योत्स्ना च वै द्विज ॥१३॥ ज्योत्स्ना सन्ध्या तथैवाहः सत्त्वमात्रात्मकं त्रयम् ॥ तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मात्तमोधिका ॥ १४ ॥ तस्माद्देवा दिवा रात्रावसुरास्तु बलान्विताः ॥ ज्योत्स्नागमे च मनुजाः सन्ध्यायां पितरस्तथा ॥ १५ ॥ भवन्ति बलिनोऽधृष्या विपक्षाणां न संशयः ॥ तद्विपर्ययमासाद्य प्रयान्ति च विपर्ययम् ॥ १६ ॥

उस विभुने वह शरीर भी त्याग किया, वही ज्योत्स्ना हुआ यह ज्योत्स्ना रात्रिके शेष और दिनके प्रथमभागमें प्रादुर्भूत होतीहै ॥ १२ ॥ हे द्विज ! बुद्धिमान् देवदेवके यह समस्त विग्रहही दिवा, रात्रि, संध्या और ज्योत्स्नाके नामसे विख्यात हुएहैं ॥ १३ ॥ ज्योत्स्ना संध्या और दिवा यह तीन सत्त्वमात्रात्मिका है; रात्रि तामसी है इस कारणही रात्रि त्रियामा हुई है ॥ १४ ॥ पूर्वोक्त गुणाधिक्यसेही दिनमें देवता, रात्रिमें असुर, ज्योत्स्नामें मनुष्य और संध्याकालमें पितरगण ॥ १५ ॥ अधिक बलशाली होकर शत्रुओंसे अजेय होते हैं अर्थात् शत्रु इनको संग्राममें नहीं जीत सकते और विपरीत बलशाली होतेहैं ॥ १६ ॥

प्रजापतिने दिन, रात्रि, संध्या और ज्योत्स्ना, यह चार प्रकारके शरीर उत्पन्न किये, यह ब्रह्माजीका त्रिगुणात्मक शरीर है ॥ १७ ॥ प्रजापतिने इन चारों शरीरोंको उत्पन्न करके भूँख प्याससे युक्त रज और तमोमयी रात्रिको ग्रहण किया ॥ १८ ॥ उस अंधकारमें भगवान् अज (ब्रह्मा) ने भूंखसे कृश विरूप डाढी मूँछवालोंको सृजन किया तब वह उस शरीरके खानेको प्रवृत्त हुए ॥ १९ ॥ हे द्विज ! जब वह शरीर भक्षण करने लगे तब जिन्होंने " रक्षा करो " यह कहा, वह राक्षस और जिन्होंने " भक्षण करूंगा " यह कहा, वह यक्ष नामसे प्रसिद्ध हुए ॥२० ॥ उनको देखकर अप्रसन्नता उप-

ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्येतानि वै प्रभोः ॥ ब्रह्मणस्तु शरीराणि त्रिगुणोपसृतानि तु ॥ १७ ॥ चत्वार्येतान्यथोत्पाद्य तनुमन्यां प्रजापतिः ॥ रजस्तमोमयीं रात्रौ जगृहे क्षुत्तृडन्वितः ॥ १८ ॥ तदन्धकारे क्षुत्क्षामानसृजद्भगवानजः ॥ विरूपाञ्छ्मश्रुलानत्तुमारब्धास्ते च तां तनुम् ॥ १९ ॥ रक्षाम इति तेभ्योऽन्ये य ऊचुस्ते तु राक्षसाः ॥ खादाम इति ये चोचुस्ते यक्षा यक्षणाद्द्विज ॥ २० ॥ तान्दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्यन्त वेधसः ॥ समारोहणहीनाश्च शिरसो ब्रह्मणस्तु ते ॥ २१ ॥ सर्पणात्तेऽभवन्सर्पा हीनत्वादहयः स्मृताः ॥ सर्पान्दृष्ट्वा ततः क्रोधात्क्रोधात्मानो विनिर्ममे ॥२२॥ वर्णेन कपिलेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशनाः ॥ ध्यायतो गां ततस्तस्य गन्धर्वा जज्ञिरे सतः ॥२३॥ जज्ञिरेऽपि ततो वाचं गन्धर्वास्तेन ते स्मृताः ॥ अष्टास्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभुः ॥ २४ ॥ ततः स्वदेहतोऽन्यानि वयांसि पशवोऽसृजत् ॥ मुखतोऽजाः ससर्जाथ वक्षसश्चावयोऽसृजत् ॥ २५ ॥

स्थित होनेसे विधाताके सब केश गिरनेलगे, यह केश ब्रह्माके मस्तकसे गिरकर ॥ २१ ॥ विचरण करनेके कारण सर्पसंज्ञाको प्राप्त हुए, हीनजाती होनेसे इन्हें अहिभी कहतेहैं, सर्पोंके देखनेसे क्रोधयुक्त होकर उनको क्रोधात्मा किया ॥ २२॥ कपिलवर्णसे उत्पन्न उग्रस्वभाव पिशिताशन (मांसभोजी) गणोंका प्रादुर्भाव हुआ । गौकी चिन्ताकालमें गंधर्वोंकी उत्पत्ति हुई ॥ २३ ॥ वाक्य ग्रहण करते करते उत्पन्न होनेके कारण वह गंधर्व नामको प्राप्त हुए हैं । इस प्रकार अष्टविध देवयोनि उत्पन्न करके ॥ २४ ॥ अपने देहसे अन्य समस्त पशु पक्षी उत्पन्न किये मुखसे छाग, हृदयसे भेडें ॥ २५ ॥

उदर और पार्श्व स्थानसे गौ, दोनों पैरोंसे अश्व, हस्ती, गर्दभ, शशक (खरगोश), मृग ॥ २६ ॥ ऊंट और खच्चर तथा रोमसे फलमूलशाली अनेक प्रकारकी औषधियां उत्पन्न हुई हैं ॥ २७ ॥ भगवान् त्रेतायुगके प्रारंभमें इस प्रकार पशु और औषधी उत्पन्न करके यज्ञसृष्टिमें नियुक्त हुएथे ॥ २८ ॥ गौ, छाग, महिष, मेष, अश्व, खच्चर और गर्दभ, इन सब पशुओंको ग्राम्य कहते हैं, अब आरण्य अर्थात् वनके पशु कहताहूं ॥ २९ ॥ श्वापद, द्विखुर, हस्ती, वानर, पक्षी, जलचर, पशु और सरीसृप सर्पादि । इन सातको आरण्यवासी प्राणी कहते हैं ॥ ३० ॥ विधाताने प्रथम मुखसे यज्ञकी गायत्री,

गाश्चैवोदरतो ब्रह्मा पार्श्वाभ्यां च विनिर्ममे ॥ पद्भ्यां चाश्वान्स मातङ्गान्रासभाञ्छशकान्मृगान् ॥ २६ ॥ उष्ट्रानश्वतरांश्चैव नानारूपाश्च जातयः ॥ ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥२७॥ एवं पश्वौषधीः सृष्ट्वा ह्यजयच्चाध्वरे विभुः ॥ तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा ॥२८॥ गौरजः पुरुषो मेषो ह्यश्वाश्वतरगर्दभाः ॥ एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुरारण्यांश्च निबोध मे ॥२९॥ श्वापदं द्विखुरं हस्ती वानरा पक्षिपंचमाः ॥ औदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमास्तु सरीसृपाः ॥३०॥ गायत्रीं च तृचं चैव त्रिवृत्सामरथन्तरम् ॥ अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥ ३१॥ यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दः स्तोमं पंचदशं तथा ॥ बृहत्साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन्मुखात् ॥ ३२ ॥ सामानि जगतीन्छन्दः स्तोमं पंचदशं तथा ॥ वैरूपमतिरात्रं च निर्ममे पश्चिमान्मुखात् ॥ ३३ ॥ एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ॥ आनुष्टुभं स वैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥ ३४ ॥ विद्युतोऽशनिमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥ वयांसि च ससर्जादौ कल्पस्य भगवान्विभुः ॥ ३५ ॥

त्रि-ऋक्, त्रि-वृत्, साम रथन्तर और अग्निष्टोम उत्पन्न किया ॥ ३१ ॥ दक्षिण मुखसे यजुः, त्रैष्टुभछन्द, पंचदश स्तोम बृहत्साम और उक्थको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ पश्चिम मुखसे साम जगतीछन्द, पंचदश स्तोम तथा वैरूप और अतिरात्रको उत्पन्न किया ॥ ३३ ॥ उत्तर मुखसे इक्कीस अथर्व, आप्तोर्याम, आनुष्टुभ और वैराजको उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥ भगवान् विभुने कल्पके पहिले बिजली, वज्र, मेघ, रोहित (लाल) इन्द्र धनुष, और पक्षियोंकी सृष्टि की है ॥ ३५ ॥

इसके उपरान्त देवता, असुर, पितृ और मनुष्योंके उत्पन्न होनेपर उनके शरीरसे नानाविध प्राणी उत्पन्न हुए हैं ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त स्थावर, जंगम, भूतगण, यक्ष, पिशाच, गंधर्व और अप्सरागण ॥ ३७ ॥ नर, किन्नर, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग और भुजंग इत्यादि संपूर्ण नश्वर और अविनश्वर स्थावर जंगम पदार्थ उत्पन्न हुए हैं ॥ ३८ ॥ जिनका जो कर्म है, वह सृष्टिके प्रथमही निर्दिष्ट हुआहै, अतएव वह वारंवार उत्पन्न होकर उन्हीं सब कर्मोंको प्राप्त होतेहैं ॥ ३९ ॥ प्राणिगण पूर्व जन्ममें हिंसा, अहिंसा, मृदुता (कोमलता), क्रूरता, धर्म, अधर्म, सत्य और मिथ्या इनकी जिस प्रकार चिन्ता करते हैं पर जन्ममें उनको वही प्राप्त होतीहै ॥ ४० ॥ प्राणियोंमें इन्द्रियोंके अर्थ और शरीरोंमें इन्द्रियाँ अनेक प्रकारके कर्मानुसार उस विभुने स्वयं निर्माण

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥ सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरपितॄन्प्रजाः ॥३६॥ ततोऽसृजत्स भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ यक्षान्पिशाचान्गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसां गणान् ॥ ३७ ॥ नरकिन्नररक्षांसि वयःपशुमृगोरगान् ॥ अव्ययं च व्ययं चैव यदिदं स्थाणुजङ्गमम् ॥३८॥ तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्टेः प्रतिपेदिरे ॥ तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥३९॥ हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ॥ तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥४०॥ इन्द्रियार्थेषु भूतेषु शरीरेषु च स प्रभुः ॥ नानात्वं विनियोगं च धातैव यद्व्यधात्स्वयम् ॥४१॥ नामरूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपंचनम् ॥ वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥ ४२॥ ऋषीणां नामधेयानि याश्च देवेषु सृष्टयः ॥ शर्वर्यन्ते प्रसूतानामन्येषां च ददाति स ॥ ४३ ॥ यथर्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये ॥ दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥ ४४ ॥ एवंविधाः सृष्टयस्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ शर्वर्यन्ते प्रबुद्धस्य कल्पे कल्पे भवन्ति वै ॥ ४५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सृष्टिप्रकरणे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

कीहै ॥ ४१ ॥ प्राणियोंके नाम और रूप उनके कृत अकृत्य प्रपंच तथा देवताओंके कर्म आदिमें वेद शब्दसे निर्माण किये ॥ ४२ ॥ ऋषियोंके नाम तथा देवताओंकी सृष्टि सब उन्होंने प्रलयके उपरान्त पूर्वके समान कीहै ॥ ४३ ॥ जिस प्रकार ऋतुके बदलनेमें उसके लिङ्गादि दीखने लगतेहैं, ऐसेही युग युगमें आनेवाले भाव प्रगट होतेहैं ॥ ४४ ॥ इस प्रकार अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी प्रतिकल्पमेंही प्रलयान्तके समय सृष्टि करतेहैं ॥ ४५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सृष्टिप्रकरणे भाषाटीकायां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

कौष्टुकिने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने अर्वाक्स्रोत मनुष्योंका जो विषय कहा अब फिर उसीको विस्तारसहित कहिये ॥ १ ॥ हे महामते ! जिस गुणयुक्त समस्त वर्णोंकी जिस प्रकार सृष्टि हुई है और ब्राह्मणादिका जो जो कर्तव्य है वह सब कथा प्रकाशित कीजिये ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—सृष्टिके प्रथमही ध्यानशील ब्रह्माजीके मुखसे सहस्र मिथुनकी उत्पत्ति हुई है ॥ ३ ॥ यह सब तेजवान् और सत्त्वकी अधिकतावाले हुए, उनके वक्षस्थल (छाती) से अन्य सहस्र मिथुन उत्पन्न हुएथे ॥ ४ ॥ वह सब तेजस्वी और क्रोधितस्वभाव तथा रजोगुणी थे, उनके ऊरुदेशसे जो सहस्र मिथुनकी उत्पत्ति हुई ॥ ५ ॥ वह

क्रौष्टुकिरुवाच ॥ अर्वाक्स्रोतस्तु कथितो भवता यस्तु मानुषः ॥ ब्रह्मन्विस्तरतो ब्रूहि ब्रह्मा समसृजद्यथा ॥ १ ॥ यथा च वर्णानसृजद्यद्गुणांश्च महामते ॥ यच्च येषां स्मृतं कर्म विप्रादीनां वदस्व तत् ॥ २ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ब्रह्मणः सृजतः पूर्वं सत्याभिध्यायिनस्तथा ॥ मिथुनानां सहस्रं तु मुखात्सोऽथासृजन्मुने ॥ ३ ॥ जातास्ते ह्युपपद्यन्ते सत्त्वोद्रिक्ताः स्वतेजसः ॥ सहस्रमन्यद्वक्षस्तो मिथुनानां ससर्ज ह ॥ ४ ॥ ते सर्वे रजसोद्रिक्ताः शुष्मिणश्चाप्यमर्षिणः ॥ ससर्जान्यत्सहस्रं तु द्वंद्वानामूरुतः पुनः ॥५॥ रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ता ईहाशीलास्तु ते स्मृताः ॥ पद्भ्यां सहस्रमन्यच्च मिथुनानां ससर्ज ह ॥६॥ उद्रिक्तास्तमसा सर्वे निःश्रीका ह्यल्पतेजसः ॥ ततः संघर्षमाणास्ते द्वन्द्वोत्पन्नास्तु प्राणिनः ॥ ७ ॥ अन्योन्यं हृच्छयाविष्टा मैथुनायोपचक्रमुः ॥ ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन्मिथुनानां हि सम्भवः ॥ ८ ॥ मासि मास्यार्तवं यत्तु न तदासीत्तु योषिताम् ॥ तस्मात्तदा न सुषुवुः सेवितैरपि मैथुनैः ॥९॥ आयुषोऽन्ते प्रसूयन्ते मिथुनान्येव ताः सकृत् ॥ (कुलिकं कुलिका चैव उत्पद्यंते मुमूर्षताम्) ॥ ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन्मिथुनानां हि सम्भवः ॥ १० ॥

रज और तमोगुणोद्रिक्त तथा ईर्षायुक्त हुए और दोनों पैरोंसे जो सहस्र मिथुन हुये ॥ ६ ॥ वह तमोगुणी और लक्ष्मीरहित निस्तेज हुए, फिर संघर्षणसे द्वन्द्वरूप प्राणी हुए ॥ ७ ॥ और वह द्वन्द्वोत्पन्न प्राणी प्रसन्न चित्तसे परस्पर मैथुन करनेमें प्रवृत्त हुए तबसे इस कल्पमें इस भांति मिथुनकी उत्पत्ति हुई ॥ ८ ॥ पहिले स्त्रियोंका प्रतिमासमें रजोधर्म नहीं होताथा, इस कारण वह दूसरे समयमें मैथुन करकेभी ॥ ९ ॥ सन्तान उत्पन्न नहीं करती थीं, केवल अवस्थाके अन्तमें एक वार सन्तान होतीथी (कुलिक और कुलका यह अन्त अवस्थामें प्रगट होतेथे) तबसे इस कल्पमें मिथुनकी इसी प्रकार

उत्पत्ति होती आतीहै ॥ १० ॥ जब ब्रह्माजीने प्रजाकी चिन्ता करी, तब उनके मनसे एक साथ जो पंचमहाभूत और शब्दादि विषय उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥ इसीको प्रजापतिकी मानसी सृष्टि कहते हैं इस समय उसी सृष्टिसे जगत् परिपूर्ण होरहाहै ॥ १२ ॥ पूर्वयुगमें प्रजागण अल्प शीतोष्ण होकर सरित् सरोवर और और समुद्रके समीप तथा पर्वतोंमें विचरण करतेथे ॥ १३ ॥ हे महामते ! वह उपभोग्य विषयमें स्वाभाविक तृप्तिलाभ करते और उनमें किसी प्रकारका विघ्न, द्वेष वा मत्सरादि नहीं था ॥ १४ ॥ वह घर न बनाकर पर्वत और समुद्रके तटमें वास करते एवं सदा निष्कामचारी और प्रसन्नचित्त थे ॥ १५ ॥

ध्यानेन मनसा तासां प्रजानां जायतेऽसकृत् ॥ शब्दादिर्विषयः शुद्धः प्रत्येकं पंचलक्षणः ॥ ११ ॥ इत्येषा मानुषी सृष्टिर्या पूर्वं वै प्रजापतेः ॥ तस्यान्ववायसम्भूता यैरिदं पूरितं जगत् ॥ १२॥ सरित्सरःसमुद्रांश्च सेवन्ते पर्वतानपि ॥ तास्तदा ह्यल्पशीतोष्णा युगे तस्मिश्चरन्ति वै ॥ १३ ॥ तृप्तिं स्वाभाविकीं प्राप्ता विषयेषु महामते ॥ न तासां प्रतिघातोऽस्ति न द्वेषो नापि मत्सरः ॥१४॥ पर्वतोदधिसेविन्यो ह्यनिकेतास्तु सर्वशः ॥ ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः ॥ १५॥ पिशाचोरगरक्षांसि तथा मत्सरिणो जनाः ॥ पशवः पक्षिणश्चैव नक्रा मत्स्याः सरीसृपाः ॥ १६ ॥ अवारका ह्यण्डजा वा ते ह्यधर्मप्रसूतयः ॥ न मूलफलपुष्पाणि नार्तवा वत्सराणि च ॥ १७ ॥ सर्वकालसुखः कालो नात्यर्थं घर्मशीतता ॥ कालेन गच्छता तेषां पित्रा सिद्धिरजायत ॥१८॥ ततश्च तेषां पूर्वाह्ने मध्याह्ने च वितृप्तता ॥ पुनस्तथेच्छतां तृप्तिरनायासेन साभवत् ॥ १९ ॥

पिशाच, उरग, राक्षस, अभिमानी मनुष्य, पशु, पक्षी, नक्र (नाके), मत्स्य, विच्छू ॥ १६ ॥ अवारक (प्राणी विशेष) और अंडज प्राणी अधर्मसे उत्पन्न हुए हैं। तिस काल मूल फल पुष्प ऋतु और वर्ष इत्यादि कुछ नहीं था ॥ १७ ॥ तिस समय अत्यन्त गरमी वा अत्यन्त शीत कुछ नहीं था, सर्वदाही अत्यन्त सुखका समय था। कालक्रमसे उनको अद्भुत सिद्धि उत्पन्न हुई ॥ १८ ॥ पूर्वाह्नमें वा मध्याह्नमें उनकी तृप्ति न होनेपर इच्छा करनेसे सहजमेंही वह तृप्त होजाते ॥ १९ ॥

और इच्छा करतेही मनसे उनका मनोरथ प्रगट हो जाताथा तब जलकी सूक्ष्मताके कारण उनकी नानाप्रकार रसोल्लासवती नामक अन्य सिद्धि ॥ २० ॥ उपस्थित होकर संपूर्ण अभिलाषा पूर्ण करती। वह 'संस्कारहीन होकरभी' स्थिरयौवनवाले थे ॥ २१ ॥ संकल्पके विनाही उनकी मिथुन प्रजा उत्पन्न होती, यह मिथुन प्रजा जिस प्रकार एक संग उत्पन्न होती, वैसेही रूपादिकी समता लाभ करके एक संगही प्राण त्याग करती ॥ २२ ॥ उनकी परस्परके प्रति अभिलाषा वा द्वेष कुछ नहीं था। सबही समान भावसे समय बितातेथे, उनमें कोई उत्तम वा अधम नहीं था क्योंकि सब आयु और रूपादिमें समान भावसे रहतेथे ॥ २३॥ यह मिथुन प्रजा मनुष्य परिमाणके चार हजार वर्ष जीवित रहती और विनाही क्लेश तथा विपत्तिके प्राणत्याग करती थीं ॥२४॥

इच्छतां च तथायासो मनसः समजायत ॥ अपां सौक्ष्म्यं ततस्तासां सिद्धिर्नाम्ना रसोल्लसा ॥ २० ॥ समजायत चैवान्या सर्वकामप्रदायिनी ॥ असंस्कार्यैः शरीरैश्च प्रजास्ताः स्थिरयौवनाः ॥२१॥ तासां विना तु संकल्पं जायन्ते मिथुनाः प्रजाः ॥ समं जन्म च रूपं च म्रियन्ते चैव ताः समम् ॥ २२ ॥ अनिच्छा द्वेषसंयुक्ता वर्तन्ते तु परस्परम् ॥ तुल्यरूपायुषः सर्वा अधमोत्तमतां विना ॥ २३ ॥ चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ॥ आयुः प्रमाणं जीवन्ति न च क्लेशाद्विपत्तयः ॥ २४ ॥ क्वचित्क्वचित्पुनः साभूत्क्षितिर्भाग्येन सर्वशः ॥ कालेन गच्छता नाशमुपयान्ति यथा प्रजाः ॥२५॥ तथा ताः क्रमशो नाशं जग्मुः सर्वत्र सिद्धयः ॥ तासु सर्वासु नष्टासु नभसः प्रच्युता रसाः ॥ २६ ॥ पयसः कल्पवृक्षास्ते संभूता गृहसंस्थिताः ॥ सर्वे प्रत्युपभोगाश्च तासां तेभ्यः प्रजायत ॥ २७ ॥ वर्तयन्ति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे तदा ॥ ततः कालेन वैरागस्तासामाकस्मिकोऽभवत् ॥ २८ ॥

दैववशतः पृथ्वी किसी किसी स्थानमें इस प्रकार होजाती कि जिससे प्रजा क्रमानुसार जीवन विसर्जन करती ॥ २५ ॥ तब क्रमानुसार वह सब सिद्धियें नष्ट होगईं, उनके नष्ट होनेपर आकाशसे रस गिरने लगे ॥ २६ ॥ जल दूधकी प्राप्ति हुई और घरोंमें कल्पवृक्ष भी उत्पन्न होगये; इन कल्पवृक्षोंसेही उनका समस्त भोग प्राप्त होने लगा ॥ २७ ॥ त्रेतायुगके प्रारंभमें मनुष्यगण इस प्रकार जीवनयात्रा निर्वाह करतेथे; अनन्तर कालवशतः उनको आकस्मिक राग होगया ॥ २८ ॥

तब इस प्रकार रागकी उत्पत्तिसे उनकी मास मासमें ऋतु और इसी कारण वारंवार गर्भोत्पत्ति होने लगी और उनके घरोंमें स्थित कल्पवृक्षोंमें राग उत्पन्न होने लगा ॥ २९ ॥ तब वह कल्पवृक्ष नष्ट होगये और चार शाखावाले दूसरे वृक्ष उत्पन्न होगये, उनके फलोंमें वस्त्र और आभरण लगतेथे ॥ ३० ॥ और उन फलोंके प्रत्येक पुटमें सुन्दर गंध और वर्णयुक्त बलकारक विना मक्खियोंके मधु उत्पन्न होताथा ॥ ३१ ॥ त्रेतायुगके प्रारंभमें यह मधुपान करके उस समयकी प्रजा जीवन धारण करतीथीं अनन्तर कालक्रमसे वह अत्यन्त लोभी होकर ॥ ३२ ॥ ममतायुक्त मनसे उन सब वृक्षोंको ग्रहण करनेलगे, तब इस अपचारसे सब वृक्ष नष्ट होगये ॥ ३३ ॥ (क्योंकि वृक्षोंकी जडोंमें रहनेकी जगह शाला बना लईथी) अनन्तर शीत, उष्ण, क्षुधा, इत्यादि

मासि मास्यार्तवोत्पत्त्या गर्भोत्पत्तिः पुनः पुनः ॥ रागोत्पत्त्या ततस्तासां वृक्षास्ते गृहसंस्थिताः ॥२९॥ प्रणेशुरपरे चासंश्चतुःशाखा महीरुहाः ॥ वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ॥ ३०॥ तेष्वेव जायते तेषां गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु ॥ ३१ ॥ तेन ता वर्तयन्ति स्म मुखे त्रेतायुगस्य वै ॥ ततः कालान्तरेणैव पुनर्लोभान्वितास्तु ताः ॥ ३२ ॥ वृक्षास्ताः पर्यगृह्णन्त ममत्वाविष्टचेतसः ॥ नेशुस्तेनापचारेण ते हि तासां महीरुहाः ॥ ३३ ॥ (मूलेषु चापरं वासं चक्रुः शालामहीरुहाम् ॥) ततो द्वन्द्वान्यजायन्त शीतोष्णक्षुन्मुखानि वै ॥ तास्तद्द्वन्द्वोपघातार्थं चक्रुः पूर्वं पुराणि तु ॥ ३४ ॥ मरुधन्वसु दुर्गेषु पर्वतेषु दरीषु च ॥ संश्रयन्ति च दुर्गाणि वार्क्षं पार्वतमौदकम् ॥३५॥ कृत्रिमं च तथा दुर्गं मित्वा मित्वात्मनोऽङ्गुलैः ॥ मानार्थानि प्रमाणानि तास्तु पूर्वं प्रचक्रिरे ॥ ३६॥ परमाणुः परं सूक्ष्मं त्रसरेणुर्महीरजः ॥ वालाग्रं चैव लिक्षां च यूकां चाथ यवोदरम् ॥ ३७ ॥

समस्त द्वन्द्व उत्पन्न हुए, उन सब द्वन्द्वको निवारण करनेके लिये उन्होंने पहिले पुर बनाये ॥ ३४ ॥ तब मरुभूमि पर्वत और गुफा इत्यादिमें सब दुर्ग निर्मित होनेपर वह वृक्षोंके, पर्वतोंके और जल इत्यादिके दुर्गमें वास करने लगे ॥ ३५ ॥ और अपनी अपनी अंगुली आदिके परिमाणसे समस्त कृत्रिम दुर्ग परिमित करके परिमाण निरूपणके लिये प्रमाण नियत किया ॥ ३६ ॥ अति सूक्ष्म प्रमाणार्थ परमाणु जालीके छिद्रोंमें किरण पडनेसे सूक्ष्म रज दीख पडती है, उसके तीसरे भागको परमाणु कहतेहैं त्रसरेणु (तीस परमाणुका एक त्रसरेणु) और धूलि और स्थूल प्रमाणार्थ केशाग्र (तीस त्रसरेणुका एक

केशाग्र) निष्क (तीस केशाग्रका एक निष्क) यूका (तीस निष्कका एक यूका) और यव स्थिर हुआ है ॥ ३७ ॥ आठ यवमें एक अंगुल होताहै, छः अंगुलमें एक पद, दो पदमें एक वितस्ति (बिलस्त) ॥ ३८ ॥ दो बिलस्तमें एक हाथ, ब्राह्मतीर्थपर्यन्त वेष्टित चार हाथमें एक धनुर्दंड वा नाडिका युग ॥ ३९ ॥ दो हजार धनुमें एक गव्यूति (दो कोश) और चार गव्यूतिमें एक योजन होताहै । बुद्धिमान् पुरुषोंने संख्या निरूपण करनेके लिये इस प्रकार निर्द्धारण कियाहै ॥ ४० ॥ पूर्वोक्त चार प्रकारके दुर्गमें तीन स्वाभाविक हैं, अपर कृत्रिम अर्थात् मनुष्यकृत है । यही दुर्गकर्त्तव्य है ॥ ४१ ॥ हे द्विज ! इसके पीछे उन्होंने उन सब स्थानोंमें पुर, खेटक (छोटे ग्राम), द्रोणीमुख, शाखानगर, खर्वटक, द्रमी ॥ ४२ ॥ ग्राम और संघोष इन सबको

क्रमादष्टगुणान्याहुर्यवानष्टौ तथांगुलम् ॥ षडंगुलं पदं तच्च वितस्तिर्द्विगुणं स्मृतम् ॥ ३८ ॥ द्वे वितस्ती तथा हस्तो ब्राह्मयतीर्थादिवेष्टितः ॥ चतुर्हस्तं धनुर्दण्डो नाडिकायुगमेव च ॥ ३९ ॥ क्रोशो धनुः सहस्रे द्वौ गव्यूतिस्तच्चतुर्गुणम् ॥ प्रोक्तं च योजनं प्राज्ञैः संख्यानार्थमिदं परम् ॥ ४० ॥ चतुर्णामथ दुर्गाणां स्वसमुत्थानि त्रीणि तु ॥ चतुर्थं कृत्रिमं दुर्गं तच्चक्रुर्यततस्तु वै ॥ ४१ ॥ पुरं च खेटकं चैव तद्वद्द्रोणिमुखं द्विज ॥ शाखानगरकं चापि तथा खर्वटकं द्रमी ॥ ४२ ॥ ग्रामसंघोषविन्यासं तेषु चावसथान्पृथक् ॥ सोत्सेधवप्रकारं च सर्वतः परिखावृतम् ॥ ४३ ॥ योजनार्द्धार्द्धविष्कम्भमष्टभागायतं पुरम् ॥ प्रागुदक्प्रवणं शस्तं शुद्धवंशबहिर्गमम् ॥ ४४ ॥ तदर्द्धेन तथा खेटं तत्पादेन च खर्वटम् ॥ न्यूनं द्रोणीमुखं तस्मादष्टभागेन चोच्यते ॥ ४५ ॥

वसा करके उन सबमें फिर पृथक्पृथक् (निवासस्थान) बनाये जिनके चारों ओर ऊंची दीवारें और परिखावरण खाइ थीं ॥ ४३ ॥ जो लम्बाईमें दो कोश और जो अष्ट भागमें चौडा है, उसको पुर कहतेहैं । इस पुरका पूर्व और उत्तर भाग जलद्वारा प्लावित होनेसे और उसमें विशुद्ध वंश निर्मित बाहिर्गम (सेतु) होनेसे वह श्रेष्ठ होताहै ॥ ४४ ॥ पुरके आधे लक्षणयुक्त स्थानको खेटक, उससे आधे लक्षणयुक्तको खर्वटक और पुरके अष्ट भाग लक्षणाक्रान्तको द्रोणीमुख कहतेहैं ॥ ४५ ॥

जिस पुरमें प्राकार है और परिखा नहीं है, उसको खर्वट पुर कहते हैं जिसमें मंत्री और सामन्तादिक वास करते हों, और उसमें नानाप्रकार भोगके पदार्थ भी हों उसको शाखानगर कहतेहैं ॥ ४६ ॥ जिस स्थानमें शूद्रगण और स्वीय स्वीय समृद्धियुक्त किसान वास करते हैं और जिसके चारों ओर खेत तथा उपभोग्य भूमि (उद्यानादि) विद्यमान हैं, उसको ग्राम कहते हैं ॥ ४७ ॥ कोई कार्य उद्देश्य करके अन्यान्य नगरादिसे मनुष्य आनकर वास करतेहैं उसको वसति कहते हैं ॥४८॥ जहांके सब मनुष्य दुष्टप्राय बलवान् और अपना क्षेत्र न होने परभी पराया क्षेत्र ग्रहण करते हैं और जहां राजप्रिय मनुष्य वास करते हैं, उस ग्रामको द्रमी कहते हैं ॥ ४९ ॥ गोपाल लोग जहां अपने बर्तन भांडा गाडीपर लादकर रखते हैं और जहां गायें अधिक वास

प्राकारपरिखाहीनं पुरं खर्वटमुच्यते ॥ शाखानगरकं चान्यन्मन्त्रिसामन्तभुक्तिमत् ॥ ४६ ॥ तथा शूद्रजनप्रायाः स्वसमृद्धकृषीवलाः ॥ क्षेत्रोपभोग्यभूमध्ये वसतिर्ग्रामसंज्ञिता ॥ ४७ ॥ अन्यस्मान्नगरादेर्या कार्यमुद्दिश्य मानवैः ॥ क्रियते वसतिः सा वै विज्ञेया वसतिर्नरैः ॥ ४८ ॥ दुष्टप्रायो विना क्षेत्रैः परभूमिचरो बली ॥ ग्राम एव द्रमीसंज्ञो राजवल्लभसंश्रयः ॥ ४९ ॥ शकटारूढभाण्डैश्च गोपालैर्विपणं विना ॥ गोसमूहैस्तथा घोषो यत्रेच्छाभूमिकेतनः ॥ ५० ॥ त एवं नगरादींस्तु कृत्वा वासार्थमात्मनः निकेतनानि द्वंद्वानां चक्रुश्चोपशमाय वै ॥५१॥ गृहाकारा यथापूर्वं तेषामासन्महीरुहाः ॥ तथा संस्मृत्य तत्सर्वं चक्रुर्वेश्मानि ताः प्रजाः ॥ ५२ ॥ वृक्षस्यैवङ्गताः शाखास्तथैवं च परागताः ॥ नताश्चैवोन्नताश्चैव तद्वच्छाखाः प्रचक्रिरे ॥ ५३ ॥

करतीं हैं, एवं जहां बाजार हाट न हो और अपनी इच्छानुसार विना धन धरती मिलती हो, उसको घोष कहते हैं ॥ ५० ॥ उन्होंने इस प्रकार अपने रहनेके लिये नगरादि निर्माण करके समस्त द्वन्द्व (दुःख) निवारणके अर्थ और व्यापारादि करनेके लिये घर बनाये । पहिले समस्त वृक्ष जिस प्रकार उनके गृहतुल्य थे, उनको स्मरण करके उसी प्रकार सब गृह निर्माण किये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ वृक्षकी शाखाएँ जिस भांति एकके पीछे एक नीचे और ऊंचे भावसे अवस्थित होती है, इसी भाँति उन्होंने समस्त गृह बनाये ॥ ५३ ॥

हे द्विजोत्तम ! पूर्वमें कल्पवृक्षकी जो सब शाखाएं थीं; उन सब शाखाओंने इस समय उनके सब गृहोंका शालात्व लाभ किया अर्थात् वैसेही ढालू और ऊँचे शिखरके घर किये ॥ ५४ ॥ जब इन शालाओंने उनके शीत उष्ण इत्यादि सब दुःखोंका विनाश किया, तब वह सब जीविका निर्वाहकी चिन्ता करने लगे, क्योंकि तिसकाल मधुके सहित समस्त कल्पवृक्ष नष्ट होगयेथे ॥ ५५ ॥ तब वह समस्त प्रजा विषादसे व्याकुल और भूंख प्याससे व्याकुल अत्यन्त कातर होगई । उसी समय त्रेतायुगके प्रारम्भमें उनकी इस प्रकार सिद्धि उत्पन्न हुईथी ॥ ५६ ॥ तिस समय उनकी इच्छा होनेपरही बहुत बर्षा होती, वह वर्षाके समस्त जल निम्नगामी होकर ॥ ५७ ॥ रुकाहुआ समस्त वृष्टिका जल स्रोतद्वारा खात (गहराई) करता हुआ निम्नगा (नदी) रूपमें

याः शाखाः कल्पवृक्षाणां पूर्वमासन्द्विजोत्तम ॥ ता एव शाखा गेहानां शालात्वं तेन तासु तत् ॥ ५४ ॥ कृत्वा द्वंद्वोपघातं ते वार्तोपाय-मचिंतयन् ॥ नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेष्वशेषतः ॥ ५५ ॥ विषादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिताः ॥ ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतामुखे तदा ॥ ५६ ॥ वार्त्तास्वसाधिता ह्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः ॥ तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नगतानि वै ॥ ५७ ॥ वृष्ट्यावरुद्धैरभवन्स्रोतःखातानि निम्नगाः ॥ ये पुरस्तादपां स्तोका आपन्नाः पृथिवीतले ॥ ५८ ॥ ततो भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तास्तदा-भवन् ॥ अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥ ५९ ॥ ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षा गुल्माश्च जज्ञिरे ॥ प्रादुर्भावस्तु त्रेतायामाद्योऽय-मौषधस्य तु ॥ ६० ॥ तेनौषधेन वर्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे मुने ॥ रागलोभौ समासाद्य प्रजाश्चाकस्मिको तदा ॥ ६१ ॥ ततस्ताः पर्यगृह्ण-न्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान् ॥ वृक्षगुल्मौषधीश्चैव मात्सर्याच्च यथाबलम् ॥ ६२ ॥

परिणत हुआ । पहिले जो सामान्य जल पृथ्वीमें गिराथा ॥ ५८ ॥ इस समय वही सब जल मिट्टीके संयोगसे दोषरहित होगया इसमें ग्राम्य और आरण्य जो चौदह वृक्ष एवं समस्त गुल्म विनाही जोते बोये उत्पन्न हुएथे ॥ ५९ ॥ वह सब ऋतुकालमें फल और पुष्प उत्पन्न करने लगे ॥ इस प्रकारसे त्रेता-युगके प्रारंभमें संपूर्ण औषधी उत्पन्न हुई ॥ ६० ॥ हे मुने ! प्रजागण अकस्मात् राग और लोभको प्राप्त होकर उन औषधियोंसे उत्पन्न पदार्थोंके द्वारा त्रेतायुगके प्रारम्भमें जीवन धारण करने लगे ॥ ६१ ॥ तदनन्तर जिससे अपने शरीर अतिशय बलवान् हो इस कारण नदी, क्षेत्र, पर्वत, वृक्ष, गुल्म और समस्त औषधियोंका आश्रय करने लगे ॥ ६२ ॥

हे द्विजवर ! इसी दोषसे देखते देखते वह सब औषधी नष्ट होगईं अर्थात् हे महामते ! पृथ्वीने एक कालमेंही उन सब औषधियोंको ग्रास करलिया ॥ ६३ ॥ इस प्रकार सब औषधियोंके नष्ट होनेपर फिर संपूर्ण प्रजा विभ्रान्त होगई और भूंखसे आतुर होकर परमेष्ठी ब्रह्माजीकी शरण ग्रहण करी ॥ ६४ ॥ उन विभु भगवान् ब्रह्माजीने पृथ्वीको सम्यक् प्रकार ग्रासकारिणी जान सुमेरुपर्वतको बछडा बनाकर दुहा ॥ ६५ ॥ तब भूमि पृथ्वीतलमें समस्त धान्य दुहाने लगी उससे सब बीज उत्पन्न हुए एवं ग्राम और वनके वृक्ष उत्पन्न हुए ॥ ६६ ॥ सत्रह प्रकारके फल पकनेपर सूखनेवाली समस्त औषधी उत्पन्न हुई उनके नाम व्रीहि (चावल धान्य) यव गेहूं कोदों तिल ॥ ६७ ॥ प्रियंगु फलिनी राई कोविदार लालकचनार कोदों मटर उरद मूंग मसूर

तेन दोषेण ता नेशुरोषध्यो मिषतां द्विज ॥ अग्रसद्भूर्युगपत्तास्तदौषध्यो महामते ॥६३॥ पुनस्तासु प्रणष्टासु विभ्रान्तास्ताः पुनः प्रजाः ॥ ब्रह्माणं शरणं जग्मुः क्षुधार्त्ताः परमेष्ठिनम् ॥ ६४ ॥ स चापि तत्त्वतो ज्ञात्वा तदा ग्रस्तां वसुन्धराम् ॥ वत्सं कृत्वा सुमेरुं तु दुदोह भगवान्विभुः ॥ ६५ ॥ दुग्धेयं गौस्तदा तेन सस्यानि पृथिवीतले ॥ जज्ञिरे तानि बीजानि ग्राम्यारण्यास्तु ताः पुनः ॥ ६६ ॥ ओषध्यः फलपाकान्ता गणाः सप्तदश स्मृताः ॥ व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः ॥ ६७ ॥ प्रियङ्गवः कोविदाराः कोरदूषाः सतीनकाः ॥ माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुलत्थकाः ॥ ६८ ॥ आढक्यश्चणकाश्चैव शणाः सप्तदश स्मृताः ॥ इत्येता ओषधीनां तु ग्राम्याणां जातयः पुरा ॥ ६९ ॥ ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥ व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः ॥ ७० ॥ प्रियंगुषष्ठा वै ह्येते सप्तमास्तु कुलत्थकाः ॥ श्यामाकास्त्वथ नीवारा जर्त्तिलाः सगवेधुकाः ॥७१॥ कुरुविन्दा मर्कटकास्तथा वेणुयवाश्च ये ॥ ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यश्च चतुर्दश ॥ ७२ ॥

लोबिया कुलथी ॥ ६८ ॥ आढक (अरहर) और चने पाहिले सब ग्राम औषधियोंकी यह सत्रह प्रकार जाति उत्पन्न हुई ॥ ६९ ॥ ग्राम और वनकी जो चौदह प्रकार औषधी हैं वह यज्ञके व्यवहारमें आतीहैं व्रीहि (धान्य) यव गेहूं अणु (साँवा) तिल ॥ ७० ॥ प्रियंगु (फलिनी) कुलथी श्यामाक (सामा) अलसी जर्त्तिल (तिल) गवेधुक गरहेडुआ धान्य ॥ ७१ ॥ कुरुविन्द (कुलथी) मर्कटक धान्यविशेष और वेणु यव बाँसके चावल यह चौदह प्रकारकी औषधी ग्रामारण्य हैं ॥ ७२ ॥

इस प्रकार जब वह सब श्रेष्ठ औषधियें फिर नहीं उपजीं तब ब्रह्माजी उनकी वृद्धिके लिये जीवनोपायकी चिन्ता करने लगे ॥ ७३ ॥ तब भगवान् स्वयम्भू ब्रह्माजीने कर्मसे सिद्ध होनेवाली हस्तसिद्धि करी तबसेही कृष्टपच्या औषधी (जोतनेसे उत्पन्न होनेवाली उत्पन्न हुई) ॥ ७४ ॥ इस प्रकार उनके जीवनका उपाय निर्द्धारित होनेपर स्वयंप्रभु ब्रह्माजीने न्यायानुसार और गुणानुसार मर्यादा स्थापन करी ॥ ७५ ॥ हे धार्मिकश्रेष्ठ ! तब समस्तवर्ण और आश्रमोंका धर्म एवं धर्मार्थपालक सर्व वर्णोत्पन्न लोकोंका धर्म निरूपण किया ॥ ७६ ॥ क्रियानिष्ठ ब्राह्मणोंके लिये उन्होंने प्राजापत्यस्थान नियत किया संग्राममें नहीं भागनेवाले क्षत्रियोंके निमित्त ऐन्द्रस्थान ॥ ७७ ॥ स्वधर्मपरायण वैश्योंके लिये मारुतस्थान और सेवापरायण शूद्रोंके लिये गान्धर्वस्थानका

यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न प्ररोहन्ति ताः पुनः ॥ ततः स तासां वृद्ध्यर्थं वार्त्तोपायं चकार ह ॥ ७३ ॥ ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान्हस्तसिद्धिं च कर्मजाम् ॥ ततः प्रभृत्यथौषध्यः कृष्टपच्यास्तु जज्ञिरे ॥ ७४ ॥ संसिद्धायां तु वार्त्तायां ततस्तासां स्वयं प्रभुः ॥ मर्यादां स्थापयामास यथान्यायं यथागुणम् ॥ ७५ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्धर्मभृतां वर ॥ लोकानां सर्ववर्णानां सम्यग्धर्मार्थपालिनाम् ॥ ७६ ॥ प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम् ॥ स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ॥ ७७ ॥ वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्त्तताम् ॥ गांधर्वं शूद्रजातीनां परिचर्यानुवर्तिनाम् ॥ ७८ ॥ अष्टाशीति सहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥ स्मृतं तेषां तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥ ७९॥ सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम् ॥ प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मणः क्षयम् ॥ योगिनाममृतं स्थानमिति वै स्थानकल्पना ॥ ८० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सृष्टिप्रकरणे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

कल्पना करी ॥ ७८ ॥ ऊर्ध्वरेता अठासी हजार ऋषियोंके जो स्थान कल्पित हुएहैं, गुरुके घरमें वास करनेवाले ब्राह्मणोंके लिये भी वही स्थान कल्पित हुए ॥ ७९ ॥ जो स्थान सप्तर्षियोंके निमित्त निर्दिष्ट है, वनवासियोंके लियेभी वही स्थान कल्पित हुए । गृहस्थके लिये प्राजापत्य, संन्यासियोंके लिये अक्षय ब्राह्मपद और योगियोंके लिये अमृतमोक्षस्थान कल्पित हुआ ॥ ८० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सृष्टिप्रकरणे भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि, अनन्तर ब्रह्माजीके पुनर्वार चिन्ता करनेपर उनके शरीरसे कार्य और कारणके सहित मानसी प्रजा उत्पन्न हुई ॥ १ ॥ उन बुद्धिमान् ब्रह्माजीके गात्रसे समस्त क्षेत्रज्ञ उत्पन्न हुए। इसके अतिरिक्त और जो उत्पन्न हुए पूर्वमें उनका उल्लेख कियाहै ॥ २ ॥ देवतासे स्थावर पर्यन्त सबही त्रिगुणयुक्त हैं। इस प्रकार ब्रह्माजीने स्थावर और जंगम चराचर जीवोंको उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ फिर जब बुद्धिमान् ब्रह्माजीने अपनी सब प्रजाको बढता हुआ नहीं देखा, तब अपनेही समान मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ यह ब्रह्माके मानसी पुत्र हुए ॥ ५ ॥ यह नौ ब्रह्माके मानस पुत्र पुराणोंमें निश्चय किये गये हैं। तब फिर उन्होंने क्रोधात्मक रुद्रको उत्पन्न

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसीः प्रजाः ॥ तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्यैस्तैः कारणैः सह ॥१॥ क्षेत्रज्ञाः समवर्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः ॥ ते सर्वे समवर्त्तन्त ये मया प्रागुदाहृताः ॥ २ ॥ देवाद्याः स्थावरांताश्च त्रैगुण्यविषयाः स्मृताः ॥ एवं भूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च ॥३॥ यदास्य ताः प्रजाः सर्वा न व्यवर्द्धन्त धीमतः ॥ अथान्यान्मानसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥४॥ भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा ॥ मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसम् ॥५॥ नव ब्रह्मण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥ ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं क्रोधात्मसम्भवम् ॥ ६ ॥ सङ्कल्पं चैव धर्मं च पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥ सनन्दनादयो ये च पूर्वं सृष्टाः स्वयंभुवा ॥७॥ न ते लोकेषु सज्जन्तो निरपेक्षाः समाहिताः ॥ सर्वे तेऽनागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः ॥ ८ ॥ तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ महात्मनः ॥ ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्तत्रोत्पन्नोऽर्कसन्निभः ॥ ९ ॥

किया ॥ ६ ॥ इसके पीछे संकल्प और धर्मको उत्पन्न किया। जो कि प्रथमसेही प्रगट हैं और सनन्दनादिकोंको स्वयम्भूकी पूर्व सृष्टिमेंही उत्पन्न किया ॥ ७ ॥ यह सब भविष्यत् ज्ञानसंपन्न, वीतराग, मत्सरहीन, निरपेक्ष और समाधिमान् हुए, प्रजा सृष्टि विषयमें सज्जित न हुए ॥ ८ ॥ उनके सृष्टिविषयमें इस प्रकार निरपेक्ष होनेपर महात्मा ब्रह्माजीको अत्यन्त क्रोध उदय हुआ। उसी क्रोधसे (भयंकर देहयुक्त) सूर्यके समान तेजस्वी एक पुरुषने जन्म ग्रहण किया ॥ ९ ॥

उसके देहका आधा भाग पुरुष और आधा भाग नारी था तदनन्तर 'अपने देहको विभक्त कर' यह कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान होगये ॥१०॥ उस पुरुषने भी ब्रह्माजीकी इस प्रकार आज्ञा पाय देहको दो भागमें विभक्त किया। उसमें स्त्रीत्व और पुरुषत्व पृथक् प्रगट हुआ तिनमें जो भाग पुरुषाकार था, उसको सौम्य, असौम्य, शान्त, असित और सित इत्यादि भेदसे ग्यारह भागमें विभक्त किया ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे द्विज! अनन्तर प्रभु ब्रह्माजीने उस पूर्वोत्पन्न अपनी समान पुरुषका "स्वायंभुवमनु" नाम रखकर प्रजापालक किया ॥ १३ ॥ और तपस्याद्वारा जिसने अपने पापोंको नष्ट किया उस कामिनीको 'शतरूपा' नाम प्रदान किया। देव विभु स्वायम्भुव मनुने शतरूपाको अपनी पत्नी बनाया ॥ १४ ॥ उस पुरुषने शतरूपाके दो पुत्र उत्पन्न

अर्द्धनारीनरवपुः पुरुषोऽतिशरीरवान् ॥ विभजात्मानमित्युक्त्वा स तदान्तर्दधे ततः ॥ १० ॥ स चोक्तो वै पृथक्स्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथाकरोत् ॥ बिभेद पुरुषत्वं च दशधा चैकधा तु सः ॥ ११ ॥ सौम्यासौम्यैस्तथा शान्तैः पुंस्त्वं स्त्रीत्वं च स प्रभुः ॥ बिभेद बहुधा देवः पुरुषैरमितैः शितैः ॥ १२ ॥ ततो ब्रह्मात्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवं प्रभुः ॥ आत्मनः सदृशं कृत्वा प्रजापाल्ये मनुं द्विज ॥ १३ ॥ शतरूपां च तां नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम् ॥ स्वायम्भुवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे विभुः ॥ १४ ॥ तस्माच्च पुरुषात्पुत्रौ शतरूपा व्यजायत ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रख्यातावात्मकर्मभिः ॥ १५ ॥ कन्ये द्वे च तथाकूतिं प्रसूतिं च ततः पिता ॥ ददौ प्रसूतिं दक्षाय तथाकूतिं रुचेः पुरा ॥ १६ ॥ प्रजापतिः स जग्राह तयोर्यज्ञः सदक्षिणः ॥ पुत्रो जज्ञे महाभाग दम्पतीमिथुनं ततः ॥ १७ ॥

हुए। उन दोनोंका नाम प्रियव्रत और उत्तानपाद हुआ। यह दोनों अपने अपने कर्मसे विख्यात हैं ॥ १५ ॥ इनके अतिरिक्त जो शतरूपाके दो कन्या उत्पन्न हुईं, उन दोनोंका नाम आकूति और प्रसूति हुआ। पिता स्वायंभुवने प्रसूतिनामक कन्या दक्षको और आकूतिनामक कन्याको प्रजापति रुचिके ॥ १६ ॥ हाथमें समर्पण किया हे महाभाग! उनके जो एक पुत्र और एक कन्याने जन्म ग्रहण किया, उनका नाम यज्ञ और दक्षिणा हुआ। उन दोनोंने दाम्पत्यभाव आरम्भ किया ॥ १७ ॥

उस दक्षिणामें यज्ञके जो बारह पुत्र उत्पन्न हुए वह स्वायंभुव मन्वन्तरमें 'याम' नामक देवता कहकर प्रसिद्ध हैं ॥ १८ ॥ भास्वर इत्यादि और भी कितनेही पुत्र दक्षिणाके गर्भसे यज्ञके द्वारा उत्पन्न हुएथे। इधर दक्षप्रजापतिने प्रसूतिके गर्भसे जो चौवीस ॥ १९ ॥ कन्याको उत्पन्न किया उनके नाम सम्यक् प्रकारसे सुनो। श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया ॥ २० ॥ बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और कीर्त्ति, इन दक्षकी तेरह कन्याको पत्नीके अर्थ धर्मने ग्रहण कियाथा ॥ २१ ॥ और अवशिष्ट जो ग्यारह सुलोचना कन्या थीं जो ख्याति, सती, संभूति, स्मृति, प्रीति,

यज्ञस्य दक्षिणायां तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे ॥ यामा इति समाख्याता देवाः स्वायंभुवेऽन्तरे ॥ १८ ॥ तस्य पुत्रास्तु यज्ञस्य दक्षिणायां सुभास्वराः ॥ प्रसूत्यां च तथा दक्षश्चतस्रो विंशतिस्तथा ॥ १९ ॥ ससर्ज कन्यास्तासां च सम्यङ् नामानि मे शृणु ॥ श्रद्धा लक्ष्मी-र्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ॥ २० ॥ बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी ॥ पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः ॥ २१ ॥ ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः ॥ ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिस्तथा क्षमा ॥ २२ ॥ सन्ततिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥ भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः ॥ २३ ॥ पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुश्च ऋषयस्तथा ॥ वसिष्ठोऽत्रिस्तथा वह्निः पितरश्च यथाक्रमम् ॥ २४ ॥ ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्तमाः ॥ श्रद्धा कामं श्रीश्च दर्पं नियमं धृतिरात्मजम् ॥ २५ ॥ सन्तोषं च तथा तुष्टिर्लोभं पुष्टिरजायत ॥ मेधा श्रुतं क्रिया दण्डं नयं विनयमेव च ॥ २६ ॥ बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम् ॥ व्यवसायं प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिरसूयत ॥ २७ ॥

क्षमा ॥ २२ ॥ सन्तति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नामसे विख्यात थीं उनको भृगु इत्यादि सबने क्रमानुसार ग्रहण किया ॥ २३ ॥ महादेव, मरीचि, अंगिरा मुनि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, अत्रि, वह्नि और पितृगण ॥ २४ ॥ इन मुनि ऋषि और मुनिसत्तम गणोंने ख्याति इत्यादि इन ग्यारह दक्षकी कन्याओंको यथाक्रमसे ग्रहण किया। तिनमें श्रद्धाने कामको, श्रीने दर्पको, धृतिने नियमको ॥ २५ ॥ तुष्टिने संतोषको पुष्टिने लोभको, मेधाने श्रुतको, क्रियाने दंडको ॥ २६ ॥ बुद्धिने बोधको, लज्जाने विनयको, वपुने व्यवसायको, शान्तिने क्षेमको ॥ २७ ॥

सिद्धिने सुखको और कीर्तिने यशको उत्पन्न किया । यही धर्मकी सन्तान हैं । कामसे अतिहृष्ट हर्षनामक धर्मका पौत्र उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥ अधर्मकी भार्याका नाम हिंसा हुआ, उसके गर्भसे अनृतकी उत्पत्ति हुई, अनृतने उस निर्ऋतिके गर्भसे नरक और भयनामक दो पुत्र ॥ २९ ॥ और माया तथा वेदना नामक दो कन्याको उत्पन्न किया यह परस्पर मिथुनभावापन्न हैं । तिनमें मायाने प्राणियोंका संहार करनेवाला मृत्यु नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ ३० ॥ और नरकसे दुःखनामक एक पुत्रको वेदनाने उत्पन्न किया । इस मृत्युके व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥ यह सब दुःखसे उत्पन्न और महा अधर्मी हुए; उनके भार्या वा पुत्र कोई नहीं है क्योंकि यह सब ऊर्ध्वरेता हैं ॥ ३२ ॥ हे मुनिवर ! निर्ऋतिनामक मृत्युकी जो और

सुखं सिद्धिर्यशः कीर्तिरित्येते धर्मयोनयः ॥ कामादतिमुदं हर्षं धर्मपौत्रमसूयत ॥ २८ ॥ हिंसा भार्या त्वधर्मस्य तस्यां जज्ञे तथानृतम् ॥ कन्या च निर्ऋतिस्तस्यां सुतौ द्वौ नरकं भयम् ॥ २९ ॥ माया च वेदना चैव मिथुनं द्वयमेतयोः ॥ तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम् ॥ ३० ॥ वेदनात्मसुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ॥ मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधश्च जज्ञिरे ॥ ३१ ॥ दुःखोद्भवाः स्मृता ह्येते सर्वे वाधर्मलक्षणाः ॥ नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्द्ध्वरेतसः ॥ ३२ ॥ निर्ऋतिश्च तथा चान्या मृत्योर्भार्याभवन्मुने ॥ अलक्ष्मीर्नाम तस्यां च मृत्योः पुत्राश्चतुर्दश ॥ ३३ ॥ अलक्ष्मीपुत्रका ह्येते मृत्योरादेशकारिणः ॥ विनाशकालेषु नरान्भजन्त्येते शृणुष्व तान् ॥ ३४ ॥ इन्द्रियेषु दशस्वेते तथा मनसि च स्थिताः ॥ स्वे स्वे नरं स्त्रियं वापि विषये योजयन्ति हि ॥ ३५ ॥ अथेन्द्रियाणि चाक्रम्य रागक्रोधादिभिर्नरान् ॥ योजयन्ति यथा हानिं यान्त्यधर्मादिभिर्द्विज ॥ ३६ ॥

एक भार्या थी जिसको लोकमें अलक्ष्मी कहतेहैं मृत्युने उससे चौदह पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३३ ॥ मृत्युके आज्ञावर्त्ती पुत्रगण ' अलक्ष्मीपुत्र ' के नामसे विख्यात हैं, यह विनाशके समय मनुष्योंके जिस जिस अंगमें रहते हैं उनके नाम कहताहूं सुनो ॥ ३४ ॥ यह प्रथम दश दश इन्द्रियोंमें वास करतेहैं और ग्यारह वा सबके मनके ऊपर वास करताहै, यही सब स्त्री और पुरुषोंको अपने अपने विषयमें मिलालेताहै ॥ ३५ ॥ हे द्विज ! अनन्तर राग और क्रोधादिद्वारा समस्त इन्द्रियोंका आक्रमण करके अधर्मादिके सहित संयोजित करताहै, जिससे प्राणियोंकी हानि होतीहै ॥ ३६ ॥

अपर एक अर्थात् बारहवाँ मृत्युका पुत्र अहंकारको आश्रय करके वर्त्तमान है, अपर प्राणियोंकी बुद्धिके ऊपर अवस्थान करताहै, इससेही पुरुषगण मोहित होकर स्त्रियोंका विनाश करनेमें यत्नवान् होतेहैं ॥ ३७ ॥ अपर एक अर्थात् चौदहवाँ जो अलक्ष्मीका पुत्र है, उसका नाम दुःसह है यह पुरुषोंके घर घरमें वास करता है । यह दुःसह सदाही क्षुधातुर, अधोमुख, नग्न, चीरधारी और काककी समान शब्द करनेवाला है ॥ ३८ ॥ बोध होताहै ब्रह्माजीने सब पदार्थको भक्षण करनेके लियेही इस तपोनिधिको उत्पन्न कियाहै । अनन्तर दुःसहको कराल दाढ, मुख फैलाये अत्यन्त भयंकर मूर्तिसे शब्द करते ॥ ३९ ॥ सबको भक्षण करनेमें उद्यत देखकर लोक पितामह, सर्व ब्रह्ममय, शुद्ध और जगत्के कारण अविनाशी ब्रह्माजी कहने लगे ॥ ४० ॥

अहङ्कारगताश्चान्ये तथान्ये बुद्धिसंस्थिताः ॥ विनाशाय नरस्त्रीणां यतन्ते मोहसंश्रिताः ॥ ३७ ॥ तथैवान्यो गृहे पुंसां दुःसहो नाम विश्रुतः ॥ क्षुत्क्षामोऽधोमुखो नग्नश्चीरी काकसमस्वनः ॥ ३८ ॥ स सर्वान्खादितुं सृष्टो ब्रह्मणा तमसो निधिः ॥ दंष्ट्राकरालमत्यर्थं विवृतास्यं सुभैरवम् ॥ ३९ ॥ तमत्तुकाममाहेदं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ सर्वब्रह्ममयः शुद्धः कारणं जगतोऽव्ययः ॥ ४० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नात्तव्यं ते जगदिदं जहि कोपं शमं व्रज ॥ त्यजैनां तामसीं वृत्तिमपास्य रजसः कलाम् ॥ ४१ ॥ दुःसह उवाच ॥ क्षुत्क्षामोऽस्मि जगन्नाथ पिपासुश्चापि दुर्बलः ॥ कथं तृप्तिमियां नाथ भवेयं बलवान्कथम् ॥ कश्चाश्रयो ममाख्याहि वर्तेयं यत्र निर्वृतः ॥४२॥ ब्रह्मोवाच ॥ तवाश्रयो गृहं पुंसां जनश्चाधार्मिको बलम् ॥ पुष्टिर्नित्यक्रियाहान्या भवान्वत्स गमिष्यति ॥ ४३ ॥

ब्रह्माजी बोले-हे दुःसह ! जगत्को तुम्हारा भक्षण करना उचित नहीं है, कोप परित्याग करके शान्ति लाभ करो । इस तमोगुणकी वृत्तिको त्यागदो, और रजोगुणके अंशकोभी त्यागदो ॥४१॥ दुःसहने कहा-हे जगन्नाथ ! मैं भूंखसे अत्यन्त कृश और प्यासके मारे अत्यन्त दुर्बल होगयाहूं । हे नाथ ! किस प्रकार तृप्ति लाभ करूं ? और किस प्रकारसे बलवान् होऊँ तथा किसका आश्रय करके सुखसे रहूं ? यह आप कृपा करके कहिये ॥४२॥ ब्रह्माजी बोले-हे वत्स ! पुरुषोंका घरही तुम्हारा आश्रय, अधर्मी मनुष्यही तुम्हारा बल और मनुष्योंके नित्यकृत्यकी हानि होनेसेही तुम पुष्टिलाभ करोगे ॥ ४३ ॥

मकरीके जाले और सब स्फोट (फोडे) ही तुम्हारे वस्त्र हैं। अब तुमको आहार प्रदान करताहूं। जिस स्थानमें कीडे उत्पन्न हुए हैं जिसको कुत्तेने देख लियाहै, ऐसे घावका स्थानही तुम्हारा आहार है ॥ ४४ ॥ और जो पदार्थ फूटे बर्तनमें रक्खाहो, वा मुखसे फूंक मारकर ठंढा किया हो, अथवा उच्छिष्ट वा कच्चा हो, या जो अन्न संस्कारहीन हो ॥ ४५ ॥ वा फटेहुए आसनपर बैठकर, वा घर आये अतिथिको विना जिमाये या दक्षिणदिशाकी ओरको मुख करके, किंवा संध्याके समय अथवा नृत्यके समय, गानेके समय वा बजानेके समय जो कोई भोजन करताहै ॥ ४६ ॥ या रजस्वला स्त्रीका देखा हुआ वा उसका छुआ हुआ अथवा किसीका उच्छिष्ट किया हुआ, किंवा कोई दूषित पाक यदि कोई भोजन करता हो ॥ ४७ ॥ यह सब पदार्थ तुम्हारे खाद्य

लूताः स्फोटाश्च ते वस्त्रमाहारं च ददामि ते ॥ क्षुतकीटावपन्नं च तथा श्वाभिरवेक्षितम् ॥४४॥ भग्नभाण्डगतं तद्वन्मुखवातोपशामितम् ॥ उच्छिष्टापक्वमस्विन्नमवलीढमसंस्कृतम् ॥ ४५ ॥ भग्नासनस्थितैर्भुक्तमासन्नागतमेव च ॥ विदिङ्मुखं सन्ध्ययोश्च नृत्यवाद्यस्वनाकुलम् ॥ ४६ ॥ उदक्योपहतं भुक्तमुदक्याद्दष्टमेव च ॥ यच्चोपघातवत्किंचिद्भक्ष्यं पेयमथापि वा ॥ ४७ ॥ एतानि तव पुष्ट्यर्थमन्यच्चापि ददामि ते ॥ अश्रद्धया हुतं दत्तमस्नातैर्यदवज्ञया ॥ ४८ ॥ यन्नाम्बुपूर्वकं क्षिप्तमनात्मीकृतमेव च ॥ त्यक्तुमाविष्कृतं यच्च दत्तं चैवातिविस्मयात् ॥ ४९ ॥ दुष्टं क्रुद्धातदत्त च यक्ष्मन्प्राप्स्यसि तत्फलम् ॥ यच्च पौनर्भवः किंचित्करोत्यामुष्मिकं क्रमम् ॥ ५० ॥ यच्च पौनर्भवा योषित्तद्यक्ष्म तव तृप्तये ॥ कन्याशुल्कोपधानाय समुपास्ते धनक्रियाः ॥ ५१ ॥

और पुष्टिकारक होंगे ? हे दुःसह ! तुम्हारी पुष्टिके लिये और भी देताहूं। जो विना स्नान किये अश्रद्धापूर्वक होम करताहै, जो अज्ञानी मनुष्योंके द्वारा दिया जाताहै ॥ ४८ ॥ जल स्पर्श न करके जो दिया हो अर्थात् जो वस्तु विना जलके पवित्र की हो; वा जो वस्तु व्यर्थ पडीहो, परित्याग करनेके लिये जो विस्तार कीहो, फैलाईहो, जो अत्यन्त आश्चय अर्थात् डरकर दी गई ॥४९॥ जो दुष्ट, क्रोधित और आर्त्तमनुष्योंने दी हो और जो फल हो, यह सब भोग करो। हे यक्ष्म ! यही तुम्हारे वशीभूत हैं। जो दूसरी बार विवाही स्त्रीके पुत्रने परलोकसम्बन्धी कार्य कियाहो ॥ ५० ॥ और पुनर्भवा स्त्री जो कर्म करतीहै; हे यक्ष्म ! वह तुम्हारी ही तृप्तिके लिये है। हे यक्ष्म ! (जो कन्याके ऊपर द्रव्य लेनेमें धनक्रिया की जातीहै) ॥ ५१ ॥

इसी प्रकार जो क्रिया असत् शास्त्रद्वारा संपादित होतीहैं; वह तुम्हारी ही पुष्टिके अर्थ है। और जो अर्थप्राप्तिके निमित्त कार्य है जो असत्यतासे पढा है ॥५२॥ हे दुःसह! वही तुम्हारी पुष्टिका हेतु होगा। अब तुम्हारी सिद्धिके लिये तुमको समय देताहूं; सुनो। जब मनुष्य गर्भवती स्त्रीसे रमण करतेहैं. जब संध्या वा नित्य कार्यका व्यतिक्रम होताहै ॥ ५३ ॥ और जब मनुष्यगण असत् शास्त्रोक्त कार्य कलापद्वारा दूषित होतेहैं, हे दुःसह! उसी समय तुम उनके तिरस्कारकी सामर्थ्य लाभ करोगे ॥ ५४ ॥ जहां पंक्तिभेद हो, जहां वृथा पाक बनताहो अर्थात् अपनेही लिये भोजन बनताहो, वा जहां सदा क्लेश रहताहो वहा तुम्हारा वास होगा ॥ ५५ ॥ जिन घरोंमें विना अन्न तृण दिये गाय घोडा इत्यादि जो और पशु हैं, उनको भूंखा बांध रखतेहैं और जिन

तथैव यक्ष्म पुष्ट्यर्थमसच्छास्त्रक्रियाश्च याः ॥ यच्चार्थनिर्वृतौ किंचिदधीतं यन्न सत्यतः ॥ ५२ ॥ तत्सर्वं तव कामांश्च ददामि तव सिद्धये ॥ गुर्विण्यभिगमे सन्ध्या नित्यकार्यव्यतिक्रमे ॥ ५३ ॥ असच्छास्त्रक्रियालापदूषितेषु च दुःसह ॥ तवाभिभवसामर्थ्यं भविष्यति सदा नृषु ॥ ५४ ॥ पङ्क्तिभेदे वृथापाके पाकभेदे तथा कृते ॥ नित्यं च गेहकलहे भविता वसतिस्तव ॥ ५५ ॥ अपोष्यमाणे च तथा भृत्यगोवाहनादिके ॥ असन्ध्याभ्युक्षितागारे काले त्वत्तो भयं नृणाम् ॥ ५६ ॥ नक्षत्रग्रहपीडासु त्रिविधोत्पातदर्शने ॥ अशान्तिकपरान्यक्ष्मन्नरानभिभविष्यसि ॥ ५७ ॥ वृथोपवासिनो मर्त्या द्यूतस्त्रीषु सदा रताः ॥ त्वद्भाषणोपकर्त्तारो बैडालव्रतिकाश्च ये ॥ ५८ ॥ अब्रह्मचारिणाधीतमिज्या चाविदुषा कृता ॥ तपोवने ग्राम्यभुजां तथैवानिर्जितात्मनाम् ॥ ५९ ॥

घरोंमें सूर्यास्त होनेसे पहले असंध्याकालमें बुहारी नहीं लगती हे दुःसह! वहांके मनुष्योंको तुमसे भय होगा ॥५६॥ नक्षत्रपीडा, ग्रहपीडा वा त्रिविध उत्पातके दिखाई देनेपर जो मनुष्य शान्ति नहीं करते, उन मनुष्योंको तुम अभिभूत करोगे ॥५७॥ जो वृथा उपवास करतेहैं, जूए और स्त्रीमें जो सदा आसक्त हैं वा जो तुम्हारेही उपकारकी बातचीत करतेहैं और बैडालव्रतिक अर्थात् जो बिल्लीकी समान अपना प्रयोजन सिद्ध करतेहैं ॥ ५८ ॥ जो लोग विना ब्रह्मचर्यके वेद पाठ करतेहैं, और मूर्खोंका किया यज्ञ, और तपोवनमें गृहस्थियोंकी समान कर्म और चंचलचित्त अजितेन्द्रियोंका अध्ययन ॥ ५९ ॥

स्वकर्मभ्रष्ट परलोकमें सुखकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी तपोवनमें चेष्टा ॥ ६० ॥ और इन सब कार्योंका फल, हे यक्ष्म ! तुम्हारे अधीन हैं। तुम्हारी पुष्टिके लिये और भी देताहूं ॥ ६१ ॥ जो वैश्वदेवके (होमाङ्गविशेषके) अन्तमें तुम्हारा नाम उच्चारण करके 'यह तुम्हारा है' इस प्रकार कह मनुष्यगण तुमको ऊर्जित बलिप्रदान करतेहैं ॥ ६२ ॥ जो मनुष्यविधिपूर्वक समस्त संस्कृत पदार्थ भोजन करतेहैं अनन्तर और बाहरमें सदा पवित्र निर्लोभ और स्त्रियें जिसको वशीभूत करनेमें समर्थ नहीं होतीं, तुम उनका गृह परित्याग करो ॥ ६३ ॥ जिस घरमें हव्य कव्य द्वारा देवता और पितृगण सर्वदा पूजित होतेहैं, और जहां अतिथिगण सदा पूजित होतेहैं हे यक्ष्म ! तुम उस घरको परित्याग करो ॥ ६४ ॥ जिस घरमें बालक, वृद्ध,

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च स्वकर्मतः ॥ परिच्युतानां या चेष्टा परलोकार्थमीप्सताम् ॥ ६० ॥ तस्याश्च यत्फलं सर्वं तत्ते यक्ष्मन्भविष्यति ॥ अन्यच्च ते प्रयच्छामि पुष्ट्यर्थं संनिबोध तत् ॥६१॥ भवतो वैश्वदेवान्ते नामोच्चारणपूर्वकम् ॥ एतत्तवेति दास्यन्ति भवतो बलिमूर्जितम् ॥ ६२ ॥ यः संस्कृताशी विधिवच्छुचिरन्तस्तथा बहिः ॥ अलोलुपो जितस्त्रीकस्तद्गेहमपवर्जय ॥ ६३ ॥ पूज्यन्ते हव्यकव्याभ्यां देवताः पितरस्तथा ॥ जामयोऽतिथयश्चापि तद्गेहं यक्ष्म वर्जय ॥६४॥ यत्र मैत्री गृहे बालवृद्धयोषिन्नरेषु च ॥ तथा स्वजनवर्गेषु गृहं तच्चापि वर्जय ॥ ६५ ॥ योषितोऽभिमता यत्र न बहिर्गमनोत्सुकाः ॥ लज्जान्विताः सदा गेहं यक्ष्म तत्परिवर्जय ॥ ६६ ॥ वयःसम्बंधयोग्यानि शयनान्यशनानि च ॥ यत्र गेहे त्वया यक्ष्म तद्वर्ज्यं वचनान्मम ॥६७॥ यत्र कारुणिका नित्यं साधुकर्मण्यवस्थिताः ॥ सामान्योपस्करैर्युक्तास्त्यजेथा यक्ष्म तद्गृहम् ॥ ६८ ॥

युवक, युवती और स्वजनवर्ग सदा मित्रतासंपन्न हैं, उस घरको भी तुम परित्याग करो ॥ ६५ ॥ जिस घरकी स्त्री अनुरक्त हैं बाहर जानेकी इच्छा नहीं करतीं और सर्वदा लज्जायुक्त हैं, वह घर तुम्हारे त्यागने योग्य है ॥६६॥ हे यक्ष्म ! जिस घरमें अपनी अवस्था और अपने वैभवानुसार शयन वा भोजन करतेहो, तुमको उस घरका भी मेरे वचनसे परित्याग करना उचित है ॥ ६७ ॥ जिस घरके मनुष्य अत्यन्त करुणाके वशीभूत है सर्वदा सत्कार्यमें अवस्थित और सामान्य (सामग्री) द्वारा संयुक्त हैं हे यक्ष्म ! तुम उसको त्यागदेना ॥ ६८ ॥

जहां गुरु वृद्ध और ब्राह्मणोंके आसनमें बैठनेपर भी जो आसन ग्रहण नहीं करते। हे यक्ष्म! उस घरको तुम सर्वदा परित्याग करना ॥ ६९ ॥ जिस घरका द्वार वृक्ष गुल्मादिसे रुद्ध न हो जो किसीकी मर्मभेदी बात न कहताहो उस सुन्दर मंदिरमें जानेसे तुम्हारा कभी कल्याण नहीं होगा ॥ ७० ॥ जो पुरुष देवता, पितृ, मनुष्य और अतिथिको भोजन कराकर उनके बचेहुए उच्छिष्ट मात्रसे अपनी जीवन यात्रा निर्वाह करताहै, उसका घर तुम छोड देना ॥ ७१ ॥ जो सत्यवादी, क्षमाशील, अहिंसक, अनुतापरहित, और जो असूयाके वशीभूत नहीं हैं, हे यक्ष्म! उन पुरुषोंको तुम सदा परित्याग करना ॥ ७२ ॥ जो स्त्री सदा स्वामीकी सेवामें तत्पर है, असतीका संग परित्याग करतीहै और कुटुम्ब तथा स्वामीके भोजनसे बचेहुए अन्नद्वारा अपना

यत्रासनस्थास्तिष्ठत्सु गुरुवृद्धद्विजातिषु ॥ न तिष्ठन्ति गृहं तच्च वर्ज्यं यक्ष्म त्वया सदा ॥६९॥ तरुगुंल्मादिभिर्द्वारं न विद्धं यस्य वेश्मनः ॥ मर्मभेदो न वा पुंसस्तच्छ्रेयो भवनं न ते ॥ ७० ॥ देवतापितृभृत्यानामातिथीनां च वर्तनम् ॥ यस्यावशिष्टेनान्नेन पुंसस्तस्य गृहं त्यज ॥ ७१ ॥ सत्यवाक्यान्क्षमाशीलानहिंस्रान्नानुतापिनः ॥ पुरुषानीदृशान्यक्ष्म त्यजेथाश्चानसूयकान् ॥ ७२ ॥ भर्तृशुश्रूषणे युक्तामसत्स्त्रीसङ्गवर्जिताम् ॥ कुटुम्बभर्तृशेषान्नपुष्टां च त्यज योषितम् ॥ ७३ ॥ यजनाध्ययनाभ्यासदानासक्तमतिं सदा ॥ याजनाध्यापनादानकृतवृत्तिं द्विजं त्यज ॥ ७४ ॥ दानाध्ययनयज्ञेषु सदोद्युक्तं च दुःसह ॥ क्षत्रियं त्यज सच्छुल्कशस्त्राजीवात्तवेतनम् ॥ ७५ ॥ त्रिभिः पूर्वगुणैर्युक्तं पाशुपाल्यवणिज्ययोः ॥ कृषेश्चावातवृत्तिं च त्यज वैश्यमकल्मषम् ॥ ७६ ॥ दानेज्याद्विजशुश्रूषातत्परं यक्ष्म संत्यज ॥ शूद्रं च ब्राह्मणादीनां शुश्रूषावृत्तिपोषकम् ॥ ७७ ॥

पोषण करतीहै, ऐसी स्त्रीको तुम परित्याग करो ॥ ७३ ॥ जो ब्राह्मण यजन, अध्ययन, अभ्यास और दानविषयमें सदा आसक्तचित्त है, एवं याजन, अध्यापन और दान प्रतिग्रह द्वारा जीविका निर्वाह करतेहैं, उन ब्राह्मणोंको तुम परित्याग करो ॥ ७४ ॥ हे दुःसह! जो क्षत्रिय सर्वदा दान, अध्ययन और यज्ञ करनेमें प्रवृत्त रहते हैं और स्वीय पवित्र शस्त्रजीविका द्वारा वेतन ग्रहण करते हैं, उनको तुम परित्याग करो ॥ ७५ ॥ जो वैश्य त्रिविध पूर्व गुणयुक्त और पशुपालन, व्यापार और खेतीके द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं उन निष्पाप वैश्यगणको तुम परित्याग करना ॥ ७६ ॥ जो शूद्र दान, यज्ञ और

ब्राह्मणोंकी सेवामें तत्पर हैं और ब्राह्मणादिकी सेवाद्वारा अपनी वृत्तिके परिपोषक हैं, हे दुःसह ! ऐसे शूद्रोंको सम्यक् प्रकारसे त्याग देना ॥ ७७ ॥ जो मनुष्य घरमें वास करके श्रुति और स्मृतिके अविरोधमें वृत्ति निर्वाह करतेहैं, और उनकी पत्नीभी उनकेही अनुगत होती हैं ॥ ७८ ॥ जिस घरमें पुत्रगण देवता, गुरु और पितरोंकी पूजा करतेहैं, स्त्रियें स्वामीकी सेवा करती हैं, हे यक्ष्म ! उस स्थानमें किस प्रकारसे अलक्ष्मीका भय होगा ॥ ७९ ॥ जो घर तीनों संध्यामें लीपाजाय, अथवा जल छिडककर पवित्र किया जाय और सुगंधित पुष्पोंके द्वारा देवताओंको बलि दिया जाय, उस घरके देखनेमेंभी तुम समर्थ नहीं होगे ॥ ८० ॥ सूर्य जिस घरकी शय्याको नहीं देखते हों और जिस घरमें अग्नि और जल विद्यमान रहता है, और जो सूर्यके प्रकाशसे प्रका-

श्रुतिस्मृत्याविरोधेन कृतवृत्तिगृहे गृही ॥ यत्र तत्र च तत्पत्नी तस्यैवानुगतात्मिका ॥७८॥ यत्र पुत्रो गुरोः पूजां देवानां च तथा पितुः ॥ पत्नी च भर्तुः कुरुते तत्रालक्ष्मीभयं कुतः ॥ ७९ ॥ सदानुलिप्तं सन्ध्यासु गृहमम्बुसमुक्षितम् ॥ कृतपुष्पबलिं यक्ष्म न त्वं शक्नोषि वीक्षितुम् ॥ ८० ॥ भास्करादृष्टशय्यानि नित्याग्निसलिलानि च ॥ सूर्यावलोकदीपानि लक्ष्म्यागेहानि भाजनम् ॥८१॥ यत्रोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी ॥ विषाज्यताम्रपात्राणि तद्गृहं न तवाश्रयः ॥ ८२ ॥ यत्र कण्टकिनो वृक्षा यत्र निष्पाववल्लरी ॥ भार्या पुनर्भूर्वल्मीकस्तद्यक्ष्म तव मन्दिरम् ॥ ८३ ॥ यस्मिन्गृहे नराः पंच स्त्रीत्रयं तावतीश्च गाः ॥ अन्धकारेन्धनाग्निश्च तद्गृहं वसतिस्तव ॥ ८४॥ एकच्छागं द्विबालेयं त्रिगवं पञ्चमाहिषम् ॥ षडश्वं सप्तमातङ्गं गृहं यक्ष्माशु शोषय ॥ ८५ ॥

शित होताहै वह घर लक्ष्मीका स्थान है ॥ ८१ ॥ जिस घरमें चंदन, वीणा, दर्पण, मधु, घृत, विष और तांबेके वर्तन विद्यमान हों, उस घरको तुम अपना आश्रय नहीं करसकोगे ॥ ८२ ॥ जिस घरमें कंटकयुक्त वृक्ष, निष्पावलता (लोबियेकी वेल) पुनर्भू भार्या और वल्मीक (बमई) वर्तमान हो, हे यक्ष्म ! वह तुम्हाराही घर है ॥ ८३ ॥ जिस घरमें पांच पुरुष, तीन स्त्री, तीन गाय, अन्धकार, काष्ठ और अग्नि अवस्थित है, उसी घरमें तुम्हारा वास होगा ॥८४॥ हे यक्ष्म ! जिस घरमें एक छाग (बकरी), दो स्त्री, तीन गाय, पांच भैंसे, छः घोडे और सात हाथी रहते हो उस घरको शीघ्रही शोषित अर्थात् विनाश करो ॥ ८५ ॥

जिस घरमें कुदाल दात्र (दराती) पीढा और थाली इत्यादि समस्त पात्र इधर उधर बिखरे पडे रहतेहैं, वहांके मनुष्य तुमको अपने घरमें आश्रय देनेकी इच्छा करतेहैं ॥ ८६ ॥ हे यक्ष्म ! जिस घरमें स्त्री मुसल वा ओखलीके ऊपर बैठी रहती है वा उदुंबर (देहली) के ऊपर बैठी रहतीहै और घरके पिछवारे रहनेवाली स्त्रीसे बातें करती रहतीहै, यह सर्व कार्य तुम्हारेही उपकारके लियेहैं ॥ ८७ ॥ जिस घरमें पका या विना पका हुआ धान्य और सत् शास्त्रका अनादर होता है हे दुःसह ! उस घरमें तुम इच्छानुसार विचरण करो ॥८८॥ और जिस घरमें थाली ढकना अथवा करछलीसे घरवाली स्त्री किसीको आग देतीहो, वह घर सब अरिष्टका स्थान है ॥ ८९ ॥ मनुष्यकी हड्डी और मृतपदार्थ जिस घरमें दिनरात रहे. वहां और अन्यान्य

कुद्दालदात्रपिटकं तद्वत्स्थाल्यादिभाजनम् ॥ यत्र तत्रैव क्षिप्तानि तव दद्युः प्रतिश्रयम् ॥८६॥ मुशलोलूखले स्त्रीणामास्या तद्वदुदुम्बरे ॥ अवस्करे मन्त्रणं च यक्ष्म तदुपकृत्तव ॥८७॥ लंघ्यन्ते यत्र धान्यानि पक्वापक्वानि वेश्मनि ॥ तद्वच्छास्त्राणि तत्र त्वं यथेष्टं चर दुःसह ॥८८॥ स्थालीपिधाने यत्राग्निर्दत्तो दर्वीफलेन वा ॥ गृहे तत्र हि रिष्टानामशेषाणां समाश्रयः ॥८९॥ मानुषास्थिगृहे यत्र दिवारात्रं मृतस्थितिः ॥ तत्र यक्ष्म तव वासस्तथान्येषां च रक्षसाम् ॥ ९० ॥ अदत्त्वा भुञ्जते ये वै बन्धोः पिण्डं तथोदकम् ॥ सपिण्डान्सोदकांश्चैव तत्काले तान्नरान्भज ॥९१॥ यत्र पद्ममहापद्मौ सुरभिर्मोदकाशिनी ॥ वृषभैरावतौ यत्र कल्प्यंते तद्गृहं त्यज ॥९२॥ अशस्त्रा देवता यत्र सशस्त्राश्चाहवं विना ॥ कल्प्यन्ते मनुजैरर्च्यास्तत्परित्यज मन्दिरम् ॥ ९३ ॥ पौरजानपदैर्यत्र प्राक्प्रसिद्धमहोत्सवाः ॥ क्रियंते पूर्ववद्गेहे न त्वं तत्र गृहे चर ॥ ९४ ॥ शूर्पवातघटाम्भोभिः स्नानं वस्त्राम्बुविप्रुषैः ॥ नखाग्रसलिलैश्चैव तान्याहि हतलक्षणान् ॥ ९५ ॥

समस्त राक्षसोंका वास होगा ॥ ९० ॥ जब मनुष्य बंधु, सपिंड, वा समानोदक पुरुषोंको पिंड वा जल दान नहीं करते उसी समयमें तुम उनकी भजना करो ॥ ९१ ॥ जिस घरमें पद्म और महापद्म (निधिविशेष) वर्तमान हैं, स्त्रियें सदा मोदक (लड्डू) भोजन करतींहैं एवं बैल और ऐरावत वर्तमान रहता है, उस घरको तुम परित्याग करो ॥ ९२ ॥ जहां अशस्त्र देवता युद्धके विनाही मनुष्योंके द्वारा सशस्त्र अवस्थामें काल्पित होकर पूजे जातेहैं. उस मन्दिरको तुम परित्याग करो ॥ ९३ ॥ पूर्ववत् जिन सब घरोंमें तथा पुरवासी पुरोंमें और समस्त जनपद पूर्वप्रसिद्ध महोत्सवसे संयुक्त होतेहैं. उस घरमें तुम मत जाना ॥ ९४ ॥ जो छाजकी वायु कलशके जल वस्त्रके निचोडेहुए जल और पादाग्रजल चरणके अग्रभागको लगे जलसे स्नान करतेहैं, उन हत-

लक्षण मनुष्योंके निकट तुम गमन करो ॥ ९५ ॥ जो मनुष्य देशाचार, समय, ज्ञाति, धर्म, जप, होम, मंगलकार्य, देवपूजा, सम्यक् शौच और यथाविधि समस्त लोकवादका आचरण करतेहैं उन मनुष्योंके सहित तुम्हारा संग न हो ॥ ९६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले हे द्विजवर ! ब्रह्माजी दुःसहको इस प्रकार आज्ञा देकर उसी स्थानमें अन्तर्धान होगये और वह दुःसह भी पद्मजन्मा ब्रह्माजीका अनुशासन उसी प्रकार पालन करने लगा ॥ ९७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां यक्ष्मानुशासनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि दुःसहकी भार्या निर्माष्टि हुई यह निर्माष्टि

देशाचारान्समयाञ्ज्ञातिधर्मं जपं होमं मङ्गलं देवतेष्टिम् ॥ सम्यक्छौचं विधिवल्लोकवादान्पुंसस्त्वया कुर्वतो माऽस्तु सङ्गः ॥९६॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्त्वा दुःसहं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ॥ चकार शासनं सोऽपि तथा पंकजजन्मनः ॥ ९७ ॥ इति श्रीर्कण्डेयपुराणे यक्ष्मानुशासनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥४७॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ दुःसहस्याभवद्भार्या निर्माष्टिर्नाम नामतः ॥ जाता कलेस्तु भार्यायामृतौ चाण्डालदर्शनात् ॥ १ ॥ तयोरपत्यान्यभवञ्जगद्व्यापीनि षोडश ॥ अष्टौ कुमाराः कन्याश्च तथाष्टावतिभीषणाः ॥ २ ॥ दन्ताकृष्टिस्तथोक्तिश्च परिवर्तस्तथापरः ॥ अङ्गध्रुक्छकुनिश्चैव गण्डप्रान्तरतिस्तथा ॥ ३ ॥ गर्भहा सस्यहा चान्यः कुमारास्तनयास्तयोः ॥ कन्याश्चान्यास्तथैवाष्टौ तासां नामानि मे शृणु ॥ ४ ॥ नियोजिका वै प्रथमा तथैवान्या विरोधिनी ॥ स्वयंहारकरी चैव भ्रामणी ऋतुहारिका ॥ ५ ॥ स्मृतिबीजहरे चान्ये तयोः कन्ये सुदारुणे ॥ विद्वेषण्यष्टमी नाम कन्या लोकभयावहा ॥ ६ ॥

यमकी कन्या थी । यमपत्नी ऋतुमती होकर चाण्डालके देखनेपर उस गर्भसे निर्माष्टिने जन्म ग्रहण किया ॥ १ ॥ इसके उपरान्त दुःसहके द्वारा निर्माष्टिके गर्भसे जगत्व्यापी अत्यन्त भीषणाकार सोलह सन्तान हुईं तिनमें आठ पुत्र और आठ कन्या ॥ २॥ दन्ताकृष्टि, तथोक्ति, परिवर्त्त, अङ्गध्रुक्, शकुनि, गण्ड, प्रान्तरति ॥ ३ ॥ गर्भहा और सस्यहा यह आठ पुत्र हुए अब आठ कन्याओंके नाम कहतेहैं सुनो ॥ ४ ॥ नियोजिका, विरोधिनी, स्वयंहारकरी, भ्रामणी, ऋतुहारिका ॥ ५ ॥ स्मृतिहरा, बीजहरा यह दोनों महाभयंकर हुईं और आठवीं विद्वेषिणी जो सब लोकोंको महाभय दिखानेवाली थी ॥ ६ ॥

हे द्विजसत्तम ! अब इन आठों कुमारोंके कर्म और उनके दोष शमन करनेका उपाय कहताहूं; सुनो ॥ ७ ॥ दन्ताकृष्टि तो प्रसूत बालकके दांतोंमें रह-कर दांतोंको अत्यन्त किडकिडाताहै इसीके आश्रयसे वहां पर दुःसहभी आताहै ॥ ८ ॥ इसके शमन करनेका उपाय यह है, कि सोते हुए बालकके दातों पर और शय्या पर सफेद सरसों डालदे ॥ ९ ॥ वा औषधियोंके जलसे स्नान करावे, सत् शास्त्रका कीर्त्तन करावे, या ऊंट वा गेंडेकी अस्थिका यंत्र बनाकर बालकके गलेमें डाले अथवा रेशमीन वस्त्र धारण करानेसे बालककी शान्ति होतीहै ॥१०॥ दूसरा कुमार तथोक्ति "यही हो" इस प्रकार कहकर सब मनुष्योंके शुभाशुभ विषयमें नियुक्त होताहै यह सत्य है ॥ ११ ॥ इसकी शान्तिके लिये पण्डितगण श्रेष्ठता और मंगल दोनोंको सदा

एतासां कर्म वक्ष्यामि दोषप्रशमनं च यत् ॥ अष्टानां च कुमाराणां श्रूयतां द्विजसत्तम ॥ ७ ॥ दन्ताकृष्टिः प्रसूतानां बालानां दशन-स्थितः ॥ करोति दंतसंघर्षं चिकीर्षुर्दुःसहागमम् ॥ ८ ॥ तस्योपशमनं कार्यं सुप्तस्य सितसर्षपैः ॥ शयनस्योपरिक्षिप्तैर्मानुषैर्दशनो-परि ॥ ९ ॥ सौवर्चलौषधीस्नानात्तथा सच्छास्त्रकीर्त्तनात् ॥ उष्ट्रकण्टकगङ्गास्थिक्षौमवस्त्रविधारणात् ॥ १० ॥ तिष्ठत्यन्यकुमारस्तु तथास्त्वित्यसकृद्ब्रुवन् ॥ शुभाशुभे नृणां युङ्क्ते तथोक्तिस्तच्च नान्यथा ॥ ११ ॥ तस्माददुष्टं मङ्गल्यं वक्तव्यं पण्डितैः सदा ॥ दुष्टे श्रुते तथैवोक्ते कीर्त्तनीयो जनार्दनः ॥ १२ ॥ चराचरगुरुर्ब्रह्मा या यस्य कुलदेवता ॥ अन्यगर्भे परान्गच्छन्सदैव परिवर्तयन् ॥ १३ ॥ रति-माप्नोति वाक्यं च विवक्षोरन्यदेव यत् ॥ परिवर्त्तकसंज्ञोऽयं तस्यापि सितसर्षपैः ॥ १४ ॥ रक्षोघ्नमन्त्रजप्यैश्च रक्षां कुर्वीत तत्त्ववित् ॥ अन्यश्चानिलवन्नॄणामङ्गेषु स्फुरणोदितम् ॥ १५ ॥

प्रकाश करैं और मन्दविषय सुनने वा कहनेपर जनार्दन भगवान्‌के नामका कीर्तन करैं ॥ १२ ॥ या चराचर जगत्‌के गुरु ब्रह्माजीके नामका कीर्त्तन करैं अथवा जो जिसका कुलदेवता है, वह उसीका नाम कीर्त्तन करै । परिवर्त्तक नामक तीसरा कुमार सदा अन्यगर्भमें अपर गर्भ स्थापन ॥ १३ ॥ और एक प्रकारके कहनेके वचनोंको अन्यरीतिसे कहलाकर प्रसन्न होताहै उसके दूर होनेको सफेद सरसों बखेरे ॥ १४ ॥ अथवा तत्त्ववित् रक्षोघ्न मंत्रका जप करके रक्षा करै । अंगध्रुक् नामक चौथा कुमार वायुके समान मनुष्यके अंगमें स्पन्दन (फडकाना) ॥ १५ ॥

और लोभ हर्षणके कारण शुभाशुभ विषय प्रकाश करताहै, उसकी शान्ति करनी हो तो शरीरमें कुशाघात करै । शकुनी नामक पांचवां कुमार काक इत्यादि पक्षीमें और कुत्ते अथवा गीदडके शरीरमें रहकर ॥ १६ ॥ मनुष्यके शुभाशुभ प्रकाश करता है इस समय अशुभ-सूचक चिह्न प्रकाशित होनेपर समस्त कार्यका उद्योग परित्याग करना चाहिये ॥ १७ ॥ हे द्विजोत्तम ! शुभसूचक चिह्न प्रकाशित होनेपर अति शीघ्र कर्तव्य कार्यका आरंभ करै । यह प्रजापतिने स्वयं कहाहै । गण्डान्तरति नामक छठा कुमार आधे मुहूर्त गण्डान्तमें रहकर ॥ १८ ॥ समस्त कार्यारम्भ माङ्गल्य कर्म, और अनसूयता (अनिन्दता) नष्ट करता है । हे द्विजोत्तम ! उसकी शान्तिके लिये ब्राह्मणका आशीर्वाद, देवताकी स्तुति मूलनक्षत्रकी शान्ति ॥ १९ ॥

शुभाशुभं समाचष्टे कुशैस्तस्याङ्गताडनम् ॥ काकादिपक्षिसंस्थोऽन्यः श्वादेरंगगतोऽपि वा ॥ १६ ॥ शुभाशुभं च शकुनिः कुमारोऽन्यो ब्रवीति वै ॥ तत्रापि दुष्टे व्याक्षेपः प्रारम्भत्याग एव च ॥ १७ ॥ शुभे द्रुततरं कार्यमिति प्राह प्रजापतिः ॥ गण्डान्तेषु स्थितश्चान्यो मुहूर्तार्द्धं द्विजोत्तम ॥ १८ ॥ सर्वारंभान्कुमारोऽत्ति शमं तस्य निशामय ॥ विप्रोक्त्या देवतास्तुत्या मूलोत्खातेन च द्विज ॥ १९ ॥ गोमूत्रसर्षपस्नानैस्तद्दक्षग्रहपूजनैः ॥ पुनश्च धर्मोपनिषत्करणैः शास्त्रदर्शनैः ॥ २० ॥ अवज्ञया जन्मनश्च प्रशमं याति गण्डवान् ॥ गर्भे स्त्रीणां तथाऽन्यस्तु कललाशी सुदारुणः ॥ २१ ॥ तस्य रक्षा सदा कार्या नित्यं शौचनिषेवणात् ॥ प्रसिद्धमन्त्रालिखनाच्छस्तमाल्यादि-धारणात् ॥ २२ ॥ विशुद्धगेहावसनादनायासाच्च वै द्विज ॥ तथैव सस्यहा चान्यः सस्यर्द्धिमुपहन्ति यः ॥ २३ ॥

गोमूत्र और सफेद सरसोंसे स्नान उस नक्षत्र और ग्रहकी पूजा धर्मोपनिषद् श्रवण शास्त्रदर्शन ॥ २० ॥ और जन्मावज्ञा जन्मका तिरस्कार करनेसे गण्डदोषकी शान्ति होतीहै । गर्भहा नामक जो भयंकर सातवां कुमार है वह स्त्रियोंके गर्भमें कलल नाश करताहै ॥ २१ ॥ उसकी शान्तिका उपाय यह है कि सदा शुद्ध भावसे रहना प्रसिद्ध मंत्र (कवचादि) लिखना माल्यादि धारण ॥ २२ ॥ विशुद्ध घरमें वास और आयास (परिश्रम) परित्याग करना चाहिये । हे ब्राह्मण ! इसी प्रकार, सस्यहा नामक आठवां कुमार संपूर्ण सस्य (धान्य) नष्ट करताहै ॥ २३ ॥

पुराना जूता सस्य (खेत) में रखने अपसव्य गमन अर्थात् वाई ओरसे खेतमें जाय चाण्डालका प्रवेश करावे ॥ २४ ॥ बाहिर बलिप्रदान एवं सोमाम्बु (मंत्रविशेष) का पाठ करानेसे उसकी शान्ति होतीहै । पहिली कन्या नियोजिका सब मनुष्योंको परस्त्रीगमन और परद्रव्यहरणादि कार्यमें नियोजित करती है । इसकी शांतिके लिये पुण्य ग्रंथ पाठ और क्रोधलोभादिका परित्याग करै ॥ २५ ॥ २६ ॥ और अन्य किसी मनुष्यके दुर्वचन कहने वा ताडना करनेपर भी क्रोधके वशीभूत न हो क्योंकि विचक्षण पण्डितगण इसकी शान्तिका कारण " जो परदारागमनआदि दुष्कर्ममें सदाही नियोजिका प्रेरणा करतीहै " यह चिन्ता करके इस असद्वृत्तिसे मनको निवृत्त करै दूसरी कन्या विरोधिनी है । यह अत्यन्त प्रिय दम्पतिमें ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

तस्यापि रक्षां कुर्वीत जीर्णोपानद्विधारणात् ॥ तथापसव्यगमनाच्चण्डालस्य प्रवेशनात् ॥ २४ ॥ बहिर्बलिप्रदानाच्च सोमाम्बुपरिकीर्तनात् ॥ परदारपरद्रव्यहरणादिषु मानवान् ॥ २५ ॥ नियोजयति चैवान्यान्कन्या सा च नियोजिका ॥ तस्याः पवित्रपठनात्क्रोधलोभादिवर्जनात् ॥ २६ ॥ न्नियोजयति मामेष विरोधाच्च विवर्जनात् ॥ आक्रुष्टोऽन्येन मन्येत ताडितो वा नियोजिका ॥ २७ ॥ नियोजयत्येनमिति न गच्छेत्तद्वशं बुधः ॥ परदारादिसंसर्गे चित्तमात्मानमेव च ॥ २८ ॥ नियोजयत्यत्र सा मामिति प्राज्ञो विचिन्तयेत् ॥ विरोधं कुरुते चान्या दम्पत्योः प्रीयमाणयोः ॥ २९ ॥ बन्धूनां सुहृदां पित्रोः पुत्रैः सावर्णिकैश्च या ॥ विरोधिनी सा तद्रक्षां कुर्वीत बलिकर्मणा ॥ ३० ॥ तथातिवादसहनाच्छास्त्राचारनिषेवणात् ॥ धान्यं खलाद्गृहाद्गोष्ठात्पयः सर्पिस्तथा परा ॥ ३१ ॥ समृद्धिमृद्धिमद्द्रव्यादपहन्ति च कन्यका ॥ सा स्वयंहारिकेत्युक्ता सदान्तर्धानतत्परा ॥ ३२ ॥

एवं सुहृद्, बंधु, पिता, माता, पुत्र और अपने मनुष्योंमें विवाद उपस्थित करातीहै उसकी शान्तिके लिये बलि कर्म करना चाहिये ॥ ३० ॥ इसी प्रकार सब झगडोंको छोडकर शास्त्रानुसार पवित्र पवित्र क्रियाओंको करना चाहिये । और जो दुःसहकी तीसरी खरिहान नामक कन्या है, वह घरके अन्न और गऊ दूध और दूधसे घृत ॥ ३१ ॥ और द्रव्यादिककी हानि करके ऋद्धि और सिद्धिको हरण करतीहै उसका नाम स्वयंहारिणी है और वह सदा गुप्त रहतीहै ॥ ३२ ॥

और रसोई व घरकी वस्तुओंमें प्रवेश करके कभी अन्नको इकठा नहीं होने देती और भोजन करनेवालेके संग आप भोजन करतीहै ॥ ३३ ॥ हे द्विजो-त्तम ! जिस घरमें अन्नके ढेरसे कोई चोरी करताहै तो उस अन्नको वही चुरातीहै, जो घरमें कोई उत्तम कर्म नहीं होता उस घरकी ऋद्धि और सिद्धिको वही हरतीहै ॥ ३४ ॥ गाय स्त्रियोंके स्तनोंमेंसे दूध और दहीमेंसे घृत, तिलोंमेंसे तेल और सुराकी भट्टीमेंसे सुरापान करलेतीहै ॥ ३५ ॥ कुसुम्भादि पुष्पका राग (रंग) । कपाससे सूत्र (डोरा) स्वयं हरण करतीहै इसी कारण इसका नाम स्वयंहारिका है ॥ ३६ ॥ इसकी शान्तिके लिये अपने घरमें एक स्त्री और दो मोरोंके चित्र लिखने चाहिये और वह चित्र सदा चमकते रहैं, घिसने नहीं ॥ ३७॥ हवन करे देवताओंके लिये अग्निमें धूप दे फिर उसी

महानसादर्द्धसिद्धमन्नागारस्थितं तथा ॥ परिविष्यमाणं च सदा सार्द्धं भुङ्क्ते च भुञ्जता ॥ ३३ ॥ उच्छेषणं मनुष्याणां हरत्यन्नं च दुर्हरा ॥ कर्मान्तागारशालाभ्यः सिद्ध्यृद्धिं हरति द्विज ॥ ३४ ॥ गोस्त्रीस्तनेभ्यश्च पयः क्षीरहारी सदैव सा ॥ दध्नो घृतं तिलात्तैलं सुरागारात्तथा सुराम् ॥ ३५ ॥ रागं कुसुम्भकादीनां कार्पासात्सूत्रमेव च ॥ सा स्वयंहारिका नाम हरत्यविरतं द्विज ॥ ३६ ॥ कुर्याच्छि-खण्डिनोर्द्वन्द्वं रक्षार्थं कृत्रिमां स्त्रियम् ॥ रक्षाश्चैव गृहे लेख्या वर्ज्या चोच्छिष्टता तथा ॥ ३७ ॥ होमाग्निदेवताधूपभस्मना च परि-ष्क्रिया ॥ कार्या क्षीरादिभाण्डानामेवं तद्रक्षणं स्मृतम् ॥ ३८ ॥ उद्वेगं जनयत्यन्या एकस्थाननिवासिनः ॥ पुरुषस्य तु या प्रोक्ता भ्रामणी सा तु कन्यका ॥ ३९ ॥ तस्याथ रक्षां कुर्वीत विक्षिप्तैः सितसर्षपैः ॥ आसने शयने चोर्व्यां यत्रास्ते स तु मानवः ॥ ४० ॥ चिन्तयेच्च नरः पापा मामेषा दुष्टचेतना ॥ भ्रामयत्यसकृज्जप्यं भुवः सूक्तं समाधिना ॥ ४१ ॥

अग्निकी भस्म लेकर दुग्धादिके बर्तनमें लगादे और स्त्री अपने कुचाओंमें मलदे क्योंकि इस भस्मसे समस्त दोष मिटजातेहैं ॥ ३८ ॥ और जो भ्रामणी नामक चौथी कन्या है, वह एक स्थानपर वास करनेवाले मनुष्योंके हृदयमें प्रवेश करके उद्वेग उत्पन्न करातीहै ॥ ३९ ॥ इसकी शान्ति करनी हो तो आसनमें शय्यामें और भूमिमें सफेद सरसों बखेरे किसी पापकार्यमें चित्तके दौडनेपर " दुष्टात्मा भ्रामणी मुझको प्रेरण करतीहै " यह विचार समाधियुक्त हो भूमिसूक्त (मंत्रविशेषका जप करे) ॥ ४० ॥ ४१ ॥

पाँचवीं कन्या ऋतुहारिका है, यह ऋतुमती स्त्रियोंकी रज हरण करतीहै ॥ ४२ ॥ इसकी शान्तिके लिये तत्त्वज्ञ पण्डितगण पर्वतकी कन्दराओंमें और तीर्थोंमें मन्दिर बनवावें और नदीके संगम स्थानमें प्रातःसमय स्नान करैं ॥ ४३ ॥ मंत्रके ज्ञाता यह सब प्रभातमें करै और धूपादि उपहारसे उनका पूजन करावै और श्रेष्ठ वैद्यसे उत्तम औषधिका प्रयोग करावै ॥ ४४ ॥ छठी कन्या स्मृतिहारिका वराङ्गनाओंकी तथा मनुष्योंकी स्मृतिको हरण करतीहै ॥ ४५ ॥ इसकी शान्तिके लिये उत्तम, परिष्कृत रमणीय स्थानको सेवा करै सातवीं कन्या बीजापहारिणी है। यह स्त्री और पुरुष दोनोंकी रतिका विनाश करती है इसकी

स्त्रीणां पुष्पं हरत्यन्या प्रवृत्तं सा तु कन्यका ॥ तथा प्रवृत्तं सा ज्ञेया दुःसहा ऋतुहारिका ॥ ४२ ॥ कुर्वीत तीर्थदेवौकश्चैत्यपर्वतसानुषु ॥ नदीसङ्गमखातेषु स्नपनं तत्प्रशान्तये ॥ ४३ ॥ मन्त्रविद्भूततत्त्वज्ञः पर्वसूषसि च द्विज ॥ (तेषां तु पूजनं कार्यं धूपवर्त्युपहारकैः) ॥ चिकित्साज्ञश्च वै वैद्यः संप्रयुक्तैर्वरौषधैः ॥ ४४ ॥ स्मृतिं चापहरत्यन्या (प्रवृत्तां सा तु कन्यका ॥ अथाप्रवृत्ता सा ज्ञेया) नृणां सा स्मृतिहारिका ॥ ४५ ॥ विविक्तदेशसेवित्वात्तस्याश्चोपशमो भवेत् ॥ बीजापहारिणी चान्या स्त्रीपुंसोरतिभीषणा ॥ मेध्यान्नभोजनैः स्नानैस्तस्याश्चोपशमो भवेत् ॥ ४६ ॥ दारुणा सा दुराचारा दारुणं कुरुते भयम् ॥ तत्प्रशांत्यै प्रकुर्वीत द्विजानामर्चनं शुभम् ॥ ४७ ॥ अष्टमी द्वेषणी नाम कन्या लोकभयावहा ॥ या करोति जनाद्विष्टं नरं नारीमथापि वा ॥ ४८ ॥ मधुक्षीरघृताक्तांस्तु शान्त्यर्थं होमयेत्तिलान् ॥ कुर्वीत मित्रविन्दां च तथेष्टिं तत्प्रशान्तये ॥ ४९ ॥ एतेषां तु कुमाराणां कन्यानां द्विजसत्तम ॥ अष्टत्रिंशदपत्यानि तेषां नामानि मे शृणु ॥ ५० ॥ दन्ताकृष्टेरभूत्कन्या विजल्पा कलहा तथा ॥ अवज्ञानृतदुष्टोक्तिर्विजल्पा तत्प्रशान्तये ॥ ५१ ॥

शान्तिके लिये पवित्र अन्न भोजन और स्नान करै ॥ ४६ ॥ यह दुराचारिणी दारुण कठिन भय उत्पन्न करतीहै उसकी शान्तिके अर्थ ब्राह्मणका पूजन शुभ है ॥ ४७ ॥ आठवीं कन्या सर्वलोकभयंकरी द्वेषिणी नामक है यह कन्या नर नारियोंमें द्वेष कराती है ॥ ४८ ॥ इसकी शान्तिके लिये मधु, दुग्ध और घृतसंयुक्त तिलकी आहुति देकर मित्रविन्दा नामक यज्ञ करै ॥ ४९ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इन सब कुमार और कुमारियोंकी अष्टत्रिंशत (३८) संतान हुईं, उनके नाम कहताहूं, सुनो ॥ ५० ॥ दन्ताकृष्टिके विजल्पा और कलहा नामक दो कन्या हुईं, विजल्पा अवज्ञा (निरादर) मिथ्या और दुष्ट वचन

कहलानेवाली है, उसकी शान्तिके लिये ॥ ५१ ॥ बुद्धिमान् गृही संयत होकर उसीकी चिन्ता करै। कलहा मनुष्योंके घरमें सदा कलह कराती है ॥५२॥ और उनके कुटुम्बनाशका हेतुस्वरूप है इसकी शान्तिके लिये दूबके अंकुर, मधु, दुग्ध और बलिपूर्वक ॥ ५३ ॥ अग्निमें हवन करना चाहिये और सब घरमें जल छिडके, मित्रविन्दाका कीर्तन करै और भली भांति यश विनयके सहित भूतोंकी पूजा वर्णन करै, जिससे बालककी शान्ति होजाय ॥ ५४ ॥ इसके पीछे फिर यह कहे कि विद्या, तप, संयम, यम, कृषि (खेती) और व्यापार लाभमें तुम हमारी सदा रक्षा करो ॥ ५५ ॥ और यथाविधि पूजित होकर समस्त कूष्माण्ड तथा यातुधान इत्यादि और भी जो अनेक गण हैं, वह मेरी इस पूजाको स्वीकार करके संतुष्ट हों ॥ ५६ ॥ महादेवके अनुग्रह

तामेव चिन्तयेत्प्राज्ञः प्रयतश्च गृही भवेत् ॥ कलहा कलहं गेहे करोत्यविरतं नृणाम् ॥ ५२ ॥ कुटुम्बनाशहेतुः सा तत्प्रशान्तिं निशामय ॥ दूर्वांकुरान्मधुघृतक्षीरशक्तान्बलिकर्मणि ॥ ५३ ॥ विक्षिपेज्जुहुयाच्चैवानलं मित्रं च कीर्तयेत् ॥ भूतानां मातृभिः सार्द्धं बालकानां तु शान्तये ॥ ५४ ॥ विद्यानां तपसां चैव संयमस्य यमस्य च ॥ कृष्यां वाणिज्यलाभे च शान्तिं कुर्वन्तु मे सदा ॥ ५५ ॥ पूजिताश्च यथान्यायं तुष्टिं गच्छन्तु सर्वशः ॥ कूष्माण्डा यातुधानाश्च ये चान्ये गणसंज्ञिताः ॥ ५६ ॥ महादेवप्रसादेन महेश्वरमतेन च ॥ सर्व एते नृणां नित्यं तुष्टिमाशु व्रजन्तु ते ॥ ५७ ॥ तुष्टाः सर्वं निरस्यन्तु दुष्कृतं दुरनुष्ठितम् ॥ महापातकजं सर्वं यच्चान्यद्विघ्नकारणम् ॥५८॥ तेषामेव प्रसादेन विघ्ना नश्यन्तु सर्वशः ॥ उद्वाहेषु च सर्वेषु वृद्धिकर्मसु चैव हि ॥५९॥ पुण्यानुष्ठानयोगेषु गुरुदेवार्चनेषु च ॥ जपयज्ञविधानेषु यात्रासु च चतुर्दश ॥ ६० ॥

और महेश्वरके अभिमतानुसार समस्त मनुष्योंके प्रति शीघ्र संतुष्ट होकर नित्य रक्षा करें ॥ ५७ ॥ और संतुष्ट होकर मेरे समस्त पाप दुष्ट कर्म, और महापातकसे उत्पन्न जो कष्ट अथवा और भी जो जो विघ्नके कारण हैं, उन सबका विनाश करें ॥ ५८ ॥ और विवाह आदि शुभकार्योंकी वृद्धिमें यदि कुछ विघ्न होजाय तो आपके प्रसादसे वह भी सब नाशको प्राप्त हो ॥ ५९ ॥ पुण्य कार्यके अनुष्ठानमें, गुरु देवताकी पूजामें, जप, यज्ञादि कर्त्तव्य अनुष्ठानमें, चौदह यात्रामें ॥ ६० ॥

शारीरिक आरोग्यभोगमें, सुख दान और धनविषयमें एवं वृद्ध, बालक और पीडित व्यक्तिके संबंधमें सदा शान्ति स्थापन करें ॥ ६१ ॥ और सोम, वरुण, सागर, सूर्य, वायु, अग्नि इत्यादि भी मेरी रक्षा करैं। तथोक्तिका तालवृक्षवासी कालजिह्व नामक एक पुत्र है ॥ ६२ ॥ हे द्विज! यह कालजिह्व जिस स्त्रीकी रसनामें स्थित होताहै; उसके बालकको बहुत पीडा देताहै। परिवर्त्तकके दो पुत्र उत्पन्न हुए, एकका नाम विरूप और दूसरेका नाम विकृत हुआ ॥ ६३ ॥ वह वृक्षाग्र (वृक्षके अग्रभाग) में परिखा (खाई) चार दीवारी और (सागर) में वास करके गर्भिणीका परिवर्त्तन करते हैं ॥ ६४॥ हे क्रौष्टुकि ! जो गर्भवती स्त्री ऐसे स्थानोंमें विचरण करती है वह उसके गर्भमें महाकष्ट देतेहैं अतएव गर्भवती नारीको वृक्षोंमें, कोठेपर, नदीके तटपर ॥ ६५ ॥

शरीरारोग्यभोग्येषु सुखदानधनेषु च ॥ वृद्धबालातुरेष्वेव शान्तिं कुर्वंतु मे सदा ॥ ६१ ॥ सोमाम्बुपौ तथाम्भोभिः सविता चानिलानलौ ॥ तथोक्तेः कलिजिह्वोऽभूत्पुत्रस्तालनिकेतनः ॥ ६२ ॥ स येषां रसनासंस्थस्तानसाधून् विवादयेत् ॥ परिवर्तसुतौ द्वौ तु विरूपविकृतौ द्विज ॥ ६३ ॥ तौ तु वृक्षाद्रिपरिखाप्राकाराम्भोधिसंश्रयौ ॥ गुर्विण्याः परिवर्ततौ कुरुतः पादपादिषु ॥ ६४ ॥ क्रौष्टुके परिवर्तः स्याद्गर्भस्यान्योदरात्ततः ॥ न वृक्षं चैव नैवाद्रिं न प्राकारं महोदधिम् ॥ ६५ ॥ परिखां वा समाक्रामेदबलागर्भधारिणी ॥ अङ्गध्रुक्तनयं लेभे पिशुनं नाम नामतः ॥ ६६ ॥ सोऽस्थिमज्जागतः पुंसां बलमत्त्यजितात्मनाम् ॥ श्येनकाककपोतांश्च गृध्रोलूकौ च वै सुतान् ॥ ६७ ॥ अवाप शकुनिः पंच जगृहुस्तान्सुरासुराः ॥ श्येनं जग्राह मृत्युश्च काकं कालो गृहीतवान् ॥ ६८ ॥ उलूकं निर्ऋतिश्चैव जग्राहातिभयावहम् ॥ गृध्रं व्याधिस्तदीशोऽथ कपोतं च स्वयं यमः ॥ ६९ ॥ एतेषामेव चैवोक्ता भूताः पापोपपादने ॥ तस्माच्छ्येनादयो यस्य निलीयेयुः शिरस्यथ ॥ ७० ॥

और खाईमें कभी नहीं जाना चाहिये। अंगध्रुक्ने पिशुन नामक पुत्र लाभ कियाहै ॥ ६६ ॥ पिशुन अज्ञानान्ध मनुष्योंकी अस्थि मज्जामें प्रवेश करके बलभोजन करताहै शकुनिके श्येन, काक, कपोत. गृध्र और उलूक ॥ ६७ ॥ यह पांच शकुनिके पुत्र हैं उनको सुरासुरने ग्रहण कियाहै। श्येनको मृत्युने, काकको कालने ॥ ६८ ॥ उलूकको नैर्ऋतिने, गृध्रको व्याधिने और व्याधीश्वर स्वयं यमने कपोतको ग्रहण किया ॥ ६९ ॥ यह सबही पापोत्पादन करतेहैं इसलिये बाज इत्यादिके मस्तकपर बैठनेसे ॥ ७० ॥

आत्मरक्षाके लिये शान्तिकार्य करना चाहिये। जिस घरमें यह घोंसला बनावे वा बचे उत्पन्न करे ॥७१॥ मनुष्य उस घरकोभी परित्याग करे। हे द्विज! बाज, कबूतर, गृध्र, काक, उलूकगण ॥७२॥ घरमें प्रवेश करके उस गृहवासीके अन्तकालकी सूचना देतेहैं अतएव पण्डितगण ऐसे गृहको परित्याग करके शान्ति कार्य करे ॥ ७३ ॥ स्वप्नमें भी कबूतरका देखना अमंगलदायक है गंडप्रान्तरतिके जो छः पुत्र कहेहैं ॥ ७४ ॥ वह स्त्रियोंकी रजमें वास करतेहैं उनका समय कहताहूं सुनो। प्रथम चार दिन त्रयोदश दिन ॥ ७५ ॥ एकादश दिन दिनका अन्त श्राद्धदिन दानकार्यदिवस ॥७६॥ और पर्वदिन यह सब

तेनात्मरक्षणायालं शान्तिं कुर्याद्द्विजोत्तम ॥ गेहे प्रसूतिरेतेषां तद्वन्नीडनिवेशनम् ॥ ७१ ॥ नरस्तं वर्जयेद्गेहं कपोताक्रान्तमस्तकम् ॥ श्येनः कपोतो गृध्रश्च काकोलूकौ गृहे द्विज ॥ ७२ ॥ प्रविष्टः कथयेदन्तं वसतां तत्र वेश्मनि ॥ ईदृक्परित्यजेद्गेहं शान्तिं कुर्याच्च पण्डितः ॥ ७३ ॥ स्वप्नेऽपि हि कपोतस्य दर्शनं न प्रशस्यते ॥ षडपत्यानि कथ्यन्ते गण्डप्रान्तरतेस्तथा ॥७४॥ स्त्रीणां रजस्यवस्थानं तेषां कालांश्च मे शृणु ॥ चत्वार्यहानि पूर्वाणि तथैवान्यत्त्रयोदशम् ॥ ७५ ॥ एकादशं तथैवान्यदपत्यं तस्य वै दिने ॥ अन्यद्दिनाभिगमने श्राद्धदाने तथापरे ॥ ७६ ॥ पर्वस्वथान्यत्तस्मात्तु वर्ज्यान्येतानि पण्डितैः ॥ गर्भहन्तुः सुतो निघ्नो मोहनी चापि कन्यका ॥ ७७ ॥ प्रविश्य गर्भमत्त्येको भुक्त्वा मोहयतेऽपरा ॥ जायन्ते मोहनात्तस्याः सर्पमण्डूककच्छपाः ॥ ७८ ॥ सरीसृपाणि चान्यानि पुरीषमथवा पुनः ॥ षण्मासाद्गुर्विणी मांसमश्नुवानामसंयताम् ॥ ७९ ॥ वृक्षच्छायाश्रयां रात्रावथवा त्रिचतुष्पथे ॥ श्मशानकटभूमिष्ठामुत्तरीयविवर्जिताम् ॥ ८० ॥

उनके रहनेका समय है अतएव पण्डितगण इन सब दिनोंको परित्याग करे गर्भहन्ताका विघ्ननामक एक पुत्र और मोहनी नामक एक कन्या हुईथी ॥७७॥ यह गर्भमें प्रवेश करतीहै विघ्न स्वच्छ गर्भका भोजन करता है और मोहनी मोह प्रदान करतीहै उस मोहके कारणही सर्प मेंडक कछुए ॥७८॥ और विच्छू इत्यादि जन्तुगण तथा पुरीषकी उत्पत्ति होतीहै। गर्भवती छः महनितक मांसभोजन करनेसे असंयत होनेसे ॥ ७९ ॥ रात्रिके समय वृक्षतलमें त्रिपथ वा चतुष्पथ (चौराहे) में अवस्थित रहनेसे श्मशान इत्यादि उत्कट स्थानमें गमन करनेसे वा उत्तरीयरहित अर्थात् नग्न होनेसे ॥ ८० ॥

और रात्रिके समय रोदन करनेसे विघ्न उस स्त्रीमें प्रवेश करताहै। सस्यहन्ताका क्षुद्रक नामक एक पुत्र हुआ ॥ ८१ ॥ वह छिद्र पातेही सस्यवृद्धिकी हानि करता है। जो मनुष्य अमंगल दिनमें अतृप्त होकर धान्य बोनेका कार्य प्रारंभ करताहै ॥ ८२ ॥ उसके उस खेतमें क्षुद्रक प्रवेश करताहै ॥ ८३ ॥ वह अमंगलका आरंभ कर मंगलोंको वर्ज देताहै (और संगियोंमें बडा भय करताहै) इसका उपाय यही कहा गयाहै कि अच्छे पवित्र दिनमें चन्द्रमाकी पूजा करके ॥ ८४ ॥ प्रसन्न चित्तसे कृषिकार्यका आरंभ और बीजवपन करे। दुःसहकी नियोजिका नामक कन्या थी जिसका वर्णन मैं पहिले आपसे कर चुका

रुद्यमानां निशीथेऽथ आविशेत्तामिमौ स्त्रियम् ॥ सस्यहन्तुस्तथैवैकः क्षुद्रको नाम नामतः ॥ ८१ ॥ सस्यार्द्धिं स सदा हन्ति लब्ध्वा रन्ध्रं शृणुष्व तत् ॥ अमङ्गल्यदिनारम्भे सुतृप्तो वपते च यः ॥ ८२ ॥ क्षेत्रेष्वनुप्रवेशं वै करोत्यन्तोपसंगिषु ॥८३॥ अमंगल्यादिनारंभं मंगलानां च वर्जयेत् ॥ (महद्भयं प्रयच्छंति यत्र वै तत्प्रसंगिषु ॥) तस्मात्कल्पः सुप्रशस्ते दिनेऽभ्यर्च्य निशाकरम् ॥ ८४ ॥ कुर्यादारम्भमुप्तिं च हृष्टस्तुष्टः सहायवान् ॥ नियोजिकेति या कन्या दुःसहस्य मयोदिता ॥ ८५ ॥ जातं प्रचोदिकासंज्ञं तस्याः कन्याचतुष्टयम् ॥ मत्तोन्मत्तप्रमत्तांस्तु नरान्नारीस्तु ताः सदा ॥ ८६ ॥ समाविशन्ति नाशाय चोदयन्तीह दारुणम् ॥ अधर्मं धर्मरूपेण कामं चाकामरूपिणम् ॥ ८७ ॥ अनर्थं चार्थरूपेण मोक्षं चामोक्षरूपिणम् ॥ दुर्विनीतान्विना शौचं दर्शयन्ति पृथङ् नरान् ॥ ८८ ॥ भ्रंशत्याभिः प्रविष्टाभिः पुरुषार्थात्पृथङ् नराः ॥ तासां प्रवेशश्च गृहे सन्ध्यृक्षेषु ह्युदुम्बरे ॥ ८९ ॥

हूं ॥ ८५ ॥ उसकी प्रचोदिका नामक चार कन्या हुईं वह सदाही अति प्रमत्त यौवनके मदसे गर्वित नरनारियोंमें प्रवेश कर ॥८६॥ नाश करनेके निमित्त उनको दारुण रूपसे प्रेरण करतीहैं दुर्विनीतभाव (खोटेपन) के द्वारा धर्मरूपमें अधर्मको अकामरूपमें कामको ॥ ८७ ॥ अर्थरूपमें अनर्थको और अमोक्षरूपमें मोक्षको प्रेरणपूर्वक मनुष्योंको पृथक् पृथक् दर्शन कराकर अत्यन्त दारुण भावसे नाश करनेके लिये प्रवेश करतीहैं ॥८८॥ पूर्वोक्त आठ कन्याओंके द्वारा पुरुषार्थसे पृथक् होकर पुरुष भ्रष्ट हो भ्रमण करतेहैं इनका प्रवेश घरोंके उदुंबरमें नक्षत्रकी संधिमें होताहै ॥ ८९ ॥

और धाता विधाताको जब पूजा नहीं दी जाती उसी समय वह घरमें प्रविष्ट होतीहै संगी गणोंके सहित भोजन और जलपानके समय कुल्लेके समयमें ॥ ९० ॥ उनका नर नारियोंमें संक्रमण होताहै विरोधिनीके तीन पुत्र हुए एकका नाम चोदक और दूसरेका नाम ग्राहक ॥ ९१ ॥ और जो तीसरा तमःप्रच्छादक पुत्र है, उसका स्वरूप सुनो। जहां मुसल वा ओखली दीपकके तेलसे दूषित वा उलांघी जातीहै ॥ ९२ ॥ जहां मुसल ओखली स्त्रियोंकी पादुका और आसन होताहै वा दूषित होता अथवा उलाँघा जाताहै, जहां पैरोंसे आसन और छाज, दराती इत्यादि सरकाती हैं ॥ ९३ ॥ जहां लिपेहुएमें विना पूजन किये विहार किया जाताहै और जहां करछलीसे आग निकालकर दूसरेको दी जाती है ॥ ९४ ॥ उन सब स्थानोंमें इस विरोधिनीके पुत्र विक्रम प्रकाश

धात्रे विधात्रे च बलिर्यत्र काले न दीयते ॥ भुञ्जतां पिबतां वापि संगिभिर्जलविप्रुषैः ॥ ९० ॥ नरनारीषु संक्रान्तिस्तासामाश्वभिजायते ॥ विरोधिन्यास्त्रयः पुत्राश्चोदको ग्राहकस्तथा ॥ ९१ ॥ तमःप्रच्छादकश्चान्यस्तत्स्वरूपं शृणुष्व मे ॥ प्रदीपतैलसंसर्गदूषिते लंघिते खले ॥ ९२ ॥ मुसलोलूखले यत्र पादुके वासने स्त्रियः ॥ शूर्पदात्रादिकं यत्र पदाकृष्टं तथासनम् ॥ ९३ ॥ यत्रोपलिप्तेनाभ्यर्च्य विहारः क्रियते गृहे ॥ दर्वीमुखेन यत्राग्निराहृतोऽन्यत्र नीयते ॥ ९४ ॥ विरोधिनी सुतास्तत्र विजृम्भन्ते प्रचोदिताः ॥ एको जिह्वागतः पुंसां स्त्रीणां चालिकसत्यवान् ॥ ९५ ॥ चोदको नाम स प्रोक्तः पैशुन्यं कुरुते गृहे ॥ अवधानगतश्चान्यः श्रवणस्थोऽतिदुर्मतिः ॥ ९६ ॥ करोति ग्रहणं तेषां वचसां ग्राहकस्तु सः ॥ आक्रम्यान्यो मनो नृणां तमसाच्छाद्य दुर्मतिः ॥ ९७ ॥ क्रोधं जनयते यस्तु तमःप्रच्छादकस्तु सः ॥ स्वयंहार्यास्तु चौर्येण जनितं तनयत्रयम् ॥ ९८ ॥ सर्वहार्यर्द्धहारी च वीर्यहारी तथैव च ॥ अनाचान्तगृहेष्वेते मन्दाचारगृहेषु च ॥ ९९ ॥

करते हैं। एक तो स्त्री और पुरुषोंकी जिह्वामें वास करके मिथ्या और सत्य कहलाता है ॥ ९५ ॥ उसका नाम चोदक है वही मनुष्योंके घरमें पिशुनता अर्थात् कुटिलता और नीचकर्म करताहै, अति दुर्मतिग्राहक कानोंमें वास करके ॥ ९६ ॥ उन सब वाक्योंको ग्रहण करता है, तमःप्रच्छादक मनुष्योंके मनको आक्रमण करके ॥ ९७ ॥ तम (अंधकार) द्वारा आच्छादनपूर्वक क्रोधकी उत्पत्ति करताहै स्वयंहारीके तीन पुत्र हुए हैं ॥ ९८ ॥ सर्वाहारी, अर्द्धहारी, और वीर्यहारी यह अपवित्र गृहमें मन्दाचार गृहमें ॥ ९९ ॥

विना पैर धोये पाकशालामें प्रवेश और जिसके खलमें (खरहानमें) गोष्ठमें और घरमें विद्रोह उपस्थित होता है ॥ १०० ॥ उन सब स्थानोंमें अन्याय रीतिसे विहार और रमण करते हैं। काकजंघ नामक भ्रामणीका पुत्र हुआ ॥ १ ॥ उसके प्रविष्ट होनेपर घरमें कोई प्रसन्नताको प्राप्त नहीं होता; जो पुरुष भोजन करनेके समय गान करतेहैं मित्रोंसे बातचीत करतेहैं वा हँसते हैं ॥ २ ॥ और जो संध्याकालमें मैथुन करते हैं, उनपर काकजंघ आक्रमण करता है हे द्विज ! ऋतुकालमें हरिणीने तीन कन्या उत्पन्न करीं ॥ ३ ॥ पहली कन्याका नाम कुचहरा, दूसरीका नाम व्यञ्जनहारिका और तीसरी

अप्रक्षालितपादेषु प्रविशत्सु महासनम् ॥ खलेषु गोष्ठेषु च वै दोहो येषु गृहेषु वै ॥ १०० ॥ तेषु सर्वे यथान्यायं विहरन्ति रमन्ति च ॥ भ्रामण्यास्तनयस्त्वेकः काकजंघ इति स्मृतः ॥ १ ॥ तेनाविष्टो रतिं सर्वो नैव प्राप्नोति वै मुने ॥ भुञ्जन्यो गायते मैत्रे गायते हसते च यः ॥ २ ॥ सन्ध्यामैथुनिनं चैव नरमाविशति द्विज ॥ कन्यात्रयं प्रसूता सा या कन्या ऋतुहारिणी ॥ ३ ॥ एका कुचहरा कन्या अन्या व्यञ्जनहारिका ॥ तृतीया तु समाख्याता कन्यका जातहारिणी ॥४॥ यस्या न क्रियते सर्वः सम्यग्वैवाहिको विधिः ॥ कालातीतोऽथवा तस्या हरत्येका कुचद्वयम् ॥ ५ ॥ सम्यक् श्राद्धमदत्त्वा च तथानभ्यर्च्य मातृकाः ॥ विवाहितायाः कन्याया हरति व्यञ्जनं तथा ॥६॥ अग्न्यम्बुशून्ये च तथा विधूपे सूतिकागृहे ॥ अदीपशस्त्रमुसले भूतिसर्षपवर्जिते ॥ ७ ॥ अनुप्रविश्य सा जातमपहृत्यात्मसम्भवम् ॥ क्षणप्रसविनी बालं तत्रैवोत्सृजते द्विज ॥ ८ ॥

कन्याका नाम जातहारिणी हुआ ॥ ४ ॥ सम्यक् प्रकारकी विधिसे जिस कन्याका विवाह नहीं किया जाता और विवाहकी लग्नके बीत जानेपर विवाह होता है, उस नारीके दोनों कुचाओंको वह कुचहरा हरण करती है ॥ ५ ॥ श्राद्धादि कार्य भली भाँति न करके और माताकी विना पूजा किये जो कन्या व्याही जाती है, उसका व्यंजनहारिका व्यंजन हरण करती है ॥ ६ ॥ सूतिकागृह अर्थात् सोवरमें अग्नि, जल, धूप, दीप, शस्त्र, मुसल, भस्म और सरसोंके न होनेसे ॥ ७ ॥ जातहारिणी वहां प्रवेश करके वहांके बालकोंको हरण कर तत्कालोत्पन्न अन्य बालकोंको उस स्थानमें रख देती है ॥८॥

इस कारण पिशिताशना भयंकरी उस जातहारिणीसे सोवरमें यत्नपूर्वक सदा बालककी रक्षा करै ॥ ९ ॥ उसका पुत्र प्रचण्ड है, सूने घरमें रहनेके कारण असंयतचित्त मनुष्योंकी स्मृति नष्ट करता है ॥ ११० ॥ उसके पौत्रोंसे सैकडों हजारों लीका उत्पन्न हुई दण्ड पाश धारण करनेवाली महाभयंकर आठ चाण्डालयोनिभी इसी वंशसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ११ ॥ लीका और चाण्डाल जातिगण भूखसे आतुर होकर परस्परको भक्षण करनेकी इच्छासे जब दौडीं ॥ १२ ॥ तब प्रचंडने उसको निवारण करके जिस समयमें स्थापन किया था, सो सुनो ॥ १३ ॥ जो पुरुष आजसे लीकोंको स्थान देगा उसको

सा जातहारिणी नाम सुघोरा पिशिताशना ॥ तस्मात्संरक्षणं कार्यं यत्नतः सूतिकागृहे ॥ ९ ॥ स्मृतिं चाप्रयतानां च शून्यागारनिषेवणात् ॥ अपहन्ति सुतस्तस्याः प्रचण्डो नाम नामतः ॥ ११० ॥ पौत्रेभ्यस्तस्य संभूता लीकाः शतसहस्रशः ॥ चण्डालयोनयश्चाष्टौ दण्डपाशातिभीषणाः ॥ ११ ॥ क्षुधाविष्टास्ततो लीकास्ताश्च चण्डालयोनयः ॥ अभ्यधावन्त चान्योन्यमत्तुकामाः परस्परम् ॥ १२ ॥ प्रचण्डो वारयित्वा तु यास्ताश्चण्डालयोनयः ॥ समये स्थापयामास यादृशे तादृशं शृणु ॥ १३ ॥ अद्यप्रभृति लीकानामावासं यो हि दास्यति ॥ दण्डं तस्याहमतुलं पातयिष्ये न संशयः ॥१४॥ चण्डालयोन्यावसथे लीका या प्रसविष्यति ॥ तस्याश्च सन्ततिः पूर्वा सा च सद्यो न शिष्यति ॥ १५ ॥ प्रसूते कन्यके द्वे तु स्त्रीपुंसोर्बीजहारिणी ॥ वातरूपामरूपां च तस्याः प्रहरणं तु ते ॥ १६ ॥ वातरूपा निषेकान्ते सा यस्मै क्षिपते सुतम् ॥ स पुमान्वातशुक्रत्वं प्रयाति वनितापि वा ॥ १७ ॥ तथैव गच्छतः सद्यो निर्बीजत्वमरूपया ॥ अस्नाताशी नरो योऽसौ तथा चापि वियोगिनः ॥ १८ ॥

मैं निःसन्देह अत्यन्त दारुण दंड दूंगा ॥ १४ ॥ चाण्डालके घरमें वास करके वा पराये गृह (वेश्यागृह) में जो स्त्री संतान उत्पन्न करती है. वह लीक उसकी समस्त संतानका विनाश करती है ॥ १५ ॥ स्त्री पुरुषके वीर्यको हरनेवाली बीजापहारिणीने वातरूपा और अरूपा नामक जो दो कन्याको उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ तिनमें वातरूपा अभिषेक समयमें शुक्रको जिसमें निक्षेप करती है. वह पुरुष वा स्त्री वातशुक्रत्व (रोगविशेष) को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥ जो मनुष्य विना स्नान किये और विना भोजन किये स्त्रीसंग भोग करता है तथा किसी वियोनिमें मैथुनासक्त होत है अरूपा उसको शीघ्र

निर्बीज करती है ॥ १८ ॥ कुटिल मुख और भृकुटि चढानेवाली विद्वेषिणीके दो पुत्र हुए वह सदा पुरुषोंका अपकार प्रकाश करते हैं ॥ १९ ॥ शौचवर्जित अर्थात् अपवित्र रहनेवाले नर नारीगणही निर्बीजता लाभ करते हैं। विद्वेषणीके दोनों पुत्र पैशुन्यरत पराई निन्दामें रत लोल (चपल) अशुद्धजलसेवी ॥ १२० ॥ और पुरुषद्वेषी पुरुषको आक्रमण करके अवस्थान करते हैं। यथार्थमें किसी माता, भ्राता, मित्र, प्रियजन और आत्मीय जनोंके ॥ २१ ॥ विद्वेषी होनेसे धर्म और अर्थका नाश करते हैं। पापाचारी एक पुत्र अपने गुणोंको लोकमें प्रकाशित करताहै ॥ २२ ॥ दूसरा लोकोंका गुण और मैत्रीको आकर्षण करलेता है। इस प्रकार पापाचारी दुःसहगण संपूर्ण जगत्को व्याप्त कर रहे हैं ॥ १२३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपु-

विद्वेषिणी तु या कन्या भृकुटीकुटिलानना ॥ तस्य द्वौ तनयौ पुंसामपकारप्रकाशकौ ॥१९॥ निर्बीजत्वं नरो याति नारी वाशौचवर्जि-ता ॥ पैशुन्याभिरतं लोलमसज्जलनिषेवणम् ॥ १२०॥ पुरुषद्वेषिणं चैतौ नरमाक्रम्य तिष्ठतः ॥ मात्रा भ्रात्रा तथा मित्रैरभीष्टैः स्वजनैः परैः ॥ २१ ॥ विद्विष्टो नाशमायाति पुरुषो धर्मतोऽर्थतः ॥ एकस्तु स्वगुणाँल्लोके प्रकाशयाति पापकृत् ॥२२॥ द्वितीयस्तु गुणान्मैत्रीं लोकस्थामपकर्षति ॥ इत्येते दौःसहाः सर्वे यक्ष्मणः सन्ततावथ ॥ पापाचाराः समाख्याता यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥१२३॥ इति श्रीमा-र्कण्डेयपुराणे दौःसहोत्पत्तिसमापनं नामाष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्येष तामसः सर्गो ब्रह्मणोऽव्यक्तज-न्मनः ॥ रुद्रसर्गं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ १ ॥ तनवश्च तथैवाष्टौ पत्न्यः पुत्राश्च ते तथा ॥ कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्या-यतः प्रभोः ॥ २ ॥ प्रादुरासीदथाङ्केऽस्य कुमारो नीललोहितः ॥ रुरोद सुस्वरं सोऽथ द्रवंश्च द्विजसत्तम ॥ ३ ॥

राणे भाषाटीकायां दौःसहोत्पत्तिसमापनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीकी यह तामसी सृष्टि कही गई। अब रुद्रसर्गका विषय कहताहूं सुनो ॥ १ ॥ आठ पुत्र, उनकी पत्नी, और समस्त पुत्र कल्पादिमें आत्मतुल्य पुत्रकी चिन्ता करनेसे वैसेही हुए ॥ २ ॥ हे द्विजसत्तम ! उन आठों कुमारोंमें जो एक कुमार नीललोहित शरीरवाला ब्रह्माजीके शरीरसे उत्पन्न हुआ था वह प्रभुकी गोदीमें सुस्व-रसे रोदन करने लगा ॥ ३ ॥

उसको रोता देखकर ब्रह्माजीने पूछा "तू किस निमित्त रोताहै?" कुमारने कहा "हे जगत्पते! मुझको नाम प्रदान कीजिये" ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले तुम्हारा "रुद्र" नाम हुआ अब मत रोओ, धैर्य धारण करो। ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर कुमार सात वार फिर रोया ॥ ५ ॥ हे द्विज ! तब क्रमानुसार उसको और भी सात नाम प्रदान किये। फिर इन आठोंको आठ स्थान, पत्नी और पुत्र दान किये ॥ ६ ॥ पितामह ब्रह्माजीने रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव ॥ ७ ॥ यह आठ नाम प्रदान करके आठ स्थानका निर्देश किया । सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश ॥ ८ ॥

किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच ह ॥ नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच जगत्पतिम् ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ रुद्रस्त्वं देव नाम्नासि मा रोदीर्धैर्यमावह ॥ एवमुक्तस्ततः सोऽथ सप्तकृत्वो रुरोद ह ॥ ५ ॥ ततोऽन्यानि ददौ तस्मै सप्त नामानि वै प्रभुः ॥ स्थानानि चैषामष्टानां पत्नीः पुत्रांश्च वै द्विज ॥ ६ ॥ भवं शर्वं तथेशानं तथा पशुपतिं प्रभुः ॥ भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः ॥७॥ चक्रे नामान्यथैतानि स्थानान्येषां चकार ह ॥ सूर्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च ॥८॥ दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः क्रमात् ॥ सुवर्चला तथैवोमा विकेशी चापरा स्वधा ॥ ९ ॥ स्वाहा दिशस्तथा दीक्षा रोहिणी च यथाक्रमम् ॥ सूर्यादीनां द्विजश्रेष्ठ रुद्राद्यैर्नामभिः सह ॥ १० ॥ शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः ॥ स्कन्दः सर्गोऽथ सन्तानो बुधश्चानुक्रमात्सुताः ॥ ११ ॥ एवम्प्रकारो रुद्रोऽसौ सतीं भार्यामविन्दत ॥ दक्षकोपाच्च तत्याज सा सती स्वं कलेवरम् ॥ १२ ॥

दीक्षित, ब्राह्मण और सोम यह आठ मूर्त्ति और सुवर्चला, उमा, विकेशी, स्वधा ॥ ९ ॥ स्वाहा, दिक्, दीक्षा और रोहिणी, यह रुद्रादि नामक रुद्रकी पत्नी हैं. हे द्विजश्रेष्ठ! अब रुद्रादिके नामसहित सूर्यके पुत्रोंके नाम कहताहूं, सुनो ॥ १० ॥ शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध यह आठ क्रमशः रुद्रादिके पुत्र हैं ॥ ११ ॥ यह रुद्र इस प्रकारसे सतीको भार्यारूपसे प्राप्त हुएथे । फिर दक्षके कोपसे सतीने अपना देह त्याग किया ॥ १२ ॥

(कारण कि जहां शिवजीका निरादर होवे वहां विद्वान्‌को स्थित रहना नहीं चाहिये यह सब ब्राह्मण जो महेश्वरसे द्वेष करते हैं वे पापसे नष्टचित्त हो वेदसे बाहर हों तथा पाखण्डमें निरत होकर नरकगामी हों यह कलियुग प्राप्त होनेसे दरिद्र और शूद्रोंका जप करनेवाले हों) ऐसा शाप दे मेनकाके गर्भमें हिमवान्‌की पुत्री हुईथी, समुद्रका सखा मैनाक उनका भाई था ॥ १३ ॥ भगवान् भवने फिर पार्वतीसे विवाह किया और भृगुजीकी भार्या जो ख्याति नामसे प्रसिद्ध थी, उसके दो पुत्र हुए। एकका नाम धाता और दूसरेका विधाता रक्खा गया ॥ १४ ॥ और जो देवदेव भगवान् नारायण हैं. उनकी पत्नी लक्ष्मीजी हुई और जो महात्मा मेरुकी आयति और नियति नामक दो कन्या थीं ॥ १५ ॥ सो धाता विधाताकी भार्या हुईं। एक एक पुत्र इन

(शंभोरवज्ञा यत्रास्ते स्थातव्यं नैव सूरिभिः ॥ एते च ब्राह्मणाः सर्वे ये द्विषंतो महेश्वरम् ॥ भवंतु ते वेदबाह्याः पापोपहतचेतसः ॥ पाखंडाचारनिरताः सर्वे निरयगामिनः ॥ कलौ युगे तु संप्राप्ते दरिद्राः शूद्रजापकाः ॥) हिमवद्दुहिता साभून्मेनायां द्विजसत्तमः ॥ तस्या भ्राता तु मैनाकः सखाम्भोधेरनुत्तमः ॥ १३ ॥ उपयेमे पुनश्चैनामनन्यां भगवान् भवः ॥ देवौ धाताविधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत ॥ १४ ॥ श्रियं च देवदेवस्य पत्नी नारायणस्य या ॥ आयतिर्नियतिश्चैव मेरोः कन्ये महात्मनः ॥ १५ ॥ भार्ये धाताविधात्रोस्ते तयोर्जातौ सुतावुभौ ॥ प्राणश्चैव मृकण्डुश्च पिता मम महायशाः ॥ १६ ॥ मनस्विन्यामहं तस्मात्पुत्रो वेदशिरा मम ॥ धूम्रवत्यां समभवत्प्राणस्यापि निबोध मे ॥ १७॥ प्राणस्य द्युतिमान्पुत्र उत्पन्नस्तस्य चात्मजः ॥ अजराश्च तयोः पुत्राः पौत्राश्च बहवोऽभवन् ॥१८॥ पुत्री मरीचेः संभूतिः पौर्णमासमसूयत ॥ विरजाः पर्वतश्चैव तस्य पुत्रौ महात्मनः ॥ १९ ॥

दोनोंके उत्पन्न हुआ आयतिके जो पुत्र हुआ, उसका नाम धाताने प्राण रक्खा और नियतिके पुत्रका नाम विधाताने मृकण्डु रक्खा यही महायशवान् मुझ मार्कण्डेयके पिता हैं ॥१६॥ मेरे पिता मृकण्डुजीका विवाह मनस्विनीसे हुआ जो मेरी जननी है और मेरे जो पुत्र हुआ, उसका नाम मैंने वेदशिरा रक्खा। प्राणकी पत्नी धूम्रवती हुई उसके जो पुत्र हुए, उनको कहताहूं ॥१७॥ पुत्रवतीके गर्भसे द्युतिमान् और अजरानामक प्राणके दो पुत्र उत्पन्न हुए इनके बेटे पोते अनेक हुएथे ॥१८॥ मरीचिकी पत्नी सम्भूतिने पौर्णमासको उत्पन्न किया। विरजा और पर्वतनामक उसके दो महात्मा पुत्र हुए॥१९॥

हे द्विजवर ! इनके पुत्रोंकी वंशकीर्तिके लिये रक्षा करूंगा अर्थात् राजवंशके वर्णनमें कीर्तन करूंगा । अंगिराकी पत्नी स्मृतिने ॥ २० ॥ सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमतिनामक चार कन्याको उत्पन्न किया । अत्रिसे अनसूयाने पापरहित ॥ २१ ॥ सोम, दुर्वासा और दत्तात्रेयनामक तीन योगियोंको पुत्ररूपमें प्राप्त कियाथा । पुलस्त्यकी भार्या प्रीतिके गर्भसे दत्त वा दम्भोलिकी उत्पत्ति हुई ॥ २२ ॥ यही पूर्वजन्म अर्थात् स्वायम्भुव मन्वन्तरमें अगस्त्य नामसे विख्यात थे । प्रजापति पुलहकी भार्या क्षमाने कर्दम, अर्ववीर और सहिष्णु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये । ऋतुकी भार्या सन्नतिने ॥ २३ ॥ २४ ॥

तयोः पुत्रांस्तु वक्ष्येऽहं वंशसंकीर्त्तने द्विज ॥ स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी प्रसूता कन्यकास्तथा ॥ २० ॥ सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥ अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान् ॥ २१ ॥ सोमं दुर्वाससं चैव दत्तात्रेयं च योगिनम् ॥ प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दत्तोऽन्यस्तत्सुतोऽभवत् ॥ २२ ॥ पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ कर्दमश्चार्ववीरश्च सहिष्णुश्च सुतत्रयम् ॥ २३ ॥ क्षमा तु सुषुवे भार्या पुलहस्य प्रजापतेः ॥ क्रतोस्तु सन्नतिर्भार्या वालखिल्यानसूयत ॥ २४ ॥ षष्टिर्यानि सहस्राणि ऋषीणामूर्द्धरेतसाम् ॥ ऊर्जायां तु वसिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुताः ॥ २५ ॥ रजो गात्रोर्ध्वबाहुश्च सबलश्चानघस्तथा ॥ सुतपाः शुक्र इत्येते सर्वे सप्तर्षयः स्मृताः ॥ २६ ॥ योसावग्निरभीमानी ब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः ॥ तस्मात्स्वाहा सुताँल्लेभे त्रीनुदारौजसो द्विज ॥ २७ ॥ पावकं पवनं चैव शुचिं चापि जलाशिनम् ॥ तेषां तु सन्ततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ २८ ॥ कथ्यन्ते बहुशश्चैते पितापुत्रत्रयं च यत् ॥ एवमेकोनपंचाशद्दुर्जयाः परिकीर्तिताः ॥ २९ ॥

ऊर्ध्वरेता साठ हजार वालखिल्यगणको उत्पन्न किया है, ऊर्जाके गर्भसे वसिष्ठके सात पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ उनके नाम रज, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, सबल, अनघ, सुतपा और शुक्र, यही सप्त ऋषिके नामसे विख्यात हैं ॥ २६ ॥ हे द्विज ! अभिमानी अग्नि ब्रह्माजीके ज्येष्ठ पुत्र हैं; उनका विवाह स्वाहाके संग हुआ और उनके भी तीन पुत्र बडे प्रतापी और महाबलवान् हुए ॥ २७ ॥ पावक, पवमान और शुचि जो सदा जलका पान करते रहते हैं, उनके पैंतालीस पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥ और अन्य तीन पुत्र पिता पुत्र नामसे कहे हैं वह अग्निके पोते हैं, यह उनचास (४९) अग्निके पोते दुर्जय कहे गये हैं ॥ २९ ॥

मैंने तुमसे इनकोही पूर्वमें पितरोंके नामसे व्याख्या करी है अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, अनग्नि और साग्नि ॥ ३० ॥ पितरोंसे स्वधाने मेना और वैधारिणी नामक दो कन्या प्राप्त करीं । हे द्विज ! यह दोनों कन्या परम ब्रह्मवादिनी और योगाभ्यासमें तत्पर हुईं ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रुद्रसर्गाभिधानो नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ क्रौष्टुकिने कहा–हे भगवन् ! आपने जो यह स्वायंभुव मन्वन्तरका विषय वर्णन किया, उसको सम्यक् प्रकारसे सुननेकी इच्छा करताहूं आप कहो ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! मन्वन्तरका प्रमाण देवता देवर्षि क्षितिज (राजा) और देवेन्द्रकी कथा विस्तारसहित

पितरो ब्रह्मणा सृष्टा ये व्याख्याता मया तव ॥ अग्निष्वात्ता बर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयश्च ये ॥ ३० ॥ तेभ्यः स्वधा सुते जज्ञे मेनां वैधारिणीं तथा ॥ ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चाप्युभे द्विज ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे रुद्रसर्गाभिधानो नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ स्वायम्भुवं त्वया ख्यातमेतन्मन्वन्तरं च यत् ॥ तदहं भगवन्सम्यक् श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ॥ १ ॥ मन्वन्तरप्रमाणं च देवा देवर्षयस्तथा ॥ ये च क्षितीशा भगवन्देवेन्द्रश्चैव यस्तथा ॥ २ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ मन्वन्तराणां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः ॥ मानुषेण प्रमाणेन शृणु मन्वन्तरं च मे ॥ ३ ॥ त्रिंशत्कोट्यस्तु संख्याता सहस्राणि च विंशतिः ॥ सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि च संख्यया ॥ ४ ॥ मन्वन्तरप्रमाणं च इत्येतत्साधिकं विना ॥ अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतम् ॥ ५ ॥ द्विपंचाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि च ॥ स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा ॥ ६ ॥ औत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥ षडेते मनवोऽतीतास्तथा वैवस्वतोऽधुना ॥ ७ ॥

वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–मन्वन्तरकी संख्या कुछ अधिक इकहत्तर (७१) चौयुगी है, उसको मनुष्यके प्रमाणसे कहताहूं सुनो ॥ ३ ॥ तीस करोड सडसठ लाख, बीस हजार वर्ष मनुष्यके एक मन्वन्तरमें बीतते हैं ॥ ४ ॥ यह मन्वन्तरका प्रमाण अधिकाईके विना है देवताओंके आठ लाख ॥ ५ ॥ बावन सहस्र वर्ष एक मन्वन्तरमें बीतजातेहैं. पहला मनु स्वायंभुव, दूसरा स्वारोचिष ॥ ६ ॥ औत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष यह छः मनु बीतगयेहैं इस समय वैवस्वत मनु वर्त्तमान है ॥ ७ ॥

और पंचसावर्णि रौच्य और भौत्य यह आगामी हैं अर्थात् अब आगे आवेंगे, इनका संपूर्ण वृत्तान्त मन्वन्तरोंके वर्णनमें विस्तारसहित आपसे कहूंगा ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मन् ! देवता, ऋषि, इन्द्र और पितर जो जो मन्वन्तरोंमें होतेहैं, उन सबकी उत्पत्ति और संग्रह सन्तानसहित वर्णन करताहूं, आप सुनिये ॥ ९ ॥ और उन महात्मा पुरुषोंके जो जो स्थान तथा जो जो संतान उत्पन्न हुईं, वहभी कहताहूं । स्वायंभुवमनुके दश पुत्र उत्पन्न हुए, सो सब उनकेही समान थे ॥ १० ॥ जिन्होंने सप्तद्वीपवाली सपर्वता, ससमुद्रा और आकर (खान) वती इस पृथ्वीको वर्षोंमें विभक्त कियाथा ॥ ११ ॥ पूर्वमें स्वायम्भुव मन्वन्तर अर्थात् त्रेतायुगके आदिमें प्रियव्रतके पुत्र और स्वायम्भुवके पोतोंने भी ऐसाही कियाथा ॥ १२ ॥ कर्दम प्रजापतिकी प्रजावती नामक महाभाग

सावर्णाः पंच रौच्याश्च भौत्याश्चागामिनस्त्वमी ॥ एतेषां विस्तरं भूयो मन्वंतरपरिग्रहे ॥ ८ ॥ वक्ष्ये देवानृषींश्चैव देवेन्द्राः पितरश्च ये ॥ उत्पत्तिसंग्रहं ब्रह्मन् श्रूयतामस्य संततिः ॥ ९ ॥ यच्च तेषामभूत्क्षेत्रं तत्पुत्राणां महात्मनाम् ॥ मनोः स्वायम्भुवस्यासन्दश पुत्रास्तु तत्समाः ॥ १० ॥ यैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ॥ ससमुद्राऽऽकरवती प्रतिवर्षं निवेशिता ॥ ११ ॥ स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तथा ॥ प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य च ॥ १२ ॥ प्रियव्रतात्प्रजावत्यां वीरात्कन्या व्यजायत ॥ कन्या सा तु महाभागा कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १३ ॥ कन्ये द्वे दशपुत्रांश्च सम्राट् कुक्षी च ते उभे ॥ तयोर्वै भ्रातरः शूरा प्रजापतिसमा दश ॥ १४ ॥ आग्नीध्रो मेधातिथिश्च वपुष्मांश्च तथापरः ॥ ज्योतिष्मान्द्युतिमान्भव्यः सवनः सप्त एव ते ॥ १५ ॥ मेधाग्निबाहुमित्रास्तु त्रयो योगपरायणाः ॥ जातिस्मरा महाभागा न राज्याय मनो दधुः ॥ प्रियव्रतोऽभ्यषिंचत्तान्सप्त सप्तसु पार्थिवान् ॥ द्वीपेषु तेन धर्मेण द्वीपांश्चैव निबोध मे ॥ १६ ॥

कन्याके गर्भमें और प्रियव्रतके औरससे ॥ १३ ॥ दश पुत्र और दो कन्याओंने जन्म ग्रहण किया । इन दोनों कन्याने सम्राट् और कुक्षि नाम धारण किया था. और उपरोक्त दश भ्राता महा शूर और प्रजापतिके समान हुए ॥ १४ ॥ उन दशोंके नाम—आग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, भव्य, और सवन ॥ १५ ॥ हे महाभाग ! इनमें सबसे छोटे मेधा अग्निबाहु और मित्र इन तीनोंने जातिस्मर होनेसे राज्य नहीं किया, बरन् योगपरायण हुए । तब शेष उन सात पुत्रोंको राजा प्रियव्रतने सातों द्वीपोंका राज्य दिया और वह लोगभी धर्मसहित सातों द्वीपोंका राज्य करने लगे । अब मैं उन

द्वीपोंका नाम भी वर्णन करताहूं ॥ १६ ॥ अर्थात् राजा प्रियव्रतने आग्नीध्रको जम्बूद्वीपका राजा किया और मेधातिथिको प्लक्षद्वीपका राज्य दिया ॥ १७ ॥ फिर वपुष्मान्को शाल्मलिद्वीपका, ज्योतिष्मान्को कुशद्वीपका, द्युतिमान्को क्रौंचद्वीपका और भव्यको शाकद्वीपका राजा किया ॥ १८ ॥ सवन नामक पुत्रको पुष्करद्वीपका अधिपति किया, तब इन पुष्कराधिपति सवनके मेधावी और धातकी नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥ तब उन दोनों पुत्रोंको महाराज सवनने पुष्करद्वीपके दो भाग करके बांट दिये, और शाकद्वीपके राजा भव्यके सात पुत्र हुए, उन सबके नाम वर्णन करताहूं ॥ २० ॥ जलद, कुमार, सुकुमार, मणीवक, कुशोत्तर, मेधावी और सातवाँ महाद्रुम नाम हुआ ॥ २१ ॥ तब शाकद्वीपके सात भाग करके उस राजाने सातों पुत्रोंको दे

जम्बुद्वीपे तथाग्नीध्रं राजानं कृतवान्पिता ॥ प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः ॥ १७ ॥ शाल्मलेस्तु वपुष्मन्तं ज्योतिष्मन्तं कुशाह्वये ॥ क्रौंचद्वीपे द्युतिमन्तं भव्यं शाकाह्वयेश्वरम् ॥ १८ ॥ पुष्कराधिपतिं चापि सवनं कृतवान्सुतम् ॥ महावीतो धातकिश्च पुष्कराधिपतेः सुतौ ॥ १९ ॥ द्विधा कृत्वा तयोर्वर्षं पुष्करे सन्यवेशयत् ॥ भव्यस्य पुत्राः सप्तासन्नामतस्तान्निबोध मे ॥ २० ॥ जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीवकः ॥ कुशोत्तरोऽथ मेधावी सप्तमस्तु महाद्रुमः ॥ २१ ॥ तन्नामकानि वर्षाणि शाकद्वीपे चकार सः ॥ तथा द्युतिमतः सप्त पुत्रास्तांस्तु निबोध मे ॥२२॥ कुशलो मनुगश्चोष्णः प्राकारश्चार्थकारकः ॥ मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तमः परिकीर्तितः ॥ २३ ॥ तेषां स्वनामधेयानि क्रौंचद्वीपे तथाभवन् ॥ ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे पुत्रनामाङ्कितानि वै ॥२४॥ (तत्रापि सप्त वर्षाणि तेषां नामानि मे शृणु) ॥ तस्यापि सप्त पुत्रास्तु ज्ञेयास्तेऽपि महौजसः ॥ उद्भिदं वैणवं चैव सुरथं लम्बनं तथा ॥२५॥

दिये, वह सप्त भाग, सप्त वर्ष इन्हींके नामसे प्रसिद्ध हुए। इसी प्रकार क्रौञ्चद्वीपके राजा द्युतिमान्के भी सात पुत्र हुए, उनके भी नाम कहताहूं ॥ २२ ॥ कुशल, मनुग, उष्ण, आकार, अर्थकारक, मुनि और सातवाँ दुन्दुभि नामक हुआ ॥२३॥ इन सात नामोंके अनुसार क्रौञ्चद्वीपकेभी सात भाग हुए थे। ज्योतिष्मान्ने सप्त पुत्रोंके नामानुयायी सप्त वर्षका कुशद्वीपमें विभाग किया था ॥२४॥ (वहाँ भी सात वर्ष बनाये उनके नाम मुझसे सुनो) उनके नाम ये हैं उद्भिद, वैष्णव, सुरथ, लम्बन ॥ २५ ॥

धृतिमान्, भाकर और कपिल और शाल्मलिद्वीपका जो वपुष्मान् राजा था उसके भी सात पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २६ ॥ उनके नाम–श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सातवाँ केतुमान् हुआ ॥ २७॥ इन्हांके नामसे वह शाल्मलिद्वीपभी सप्त भाग होकर वर्षके नामसे प्रसिद्ध हुआ और जो मेधातिथि प्लक्षद्वीपका नरेश्वर था, उसके भी सात पुत्र हुए ॥ २८ ॥ तब इसने भी अपने सातों पुत्रोंको प्लक्षद्वीपके सात भाग करके दे दिये और इन्हीं सबके नामसे वर्ष विख्यात हुए उनके नाम शाकभव, शिशिर और सुखोदय ॥ २९ ॥ आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव, तथा प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच और

धृतिमत्प्राकरं चैव कपिलं चापि सप्तमम् ॥ वपुष्मतः सुताः सप्त शाल्मलेशस्य चाभवन् ॥ २६ ॥ श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ॥ वैद्युतो मानसश्चैव केतुमान्सप्तमस्तथा ॥ २७ ॥ तथैव शाल्मले तेषां समनामानि सप्त वै ॥ सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै ॥ २८ ॥ येषां नामाङ्कितैर्वर्षैः प्लक्षद्वीपस्तु सप्तधा ॥ पूर्वं शाकभवं वर्षं शिशिरं तु सुखोदयम् ॥ २९ ॥ आनन्दं च शिवं चैव क्षेमकं च ध्रुवं तथा ॥ प्लक्षद्वीपादिभूतेषु शाकद्वीपान्तिमेषु वै ॥ ३० ॥ ज्ञेयः पंचसु धर्मश्च वर्णाश्रमविभागजः ॥ नित्यः स्वाभाविकश्चैव अहिंसाऽविधिवर्जितः ॥ ३१॥ (यानि किंपुरुषाद्यानि वर्जयित्वा हिमाह्वयम् ॥ सुखमायुश्च रूपं च बलं धर्मश्च नित्यशः ॥) पंचस्वेतेषु वर्षेषु सर्वसाधारणः स्मृतः ॥ आग्नीध्राय पिता पूर्वं जम्बूद्वीपं ददौ द्विज ॥ ३२ ॥ तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापातिसमा नव ॥ ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किंपुरुषोऽनुजः ॥ ३३ ॥ हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः ॥ वश्यश्च पंचमः पुत्रो हिरण्यः षष्ठ उच्यते ॥ ३४ ॥

शाक इत्यादि इन पांचों द्वीपोंमें ॥३०॥ और इनके विभागोंमें सदा वर्णाश्रमका धर्म बना रहता है तथा नित्य स्वभावसेही वहाँ हिंसाविधि वर्जित है अर्थात् हिंसा नहीं होती ॥ ३१ ॥ (और हिमालयको छाडेकर जो किम्पुरुषादि वर्ष हैं उनमें सुख पूर्णायुरूप बल और धर्म सदा बनारहता है) हे द्विजोत्तम ! संपूर्ण धर्म इन पांचों द्वीपोंमें साधारण हैं । जिन आग्नीध्रको उनके पिताने जम्बूद्वीप प्रदान किया था ॥ ३२ ॥ उनके प्रजापतिकी समान नौ पुत्र उत्पन्न हुएथे । ज्येष्ठका नाम नाभि, दूसरेका किंपुरुष ॥ ३३ ॥ तसिरेका हरि, चौथेका इलावृत, पांचवेंका रम्य, छठेका हिरण्य ॥ ३४ ॥

मा० पु०
॥१८२॥

सातवेंका कुरु आठवेंका भद्र और नवमका नाम केतुमाल है इन सबके नामानुसार वर्षका भी विभाग हुआ है ॥ ३५ ॥ हिमालयके अतिरिक्त जिनको किंपुरुष कहते हैं उनको स्वभावसे सिद्धि और विनाही यत्न किये सुख लाभ होताहै ॥ ३६ ॥ विपर्यय वा जरामृत्युजनित उनको कोई भय नहीं होता। वहा धर्माधर्म, उत्तम मध्यम और अधम विभाग ॥ ३७ ॥ चारों युगकी भिन्न अवस्था विभिन्न ऋतुकी अवस्था वा ऋतुविभाग नहीं है। आग्नीध्रके पुत्र नाभिकी सन्तान ऋषभ हुआ ॥ ३८ ॥ और ऋषभके पुत्र भरत हुए। ऋषभने पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करके संन्यास अवलम्बन किया था ॥ ३९ ॥

कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वश्चाष्टमः स्मृतः ॥ नवमः केतुमालश्च तन्नाम्ना वर्षसंस्थितिः ॥ ३५ ॥ यानि किंपुरुषाद्यानि वर्जयित्वा हिमाह्वयम् ॥ तेषां स्वभावतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ॥ ३६ ॥ विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च ॥ धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ॥ ३७ ॥ न वै चतुर्युगावस्था नाश्रमा ऋतवो न च ॥ आग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत्सुतो द्विज ॥ ३८ ॥ ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद्वरः ॥ सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्राज्यमास्थितः ॥ ३९ ॥ तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमसंश्रयः ॥ हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ ॥ ४० ॥ तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ॥ भरतस्यान्वभूत्पुत्रः सुमतिर्नाम धार्मिकः ॥ ४१ ॥ तस्मिन्राज्यं समावेश्य भरतोऽपि वनं ययौ ॥ एतेषां पुत्रपौत्रैस्तु सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ ४२ ॥ प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तु भुक्ता स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ एष स्वायम्भुवः सर्गः कथितस्ते द्विजोत्तम ॥ पूर्वमन्वन्तरे सम्याक्किमन्यत्कथयामि ते ॥ ४३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवनकोशे स्वायंभुवमन्वन्तरकथनं नाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

भा० टी०
अ० ५०

और पुलहाश्रममें वास करके इन महाभागने तपस्या करी थी। हिमनामक दक्षिणवर्ष भरतको उनके पिताने समर्पण कियाथा ॥ ४० ॥ इसी कारण उनके नामानुसार भारतवर्ष नाम हुआहै। भरतके सुमतिनामक एक धार्मिक पुत्र था ॥ ४१ ॥ वह भी सुमतिको राज्य देकर वनको गयेथे, इनके पुत्र पौत्रगण और प्रियव्रतके पुत्रगण स्वायंभुव मन्वन्तरमें इस सप्तद्वीपवाली पृथ्वीका भोग करते आतेहैं ॥ ४२ ॥ यह स्वायंभुव सर्ग पूर्व मन्वन्तरमें सम्यक् प्रकार कहा है, अब अधिक क्या कहूं ॥ ४३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां भुवनकोशे स्वायंभुवमन्वन्तरकथनं नाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

क्रौष्टुकि बोले—हे मुने ! द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियें कितनी हैं ? ॥ १ ॥ महाभूत और लोकालोकका प्रमाण क्या है ? और चन्द्र सूर्यका व्यास परिमाण और गति किस प्रकार है ? ॥ २ ॥ हे महामुने ! यह सब विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विज ! समस्त पृथ्वीका विस्तार पचास करोड योजन हैं, उसके सब स्थानोंके संबंधमें कहता हूं सुनो ॥ ४ ॥ हे द्विज ! हे महाभाग ! जम्बू इत्यादि पुष्करान्त जिन सब द्वीपोंका विषय कहा है वह फिर विस्तारसहित कहता हूं ॥ ५ ॥ जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्करद्वीप, यह पूर्व पूर्व द्वीपसे यथाक्रम द्विगुण

क्रौष्टुकिरुवाच ॥ कति द्वीपाः समुद्रा वा पर्वता वा कति द्विज ॥ कियन्ति चैव वर्षाणि तेषां नद्यश्च का मुने ॥ १ ॥ महाभूतप्रमाणं च लोकालोकं तथैव च ॥ पर्यासं परिमाणं च गतिं चन्द्रार्कयोरपि ॥ २ ॥ एतत्प्रब्रूहि मे सर्वं विस्तरेण महामुने ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शतार्द्धकोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नशो द्विज ॥ तस्याः संस्थानमखिलं कथयामि शृणुष्व तत् ॥ ४ ॥ ये ते द्वीपा मया प्रोक्ता जम्बुद्वीपादयो द्विज ॥ पुष्करान्ता महाभाग शृण्वेषां विस्तरं पुनः ॥ ५ ॥ द्वीपात्तु द्विगुणो द्वीपो जम्बुः प्लक्षोऽथ शाल्मलिः ॥ कुशः क्रौंचस्तथा शाकः पुष्करद्वीप एव च ॥ ६ ॥ लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरजलाब्धिभिः ॥ द्विगुणैर्द्विगुणैर्वृद्ध्या सर्वतः परिवेष्टिताः ॥ ७ ॥ जम्बुद्वीपस्य संस्थानं प्रवक्ष्येऽहं निबोध मे ॥ लक्षमेकं योजनानां वृत्तो विस्तारदैर्घ्यतः ॥ ८ ॥ हिमवान्हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च ॥ नीलः श्वेतस्तथा शृङ्गी सप्त तद्वर्षपर्वताः ॥ ९ ॥ द्विलक्षयोजनायामौ मध्ये तत्र महाचलौ ॥ तयोर्दक्षिणतो यौ तु यौ तथोत्तरतो गिरी ॥ १० ॥ दशभिर्दशभिर्न्यूनैः सहस्रैस्ते परस्परम् ॥ द्विसाहस्रोच्छ्रयाः सर्वे तावद्विस्तारिणश्च ते ॥ ११ ॥

हैं ॥ ६ ॥ लवण, इक्षु, सुरा, सर्पि (घृत), दधि, दुग्ध और जलसमुद्र द्वारा द्विगुण द्विगुण वृद्धिभावसे वह परिवेष्टित हैं ॥ ७ ॥ जम्बूद्वीपकी आकृतिका परिमाण कहता हूं, विस्तार, दीर्घता और गोलाईमें एक लक्ष योजन जम्बुद्वीपका परिमाण है ॥ ८ ॥ हिमवान्, हेमकूट, ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत और शृंगी, यह सात उसके वर्षपर्वत हैं ॥ ९ ॥ मध्य स्थलमें दो लाख योजन विस्तृत जो दो महागिरि हैं, उनकी दक्षिण और उत्तरदिशामें जो दो दो गिरि अवस्थित हैं ॥ १० ॥ वह परस्पर दश दश सहस्र न्यून संख्यायुक्त हैं, अन्य सब दो हजार योजन ऊंचे और इसी प्रकार विस्तृत हैं ॥ ११ ॥

इसके बीच समुद्रमें प्रविष्ट छः वर्षपर्वत हैं। यह पृथ्वी उत्तर दक्षिणमें नीची एवं मध्यस्थलमें ऊंची और चौडी है ॥ १२ ॥ तीन वर्ष उत्तरमें और तीन वर्ष दक्षिणमें जाने। इन दोनोंके बीचमें इलावृतवर्ष अर्द्धचन्द्राकारसे अवस्थित है ॥ १३ ॥ उसकी पूर्वदिशामें भद्राश्व और पश्चिममें केतुमाल है। इलावृतके मध्यस्थलमें कनक पर्वत सुमेरु है ॥ १४ ॥ इस महापर्वतकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। सोलह हजार योजन भूमिमें प्रविष्ट और वहाँसे सोलह हजार योजन विस्तृत है ॥ १५ ॥ इसकी चोटी शरावेके समान बत्तीस हजार योजन चौडी है। इस गिरिका वर्ण पूर्वकी ओर श्वेत, दक्षिणकी

समुद्रान्तःप्रविष्टाश्च षडस्मिन्वर्षपर्वताः ॥ दक्षिणोत्तरतो निम्ना मध्ये तुङ्गा यथा क्षितिः ॥ १२ ॥ वेद्यर्द्धं दक्षिणे त्रीणि त्रीणि वर्षाणि चोत्तरे ॥ इलावृतं तयोर्मध्ये चन्द्रार्द्धाकारवत्स्थितम् ॥१३॥ ततः पूर्वेण भद्राश्वं केतुमालं च पश्चिमे ॥ इलावृतस्य मध्ये तु मेरुः कनकपर्वतः ॥१४॥ चतुराशीति साहस्रस्तस्योच्छ्रायो महागिरेः ॥ प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तारः षोडशैव तु ॥१५॥ शरावसंस्थितत्वाच्च द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ॥ शुक्लः पीतोऽसितो रक्तः प्राच्यादिषु यथाक्रमम् ॥१६॥ विप्रो वैश्यस्तथा शूद्रः क्षत्रियश्च स्ववर्णतः ॥ तस्योपरि तथैवाष्टौ पुर्यो दिक्षु यथाक्रमम् ॥१७॥ तस्योपरि सभा दिव्याः पूर्वादिषु क्रमेण तु ॥ इंद्रादिलोकपालानां तन्मध्ये ब्रह्मणः सभा ॥ योजनानां सहस्राणि चतुर्दश समुच्छ्रिता ॥१८॥ अयुतोच्छ्रायास्तस्याधस्तथा विष्कम्भपर्वताः ॥ प्राच्यादिषु क्रमेणैव मन्दरो गन्धमादनः ॥१९॥ विपुलश्च सुपार्श्वश्च केतुपादपशोभिताः ॥ कदम्बो मन्दरे केतुर्जम्बुर्वै गन्धमादने ॥ २० ॥

ओर पीत, पश्चिमकी ओर नीला और उत्तरकी ओर लाल है ॥ १६ ॥ इसकी पूर्वादि आठों दिशामें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंका क्रमशः वास है ॥ १७ ॥ उसके ऊपर पूर्वादिके क्रमसे इन्द्रादि लोकपालोंकी और मध्यस्थलमें ब्रह्माकी चौदह हजार योजन विस्तृत सभा शोभायमान है ॥ १८ ॥ इसके नीचे दश हजार योजन ऊंचे पूर्व आदि चारों दिशाओंमें चार विष्कम्भ पर्वत हैं। उनके नाम मन्दार, गंधमादन ॥ १९ ॥ विपुल और सुपार्श्व, इन चारों पर्वतोंके ऊपर केतुकी समान शोभायमान चार वृक्ष हैं अर्थात् मन्दर पर कदम्ब, गंधमादन पर जामुन ॥ २० ॥

विपुलपर पीपल और सुपार्श्वके ऊपर महान् बरगदका वृक्ष है। इन पर्वतोंका प्रमाण ग्यारह सौ योजन है ॥ २१ ॥ पूर्व दिशामें जठर और देवकूट पर्वत है, वह परस्पर नील और निषध पर्यन्त दीर्घ है ॥ २२ ॥ मेरुके पश्चिम पार्श्वमें निषध और पारियात्र हैं, पूर्वदिशाको समान यह भी नील और निषध पर्यन्त विस्तृत हैं ॥ २३ ॥ दक्षिण दिशामें कैलास और हिमवान्‌नामक महागिरि हैं, यह पूर्व पश्चिममें आयत (लम्बायमान) होकर समुद्रमें प्रविष्ट हुए हैं ॥ २४ ॥ उत्तरमें शृंगवान् और जारुधि हैं, दक्षिणदिशाकी समान यह भी समुद्रपर्यन्त विस्तृत हैं ॥ २५ ॥ हे द्विजोत्तम ! यही आठों पर्वतोंकी मर्यादा है, सो मैंने

विपुले च तथाश्वत्थः सुपार्श्वे च वटो महान् ॥ एकादशशतायामा योजनानामिमे नगाः ॥ २१ ॥ जठरो देवकूटश्च पूर्वस्यां दिशि पर्वतौ ॥ आनीलनिषधायातौ परस्परनिरन्तरौ ॥ २२ ॥ निषधः पारियात्रश्च मेरोः पार्श्वे तु पश्चिमे ॥ यथा पूर्वौ तथा चैतावानीलनिषधायतौ ॥ २३॥ कैलासो हिमवांश्चैव दक्षिणेन महाचलौ ॥ पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ २४ ॥ शृङ्गवाञ्जारुधिश्चैव तथैवोत्तरपर्वतौ ॥ यथैव दक्षिणे तद्वदर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ २५ ॥ मर्यादापर्वता ह्येते कथ्यतेऽष्टौ द्विजोत्तम ॥ हिमवद्धेमकूटादिपर्वतानां परस्परम् ॥ २६ ॥ नवयोजनसाहस्रं प्रागुदग्दक्षिणोत्तरम् ॥ मेरोरिलावृते तद्वदन्तरे वै चतुर्दिशम् ॥ २७ ॥ फलानि यानि वै जम्ब्वा गन्धमादनपर्वते ॥ गजदेहप्रमाणानि पतन्ति गिरिमूर्द्धनि ॥ २८ ॥ तेषां स्रावात्प्रभवति ख्याता जम्बूनदीति वै ॥ यत्र जाम्बूनदं नाम कनकं सम्प्रजायते ॥२९॥ सा परिक्रम्य वै मेरुं जम्बूमूलं पुनर्नदी ॥ विशति द्विजशार्दूल पीयमाना जनैश्च तैः ॥ ३० ॥

तुमसे कही और हिमवान् तथा हेमकूट आदि पर्वतोंका परस्परमें ॥ २६ ॥ नौ हजार योजन विस्तार है और मेरुके पूर्व दक्षिण आदि चारों दिशामें इलावृतके बीचमें यह सब पर्वत हैं ॥ २७ ॥ गंधमादन पर्वतसे हाथीके देहकी समान जो जम्बूफल पर्वतके शिखरसे गिरते हैं ॥ २८ ॥ उनकी रसोत्पन्न नदीको जम्बूनदी कहते हैं; इस जम्बूनदीसे जाम्बूनद नामक स्वर्णकी उत्पत्ति हुई है ॥ २९ ॥ हे द्विजशार्दूल ! मेरु पर्वतकी चारों ओर परिक्रमा करके वह जम्बूनदी उसी जामुनिके वृक्षके नीचे आनकर वहती है और वहाँके वास करनेवाले मनुष्य उसीका जल पान करते हैं ॥ ३० ॥

भद्राश्वमें अश्वशिरा, भारतमें कूर्माकृति विष्णु, केतुमालमें वराह और उत्तरमें मत्स्यरूपसे नारायण स्थित है ॥ ३१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ! इन चारों पर्वतोंमें नक्षत्रों ऋषियोंकी स्थिति और नक्षत्रोंका गमनागमन होता है और ग्रहोंका अच्छा बुरा फल भी होता रहता है ॥ ३२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विजोत्तम! मन्दरादि चार पर्वतोंमें जो चार वन और सरोवर हैं सो कहताहूं सुनो ॥ १ ॥ पूर्व शैलमें चैत्ररथ, दक्षिणमें नन्दन, पश्चिममें वैभ्राज और उत्तरमें सावित्र नामक वन है ॥२॥ मेरुके पूर्वमें अरुणोद, दक्षिणमें

भद्राश्वेऽश्वशिरा विष्णुर्भारते कूर्मसंस्थितिः ॥ वराहः केतुमाले च मत्स्यरूपस्तथोत्तरे ॥३१॥ तेषु नक्षत्रविन्यासाद्दृषयः समवस्थिताः ॥ चतुर्ष्वपि द्विजश्रेष्ठ ग्रहाभिभवपाठकाः ॥ ३२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवनकोशे जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शैलेषु मन्दराद्येषु चतुर्ष्वपि द्विजोत्तम ॥ वनानि यानि चत्वारि सरांसि च निबोध मे ॥ १ ॥ पूर्वे चैत्ररथं नाम दक्षिणे नन्दनं वनम् ॥ वैभ्राजं पश्चिमे शैले सावित्रं चोत्तराचले ॥ २ ॥ अरुणोदं सरः पूर्वे मानसं दक्षिणे तथा ॥ शीतोदं पश्चिमे मेरोर्म-हाभद्रं तथोत्तरे ॥ ३ ॥ शीतार्तश्चक्रमुंजश्च कुलीरोऽश्वश्च कङ्गवान् ॥ मणिशैलोऽथ वृषवान्महानीली भवाचलः ॥ ४ ॥ सुबिन्दुर्मन्दरो वेणुस्तामसो निषधस्तथा ॥ देवशैलश्च पूर्वेण मन्दरस्य महाचलः ॥५॥ त्रिकूटः शिखराद्रिश्च कालिङ्गोऽथ पतङ्गकः ॥ रुचकः सानुमां-श्चाद्रिस्ताम्रकोऽथ विशाखवान् ॥ ६ ॥ श्वेतोदरः समूलश्च वसुधारश्च रत्नवान् ॥ एकशृङ्गो महाशैलो राजशैलः पिपाठकः ॥ ७ ॥ पंचशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः ॥ इत्येते दक्षिणे पार्श्वे मेरोः प्रोक्ता महाचलाः ॥ ८ ॥

मानस, पश्चिममें शीतोद और उत्तरमें महाभद्र नामक सरोवर अवस्थित है ॥३॥ मन्दरकी पूर्वदिशामें शीतार्त, चक्रमुंज, कुलीर, अश्व, कंगवान्, मणिशैल, वृषवान्, महानीली, भवाचल ॥ ४ ॥ बिन्दु, मन्दर, वेणु, तामस, निषध और देवशैल यह सब पर्वत हैं ॥ ५ ॥ त्रिकूट, शिखर, कलिंग, पतङ्गक, रुचक, सानुमान्, ताम्रक, विशाखवान् ॥ ६ ॥ श्वेतोदर, समूल, वसुधार, रत्नवान्, एकश्रृंग, महाशैल, राजशैल, पिपाठक ॥ ७ ॥ पंचशैल, कैलास और पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्, यह सब महापर्वत मेरुके दक्षिण पार्श्वमें स्थित हैं ॥ ८ ॥

सुराक्ष, शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिङ्गल, पिंजर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मधु ॥ ९ ॥ अंजन, कुक्कुट, कृष्णा, पाण्डुर, सहस्राशिखर पारियात्र और शृंगवान् ॥ १० ॥ यह मेरु और विष्कम्भकी पश्चिम दिशासे बाहर स्थित हैं। अब उत्तरदिशाके पर्वतोंका वर्णन करताहूं, सुनो ॥ ११ ॥ शंखकूट, वृषभ, हंसनाभ, कपिलेन्द्र, सानुमान्, नील ॥ १२ ॥ स्वर्णशृंगी, शातशृंग, पुष्पक, मेघपर्वत, विरजाक्ष, वराहाद्रि तथा मयूर और जारुधि ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह सब पर्वत मेरुकेउत्तर भागमें कहे गये हैं। इन पर्वतोंकी कन्दरा अत्यन्त मनोहर हैं ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तम ! यह संपूर्ण पर्वत, वन और स्वच्छ जलयुक्त

सुरक्षः शिशिराक्षश्च वैदूर्यः पिङ्गलस्तथा ॥ पिंजरोऽथ महाभद्रः सुरसः कपिलो मधुः ॥ ९ ॥ अञ्जनः कुक्कुटः कृष्णः पाण्डुरश्चाचलोत्तमः ॥ सहस्रशिखरश्चाद्रिः पारियात्रः सशृङ्गवान् ॥ १० ॥ पश्चिमेन तथा मेरोर्विष्कम्भात्पश्चिमाद्बहिः ॥ एतेऽचलाः समाख्याताः शृणुष्वान्यांस्तथोत्तरान् ॥ ११ ॥ शङ्खकूटोऽथ वृषभो हंसनाभस्तथाचलः ॥ कपिलेन्द्रस्तथा शैलः सानुमान्नील एव च ॥ १२ ॥ स्वर्णशृङ्गः शातशृङ्गः पुष्पको मेघपर्वतः ॥ विरजाक्षो वराहाद्रिर्मयूरो जारुधिस्तथा ॥ १३ ॥ इत्येते कथिता ब्रह्मन्मेरोरुत्तरतो नगाः ॥ एतेषां पर्वतानां तु द्रोण्योऽतीव मनोहराः ॥ १४ ॥ वनैरमलपानीयैः सरोभिरुपशोभिताः ॥ तासु पुण्यकृतां जन्म मनुष्याणां द्विजोत्तम ॥ १५ ॥ एते भौमा द्विजश्रेष्ठ स्वर्गाः स्वर्गगुणाधिकाः ॥ न तासु पुण्यपापानामपूर्वाणामुपार्जनम् ॥ १६ ॥ पुण्योपभोग एवोक्तो देवानामपि तास्वपि ॥ शीतान्ताद्येषु चैतेषु शैलेषु द्विजसत्तम ॥ १७ ॥ विद्याधराणां यक्षाणां किन्नरोरगरक्षसाम् ॥ देवानां च महावासा गन्धर्वाणां च शोभनाः ॥ १८ ॥

सरोवरोंसे अत्यन्त शोभायमान हैं और इस परम पुण्यमय भूमिमें पुण्यवान् मनुष्योंकाही जन्म होता है ॥ १५ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! स्वर्गकी अपेक्षा अधिक गुणशाली यह सब स्थान भौमस्वर्गके नामसे विख्यात है यहाँ अपूर्व पुण्यपापका उपार्जन नहीं है ॥ १६ ॥ हे द्विजसत्तम ! इन सब शीतान्तादि पर्वतोंका उपभोग देवताओंकोभी पुण्यभोग कहा गया है ॥ १७ ॥ वहाँ विद्याधर, यक्ष, किन्नर, उरग, राक्षस, देवता और गंधर्वोंके शोभायमान वासस्थान है ॥ १८ ॥

यह पृथ्वी महापुण्यरूप और अत्यन्त मनोरम्य है और देवताओंके उपवन तथा सुन्दर सुन्दर मनहरण सरोवरोंसे शोभायमान है और यहांकी पवनभी सब ऋतुओंमें सुख देनेवाली है ॥ १९ ॥ किसी स्थानमेंही मनुष्योंके कुछ वैमनस्यका कारण दिखाई नहीं देता इसीलिये मैंने इसको चतुष्पत्र पार्थिव पद्म कहकर वर्णन कियाहै ॥ २० ॥ भद्राश्वभारतादिही इसके चारों ओर चार पत्ते हैं। पहले दक्षिणदिशामें जो भारतवर्षका वर्णन किया है ॥ २१ ॥ वह कर्मभूमि है, दूसरे किसी स्थानमें पापपुण्यकी प्राप्ति नहीं है, इसमें सब प्रतिष्ठित रहनेके कारण भारतवर्ष प्रधान कहकर प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥ हे द्विज ! कर्मभूमिके कारणही मनुष्यगण स्वर्ग, अपवर्ग, मनुष्यता, नरक, पक्षियोनि वा अन्यान्य अवस्थाको प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे

सभा पुर्यो मनोज्ञाश्च सदैवोपवनैर्युताः ॥ सरांसि च मनोज्ञानि सर्वर्तुसुखदोऽनिलः ॥ १९ ॥ न चैतेषु क्लमो बाधा वैमनस्यं च कुत्रचित् ॥ तदेतत्पार्थिवं पद्मं चतुष्पत्रं मयोदितम् ॥ २० ॥ भद्राश्वभारतादीनि पत्राण्यस्य चतुर्दिशम् ॥ भारतं नाम यद्वर्षं दक्षिणेन मयोदितम् ॥ २१ ॥ तत्कर्मभूमिर्नान्यत्र संप्राप्तिः पुण्यपापयोः ॥ एतत्प्रधानं विज्ञेयं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ २२ ॥ अस्मात्स्वर्गापवर्गौ च मानुष्यनारकावपि ॥ तिर्यक्त्वमथवाप्यन्यन्नरः प्राप्नोति वै द्विज ॥ २३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवनकोशे जम्बूद्वीपांतर्गतखण्डवर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ धराधारं जगद्योनेः पदं नारायणस्य च ॥ ततः प्रवृत्ता या देवी गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ १ ॥ सा प्रविश्य सुधायोनिं सोममाधारमम्भसाम् ॥ ततः संवर्द्धमानार्करश्मिसङ्गातिपावनी ॥ २ ॥ पपात मेरुपृष्ठे च सा चतुर्द्धा ततो ययौ ॥ मेरुकूटतटान्तेभ्यो निपतन्ती विवर्तिता ॥ ३ ॥

भाषाटीकायां जम्बूद्वीपान्तर्गतखण्डवर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि–जगद्योनि नारायणका जो ध्रुवाधार नामक पद है, उससेही त्रिपथगामिनी गंगा देवी उत्पन्न हुई है ॥ १ ॥ वह समस्त जलकी आधारस्वरूप सुधायोनि चन्द्रमण्डलमें प्रविष्ट होकर वहाँ सम्बध्धमान सूर्यकी किरणोंके मिलनेसे अतिपवित्र हो ॥ २ ॥ सुमेरुपर्वतके ऊपर गिरी है और यहांके समस्त कूट प्रान्तसे निपतित और विवर्तित होकर चार धारामें निर्गत हुई है ॥ ३ ॥

इस प्रकार जलके विस्तारवाली अवलम्बरहित गंगा देवी समस्त मन्दरादि पर्वतमें विभक्त होकर समान भावसे गिरी हैं ॥ ४ ॥ और क्रमशः समस्त पर्वतकी शिलाओंको तोडती हुई गई हैं, तिनमें गंगा देवीकी जो जलधारा पूर्वदिशामें प्रवाहित होकर चैत्ररथ वनकी ओर गई है, उसका नाम सीता विख्यात है ॥ ५ ॥ वही सीता गंगा चैत्ररथ वनको जलमय करके वरुणोद सरोवरमें गई है, फिर वहांसे शीतान्तपर्वत और अन्यान्य सब पर्वत अतिक्रम करके ॥ ६ ॥ पृथ्वीमें जाय भद्राश्व वर्ष होती हुई समुद्रमें गई है और सुमेरुकी दक्षिणदिशासे गंगाका जो जल गंधमादन पर्वतमें गिरा है उसका नाम अलकनन्दा है ॥ ७ ॥ अलकनन्दाने सुमेरुके निकटवर्ती देवताओंके आह्लादजनक नन्दनवनमें जाकर महा वेगसे मानस सरोवरको प्लावित किया है ॥ ८॥

विकीर्यमाणसलिला निरालम्बा पपात सा ॥ मन्दराद्येषु पादेषु प्रविभक्तोदका समम् ॥ ४ ॥ चतुर्ष्वपि पपाताम्बुविभिन्नांघ्रिशिलोच्चया ॥ पूर्वा सीतेति विख्याता ययौ चैत्ररथं वनम् ॥ ५ ॥ तत्प्लावयित्वा च ययौ वरुणोदं सरोवरम् ॥ शीतान्तं च गिरिं तस्मात्ततश्चान्यान्गिरीन्क्रमात् ॥ ६ ॥ गत्वा भुवं समासाद्य भद्राश्वे जलधिं गता ॥ तथैवालकनन्दाख्या दक्षिणे गन्धमादने ॥ ७ ॥ मेरुपादे वनं गत्वा नन्दनं देवनन्दनम् ॥ मानसं च महावेगात्प्लावयित्वा सरोवरम् ॥ ८ ॥ आसाद्य शैलराजानं रम्यं त्रिशिखरं गता ॥ तस्माच्च पर्वतान्सर्वान्दक्षिणे ये क्रमोदिताः ॥ ९ ॥ तान्प्लावयित्वा संप्राप्ता हिमवन्तं महागिरिम् ॥ दधार तत्र तां शम्भुर्न मुमोच वृषध्वजः ॥ १० ॥ भगीरथेनोपवासैः स्तुत्या चाराधितो विभुः ॥ तत्र मुक्ता च शर्वेण सप्तधा दक्षिणोदधिम् ॥ ११ ॥ प्रविवेश त्रिधा प्राच्यां प्लावयन्ती महानदी ॥ भगीरथरथस्यानु स्रोतसैकेन दक्षिणाम् ॥ १२ ॥

मानससरोवरके प्लावित करनेपर पर्वतराज रम्य पर्वतके शिखर देश और वहांसे दक्षिणके समस्त पर्वतोंको अतिक्रम करके ॥९॥ और प्लावित कर महाद्रि हिमालयमें गिरी है, तहां वृषध्वज भगवान् शम्भुने गंगाको धारण किया और उन्होंने किसी प्रकार भी उनको नहीं छोडा ॥ १०॥ अनन्तर जब महाराज भगीरथने उपवास और स्तुति आदिसे उसकी आराधना करी, तब उन्होंने गंगाको छोडा और गंगा देवीने श्रीमहादेवजीके हाथसे छूटतेही सप्त भाग होकर दक्षिण समुद्रमें प्रवेश कियाहै ॥ ११ ॥ तिनमें महानदीके तीन भाग पूर्वकी ओर प्लावित करके समुद्रमें प्रविष्ट हुई है और एक धारा भगीरथके रथके

पीछे पीछे जाकर दक्षिणसमुद्रमें मिली है ॥ १२ ॥ सुमेरु पर्वतके पश्चिममें विपुल पाद होकर गंगाकी जो धारा निकली है उस महानदीका नाम सुचक्षु है. वह वैभ्राज पर्वतमें वैभ्राज वनको पवित्र करके ॥ १३ ॥ शीतोद सरोवरको प्लावित करती है, और वहांसे क्रमानुसार संपूर्ण पर्वतोंके शिखरपर होकर सुचक्षु पर्वतपर होती हुई त्रिशिखर पर्वतमें गई है ॥ १४ ॥ फिर केतुमालवर्षमें प्रविष्ट होकर दक्षिण समुद्रमें गईहै ॥ १५ ॥ इसके पीछे यह महादिव्य गंगा नदी उत्तर दिशामें जाकर फिर ऋषभादिक उत्तर पर्वतोंमें गई है। यह चौथी धार सुपार्श्व और मेरु पर्वतपर होकर सविता वनमें पहुँची, वहां उसका नाम भद्रसोमा विख्यात हुआ वह भद्रसोमा गंगा सवितृवनको ॥१६॥ पवित्र कर महाभद्र सरोवरमें गई है, अनन्तर वह महानदी शंखकूट पर्वत ॥१७॥

तथैव पश्चिमे पादे विपुले सा महानदी ॥ सुचक्षुरिति विख्याता वैभ्राजं सा वनं ययौ ॥१३॥ शीतोदं च सरस्तस्मात्प्लावयन्ती महानदी ॥ तस्मात्क्रमेण चाद्रीणां शिखरेषु निपत्य सा ॥ सुचक्षुः पर्वतं प्राप्ता ततश्च त्रिशिखं गता ॥ १४ ॥ केतुमालं समासाद्य प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ॥१५॥ (गत्वोत्तरां दिशं गंगा दिव्या सा च महानदी ॥ तस्माच्च ऋषभादींश्च क्रमादुत्तरजान्नगान् ॥) सुपार्श्वं तु तथैवाद्रिं मेरुपादं हि सा गता ॥ भद्रसोमेति विख्याता सा ययौ सवितुर्वनम् ॥१६॥ तत्पावयन्ती संप्राप्ता महाभद्रं सरोवरम् ॥ ततश्च शङ्खकूटं सा प्रयाता वै महानदी ॥१७॥ तस्माच्च वृषभादीन्सा क्रमात्प्राप्य शिलोच्चयान् ॥ महार्णवमनुप्राप्ता प्लावयित्वोत्तरान्कुरून् ॥१८॥ एवमेषा मया गङ्गा कथिता ते द्विजर्षभ ॥ जम्बूद्वीपनिवेशश्च वर्षाणि च यथातथम् ॥१९॥ वसन्ति तेषु सर्वेषु प्रजाः किंपुरुषादिषु ॥ सुखप्राया निरातङ्का न्यूनतोत्कर्षवर्जिताः ॥ २० ॥ नवस्वपि च वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः ॥ एकैकस्मिंस्तथा देशे नद्यश्चाद्रिविनिःसृताः ॥ २१ ॥

और वहांसे वृषभादि पर्वतोंमें जाकर समस्त उत्तर कुरुदेशको पवित्र करती हुई महासागरके संग मिलित हुई है ॥१८॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मैंने तुमसे यह गंगाजीका विषय वर्णन किया। जम्बूद्वीपके निवेशमें जो ॥१९॥ किंपुरुषादि समस्त वर्ष वर्णित हुए हैं, उनमें यथावत् जो सब प्राणी वास करते हैं, वह प्रायः सुखी, निरातङ्क एवं न्यूनता और अधिकता रहित हैं ॥ २० ॥ जो नव वर्ष कहे गये हैं उनमेंभी सात सात कुलाचल हैं और प्रत्येक देशमेंही पर्वत प्रवाहित समस्त नदियें विद्यमान हैं ॥ २१ ॥

हे द्विजोत्तम ! किम्पुरुषादि जो आठ वर्ष हैं उनमें जो जल है वह केवल मात्र उद्भिद् है क्योंकि इस भारतवर्षमेंही मेघका जल होता है ॥ २२ ॥ और यह जो आठ वर्ष हैं वहां वार्क्षी स्वाभाविकी देश्या तोयोत्था मानसी और कर्मजा, यह छः प्रकार मात्र मनकी सिद्धि है ॥ २३ ॥ अभिलाषा प्रदान करनेवाले वृक्षसे जो सिद्धि उत्पन्न होती है उसका नाम वार्क्षी है। स्वभावोत्पन्न सिद्धिका नाम स्वाभाविकी है, देशजात सिद्धिका नाम देश्या ॥ २४ ॥ और जलकी सूक्ष्मतावशतः जो सिद्धि होती है वह तोयोत्था सिद्धि है, सिद्धिके नामसे मानसी सिद्धि ध्यानद्वारा संपादित होती है और उपासनादि कार्यद्वारा जो सिद्धि लाभ होती है, वह कर्मजा विख्यात है ॥२५॥ हे द्विजोत्तम ! इन समस्त वर्षमें युगभेद आधि व्याधि और पुण्य वा पापका समारम्भ कुछ नहीं है ॥२६॥

यानि किंपुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तम ॥ तेषूद्भिज्जानि तोयानि नैवं वार्यत्र भारते ॥ २२ ॥ वार्क्षी स्वाभाविकी देश्या तोयोत्था मानसी तथा ॥ कर्मजा च नृणां सिद्धिर्वर्षेष्वेतेषु चाष्टसु ॥ २३ ॥ कामप्रदेभ्यो वृक्षेभ्यो वार्क्षी सिद्धिः स्वभावजा ॥ स्वाभाविकी समाख्याता तृप्तिर्देश्या च दैशिकी ॥ २४ ॥ अपां सौक्ष्म्याच्च तोयोत्था ध्यानोपेताच्च मानसी ॥ उपासनादिकार्यात्तु कर्मजा साप्युदाहृता ॥२५॥ न चैतेषु युगावस्था नाधयो व्याधयो न च ॥ पुण्यापुण्यसमारम्भा नैव तेषु द्विजोत्तम ॥ २६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे गंगावतरणवर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ भगवन्कथितं त्वेतज्जम्बूद्वीपं समासतः ॥ यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म नान्यत्र पुण्यदम् ॥ १ ॥ पापाय वा महाभाग वर्जयित्वा तु भारतम् ॥ इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते ॥ २ ॥ न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ॥ तस्माद्विस्तरशो ब्रह्मन्ममैतद्भारतं वद ॥ ३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां गंगावतरणवर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! आपने इस जम्बूद्वीपका विषय संक्षेपसे वर्णन किया। जो हो हे महाभाग ! आपने कहा कि भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य किसी स्थानमेंही कोई कर्म ॥ १ ॥ पाप वा पुण्यके निमित्त अनुष्ठित नहीं होता इसी स्थानसे स्वर्ग और मोक्ष मध्यदशा और अन्त्यदशा (मरणदशा) ॥ २ ॥ समस्त लाभ होती है अन्य किसी स्थानमें मनुष्योंके कर्मानुष्ठान नहीं होता। सुतरां हे ब्रह्मन् ! इस भारतवर्षकी कथा विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

हे द्विजशार्दूल ! इस भारतवर्षमें जितने भेद हैं उन सब भेदोंका जितना परिमाण है, जिस प्रकार स्थिति है, उसमें जितने देश और जितने पर्वत हैं, सब विस्तारसहित कहिये ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे विप्रोत्तम ! इस भारतवर्षके नव भेद हैं, वह समस्तही समुद्रद्वारा अन्तरित और परस्पर अगम्य हैं, उनका वर्णन करताहूं ॥ ५ ॥ इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व, वारुण ॥ ६ ॥ और नवम भारत है। यह भारत नामक जो नवम द्वीप है, यह सागरसे घिरा है एवं दक्षिण और उत्तरमें सहस्रयोजनपरिमित है ॥ ७ ॥ हे द्विज ! इसके पूर्वभागमें किरात, एवं पश्चिम सीमामें यवनगण वास

ये चास्य भेदा यावन्तो यथावत्स्थितिरेव च ॥ वर्षोऽयं द्विजशार्दूल ये चास्मिन्देशपर्वताः ॥ ४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निबोध मे ॥ समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्या परस्परम् ॥ ५ ॥ इन्द्रद्वीपः कशेरूमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ॥ नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वो वारुणस्तथा ॥ ६ ॥ अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥ योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम् ॥ ७ ॥ पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तःस्थिता द्विज ॥ ८ ॥ इज्याध्यायवणिज्याद्यैः कर्मभिः कृतपावनाः ॥ तेषां संव्यवहारश्च एभिः कर्मभिरिष्यते ॥ ९ ॥ स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्च पुण्यं पापं च वै तदा ॥ महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ॥ १० ॥ विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवात्र कुलाचलाः ॥ तेषां सहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगाः ॥ ११ ॥ विस्तारोच्छ्रयिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानवः ॥ कोलाहलः स वै भ्राजो मन्दरो दर्दुराचलः ॥ १२ ॥ वातस्वनो वैद्युतश्च मैनाकः स्वरसस्तथा ॥ तुंगप्रस्थो नागगिरी रोचनः पाण्डुराचलः ॥ १३ ॥

करतेहैं। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण इसके मध्यभागमें स्थित हैं ॥ ८ ॥ यह यज्ञ, अध्ययन और वाणिज्य इत्यादि अपने अपने कर्मसे पवित्र होतेहैं और सब कर्मोंके द्वारा उनका सम्यक् प्रकार व्यवहार ॥ ९ ॥ स्वर्गलाभ, मोक्षप्राप्ति और पुण्य पापादि समस्तही उपस्थित होते हैं। महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्ष ॥ १० ॥ विन्ध्य और पारियात्र नामक सात कुलपर्वत इसमें वर्तमान हैं। इन सब कुलाचलोंके समीपवर्त्ती सहस्र सहस्र पर्वत हैं ॥ ११ ॥ तिनमें कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दर्दुर ॥ १२ ॥ वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, रोचन, पाण्डुर ॥ १३ ॥

पुष्प, दुर्ज्जयन्त, रैवतक, अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्त, कूटशैल, कृतस्मर ॥ १४ ॥ श्रीपर्वत और चकोरपर्वत यह अत्यन्त ऊंचे, मनोहर, विस्तीर्ण और विपुल हैं। इनमें औरभी शत शत जनपद हैं। इन सब पर्वतोंके द्वारा मिलित समस्त जनपद भागानुसार म्लेच्छ और आर्य नामसे विख्यात हुए हैं ॥ १५ ॥ उन जनपदोंमें वास करनेवाले मनुष्य जिन सब श्रेष्ठ नदियोंका जलपान करतेहैं, अब उनके नाम कहताहूं भलीभांति अवगत होओ। गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा ॥ १६ ॥ यमुना, शतद्रु, वितस्ता, इरावती, कुहू, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती ॥ १७ ॥ विपाशा, देविका, रंक्षु, निश्चीरा, गण्डकी

पुष्पो गिरिर्दुर्जयन्तो रैवतोऽर्बुद एव च ॥ ऋष्यमूकः सगोमन्तः कूटशैलः कृतस्मरः ॥१४॥ श्रीपर्वतश्चकोरश्च शतशोऽन्ये च पर्वताः ॥ तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाश्चार्याश्च भागशः ॥ १५ ॥ तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठा यास्ताः सम्यङ् निबोध मे ॥ गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथाऽपरा ॥१६॥ यमुना च शतद्रुश्च वितस्तेरावती कुहूः ॥ गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ॥१७॥ विपाशा देविका रंक्षुर्निश्चीरा गण्डकी तथा ॥ कौशिकी चापगा विप्र हिमवत्पादनिःसृताः ॥ १८ ॥ वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च ॥ वेणा सानन्दना चैव सदानीरा मही तथा ॥ १९ ॥ पारा चर्मण्वती नूपी विदिशा वेत्रवत्यपि ॥ क्षिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ॥ २० ॥ शोणो महानदश्चैव नर्मदा सुरथाद्रिजा ॥ मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथापरा ॥२१॥ चित्रोत्पला सतमसा करमोदा पिशाचिका ॥ तथान्या पिप्पलश्रोणिर्विपाशा वञ्जुला नदी ॥ २२ ॥

और कौशिकी। हे विप्र ! यह सब नदियें हिमालयके प्रत्यन्त सब पर्वतोंसे निकली हैं ॥ १८ ॥ और वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, वेणा, सानन्दना, सदानीरा, मही ॥ १९ ॥ पारा, चर्मण्वती, नूपी, विदिशा, वेत्रवती, क्षिप्रा और अवन्ती, यह सब नदियें पारियात्र पर्वतसे निकली हैं ॥ २० ॥ महानद शोण और नर्मदा सुरथाद्रिसे उत्पन्न हुई हैं। मन्दाकिनी और दशार्णानदी चित्रकूटपर्वतसे निकली हैं ॥२१॥ चित्रोत्पला, तमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्पलिश्रोणि, विपाशा, वंजुला ॥ २२ ॥

सुमेरुजा, शुक्तिमती, सकुली, त्रिदिवा और आक्रमु यह वेगवाहिनी सब नदियें स्कन्दपाद वा ऋक्ष पर्वतके उन्नतस्थानोंसे निकली हैं ॥ २३ ॥ क्षिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेण्या, वैतरणी, सिनीवाली, कुमुद्वती ॥ २४ ॥ करतोया, महागौरी, दुर्गा और अन्तःशिवा यह पुण्यजलवाली, शुभप्रद समस्त नदियें विन्ध्यपादसे निकली हैं ॥ २५ ॥ गोदावरी, भीमरथा, कृष्णा, वेण्या, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या और महानदी कावेरी ॥२६॥ यह भी विन्ध्यपर्वतसे निकली हैं । और कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा और उत्पलावती नदी मलयसे उत्पन्न हुई हैं ॥२७॥ पितृकुल्या, सोमकुल्या, ऋषिकुल्या

सुमेरुजा शुक्तिमती सकुली त्रिदिवाक्रमुः ॥ ऋक्षपादप्रसूता वै तथान्या वेगवाहिनी ॥ २३ ॥ क्षिप्रा पयोष्णी निर्विन्ध्या तापी च निषधावती ॥ वेण्या वैतरणी चैव सिनीवाली कुमुद्वती ॥ २४ ॥ करतोया महागौरी दुर्गा चान्तःशिवा तथा ॥ विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥ २५ ॥ गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेण्या तथापरा ॥ तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेर्यथापगा ॥ २६ ॥ सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरिदुत्तमाः ॥ कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा सूत्पलावती ॥ २७ ॥ मलयाद्रिसमुद्भूता नद्यः शीतजलास्त्विमाः ॥ पितृसोमर्षिकुल्या च इक्षुका त्रिदिवा च या ॥ २८ ॥ लांगूलिनी वंशकरा महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ॥ ऋषिकुल्या कुमारी च मंदगा मन्दवाहिनी ॥२९॥ कुशा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ॥ सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्वा गङ्गाः समुद्रगाः ॥३०॥ विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वपापहराः स्मृताः ॥ अन्याः सहस्रशश्चोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तम ॥ ३१ ॥

इक्षुका और त्रिदिवा यह शीतलजलवाली नदियें मलयाद्रिसे उत्पन्न हुई हैं ॥ २८ ॥ लांगूलिनी और वंशकरा नामक दो नदी महेन्द्र पर्वतसे उत्पन्न हुई हैं । ऋषिकुल्या, कुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी ॥ २९ ॥ कुशा और पलाशिनी, यह सब नदियें शुक्तिमान् पर्वतसे निकली हैं । हे द्विजवर! यह जो सब नदियोंके नाम कहे, यह सबही अत्यन्त पुण्यप्रद और अधिक जलवाली हैं, इनमें कितनीही गंगा और कितनीही समुद्रमें गिरी हैं ॥ ३०॥ हे द्विजोत्तम! यह सबही विश्व संसारकी मातास्वरूप और समस्तही पापोंकी हरनेवाली हैं। इनके अतिरिक्त और भी सहस्र सहस्र छोटी नदियें हैं ॥ ३१ ॥

तिनमें कोई वर्षाके समय बहती हैं और किसीमें सदा जल रहता है । मत्स्य, अश्वकूट, कुल्य, कुन्तल, काशी, कोशल ॥ ३२ ॥ अर्बुद, कलिंग, मलक और वृक, यह संपूर्ण जनपद (देश) प्रायः मध्यदेशके कहे गये हैं ॥ ३३ ॥ सह्यपर्वतकी उत्तरदिशाके जिस स्थानमें गोदावरी नदी बहती है, संपूर्ण पृथ्वीमें वही स्थान अत्यन्त मनोरम है ॥ ३४ ॥ वहां महात्मा भार्गवकी गोवर्द्धननामक मनोहर नगरी है और बाह्लीक, वाटधान, आभीर और कालतोयक ॥ ३५ ॥ यह अपरान्तदेश है । शूद्र, पह्लव, चर्मखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक ॥ ३६ ॥ शतद्रुज, कलिंग, पारद, हारभूषिक, माठर,

प्रावृट्कालवहाः काश्चित्सर्वकालवहाश्च याः ॥ मत्स्याश्वकूटाः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः ॥ ३२ ॥ अर्बुदाश्चार्ककलिंगाश्च मलकाश्च वृकैः सह ॥ मध्यदेश्या जनपदा प्रायशोऽमी प्रकीर्त्तिताः ॥ ३३ ॥ सह्यस्य चोत्तरे यास्तु यत्र गोदावरी नदी ॥ पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥ ३४ ॥ गोवर्द्धनपुरं रम्यं भार्गवस्य महात्मनः ॥ बाह्लीका वाटधानाश्च आभीरा कालतोयकाः ॥ ३५ ॥ अपरान्ताश्च शूद्राश्च पह्लवाश्चर्मखण्डिकाः ॥ गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ॥ ३६ ॥ शतद्रुजाः कलिङ्गाश्च पारदा हारभूषिकाः ॥ माठरा बहुभद्राश्च कैकेया दशमालिकाः ॥ ३७ ॥ क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ॥ काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बरा अंगलौकिकाः ॥ ३८ ॥ चीनाश्चैव तुषाराश्च पह्लवा बाह्यतोदराः ॥ आत्रेयाश्च भरद्वाजाः पुष्कलाश्च कशेरुकाः ॥ ३९ ॥ लम्पाकाः शूलकाराश्च चुलिका जागुडैः सह ॥ औपधाश्चानिमद्राश्च किरातानां च जातयः ॥ ४० ॥ तामसा हंसमार्गाश्च काश्मीरास्तु गणास्तथा ॥ शूलिकाः कुहकाश्चैव च ऊर्णा दार्वास्तथैव च ॥ ४१ ॥

बहुभद्र, केकय और दशमालिक ॥ ३७ ॥ इत्यादि सब देशोंमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकुल वास करते हैं, काम्बोज, दरद, बर्बर, अंगलौकिक (हर्षवर्द्धन) ॥ ३८ ॥ चीन, तुषार और बह्लव, इन प्रदेशोत्पन्न मनुष्यगण बहिर्देशज कहलाते हैं । आत्रेय, भारद्वाज, पुष्कल, कशेरुक ॥ ३९ ॥ लम्पाक, शूलकार, चुलिक, जागुड, औपध और अनिमद्र इत्यादि जातिके मनुष्य किरातजातिका भेदविशेष है ॥ ४० ॥ और तामस, हंसमार्ग, काश्मीर शूलिक, कुहक, ऊर्ण और दार्व ॥ ४१ ॥

इत्यादि समस्त देश उत्तरमें स्थित हैं। इनके पीछे पूर्वदेश सुनो। अभ्भारक, मुद्गरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि ॥ ४२ ॥ प्लवङ्ग, रङ्गेय, माल, दामल, वर्त्तिक, उत्तरब्रह्म, प्रविजय, भार्गव, गेयमल्लक ॥४३॥ प्राग्ज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगध और गोमेद इत्यादि समस्त जनपद पूर्वदिशामें अवस्थित हैं ॥ ४४॥ अनन्तर दक्षिणपथस्थित समस्त जनपदोंका वर्णन करताहूं। पाण्डच, केरल, चोल, कुन्त्य ॥४५॥ शैलूष, मूषिक, कुमार, वानवासक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिंग ॥ ४६ ॥ आभीर, वैशिक्य, आटव्य जहांपर शबरलोग वास करते हैं। पुलिन्द, विन्ध्य, मालेय, वैदर्भ, दण्डक ॥ ४७ ॥

एते दश ह्युदीच्यास्तु प्राच्यान्देशान्निबोध मे ॥ अभ्रारका मुद्गरका अन्तर्गिरिबहिर्गिराः ॥४२॥ तथा प्लवङ्गा रङ्गेया मालदामलवर्त्तिकाः ॥ ब्राह्मोत्तराः प्रविजया भार्गवा गेयमल्लकाः ॥ ४३ ॥ प्राग्ज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः ॥ मल्ला मगधगोमेदा प्राच्या जनपदाः स्मृताः ॥ ४४ ॥ अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः ॥ पांड्याश्च केरलाश्चैव चोलाः कुंत्यास्तथैव च ॥ ४५ ॥ शैलूषा मूषिकाश्चैव कुमारा वानवासकाः ॥ महाराष्ट्रा माहिषिकाः कलिङ्गाश्चैव सर्वशः ॥ ४६ ॥ आभीराः सह वैशिक्या आटव्याः शबराश्च ये ॥ पुलिन्दा विन्ध्यमालेया वैदर्भा दण्डकैः सह ॥ ४७ ॥ पौरिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धनाः ॥ नैषिकाः कुन्तला आन्ध्रा उद्भिदा वनदारकाः ॥ ४८ ॥ दाक्षिणात्यास्त्वमी देशा अपरांस्तान्निबोध मे ॥ सूर्यारकाः कालिबला दुर्गाश्चामी कटैः सह ॥ ४९ ॥ पुलिन्दाश्च सुमिनाश्च रूपपाः स्वापदैः सह ॥ तथा कुरुमिनश्चैव सर्वे चैव कठाक्षराः ॥५०॥ (कारस्करा लोहजंघा वाजेया राजभद्रकाः) ॥ तोसलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरा विदिशस्तथा ॥ (तुषारास्तुंबुराश्चैव सर्वे चैव करस्कराः ॥) नासिक्यावाश्च ये चान्ये ये चैवोत्तरनर्मदाः ॥ ५१ ॥

पौरिक, मौलिक, अश्मक, भोगवर्द्धन, नैषिक, कुन्तल, आंध्र, उद्भिद और वनदारक ॥ ४८ ॥ इत्यादि भोगवर्द्धन समस्त देश दाक्षिणात्य कहे गये हैं, अब पश्चिमदेशकी कथा कहताहूं सुनो। सूर्यारक, कालिबल, दुर्ग, कट, ॥ ४९ ॥ पुलिन्द, सुमीन, रूपप, स्वापद और कुरुमिन इत्यादि देशको कठाक्षर ॥ ५० ॥ (कारस्कर, लोहजंघ, वाजेय, राजभद्र) तोशल और कोशल, त्रैपुर, विदिश (तुषार और तुंबुर यह सब करस्कार है) वा नासिक्याव कहते हैं। और उत्तरनर्मद ॥ ५१ ॥

भीरुकच्छ, माहेय, सारस्वत, काश्मीर, सुराष्ट्र, आवन्त्य और अर्बुद इत्यादि समस्त देश अपरान्त अर्थात् पाश्चात्य कहकर विख्यात हैं, अब विन्ध्यवासी सब देशोंका वर्णन सुनो सरज, करुष, केरल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज्य, किष्किन्धक, तुम्बुरु, तुम्बुल, पटु, नैषध ॥५२॥५३॥५४॥ अन्नज, तुष्टिकार, वीरहोत्र और अवान्ति, यह संपूर्ण जनपद विन्ध्यपर्वतकी पीठमें स्थित हैं ॥५५॥ अब जो देश पर्वताश्रयी अर्थात् पर्वतका आश्रय लेनेवाले हैं, इनके पीछे उन्हींका वर्णन किया जाता है। यथा नीहार, हंसमार्ग, कुरु, गुर्गण, खस ॥५६॥ कुन्त, प्रावरण, ऊर्ण, दार्व, कुत्रक, त्रिगर्त्त, गालव, किरात और तामस इन सब देशोंको पार्वतीय देश कहतेहैं ॥५७॥ और इसी भारतवर्षमें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर इत्यादि चारों युगोंकी विधि विद्यमान रहतीहै और चार संस्थान

भीरुकच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतैरपि ॥ काश्मीराश्च सुराष्ट्राश्च आवन्त्याश्चार्बुदैः सह ॥ ५२ ॥ इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणु विन्ध्यनिवासिनः ॥ सरजाश्च करूषाश्च केरलाश्चोत्कलैः सह ॥५३॥ उत्तमर्णाश्च दशार्णाश्च भोज्याः किष्किन्धकैः सह ॥ तुम्बरास्तुम्बुलाश्चैव पटवी नैषधैः सह ॥५४॥ अन्नजास्तुष्टिकारश्च वीरहोत्रा ह्यवन्तयः ॥ एते जनपदाः सर्वे विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ॥५५॥ अतो देशान्प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये ॥ नीहारा हंसमार्गाश्च कुरवो गुर्गणाः खसाः ॥५६॥ कुन्तप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दार्वाः सकूत्रकाः ॥ त्रिगर्त्ता गालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ॥ ५७ ॥ कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्युगकृतो विधिः ॥ एतत्तु भारतं वर्षं चतुःसंस्थानसंस्थितम् ॥ ५८ ॥ दक्षिणापरतो ह्यस्य पूर्वेण च महोदधिः ॥ हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथा गुणः ॥ ५९ ॥ तदेतद्भारतं वर्षं सर्वबीजं द्विजोत्तम ॥ ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मर्त्यतां तथा ॥ ६० ॥ मृगपश्वप्सरोयोनिस्तद्वत्सर्वे सरीसृपाः ॥ स्थावराणां च सर्वेषामितो ब्रह्मञ्शुभाशुभैः ॥ ६१ ॥

करके इस भारत वर्षकी स्थिति है ॥ ५८ ॥ इसको पूर्वदक्षिण और पश्चिम दिशामें महासागर धनुषाकारसे घेर रहा है और उत्तर दिशामें हिमालय पर्वत धनुषके गुणकी समान विद्यमान रहता है ॥ ५९ ॥ हे द्विजवर ! यह वही भारतवर्ष सबका बीजस्वरूप है । इसमें ब्रह्मत्व, इन्द्रत्व, देवत्व और मनुष्यत्व सभी वर्त्तमान हैं ॥ ६० ॥ यही मृग, पशु आदि और अप्सराओंको उत्पन्न करनेवाला, और इसमेंही सरीसृप (विच्छू) आदि उत्पन्न होतेहैं । हे ब्रह्मन् ! स्थावर जंगमादि यावतीय पदार्थ, समस्तही इसमें शुभाशुभ कर्मके फलसे उत्पन्न होतेहैं ॥ ६१ ॥

हे ब्रह्मन् ! हे विप्रर्षे ! समस्त लोकोंमें यह भारतवर्षही एकमात्र कर्मभूमि है । देवतागणभी सदा अभिलाषा करते हैं ॥ ६२ ॥ कि यदि देवत्वसे कभी भ्रष्ट हो तो पृथ्वीके मध्य इस भारतवर्षमें हो मनुष्ययोनि प्राप्त करें, क्योंकि मनुष्यगण जिस कार्यके करनेमें समर्थ होते हैं, देवता वा असुर वह कार्य नहीं करसकते ॥ ६३ ॥ देखो, यह कर्मरूपी बेडियोंसे ग्रसित मनुष्यगण लेशमात्र सुखके द्वारा मोहित होकर अपने कर्म विख्यातिके अभिलाषी होकर कुछ कर्म नहीं करते हैं ॥ ६४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां नद्यादिवर्णनो नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ कौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! आपने मुझसे भारतवर्षका विषय सम्यक् प्रकार वर्णन किया । और उस भारतमें जो सब नदी, पर्वत, देश और उसमें जो वास करतेहैं, वह सब कहा ॥ १ ॥ किन्तु आपने

प्रयांति कर्मभूर्ब्रह्मन्नान्यलोकेषु विद्यते ॥ देवानामपि विप्रर्षे सदा एष मनोरथः ॥ ६२ ॥ अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात्प्रच्युताः क्षितौ ॥ मनुष्यः कुरुते तत्तु यन्न शक्यं सुरासुरैः ॥ ६३ ॥ तत्कर्मनिगडग्रस्तैः स्वकर्मख्यापनोत्सुकैः ॥ न किंचित्क्रियते कर्म सुखलेशोपबृंहितैः ॥ ६४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नद्यादिवर्णनो नाम चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ कौष्टुकिरुवाच ॥ भगवन्कथितं सम्यग्भवता भारतं मम ॥ सरितः पर्वता देशा ये च तत्र वसन्ति वै ॥ १ ॥ किन्तु कूर्मस्त्वया पूर्वं भारते भगवान्हरिः ॥ कथितस्तस्य संस्थानं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥ २ ॥ कथं स संस्थितो देवः कूर्मरूपी जनार्दनः ॥ शुभाशुभं मनुष्याणां व्यज्यते च ततः कथम् ॥ यथा मुखं यथा पादास्तस्य तद्ब्रूह्यशेषतः ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ प्राङ्मुखो भगवान्देवः कूर्मरूपी व्यवस्थितः ॥ आक्रम्य भारतं वर्षं नवभेदमिदं द्विज ॥ ४ ॥

पहिले कहाहै कि जिस भारतवर्षमें भगवान् हरि कूर्मरूपसे वास करतेहैं, उनकी स्थिति किस प्रकार है वह इस समय भली भाँति सुननेकी इच्छा है ॥ २ ॥ उन देवदेव जनार्दनने किस प्रकार कूर्मरूपमें वास किया था ? और उनके द्वारा मनुष्योंका शुभाशुभ किस प्रकार प्रकाशित हुआथा हे भगवन् ! उनका मुख और चरण कैसे हैं, यह सब कथा भलीभांतिसे वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे ब्रह्मन् ! वही देवभगवान् कूर्मरूप धारणपूर्वक इस नवधा भिन्न अर्थात् नव खण्डोंमें विभक्त भारतवर्षको आक्रमण करते हुए पूर्वमुखसे वास करते हैं ॥ ४ ॥

नक्षत्र और संपूर्ण विषयभी नवभागोंमें विभक्त होकर उनके चारों ओर वास करतेहैं । हे द्विजवर ! यह विवरण भलीभांतिसे सुनो ॥ ५ ॥ वेदि, मद्र, आरि-माण्डव्य, शाल्व, नीप, शक, उज्जिहान, घोषसंख्य, खस ॥ ६ ॥ सारस्वत, मत्स्य, शूरसेन, माथुर, धर्मारण्य, ज्योतिषिक, गौरग्रीव, गुडाश्मक ॥ ७ ॥ वैदेहक, पांचाल, संकेत, कंक, मारुत, कालकोटि, पाखण्ड, पारियात्रनिवासीगण ॥ ८ ॥ कापिंजल, कुरुबाह्य, उदुम्बर और गजाह्व यह संपूर्णदेश कूर्मके मध्यस्थलमें वास करते हैं ॥ ९ ॥ कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिर, यह तीनों नक्षत्र उन्हीं मध्यवासी मनुष्योंके शुभाशुभकी सूचना देते रहते हैं ॥१०॥

नवधा संस्थिते न्यस्य नक्षत्राणि समन्ततः ॥ विषयाश्च द्विजश्रेष्ठ ये सम्यक्तान्निबोध मे ॥ ५ ॥ वेदिमद्रारिमाण्डव्याः शाल्वा नीपास्तथा शकाः ॥ उज्जिहानास्तथा वत्स घोषसंख्यास्तथा खशाः ॥ ६ ॥ मध्ये सारस्वता मत्स्या शूरसेनाः समाथुराः ॥ धर्मारण्या ज्योतिषिका गौरग्रीवा गुडाश्मकाः ॥ ७ ॥ वैदेहकाः सपांचालाः संकेताः कङ्कमारुताः ॥ कालकोटिसपाषण्डाः पारियात्रनिवासिनः ॥ ८ ॥ कापिंजलाः कुरोर्बाह्यास्तथैवोदुम्बरा जनाः ॥ गजाह्वयाश्च कूर्मस्य जना मध्यनिवासिनः ॥ ९ ॥ कृत्तिकारोहिणीसौम्या एतेषां मध्यवासिनाम् ॥ नक्षत्रत्रितयं विप्र शुभाशुभविपाकदम् ॥ १० ॥ वृषध्वजोऽञ्जनश्चैव जम्ब्वाख्यो मानवाचलः ॥ शूर्पकर्णो व्याघ्रमुखो सुर्वरः कर्वटाशनः ॥ ११ ॥ तथा चन्द्रेश्वराश्चैव खशाश्च मगधास्तथा ॥ शिबयो मैथिलाः शुभ्रास्तथा वदनदन्तुराः ॥१२ ॥ प्राग्ज्योतिषा सलौहित्याः सामुद्राः पुरुषादकाः ॥ पूर्णोत्कटो भद्रगौरस्तथोदयगिरिर्द्विज ॥ १३ ॥ काशयो मेखला मुष्टास्ताम्रलिप्तैक-कपादपाः ॥ वर्द्धमाना कोसलाश्च मुखे कूर्मस्य संस्थिताः ॥ १४ ॥

वृषध्वज, अंजन, जम्बुनामक, मानवाचल, शूर्पकर्ण, व्याघ्रमुख, सुर्वर, कर्वटाशन ॥ ११ ॥ चन्द्रेश्वर, खश, मगध, शिनि, मैथिल, शुभ्र और वदन-दन्तुर ॥ १२ ॥ मसरत पर्वत प्राग्ज्योतिष, लौहित्य, सामुद्रक, पुरुषादक, पूर्णोत्कट, भद्रगौर, उदयाचल ॥ १३ ॥ काशय, मेखल, मुष्ट, ताम्रलिप्त, एकपादप, वर्धमान और कोशल, यह सब कूर्मरूपी भगवान्‌के मुखमें स्थित हैं ॥ १४ ॥

आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य, यह तीनों नक्षत्रभी मुखमेंही अवस्थित हैं। उनके दक्षिणपदमें जो सब देश हैं. हे क्रौष्टुके! उनका वर्णन करताहूं सुनो ॥ १५॥ कलिंग, वंग, जठर, कोशल, मूषिक, चेदि, ऊर्ध्वकर्ण और मत्स्य, आंध्र इत्यादि जो सब देश विन्ध्य पर्वतके निकट अवस्थित हैं ॥ १६॥ और विदर्भ, नारिकेल, धर्मद्वीप, ऐलिक, व्याघ्रग्रीव, महाग्रीव, त्रैपुर, श्मश्रुधारी ॥ १७॥ कैष्किन्ध, हैमकूट, निषध, कटकस्थल, दशार्ण, हारिक, नग्न, निषध, काकुलालक, देश ॥ १८॥ और पर्ण, शबर इत्यादि समस्त देश तथा आश्लेषा, मघा और पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र ॥ १९ ॥ उनके पूर्व दक्षिण पादमें वास करते हैं।

रौद्रं पुनर्वसुः पुष्यो नक्षत्रत्रितयं मुखे ॥ पादे तद्दक्षिणे देशाः क्रौष्टुके वदतः शृणु ॥ १५ ॥ कालिङ्गवङ्गजठराः कोशला मूषिकास्तथा ॥ चेदयश्चोर्द्धकर्णाश्च मत्स्यांध्रा विन्ध्यवासिनः ॥ १६ ॥ विदर्भा नारिकेलाश्च धर्मद्वीपास्तथैलिकाः ॥ व्याघ्रग्रीवा महाग्रीवास्त्रैपुराः श्मश्रुधारिणः ॥ १७ ॥ कैष्किन्ध्या हैमकूटाश्च निषधाः कटकस्थलाः ॥ दशार्णा हारिका नग्ना निषधाः काकुलालकाः ॥ १८ ॥ तथैव पर्णशबराः पादे वै पूर्वदक्षिणे ॥ आश्लेषर्क्षं तथा पैत्र्यं फाल्गुन्यः प्रथमास्तथा ॥ १९ ॥ नक्षत्रत्रितयं पादमाश्रितं पूर्वदक्षिणम् ॥ लंकाकालाजिनाश्चैव शैलिका निकटास्तथा ॥२०॥ महेन्द्रमलयाद्रौ च दर्दुरे च वसन्ति ये ॥ कर्कोटकवने ये च भृगुकच्छाः सकोङ्कणाः ॥२१॥ सर्वाश्चैव तथाभीरा वेण्यास्तीरनिवासिनः ॥ अवन्तयो दासपुरास्तथैवाकारिणो जनाः ॥२२॥ महाराष्ट्राः सकर्णाटा गोनर्दाश्चित्रकूटकाः ॥ चोलाः कौलगिराश्चैव क्रौंचद्वीपजटाधराः ॥ २३ ॥ कावेरीऋष्यमूकस्था नासिक्याश्चैव ये जनाः ॥ शंखशुक्त्यादिवैदूर्यशैलप्रान्तचराश्च ये ॥ २४ ॥ तथा वारिचराः कोलाश्चर्मपट्टनिवासिनः ॥ गणबाह्याः पराः कृष्णाद्वीपवासानिवासिनः ॥ २५ ॥

लंका, कालाजिन, शैलिक, निकट ॥ २० ॥ महेन्द्र, मलय और दर्दुर, पर्वतस्थ समस्त जनपद, कर्कटकवनस्थित संपूर्ण देश, भृगुकच्छ, कोङ्कण ॥ २१॥ आभीर, वेण्या नदीके तीर स्थित, सब देश अवन्ति दाशपुर आकारी ॥ २२ ॥ महाराष्ट्र, कर्णाट, गोनर्द, चित्रकूट, चोल, कोलगिरि, कौञ्चद्वीप, जटाधर ॥ २३ ॥ कावेरी और ऋष्यमूकस्थित नासिक, संपूर्ण देश शंखशुक्ति इत्यादि वैदूर्य शैल और जो समीपवर्ती ॥ २४ ॥ वारिचर, कोल, चर्मपट्ट और गणबाह्य कृष्णाद्वीपनिवासी मनुष्य ॥ २५ ॥

सूर्याद्रि और कुमुदाद्रि इन दोनों पर्वतमें वसनेवाले मनुष्य और रौद्रशब्दवाले पिशिक, कर्मनायक, ॥ २६ ॥ दक्षिण, कौरुष, ऋषिक, तापसाश्रम, ऋषभ, सिंहल, काञ्चीनिवासी ॥ २७ ॥ त्रिलङ्ग, कुञ्जर और दरी कच्छस्थित मनुष्य तथा ताम्रपर्णी, यह सब कूर्मकी दक्षिण कुक्षिमें अवस्थित हैं ॥ २८ ॥ उत्तरा फाल्गुनी हस्त और चित्रा यह तीनों नक्षत्र कूर्मके दक्षिणकी विराजमान हैं बाह्यपाद ॥ २९ ॥ काम्बोज, पह्लव, वडवामुख, सिन्धु, सौवीर, आनर्त्त, वनितामुख ॥ ३० ॥ द्रावण, सार्गिग, शूद्र, कर्ण, प्राधेय, बर्बर, किरात, पारद, पाण्ड्य, पारशव,

सूर्याद्रौ कुमुदाद्रौ च ते वसन्ति तथा जनाः ॥ रौद्रस्वनाः सपिशिकास्तथा ये कर्मनायकाः ॥ २६ ॥ दक्षिणाः कौरुषा ये च ऋषिकास्तापसाश्रमाः ॥ ऋषभाः सिंहलाश्चैव तथा कांचीनिवासिनः ॥ २७ ॥ त्रिलङ्गाः कुञ्जरदरीकच्छवासाश्च ये जनाः ॥ ताम्रपर्णी तथा कुक्षिरिति कूर्मस्य दक्षिणः ॥ २८ ॥ फाल्गुन्यश्चोत्तराहस्ताश्चित्रा चर्क्षत्रयं द्विज ॥ कूर्मस्य दक्षिणे कुक्षौ बाह्यपादस्तथापरम् ॥ २९ ॥ काम्बोजाः पह्लवाश्चैव तथैव वडवामुखाः ॥ तथा च सिन्धुसौवीराः सानर्त्ता वनितामुखाः ॥ ३० ॥ द्रावणाः सार्गिगाः शूद्राः कर्णप्राधेयबर्बराः ॥ किराताः पारदाः पाण्ड्यास्तथा पारशवाः कलाः ॥ ३१ ॥ धूर्त्तकाः हैमगिरिकाः सिन्धुकालकवैरताः ॥ सौराष्ट्रा दरदाश्चैव द्राविडाश्च महार्णवाः ॥३२ ॥ एते जनपदाः पादे स्थिता वै दक्षिणेऽपरे ॥ स्वात्यो विशाखा मैत्रं च नक्षत्रत्रयमेव च ॥३३॥ मणिमेघक्षुराद्रिश्च खंजयोऽस्तगिरिस्तथा ॥ अपरान्तिका नोहयाश्च शान्तिका विप्रशस्तकाः ॥ ३४ ॥ कोंकणाः पंचनदका वमना ह्यवरास्तथा ॥ तारक्षुराः ह्यंगतकाः शर्कराः शाल्मवेश्मकाः ॥ ३५ ॥

कल ॥ ३१ ॥ धूर्तक, हैमागिरिक, सिन्धु, कालक, वैरत, सौराष्ट्र, दरद, द्राविड और महार्णव ॥ ३२॥ यह संपूर्ण जनपद कूर्मके दक्षिण पदमें वास करते हैं स्वाती, विशाखा और अनुराधा यह तीनों नक्षत्र इन सब देशोंके शुभाशुभकी सूचना देते हैं ॥ ३३ ॥ मणिमेघ, क्षुराद्रि, खंज, अस्तगिरि, अपरान्तिक, नोहय, शान्तिक, विप्रशस्तक, ॥ ३४ ॥ कोङ्कण, पञ्चनद, वमन, अवर, तारक्षुर, अंगतक, शर्कर, शाल्मवेश्मक ॥ ३५ ॥

गुरुस्वर, फाल्गुनक, वेणुमतीनिवासी, फल्गुलुक, गुरुह, चकल ॥ ३६॥ एक नेत्रवाले, वाजिसे केशवाले, दीर्घ गर्दनवाले, चुलिक और अश्वकेश, यह समस्त देशवासी कूर्मकी पूंछमें अवस्थित हैं ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढा, यह तीन नक्षत्रभी कूर्मकी पूंछमें वास करते हैं। माण्डव्य, चण्डखार, अश्व, कालनद ॥ ३८॥ कुशात्त, लडह, स्त्रीबाह्य, बालिक, नृसिंह, वेणुमतीनिवासी, बलावस्थ ॥ ३९ ॥ धर्मबद्ध, उलूक, उरुकर्मस्थित मनुष्य (तथा फल्गुलक, घोर, घुरल, हेमतारक, एकेक्षण, वाजिकोश और दीर्घपाद) यह सब देश भगवान् कूर्मके वामपदमें स्थित हैं ॥४०॥ उत्तराषाढा, श्रवण और धनिष्ठा यह

गुरुस्वराः फाल्गुनका वेणुमत्यां च ये जनाः ॥ तथा फल्गुलुका घोरा गुरुहाश्चकलास्तथा ॥ ३६ ॥ एकेक्षणा वाजिकेशा दीर्घग्रीवाः सचूलिकाः ॥ अश्वकेशास्तथा पुच्छे जनाः कूर्मस्य संस्थिताः ॥ ३७ ॥ ऐन्द्रं मूलं तथाषाढानक्षत्रत्रयमेव च ॥ माण्डव्याश्चंडखाराश्च अश्वकालनदास्तथा ॥३८॥ कुशात्ता लडहाश्चैव स्त्रीबाह्या बालिकास्तथा ॥ नृसिंहा वेणुमत्यां च बलावस्थास्तथापरे ॥ ३९ ॥ धर्मबद्धा-स्तथोलूका उरुकर्मस्थिता जनाः ॥ (तथा फल्गुलका घोरा घुरला हेमतारकाः ॥ एकेक्षणा वाजिकोशा दीर्घपादास्तथैव च ॥) वामे परे जनाः पादे स्थिताः कूर्मस्य भार्गुरे ॥४०॥ आषाढाश्रवणे चैव धनिष्ठा यत्र संस्थिता ॥ कैलासो हिमवांश्चैव धनुष्मान्वसुमांस्तथा ॥४१॥ क्रौंचाः कुरुबकाश्चैव क्षुद्रवीणाश्च ये जनाः॥ रसालयाः सकैकेया भोगप्रस्थाः सयामुनाः ॥ ४२ ॥ अन्तर्द्वीपास्त्रिगर्त्ताश्च अग्नीज्याः सार्द-ना जनाः ॥ तथैवाश्वमुखाः प्राप्ताश्चिबिडाः केशधारिणः ॥ ४३ ॥ दासेरका वाटधानाः शवधानास्तथैव च ॥ पुष्कलाधमकैरातास्तथा तक्षशिलाश्रयाः ॥ ४४ ॥ अम्बष्ठा मालवा मद्रा वेणुकाः सवदन्तिकाः ॥ पिङ्गला गानकलहा हूणाः कोहलकास्तथा ॥ ४५ ॥

तीनों नक्षत्र भी उसी स्थानमें स्थित हैं। कैलास, हिमालय, धनुष्मान्, वसुमान् ॥ ४१ ॥ क्रौञ्च, कुरुबक, क्षुद्रवीण, रसालय, कैकय, भोगप्रस्थ, यामुन ॥ ४२ ॥ अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त, अग्नीज्य, अर्दन, अश्वमुख, प्राप्त, चिबिड, केशधारी ॥ ४३ ॥ दासेरक, वाटधान, शवधान, पुष्कल, अधम, कैरात, तक्षशिल ॥ ४४ ॥ अम्बष्ठ, मालव, मद्र, वेणुक, वदन्तिक, पिंगल, गानकलह, हूण, कोहलक ॥ ४५ ॥

माण्डव्य, भूतियुवक्क, शातक्क, हेमतारक, यशोमत्य, गान्धार, स्वरस, गरराशि ॥ ४६ ॥ यौधेय, दासमेय, राजन्य, स्यामक और क्षेमधूर्त्त यह सब जनपद कूर्मरूपी भगवान्‌की वामकुक्षिमें वास करते हैं ॥ ४७ ॥ शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद यह तीन नक्षत्र वहांके शुभाशुभकी सूचना देते हैं। किन्नरराज्य, पशुपाल, कीचक ॥ ४८ ॥ काश्मीर, आभिसारजन, दरद, अंगण, कुलट, वनराष्ट्रक ॥ ४९ ॥ सैरिष्ठ, ब्रह्मपुरक, वनवाह्यक, किरात, कौशिक, नन्द, पह्लव, लोलन ॥ ५० ॥ दार्व, दामरक, कुरट, अन्नदारक, एकपाद, खश, घोष, स्वर्ग, भौम, अनवद्यक ॥ ५१ ॥ यवन, हिंग,

माण्डव्या भूतियुवकाः शातका हेमतारकाः ॥ यशोमत्याः सगान्धाराः स्वरसा गरराशयः ॥ ४६ ॥ यौधेया दासमेयाश्च राजन्याः स्यामकास्तथा ॥ क्षेमधूर्त्तांश्च कूर्मस्य वामकुक्षिमुपाश्रिताः ॥ ४७ ॥ वारुणं चात्र नक्षत्रं तद्वत्प्रोष्ठपदाद्वयम् ॥ येन किन्नरराज्यं च पशुपालं सकीचकम् ॥ ४८ ॥ काश्मीरकं तथा राष्ट्रमभिसारजनस्तथा ॥ दरदास्त्वंगणाश्चैव कुलटा वनराष्ट्रकाः ॥४९॥ सैरिष्ठा ब्रह्मपुरकास्तथैव वनबाह्यकाः ॥ किरातकौशिका नन्दा जनाः पह्लवलोलनाः ॥ ५० ॥ दार्वा दामरकाश्चैव कुरटाश्चान्नदारकाः ॥ एकपादाः खशा घोषाः स्वर्गभौमानवद्यकाः ॥ ५१ ॥ तथा सयवना हिंगाश्चीरप्रावरणाश्च ये ॥ त्रिनेत्राः पौरवाश्चैव गन्धर्वाश्च द्विजोत्तम ॥ ५२ ॥ पूर्वोत्तरं तु कूर्मस्य पादमेते समाश्रिताः ॥ रेवत्यश्चाश्विदैवत्यं याम्यं चर्क्षामिति त्रयम् ॥ ५३ ॥ तत्र पादे समाख्यातं पाकाय मुनिसत्तम ॥ देशेष्वेतेषु चैतानि नक्षत्राण्यपि वै द्विज ॥ ५४ ॥ एतत्पीडा अमी देशाः पीड्यन्ते ये क्रमोदिताः ॥ यान्ति चाभ्युदयं विप्र ग्रहैः सम्यगवस्थितैः ॥ ५५ ॥

चिरप्रावरण, त्रिनेत्र, पौरव और गंधर्व ॥ ५२ ॥ यह समस्त देश कूर्मके पूर्व उत्तरमें अवस्थित हैं। रेवती, आश्विनी और भरणी इन तीन नक्षत्रोंसे उक्त देशोंका शुभाशुभ जाना जाता है ॥ ५३ ॥ हे मुनिसत्तम ! हे द्विजोत्तम ! जिस प्रकार मैंने आपसे कथन किया, इतने देशोंमें इतनेही नक्षत्र, इतनेही मनुष्य और इतनेही पर्वत हैं ॥ ५४ ॥ हे विप्र ! उक्त देशोंमें क्रमानुसार इन्हीं नक्षत्रोंके बिगडनेसे मनुष्योंको पीडा उपस्थित होती है और वही ग्रह जब सम्यक् प्रकार श्रेष्ठ ग्रहके संग मिलित होते हैं तब पुरुषको सुख प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस नक्षत्रका जो अधिपति है. उसके बिगडनेसे उस देशमें पुरुषोंको दुःख अथवा भय उपस्थित होता है और उसीके श्रेष्ठ स्थानमें होनेसे मनुष्योंको शुभ होता है ॥ ५६ ॥ हे द्विजोत्तम ! प्रत्येक देशकी समान वहांके मनुष्योंको भी नक्षत्र वा ग्रहजनित भय अथवा शुभ होता है ॥ ५७ ॥ संपूर्ण मनुष्योंको समस्त देशोंमें अपने अपने नक्षत्रके बिगडनेसे अत्यन्त भय और दुःख उत्पन्न होता है ॥ ५८॥ तथा ग्रहोंके वक्र होनेपर जो भय उपस्थित होता है. उस ग्रहभयको मिटानेके लिये बुद्धिमान् ज्योतिषीगण मनुष्योंको जप और दान करनेका उपदेश देते हैं ॥ ५९ ॥ ग्रहके बिगडनेसे पुण्यात्मा पुरुषोंको भी द्रव्य, गोष्ठ, भृत्य, हित, पुत्र और स्त्री आदिके सहित पीडा होती है ॥ ६० ॥ अल्पपुण्य मनुष्योंको अपने देहमें पीडा होती है और

यस्यर्क्षस्य पतिर्यो वै ग्रहस्तद्भावतो भयम् ॥ तद्देशस्य मुनिश्रेष्ठ तदुत्कर्षे शुभागमः ॥ ५६ ॥ प्रत्येकं देशसामान्यं नक्षत्रग्रहसम्भवम् ॥ भयं लोकस्य भवति शोभनं वा द्विजोत्तम ॥ ५७ ॥ स्वर्क्षैरशोभनैर्जन्तोः सामान्यमिति भीतिदम् ॥ ग्रहैर्भवति पीडोत्थमल्पायासमशोभनम् ॥ ५८ ॥ तथैव शोभनः पाको दुःस्थितैश्च तथा ग्रहैः ॥ अल्पोपकाराय नृणां देशज्ञैरुदितो बुधैः ॥ ५९ ॥ द्रव्ये गोष्ठेऽथ भृत्येषु सुहृत्सु तनयेषु वा ॥ भार्यायां च ग्रहे दुःस्थे भयं पुण्यवतां नृणाम् ॥६०॥ आत्मन्यथाल्पपुण्यानां सर्वत्रैवातिपापिनाम् ॥ नैकत्रापि ह्यपापानां भयमस्ति कदाचन ॥६१॥ दिग्देशजनसामान्यं नृपसामान्यमात्मजम् ॥ नक्षत्रग्रहसामान्यं नरो भुंक्ते शुभाशुभम् ॥६२॥ परस्पराभिरक्षा च ग्रहदौस्थ्येन जायते ॥ एतेभ्य एव विप्रेन्द्र शुभहानिस्तथाशुभैः ॥ ६३ ॥ यदेतत्कूर्मसंस्थानं नक्षत्रेषु मयोदितम् ॥ एतत्तु देशसामान्यमशुभं शुभमेव च ॥ ६४ ॥

पापियोंको सर्वत्र ग्रहपीडाका भय होता है; किन्तु पुण्यवानोंको वास्तविक किसी स्थानमें भय नहीं है ॥ ६१ ॥ दिशा, देश, जन, नृप, पुत्र, सुख, तथा दुःख आदि मनुष्योंको नक्षत्र और ग्रहके अनुकूल तथा प्रतिकूलके अनुसार शुभाशुभ फल प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ हे विप्रेन्द्र ! ग्रहोंके स्वस्थतापूर्वक रहनेसे मनुष्योंको सुख मिलता है और ग्रहोंकी दुःस्थिति होनेसे मनुष्योंको अशुभ प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ यह जो नक्षत्रोंके सहित मैंने कूर्मभगवान्के संस्थानका वर्णन किया यह सब देशोंमें शुभाशुभका देनेवाला है ॥ ६४ ॥

हे द्विजसत्तम ! इसी कारण बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि देश, नक्षत्र और ग्रहकी करीहुई पीडाको जानकर उसकी शान्ति करै ॥ ६५ ॥ आकाशमें देवता और दैत्योंका शत्रु जब स्वर्गसे गिरता है और वही लोकवादके नामसे विख्यात है ॥ ६६ ॥ अतएव बुद्धिमान् मनुष्यको ग्रह और लोकवाद दोनोंकी शान्ति करनी चाहिये क्योंकि मनुष्योंको इन्हीं सबके गिरनेसे यहां शुभ और अशुभ प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ हे द्विजसत्तम ! जब यह ग्रहादिक अनुकूल होते हैं, तब शुभका उदय और पापकी हानि करते हैं और जब यही ग्रहादिक विपरीत होते हैं तब द्रव्य तथा बुद्धिकी हानि करते हैं ॥ ६८ ॥ इस कारण लोकवादरत बुद्धिमान् मनुष्यको पीडाके समय लोकवाद और ग्रहकी शान्ति अवश्य करनी चाहिये ॥ ६९ ॥ और

तस्माद्विज्ञाय देशर्क्षं ग्रहपीडां तथात्मनः ॥ कुर्वीत शान्तिं मेधावी लोकवादांश्च सत्तम ॥ ६५ ॥ आकाशाद्देवतानां च दैत्यादीनां च दौर्हृदाः ॥ पृथ्व्यां पतन्ति ते लोके लोकवादा इति श्रुताः ॥ ६६ ॥ तां तथैव बुधः कुर्याल्लोकवादान्न हापयेत् ॥ तेषां तत्करणान्नॄणां युक्तो दुष्टागमक्षयः ॥ ६७ ॥ शुभोदयं प्रहाणिं च पापानां द्विजसत्तम ॥ प्रज्ञाहानिं प्रकुर्युस्ते द्रव्यादीनां च कुर्वते ॥ ६८ ॥ तस्माच्छान्तिपरः प्राज्ञो लोकवादरतस्तथा ॥ लोकवादांश्च शान्तिंश्च ग्रहपीडासु कारयेत् ॥ ६९॥ अद्रोहानुपवासांश्च शस्तं देवादिवन्दनम् ॥ जपो होमस्तथा दानं स्नानं क्रोधादिवर्जनम् ॥ ७० ॥ अद्रोहं सर्वभूतेषु मैत्रीं कुर्याच्च पण्डितः ॥ वर्जयेदसतीं वाचमतिवादांस्तथैव च ॥ ७१ ॥ ग्रहपूजां च कुर्वीत सर्वपीडासु मानवः ॥ एवं शाम्यन्त्यशेषाणि घोराणि द्विजसत्तम ॥ ७२ ॥ प्रयतानां मनुष्याणां ग्रहर्क्षोत्थान्यशेषतः ॥ एष कूर्मो मया ख्यातो भारते भगवान्विभुः ॥ ७३ ॥

आप किसीसे द्रोह न करै, उपवास (व्रत) करै, शान्तिस्तोत्रका पाठ करै, तथा जप, होम, स्नान, दान करै और क्रोधादिसे दूर रहना उचित है ॥ ७० ॥ सर्वभूत (संसार) से अद्रोह अर्थात् वैररहित हो पण्डित होकर सबसे मित्रता करै मिथ्या न बोले और अधिक विवाद भी नहीं करना चाहिये ॥ ७१ ॥ हे द्विजसत्तम ! संपूर्ण पीडाओंमें मनुष्यको ग्रहका पूजन करना उचित है क्योंकि इस प्रकार शान्ति और पूजा करनेसे सब घोर पीडा भी दूर हो जाती है ॥ ७२ ॥ और जो पुरुष पवित्र हैं उनको भी ग्रहोंके कारणसे शुभ अशुभ फल प्राप्त होता है। इस प्रकारसे भारतवर्षमें यह कूर्मभगवान् विभु विद्यमान

रहते हैं जिनका वृत्तान्त मैंनें आपसे वर्णन किया ॥ ७३ ॥ यह नारायण कूर्म अचिन्त्यात्मा हैं इन्हींमें समस्त देव नक्षत्रोंके स्वामी स्थित रहते हैं ॥ ७४ ॥ उनके मध्यमें अग्नि, पृथ्वी और चन्द्र विद्यमान हैं, मेषादि तीन राशि उनके मध्यस्थलमें अवस्थित हैं मिथुनादि दो राशि उनके मुखमें स्थित हैं ॥ ७५ ॥ कर्कट और सिंहराशि उनके पूर्व दक्षिण चरणमें वास करती हैं, सिंह, कन्या और तुल यह तीन राशि उनकी कुक्षिमें विराजमान हैं ॥ ७६ ॥ तुल और वृश्चिक राशि दक्षिण पश्चिम पदमें विद्यमान हैं वृश्चिक और धनुराशि उनके पृष्ठदेशमें ॥ ७७ ॥ धनु और मकरादि तीनि राशि उनके वायव्य चरणमें कुंभ और मीन राशि उनकी उत्तर कुक्षिमें स्थित रहती हैं ॥७८॥ हे द्विजोत्तम ! हे विप्र ! पूर्व और उत्तर चरणमें मीन मेष स्थित

नारायणो ह्यचिन्त्यात्मा यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ अत्र देवाः स्थिताः सर्वे प्रतिनक्षत्रसंश्रयाः ॥ ७४ ॥ तथा मध्ये हुतवहः पृथ्वी सोमश्च वै द्विज ॥ मेषादयस्त्रयो मध्ये मुखे द्वौ मिथुनादिकौ ॥ ७५ ॥ प्राग्दक्षिणे तथा पादे कर्किसिंहौ व्यवस्थितौ ॥ सिंहकन्यातुलाश्चैव कुक्षौ राशित्रयं स्थितम् ॥ ७६ ॥ तुलाथ वृश्चिकश्चोभौ पादे दक्षिणपश्चिमे ॥ पृष्ठे च वृश्चिकेनैव सह धन्वी व्यवस्थितः ॥ ७७ ॥ वायव्ये चास्य वै पादे धनुर्ग्राहादिकं त्रयम् ॥ कुम्भमीनौ तथैवास्य उत्तरां कुक्षिमाश्रितौ ॥ ७८ ॥ मीनमेषौ द्विज श्रेष्ठपादे पूर्वोत्तरे स्थितौ ॥ कूर्मे देशास्तथर्क्षाणि देशेष्वेतेषु वै द्विज ॥७९॥ राशयश्च तथर्क्षेषु ग्रहराशिष्ववस्थिताः ॥ तस्माद्ग्रहर्क्षपीडासु देशपीडां विनिर्दिशेत् ॥ ८०॥ तत्र स्नात्वा प्रकुर्वीत दानहोमादिकं विधिम् ॥ स एष वैष्णवः पादो ब्रह्मन्मध्ये ग्रहस्य यः ॥ ८१ ॥ (नारायणाख्योऽचिन्त्यात्मा कारणं जगतः प्रभुः ॥) इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भारतीयकूर्मनिवेशो नाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

रहती हैं। इस कूर्ममें देश, देशमें नक्षत्र ॥ ७९ ॥ नक्षत्रमें राशि और ग्रह ग्रहमें राशि स्थित हैं। इस कारण ग्रह नक्षत्रकी पीडामें देशपीडा समझनी चाहिये ॥ ८० ॥ देशपीडादिके होनेपर स्नान करके दान होमादि संपूर्ण नियम करने चाहिये। यह जो विष्णुके चरणस्वरूप ब्रह्माजी ग्रहोंके बीचमें अवस्थान करते हैं, (यही नारायण अचिन्त्यात्मा, जगत्कारण और जगत्के प्रभु हैं) ॥ ८१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां कूर्मनिवेशो नाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले--हे मुने ! यह मैंने भारतवर्षका विषय यथावत् वर्णन किया इस भारतवर्षमेंही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलिरूप चारों युग वर्त्तमान हैं ॥ १ ॥ और इस स्थानमेंही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंका भेद है, यहां पर सत्य त्रेता द्वापर और कलि इन चारों युगोंके भेदसे इस स्थानके मनुष्य क्रमानुसार चार सौ, तीन सौ, दो सौ और एक सौ वर्ष जीवित रहते हैं। पूर्व दिशामें देवकूट नामक महापर्वतके ॥ २ ॥ ३॥ पूर्वकी ओर जो वर्ष स्थित है, उसका नाम भद्राश्व वर्ष है। अब उसकी कथा वर्णन करताहूं। श्वेतपर्ण, नील, शैवाल ॥ ४ ॥ कौरंज और पर्णशालाग्र नामक पांच श्रेष्ठ कुलाचल इस वर्षमें स्थित हैं और इन सब पर्वतोंसे उत्पन्न हुए अनेक छोटे छोटे पर्वत भी इस वर्षमें हैं ॥ ५ ॥ इस वर्षमें कुमुदसङ्काश,

मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं तु भारतं वर्षं यथावत्कथितं मुने ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च तथा तिष्यं चतुष्टयम् ॥ १ ॥ अत्रैवैतद्युगानां तु चातुर्वर्ण्यं च वै द्विज ॥ चत्वारि त्रीणि द्वे चैव तथैकं च शरच्छतम् ॥२॥ जीवन्त्यत्र नरा ब्रह्मन्कृतत्रेतादिषु क्रमात् ॥ देवकूटस्य पूर्वस्य शैलेन्द्रस्य महात्मनः ॥ ३ ॥ पूर्वेण यत्स्थितं वर्षं भद्राश्वं तन्निबोध मे ॥ श्वेतपर्णश्च नीलश्च शैवालश्चाचलोत्तमः ॥४॥ कौरञ्जः पर्णशालाग्रः पंचैते तु कुलाचलाः ॥ तेषां प्रसूतिरन्ये ये बहवः क्षुद्रपर्वताः ॥ ५ ॥ तैर्विशिष्टा जनपदा नानारूपाः सहस्रशः ॥ ततः कुमुदसंकाशाः शुद्धसानुसुमङ्गलाः ॥ ६ ॥ इत्येवमादयोऽन्येऽपि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ सीताशङ्खावतीभद्राचक्रावर्त्तादिकास्तथा ॥७॥ नद्योऽथ बह्वयो विस्तीर्णाः शीततोयौघवाहिकाः ॥ अत्र वर्षे नराः शङ्खशुद्धहेमसमप्रभाः ॥ ८ ॥ दिव्यसङ्गमिनः पुण्या दशवर्षशतायुषः ॥ अधमोत्तमं न तेष्वस्ति सर्वे ते समदर्शनाः ॥ ९ ॥

शुद्धसानु, सुमंगल इत्यादि अन्यान्य शत सहस्र (सैकडों हजारों) जनपद छोटे छोटे पर्वतोंसे युक्त होकर नानाभांतिसे अवस्थान करते हैं। सीता, शंखावती, भद्रा और चक्रावर्त्ता आदि ॥ ६ ॥ ७ ॥ अनेकानेक अत्यन्त शीतलजलवाहिनी नदियें विस्तीर्ण होकर इस वर्षमें बहती हैं। इस वर्षमें जो मनुष्य जन्म लेते हैं वह समस्तही शंख और निर्मल सुवर्णकी समान प्रभायुक्त होते हैं ॥ ८ ॥ और श्रेष्ठ संग तथा पवित्र होकर हजार वर्ष जीवित रहते हैं, उनमें कोई अधम वा उत्तम नहीं है, क्योंकि सभी समदर्शन हैं ॥ ९ ॥

वहांके संपूर्ण मनुष्य स्वभावसेही सहनशीलता आदि आठ गुणोंसे गुणवान् होते हैं। इस भद्राश्व वर्षमें भगवान् चतुर्बाहु जनार्दन हयग्रीवरूपसे ॥ १० ॥ शिर, हृदय, मेढ्र, चरण, हस्त और तीन नेत्र युक्त होकर अवस्थान करते हैं उन प्रभु जगदीश्वरका संपूर्ण विषय भी इसी प्रकार जानना चाहिये ॥ ११ ॥ अनन्तर सुमेरुके पश्चिम देशमें स्थित केतुमालवर्षकी कथाका वर्णन करताहूं—इस वर्षमें जो सप्त कुलपर्वत हैं, उनके नाम यथा विशाल, कम्बल, कृष्ण, जयन्त, हरिपर्वत ॥ १२ ॥ विशोक और वर्द्धमान। इनके अतिरिक्त पृथ्वीके मौलिस्वरूप महाकाय और भी हजारों पर्वत हैं जिनमें अनेक लोग रहते हैं ॥१३॥ उनमें मौलि, महाकाय, शाकपोत, करम्भक और अच्चुलाख्य इत्यादि अनेक प्रकारके जन वास करते हैं ॥ १४ ॥ यह मनुष्य जिन महानदियोंका जल

तितिक्षादिभिरष्टाभिः प्रकृत्यात्मगुणैर्युताः ॥ तत्राप्यश्वशिरा देवश्चतुर्बाहुर्जनार्दनः ॥ १० ॥ शिरोहृदयमेढ्रांघ्रिहस्तैश्चाक्षित्रयान्वितः ॥ तस्याप्यथैवं विषया विज्ञेया जगतः प्रभोः ॥ ११ ॥ केतुमालमतो वर्षं निबोध मम पश्चिमम् ॥ विशालः कम्बलः कृष्णो जयन्तो हरिपर्वतः ॥ १२ ॥ विशोको वर्द्धमानश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥ अन्ये सहस्रशः शैला येषु लोकगणः स्थितः ॥ १३ ॥ मौलयस्ते महाकायाः शाकपोतकरम्भकाः ॥ अच्चुलप्रमुखाश्चापि वसन्ति शतशो जनाः ॥ १४ ॥ ये पिबन्ति महानद्यो वंक्षुश्यामां स्वकम्बलाम् ॥ अमोघां कामिनीं श्यामां तथैवान्याः सहस्रशः ॥१५॥ अत्राप्यायुः समं पूर्वैरत्रापि भगवान्हरिः ॥ वराहरूपी पादास्यहृत्पृष्ठे पार्श्वतस्तथा ॥१६॥ (मुखे नासादतश्चैव कण्ठतः पुच्छतस्तथा) ॥ त्रिनक्षत्रयुते देशे नक्षत्राणि युतानि च ॥ इत्येतत्केतुमालं ते कथितं मुनिसत्तम ॥ १७॥

पीते हैं. उनके नाम—वंक्षुश्यामा, स्वकम्बला, अमोघा, कामिनी और श्यामा इसी प्रकार और भी हजारों नदियें बहती हैं ॥ १५ ॥ वहांपर भी मनुष्योंकी आयु पूर्वकी समान है और उस देशमें भगवान् हरि वराहरूपसे विराजमान रहते हैं। उनके चरण, हृदय, मुख, पीठ तथा पार्श्वमें मुख नासिका कण्ठ दांत और पुच्छसे तीन नक्षत्रोंसे युक्त होकर संपूर्ण देश स्थित हैं और वहां भी नक्षत्रोंसे शुभ अशुभ विदित होता है ॥ १६ ॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार जो केतुमाल नामक वर्ष है, उसका भी मैंने आपसे वर्णन किया ॥ १७ ॥

अनन्तर उत्तरकुरुदेशकी कथा कहता हूं सुनो इस उत्तर कुरुदेशमें सर्व कालके फलपुष्पयुक्त, मधुरफलसे युक्त सर्वकामनादायक और सर्वकालफलदायक संपूर्ण वृक्ष ॥ १८ ॥ वस्त्र उत्पन्न करते हैं और उनके संपूर्ण फलोंसे नाना प्रकारके गहने उत्पन्न होते हैं ॥ १९ ॥ वहांकी भूमि मणिमयी, वायु सुन्दर गन्धयुक्त और सर्वदा सुखदायक है देवलोकसे भ्रष्ट होकर मनुष्य वहां जन्म लेते हैं ॥२०॥ वह चक्रवाकके समान परस्पर प्रीति करते हैं और समकालमें स्थित हुए बालक बालिका उत्पन्न करते हैं ॥ २१॥ वह साढे चौदह हजार वर्ष पर्यन्त जीवित रहते हैं। इस वर्षमें चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त नामक दो श्रेष्ठ कुलपर्वत वर्तमान हैं ॥ २२ ॥ उस पर्वतमें पवित्र और निर्मल जल बहनेवाली भद्रसोमानामक महानदी पृथ्वीमें बहती है ॥ २३ ॥ तथा और भी

अतः परं कुरून्वक्ष्ये निबोधेह ममोत्तरान् ॥ तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः ॥ १८ ॥ वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ॥ सर्वकामप्रदास्ते हि सर्वकालफलप्रदाः ॥ १९ ॥ भूमिर्मणिमयी वायुः सुगन्धः सर्वदा सुखः ॥ जायन्ते मानवास्तत्र देवलोकपरिच्युताः ॥ २० ॥ मिथुनानि प्रसूयन्ते समकालस्थितानि वै ॥ अन्योन्यमनुरक्तानि चक्रवाकोपमानि च ॥२१॥ चतुर्दश सहस्राणि तेषां सार्द्धानि वै स्थितिः ॥ चन्द्रकान्तश्च शैलेन्द्रः सूर्यकान्तस्तथापरः ॥ २२ ॥ तस्मिन्कुलाचले वर्षे तन्मध्ये च महानदी ॥ भद्रसोमा प्रयात्युर्व्यां पुण्यामलजलौघिनी ॥ २३॥ सहस्रशस्तथैवान्या नद्यो वर्षेऽपि चोत्तरे ॥ तथान्याः क्षीरवाहिन्यो घृतवाहिन्य एव च ॥२४॥ दध्नो ह्रदास्तथा तत्र तथान्ये चानुपर्वताः ॥ अमृतास्वादकल्पानि फलानि विविधानि च ॥ २५ ॥ वनेषु तेषु रम्याणि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ तत्रापि भगवान्विष्णुः प्राक्छिरा मत्स्यरूपवान् ॥ २६ ॥ विभक्तो नवधा विप्र नक्षत्राणां त्रयं त्रयम् ॥ देशास्तत्रापि नवधा विभक्ता मुनिसत्तम ॥ २७ ॥

छोटी छोटी हजारों नदियें वहां वर्तमान हैं, दूसरी और जो नदियें हैं उनमें कोई क्षीरवाहिनी, कोई घृतवाहिनी ॥२४॥ और कोई दधिके तलावसे युक्त हैं। और इन सात कुल पर्वतोंके अतिरिक्त और भी छोटे छोटे बहुत पर्वत हैं। इस उत्तर कुरुदेशस्थ सैकडों हजारों वनोंके मध्यवर्ती समस्त वृक्षोंमें भांतिभांतिके स्वादयुक्त फल फलते हैं इस स्थानमें भी भगवान् नारायण मत्स्यरूप धारणपूर्वक पूर्वको मस्तक कर वास करते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे विप्र ! इस उत्तर कुरुदेशमें नक्षत्र नव भागोंमें विभक्त होकर तीन तीन क्रमानुसार स्थिति करते हैं। हे मुनिसत्तम ! इसी प्रकार सब देश भी नव भागमें विभक्त हैं ॥ २७ ॥

हे महामुने ! इस वर्षमें चन्द्रद्वीप और भद्रद्वीप नामक दो प्रसिद्ध द्वीप हैं, दोनोंही समुद्रके बीचमें अवस्थित और पवित्र हैं ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह मैंने तुमसे उत्तर कुरुवर्षकी कथा कही, इसके उपरान्त किम्पुरुषादि वर्षका विषय वर्णन करताहूं, सुनो ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामुत्तर-कुरुकथनं नाम षट्पंचाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे द्विजोत्तम ! अब किम्पुरुष नामक जो वर्ष है; उसकी कथा कहताहूं सुनो वहां शरीर-धारी पुरुष दश हजार वर्ष जीवित रहते हैं ॥ १ ॥ वहांके स्त्री पुरुष नीरोग और शोकरहित होते हैं । उस स्थानमें नन्दनवनके समान महान् एक प्लक्षखंड

चन्द्रद्वीपः समुद्रे च भद्रद्वीपस्तथापरः ॥ तत्रापि पुण्यो विख्यातः समुद्रान्तर्महामुने ॥ २८ ॥ इत्येतत्कथितं ब्रह्मन्कुरुवर्षं मयोत्तरम् ॥ शृणु किंपुरुषादीनि वर्षाणि गदतो मम ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे उत्तरकुरुकथनं नाम षट्पंचाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ यत्तु किम्पुरुषं वर्षं तत्प्रवक्ष्याम्यहं द्विज ॥ तत्रायुर्दशसाहस्रं पुरुषाणां वपुष्मताम् ॥ १ ॥ अनामयाह्यशोकाश्च नरा यत्र तथा स्त्रियः ॥ प्लक्षः खण्डश्च यत्रोक्तः सुमहान्नन्दनोपमः ॥२॥ तस्य ते वै फलरसं पिबन्तः पुरुषाः सदा ॥ स्थिरयौवननिष्पन्नाः स्त्रियश्चोत्पलगन्धिकाः ॥ ३ ॥ अतः परं किंपुरुषाद्धरिवर्षं प्रचक्षते ॥ महारजतसंकाशा जायंते तत्र मानवाः ॥४॥ देवलोकच्युताः सर्वे देवरूपाश्च सर्वशः ॥ हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम् ॥ ५ ॥ न जरा बाधते तत्र न जीर्यन्ते च कर्हिचित् ॥ तावन्तमेव ते कालं जीवन्त्यथ निरामयाः ॥ ६ ॥

है ॥ २ ॥ वहांके मनुष्य सदा उन वृक्षोंके फलोंका रस पीकर स्थिरयौवन हुए हैं. और स्त्रियें पद्मकी समान गंधयुक्त हुई हैं ॥ ३ ॥ इस किम्पुरुष वर्षके पीछे हरिवर्ष नामक और एक वर्ष है, वहां जो पुरुष जन्म लेते हैं, वह श्रेष्ठ चांदीकी समान वर्णशाली होते हैं ॥ ४ ॥ जो देवरूपी मनुष्य देवलोकसे गिरकर हरिवर्षमें जन्म लेते हैं वह वहां उत्तम इक्षु (ऊख) का रस पीतेहैं ॥५॥ बुढापा उनको पीडित नहीं करता, अतएव कोई भी जीर्ण नहीं होता । और जितने कालतक वह जीवित रहते हैं तबतक सदा युवा अवस्था बनी रहती है और निरामय रहते हैं ॥ ६ ॥

मेरुवर्ष नामक जो मध्यम वर्ष है जिसको इलावृत कहते हैं वहां सूर्यका ताप नहीं है और मनुष्य बुढापेसे जीर्ण नहीं होते ॥ ७ ॥ चन्द्र, सूर्य, ग्रह और संपूर्ण नक्षत्रोंकी किरणें वहां आत्मलाभ अर्थात् उज्ज्वलता प्राप्त नहीं करसकतीं क्यों कि वहां सुमेरुपर्वतकी अत्यन्त ज्योति प्रकाशित होती है ॥ ८ ॥ मेरुवर्षमें जो मनुष्य जन्म लेते हैं, वह समस्तही पद्मकी समान प्रभायुक्त, पद्मगंध, पद्मपत्रकी समान चौडे नेत्रोंवाले और जम्बूके फलोंका रस पीनेवाले होते हैं ॥ ९ ॥ उन पुरुषोंकी आयु तेरह हजार वर्षकी होती है और उस इलावृतके मध्यमें मेरुनामक जो पर्वत है, उसका आकार शरावेकी समान है ॥ १० ॥ उस वर्षमें महापर्वत मेरुही विख्यात है जो इलावृत कहलाता है अब रम्यकवर्षका वृत्तान्त कहताहूं सुनो ॥ ११ ॥ रम्यकवर्षमें बहुत ऊंचा न्यग्रोध नामक

मेरुवर्षं मया प्रोक्तं मध्यमं यदिलावृतम् ॥ न तत्र सूर्यस्तपति न ते जीर्यन्ति मानवाः ॥ ७ ॥ लभन्ते नात्मलाभं च रश्मयश्चन्द्रसूर्ययोः ॥ नक्षत्राणां ग्रहाणां च मेरोस्तत्र परा द्युतिः ॥ ८ ॥ पद्मप्रभाः पद्मगन्धा जम्बूफलरसाशिनः ॥ पद्मपत्रायताक्षास्तु जायन्ते तत्र मानवाः ॥ ९ ॥ वर्षाणां तु सहस्राणि तत्राप्यायुस्त्रयोदश ॥ शरावाकारसंस्तारो मेरुमध्ये इलावृते ॥ १० ॥ मेरुस्तत्र महाशैलस्तदाख्यातमिलावृतम् ॥ रम्यकं वर्षमस्माच्च कथयिष्ये निबोध तम् ॥ ११ ॥ वृक्षस्तत्रापि चोत्तुङ्गो न्यग्रोधो हरितच्छदः ॥ तस्यापि ते फलरसं पिबन्तो वर्तयन्ति वै ॥ १२ ॥ वर्षायुतायुषस्तत्र नरास्तत्फलभोगिनः ॥ रतिप्रधानविमला जरादौर्गन्ध्यवर्जिताः ॥ १३ ॥ तस्मादथोत्तरं वर्षं नाम्ना ख्यातं हिरण्मयम् ॥ हिरण्वती नदी यत्र प्रभूतकमलोज्ज्वला ॥ १४ ॥ महाबला सतेजस्का जायन्ते तत्र मानवाः ॥ महाकाया महासत्त्वा धनिनः प्रियदर्शनाः ॥ १५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवनकोशवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

एक वृक्ष है, उसके सब पत्ते हरितवर्ण हैं वहांके मनुष्य उस वृक्षके फलोंका रस पीकर जीवन धारण करते हैं ॥ १२ ॥ जो उस वृक्षके फलोंका भोजन करते हैं वह दश हजार वर्षतक जीवित रहते हैं और वह रतिक्रीडामें निपुण, सुन्दर तथा जरा दौर्गन्ध्यरहित होते हैं ॥ १३ ॥ उसके उत्तरमें जो वर्ष है उसका नाम हिरण्मय वर्ष है इस वर्षमें अनेक कमलोंके पुष्पोंसे शोभायमान हिरण्वती नामक नदी बहती है ॥ १४ ॥ वहां जो मनुष्य जन्मते हैं वह अत्यन्त बलशाली, तेजस्वी, महाकाय, अत्यन्त सत्त्वसंपन्न धनी और प्रियदर्शन होते हैं ॥ १५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां भुवनकोशवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

क्रौष्टुकिने कहा—हे महामुने ! जो मैंने पूछा था उसका तो आपने भलीभांति वर्णन किया और पृथ्वी समुद्रादिकी स्थिति, परिमाण तथा ग्रहका परिमाण ॥ १ ॥ नक्षत्र इत्यादिकी स्थिति और परिमाण और भूरादि सप्त लोक, सप्त पाताल ॥ २ ॥ और स्वायंभुवनामक प्रसिद्ध मन्वन्तर इन सबका भी मुझसे वर्णन किया है; अब उक्त मन्वन्तरके पीछेके अपर समस्त मन्वन्तर, उन उन मन्वन्तरोंके अधिपति, तद्वंशीय नृपति, देवता और ऋषियोंका वृत्तान्त सुननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—मैंने तुमसे जिस स्वायंभुव मन्वन्तरका विषय कहा है; उसके पीछे स्वारोचिष नामक अपर मन्व-

क्रौष्टुकिरुवाच ॥ कथितं भवता सम्यग्यत्पृष्टोऽसि महामुने ॥ भूसमुद्रादिसंस्थानं प्रमाणानि तथा ग्रहाः ॥ १ ॥ तेषां चैव प्रमाणं यन्नक्षत्राणां च संस्थितिः ॥ भूरादयस्तथा लोकाः पातालान्यखिलान्यपि ॥ २ ॥ स्वायम्भुवं तथाख्यातं मुने मन्वन्तरं मम ॥ तदन्तराण्यहं श्रोतुमिच्छे मन्वन्तराणि वै ॥ मन्वन्तराधिपान्देवानृषींस्तत्तनयान्नृपान् ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ मन्वन्तरं मयाख्यातं तव स्वायम्भुवं च यत् ॥ स्वारोचिषाख्यमन्यत्तु शृणु तस्मादनन्तरम् ॥ ४ ॥ कश्चिद्द्विजातिप्रवरः पुरेऽभूदरुणास्पदे ॥ वरुणायास्तटे विप्रो रूपेणात्यश्विनावपि ॥ ५ ॥ मृदुस्वभावः सद्वृत्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ सदातिथिप्रियो रात्रावागतानां समाश्रयः ॥ ६ ॥ तस्य बुद्धिरियं त्वासीदहं पश्ये वसुन्धराम् ॥ अतिरम्यवनोद्यानां नानानगरशोभिताम् ॥ ७ ॥ अथागतोऽतिथिः कश्चित्कदाचित्तस्य वेश्मनि ॥ नानौषधिप्रभावज्ञो मन्त्रविद्याविशारदः ॥ ८ ॥

न्तरकी कथा सुनो ॥ ४ ॥ दोनों अश्विनीकुमारोंकी अपेक्षा भी रूपवान् शान्तस्वभाव सच्चरित्र वेदवेदांगपारदर्शी कोई एक ब्राह्मण वरुणानदीके तटपर अरुणास्पद नगरमें वास करता था अतिथिके पानेपर वह सदाही प्रसन्न होता । सुतरां रात्रिकालमें आये हुए मनुष्योंका आश्रयस्वरूप था ॥ ५ ॥ ६ ॥ सदाही उसके मनमें यह इच्छा होती कि, "मैं अतिरमणीय वन और उद्यानोंसे युक्त तथा अनेक नगरोंसे शोभायमान इस पृथ्वीको देखूं" ॥ ७॥ अनन्तर एक दिन सब औषधियोंके प्रभावका जाननेवाला और मंत्रविद्यामें पारदर्शी एक अतिथि उसके घर आया ॥ ८ ॥

श्रद्धायुक्त मनसे ब्राह्मणके पूछने पर उस अतिथिने उससे अनेक देश, मनोहर नगर ॥ ९ ॥ वन, नदी, पर्वत और संपूर्ण पवित्र स्थान कहे उससे वह अरुणास्पद नगरमें वास करनेवाला ब्राह्मण आश्चर्ययुक्त होकर कहने लगा ॥ १० ॥ हे द्विजवर ! आपने अनेक देशोंमें भ्रमण किया है किन्तु आपके देहमें उसकी कुछ भी थकावट विदित नहीं होती आप बूढे भी नहीं हैं और न अधिक तरुणही हैं, आपकी आयु भी अधिक नहीं दीखती, फिर थोडेही कालमें आपने किस प्रकार सब पृथ्वीमें भ्रमण किया है ॥ ११ ॥ आये हुए ब्राह्मणने कहा हे विप्र ! मैं मंत्र और औषधियोंके प्रभावसे अप्रतिहतगति होकर

अभ्यर्थितस्तु तेनासौ श्रद्धापूतेन चेतसा ॥ तस्याचख्यौ सदेशांश्च रम्याणि नगराणि च ॥ ९ ॥ नदी वनानि शैलांश्च पुण्यान्यायतनानि च ॥ स ततो विस्मयाविष्टः प्राह तं द्विजसत्तमम् ॥१०॥ अनेकदेशदर्शित्वेनातिश्रमसमन्वितः ॥ त्वं नातिवृद्धो वयसा नातिवृत्तश्च यौवनात् ॥ कथमल्पेन कालेन पृथिवीमटसि द्विज ॥ ११ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ मन्त्रौषधिप्रभावेण विप्राप्रतिहता गतिः ॥ योजनानां सहस्रं हि दिनार्द्धेन व्रजाम्यहम् ॥ १२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः स विप्रस्तं भूयः प्रत्युवाचेदमादरात् ॥ श्रद्दधानो वचस्तस्य ब्राह्मणस्य विपश्चितः ॥१३॥ मम प्रसादं भगवन्कुरु मन्त्रप्रभावजम् ॥ द्रष्टुमेतां मम महीमतीवेच्छा प्रवर्तते ॥१४॥ प्रादात्स ब्राह्मणश्चास्मै पादलेपमुदारधीः ॥ अभिमन्त्रयामास दिशं तेनाख्यातां च यत्नतः ॥ १५ ॥ तेनानुलिप्तपादोऽथ स द्विजो द्विजसत्तम ॥ हिमवन्तमगाद्द्रष्टुं नानाप्रस्रवणान्वितम् ॥ १६ ॥

आधे दिनमें हजार योजन जा सकता हूं ॥१२॥ मार्कण्डेयजी बोले-तदनन्तर उस अरुणास्पदनिवासी ब्राह्मणने विद्वान् अतिथिके वचनमें श्रद्धायुक्त होकर आदरसहित फिर उससे यह वचन कहा ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! आप मेरे प्रति औषधीप्रदानरूप कृपा कीजिये । क्योंकि मेरी इस पृथ्वीको देखनेके लिये अत्यन्त इच्छा हुई है ॥ १४ ॥ यह वचन सुनकर उस आयेहुए उदारचित्त ब्राह्मणने नगरवासी द्विजवरके पदमें औषधीका लेप कर दिया और कहीहुई दिशाओंका यत्नपूर्वक उपदेश भी दिया ॥ १५ ॥ हे मुनिसत्तम ! जब उस अतिथिने पैरमें लेप लगादिया; तब वह ब्राह्मण

" दिनके प्रथमार्द्धमें सहस्र योजन जाऊंगा और अपरार्द्ध दिनमें वहांसे आभी सकता हूं " इस प्रकार चिन्ता करके अनेक झरनोंसे युक्त हिमालय पर्वतको देखनेके लिये गया ॥ १६ ॥ १७ ॥ द्विजवर सहजमेंही हिमालयकी पीठपर पहुंचकर उस हिमाचलकी भूमिमें विचरण करने लगा ॥ १८ ॥ वहां विचरण करते करते पैरमें अधिक शीतलताके लगनेसे उसका परमौषधीसम्भूत पाद लेप धुल गया ॥ १९ ॥ तब उस ब्राह्मणकी जडगति हो गई अनन्तर वह इधर उधर विचरण करते उस हिमालयपर्वतके मनोहर सानुप्रान्तभाग देखने लगा ॥ २० ॥ कि वहांपर सिद्ध, गंधर्व, किन्नर विहार कर रहे हैं और उस पर्वतके किनारे देवताओंके कीडा और विहारके लिये अत्यन्त रमणीक स्थान बन रहे हैं ॥ २१ ॥ हे मुने ! वह उत्तम ब्राह्मण उस स्थानको सैकडों अप्स-

सहस्रं योजनानां हि दिनार्धेन व्रजामि यत् ॥ आयास्यामीति संचिन्त्य तदर्द्धेनापरेण हि ॥ १७ ॥ संप्राप्तो हिमवत्पृष्ठं नातिश्रान्ततनुर्द्विज ॥ विचचार ततस्तत्र तुहिनाचलभूतले ॥ १८ ॥ पादाक्रान्तेन तस्याथ तुहिनेन विलीयता ॥ प्रक्षालितः पादलेपः परमौषधिसंभवः ॥ १९ ॥ ततो जडगतिः सोऽथ इतश्चेतश्च पर्यटन् ॥ ददर्शातिमनोज्ञानि सानूनि हिमभूभृतः ॥ २० ॥ सिद्धगन्धर्वजुष्टानि किन्नराभिरतानि च ॥ क्रीडाविहाररम्याणि देवादीनामितस्ततः ॥ २१ ॥ दिव्याप्सरोगणशतैराकीर्णान्यवलोकयन् ॥ नातृप्यत द्विजश्रेष्ठः प्रोद्भूतपुलको मुने ॥ २२ ॥ क्वचित्प्रस्रवणाद्भ्रष्टजलपातमनोरमम् ॥ प्रनृत्यच्छिखिकेकाभिरन्यतश्च निनादितम् ॥ २३ ॥ दात्यूहकोयष्टिकाद्यैः क्वचिच्चातिमनोहरैः ॥ पुंस्कोकिलकलालापैः श्रुतिहारिभिरन्वितम् ॥ २४ ॥

राओंसे युक्त देखने लगा, कि जिसके देखनेसे उसका देह पुलकित हुआ और वह अपने मनको किसी प्रकार तृप्त नहीं करसका ॥ २२ ॥ यह ब्राह्मण प्रसन्नतासे देखने लगा कि हिमालयपर्वत किसी स्थानमें पत्थरोंसे छूटी हुई जलराशिके गिरनेसे शोभा पाता है, कहीं नाचनेवाले मोरोंके केकारावसे शब्दायमान हो रहा है। और कहीं अन्यान्य पक्षी मनभाविनी सुहावनी बोलियाँ बोल रहे हैं ॥ २३ ॥ कहीं अत्यन्त मनोहर दात्यूह पपीहा कोयष्टि टिटीहरी इत्यादि पक्षियोंसे व्याप्त हो रहा है; कहीं पुंस्कोकिलके समान मनोहर मधुरालापसे प्रतिध्वनित हो रहा है ॥ २४ ॥

और कहीं वृक्षोंके खिले हुए पुष्पोंकी गंधसे सुवासित वायुद्वारा वीजित हो रहा है । वह ब्राह्मण इस प्रकार हिमवन्त नामक महागिरिकी शोभाको देखकर अत्यन्त मुदित हुआ ॥ २५ ॥ इसके पीछे ब्राह्मणकुमार हिमवन्तनामक महाचलको देखकर अपने मनमें विचार करने लगा कि " फिर कल प्रातःसमय आनकर देखूंगा " यह बात अपने चित्तमें स्थिर करके घर चलनेकी इच्छा करी ॥ २६ ॥ वहा विलम्ब होनेके कारण पादलेप धुल जानेसे जडगति हो ब्राह्मण चिन्ता करने लगा कि मैंने अज्ञानके वश होकर क्या कार्य किया ॥ २७ ॥ कि, जब मेरा चरणलेप इस शीतलजलसे नष्ट हो गया है, तब यहांसे जाना अत्यन्त कठिन है, क्यों कि यह पर्वत महादुर्गम है और मेरा घर बहुत दूर है ॥ २८ ॥ अब मुझको महासंकट उपस्थित हुआ है, यहां अग्निशु-

प्रफुल्लतरुगन्धेन वासितानिलवीजितम् ॥ मुदा युक्तः स ददृशे हिमवन्तं महागिरिम् ॥ २५ ॥ दृष्ट्वा चैतं द्विजसुतो हिमवन्तं महाचलम् ॥ श्वो द्रक्ष्यामीति संचिन्त्य मतिं चक्रे गृहं प्रति ॥ २६ ॥ विभ्रष्टपादलेपोऽथ चिरेण जडितक्रमः ॥ चिन्तयामास किमिदं मयाऽज्ञानाद-नुष्ठितम् ॥२७॥ यदि प्रलेपो नष्टो मे विलीनो हिमवारिणा ॥ शैलोऽतिदुर्गमश्चायं दूरं चाहमिहागतः ॥२८॥ प्रयास्यामि क्रियाहानिमग्नि-शुश्रूषणादिकम् ॥ कथमत्र करिष्यामि संकटं महदागतम् ॥२९॥ इदम्परमिदं रम्यमित्यस्मिन्वरपर्वते ॥ सक्तदृष्टिरहं तृप्तिं न यास्येऽब्द-शतैरपि ॥ ३० ॥ किन्नराणां कलालापाः समन्ताच्छ्रोत्रहारिणः ॥ प्रफुल्लतरुगन्धांश्च घ्राणमत्यन्तमृच्छति ॥ ३१ ॥ सुखस्पर्शस्तथा वायुः फलानि रसवन्ति च ॥ हरन्ति प्रसभं चेतो मनोज्ञानि सरांसि च ॥ ३२ ॥ एवं गते तु पश्येयं यदि कंचित्तपोनिधिम् ॥ स ममोप-दिशेन्मार्गं गमनाय गृहं प्रति ॥ ३३ ॥

श्रूषणादि कार्य किस प्रकार करूंगा अतएव नित्यक्रिया भी सब नष्ट हो गई ॥ २९ ॥ " यह भी रमणीय, यह भी रमणीय " इस प्रकार करके इस श्रेष्ठ पर्वतमें आसक्तदृष्टि हो मैं सौ वर्षमें भी तृप्त नहीं हो सकूंगा ॥ ३० ॥ अहाहा चारों ओरसे किन्नरोंका कानोंको सुखदायक मधुर आलाप सुनाई आता हैं । कुसुमित वृक्षोंसे सुगन्धि प्राप्त कर नासिका तृप्त हुई है ॥ ३१ ॥ यहांका वायु सुखस्पर्श, समस्त फल, सुरस मनोहर सरोवरसे मानो बलपूर्वक मेरा चित्त आकर्षित होता है ॥ ३२ ॥ अब इस प्रकार कुछ काल बीतनेपर यदि किसी तपोधनको देखूं, तो उनसे घर जानेका उपदेश ग्रहण करूं ॥ ३३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले । पैरमें लगीहुई औषधीकी शक्तिके नष्ट होजानेसे परम दुःखित हो वह द्विजवर इस प्रकार चिन्ता करता करता हिमालयमें विचरण करने लगा ॥ ३४ ॥ तिस काल वरूथिनीनामक मौलेया रूपशालिनी किसी एक महाभाग अप्सराश्रेष्ठने उस उत्तममुनिको विचरण करते देखा ॥ ३५ ॥ द्विजवरको देखतेही कामबाणोंसे जर्जरितहृदय हो वह वरूथिनी तत्काल उसमें अनुरागवती हुई ॥ ३६ ॥ और विचार करने लगी कि यह मनोहर आकृति कौन पुरुष है, यदि यह मेरा अनादर न करै तो मेरा जन्म सफल हो ॥ ३७ ॥ अहो ! इसकी क्या अपूर्व रूपमाधुरी है, क्या मनोहर गति है, दृष्टिकी

मार्कण्डेय उवाच ॥ स एवं चिन्तयन्विप्रो बभ्राम च हिमाचले ॥ अष्टपादौषधिबलो वैक्लवं परमं गतः ॥ ३४ ॥ तं ददर्श भ्रमन्तं च मुनिश्रेष्ठं वरूथिनी ॥ वराप्सरा महाभागा मौलेया रूपशालिनी ॥ ३५ ॥ तस्मिन्दृष्टे ततः साभूद्द्विजवर्ये वरूथिनी ॥ मदनाकृष्टहृदया सानुरागा हि तत्क्षणात् ॥ ३६ ॥ चिन्तयामास को न्वेष रमणीयतमाकृतिः ॥ सफलं मे भवेज्जन्म यदि मां नावमन्यते ॥ ३७ ॥ अहोऽस्य रूपमाधुर्यमहोऽस्य ललिता गतिः ॥ अहो गम्भीरता दृष्टेः कुतोऽस्य सदृशो भुवि ॥ ३८ ॥ दृष्टा देवास्तथा दैत्याः सिद्धगन्धर्वपन्नगाः ॥ कथमेकोऽपि नास्त्यस्य तुल्यरूपो महात्मनः ॥ ३९ ॥ यथाहमस्मिन्मय्येष सानुरागस्तथा यदि ॥ भवेदत्र मया कार्यस्तत्कृतः पुण्यसंचयः ॥ ४० ॥ यद्येष मयि सुस्निग्धां दृष्टिमद्य निपातयेत् ॥ कृतपुण्या न मत्तोऽन्या त्रैलोक्ये वनिता ततः ॥ ४१ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं संचिन्तयन्ती सा दिव्ययोषित्स्मरातुरा ॥ आत्मानं दर्शयामास कमनीयतराकृतिम् ॥ ४२ ॥

गंभीरतामें क्या चमत्कार है, भूमण्डलमें इसकी समान पुरुष कौन है ? ॥ ३८ ॥ देव, दैत्य, सिद्ध, गंधर्व और पन्नग, यह समस्तही देखे हैं, किन्तु उनमें इन महात्माकी समान रूपवान् किसको भी नहीं देखा ॥ ३९ ॥ मैं इनके प्रति जिस प्रकार प्रीतिमती हुई हूं, यह भी यदि मुझमें उसी प्रकार अनुरक्त हो, तो मेरे पूर्वजन्मकृत पुण्यसंचयका फल प्राप्त हुआ समझना चाहिये ॥ ४० ॥ यदि यह मुझको स्निग्ध दृष्टिसे देखें, तो तीनों लोकमें मेरी समान स्त्री दूसरी कौन है ? ॥ ४१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–दिव्याङ्गना वरूथिनीने कामातुर हो इस प्रकार चिन्ता करते करते अपने मनोहर संपूर्ण अङ्गप्रत्यङ्ग इस बाल-

णको दिखाये ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणकुमार उस शोभायमान रूपवती वरूथिनीको देख, सम्यक् रीतिसे पाद्यादि उपचार ले, उसके निकट आनकर कहने लगा॥४३॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा वर्ण कमलके गर्भकी समान मनोहर है, तुम कौन हो? किसकी भार्या हो? यहां क्या कार्य करती हो ? मैं ब्राह्मण अरुणास्पद नगरसे यहां आगया हूं ॥ ४४ ॥ हे मदिरेक्षणे ! मैं जिसके प्रभावसे यहां आया हूं वह मेरा औषधीका पादलेप शीतलजलसे नष्ट होगया है और इस (बर्फसमूह) में लीन हो गया है ॥ ४५ ॥ वरूथिनी बोली हे—महाभाग ! मैं वरूथिनीनामक विख्यात अप्सरा सदाही इस रमणीय पर्वतपर विचरण

तां तु दृष्ट्वा द्विजसुतश्चारुरूपां वरूथिनीम् ॥ सोपचारं समागम्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ४३ ॥ का त्वं कमलगर्भाभे कस्य किं वानुतिष्ठसि ॥ ब्राह्मणोऽहमिहायातो नगरादरुणास्पदात् ॥ ४४ ॥ पादलेपोऽत्र मे ध्वस्तो विलीनो हिमवारिणा ॥ यस्यानुभावादत्राहमागतो मदिरेक्षणे ॥ ४५ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ मौलेयाहं महाभागा नाम्ना ख्याता वरूथिनी ॥ विचरामि सदैवात्र रमणीये महाचले ॥ ४६ ॥ साहं त्वद्दर्शनाद्विप्र कामवैक्लव्यतां गता ॥ प्रशाधि यन्मया कार्यं त्वदधीनास्मि सांप्रतम् ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ येनोपायेन गच्छेयं निजगेहं शुचिस्मिते ॥ तन्ममाचक्ष्व कल्याणि हानिर्नोऽखिलकर्मणाम् ॥ ४८ ॥ नित्यनैमित्तिकानां तु महाहानिर्द्विजन्मनः ॥ भवत्यतस्त्वं हे भद्रे मामुद्धर हिमालयात् ॥ ४९ ॥ प्रशस्यते न प्रवासो ब्राह्मणानां कदाचन ॥ अपराध्याति मे भीरु देशदर्शनकौतुकम् ॥ ५० ॥

करती रहती हूं ॥४६॥ हे विप्रवर ! अब तुमको देखकर मैं कामके वशीभूत हो निन्दनीय होती हूं, आज्ञा कीजिये, मैं क्या करूं? क्योंकि अब मैं आपकेही अधीन हुई हूं ॥४७॥ ब्राह्मणने कहा—हे शुचिस्मिते ! मैं जिस उपायसे अपने घर जासकूं वही मुझसे कह, हे कल्याणी ! परदेशके कारण यहां मेरे नित्य नैमित्तिक संपूर्ण कर्मोंकी हानि होती है ॥४८॥ ब्राह्मणके पक्षमें नित्य नैमित्तिक कर्मोंकी हानि महाअनिष्टकारक है, अतएव हे भद्रे ! इस हिमालयसे मुझको निकालो ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणका पर देशमें रहना कभी प्रशंसनीय नहीं है हे भीरु ! मैंने कोई अपराध नहीं किया है देशोंको देखनेके कौतूहलसे परदेशी हुआ हूं ॥ ५० ॥

घरमें वास करनेवाले ब्राह्मणके नित्यनैमित्तिक संपूर्ण कर्म संपन्न होते हैं, किन्तु परदेशी होनेसे उन सबकी हानि होती है ॥ ५१ ॥ हे यशस्विनी ! बहुत कहनेका प्रयोजन क्या है; इस समय जिस प्रकार सूर्यास्तके पहिलेही अपने घरको देखसकूं तू वही कर ॥ ५२ ॥ वरूथिनी बोली हे महाभाग ! जिस दिन आप मुझको छोडकर अपने घर जाँय, वह दिन मेरे लिये उपस्थित न हो ॥ ५३ ॥ हे द्विजनन्दन ! स्वर्ग भी इस स्थानकी अपेक्षा मनोहर नहीं है, अतएव मैं स्वर्गको छोडकर इस स्थानमें वास करूंगी ॥ ५४ ॥ हे कान्त ! आप इस रमणीय हिमाचलमें मेरे संग विहार करते हुए बांधवोंको भी स्मरण

सतो गृहे द्विजाग्र्यस्य निष्पत्तिः सर्वकर्मणाम् ॥ नित्यनैमित्तिकानां च हानिरेवं प्रसासिनः ॥ ५१ ॥ सा त्वं किं बहुनोक्तेन तथा कुरु यशस्विनि ॥ यथा नास्तंगते सूर्ये पश्यामि निजमालयम् ॥ ५२ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ मैवं ब्रूहि महाभाग मा भूत्स दिवसो मम ॥ मां परित्यज्य यत्र त्वं निजगेहमुपैष्यासि ॥ ५३ ॥ अहो रम्यतरः स्वर्गो न यतो द्विजनन्दन ॥ अतो वयं परित्यज्य तिष्ठामोऽत्र सुराल-यम् ॥ ५४ ॥ स त्वं सह मया कान्त कान्तेऽत्र तुहिनाचले ॥ रममाणो न मर्त्यानां बान्धवानां स्मरिष्यासि ॥ ५५ ॥ स्रजो वस्त्राण्य-लङ्कारान्भक्ष्यभोज्यानुलेपनम् ॥ दास्याम्यत्र तथाहं ते स्मरेण वशगा हृता ॥ ५६ ॥ वीणावेणुस्वनं गीतं किन्नराणां मनोरमम् ॥ अङ्गा-ह्लादकरो वायुरुष्णान्नमुदकं शुचि ॥ ५७ ॥ मनोभिलषिता शय्या सुगन्धमनुलेपनम् ॥ इहासतो महाभाग गृहे किं ते निजेऽधि-कम् ॥ ५८ ॥ इहासतो नैव जरा कदाचित्ते भविष्याति ॥ त्रिदशानामियं भूमिर्यौवनोपचयप्रदा ॥ ५९ ॥

नहीं करेंगे ॥ ५५ ॥ यहां मैं तुमको माल्य, वस्त्र, अलंकार, भक्ष्य, भोज्य और अनुलेपन प्रदान करूंगी, क्यों कि कामसे हरी जाकर मैं तुम्हारे वशीभूत हुई हूं ॥ ५६ ॥ हे महाभाग ! इस स्थानमें वास करनेसे वीणा, वेणुका शब्द, किन्नरोंका मनोहर संगीत, आह्लादजनक वायु, उष्ण अन्न, पवित्र जल ॥ ५७ ॥ अभिलाषित शय्या, सुगंधित अनुलेपन, यह सब तुमको सुलभ होंगे इन सबकी अपेक्षा तुम्हारे घरमें अधिक क्या है ? ॥ ५८ ॥ इस स्थानमें वास करनेसे तुम कभी जराग्रसित अर्थात् बूढे नहीं होगे, क्यों कि यह देवभूमि यौवनकी वृद्धि करनेवाली है ॥ ५९ ॥

यह कहकर अनुरागवती उस कमलकी समान नेत्रोंवाली वरूथिनीने अत्यन्त व्याकुल हो मधुर स्वरसे "प्रसन्न होओ" यह बात कहते कहते उसको सहसा आलिंगन किया ॥ ६० ॥ ब्राह्मणने कहा रे दुष्टे! मुझको स्पर्श मत कर, जो तेरे योग्य हो, उसकेही समीप जा। मैंने तुझसे जो प्रार्थना करी, तू उसके विपरीत विचार कर मुझसे मिलनेकी चेष्टा करती है ॥ ६१ ॥ प्रातःकाल और सायंकालमें होम करनेसे नित्य संपूर्ण शाश्वत लोक प्राप्त होते हैं। रे मूढे! यह समस्त त्रैलोक्य होमद्वाराही प्रतिष्ठित है ॥६२॥ अत एव उसका निर्वाह करनेके लिये जिस उपायसे मैं अपने घर पहुंच सकूं, उसको शीघ्र कह। वरूथिनी बोली—हे विप्र! मुझको देखकर क्यों तुम्हें प्रसन्नता नहीं होती यह हिमालय क्या रमणीय नहीं है? गंधर्व किन्नरादिकोंके अतिरिक्त और किस पुरुषकी

इत्युक्त्वा सानुरागा सा सहसा कमलेक्षणा ॥ आलिलिङ्ग प्रसीदेति वदन्ती कलमुन्मनाः ॥ ६० ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ मा मां स्प्राक्षीर्व्रजान्यत्र दुष्टे यः सदृशस्तव ॥ मयान्यथा याचिता त्वमन्यथैवाभ्युपैषि माम् ॥ ६१ ॥ सायंप्रातर्हुतं हव्यं लोकान्यच्छाति शाश्वतान् ॥ त्रैलोक्यमेतदखिलं मूढे हव्ये प्रतिष्ठितम् ॥ ६२ ॥ तमुपायं समाचक्ष्व येन यामि स्वमालयम् ॥ वरूथिन्युवाच ॥ किं तेनाहं प्रिया विप्र रमणीयो न किं गिरिः ॥ गन्धर्वान्किन्नरादींश्च त्यक्त्वाभीष्टो हि कस्तव ॥ ६३ ॥ निजमालयमप्यस्माद्भवान्यास्यत्यसंशयम् ॥ स्वल्पकालं मया सार्द्धं भुङ्क्ष्व भोगान्सुदुर्लभान् ॥ ६४ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अभीष्टा गार्हपत्याद्याः सततं मे त्रयोऽग्नयः ॥ रम्यं ममाग्निशरणं वेदी विष्टरिणी प्रिया ॥ ६५ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ अष्टावात्मगुणा ये हि तेषामादौ दया द्विज ॥ तां करोषि कथं न त्वं मयि सद्धर्मपालक ॥ ६६ ॥ त्वद्विमुक्ता न जीवामि तथा प्रीतिमती त्वयि ॥ नैतद्वदाम्यहं मिथ्या प्रसीद कुलनन्दन ॥ ६७ ॥

आप इच्छा करते हैं? ॥६३॥ आप निःसन्देह यहांसे अपने घर जा सकेंगे, किंतु इस समय मेरे संग यहां कुछ कालतक दुर्लभ सुखभोग कीजिये ॥६४॥ ब्राह्मणने कहा गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि यह तीन अग्निही मेरी अभीष्ट हैं, अग्निगृहही रमणीयस्थान और विष्टरिणी वेदीही मुझको प्रसन्न करती है ॥ ६५ ॥ वरूथिनी बोली—हे द्विज! आठ प्रकारके आत्मगुणोंमें दयाही प्रधान है, फिर आप सद्धर्मपालक होकर भी प्रीति दया क्यों मेरे प्रति नहीं करते ॥ ६६ ॥ मैं आपके प्रति जिस प्रकार प्रीतिमती अर्थात् अनुरागिणी हुई हूं, इससे आपके विना जीवित नहीं रह सकती, मैं मिथ्या नहीं कहती हूं;

आप अपने कुलको आनन्द देनेवाले हैं अब आप मुझपर प्रसन्न हूजिये ॥६७॥ ब्राह्मणने कहा–यदि तू मेरे प्रति सत्यही प्रीतिमती हुई है, और मुझसे जो कहा, वह यदि मिथ्या वचन नहीं है, तो मैं जिस उपायसे अपने घर पहुंचसकूं, वह मुझसे कह ॥६८॥ वरूथिनी बोली–आप निःसन्देह इस स्थानसे अपने घर जा सकत हैं, किन्तु अब मेरे संग अल्पकालतक दुर्लभसुख भोगिये ॥६९॥ ब्राह्मणने कहा–हे वरूथिनी ! शास्त्रकी आज्ञा ब्राह्मणके लिये भोग करनेको नहीं ह क्यों कि चेष्टा ब्राह्मणको इस लोकमें क्लेश और पर लोकमें विपरीत फल प्रदान करती है ॥ ७० ॥ वरूथिनी बोली–मैं मृतप्राय हुई हूं मेरी रक्षा करनेसे आपको परलोकमें उसी पुण्यका फल प्राप्त होगा। और दूसरे जन्ममें आप उसीके द्वारा अनेक भोग प्राप्त करेंगे ॥७१॥ परलोक और जन्मान्तरमें

ब्राह्मण उवाच ॥ यदि प्रीतिमती सत्यं नोपचाराद्ब्रवीषि माम् ॥ तदुपायं समाचक्ष्व येन यामि स्वमालयम् ॥ ६८ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ निजमालयमप्यस्माद्भवान्यास्यत्यसंशयम् ॥ स्वल्पकालं मया सार्द्धं भुङ्क्ष्व भोगान्सुदुर्लभान् ॥ ६९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ न भोगार्थाय विप्राणां शस्यते हि वरूथिनि ॥ इह क्लेशाय विप्राणां चेष्टा प्रेत्य फलप्रदा ॥ ७० ॥ वरूथिन्युवाच ॥ सन्त्राणं म्रियमाणाया मम कृत्वा परंत्र ते ॥ पुण्यस्यैव फलं भावि भोगाश्चान्यत्र जन्मनि ॥ ७१ ॥ एवं च द्वयमप्यत्र तवोपचयकारणम् ॥ प्रत्याख्यानादहं मृत्युं त्वं च पापमवाप्स्यसि ॥७२॥ ब्राह्मण उवाच ॥ परस्त्रियं नाभिलषेदित्यूचुर्गुरवो मम ॥ तेन त्वां नाभिवाञ्छामि कामं विलप शुष्य वा ॥७३॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्त्वा स महाभागः स्पृष्ट्वापः प्रयतः शुचिः ॥ प्राहेदं प्रणिपत्याग्निं गार्हपत्यमुपांशुना ॥ ७४ ॥

भोग, इन दोनों प्रकारके पुण्योंका फलही आपको लाभदायक है, किन्तु मुझको निराश करनेसे मेरी मृत्यु होगी और आपभी पापके भागी होंगे ॥७२॥ ब्राह्मणने कहा–मेरे गुरुने कहा है, परस्त्रीमें इच्छा न करना अतएव तू विलाप कर अथवा यौवन त्याग कर, मैं तेरी इच्छा नहीं करता ॥ ७३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–वरूथिनीसे इस प्रकार कहकर वह नियमवान् महाभाग ब्राह्मण आचमनके अन्तमें शुद्ध हो गार्हपत्य अग्निको प्रणामपूर्वक उपांशु जपद्वारा यह कहने लगा ॥ ७४ ॥

हे भगवन् ! गार्हपत्य अग्ने ! तुम्हीं सब कर्मोंके बीजस्वरूप हो । आहवनीय और दक्षिण यह दोनों अग्नि तुमसेही उत्पन्न हुए हैं अन्य कोई उनका उत्पन्न करनेवाला नहीं है ॥ ७५ ॥ तुम्हारे प्रसन्न होनेपरही देवता वृष्टि और सस्य इत्यादि प्रदान करते हैं, तथा सस्य (धान्य) सेही जगत् प्रतिष्ठित है, अन्य किसी प्रकार नहीं रह सकता ॥ ७६ ॥ जिस सत्यद्वारा यह जगत् तुममें इसी प्रकार प्रतिष्ठित है, मैं उसी सत्यद्वारा जिससे अभी सूर्यके विद्यमान रहते रहते अपने घरको देख सकूं ॥ ७७ ॥ जिस सत्यसे संपूर्ण वैदिक कर्म यथोचित कालमें संपादित होते हैं, मैं उसी सत्यसे गृहवासी होकर अभी दिवाकरको देखूं ॥ ७८ ॥ जिस सत्यसे कभी मेरी मति परद्रव्य अथवा पराई स्त्रीमें अभिलाषिणी नहीं हुईहै, उसी सत्यसे मेरी वह मति अब इस विषयमें

भगवन्गार्हपत्याग्ने योनिस्त्वं सर्वकर्मणाम् ॥ त्वत्त आहवनीयोऽग्निर्दक्षिणाग्निश्च नान्यतः ॥ ७५ ॥ युष्मदाप्यायनाद्देवा वृष्टिसस्यादिहेतवः ॥ भवन्ति सस्यादखिलं जगद्भवाति नान्यतः ॥ ७६ ॥ एवं त्वत्तो भवत्येतद्येन सत्येन वै जगत् ॥ तथाहमद्य स्वं गेहं पश्येयं सति भास्करे ॥ ७७ ॥ यथा वै वैदिकं कर्म स्वकाले नोज्झितं मया ॥ तेन सत्येन पश्येयं गृहस्थोऽथ दिवाकरम् ॥ ७८ ॥ यथा च न परद्रव्ये परदारे च मे मतिः ॥ कदाचित्साभिलाषाभूत्तथैतत्सिद्धिमेतु मे ॥ ७९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे ब्राह्मणवाक्यं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं तु वदतस्तस्य द्विजपुत्रस्य पावकः ॥ गार्हपत्यः शरीरे तु सान्निधानमथाकरोत् ॥ १ ॥ तेन चाधिष्ठितः सोऽथ प्रभामण्डलमध्यगः ॥ व्यदीपयत तं देशं मूर्तिमानिव हव्यवाट् ॥ २ ॥ तस्यास्तु सुतरां तत्र तादृग्रूपे द्विजन्मनि ॥ अनुरागोऽभवद्विप्र पश्यन्त्या देवयोषितः ॥ ३ ॥

सिद्धि लाभ करे ॥ ७९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषे मन्वन्तरे ब्राह्मणवाक्यं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—इस प्रकार कहते कहते द्विजपुत्रके शरीरमें गार्हपत्य अग्निने आनकर अधिष्ठान किया ॥ १ ॥ उससे प्रभामण्डलमध्यवर्ती हो वह ब्राह्मण मूर्त्तिमान् अग्निकी समान स्वयं उस देशको प्रकाशित करने लगा ॥ २ ॥ हे विप्र ! जब वरूथिनी नामक अप्सराने इस प्रकार उस ब्राह्मणकुमारका रूप देखा, तब अत्यन्त अनुरागसे और भी अधिक मोहित होगई ॥ ३ ॥

मा० पु०

॥२०२॥

जब इस द्विजनन्दनमें अग्निका अधिष्ठान अर्थात् प्रवेश हुआ, तो तत्कालही वह पूर्ववत् शक्तिमान् हो गमन करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ ४ ॥ तन्वङ्गी वरूथिनी खडी देखती रही और यह विप्रकुमार अत्यन्त शीघ्रतायुक्त गतिसे चल दिया, जब वह इसको दिखाई नहीं दिया, तब यह लम्बे लम्बे श्वास लेती हुई कम्पायमान होने लगी ॥ ५ ॥ तदनन्तर वह उत्तम ब्राह्मण क्षणकालमेंही अपने घर पहुंचा और पूर्वोक्त नित्य नैमित्तिक संपूर्ण क्रियाकलापका अनुष्ठान करने लगा ॥ ६ ॥ फिर उस सर्वाङ्गमनोहर वरूथिनीने उक्त द्विजवरके प्रति आसक्तचित्त हो दीर्घश्वास छोडते छोडते उस दिनका शेषभाग और रात्रि बिताई ॥ ७ ॥ मदिरेक्षणा सर्वाङ्गसुन्दरी वह अप्सरा हाहाकार शब्दसे रोदन और वारम्वार दीर्घ श्वास छोडते छोडते अपने आपको अत्यन्त हतभाग्य

ततः सोऽधिष्ठितस्तेन हव्यवाहेन तत्क्षणात् ॥ यथापूर्वं तथा गन्तुं प्रवृत्तो द्विजनन्दनः ॥ ४ ॥ जगाम च त्वरायुक्तस्तया सार्द्धं निरीक्षितः ॥ आदृष्टिपातात्तन्वङ्ग्या निश्वासोत्कम्पिकन्धरम् ॥ ५ ॥ ततः क्षणेनैव तदा निजगेहमवाप्य सः ॥ यथा प्रोक्तं द्विजश्रेष्ठश्चकार सकलाः क्रियाः ॥ ६ ॥ अथ सा चारुसर्वांगी तत्रासक्तात्ममानसा ॥ निश्वासपरमा निन्ये दिनशेषं तथा निशाम् ॥ ७ ॥ निश्वसन्त्यनवद्याङ्गी हाहेति रुदती मुहुः ॥ मन्दभाग्येति चात्मानं निनिन्द मदिरेक्षणा ॥ ८ ॥ न विहारे न चाहारे रमणीये न वा वने ॥ न कन्दरेषु रम्येषु सा बबन्ध तदा रतिम् ॥ ९ ॥ चकार रममाणे च चक्रवाकयुगे स्पृहाम् ॥ मुक्ता तेन वरारोहा निनिन्द निजयौवनम् ॥ १० ॥ क्वागताहमिमं शैलं दुष्टदैवबलात्कृता ॥ क्व च प्राप्तः स मे दृष्टेर्गोचरं तादृशो नरः ॥ ११ ॥ यद्यद्य स महाभागो न मे संगमुपैष्यति ॥ तत्कामाग्निरवश्यं मां क्षपयिष्यति दुःसहः ॥ १२ ॥

भा० टी०

अ० ६१

जान निन्दा करने लगी ॥ ८ ॥ क्या आहार, क्या विहार, क्या रमणीय वन, क्या मनोहर पर्वतोंकी कन्दरा, किसीसे भी वह तोष प्राप्त नहीं कर-सकी ॥ ९ ॥ दो चक्रवाकोंको रमण करता हुआ देखकर उसको रमणविषयमें स्पृहा उत्पन्न हुई; किन्तु वह द्विजवरसे त्यागी गई थी; इस लिये अपने यौवनकी निन्दा करने लगी ॥ १० ॥ दुष्ट दैवके वशीभूत होकर मैं जो इस पर्वतमें आई; यह क्या कभी संभव था और वह सर्वाङ्गसुन्दर पुरुषश्रेष्ठ जो मुझको दिखाई दिया; उसको मैं क्या जानती थी ? ॥ ११ ॥ इस समय यदि वह महाभाग मेरे सहित संगत न होंगे, तो मैं दुःसह कामाग्निसे भस्म

होकर अवश्य जीवन परित्याग करूंगी ॥ १२ ॥ पहिले जो मेरा श्रवणरंजन था, इस समय द्विजवरके विरहमें वह कोकिलका शब्द मानो अग्निकी समान मुझको दग्ध करता है ॥ १३॥ मार्कण्डेयजी बोले—वरूथिनीने इस प्रकार कामासक्त हो सहसा मुनिसत्तमको मनसे देखा, तब उनमें प्रतिक्षण उसका अनुराग बढने लगा ॥ १४ ॥ पहिले इस अप्सराने जो कि इसके प्रति अत्यन्त अनुरक्त था, उस कलिनामक एक गंधर्वका निरादर कर दिया था, वह इस समय इसकी ऐसी अवस्था देखकर ॥ १५ ॥ चिन्ता करनेलगा "इस पर्वतमें यह जो गजगामिनी प्रतिक्षण निश्वासपवनघातसे परिम्लान होती है, यह क्या वही वरूथिनी है ॥ १६ ॥ क्या यह मुनिके शापसे ग्रसित हुई है या किसीने इसका अपमान किया है। क्योंकि इसके मुखपर आसुओंकी

रमणीयमभूद्यत्तत्पुंस्कोकिलनिनादितम् ॥ तेन हीनं तदेवैतद्दहतीवाद्य मामलम् ॥१३॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्थं सा मदनाविष्टा जगाम मुनिसत्तमम् ॥ ववृधे च तदा रागस्तस्यास्तस्मिन्प्रतिक्षणम् ॥ १४ ॥ कलिर्नाम्ना तु गन्धर्वः सानुरागो निराकृतः ॥ तया पूर्वमभूत्सोऽथ तदवस्थां ददर्श ताम् ॥ १५ ॥ स चिन्तयामास तदा किं न्वेषा गजगामिनी ॥ निश्वासपवनम्लाना गिरावत्र वरूथिनी ॥ १६॥ मुनिशापक्षता किं नु केनचित्किं विमानिता ॥ बाष्पवारिपरिक्लिन्नामियं धत्ते यतो मुखम् ॥१७॥ ततः स दध्यौ सुचिरं तमर्थं कौतुकात्कलिः ॥ ज्ञातवांश्च प्रभावेण समाधेः स यथातथम् ॥ १८ ॥ पुनः स चिन्तयामास तद्विज्ञाय मुनेः कलिः ॥ ममोपपादितं साधु भाग्यैरेतत्पुराकृतैः ॥ १९ ॥ मयैषा सानुरागेण बहुशः प्रार्थिता सती ॥ निराकृतवती सेयमद्य प्राप्या भविष्यति ॥ २० ॥

बूंदें दिखाई देती हैं ॥ १७ ॥ अनन्तर कलिने कौतूहलके वशीभूत हो, बहुत कालतक उस विषयकी चिन्ता कर ध्यानके द्वारा संपूर्ण यथार्थ वृत्तान्त जान लिया ॥ १८ ॥ मुनिघटित वह सब वृत्तान्त जानकर फिर चिन्ता करनेलगा "मेरे पहिले किये पुण्यके फलसे मेरा यह अभिलाषित विषय सिद्ध हुआ" ॥ १९ ॥ मेरे अनुरक्त होकर वारंवार प्रार्थना करनेपर भी जिसने मेरा निरादर किया था वही वरूथिनी अब मुझको सुलभ होगी अर्थात् प्राप्त होगी ॥ २० ॥

यह अप्सरा मनुष्यके प्रति अनुरागवती हुई है. इस समय मैं यदि मुनिका रूप धारण करूं तो मेरे प्रति भी निःसन्देह प्रीतिमती होगी। अब विलम्ब नहीं करना चाहिये ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—इसके पीछे वह कलि आत्मप्रभावसे उस ब्राह्मणका रूप धारण कर जिस स्थानमें वरूथिनी बैठीथी, वहां विचरण करने लगा ॥ २२ ॥ कृशाङ्गी वरारोहा उस मुनिवेशधारी कलिको देख मुनि जान, आह्लादसे कुछेक प्रफुल्लनेत्र हो उसके समीप जाकर "मुझपर प्रसन्न होओ" यह बात वारंवार कहने लगी ॥ २३॥ और यह भी कहा कि, यदि आप मुझको छोडदेंगे तो मैं जीवन परित्याग करूंगी मेरे जीवन त्याग करनेसे आपको अधर्म होगा और उस अधर्मके कारण क्रिया भी अवश्य लोप होगी ॥ २४ ॥ यदि इस महाकन्दरायुक्त हिमालय पर्वतकी मनो-

मानुषे सानुरागेयं तत्र तद्रूपधारिणि ॥ रंस्यते मय्यसन्दिग्धं किंकालेन करोमि तत् ॥ २१ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ आत्मप्रभावेण ततस्तस्य रूपं द्विजन्मनः ॥ कृत्वा चचार यत्रास्ते निषण्णा सा वरूथिनी ॥२२॥ सा तं दृष्ट्वा वरारोहा किंचिदुत्फुल्ललोचना ॥ समेत्य प्राह तन्वंगी प्रसीदेति पुनः पुन ॥२३॥ त्वया त्यक्ता न सन्देहः परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ तत्राधर्मः कष्टतरः क्रियालोपो भविष्यति ॥२४॥ मया समेत्य रम्येऽस्मिन्महात्मन्वनकन्दरे ॥ मत्परित्राणजं धर्ममवश्यं प्रतिपत्स्यसे ॥ २५ ॥ आयुषः सावशेषं मे नूनमस्ति महामते ॥ निवृत्तस्तेन नूनं त्वं हृदयाह्लादकारकः ॥ २६ ॥ कलिरुवाच ॥ किं करोमि क्रियाहानिर्भवत्यत्र सतो मम ॥ त्वमप्येवंविधं वाक्यं ब्रवीपि तनुमध्यमे ॥ २७ ॥ तदहं सङ्कटं प्राप्तो यद्ब्रवीमि करोषि तत् ॥ यदि स्यात्संगमो मेऽद्य भवत्या सह नान्यथा ॥ २८ ॥

हर गुहामें मेरे संग रमण करके मेरी रक्षा करोगे, तो उस रक्षा करनेका धर्मभी अवश्य आपको प्राप्त होगा ॥ २५ ॥ हे महामते ! अबतक मेरी अवस्था शेष नहीं हुई है, इसी कारण आपने निवृत्त होकर मेरे हृदयमें आनन्द अनुभव कराया ॥ २६ ॥ कलिने कहा हे कृशोदरि ! मैं क्या करूं ? इस स्थानमें रहनेसे मेरी क्रियाका लोप तो होहीगा और तुम भी इस प्रकारके अनुराधवचन कहती हो ॥ २७ ॥ अतएव संकटको प्राप्त होकर मुझको तुम्हारी बातमें सम्मत होना पडा। किन्तु मैं जो कहताहूं वह यदि स्वीकार करो तो तुम्हारे संग मेरा मिलन हो अन्यथा नहीं ॥ २८ ॥

वरूथिनी बोली-आप प्रसन्न हूजिये, आप जो कहेंगे, मैं वही करूंगी, इसमें संदेह न कीजिये मैं मिथ्या नहीं कहती हूं आपकी कही बात मैं अभी संपादन करूंगी ॥ २९ ॥ कलिने कहा हे सुभ्रु ! तो यह बात अंगीकार करो कि, "वनमें विहारके समय तुम मुझको न देखो, तुमको मेरे संग नेत्र मूंदकर संसर्ग करना होगा" ॥ ३० ॥ वरूथिनी बोली-"यही हो" आपकी जिस प्रकार इच्छा है, वह उसी प्रकार संपन्न होगी । मैं इस समय स्वीकार करती हूं कि सब प्रकारसे आपके वशीभूत हुई । आपका मंगल हो ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषे मन्वन्तरे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥ मार्कण्डेयजी बोले-कलि वरूथिनीके संग पर्वतके कंगूरे, मनोहर कुसुमितवनों, मनोज्ञ सरोवरों ॥ १ ॥ रमणीय गुहा, नदी-

वरूथिन्युवाच ॥ प्रसीद यद्ब्रवीषि त्वं तत्करोमि न ते मृषा ॥ ब्रवीम्येतदनाशङ्कं यत्तत्कार्यं मयाधुना ॥ २९ ॥ कलिरुवाच ॥ नाद्य संभोगसमये द्रष्टव्योऽहं त्वया वने ॥ निमीलिताक्ष्याः संसर्गस्तव सुभ्रु मया सह ॥ ३० ॥ वरूथिन्युवाच ॥ एवं भवतु भद्रं ते यथेच्छासि तथास्तु तत् ॥ मया सर्वप्रकारं हि वशे स्थेयं तवाधुना ॥३१॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे एकोनषष्टितमोऽध्यायः॥५९॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः सह तया सोऽथ रराम गिरिसानुषु ॥ फुल्लकाननहृद्येषु मनोज्ञेषु सरःसु च ॥ १ ॥ कन्दरेषु च रम्येषु निम्नगा-पुलिनेषु च ॥ मनोज्ञेषु तथान्येषु देशेषु मुदितो द्विज ॥ २ ॥ वह्निनाधिष्ठितस्यासीद्यद्रूपं तस्य तेजसा ॥ अचिन्तयद्भोगकाले निमीलितविलोचना ॥ ३ ॥ ततः कालेन सा गर्भमवाप मुनिसत्तम ॥ गन्धर्ववीर्यतो रूपं चिन्तनाच्च द्विजन्मनः ॥ ४ ॥ तां गर्भधारिणीं सोऽथ सान्त्वयित्वा वरूथिनीम् ॥ विप्ररूपधरो यातस्तया प्रीत्या विसर्जितः ॥ ५ ॥

पुलिन और अन्यान्य संपूर्ण देशोंमें प्रसन्न चित्तसे रमण करने लगा ॥ २ ॥ अग्निसे अधिष्ठित होनेके कारण उस ब्राह्मण तेजस्वीका जो रूप होगयाथा वरूथिनी संभोगकालमें नेत्र मूंदकर उसीकी चिन्ता करने लगी ॥ ३ ॥ हे मुनिसत्तम ! तदनन्तर उस अप्सराने यथा समयमें गंधर्वके औरससे गर्भधारण किया । विहारकालमें ब्राह्मणके रूपकी चिन्ता करनेसे उस समय उसका रूपभी उसीकी समान तेजस्वी हुआ ॥ ४ ॥ वह विप्ररूपधारी गंधर्व गर्भवती वरूथिनीको समुझाय उससे प्रीतिपूर्वक विदा होकर चलागया ॥ ५ ॥

सूर्यनारायण जिस प्रकार अपनी किरणोंके द्वारा समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हैं, इसी प्रकार अंगकी प्रभासे चारों दिशाको दीप्तिमान् कर प्रज्वलित अग्निकी समान दीप्तिशाली एक बालकने यथा कालमें जन्मग्रहण किया ॥ ६ ॥ स्वरोचि अर्थात् अपने अंगकी प्रभासे सूर्यकी समान दीप्ति पानेके कारण वह बालक 'स्वरोचिः' नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ७ ॥ हे महाभाग ! चन्द्रमाकी कला जिस प्रकार शुक्लपक्षमें दिन दिन बढती है, उसी प्रकार उक्त महानुभाव बालकके गुण भी प्रतिदिन अवस्थाके अनुसार बढने लगे ॥ ८ ॥ उस महाभाग स्वरोचिने क्रमानुसार चारों वेद, संपूर्ण शास्त्र और धनुर्वेदमें सुशिक्षित हो यौवनकी सीमामें पदार्पण किया ॥ ९ ॥ उस शोभनगति स्वरोचिने किसी समय मन्दरपर्वतपर विचरण करते करते पर्वतप्रान्तमें एक भयसे

जज्ञे स बालो द्युतिमाञ्ज्वलन्निव विभावसुः ॥ स्वरोचिभिर्यथा सूर्यो भासयन्सकला दिशः ॥ ६ ॥ स्वरोचिभिर्यतो भाति भास्वानिव स बालकः ॥ ततः स्वरोचिरित्येवं नाम्ना ख्यातो बभूव सः ॥७॥ ववृधे च महाभागो वयसानुदिनं तथा ॥ गुणौघैश्च यथा बालः कलाभिः शशलाञ्छनः ॥ ८ ॥ स जग्राह धनुर्वेदं वेदांश्चैव यथाक्रमम् ॥ विद्याश्चैव महाभागस्तदा यौवनगोचरः ॥ ९ ॥ मन्दराद्रौ कदाचित्स विचरंश्चारुचेष्टितः ॥ ददर्शैकां तदा कन्यां गिरिप्रस्थे भयातुराम् ॥ १० ॥ त्रायस्वेति निरीक्ष्यैनं सा तदा वाक्यमब्रवीत् ॥ मा भैषीरिति स प्राह भयविप्लुतलोचनाम् ॥ ११ ॥ किमेतदिति तेनोक्ते वीरवाक्ये महात्मना ॥ ततः सा कथयामास श्वासाक्षेपप्लुताक्षरम् ॥ १२ ॥ कन्योवाच ॥ अहमिन्दीवराख्यस्य सुता विद्याधरस्य वै ॥ नाम्ना मनोरमा जाता सुतायां मरुधन्वनः ॥ १३ ॥ मन्दारविद्याधरजा सखी मम विभावरी ॥ कलावती चाप्यपरा सुता पारस्य वै मुनेः ॥ १४ ॥

आतुर हुई कन्याको देखा ॥ १० ॥ उस कन्याने इनको देखकर 'रक्षा करो' इस प्रकार कहा । तब उन्होंने भी कन्याको भयसे विह्वल देखकर "भय नहीं है" यह कहकर समुझाया ॥ ११ ॥ इसके पीछे उन महात्माने वीरजनोचित वचनोंसे "तुमको क्या हुआ है" इस भांति पूछा । तब कन्या श्वास लेती हुई टूटे फूटे शब्दोंसे कहने लगी ॥१२॥ कन्या बोली-हे महाभाग! इन्दीवर नामक विद्याधरके औरस और मरुधन्वाकी कन्याके गर्भसे मेरा जन्म हुआ है मेरा नाम मनोरमा है ॥ १३ ॥ विभावरी और कलावती नामक मेरी दो सखी हैं । पहली मन्दारनामक विद्याधरकी कन्या और

दूसरी पारमुनिकी कन्या है ॥ १४ ॥ एक दिन मैंने उनके संग अतिउत्तम कैलासके तटमें जाकर वहां एक मुनिको देखा था । वह अत्यन्त दुबले उनके अंग तपके क्लेशसे अत्यन्त कृश ॥ १५ ॥ क्षुधासे कंठ क्षीण (नेत्र मानो खखोडलसे होगये हैं वे मानो चक्षु फाडकर निकले पडते हैं) जब मैंने उन तपस्वीकी हँसी करी तब उन्होंने क्रोधित हो अत्यन्त क्षीण कंठसे कुछेक कम्पायमान होठ कर तत्काल मुझको यह शाप दिया " हे अनार्ये दुष्टतापसी ! तैंने मेरी हँसी करी है ॥ १६ ॥ १७ ॥ इस कारण तू शीघ्रही राक्षसके निकटसे पराभवको प्राप्त होगी " मुनिके इस प्रकार शाप देनेपर मेरी उन दोनों सखियोंने उन मुनिकी भर्त्सना (बुराई) करी ॥ १८ ॥ तुम सरीखे क्षमाहीन ब्राह्मणको धिक्कार है तुमने जो तपस्या करी है वह सब वृथा है । जानपडता

ताभ्यां सह मया यातं कैलासतटमुत्तमम् ॥ तत्र दृष्टो मुनिः कश्चित्तपसातिकृशाकृतिः ॥ १५ ॥ ॥ क्षुत्क्षामकण्ठो निस्तेजा दूरपाताक्षितारकः ॥ मयावहसितः क्रुद्धः स तदा मां शशाप ह ॥ १६ ॥ क्षामक्षामस्वरः किंचित्कंपिताधरपल्लवः ॥ त्वयावहसितो यस्मादनार्ये दुष्टतापसि ॥ १७ ॥ तस्मात्त्वामचिरेणैव राक्षसोऽभिभविष्यति ॥ दत्ते शापे मत्सखिभ्यां स तु निर्भत्सितो मुनिः ॥ १८ ॥ धिक्ते ब्राह्मण्यमक्षान्त्या हतं ते निखिलं तपः ॥ अमर्षणैर्धर्षितोऽसि तपसा नातिकार्शितः ॥ १९ ॥ क्षान्त्यास्पदं वै ब्राह्मण्यं क्रोधसंयमनं तपः ॥ एतच्छ्रुत्वा ददौ शापं तयोरप्यमितद्युतिः ॥ २० ॥ एकस्याः कुष्ठमङ्गेषु भाव्यन्यस्यास्तथा क्षयः ॥ तयोस्तथैव तज्जातं यथोक्तं तेन तत्क्षणात् ॥ २१ ॥ ममाप्येवं महद्रक्षः समुपैति पदानुगम् ॥ न शृणोषि महानादं तस्यादूरेऽपि गर्जतः ॥ २२ ॥ तृतीयमद्य दिवसं यन्मे पृष्ठं न मुंचाति ॥ अस्त्रग्रामस्य सर्वस्य हृदयज्ञाहमद्य ते ॥ २३ ॥

है क्रोधसे तुम्हारा शरीर कृश हो रहा है तपसे नहीं ॥१९॥ क्योंकि ब्राह्मण क्षमाके आधार हैं और क्रोधसंयमही उनकी तपस्या है तुम तपस्यामें परिपक्व न होकर इस बीचमेंही अपने क्रोधसे आप नष्ट हुए । यह तिरस्कार सुनतेही उन अतुलप्रभावशाली मुनिने उनको भी शाप दिया ॥ २० ॥ एकसे कहा " तेरे सर्वाङ्गमें कुष्ठ होगा " और दूसरीसे " तेरे क्षयरोग होगा " यह कहकर शाप दिया । मुनिके यह वचन कहते कहतेही तत्काल उनके उसी प्रकार रोग उत्पन्न हुए ॥ २१॥ और मेरे पीछे भी एक महाराक्षस दौडा । आज तीसरा दिन हुआ किसी प्रकारसे भी वह मेरा संग नहीं छोडता, यह निक-

टही महान् गर्जन कररहा है, वह शब्द क्या आपको सुनाई नहीं आता ? संपूर्ण अस्त्रोंके सार द्वारा बना हुआ यह प्रसिद्ध अस्त्र ॥२२॥ २३॥ आपको देती हूं आप इसके द्वारा मेरी विपद्से रक्षा कीजिये । हे महामते ! यह अस्त्र पहले पिनाकपाणि रुद्रने स्वायम्भुव मनुको दिया था ॥ २४ ॥ स्वायम्भुवने वह सिद्ध श्रेष्ठ अस्त्र वशिष्ठको दिया, फिर मेरे नाना चित्रायुधने वशिष्ठजीसे वह अस्त्र प्राप्त कर ॥ २५ ॥ विवाहके यौतुकमें मेरे पिताको दिया हे वीर ! मैंने बाल्यकालमें पितासे सब अस्त्रोंके सारभूत इस अस्त्रकी शिक्षा पाई थी ॥ २६ ॥ यह समस्त अस्त्रोंका हृदय जो शत्रुओंका नाश करनेवाला है, इसको आप शीघ्र ग्रहण कीजिये, यह सब अस्त्रोंका काम देता है ॥ २७ ॥ इसको ग्रहण करके शीघ्र इस दुष्टात्मा राक्षसको मारो जो ब्राह्मणके शापसे मेरे पीछे

तं प्रयच्छामि मां रक्ष रक्षसोऽस्मान्महामते ॥ प्रादात्स्वायम्भुवस्यादौ स्वयं रुद्रः पिनाकधृक् ॥ २४ ॥ स्वायम्भुवो वसिष्ठाय सिद्धवर्याय दत्तवान् ॥ तेनापि दत्तं मन्मातुः पित्रे चित्रायुधाय वै ॥ २५ ॥ प्रादादौद्वाहिकं सोऽपि मत्पित्रे श्वशुरः स्वयम् ॥ मयापि शिक्षितं वीर सकाशाद्बालया पितुः ॥ २६ ॥ हृदयं सकलास्त्राणामशेषरिपुनाशनम् ॥ तदिदं गृह्यतां शीघ्रमशेषास्त्रपरायणम् ॥ २७ ॥ ततो जहि दुरात्मानमेनं राक्षसमागतम् ॥ २८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तथेत्युक्ते ततस्तेन वार्युपस्पृश्य तस्य तत् ॥ अस्त्राणां हृदयं प्रादात्सरहस्यानिवर्तनम् ॥ २९ ॥ एतस्मिन्नन्तरे रक्षस्तत्तदाभीषणाकृति ॥ नर्दमानं महानादमाजगाम त्वरान्तिम् ॥ ३० ॥ मयाभिभूता किं त्राणमुपैति द्रुतमेहि मे ॥ भक्षाय किंचिरेणेति ब्रुवाणं तद्ददर्श सः ॥ ३१ ॥

पडा हुआ है ॥ २८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—फिर जब स्वराचि अस्त्र ग्रहण करनेमें सम्मत हुए, तब उस मनोरमा नामक विद्याधरीने आचमनपूर्वक रहस्य और निवर्तन मंत्रके सहित वह अस्त्रहृदय मंत्र उनको दिया ॥२९॥ इसी अवसरमें स्वरोचिने देखा कि वह भयंकर आकार राक्षस महाशब्दसे गर्जता हुआ शीघ्र आनकर उपस्थित हुआ ॥ ३० ॥ वह आनकर " मेरे आक्रमण करनेपर क्या कोई रक्षा पासकता है, अब विलम्बकी क्या आवश्यकता है शीघ्र आओ, मैं भोजन करूं " इस प्रकार कहते हुए उस राक्षसको उन्होंने देखा ॥ ३१ ॥

उसको आया हुआ देखकर स्वरोचि चिन्ता करने लगे कि "यदि यह राक्षस इस कन्याको ग्रहण करै तो उन महामुनि महर्षिका वचन सत्य होगा" ॥ ३२॥ स्वरोचिके इस प्रकार चिंता करते करतेही उस राक्षसने शीघ्र आनकर विद्याधरीको ग्रहण किया, इससे वह सुमध्यमा "त्राहि त्राहि" शब्दद्वारा करुणास्वरसे विलाप करने लगी ॥ ३३॥ तदनन्तर स्वरोचिने अत्यन्त क्रोधित हो धनुषमें अत्यन्त भयंकर प्रचण्डास्त्र चढाय उस राक्षसकी ओर एक टक देखा ॥ ३४ ॥ उनको देख भयसे विह्वल हो उस निशाचरने मनोरमा कन्याको छोड, स्वरोचिसे कहा। आप प्रसन्न हूजिये और अस्त्र परित्याग कीजिये। मैं अपना वृत्तान्त कहता हूं, सुनिये ॥ ३५ ॥ हे महाद्युतिमान्! अत्यन्त तेजस्वी बुद्धिमान् ब्रह्ममित्रने मुझको जो कठिन शाप दिया था, आपने

स्वरोचिश्चिन्तयामास दृष्ट्वा तं समुपागतम् ॥ गृह्णात्येष वचः सत्यं तस्यास्त्विति महामुनेः ॥ ३२ ॥ जग्राह समुपेत्यैनां त्वरया सोऽपि राक्षसः ॥ त्राहि त्राहीति करुणं विलपन्तीं सुमध्यमाम् ॥ ३३ ॥ ततः स्वरोचिः संक्रुद्धश्चण्डास्त्रमतिभैरवम् ॥ दृष्ट्वा निवेश्य तद्रक्षो ददर्शानिमिषेक्षणः ॥ ३४ ॥ तदाभिभूतः स तदा तामुत्सृज्य निशाचरः ॥ प्रसीद शाम्यतामस्त्रं श्रूयतां चेत्यभाषत ॥ ३५ ॥ मोक्षितोऽहं त्वया शापादतिघोरान्महाद्युते ॥ प्रदत्तादतितीव्रेण ब्रह्ममित्रेण धीमता ॥ ३६ ॥ उपकारो न मे त्वत्तो महाभागाधिको परः ॥ येनाहं सुमहाकष्टान्महाशापाद्विमोक्षितः ॥३७॥ स्वरोचिरुवाच ॥ ब्रह्ममित्रेण मुनिना किन्निमित्तं महात्मना ॥ शप्तस्त्वं कीदृशश्चैव शापो दत्तोऽभवत्पुरा ॥ ३८ ॥ राक्षस उवाच ॥ ब्रह्ममित्रोऽष्टधा भिन्नमायुर्वेदमधीतवान् ॥ त्रयोदशाधिकारं च प्रगृह्याथर्वणो द्विजः ॥ ३९ ॥ अहं चेन्दीवराक्षेति ख्यातोऽस्या जनकोऽभवम् ॥ विद्याधरपतेः पुत्रो नलनाभस्य खड्गिनः ॥ ४० ॥

मुझे उससे छुडाया ॥ ३६ ॥ हे महाभाग! आपकी समान मेरा अधिक उपकार करनेवाला और कोई नहीं है, क्योंकि आपने मुझको महाक्लेशदायक ब्रह्मशापसे छुडाया है ॥ ३७ ॥ स्वरोचिने कहा--महात्मा ब्रह्ममित्र मुनिने तुमको पूर्वकालमें किस निमित्त कैसा शाप दिया था ॥ ३८ ॥ राक्षसने कहा ब्रह्ममित्र मुनिने अथर्ववेदके त्रयोदश अधिकारमें ज्ञान प्राप्त कर आठ भागमें विभक्त संपूर्ण आयुर्वेद अध्ययन किया था ॥ ३९ ॥ मेरा नाम इन्दीवराक्ष विख्यात है, मैं इस कन्याका पिता और खड्गी नलनाभ नामक विद्याधरका पुत्र हूं ॥ ४० ॥

मैंने पहिले उक्त ब्रह्ममित्र मुनिसे यह प्रार्थना करीथी कि हे भगवन् ! मुझको संपूर्ण आयुर्वेद शास्त्र प्रदान कीजिये ॥ ४१ ॥ हे वीर ! विनयसे नम्र होकर वारम्वार याचना करने पर भी जब मुनिने मुझको आयुर्वेदविद्या नहीं दी ॥ ४२ ॥ हे अनघ ! तब मैंने उनके शिष्यको प्रदान करनेके समय छिपकर उस विद्याका अभ्यास किया अर्थात् समस्त आयुर्वेद विद्या ग्रहण की ॥ ४३ ॥ आठ महीनेमें समस्त आयुर्वेद विद्याका अभ्यास होजाने पर मैं अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुआ और वारंवार हँसने लगा ॥ ४४ ॥ मुनिने मेरा हँसना जान, क्रोधयुक्त हो कंपायमान गर्दन कर यह निष्ठुर वचन कहे ॥ ४५ ॥ हे दुर्मते ! तैंने राक्षसकी समान अदृश्य होकर विद्या हरण करी है, और मेरी अवज्ञा करके हास्य किया है ॥ ४६ ॥ इस कारण तू मेरे शापद्वारा अपने अधिका-

मया च याचितः पूर्वं ब्रह्ममित्रोऽभवन्मुनिः ॥ आयुर्वेदमशेषं मे भगवन्दातुमर्हसि ॥ ४१ ॥ यदा तु बहुशो वीर प्रश्रयावनतस्य मे ॥ न प्रादाद्याचितो विद्यामायुर्वेदात्मिकां मम ॥ ४२ ॥ शिष्येभ्यो ददतस्तस्य मयान्तर्धानगेन हि ॥ आयुर्वेदात्मिका विद्या गृहीताभूत्त-दानघ ॥४३॥ गृहीतायां तु विद्यायां मासैरष्टाभिरन्तरात् ॥ ममातिहर्षादभवद्धासोऽतीव पुनः पुनः ॥४४॥ प्रत्यभिज्ञाय मां हासान्मुनिः कोपसमन्वितः ॥ विकम्पिकन्धरः प्राहमामिदं परुषाक्षरम् ॥४५॥ राक्षसेनेव यस्मान्मे त्वयाऽदृश्येन दुर्मते ॥ हृता विद्यावहासश्च मामव-ज्ञाय वै कृतः ॥ ४६ ॥ तस्मात्त्वं राक्षसः पाप मच्छापेन निराकृतः ॥ भविष्यसि न सन्देहः सप्तरात्रेण दारुणः ॥ ४७ ॥ इत्युक्ते प्रणि-पाताद्यैरुपचारैः प्रसादितः ॥ स मामाह पुनर्विप्रस्तत्क्षणान्मृदुमानसः ॥ ४८ ॥ यन्मयोक्तमवश्यं तद्भावि गन्धर्व नान्यथा ॥ किन्तु त्वं राक्षसो भूत्वा पुनः स्वं प्राप्स्यसे वपुः ॥४९॥ नष्टस्मृतिर्यदा क्रुद्धः स्वमपत्यं चिखादिषुः ॥ निशाचरत्वे गन्तासि तदस्त्रानलतापितः ॥५०॥

रसे गिरकर सात रात्रिमेंही महा दारुण राक्षस होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ ४७॥ जब उन्होंने इस प्रकार कहकर शाप दिया तब मैंने प्रणामादि अनेक उप-चारोंसे उनको प्रसन्न किया, इससे वह ब्राह्मण तत्काल प्रसन्नमन होकर कहने लगे ॥ ४८ ॥ हे गंधर्व ! मैंने जो कहा है वह अवश्यही होगा । इससे अन्य-था नहीं होगा. किन्तु तू राक्षस होकर पुनर्वार अपने देहको प्राप्त होगा ॥ ४९ ॥ तू जब राक्षसपनेको प्राप्त हो नष्टस्मृति होनेपर क्रोधके वशीभूत हो अपनी पुत्रीके भक्षण करनेकी इच्छा करेगा, तब अपने अस्त्रानलसे परितापित हो ॥ ५० ॥

फिर स्मृति लाभ कर अपने देह और गंधर्वलोक तथा अपने अधिकारको प्राप्त होगा ॥ ५१ ॥ हे महाभाग ! आपने इस समय मुझको इस निशाचरत्वरूप महाभयसे छुडाया है, अतएव हे वीरवर ! मुझसे वरकी प्रार्थना करो ॥ ५२ ॥ हे महामते ! यह कन्या आपको देता हूँ, आप इसको भार्यारूपमें ग्रहण कीजिये और मुझको उन मुनिसे जो संपूर्ण अष्टांग आयुर्वेद प्राप्त हुआ है, वह भी देता हूं ग्रहण कीजिये ॥ ५३ ॥ मार्कंडेयजी बोले–दिव्याम्बर दिव्य-माला दिव्यभूषण और पहिलेकी समान दिव्यदेहधारी उस गंधर्वने इस प्रकार कह स्वरोचिको ॥ ५४ ॥ आयुर्वेद विद्या प्रदान कर जब कन्या देनेका यत्न किया तब वह कन्या निजरूपधारी अपने पितासे कहने लगी ॥ ५५ ॥ इन महात्माका दर्शन करतेही इनके प्रति मेरा अत्यन्त अनुराग उत्पन्न हुआ है

पुनः संज्ञामवाप्य स्वामवाप्स्यसि निजं वपुः ॥ तथैव स्वमधिष्ठानं लोके गन्धर्वसंज्ञिते ॥ ५१ ॥ सोऽहं त्वया महाभाग मोक्षितोऽस्मान्महाभयात् ॥ निशाचरत्वाद्वीर तेन मे प्रार्थनां कुरु ॥ ५२ ॥ इमां ते तनयां भार्यां प्रयच्छामि प्रतीच्छ ताम् ॥ आयुर्वेदश्च सकलस्त्वष्टाङ्गो यो मया ततः ॥ मुनेः सकाशात्संप्राप्तस्तं गृह्णीष्व महामते ॥ ५३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्त्वा प्रददौ विद्यां स च दिव्याम्बरोज्ज्वलः ॥ स्रग्भूषणधरो दिव्यं पौराणं वपुरास्थितः ॥ ५४ ॥ दत्त्वा विद्यां ततः कन्यां स दातुमुपचक्रमे ॥ तमाह सा तदा कन्या जनितारं स्वरूपिणम् ॥ ५५ ॥ अनुरागो ममाऽप्यत्र तातातीव महात्मनि ॥ दर्शनादेव संजातो विशेषेणोपकारिणि ॥ ५६ ॥ किन्त्वेषा मे सखी सा च मत्कृते दुःखपीडिते ॥ अतो नाभिलषे भोगान्भोक्तुमेतेन वै समम् ॥ ५७ ॥ पुरुषैरपि नो शक्या कर्तुमित्थं नृशंसता ॥ स्वभावरुचिरैर्माद्दक्कथं योषित्करिष्यति ॥ ५८ ॥ साहं यथा ते दुःखार्त्ते मत्कृते कन्यके पितः ॥ तथा स्थास्यामि दुःखार्ता तच्छोकानलतापिता ॥ ५९ ॥

और विशेष कर यह इस समय उपकारी हैं ॥ ५६ ॥ किन्तु मेरी दो सखी मेरेही लिये दुःख भोग रही हैं, अतएव इस समय इनके संग मुझको भोगकी इच्छा करनी उचित नहीं है ॥ ५७ ॥ मनोहरस्वभाव पुरुष भी जब इस प्रकार कठोरताका आचरण नहीं करसकता, तब मेरी समान सरल रमणी वह किस प्रकार कर सकती है ॥ ५८ ॥ वह जिस प्रकार मेरे निमित्त कन्या अवस्थामें दुःख भोगती हैं, मैं भी उसी प्रकार दुःख शोकानलसे सन्तापित होकर उन्हींके अनुसार अवस्थामें रहूंगी ॥ ५९ ॥

स्वरोचिने कहा—हे सुमध्यमे ! शोक परित्याग करो । आयुर्वेद शास्त्रके प्रसादसे तुम्हारी दोनों सखीको रोगसे छुडाऊंगा ॥ ६० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर स्वरोचिने मन्दराचलमें पिताकी दी हुई उस शोभायमान नेत्रोंवाली कन्याका यथाविधानसे पाणिग्रहण किया ॥ ६१ ॥ गंधर्व, कन्या प्रदान करनेके पीछे उसको समुझाय बुझाय दिव्य विमानमें बैठ अपने गन्धर्वलोकमें चला गया ॥ ६२ ॥ मनोरमाकी दोनों सखी मुनिके शापसे रोगाकान्त हो जिस उद्यानमें अवस्थान करती थीं, स्वरोचि कृशाङ्गी युवती भार्याके सहित वहां गये ॥ ६३ ॥ इसके पीछे आयुर्वेद शास्त्रमें विशारद अप्रतिहतप्रभाव स्वरोचिने रोगघ्न औषधियोंके रसोंसे उन दोनों सखियोंके देहको नीरोग कर दिया ॥ ६४ ॥ तब उन व्याधिविमुक्त अर्थात् रोगसे छूटी हुई अत्यन्त रूपवती

स्वरोचिरुवाच ॥ आयुर्वेदप्रसादेन ते करिष्ये पुनर्नवे ॥ सख्यौ तव महाशोकं समुत्सृज सुमध्यमे ॥ ६० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः पित्रा स्वयं दत्तां तां कन्यां सविधानतः ॥ उपयेमे गिरौ तस्मिन्स्वरोचिश्चारुलोचनाम् ॥ ६१ ॥ दत्तां तु तां तदा कन्यामभिसान्त्व्य च भाविनीम् ॥ जगाम दिव्यया गत्या गन्धर्वः स्वपुरं ततः ॥ ६२ ॥ स चापि सहितस्तन्व्या तदुद्यानं तदा ययौ ॥ कन्यकायुगलं यत्र तच्छापोत्थगदातुरम् ॥ ६३ ॥ ततस्तयोः स तत्त्वज्ञो रोगघ्नैरौषधै रसैः ॥ चकार नीरुजे देहे स्वरोचिरपि राजतः ॥ ६४ ॥ ततोऽतिशोभने कन्ये विमुक्ते व्याधितः शुभे ॥ स्वकान्त्याज्ज्योतितदिग्भागं चक्राते तन्महीधरम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं विमुक्तरोगा तु कन्यका तं मुदान्विता ॥ स्वरोचिषमुवाचेदं शृणुष्व वचनं प्रभो ॥ १ ॥ मन्दारविद्याधरजा नाम्ना ख्याता विभावरी ॥ उपकारिन्स्वमात्मानं प्रयच्छामि प्रतीच्छ माम् ॥ २ ॥

दोनों कन्याओंके अंगकी कान्तिसे मन्दर पर्वतकी समस्त दिशा दीप्ति पाने लगीं ॥ ६५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषमन्वन्तरे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—मनोरमाकी दोनों सखियोंमेंसे पहिली, उक्त प्रकार रोगसे छूट प्रसन्नचित्त हो, स्वरोचिसे इस प्रकार कहने लगी हे प्रभो ! मेरा वचन सुनो ॥ १ ॥ मैं मन्दारनामक विद्याधरकी कन्या हूं और मेरा नाम विभावरी है आपने जो मेरा महान् उपकार किया है, उसका प्रतिदानस्वरूप आपको आत्मा समर्पण करती हूं ॥ २ ॥

और जिससे सब प्राणियोंका स्वर (बोली) जाना जाता है, वह विद्याभी आपको देती हूं, आप प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कीजिये ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–धर्मके जाननेवाले स्वरोचिने " यही हो " इस प्रकार कहकर विभावरी कन्याका वचन स्वीकार किया तब फिर दूसरी कन्या यह बात कहने लगी कि ॥ ४ ॥ कौमार अवस्थासेही ब्रह्मचर्यावलम्बी, वेद वेदाङ्गमें पारंगत महाभाग पार नामक ब्रह्मर्षि मेरे पिता हैं ॥ ५ ॥ एक समय मनोहर वसन्त कालमें कामी जनोंका मन हरनेवाले पुंस्कोकिलके मधुरालापसे तपोवन प्रतिध्वनित हो रहा था, उसी समय प्रसिद्ध पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा उनके समीप आई ॥ ६ ॥ इससे वह मुनिपुंगव काम शत्रुके वशीभूत हो गये इसके उपरान्त उनके सहवास और उस अप्सराके गर्भसे इस महाचलमेंही मेरा

विद्यां च तुभ्यं दास्यामि सर्वभूतरुतानि ते ॥ ययाभिव्यक्तिमेष्यन्ति प्रसादप्रवणो भव ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवमस्त्विति तेनोक्ते धर्मज्ञेन स्वरोचिषा ॥ द्वितीया तु तदा कन्या इदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥ कुमारब्रह्मचार्यासीत्पारो नाम पिता मम ॥ ब्रह्मर्षिः सुमहाभागो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ५ ॥ तस्य पुंस्कोकिलालापरमणीये मधौ पुरा ॥ आजगामाप्सरोभ्याशं प्रख्याता पुञ्जिकस्थला ॥ ६ ॥ कामवेकृष्यतां नीतः स तदा मुनिपङ्गवः ॥ तत्संयोगेऽहमुत्पन्ना तस्यामत्र महाचले ॥७॥ विहाय मां गता सा च मातास्मिन्निर्जने वने ॥ बालामेकां महीपृष्ठे व्यालश्वापदसंकुले ॥ ८ ॥ ततः कलाभिः सोमस्य वर्द्धन्तीभिरहःक्षये ॥ आप्यायमानाहरहो वृद्धिं यातास्मि सत्तम ॥ ९ ॥ ततः कलावतीत्येतन्मम नाम महात्मना ॥ गृहीतायाः कृतं पित्रा गन्धर्वेण शुभात्मना ॥ १० ॥ न दत्ताहं तदा तेन याचितेन महात्मना ॥ देवारिणा निशासुप्तस्ततो मे घातितः पिता ॥ ११ ॥

जन्म हुआ है ॥ ७ ॥ अनन्तर सर्प श्वापद (हिंसक जन्तु) युक्त इस निर्जन वनमें भूमिके ऊपरही मुझको अकेली छोडकर माता चली गई ॥ ८॥ फिर एक महात्मा गंधर्व मुझको लेजाकर पालन करने लगा। वहां शुक्लपक्षमें बढती हुई चन्द्रमाकी कलासे परिपुष्ट होकर मैं वृद्धि पाने लगी। किन्तु कृष्णपक्षमें जब चन्द्रमाकी कलाका क्षय होता, तब मेरा क्षय नहीं होता, यह देखकर उस प्रतिपालक गंधर्वने मेरा " कलावती " नाम रक्खा ॥ ९॥१०॥ कुछ समय पीछे एक दिन अलिनामक असुरने आनकर महात्मा पितासे मुझको माँगा और उन्होंने जब उसको नहीं दिया, तब उसने रात्रिमें सोते

मा० पु० ॥२०८॥

हुए मेरे पिताको मार डाला ॥ ११ ॥ मैं उस दुःखसे दृढप्रतिज्ञ होकर आत्मघात करनेमें उद्यत हुई, तब शंभुपत्नी सतीने निवारण करके कहा ॥ १२ ॥ हे सुभ्रु ! शोक मत करो, स्वरोचिनामक एक महाभाग तुम्हारे भर्त्ता होंगे तथा उनका पुत्र मनु होगा ॥ १३ ॥ हे शुभे ! संपूर्ण निधियें सादर तुम्हारी आज्ञा प्रतिपालन करेंगी और तुम्हारा अभिलाषित वित्तादि प्रदान करेंगी ॥ १४ ॥ किन्तु हे वत्से ! जिस विद्याके प्रभावसे निधिगण आज्ञानुवर्त्ती होगा, वह महापद्माभिपूजिता पद्मिनी नामक विद्या मुझसे ग्रहण करो ॥ १५ ॥ सत्यपरायण दक्षसुता सतीने मुझसे यह बात कही है वह कभी मिथ्या

ततोऽहमतिनिर्वेदादात्मव्यापादनोद्यता ॥ निवारिता शम्भुपत्न्या सत्यासत्यप्रतिश्रवा ॥ १२ ॥ मा शुचः सुभ्रु भर्त्ता ते महाभागो भविष्यति ॥ स्वरोचिर्नाम पुत्रश्च मनुस्तस्य भविष्याति ॥ १३ ॥ आज्ञां च निधयः सर्वे करिष्यंति तवादृताः ॥ यथाभिलषितं वित्तं प्रदास्यन्ति च ते शुभे ॥ १४ ॥ यस्या वत्से प्रभावेण विद्यायास्तां गृहाण मे ॥ पद्मिनी नाम विद्येयं महापद्माभिपूजिता ॥ १५ ॥ इत्याह मां दक्षसुता सती सत्यपरायणा ॥ स्वरोचिस्त्वं ध्रुवं देवी नान्यथा सा वदिष्याति ॥ १६ ॥ साहं प्राणप्रदायाद्य तां विद्यां स्वं तथा वपुः ॥ प्रयच्छामि प्रतीच्छं तं प्रसादसुमुखो भव ॥ १७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवमास्त्विवाति तामाह स तु कन्यां कलावतीम् ॥ विभावर्याः कलावत्याः स्निग्धदृष्ट्यानुमोदितः ॥ १८ ॥ जग्राह च ततः पाणी स तयोरमरद्युतिः ॥ नदत्सु देवतूर्येषु नृत्यन्तीस्वप्सरः-सु च ॥ १९ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

भा० टी० अ० ६१

नहीं कहेंगी, अतएव आप निःसंदेह वही स्वरोचि हैं ॥ १६ ॥ मैं आपको देह, प्राण और वह विद्या देती हूं, आप मेरे प्रति प्रसन्न होकर ग्रहण कीजिये ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर स्वरोचिने कलावतीसे " यही हो " इस प्रकार अंगीकारवचन कहा। फिर स्निग्धदृष्टिद्वारा विभावरी और कलावती दोनोंकी अनुमति पाकर ॥ १८ ॥ देवकान्ति स्वरोचिने उनका भी पाणि ग्रहण किया। विवाहके समय देवतूर्य अर्थात् समस्त देवबाजे बजने लगे और अप्सरागण नृत्य करने लगा ॥ १९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषे मन्वन्तरे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर अमरकांति स्वरोचि अपनी पत्नियोंके संग उस मलयाचलके रमणीय कानन और निर्झर स्थानोंमें विहार करने लगे ॥ १ ॥ निधियें पद्मिनी विद्याके वशवर्त्ती होकर उपभोग करनेके लिये विविध रत्न मधुर मद्य ॥ २ ॥ माल्य, वस्त्र, गहने, सुगंधित अनुलेपन, आसन, रजत, कांचन ॥ ३ ॥ कमण्डलु सुवर्णनिर्मित विविध पात्र और दिव्य बिछौनेसे युक्त विविध शय्या इत्यादि द्रव्य उनकी इच्छानुसार देने लगीं ॥ ४ ॥ उक्त स्वरोचि दिव्य गंधादिवासित और रत्नादिसे प्रकाशित पर्वतप्रदेशमें तीनों भार्याके सहित रमण करने लगे ॥ ५ ॥ स्वर्गकी समान मनोहर उस पर्वतश्रेष्ठमें विहार करती हुई उक्त पत्नियेंभी अत्यन्त आह्लादित हुईं ॥ ६ ॥ तिस काल स्वरोचि और उनकी पत्नियोंका ऐसा प्रणय देखकर उन्हींके समान प्रणया-

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः स ताभिः सहितः पत्नीभिरमरद्युतिः ॥ रराम तस्मिञ्छैलेन्द्रे रम्यकाननानिर्झरे ॥१॥ सर्वोपभोगरत्नानि मधूनि मधुराणि च ॥ निधयः समुपाजग्मुः पद्मिन्या वशवर्तिनः ॥ २ ॥ स्रजो वस्त्राण्यलङ्कारान्गन्धाढ्यमनुलेपनम् ॥ आसनान्यतिशुभ्राणि कांचनानि यथेच्छया ॥ ३ ॥ सौवर्णानि महाभाग करकान्भाजनानि च ॥ तथा शय्याश्च विविधा दिव्यैरास्तरणैर्युताः ॥ ४ ॥ एवं स ताभिः सहितो दिव्यगन्धाधिवासिते ॥ रराम स्वरुचिर्भाभिर्भासिते वरपर्वते ॥५॥ ताश्चापि सह तेनेति लेभिरे मुदमुत्तमाम् ॥ रममाणा यथा स्वर्गे तथा तत्र शिलोच्चये ॥ ६ ॥ कलहंसी जगादैकां चक्रवाकीं जले सतीम् ॥ तस्य तासां च ललिते सम्बन्धे च स्पृहावती ॥७॥ धन्योऽयमतिपुण्योऽयं योऽयं यौवनगोचरः ॥ दयिताभिः सहैताभिर्भुङ्क्ते भोगानभीप्सितान् ॥ ८ ॥ सन्ति यौवनिनः श्लाघ्यास्ततपत्न्यो नातिशोभनाः ॥ जगत्यामल्पकाः पत्न्यः पतयश्चातिशोभनाः ॥ ९ ॥ अभीष्टा कस्यचित्कान्ता कान्तः कस्याश्चिदीप्सितः ॥ परस्परानुरागाढ्यं दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ॥ १० ॥

नुरागिनी एक कलहंसीने जलस्थित दूसरी चक्रवाकीसे कहा ॥७॥ " यह जो युवक स्त्रियोंके सहित इच्छानुसार समस्त भोगोंको भोगरहे हैं, यही पुण्यवान् और धन्य हैं ॥८॥ जगत्में रूपयौवनशाली ऐसे पुरुष अनेक हैं कि जिनकी पत्नी रूपवती नहीं है, किन्तु पति और पत्नी दोनोंही सुन्दरतासे विभूषित हों, ऐसे दाम्पत्य अत्यन्त विरले हैं ॥ ९ ॥ कोई पति अपनी कान्तामें अनुरक्त और कोई पत्नी कान्तके प्रति अनुरागिनी है, किन्तु परस्परमें समान अनुराग करनेवाले स्त्री पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥ १० ॥

अतएव पत्नियोंके प्रियतम यह युवक धन्य और इनकी प्रियतमा यह पत्नियेंभी धन्य हैं, क्योंकि इस जगत्में जो धन्य हैं, उनकाही इस प्रकार परस्पर अनुराग उत्पन्न होताहै" ॥ ११ ॥ कलहंसीके कहे यह वचन सुनकर चक्रवाकीने अधिक विस्मित मन न हो उससे यह बात कही ॥ १२ ॥ "हे सखी ! यह स्वरोचि धन्य नहीं हैं एक स्त्रीके समीप दूसरी स्त्रीसे भोग करते हैं सुतरां इनको कुछ भी लज्जा नहीं है इनकी अभिलाषा सब पत्नियेंमें समान नहीं है ॥ १३ ॥ चित्तका अनुराग जब एक मात्र आधारमेंही रह सकता है तब यह स्वरोचि सब भार्याओंके प्रति किस प्रकार समान अनुरागी होंगे ॥ १४ ॥ यह पत्नियें भी इनको प्रियतम नहीं हैं और यह पति भी उनको अत्यन्त प्रिय नहीं है, अन्य परिजनोंके द्वारा जिस प्रकार चित्तको वि-

धन्योऽयं दयिताभीष्टो ह्येताश्चास्यातिवल्लभाः ॥ परस्परानुरागो हि धन्यानामेव जायते ॥ ११ ॥ एतन्निशम्य वचनं कलहंसी समीरितम् ॥ उवाच चक्रवाकी तां नातिविस्मितमानसा ॥ १२ ॥ नायं धन्यो यतो लज्जा नान्यस्त्रीसन्निकर्षतः ॥ अन्यां स्त्रियमयं भुंक्ते न सर्वास्वस्य मानसम् ॥ १३ ॥ चित्तानुराग एकस्मिन्नधिष्ठाने यतः सखि ॥ ततोऽतिप्रीतिमानेप भार्यासु भविता कथम् ॥ १४ ॥ एता न दयिताः पत्युर्नैतासां दयितः पतिः ॥ विनोदमात्रमेवैता यथा परिजनो परः ॥ १५ ॥ एतासां च यदीष्टोऽयं तत्किं प्राणान्न मुञ्चति ॥ आलिङ्गत्यपरां कान्तां ध्यातो वै कान्तयान्यया ॥ १६ ॥ विद्याप्रदानमूल्येन क्रीतो ह्येष सुभृत्यवत् ॥ प्रवर्त्ततो न हि प्रेम समं बह्वीषु तिष्ठति ॥ १७ ॥ कलहंसि पतिर्धन्यो मम धन्याहमेव च ॥ यस्यैकस्यां चिरं चित्तं यस्याश्चैकत्र संस्थितम् ॥ १८ ॥

नोद प्राप्त होता है इसी प्रकार पत्नियें भी इनके विनोदकी सामग्री मात्र है ॥ १५ ॥ यह यदि सब पत्नियोंके अभीष्ट होते तो इनका सब काल और समान भावसे संतोष संपादन करनेमें समर्थ होकर क्या इतने दिन जीवित रहते ? एक स्त्री जब इनकी अभिलाषा करती है, तब यह दूसरी स्त्रीको आलिंगन करते रहते हैं, अतएव इनमें परस्परका अनुराग अधिकतर दाम्पत्य प्रेम कहां है ? ॥ १६ ॥ विद्याप्रदानके मूल्यमें बिककर यह स्वरोचि पत्नियोंके निकट भृत्यके समान आचरण करते हैं, प्रेम बहुत पत्नियेंमें समान भावसे नहीं रह सकता ॥ १७ ॥ हे सखी कलहंसी ! मेरे पति धन्य और मैं धन्य हूं, क्योंकि मैं उनकी एक मात्र पत्नी हूं मेरे प्रतिही उनके चित्तका अनुराग और मैं भी उन एक मात्र पतिमेंही अनुरागिणी हूं ॥ १८ ॥

संसारमें बहुत स्त्रियोंवाला पतिहि पुण्य और पापका कारण है। घर, अशन, आसन आदिसे तथा भूषणोंसे और समागमोंसे निश्चयसे ॥ १९ ॥ विषमता करनेवाला विषमता करनेसे महापापको प्राप्त होता है, बडीको तो छोटे भावसे और छोटीको बडेपनके भावमें प्राप्त करे ॥ २० ॥ और गुरुको दक्षिणारूप वर देकर जैसे और समिधाओंसे होम करना है, विवाहिता स्त्रीके सहित नित्य नैमित्तिक क्रिया करनी चाहिये ॥ २१ ॥ अन्यभावसे करनेपर मनुष्य पापी होता है।" मार्कण्डेयजी बोले–सब जीवोंकी बात समझनेवाले अपराजित स्वरोचि ॥ २२ ॥ उनके इस प्रकार वचन सुननेसे लज्जित होकर चिन्ता करने लगे कि "इसने जो कहा वह सत्य है, कुछ भी मिथ्या नहीं है" तो भी पत्नियोंके सहित महाशैलमें विहार करते करते स्वरोचिको सौ वर्ष बीतगये। फिर एक दिन

बहुपत्नीपतिर्लोकः शरणं पुण्यपापयोः ॥ गृहाशनासनाद्यैश्च भूषणैश्च समागमैः ॥ १९ ॥ विषमैः क्रियमाणो हि युज्यते महदेनसा ॥ ज्येष्ठां कनीयभावेन कनिष्ठां ज्येष्ठतां नयेत् ॥ २० ॥ गुरवे तु वरं दत्त्वा हुत्वान्यां समिधं यथा ॥ ऊढया सह कर्त्तव्या नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥ २१ ॥ जगादाथान्यभावेन पापीयाञ्जायते नरः ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ सर्वसत्त्वरुतज्ञोऽसौ स्वरोचिरपराजितः ॥ २२ ॥ निशम्य लज्जितो दध्यौ सत्यमेव हि नानृतम् ॥ ततो वर्षशते याते रममाणो महागिरौ ॥ रममाणः समन्ताभिर्ददर्श पुरतो मृगम् ॥ २३ ॥ सुस्निग्धपीनावयवं मृगीयूथविहारिणम् ॥ वासिताभिः स्वरूपाभिर्मृगीभिः परिवारितम् ॥ २४ ॥ आकृष्टघ्राणपुटका जिघ्रन्तीस्तास्ततो मृगीः ॥ उवाच स मृगोऽलं वो लज्जात्यागेन गम्यताम् ॥ २५ ॥ नाहं स्वरोचिस्तच्छीलो न चैवाहं सुलोचनाः ॥ निर्लज्जा बहवः सन्ति तादृशास्तत्र गच्छत ॥ २६ ॥

पत्नियोंके संग विहार कर रहे थे, इसी समयमें सन्मुखवर्त्ती ॥ २३ ॥ चिकना और स्थूलकाय, सब अवयवोंसे पुष्ट मृगीयूथविहारी एक मृगको देखा। यह मृग अपनी समान मृगियोंके यूथमें घिरा हुआ था ॥ २४ ॥ तब मृगियें नासिका सिकोडकर मृगका गात्र सूंघने लगीं, यह देख उक्त मृग उनसे बोला हे मृगियो! तुमने लज्जाका त्याग किया इससे अन्यत्र गमन करो ॥ २५ ॥ हे सुलोचनाओ! मैं स्वरोचि नहीं हूं और स्वरोचिके समान मेरा स्वभाव भी नहीं है। स्वरोचिकी समान अनेक निर्लज्ज मिलेंगे, उनके निकट जाओ ॥ २६ ॥

एक स्त्री अनेक पुरुषोंकी अनुगत होनेसे जिस प्रकार वह जनसमाजमें हास्यास्पद होती है, इसी प्रकार एक मात्र पुरुष अनेक रमणियोंसे भोगदृष्टिसे देखा जाकर हास्यास्पद होता है ॥ २७ ॥ उस पुरुषकी नित्यधर्मक्रियाकी हानि होती है, वह पुरुष एक भार्याके सहित संगत होकर अन्यभार्यासंगमकी सदा-ही कामना करता है ॥ २८ ॥ अतएव परलोकपराङ्मुख ऐसा स्वरोचिके स्वभावसम्पन्न अन्य जो कोई हो उसकी कामना करो तुम्हारा मंगल हो, मैं स्वरोचिके तुल्य नहीं हूं ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषे मन्वन्तरे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-उक्त मृगाङ्गना हरिणके द्वारा इस प्रकार निराश हुईं तब यह सब सुननेके पीछे स्वरोचि अपने आपको पतित जानने लगे ॥ १ ॥ हे मुनिसत्तम ! उन्होंने चक्र-

एका त्वनेकानुगता यथा हासास्पदं जने ॥ अनेकाभिस्तथैवैको भोगदृष्ट्या निरीक्षितः ॥२७॥ तस्य धर्मक्रियाहानिरहन्यहनि जायते ॥ सक्तोऽन्यभार्यया चान्यकामासक्तः सदैव सः ॥ २८ ॥ यस्तादृशोऽन्यस्तच्छीलः परलोकपराङ्मुखः ॥ तं कामयत भद्रं वो नाहं तुल्यः स्वरोचिषा ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं निरस्यमाना-स्ता हरिणेन मृगाङ्गनाः ॥ श्रुत्वा स्वरोचिरात्मानं मेने स पतितं यथा ॥ १ ॥ त्यागे चकार च मनः स तासां मुनिसत्तम ॥ चक्रवा-कीमृगप्रोक्तो मृगचर्याजुगुप्सितः ॥ २ ॥ समेत्य ताभिर्भूयश्च वर्द्धमानमनोभवः ॥ आक्षिप्तनिर्वेदकथो रेमे वर्षशतानि षट् ॥ ३॥ किन्तु धर्माविरोधेन कुर्वन्धर्माश्रिताः क्रियाः ॥ भुंक्ते स्वरोचिर्विषयान्सह ताभिरुदारधीः ॥ ४ ॥ ततश्च जज्ञिरे तस्य त्रयः पुत्राः स्वरोचिषः ॥ विजयो मेरुनन्दश्च प्रभावश्च महाबलः ॥ ५ ॥

वाकी और मृगके द्वारा इस प्रकार निन्दाको प्राप्त हो और मृगका आचरण देख, अपनेको निन्दित जान पत्नियोंके त्याग करनेकी अभिलाषा की ॥ २ ॥ किन्तु पत्नियोंके सहित मिलित होतेही फिर कामप्रवृत्ति बलवती होनेसे उनका वैराग्य नष्ट होगया और इसके पीछे भी उनके संग छः सौ वर्ष पर्यन्त विहार किया ॥ ३॥ किंतु उदारबुद्धि स्वरोचि पत्नियोंके सहित जब विषयभोग करते, तब स्वयं धर्मपथमें रहकर समस्त धर्माश्रित क्रिया यथाविहित संपन्न करते थे ॥ ४ ॥ अनन्तर विजय, मेरुनन्द और प्रभाव नामक स्वरोचिके तीन महाबलवान् पुत्र हुए ॥ ५ ॥

इन्दीवर विद्याधरकी कन्या मनोरमाके गर्भसे विजय, विभावरीके गर्भसे मेरुनन्द और कलावतीके गर्भसे प्रभावका जन्म हुआ ॥ ६ ॥ सर्व भोगसंपादिनी पद्मिनी नामक विद्याके प्रभावसे पिता स्वरोचिने तीन पुर निर्माण किये ॥ ७ ॥ पूर्व दिशामें कामरूप पर्वतके ऊपर बना हुआ विजयनामक श्रेष्ठ पुर विजय नामक पुत्रको प्रदान किया ॥ ८ ॥ फिर उत्तर दिशामें अत्यन्त ऊंची दीवार प्राकारसे संयुक्त नन्दवती नामक विख्यात पुरी मेरुनन्दको ॥ ९ ॥ और दक्षिणपथ स्थित ताल नामक पुर कलावतीके पुत्र प्रभावको दिया ॥ १० ॥ हे विप्र ! उक्त पुरुषश्रेष्ठ इस प्रकार तीनों पुत्रोंको तीनों पुरमें स्थापन करके पत्नि-

मनोरमा च विजयं प्रासूतेन्दीवरात्मजा ॥ विभावरी मेरुनन्दं प्रभावं च कलावती ॥ ६ ॥ पद्मिनी नाम या विद्या सर्वभोगोपपादिका ॥ स तेषां तत्प्रभावेण पिता चक्रे पुरत्रयम् ॥ ७ ॥ प्राच्यां तु विजयं नाम कामरूपे नगोत्तमे ॥ विजयाय सुतायादौ स ददौ पुरमुत्तमम् ॥ ८ ॥ उदीच्यां मेरुनंदस्य पुरीं नन्दवतीमिति ॥ ख्यातां चकार प्रोत्तुङ्गवप्रप्राकारमालिनीम् ॥ ९ ॥ कलावतीसुतस्यापि प्रभावस्य निवेशितम् ॥ पुरं तालमिति ख्यातं दक्षिणापथमाश्रितम् ॥ १० ॥ एवं निवेश्य पुत्रान्स पुरेषु पुरुषर्षभः ॥ रेमे ताभिः समं विप्र मनोज्ञास्वद्रिभूमिषु ॥ ११ ॥ एकदा तु गतोऽरण्ये विहरन्स धनुर्द्धरः ॥ चकर्ष धनुरालोक्य वराहमतिदूरगम् ॥ १२ ॥ अथाह काचिदभ्येत्य तं तदा हरिणाङ्गना ॥ मय्येव पात्यतां बाणः प्रसीदेति पुनः पुनः ॥ १३ ॥ किमनेन हतेनाद्य मामाशु विनिपातय ॥ त्वया निपातितो बाणो दुःखान्मां मोक्षयिष्यति ॥ १४ ॥ स्वरोचिरुवाच ॥ न ते शरीरं सरुजमस्माभिरुपलक्ष्यते ॥ किन्तु तत्कारणं येन त्वं प्राणान्हातुमिच्छसि ॥ १५ ॥

योंके सहित अत्यन्त मनोहर प्रदेशमें विहार करने लगे ॥ ११ ॥ एक समय उन्होंने धनुर्धारी होकर वनमें विहार करते करते अति दूर स्थित वराहको देखकर धनुष खैंचा ॥ १२ ॥ इसी समयमें एक हरिणी आनकर उनसे वारंवार कहने लगी " यह बाण मेरे प्रति चलाओ मेरे ऊपर प्रसन्न होओ ॥ १३ ॥ इस वराहका मारना निष्फल है, शीघ्र मेरे प्रति बाण चलाओ, आपका चलाया हुआ बाण मेरी दुःखसे रक्षा करेगा " ॥ १४ ॥ स्वरोचिने कहा—तेरा शरीर रोगी दिखाई नहीं देता तो फिर तू किस कारण प्राण त्याग करनेकी इच्छा करती है ॥ १५ ॥

मृगी बोली—जिसका हृदय अन्य स्त्रीमें आसक्त है, मेरा चित्त उसीके प्रति आसक्त हुआ है, अतएव उसके न पानेसे मृत्युही मेरे इस रोगकी औषधी है. दूसरा उपाय क्या है ? ॥ १६ ॥ स्वरोचिने कहा हे भीरु ! कौन तेरी अभिलाषा नहीं करता किसके प्रति तू अनुरागिनी हुई है जिसको न पानेसे प्राण त्याग करनेका संकल्प किया है ? ॥१७॥ मृगी बोली–मैं आपकीही इच्छा करती हूं, आपका मंगल हो आपनेही मेरा चित्त हरण कियाहै । इसी कारण मैं मृत्युकी अभिलाषा करती हूं. आप शीघ्र मेरे प्रति बाण चलाइये ॥ १८ ॥ स्वरोचिने कहा तू चंचलापाङ्गी मृगी है और मैं मनुष्यरूपधारी हूं, अतएव मेरी समान मनुष्यका तुम्हारे संग किस प्रकार संयोग होगा ? ॥ १९ ॥ मृगी बोली यदि मेरे प्रति आपका चित्त सानुराग हुआ है तो मुझे आलिंगन

मृग्युवाच ॥ अन्यास्वासक्तहृदये यस्मिंश्चेतः कृतास्पदम् ॥ मम तेन विना मृत्युरौषधं किमिहापरम् ॥ १६ ॥ स्वरोचिरुवाच ॥ कस्त्वां नाभिलषेद्भीरु सानुरागासि कुत्र वा ॥ यदप्राप्तौ निजान्प्राणान्परित्यक्तुं व्यवस्यसि ॥ १७ ॥ मृग्युवाच ॥ त्वामेवेच्छामि भद्रं ते त्वया मेऽपहृतं मनः ॥ वृणोम्यहमतो मृत्युं मयि बाणो निपात्यताम् ॥ १८ ॥ स्वरोचिरुवाच ॥ त्वं मृगी चंचलापाङ्गी नररूपधरा वयम् ॥ कथं त्वया समं योगो मद्विधस्य भविष्यति ॥ १९ ॥ मृग्युवाच ॥ यदि सापेक्षितं चित्तं मयि ते मां परिष्वज ॥ यदि वाऽसाधु चित्तं ते करिष्यामि यथेप्सितम् ॥ २० ॥ एतावताहं भवता भविष्याम्यतिमानिता ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ आलिलिङ्ग ततस्तां स स्वरोचिर्हरिणाङ्गनाम् ॥ २१ ॥ तेन चालिङ्गिता सद्यः साभूद्दिव्यवपुर्धरा ॥ ततः सविस्मयाविष्टः का त्वमित्यभ्यभाषत ॥ २२ ॥ सा चास्मै कथयामास प्रेमलज्जाजडाक्षरम् ॥ अहमभ्यार्थिता देवैः काननस्यास्य देवता ॥ २३ ॥

कीजिये । यदि आपका चित्त साधु न हो तो मैं आपकी इच्छानुसार कार्य सम्पादन करूंगी ॥२०॥ इससे आपके द्वारा मैं अतिसन्मानित हूंगी । मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर स्वरोचिने उस हरिणाङ्गनाको आलिङ्गन किया ॥ २१ ॥ उनके आलिंगन करतेही वह मृगी तत्काल दिव्य देहधारिणी कामिनी हो गई । इससे स्वरोचिने अत्यन्त आश्चर्ययुक्त होकर "तुम कौन हो ?" इस प्रकार कहा ॥ २२ ॥ उस मृगीने भी प्रेमभरी लज्जासे गद्गद वचन द्वारा उससे कहा "मैं इस वनकी अधिदेवता हूं, देवताओंकी प्रार्थनासे तुम्हारे समीप आई हूं ॥ २३ ॥

हे महामते ! मुझमें मनु उत्पन्न करना तुम्हारा कर्त्तव्य है, मैं तुम्हारे प्रति अनुरागिणी हूं, मुझमें वह भूलोंकपरिपालक पुत्र उत्पन्न कीजिये ॥ २४ ॥ यह मैंने देवताओंके वचनानुसार कहा। " मार्कण्डेयजी बोले--अनन्तर स्वरोचिने उस वनदेवताके गर्भसे तत्काल सर्वलक्षणयुक्त आत्मतुल्य तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया। तब उस पुत्रका जन्म होतेही समस्त देवबाजे बजने लगे, गंधर्वपति गान करने लगे और अप्सराओंके यूथके यूथ नाचने लगे ॥ २५ ॥ २६ ॥ दिशाओंके हाथी जलशीकर सिंचन करने लगे एवं तपोधन ऋषिगण ॥ २७ ॥ और देवतागण चारों दिशाओंमें पुष्पवृष्टि करने लगे। उस बालकके तेजसे संपूर्ण दिशा प्रकाशमान हुई थीं, ऐसी अंगकी द्युति देखकर पिता स्वरोचिने पुत्रका ॥२८॥ " द्युतिमान् " यह सार्थक नाम रक्खा यह द्युतिमान् बालक

उत्पादनीयो हि मनुस्त्वया मयि महामते ॥ प्रीतिमत्यां मयि सुतं भूलोंकपरिपालकम् ॥ २४ ॥ तमुत्पादय देवानां त्वामहं वचनाद्वदे ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः स तस्यां तनयं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥२५॥ तेजस्विनमिवात्मानं जनयामास तत्क्षणात् ॥ जातमात्रस्य तस्याथ देववाद्यानि सस्वनुः ॥ जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ २६ ॥ सिषिचुः शीकरैर्मेघा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ २७ ॥ देवाश्च पुष्पवर्षं च मुमुचुश्च समन्ततः ॥ तस्य तेजः समालोक्य नाम चक्रे पिता स्वयम् ॥ २८ ॥ द्युतिमानिति येनास्य तेजसा भासिता दिशः ॥ स बालो द्युतिमान्नाम महाबलपराक्रमः ॥ २९ ॥ स्वरोचिषः सुतो यस्मात्तस्मात्स्वारोचिषोऽभवत् ॥ स चापि विचरन्नम्ये कदाचिद्गिरिनिर्झरे ॥ ३० ॥ स्वरोचिर्ददृशे हंसं निजपत्नीसमन्वितम् ॥ उवाच स तदा हंसी साभिलाषां पुनः पुनः ॥ ३१ ॥ उपसंह्रियतामात्मा चिरं ते क्रीडितं मया ॥ किं सर्वकालं भोगैस्ते आसन्नं चरमं वयः ॥ ३२ ॥

महाबली पराक्रमी हुआ ॥ २९ ॥ स्वरोचिका पुत्र होनेके कारण उस महाबली द्युतिमान् नामक बालकका " स्वारोचिष " यह नाम भी हुआ था। फिर किसी समय रमणीय गिरिनिर्झरमें विचरण करते करते ॥ ३० ॥ उक्त स्वरोचिने निज पत्नीके सहित एक हंसको देखा वह हंस अभिलाषायुक्त हंसीसे वारम्वार कहने लगा ॥ ३१ ॥ हे जलचरि ! मनको निवृत्त कर, तेरे संग मैंने बहुत कालतक विहार किया है सदा तुम्हारे संग भोग करनेसे क्या लाभ होगा ? अब वृद्ध अवस्था उपस्थित है ॥ ३२ ॥

यह तुम्हारे और मेरे दोनोंके विषयवासना त्यागनेका समय है। हंसी बोली—भोगका कालाकाल क्या ? देखो, यह जगत् सर्व भोगमय है ॥ ३३ ॥ क्योंकि संयतात्मा ब्राह्मणगण भोगके निमित्तही यज्ञ करते हैं और ज्ञानी पुरुष दृष्टादृष्ट भोगोंकी कामना करते हुए ॥ ३४ ॥ दान और पूर्त धर्म (वापी कूप देवमन्दिर निर्माणका) अनुष्ठान करते हैं। संयतात्मा और विवेकी मनुष्योंका भी जब भोगही कर्म फल है तो तिर्यक् जातिके पक्षमें फिर कहनाही क्या है ॥ ३५ ॥ अतएव उस भोगकी तुम किस कारणसे इच्छा नहीं करते ? हंसने कहा--जिनका चित्त भोगमें आसक्त नहीं है, उनकी मति परमात्मानुगामिनी है, बन्धुवर्गके सहित संगतिवाले मनुष्यकी क्या कभी वैसी मति हो सकती है ? ॥ ३६ ॥ पुत्र मित्र और स्त्रीमें आसक्त प्राणिगण सरोवरकी कीच-

परित्यागस्य कालो मे तव चापि जलेचरि ॥ हंस्युवाच ॥ अकालः को हि भोगानां सर्वं भोगात्मकं जगत् ॥ ३३ ॥ यज्ञाः क्रियन्ते भोगार्थं ब्राह्मणैः संयतात्मभिः ॥ दृष्टादृष्टांस्तथा भोगान्वाञ्छमाना विवेकिनः ॥ ३४ ॥ दानानि च प्रयच्छन्ति पूतान्धर्मांश्च कुर्वते ॥ स त्वं नेच्छासि किं भोगान्भोगश्रेष्टफलं नृणाम् ॥ ३५ ॥ विवेकिनां तिरश्चां च किं पुनः संयतात्मनाम् ॥ हंस उवाच ॥ भोगेष्वासक्तचित्तानां परमार्थान्विता मतिः ॥ भविष्याति कदा सङ्गमुपेतानां च बन्धुषु ॥ ३६ ॥ पुत्रमित्रकलत्रेषु सक्ताः सीदान्ति जन्तवः ॥ सरःपङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ॥ ३७ ॥ किं न पश्यसि वा भद्रे जातसङ्गं स्वरोचिषम् ॥ आबाल्यात्कामसंसक्तं मग्नं स्नेहाम्बुकर्दमे ॥ ३८ ॥ यौवनेऽतीव भार्यासु साम्प्रतं पुत्रनप्तृषु ॥ स्वरोचिषो मनो मग्नमुद्धारं प्राप्स्यते कुतः ॥ ३९ ॥ नाहं स्वरोचिषस्तुल्यः स्त्रीवश्यो वा जलेचरि ॥ विवेकवांश्च भोगानां निवृत्तोऽस्मि च साम्प्रतम् ॥ ४० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ स्वरोचिरेतदाकर्ण्य जातोद्वेगः खगेरितम् ॥ आदाय भार्यास्तपसे ययावन्यत्तपोवनम् ॥ ४१ ॥

डमें डूबे हुए बूढे वनहाथीके समान दुःखको प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥ हे भद्रे ! बाल्य अवस्थासे कामासक्त स्नेहरूपी सजल कीचडमें डूबे हुए जातसंग (विषयानुरागी) स्वरोचिको क्या तुमने नहीं देखा है ? ॥ ३८ ॥ यौवनवती भार्या और पुत्र तथा नातियोंमें निमग्न हुए स्वरोचिके मनका किस प्रकार उद्धार होगा ॥ ३९ ॥ हे जलचरि ! मैं स्वरोचिके समान स्त्रिगणोंके वशीभूत नहीं हूं मैं ज्ञानवान् हूं अब भोगसे निवृत्त हुआ हूं ॥ ४० ॥ मार्कण्डेयजी बोले-खगके कहे इस प्रकार वचन सुनकर स्वरोचि तीनों भार्याके सहित तपस्या करनेके लिये तपोवनमें चले गये ॥ ४१ ॥

वहां उदारबुद्धि स्वरोचिने पत्नियोंके सहित घोर तपस्याका आचरण करके संपूर्ण पापोंसे छूट विमललोक (स्वर्गादि) में गमन किया ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषे मन्वन्तरे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--अनन्तर भगवान्‌ने द्युतिमान् वा स्वारोचिष नामक प्रजापतिको मनु किया था, उनका मन्वन्तर सुनो ॥ १ ॥ हे क्रौष्टुके ! उस स्वारोचिष मन्वन्तरमें जो देवता, मुनि, और मनुपुत्र भूपालगण थे, उनका मैं वर्णन करता हूं, तुम मुझसे श्रवण करो ॥ २ ॥ हे द्विज ! उस स्वारोचिष मन्वन्तरमें देवगण पारावत और तुषित नामसे तथा इन्द्र विपश्चित् नामसे

तत्र तप्त्वा तपो घोरं सह ताभिरुदारधीः ॥ जगाम लोकानमलान्निवृत्ताखिलकल्मषः ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः स्वारोचिषं नाम्ना द्युतिमन्तं प्रजापतिम् ॥ मनुं चकार भगवांस्तस्य मन्वन्तरं शृणु ॥ १ ॥ तत्रान्तरे तु ये देवा मुनयस्तत्सुताश्च ये ॥ भूपालाः क्रौष्टुके ये तान्गदतस्त्वं निशामय ॥ २ ॥ देवाः पारावतास्तत्र तथैव तुषिता द्विज ॥ स्वारोचिषेऽन्तरे चेन्द्रो विपश्चिदिति विश्रुतः ॥३॥ ऊर्जस्तम्बस्तथा प्राणो दत्तोऽलिर्ऋषभस्तथा ॥ निश्चरश्चार्ववीरश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवम् ॥ ४ ॥ चैत्रकिंपुरुषाद्याश्च सुतास्तस्य महात्मनः ॥ सप्तासन्सुमहावीर्याः पृथिवीपरिपालकाः ॥ ५ ॥ तस्य मन्वन्तरं यावत्तावत्तद्वंशविस्तरे ॥ भुक्तेयमवनिः सर्वा द्वितीयं वै तदन्तरम् ॥६॥ स्वरोचिषस्तु चरितं जन्म स्वारोचिषस्य च ॥ निशम्य मुच्यते पापैः श्रद्दधानो हि मानवः ॥ ७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषसमाप्तिर्नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

विख्यात थे ॥ ३ ॥ ऊर्ज्जस्तम्ब, प्राण, दत्त, अलि, ऋषभ, निश्चर और अर्ववीर नामसे विख्यात सप्तर्षि थे ॥ ४ ॥ महात्मा स्वारोचिष मनुके चैत्र और किम्पुरुष इत्यादि महावीर्यवान् सात पुत्र पृथ्वीपालक थे ॥ ५ ॥ जितने दिनतक उनका मन्वन्तर था, तबतक उसके वंशके राजाओंने सब पृथ्वीको भोग किया, मन्वन्तरोंमें स्वारोचिष मन्वन्तर दूसरा है ॥ ६ ॥ इन स्वरोचिका चरित्र और स्वारोचिष मनुका जन्म श्रद्धासहित सुननेपर मनुष्य पापोंसे छूट जाता है ॥ ७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषसमाप्तिर्नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

कौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! स्वरोचिका चरित्र और स्वारोचिष मनुके जन्मका वृत्तान्त आपने मुझसे विस्तारपूर्वक कहा है ॥ १ ॥ किन्तु सर्वभोगसम्पादिनी पद्मिनीनामक विद्याके आश्रित जो सब निधि हैं, उनका विषय मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ हे गुरो ! आठ प्रकारकी निधियोंका स्वरूप और द्रव्यसंस्थिति भलीभाँति आपके मुखसे सुननेकी अभिलाषा हुई है ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—पद्मिनीनामक विद्याकी अधिष्ठात्री देवता लक्ष्मी है यह विद्या आठ प्रकारकी निधिका आधारस्वरूप है । मैं तुमसे इसका विषय कहता हूं सुनो ॥ ४ ॥ पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक,

कौष्टुकिरुवाच ॥ भगवन्कथितं सर्वं विस्तरेण त्वया मम ॥ स्वरोचिषस्तु चरितं जन्म स्वारोचिषस्य तु ॥ १ ॥ या तु सा पद्मिनी नाम विद्या भोगोपपादिका ॥ तत्संश्रया ये निधयस्तान्मे विस्तरतो वद ॥२॥ अष्टौ ये निधयस्तेषां स्वरूपं द्रव्यसंस्थितिः ॥ भवताभिहितं सम्यक्छ्रोतुमिच्छाम्यहं गुरो ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मीस्तस्याश्च देवता ॥ तदाधाराश्च निधयस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ४॥ यत्र पद्ममहापद्मौ तथा मकरकच्छपौ ॥ मुकुन्दो नंदकश्चैव नीलः शङ्खोऽष्टमो निधिः ॥ ५ ॥ सत्यामृद्धौ भवन्त्येते सिद्धिस्तेषां हि जायते ॥ एते ह्यष्टौ समाख्याता निधयस्तव क्रोष्टुके ॥ ६ ॥ देवतानां प्रसादेन साधुसंसेवनेन च ॥ एभिरालोकितं वित्तं मानुषस्य सदा मुने ॥ ७ ॥ यादृक्स्वरूपं भवति तन्मे निगदतः शृणु ॥ पद्मो नाम निधिः पूर्वं स यस्य भवति द्विज ॥ ८ ॥ स तस्य तत्सुतानां च तत्पौत्राणां च नित्यशः ॥ दाक्षिण्यसारः पुरुषस्तेन चाधिष्ठितो भवेत् ॥ ९ ॥

नील और शंखनामक आठ निधि पद्मिनीविद्याके आश्रित हैं ॥ ५ ॥ समृद्धि होनेसे यह निधियें और उनकी सिद्धि लाभ होनी है । कौष्टुके ! यह अष्टविध निधि तुम्हारे निकट कही गई ॥ ६ ॥ हे मुने ! देवताके प्रसाद और साधुसेवाके फलसे मनुष्यका वित्त, निधियोंके द्वारा सर्वदा अवलोकित होता है ॥ ७ ॥ इसका जैसा स्वरूप है, वह मैं कहता हूं, सुनो । हे द्विज ! पद्मनामकनिधि पहले सदा मनुष्यके ॥ ८ ॥ और फिर क्रमानुसार उसके पुत्र पौत्र और प्रपौत्रके अधीनमें रहती है । इस निधिके द्वारा अधिष्ठित होनेसे पुरुष चतुरतासंपन्न ॥ ९ ॥

सत्त्वगुणसम्पन्न और महाभोगी होता है, क्योंकि यह निधि सात्त्विक है। यह पद्मनिधियुक्त पुरुष बहुतसे सुवर्ण, चाँदी ताम्र आदि सब धातुओंको परिग्रह ॥ १० ॥ और क्रयविक्रय करता है, बहुतसे यज्ञ करके विपुल दक्षिणा देता है ॥ ११ ॥ (यथाक्रम संपूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करता है) और एकाग्र चित्तसे सभा और देवालय (मन्दिर) बनवाता है, महापद्म निधि सत्त्वाधारके नामसे प्रसिद्ध है ॥ १२ ॥ तदधिष्ठित मनुष्य भी सत्त्वप्रधान होता है। महापद्माधिष्ठित मनुष्य पद्मरागादि रत्नोंका संचय ॥ १३ ॥ तथा मोती और मूंगेका स्वामी होकर उनका क्रय विक्रय करता है,. योगियोंको उनका स्थान प्रदान ॥ १४ ॥ और साधारण पुरुषोंको योगाभ्यासमें उत्साह प्रदान करता है और स्वयं भी योगशील होता है। तद्वंशीय पुत्र पौत्रादि क्रमशः

सत्त्वाधारो महाभागो यतोऽसौ सात्त्विको निधिः॥ सुवर्णरूप्यताम्रादिधातूनां च परिग्रहम् ॥ १० ॥ करोत्यातितरां सोऽथ तेषां च क्रय-विक्रयम् ॥ करोति च तथा यज्ञान्दाक्षिणां च प्रयच्छति ॥ ११ ॥ (संपादयाति कामांश्च सर्वानेव यथाक्रमम् ॥ सभां देवनिकेतांश्च स कारयति तन्मनाः ॥ सत्त्वाधारो निधिश्चान्यो महापद्म इति श्रुतः ॥ १२ ॥ सत्त्वप्रधानो भवति तेन चाधिष्ठितो नरः ॥ करोति पद्मरागादिरत्नानां च परिग्रहम् ॥ १३ ॥ मौक्तिकानां प्रवालानां तेषां च क्रयविक्रयान् ॥ ददाति योगशीलेभ्यस्तेषामाव-सथांस्तथा ॥१४॥ स कारयाति तच्छीलः स्वयमेव च जायते ॥ तत्प्रसूतास्तथाशीलाः पुत्रपौत्रक्रमेण च ॥ १५ ॥ पूर्वर्द्धिमात्रः सप्तासौ पुरुषांश्च न मुंचाति ॥ तामसो मकरो नाम निधिस्तेनावलोकितः ॥ १६ ॥ पुरुषोऽथ तमःप्रायः सुशीलोऽपि हि जायते ॥ बाणखड्गर्ष्टि-धनुषां चर्मणां च परिग्रहम् ॥१७॥ दंशनानां च कुरुते योऽतिमैत्रीं च राजभिः ॥ ददाति शौर्यवृत्तीनां भूभुजां ये च तत्प्रियाः ॥१८॥

उसके अनुरूपही शीलवान् होते हैं ॥ १५ ॥ किन्तु यह महापद्मनिधि पूर्ववर्त्ती पुरुषोंकी अपेक्षा पीछेके सब पुरुषोंमें क्रमशः अर्द्ध अर्द्ध परिमाणसे स्थित होकर सात पुरुषतक नहीं त्यागती, मकरनामक निधि तामस है। तदधिष्ठित पुरुष ॥ १६ ॥ प्रायः तमोगुणप्रधान और सुशील होता है, वह मकराधिष्ठित पुरुष धनुर्बाण, खड्ग, ढाल और ऋष्टि (आयुध) ग्राही होता है ॥ १७ ॥ भोजन करनेकी वस्तुका भलीभांति स्वाद ग्रहण करनेमें समर्थ होता है राजाओंके संग मित्रता स्थापन करता है, भूपालका प्रिय शौर्य वृत्तिवाले मनुष्योंको दान करके तृप्त होता है ॥ १८ ॥

शस्त्रोंके क्रय विक्रय विना प्रसन्न नहीं होता है और वह पुरुष द्रव्यके लोभसे तस्करद्वारा अथवा युद्धमें विनाशको प्राप्त होता है। यह मकरनिधि एक पुरुषानुगामी अर्थात् एक पीढीतक प्राप्त रहती है, इसके पीछेके पुरुषकी अनुगामी नहीं है। कच्छप (मकर) नामक निधि तामस कही गई है. जिस पुरुष पर इसकी दृष्टि पडती है ॥ १९॥२० ॥ वह पुरुष तमोगुणप्रधान होता है वह पुरुष पुण्ययुक्त संपूर्ण आचार व्यवहार ॥ २१ ॥ और कर्मके अधीन हुआ संपूर्ण भोग्य पदार्थोंको भोगता है, किसीका भी विश्वास नहीं करता, और कछुआ जिस प्रकार अपना अंग छिपाता है ॥२२॥ इसी प्रकार अपना अभिप्राय गुप्त रीतिसे स्थिर कर चित्तसंयमपूर्वक स्थिति करता है और विनाशके भयसे डरकर स्वयं वित्त (धनादिको) नहीं भोगता और दूसरेको

क्रयविक्रये च शस्त्राणां नान्यत्र प्रीतिमेति च ॥ एकस्यैव भवत्येष नरस्य न सुतानुगः ॥ १९ ॥ द्रव्यार्थं दस्युतो नाशं संग्रामे वापि स व्रजेत् ॥ कच्छपश्च निधिर्योऽसौ नरस्तेनाभिवीक्षितः ॥ २० ॥ तमःप्रधानो भवति यतोऽसौ तामसो निधिः ॥ व्यवहारानशेषांस्तु पुण्यजातैः करोति च ॥ २१ ॥ कर्मस्थानाखिलांश्चैव न विश्वसिति कस्यचित् ॥ समस्तानि यथाङ्गानि संहरत्येव कच्छपः ॥ २२ ॥ तथाविष्टभ्य रत्नानि तिष्ठत्याकुलमानसः ॥ न ददाति न वा भुंक्ते तद्विनाशभयाकुलः ॥ २३ ॥ निधानमुर्व्यां कुरुते निधिः सोऽप्येकपूरुषः ॥ रजोगुणमयश्चान्यो मुकुंदो नाम यो निधिः ॥२४॥ नरोऽवलोकितस्तेन तद्गुणो भवति द्विज ॥ वीणावेणुमृदङ्गानामातोद्यस्य परिग्रहम् ॥ २५ ॥ करोति गायतां वित्तं नृत्यतां च प्रयच्छति ॥ बन्दिमागधसूतानां विटानां लास्यपाठिनाम् ॥ २६ ॥ ददात्यहर्निशं भोगान्भुंक्ते तैश्च समं द्विज ॥ कुलटासु रतिश्चास्य भवत्यन्यैश्च तद्विधैः ॥ २७ ॥

भी नहीं देसकता ॥ २३ ॥ यह निधि एक पीढीतक भूतलमें स्थित रहती है हे द्विज! मुकुन्दनामक अन्य निधि रजोगुणमय है ॥२४॥ जिस मनुष्य पर इसकी दृष्टि पडती है, वह मनुष्य रजोगुणयुक्त होता है। मुकुन्दाश्रित मनुष्य वीणा, वेणु, मृदंग इत्यादि चार प्रकारके बाजोंका परिग्रह करता है ॥२५॥ गाने और नाचनेवालोंको बहुत धन देता है, बन्दी, सूत, मागध, विट (लंपट) और लास्यपाठी गान नृत्य विशेषवाले मनुष्योंको ॥२६॥ रात दिन अभिलाषित भोग प्रदान करता है, और उनके संग स्वयं भोजन करता है। इस मनुष्यकी कुलटा और उनके तुल्य मनुष्यके साथ प्रीति होती है ॥ २७ ॥

यह निधि जिसका भजन करती है, उसकी अनुगामी रहती है उसके वंशवालोंकी अनुगामी नहीं होती। नन्दनामक महानिधि रज और तम इन दोनो गुणोंसे युक्त है ॥ २८ ॥ जिस मनुष्यपर इसकी दृष्टि पडती है, वह अत्यन्त स्तम्भित अर्थात् जडताको प्राप्त होता है । नन्दाधिष्ठित मनुष्य समस्त धातु रत्न और धान्यादि पवित्र ॥ २९ ॥ द्रव्यका परिग्रह और क्रय विक्रय करता है। हे महामुने ! वह मनुष्य स्वजनवर्ग एवं आगत और अभ्यागत पुरुषोंका आश्रयस्वरूप होता है ॥ ३० ॥ किंचित् अपमानोक्ति अर्थात् निरादर नहीं सह सकता प्रशंसा करनेसे अत्यन्त आनन्दित होता है ॥ ३१ ॥ अर्थिगण जिस जिस वस्तुकी अभिलाषा करते हैं, उनको वही वही वस्तु देता है। वह स्वयं मृदुस्वभावसम्पन्न होताहै, और पुत्रवती अतिसुन्दरी बहुत

प्रयाति सङ्गमेकं च यं निधिर्भजते नरम् ॥ रजस्तमोमयश्चान्यो नन्दो नाम महानिधिः ॥२८॥ उपैति स्तम्भमधिकं नरस्तेनावलोकितः ॥ समस्तधातुरत्नानां पुण्यधान्यादिकस्य च ॥ २९ ॥ परिग्रहं करोत्येष तथैव क्रयविक्रयम् ॥ आधारः स्वजनानां च आगताभ्यागतस्य च ॥ ३० ॥ सहते नापमानोक्तिं स्वल्पामपि महामुने ॥ स्तूयमानश्च महतीं प्रीतिं बध्नाति यच्छाति ॥ ३१ ॥ यं यमिच्छाति वै कामं मृदुत्वमुपयाति च ॥ बह्वयो भार्या भवन्त्यस्य सूतिमत्योऽतिशोभनाः ॥ ३२ ॥ भजते सप्त च नरान्निधिर्नन्दोऽनुवर्तते ॥ प्रवर्द्धमानोऽथ नरमष्टभागेन सत्तम ॥ ३३ ॥ दीर्घायुष्ट्वं च सर्वेषां पुरुषाणां प्रयच्छति ॥ बन्धूनामेव भरणं ये च दूरादुपागताः ॥ ३४ ॥ तेषां करोति वै नन्दः परलोके न चादृतः ॥ भवत्यस्य न च स्नेहः सहवासिषु जायते ॥ ३५ ॥ पूर्वमित्रेषु शैथिल्यं प्रीतिमन्यैः करोति च ॥ तथैव सत्त्वरजसी यो बिभर्ति महानिधिः ॥ ३६ ॥

भार्यायें उसकी प्रीति संपादन करती हैं ॥ ३२ ॥ हे सत्तम ! नन्दनिधि प्रतिपुरुषमें क्रमशः अष्टम भागमें बढते बढते सात पुरुष पर्यन्त अनुगामी होती है ॥ ३३ ॥ और आश्रित पुरुषको दीर्घायु करती है नन्दाधिष्ठित मनुष्य बंधुवर्ग और दूर देशसे आये हुए मनुष्योंका भरण पोषण करता है ॥ ३४ ॥ किन्तु यह परलोकके प्रति यत्नवान् नहीं होता, और जो नगरवासियोंसे वह स्नेह भी नहीं करता ॥ ३५ ॥ और पूर्व मित्रमें शिथिलता और नवीन मित्रमें प्रीति स्थापित होती है। इसी प्रकार सत्त्व और रजोगुणसम्पन्न महानिधि है ॥ ३६ ॥

उसका नाम नीलनिधि है, उससे अधिष्ठित पुरुषभी सत्त्व और रजोगुणयुक्त होता है जिस मनुष्यपर इसकी दृष्टि पडती है, वह मनुष्य वस्त्र, कपास, धान्यादि सस्य, फल, पुष्प ॥ ३७ ॥ मोती, मूंगा, शंख, सीपी इत्यादि तथा जलोत्पन्न वस्तु और काष्ठादि पदार्थोंको ग्रहण करता है ॥ ३८ ॥ और अपने भोगने योग्य वस्तुके अतिरिक्त फिर इन सब पदार्थोंका क्रय विक्रयभी करता है इसको छोडकर अन्य विषयमें इसकी मानसिक प्रीति उत्पन्न नहीं होती ॥ ३९ ॥ वह मनुष्य तलाव, पुष्करिणी, उपवन और नदीका पुल बंधवाता है, तथा वृक्ष (पंचाम्र इत्यादि) लगाता है और अनुलेपन पुष्पादि भोग्य वस्तुओंको भोगकर ख्याति लाभ करता है ॥ ४० ॥ यह नीलनामक निधि त्रिपौरुष अर्थात् तीन पुरुष पर्यन्त अनुगामी होती है, शंखनामक जो

स नीलसंज्ञस्तत्सङ्गी नरस्तच्छीलवान्भवेत् ॥ वस्त्रकार्पासधान्यादिफलपुष्पपरिग्रहम् ॥ ३७ ॥ मुक्ताविद्रुमशङ्खानां शुक्त्यादीनां तथा मुने ॥ काष्ठादीनां करोत्येष यच्चान्यज्जलसम्भवम् ॥ ३८ ॥ क्रयविक्रयमन्येषां नान्यत्र रमते मनः ॥ तडागान्पुष्करिण्योऽथ तथारामान्करोति च ॥ ३९ ॥ बन्धं च सरितां वृक्षांस्तथारोपयते नरः ॥ अनुलेपनपुष्पादिभोगभुग्वाभिजायते ॥४०॥ त्रिपौरुषश्चापि निधिर्नीलो नामैष जायते ॥ रजस्तमोमयश्चान्यः शङ्खसंज्ञो हि यो निधिः ॥ ४१ ॥ तेनापि नीयते विप्र तद्गुणित्वं निधीश्वरः ॥ एकस्यैव भवत्येष नरं नान्यमुपैति च ॥ ४२ ॥ यस्य शङ्खो निधिस्तस्य स्वरूपं क्रौष्टुके शृणु ॥ एक एवात्मना सृष्टमन्नं भुंक्ते तथाम्बरम् ॥ ४३ ॥ कदन्नभुक्परिजनो न च शोभनवस्त्रधृक् ॥ न ददाति सुहृद्भार्याभ्रातृपुत्रस्नुषादिषु ॥ ४४ ॥

अन्य निधि है, वह रज और तमोगुणमय है ॥ ४१ ॥ इसके संगसे शंख निधीश्वर पुरुष भी रजोगुण और तमोगुणसंपन्न होता है । यह शंखनिधि एक पुरुषकी अनुगामी है, कभी उसके परवर्त्ती पुरुषमें अधिष्ठान नहीं करती ॥ ४२ ॥ हे क्रौष्टुके ! शंखनिधि जिसके वशीभूत होती है, उसका स्वरूप सुनो । शंखनिधीश्वर स्वयं अपना उपार्जित उत्तम अन्न भोजन और उत्तम वस्त्र पहरता है ॥४३॥ किन्तु उसके कुटुम्बी मनुष्य, कुत्सित अन्न भोजन और कुवस्त्र पहरकर कष्टसे समय बिताते हैं । शंखी पुरुष सुहृद्, भार्या, भाई, पुत्र और पुत्रवधू आदिका भरण पोषण करनेके लिये कुछ नहीं देता ॥ ४४ ॥

अपनाही पोषण करनेमें तत्पर होता है, यह निधि सब मनुष्योंकी अर्थदेवता कहकर प्रसिद्ध हैं ॥ ४५ ॥ इनके देखनेसे मनुष्य उल्लिखितस्वभावसंपन्न होता है। किन्तु यह निधिगण मिश्रावलोकनसे मिश्र फलदायक और स्वतंत्रावलोकनसे अपना अपना फल देनेवाली होती हैं। हे द्विज ! यह श्रीरूपिणी पद्मिनी नामक विद्या उक्त आठ प्रकारकी निधिके आधिपत्यमें स्थित है ॥ ४६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां निधिवर्णनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ क्रौष्टुकिने कहा--हे ब्रह्मन् ! आपने स्वारोचिषमन्वन्तर विस्तारसे कहा इसी प्रकार और आठ मन्वन्तर तथा जो निधि मैंने पूछी है, सो कहिये ॥ १ ॥ स्वायम्भुव मन्वन्तर तो आप पहिले कथन कर चुके हैं अब औत्तमनामक तीसरे मन्वन्तरकी कथा कहिये ॥ २ ॥ मार्कंडेयजी बोले—

स्वपोषणपरः शङ्खी नरो भवति सर्वदा ॥ इत्येते निधयः ख्याता नराणामर्थदेवताः ॥ ४५ ॥ मिश्रावलोकनान्मिश्राः स्वभावफलदायिनः ॥ यथाख्यातस्वभावस्तु भवत्येव विलोकनात् ॥ सर्वेषामाधिपत्ये च श्रीरेषां द्विजपद्मिनी ॥ ४६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे निधिवर्णनं नाम पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ विस्तरात्कथितं ब्रह्मन्मम स्वारोचिषं त्वया ॥ मन्वन्तरं तथैवाष्टौ ये पृष्टा निधयो मया ॥ १ ॥ स्वायम्भुवं पूर्वमेव मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥ मन्वन्तरं तृतीयं मे कथयौत्तमसंज्ञितम् ॥ २ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ उत्तानपादपुत्रोऽभूदुत्तमो नाम नामतः ॥ सुरुच्यास्तनयः ख्यातो महाबलपराक्रमः ॥ ३ ॥ धर्मात्मा च महात्मा च पराक्रमधनो नृपः ॥ अतीत्य सर्वभूतानि बभौ भानुपराक्रमः ॥४॥ समः शत्रौ च मित्रे च परे पुत्रे च धर्मवित् ॥ दुष्टे च यमवत्साधौ सोमवच्च महामुने ॥५॥ बाभ्रव्यां बहुलां नाम उपयेमे स धर्मवित् ॥ उत्तानपादतनयः शचीमिन्द्र इवोत्तमः ॥ ६ ॥

सुरुचिनामक रानीके गर्भसे उत्तानपादनृपतिके महाबल पराक्रमशाली उत्तमनामक प्रसिद्ध पुत्रका जन्म हुआ ॥ ३ ॥ धर्मशील और पराक्रमशाली वह उत्तमनामक महात्मा नृपति अपने पराक्रमसे सब प्राणियोंमें सूर्यकी समान दीप्तिमान् थे ॥४॥ हे महामुनि ! वह धर्मात्मा राजा शत्रुमित्रमें और प्रजापुत्रमें समानदृष्टि थे। वह दुष्टोंके निकट यमके समान उग्र और शिष्टोंके निकट चन्द्रमाके समान सौम्यप्रकृति रहते ॥ ५ ॥ इन्द्रने जिस प्रकार सर्वलोकविख्यात शचीसे विवाह कियाहै ऐसेही उन उत्तानपादतनय धर्मज्ञ उत्तमने बभ्रुतनया बहुला नामक प्रसिद्ध कन्यासे विवाह किया था ॥ ६ ॥

हे द्विजवर ! शशधर (चन्द्रमा) का चित्त जिस प्रकार रोहिणीके प्रति अत्यन्त आसक्त है इसी प्रकार उस भूपालका चित्तभी उक्त बहुलाके प्रति अत्यन्त अनुरक्त था ॥ ७ ॥ उन राजाका चित्त बहुलाके अतिरिक्त अन्य किसीके प्रति आसक्त नहीं होता, अधिक क्या स्वप्नमें भी उनका मन उस एक मात्र प्रियाकाही अवलम्बी होता, अर्थात् बहुलाके अतिरिक्त अन्य नारी स्वप्नके समयभी उनके मनमें स्थान नहीं पाती ॥ ८ ॥ वह पार्थिव दर्शनमात्रसेही उल्लिखित रूपवती प्रियाका अंग स्पर्श करते और स्पर्श करतेही तन्मय होजाते ॥ ९ ॥ किन्तु रानी उन पृथ्वीपतिके प्रिय वचन भी कानोंको कडवे और उनका अत्यन्त सन्मान करनाभी अपना अपमान जानती थी ॥ १० ॥ रानी उनकी दी हुई माला और रमणीय आभरणों (गहनों) में अवज्ञा

तस्यामतीव तस्यासीद्द्विजवर्य मनः सदा ॥ स्नेहवच्छशिनो यद्वद्रोहिण्यां निहितास्पदम् ॥ ७ ॥ अन्यप्रयोजनासाक्तिमुपैति न हि तन्मनः ॥ स्वप्ने चैव तदालम्बि मनोऽभूत्तस्य भूभृतः ॥ ८ ॥ स च तस्याः सुचार्वङ्ग्या दर्शनादेव पार्थिवः ॥ ददाह लोचनैर्गात्रे गात्रस्पर्शश्च तन्मयः ॥ ९ ॥ श्रोत्रोद्वेगकरं वाक्यं प्रियमप्यवनीपतेः ॥ तस्यापि भूरि सन्मानं मेने परिभवं ततः ॥१०॥ अवमेने स्रजं दत्तां शुभान्या-भरणानि च ॥ उत्तस्थावर्धपतिेव पिबतोऽस्य वरासवम् ॥ ११ ॥ भुञ्जता च नरेन्द्रेण क्षणमात्रं करे धृता ॥ बुभुजे स्वल्पकं भक्ष्यं द्विज नातिमुदावती ॥१२॥ एवं तस्यानुकूलस्य नानुकूला महात्मनः ॥ प्रभूततरमत्यर्थं चक्रे रागं महीपतिः ॥१३ ॥ अथ पानगतो भूपः कदाचित्तां मनस्विनीम् ॥ सुराभृतं पानपात्रं ग्राहयामास सादरः ॥ १४ ॥ पश्यतां भूमिपालानां वारमुख्या समन्वितः ॥ प्रगीयमानो मधुरैर्गेयगायनतत्परैः ॥ १५ ॥

प्रकाश करती अत्यन्त उत्तम आसव पानके समय उनके निकटसे दुःख अनुभव करती व्यथितशरीरवालीकी समान उठजाती ॥ ११ ॥ हे द्विज ! नरेन्द्र भोजन करते करते यदि हाथ पकडकर उसको अनुरोध करते, तब वह अप्रसन्न चित्तसे कुछेक थोडा भोजन करती ॥ १२ ॥ इस प्रकार महात्मा मही-पतिके प्रति रानीके अनुकूल न होनेपरभी वह अधिकतर अनुराग प्रकाश करते ॥ १३ ॥ अनन्तर एक समय संगीतमें चतुर श्रेष्ठ वाराङ्गना मधुर स्वरसे राजाके समीप गान कर रहीथीं उसी समय भूपालने पानासक्त होकर समीपमें स्थित राजवर्गके सामनेही सादर उस मनस्विनी पत्नीको सुरासे भरा हुआ पानपत्र दिया ॥ १४ ॥ १५ ॥

किन्तु राजाओंके सामने भी रानीने उनसे विमुख होकर पानपात्र ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं की, इससे राजा क्रोधित होकर ॥ १६ ॥ सर्पकी समान श्वास छोडते हुए द्वारपालको बुलाकर कहने लगे, हे प्रतिहारिन् ! इस प्रियतमा देवी बहुलाने अप्रिय जानकर मेरा निरादर किया है ॥ १७ ॥ इस कारण इस दुष्टहृदयाको लेजाकर शीघ्र निर्जन वनमें छोड आओ । मेरी यह आज्ञा अच्छी है वा बुरी है इसका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उक्त द्वारपाल अच्छे बुरेका विचार न करके " राजाकी आज्ञा " केवल इतनाही विचार उस सुभ्रू रानीको रथमें चढाय वनमें छोड आया ॥ १९ ॥ महीपतिके वनमें त्याग करनेपर " अब राजाके सामने नहीं होना पडेगा " रानी यही राजाका महत् अनुग्रह मानने लगी ॥ २० ॥

सा तु नेच्छति तत्पात्रमादातुं तत्पराङ्मुखी ॥ समक्षमवनीशानां ततः क्रुद्धः स पार्थिवः ॥ १६ ॥ उवाच द्वाःस्थमाहूय निश्वसन्नुरगो यथा ॥ निराकृतस्तया देव्या प्रियया पतिरप्रियः ॥ १७ ॥ द्वाःस्थैनां दुष्टहृदयामादाय विजने वने ॥ परित्यज्याशु नैतत्ते विचार्यं वचनं मम ॥ १८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो नृपस्य वचनमविचार्यमवेक्ष्य सः ॥ द्वाःस्थस्तत्याज तां सुभ्रूमारोप्य स्यन्दने वने ॥१९॥ सा च तं विपिने त्यागं नीता तेन महीभृता ॥ अपश्यमाना तं मेने परं कृतमनुग्रहम् ॥२०॥ सोऽपि तत्रानुरागार्तिदह्यमानात्ममानसः ॥ औत्तानपादिर्भूपालो नान्यां भार्यामविन्दत ॥ २१ ॥ सस्मार तां सुचार्वंगीमहर्निशमनिर्वृतः ॥ चकार च निजं राज्यं प्रजाधर्मेण पालयन् ॥२२॥ प्रजाः पालयतस्तस्य पितुः पुत्रानिवौरसान् ॥ आगत्य ब्राह्मणः कश्चिदिदमाहार्त्तमानसः ॥२३॥ ब्राह्मण उवाच ॥ महाराज भृशार्त्तोऽस्मि श्रूयतां गदतो मम ॥ नृणामार्तिपरित्राणमन्यतो न नराधिपात् ॥ २४ ॥

इस ओर उन उत्तानपादके पुत्र भूपालने रानीके प्रति अत्यन्त प्रीति होनेके कारण दुःखसे दह्यमानहृदय हो अन्य भार्या ग्रहण नहीं करी ॥ २१ ॥ केवल दुःखित चित्तसे उसी शोभायमान अंगवाली पत्नीको स्मरण करने लगे । किन्तु वह ऐसी अवस्थामें भी धर्मानुगत होकर प्रजा पालन करते हुए अपने राज्यका शासन करते ॥ २२ ॥ भूपति औरस पुत्रकी समान प्रजा पालन करते थे उसी समय एक दिन कोई ब्राह्मण उनके समीप आनकर दुःखित चित्तसे यह वचन कहने लगा ॥ २३ ॥ हे महाराज ! मैं अत्यन्त क्लेश पारहा हूं, मेरा वचन सुनिये, क्योंकि राजाके अतिरिक्त अन्य किसीसे भी मनु-

ष्योंका क्लेश निवारण नहीं होता ॥ २४ ॥ मैं रात्रिकालमें सोरहा था, उसी समय घरका द्वार विनाही खोले किसीने मेरी भार्याको हरण किया है अब आप मेरी उस पत्नीको ला दीजिये ॥ २५ ॥ राजा बोले–हे द्विज ! आपकी भार्याको किसने हरण किया है ? और कहां रक्खाहै ? यह जब मैं कुछभी नहीं जानता तो मैं किससे विरोध करूं और कहाँसे उसको लाऊं ? ॥ २६ ॥ ब्राह्मणने कहा–हे महीपते ! मेरे सोते हुए गृहद्वार उक्त प्रकारसे बन्द रहने परभी मेरी भार्याको किस भाँतिसे हरण किया, यह आपही जाने ॥ २७ ॥ क्योंकि आपही नृपति हैं, धर्मका छठा अंश वेतन स्वरूपमें ग्रहण करके रक्षकरूपसे नियुक्त हैं, इसी कारण मनुष्य निश्चिन्त होकर रात्रिकालमें सोते हैं ॥ २८ ॥ राजाने कहा–मैंने आपकी भार्याको कभी नहीं देखा, अब

मम भार्या प्रसुप्तस्य केनाप्यपहृता निशि ॥ गृहद्वारमनुद्घाट्य तां समानेतुमर्हसि ॥ २५ ॥ राजोवाच ॥ न वेत्सि केनापहृता क्व वा नीता तु सा द्विज ॥ यतामि विग्रहे कस्य कुतो वाप्यानयामि ताम् ॥ २६ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ तथैव स्थगिते द्वारि प्रसुप्तस्य गृहे मम ॥ हृता हि भार्या किं केनेत्येतद्विज्ञायते भवान् ॥ २७ ॥ त्वं रक्षिता नो नृपते षड्भागादानवेतनः ॥ धर्मस्य तेऽतो निश्चिंताः स्वपन्ति मनुजा निशि ॥ २८ ॥ राजोवाच ॥ न ते दृष्टा मया भार्या यादृग्रूपा च देहतः ॥ वयश्चैव समाख्याहि किंशीला ब्राह्मणी च ते ॥२९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ कठोरनेत्रा सात्युच्चा ह्रस्वबाहुः कृशानना ॥ (लंबोदरीं ह्रस्वास्फिजं तथा ह्रस्वस्तनीं नृप) ॥ विरूपरूपा भूपाल न निन्दामि तथैव ताम् ॥ ३० ॥ वाचि भूपातिपरुषा न सौम्या सा च शीलतः ॥ इत्याख्याता मया भार्या सा करालनिरीक्षणा ॥ ३१ ॥ मनागतीतं भूपाल तस्याश्च प्रथमं वयः ॥ तादृग्रूपा हि मे भार्या सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३२ ॥

अपनी ब्राह्मणीकी आकृति, अवस्था और स्वभाव यह सब भलीभाँति कहिये ॥ २९ ॥ ब्राह्मणने कहा–हे भूपाल ! मेरी पत्नी कठोर नेत्रवाली, अत्यन्त दीर्घाकृति, छोटी भुजावाली कृशानना (लम्बे उदरवाली, सूक्ष्मकमरवाली तथा लघु स्तनोंवाली) और अत्यन्त विरूप है किन्तु मैं तो भी उसकी निन्दा नहीं करता ॥ ३० ॥ हे महीपते ! उसका वाक्य और स्वभाव, यह दोनों अत्यन्त कर्कश हैं और पहिली अवस्था कुछेक बीत गई है, अपनी उस दुर्निरीक्षणा भार्याका समस्तही विषय मैंने आपके निकट कहा । मेरी भार्या जो ऐसी है, यह मैंने सत्यही निवेदन किया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

राजा बोले–हे ब्राह्मण ! आपको ऐसी कुलक्षण भार्याकी क्या आवश्यकता है, मैं आपको अन्य भार्या देता हूं, शुभलक्षणयुक्त भार्या सुखके निमित्त और आपकी भार्याके समान कुलक्षणा पत्नी केवल दुःखके लियेही होतीहै ॥ ३३ ॥ हे विप्र ! सौन्दर्य और सतस्वभावही मंगलका कारण है इस कारण कुरूप और दुःशील भार्याको सम्यक् प्रकार त्याग करनाही उचित है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणने कहा हे महीपाल ! "भार्या सम्यक् प्रकार रक्षणीय है" यह श्रुति मैं जानता हूं भार्याकी रक्षा करनेसे सन्तानकी रक्षा होती है ॥ ३५ ॥ हे नरेश्वर ! आत्माही पुत्ररूपसे भार्याके गर्भमें जन्म ग्रहण करता है इसी कारण सन्तानकी रक्षा करनेसे आत्माकीही रक्षा होती है ॥ ३६ ॥ अतएव भार्याकी सम्यक् प्रकारसे रक्षा करनी चाहिये । हे महीपते ! उस भार्याकी

राजोवाच ॥ अलं ते ब्राह्मण तया भार्यामन्यां ददामि ते ॥ सुखाय भार्या कल्याणी दुःखहेतुर्हि तादृशी ॥ ३३ ॥ अल्पा कुरूपता विप्र कारणं शीलमुत्तमम् ॥ रूपशीलविहीना या त्याज्या तेऽन्येन सा हृता ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ रक्ष्या भार्या महीपाल इति च श्रुतिरुत्तमा ॥ भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता ॥ ३५ ॥ आत्मा हि जायते तस्य सा रक्ष्यातो नरेश्वर ॥ प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः ॥ ३६ ॥ तस्यामरक्ष्यमाणायां भविता वर्णसङ्करः ॥ स पातयेन्महीपाल पूर्वान्स्वर्गादधः पितॄन् ॥ ३७ ॥ अनुज्ञाय गुरुं राजन्दत्त्वान्यां जातवेदसे ॥ ३८ ॥ समिधं तु मया भार्या वृतेयं कर्कशा यतः ॥ कथमेतां विहायान्यभार्यया सह संचरे ॥ ३९ ॥ गृह्यधर्मो यतो ब्रह्म प्राप्यते शाश्वतं नरैः ॥ पूर्वोढया तु धर्मेण गृही कुर्वन्न सदीदति ॥४०॥ त्यक्त्वा तां च क्रियां कुर्वन्नैव कर्मफलं लभेत् ॥ अग्निना सह या नूनं सा जगाम गृहं शुभा ॥ ४१ ॥

भलीभाँति रक्षा न करनेसे तत्काल वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है, वह पूर्व पितरोंको स्वर्गसे नीचे गिराता है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! गुरुजनोंकी अनुज्ञासे अग्निमें ॥ ३८ ॥ समिधा देकर यह कर्कश भार्या मुझसे वरी गई है अतएव इसको छोडकर किस प्रकार अन्य स्त्रीके साथ मेल करूं ? ॥ ३९ ॥ जिस कारण कि ऐसे आचरणसे मनुष्योंको गृहधर्म और शाश्वतब्रह्म प्राप्त होता है इससे पूर्व स्त्रीके साथ धर्म करता हुआ गृहस्थी दुःखी नहीं होता है ॥ ४० ॥ और उसको छोडकर जो क्रिया करता है उसका उसको फल प्राप्त नहीं होता जो शुभ अग्निके साथ घर लाईगई है ॥ ४१ ॥

धर्मके ग्रहणमें वह पहलीही प्रशंसाके योग्य है उस शठाके त्यागसे वर्णसंकर उत्पन्न होनेकी संभावना है ॥ ४२ ॥ भार्याविहीन होनेसे मेरे धर्मकी प्रतिदिन हानि होती है, इस प्रकार नित्य क्रिया कलापके नष्ट होनेपर इससे भी मुझको पतित होना पडेगा ॥ ४३ ॥ हे पृथ्वीनाथ ! उस भार्याके गर्भसे मेरे जो संतान होगी, वह आपको धर्मपूर्वक छठा भाग देगी ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! मैं इन्हीं सब कारणोंसे कहता हूं कि मेरी हरी हुई पत्नीको ला दीजिये, क्योंकि आपही हमारी रक्षाके लिये नियुक्त हैं ॥ ४५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—महाराज उत्तम, उक्त ब्राह्मणके यह वचन सुन कुछ काल चिन्ता कर सब सामग्रीसे युक्त एक महारथमें चढे ॥ ४६ ॥ राजाने उस रथमें चढकर इधर उधर पृथ्वी भ्रमण करते करते महावनमें एक अतिउत्तम तापसाश्रम देखा ॥ ४७ ॥

धर्मस्य ग्रहणे सा तु पूर्वैवैव प्रशस्यते ॥ शठायाचारणात्तस्या जायते वर्णसङ्करः ॥ ४२ ॥ धर्महानिश्चानुदिनमभार्यस्य भवेन्मम ॥ नित्यक्रियाणां विभ्रंशात्स चापि पतनाय मे ॥४३ ॥ तस्यां च पृथिवीपाल भवित्री मम सन्ततिः ॥ तव षड्भागदात्री सा भवित्री धर्महेतुकी ॥ ४४ ॥ तदेतत्ते मया ख्याता पत्नी या मे हृता प्रभो ॥ तां समानय रक्षायां भवानधिकृतो यतः ॥ ४५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ स तस्यैवं वचः श्रुत्वा विमृश्य च नरेश्वरः ॥ सर्वोपकरणैर्युक्तमारुरोह महारथम् ॥ ४६ ॥ इतश्चेतश्च तेनासौ परिबभ्राम मेदि- नीम् ॥ ददर्श च महारण्ये तापसाश्रममुत्तमम् ॥४७॥ अवतीर्य च तत्रासौ प्रविश्य ददृशे मुनिम् ॥ कौश्यां बृष्यां समासीनं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ ४८ ॥ स दृष्ट्वा नृपतिं प्राप्तं समुत्थाय त्वरान्वितः ॥ संमान्य स्वागतेनैव शिष्यमाहार्घ्यमानय ॥ ४९ ॥ तमाह शिष्यः शन- कैर्दातव्योऽर्घ्योऽस्य किं मुने ॥ तदाज्ञापय संचिन्त्य तवाज्ञां हि करोम्यहम् ॥ ४९ ॥ ततोऽवगतवृत्तान्तो भूपतेस्तस्य स द्विजः ॥ सम्भाषासनदानेन चक्रे सम्मानमात्मवान् ॥ ५० ॥

वहाँ रथसे उतर, आश्रममें प्रवेश कर कुशासनपर विराजमान अपने तेजसे जलतीहुई अग्निकी समान दीप्यमान एक मुनिको देखा ॥ ४८ ॥ राजाको आया हुआ देखकर मुनि शीघ्र उठे, और अत्यन्त सन्मानके सहित उनका स्वागत पूछकर तत्काल शिष्यसे कहा " अर्घ्य लाओ " ॥ ४९ ॥ यह सुनकर शिष्यने अत्यन्त मृदुस्वरसे कहा " इन राजाको अर्घ्य देना उचित है वा नहीं यह आप विचार कर आज्ञा दीजिये, आपकी आज्ञा मैं अभी पालन करूंगा। " अनन्तर उन आत्मवान् मुनिने समस्त वृत्तान्त जानकर केवल संभाषण और आसन प्रदानद्वाराही राजाका सन्मान किया ॥ ५० ॥

ऋषिने कहा हे नृप ! आप उत्तानपादके पुत्र उत्तम हैं; यह मैं जानताहूं, आप किसलिये यहां आये हैं और आपका अभिलाषित विषय क्या है ? ॥५१॥ राजा बोले हे मुने ! कोई अज्ञात मनुष्य ब्राह्मणके घरसे उसकी भार्या हरण करके ले गया है, उस द्विजपत्नीको खोजनेके निमित्तही मैं यहां आया हूं॥५२॥ हे भगवन् ! मैं प्रणत होकर आपसे जो पूछता हूं " घर आया हुआ मनुष्य कृपा करनेयोग्य है " अनुग्रहपूर्वक यह विचार कर उसके कहनेकी अनुमति दीजिये ॥ ५३ ॥ ऋषिने कहा हे पृथ्वीपाल ! पूछनेकी बात आप निःशंक होकर पूछिये, यदि मेरे कहनेकी होगी, तो मैं आपसे वह विषय यथार्थही कहूंगा ॥ ५४ ॥ राजा बोले हे मुने ! आपके घर आनेपर प्रथम देखतेही आप मुझको अर्घ्य देनेमें उद्यत हुए थे, किन्तु फिर किस निमित्त उससे निवृत्त

ऋषिरुवाच ॥ किं निमित्तमिहायातो भवान्किं ते चिकिर्षितम् ॥ उत्तानपादतनयं वेद्मि त्वामुत्तमं नृप ॥ ५१ ॥ राजोवाच ॥ ब्राह्मणस्य गृहाद्भार्या केनाप्यपहृता मुने ॥ अविज्ञातस्वरूपेण तामन्वेष्टुमिहागतः ॥५२॥ पृच्छामि यत्ते तन्मे त्वं प्रणतस्यानुकम्पया ॥ अभ्यागतस्याथ गृहं भगवन्वक्तुमर्हसि ॥ ५३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ पृच्छ मामवनीपाल यत्प्रष्टव्यमशङ्कितः ॥ वक्तव्यं चेत्तव मया कथयिष्यामि तत्त्वतः ॥५४॥ राजोवाच ॥ गृहागताय यो मह्यं प्रथमे दर्शने मुने ॥ त्वया समुद्यतो दातुं कथं सोऽर्घ्यो निवर्तितः ॥५५॥ ऋषिरुवाच ॥ त्वद्दर्शनेन रभसादाज्ञप्तोऽयं मया नृप ॥ यदा तदाहमेतेन शिष्येण प्रतिबोधितः ॥ ५६ ॥ एष वेत्ति जगत्यत्र मत्प्रसादादनागतम् ॥ यथाहं समतीतं च वर्त्तमानं च सर्वतः ॥ ५७ ॥ आलोच्याज्ञापयेत्युक्ते ततो ज्ञातं मयापि तत ॥ ततो न दत्तवानर्घ्यमहं तुभ्यं विधानतः ॥ ५८ ॥

हुए अर्थात् अर्घ्य नहीं दिया ॥ ५५ ॥ ऋषिने कहा हे नृप ! आपको देखतेही उत्सुकताके वश होकर ज्योंही मैंने अर्घ्य प्रदान करनेकी आज्ञा दी, उसी समय इस शिष्यने मुझको समझाया ॥ ५६॥ मैं जिस प्रकार अतीत और वर्त्तमान सब विषय, प्रत्यक्ष हों वा गुप्त हों भलीभांति मैं जानता हूं, इसी प्रकार यह शिष्य भी मेरे प्रसादसे जगत्का समस्त भूत, भविष्य और वर्त्तमान विषय जानता है ॥५७॥ इस शिष्यके " विचार करके आज्ञा दो " यह कहनेपर मैंने सब बात जानली, इसी कारण मैंने आपको यथा विधानसे अर्घ्य नहीं दिया ॥ ५८ ॥

हे राजन् ! आपने स्वायंभुव मनुके कुलमें जन्म ग्रहण किया है सुतरां आप अर्घ्यके योग्य हैं, यह सत्य है, किन्तु तो भी मैं आपको श्रेष्ठ अर्घ्यके योग्य नहीं विचारता ॥ ५९ ॥ राजा बोले–हे ब्रह्मन् ! ज्ञानसे वा अज्ञानसे मैंने ऐसा क्या कार्य कियाहै, जिससे मैं नवीन आया हुआ होकर भी आपके निकट अर्घ्ययोग्य नहीं हुआ ॥ ६० ॥ ऋषिने कहा हे नृप ! आपने जो अपनी पत्नीको वनमें त्याग दिया है, वह क्या इस समय भूल गयेहो ? जान लीजिये कि उस पत्नीके संग संपूर्ण धर्मकोभी आपने त्याग दिया है ॥ ६१ ॥ और देखो, एक पक्षतक भी जिसकी क्रियाकी हानि हो वह मनुष्य उस हानिके कारण जनसमाजमें स्पर्श करनेके योग्य नहीं रहता और फिर तुम्हारी तो वर्षोंसे नित्य कर्मकी हानि है और भार्याके विना आपके नित्य कर्मकी हानि होती

सत्यं राजंस्त्वमर्घ्यार्हः कुले स्वायम्भुवस्य च ॥ तथापि नार्घ्ययोग्यं त्वां मन्यामो वयमुत्तमम् ॥ ५९ ॥ राजोवाच ॥ किं कृतं हि मया ब्रह्मञ्ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा ॥ येन त्वत्तोऽर्घ्यमर्हामि नाहमभ्यागतश्चिरात् ॥ ६० ॥ ऋषिरुवाच ॥ किं विस्मृतं ते यत्पत्नी त्वया त्यक्ता च कानने ॥ परित्यक्तस्तया सार्द्धं त्वया धर्मो नृपाखिलः ॥ ६१ ॥ पक्षेण कर्मणो हान्या प्रयात्यस्पृश्यतां नरः ॥ किमत्र वार्षिकी यस्य हानिस्ते नित्यकर्मणः ॥ ६२॥ पत्न्यानुकूलया भाव्यं यथा शीलेऽपि भर्त्तरि ॥ दुःशिलापि तथा भार्या पोषणीया नरेश्वर ॥ ६३॥ प्रतिकूला हि सा पत्नी तस्य विप्रस्य या हृता ॥ तथापि धर्मकामोऽसौ त्वामुद्द्योतितवान्नृप ॥ ६४ ॥ चलतः स्थापयस्यन्यान्स्वधर्मेषु महीपते ॥ त्वां स्वधर्माद्विचलितं कोऽपरः स्थापयिष्यति ॥ ६५ ॥

है, इससे आपकी अर्घ्ययोग्यता कितनी है, सो आप विचार करके देखिये॥ ६२ ॥ हे नरेश्वर ! स्वामी जिस किसी प्रकार चरित्रयुक्त क्यों न हो; पतिका अनुवर्ती होना जिस भांति पत्नीको उचित है, ऐसेही भार्याके दुःशील होनेपर भी पतिको पत्नीका भरण पोषण करना अवश्य कर्त्तव्य है ॥६३॥ हे नृप ! देखो; ब्राह्मणकी जो पत्नी हरी गई है, वह इससे प्रतिकूल होनेपर भी केवल कर्म कामनावान् होनेके कारण यह ब्राह्मण उसका इतना खोज करता है ॥६४॥ हे महीपते ! जो धर्मसे भ्रष्ट होता है, आपही उसको स्वधर्ममें स्थापन करते हैं किन्तु जब आप स्वयं स्वधर्मसे विचलित होंगे, तब आपको कौन उसमें प्रवृत्त करसकेगा ॥ ६५ ॥

(जंगली गेंडेके खेतके धान्यभक्षण करके अपना निर्वाह करते रहते वा राजाके अन्यायी होनेपर, और विद्वानोंके पाप करने पर इस संसारमें फिर कौन जीव शिक्षक होगा ?) मार्कण्डेयजी बोले—बुद्धिमान् ऋषिके इस प्रकार कहनेपर महीपति लज्जित हुए और वह सब स्वीकार कर हरीहुई ब्राह्मणकी पत्नीका वृत्तान्त पूछने लगे ॥ ६६ ॥ हे भगवन् ! जगत्‌की संपूर्ण अतीत और भविष्यत् घटना आप यथार्थ रूपसे जानते हैं, अब उस ब्राह्मणकी स्त्रीको किसने हरण किया है और कहाँ रक्खा है ? आप अनुग्रहपूर्वक बताइये ॥ ६७ ॥ ऋषिने कहा—हे भूपते ! उस ब्राह्मणीको अद्रिपुत्र बलाक नामक राक्षसने हरण किया है, आप अभी उसको उत्पलावतनामक वनमें देखेंगे ॥ ६८॥ प्रस्थान कीजिये । द्विजोत्तमको उसकी भार्याके सहित शीघ्र मिलाइये

(द्वीपे कडंगरीये वा राज्ञि चान्यायवर्तिनि ॥ पापकृत्सु च विद्वत्सु नियंता जंतुरत्र कः ॥) मार्कण्डेय उवाच ॥ विलक्ष्यः स महीपाल इत्युक्तस्तेन धीमता ॥ तथेत्युक्त्वा च पप्रच्छ हृतां पत्नीं द्विजन्मनः ॥६६॥ भगवन्केन नीता सा पत्नी विप्रस्य कुत्र वा ॥ अतीतानागतं वेत्ति जगत्यवितथं भवान् ॥ ६७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ तां जहाराद्रितनयो बलाको नाम राक्षसः ॥ द्रक्ष्यते चाद्य तां भूप उत्पलावतके वने ॥ ६८ ॥ गच्छ संयोजयाशु त्वं भार्यया हि द्विजोत्तमम् ॥ मा पापास्पदतां यातु त्वामिवासौ दिने दिने ॥ ६९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेय-पुराणे औत्तमे मन्वन्तरे ऋषिदर्शनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अथारुरोह स्वरथं प्रणिपत्य महामुनिम् ॥ तेनाख्यातं वनं तच्च प्रययावुत्पलावतम् ॥ १ ॥ यथाख्यातस्वरूपां च भार्यां भर्त्रा द्विजस्य ताम् ॥ भक्षयन्तीं ददर्शाथ श्रीफलानि नरे-श्वरः ॥ २ ॥ पप्रच्छ च कथं भद्रे त्वमेतद्वनमागता ॥ स्फुटं ब्रवीहि वैशालेरपि भार्या सुशर्मणः ॥ ३ ॥

जिससे उक्त ब्राह्मणको आपकी समान दिन दिन पापका भागी होना न पडे ॥ ६९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तमे मन्वन्तरे ऋषिदर्शनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर उक्त महर्षिको प्रणामपूर्वक अपने रथमें चढ राजा उत्तमने उनके बताये उत्पलावत नामक वनमें पहुँचकर ॥ १ ॥ देखा कि पतिने जैसा जैसा स्वरूप बताया है, उसीके अनुसार रूपशालिनी द्विजपत्नी श्रीफल भक्षण कर रही है ॥ २ ॥ उसको देखकर पूछा हे भद्रे ! तुम किस प्रकार इस वनमें आई हो ? और तुम विशालके पुत्र सुशर्मानामक ब्राह्मणकी भार्या हो वा नहीं, सो स्पष्ट कहो ॥ ३ ॥

ब्राह्मणीने कहा मैं वनवासी अतिरात्रनामक ब्राह्मणकी कन्या और आपने जिन विशालपुत्रका नाम लिया, मैं उन्हींकी पत्नी हूं ॥ ४ ॥ मैं घरमें सोरही थी. इसी बीचेंमें दुरात्मा राक्षस भ्राता मातासे वियोग कराकर मुझको हर लाया है ॥ ५ ॥ जननी, भ्राता और अन्य सब आत्मीय पुरुषोंसे अलग होकर अब मैं दुःखित चित्तसे यहाँ स्थिति करती हूं। जिसने मेरी यह दशा की है, वह राक्षस भस्म हो ॥ ६ ॥ राक्षसने मुझको इस निर्जन गहन वनमें लाकर रक्खा है नहीं जानती कि वह किस कारण मुझको भोजन वा उपभोग नहीं करता ? ॥ ७ ॥ राजा बोले—हे द्विजनन्दिनी ! तुम्हारे भर्तानेही मुझको यहाँ भेजा है, क्या तुम जानती हो कि वह राक्षस तुमको यहाँ छोडकर इस समय कहाँ गया है ॥ ८ ॥ ब्राह्मणीने कहा—वह राक्षस इस वनकेही

ब्राह्मण्युवाच ॥ सुताहमतिरात्रस्य द्विजस्य वनवासिनः ॥ पत्नी विशालपुत्रस्य यस्य नाम त्वयोदितम् ॥ ४ ॥ साहं हृता बलाकेन राक्षसेन दुरात्मना ॥ प्रसुप्ता भवनस्यान्तर्भ्रातृमातृवियोजिता ॥५॥ भस्मीभवतु तद्रक्षो येनास्म्येवं वियोजिता ॥ मात्राभ्रातृभिरन्यैश्च तिष्ठाम्यत्र सुदुःखिता ॥ ६ ॥ अस्मिन्वनेऽतिगहने येनानीयाहमुज्झिता ॥ न वेद्मि कारणं किं तन्नोपभुंक्ते न खादति ॥७॥ राजोवाच ॥ अपि तज्ज्ञायते रक्षस्त्वामुत्सृज्य क्व वै गतम् ॥ अहं भर्त्रा तवैवात्र प्रेषितो द्विजनन्दिनि ॥ ८ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ अस्यैव काननस्यान्तः स तिष्ठति निशाचरः ॥ प्रविश्य पश्यतु भवान्न बिभेति ततो यदि ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ प्रविवेश ततः सोऽथ तया वर्त्मनि दर्शिते ॥ ददृशे परिवारेण समवेतं च राक्षसम् ॥१०॥ दृष्टमात्रे ततस्तस्मिंस्त्वरमाणः स राक्षसः ॥ दूरादेव महीं मूर्ध्ना स्पृशन्पादान्तिकं ययौ ॥११॥ राक्षस उवाच ॥ ममात्रागच्छता गेहं प्रसादस्ते महान्कृतः ॥ प्रशाधि किं करोम्येष वसामि विषये तव ॥ १२ ॥

प्रान्तभागमें स्थिति करता है यदि उसका भय न करो, तो प्रवेश करके देखो वह दिखाई देगा ॥ ९ ॥ मार्कंडेयजी बोले—ब्राह्मणीके मार्ग दिखाने पर राजाने वहाँ प्रवेश करके परिवारसे घिरे हुए उस राक्षसको देखा ॥ १० ॥ अनन्तर राजाको देखतेही शीघ्र उठकर दूरसेही मस्तक द्वारा भूमिस्पर्श करता हुआ वह राक्षस उनके चरणोंमें उपस्थित होकर कहने लगा ॥ ११ ॥ राक्षसने कहा मेरे प्रति महाराजका महा अनुग्रह है कि महाराज मेरे घर आये हैं, मैं आपके राज्यमें वास करता हूं, मुझको आज्ञा दीजिये, मैं क्या करूं ? ॥ १२ ॥

यह अर्घ्य ग्रहण करो, इस आसनपर बैठो आप प्रभु और मैं आपका सेवक हूं, आप संकोचरहितचित्तसे मुझको आज्ञा दीजिये ॥ १३ ॥ राजा बोले–हे निशाचर ! तैंने कर्त्तव्य कार्य समस्तही संपन्न किया है, और यथोचित अतिथिसत्कार भी किया है, किन्तु ब्राह्मणकी वधूको किस निमित्त ले आया है ॥ १४ ॥ "भार्या बनानेके लिये हरण किया है" यह भी कैसे कहूं, क्योंकि यह ब्राह्मणपत्नी रूपवती नहीं है, सुतरां तू ऐसी रूपवती भार्याके होते इसको क्यों लाता, और यदि भक्षण करनेके अर्थ लाया है, तो किस अर्थ भक्षण नहीं करता ? यह तू मुझको कह ॥ १५ ॥ राक्षस बोला हे नृप ! मैं मनुष्यभोजी राक्षस नहीं हूं–वह राक्षस अलग हैं; पुण्यका जो फल है, मैं वही भोजन करता हूं ॥ १६ ॥ (हे राजन् ! जो कुछ पुण्यका फल है,

अर्घ्यं चेमं प्रतीच्छ त्वं स्थीयतां चेदमासनम् ॥ वयं भृत्या भवान्स्वामी दृढमाज्ञापयस्व माम् ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ कृतमेव त्वया सर्वं सर्वा मेऽपचितिः कृता ॥ किमर्थं ब्राह्मणवधूस्त्वया नीता निशाचर ॥ १४ ॥ नेयं सुरूपा सन्त्यन्या भार्यार्थं चेद्धृता त्वया ॥ भक्ष्यार्थं चेत्कथं नात्ता त्वयैतत्कथ्यतां मम ॥ १५ ॥ राक्षस उवाच ॥ न वयं मानुषाहारा अन्ये ते नृप राक्षसाः ॥ सुकृतस्य फलं यत्तु तदश्नीमो वयं नृप ॥ १६ ॥ (सुकृतस्य फलं यत्तु तत्ते वक्ष्याम्यहं नृप ॥ राक्षसीं योनिमापन्नः क्रूरां लोकभयंकरीम् ॥) स्वभावं च मनुष्याणां योषितां च विमानिताः ॥ नामिषं च समश्नीमो न वयं जन्तुखादकाः ॥ १७ ॥ यदस्माभिर्नृणां क्षान्तिभुक्ता क्रुध्यन्ति ते तदा ॥ भुक्ते दुष्टे स्वभावे च गुणवन्तो भवन्ति च ॥ १८ ॥ सन्ति नः प्रमदा भूप रूपेणाप्सरसां समाः ॥ राक्षस्यस्तासु तिष्ठत्सु मानुषीषु रतिः कथम् ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ यद्येषा नोपभोगाय नाहाराय निशाचर ॥ गृहं प्रविश्य विप्रस्य तत्किमेषा हृता त्वया ॥ २० ॥

वह आपसे कहता हूं, क्रूर और संसारको भय देनेवाली राक्षसयोनिको प्राप्त हुआ) सन्मानित वा अपमानित जो कोई क्यों न हो, सदा मैं नर नारियोंका स्वभाव भोजन करता हूं, मैं जन्तु खानेवाला नहीं हूं ॥ १७ ॥ सुतरां क्षमागुणयुक्त स्वभाव भोजन करनेसे मनुष्य क्रोधित होते हैं, और जब दुष्ट स्वभाव भोजन करता हूं तब वह गुणवान् होते हैं ॥ १८ ॥ हे भूपाल ! मेरी अप्सराओंकी समान राक्षसी भार्या अनेक हैं, उनके रहते मानुषीकी अभिलाषा क्यों होगी ? ॥ १९ ॥ राजा बोले हे निशाचर ! यदि यह ब्राह्मणकी पत्नी तुम्हारे भोगने योग्य वा भक्षण करने योग्य नहीं थी, तो किस कारण ब्राह्मणके

घरमें घुसकर इसको चुराया ? ॥२०॥ राक्षसने कहा--हे नृप ! वह ब्राह्मण श्रेष्ठ मंत्रज्ञ हैं, वह प्रायः सब यज्ञोंमें गमनपूर्वक रक्षोघ्नमंत्र पाठ करके मुझको उच्चाटित करते हैं ॥ २१ ॥ जब ब्राह्मण इस प्रकार मंत्रद्वारा मेरा उच्चाटन करते हैं, तब मैं भूंखा होकर कहाँ जाऊं ? वह सब यज्ञोंमें ऋत्विक् होते हैं ॥ २२ ॥ इस लिये उनके चित्तमें उद्वेग उत्पन्न करायाहै, क्योंकि पत्नीके विना पुरुष कभी यज्ञकार्यमें समर्थ नहीं होसकता ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले "महामते ! ब्राह्मणके चित्तमें उद्वेग उत्पन्न कराया" राक्षसका कहा यह वचन सुनतेही राजा अत्यन्त विषादको प्राप्त हुये ॥ २४ ॥ और विचारा कि "विप्रके चित्तमें विकलता उत्पन्न हुई है" यह कहकर राक्षस मेरीही निन्दा करता है इसके पहिले उन मुनिस-

राक्षस उवाच ॥ मन्त्रवित्स द्विजश्रेष्ठो यज्ञे यज्ञे गतस्य मे ॥ रक्षोघ्नमन्त्रपठनात्करोत्युच्चाटनं नृप ॥ २१ ॥ वयं बुभुक्षितास्तस्य मन्त्रोच्चाटनकर्मणा ॥ क्व यामः सर्वयज्ञेषु स ऋत्विग्भवति द्विजः ॥ २२ ॥ ततोऽस्माभिरिदं तस्य वैकल्यमुपपादितम् ॥ पत्न्या विना पुमान्निज्याकर्मयोग्यो न जायते ॥ २३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ वैकल्योच्चारणात्तस्य ब्राह्मणस्य महामतेः ॥ ततः स राजातिभृशं विषण्णः समजायत ॥२४॥ वैकल्यमेष विप्रस्य वदन्मामेव निन्दति ॥ अनर्हमर्घस्य च गां सोऽप्याह मुनिसत्तमः ॥ २५ ॥ वैकल्यं तस्य विप्रस्य राक्षसोऽप्याह मे यथा ॥ अपत्नीकतया सोऽहं सङ्कटं महदास्थितः ॥२६॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं चिन्तयतस्तस्य पुनरप्याह राक्षसः॥ प्रणामनम्रो राजानं बद्धांजलिपुटो मुने ॥२७॥ नरेन्द्राज्ञाप्रदानेन प्रसादः क्रियतां मम ॥ भृत्यस्य प्रणतस्येत्थं युष्मद्विषयवासिनः॥२८॥

त्तमने भी मुझको इसी निमित्त अर्घ्यके अयोग्य कहा है ॥ २५ ॥ और अब यह राक्षस भी "मेरीही समान पत्नीविहीन होकर उस ब्राह्मणके चित्तमें उद्वेग उत्पन्न हुआ है" कहताहै ? अतएव पत्नीविहीन होकर घोर संकटमें पडा हूं ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे मुने ! राजा इस प्रकार चिन्ता करते थे, इसी समयमें राजाको नम्रभावसे प्रणाम कर, हाथ जोड वह राक्षस फिर कहने लगा ॥ २७ ॥ हे नरेन्द्र ! मैं आपके राज्यकी प्रजा हूं अतएव इस प्रणत भृत्यको आज्ञा देकर अनुग्रह कीजिये ॥ २८ ॥

राजाने कहा हे निशाचर ! तुमने जो कहा कि, "मैं स्वभाव भोजन करताहूं" अतएव मैं जिस कार्यका प्रार्थी हूं, सो कहता हूं सुनो ॥ २९ ॥ अब तुम इस ब्राह्मणीकी दुश्चरित्रता (खुटाई) भोजन करो । क्योंकि तुम्हारे द्वारा इसका दुःस्वभाव भक्षित होनेपर यह विनीत होगी॥ ३० ॥ इसके पीछे हे निशाचर ! यह जिसकी भार्या है उसीके घर इसको रख आओ । इस प्रकार करनेसे तुम्हारे द्वारा मेरा अतिथिसत्कार हो जायगा ॥ ३१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले– अनन्तर उस राक्षसने अपनी मायाके बलसे उस ब्राह्मणीके अन्तरमें प्रवेश करके राजाकी आज्ञानुसार निजशक्तिद्वारा ब्राह्मणीका दुःस्वभाव भक्षण कर लिया ॥ ३२ ॥ तब अतिप्रचंड दुःस्वभावसे छूटकर वह द्विजपत्नी राजासे कहने लगी ॥ ३३ ॥ मैं अपने कर्मफलके कारण महात्मा स्वामीसे

राजोवाच ॥ स्वभावं वयमश्नीमस्त्वयोक्तं यन्निशाचर ॥ तदर्थिनो वयं येन कार्येण शृणु तन्मम ॥ २९ ॥ अस्यास्त्वयाद्य ब्राह्मण्या दौःशील्यमुपभुज्यताम् ॥ येन त्वयात्तदौःशील्या तद्विनीता भवेदियम् ॥ ३० ॥ नीयतां यस्य भार्येयं तस्य वेश्म निशाचर ॥ अस्मिन्कृते कृतं सर्वं गृहमभ्यागतस्य मे ॥ ३१ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः स राक्षसस्तस्याः प्रविश्यान्तः स्वमायया ॥ भक्षयामास दौःशील्यं निजशक्त्या नृपाज्ञया ॥३२॥ दौःशील्येनातिरौद्रेण पत्नी तस्य द्विजन्मनः॥ तेन सा सम्परित्यक्ता तमाह जगतीपातिम् ॥३३॥ स्वकर्मफलपाकेन भर्तुस्तस्य महात्मनः ॥ वियोजिताहं तद्धेतुरयमासीन्निशाचरः ॥ ३४ ॥ नास्य दोषो न वा तस्य मम भर्तुर्महात्मनः ॥ ममैव दोषो नान्यस्य स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥ ३५ ॥ अन्यजन्मानि कस्यापि विप्रयोगः कृतो मया ॥ सोऽयं मयाप्युपगतः को दोषोऽस्य महात्मनः ॥ ३६ ॥ राक्षस उवाच ॥ प्रापयामि तवादेशादिमां भर्तृगृहं प्रभो ॥ यदन्यत्करणीयं ते तदाज्ञापय पार्थिव ॥ ३७ ॥

वियोगको प्राप्त हुई थी, यह निशाचर उसका केवल कारण मात्र है ॥ ३४ ॥ इस राक्षसका दोष नहीं और मेरे उन महात्मा पतिका भी दोष नहीं है दोष मेरे अतिरिक्त और किसीका नहीं है, क्यों कि अपने किये कर्मका फल अवश्यही भोगना पडता है ॥ ३५ ॥ जान पडता है, मैंने अन्य जन्ममें किसीका वियोग कराया था, इसी कारण मेरा इन स्वामीसे वियोग हुआ, इस महात्मा निशाचरका क्या दोष है ? ॥ ३६ ॥ राक्षस बोला–हे प्रभो ! आपकी आज्ञासे अभी इसके पतिके घर इसको लिये जाता हूं । हे राजन् ! आज्ञा दीजिये अब आपका और क्या कार्य करना होगा ! ॥ ३७ ॥

राजाने कहा हे रजनीचर ! इस कार्यके करनेसे तुमने प्रायः मेरे समस्तही कार्य किये, इसके अतिरिक्त हे वीर ! कार्यके समय तुम स्मरण करनेसे उपस्थित होओ ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—इसके पीछे राक्षस यह बात स्वीकार करके दुःस्वभाव नष्ट होनेके कारण शुद्ध हुई इस ब्राह्मणकी पत्नीको उसके पतिके घर लेगया ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तममन्वन्तरे ब्राह्मणभार्यानयनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—राजा उस ब्राह्मणकी पत्नीको उसके पतिके घर भेजकर लम्बे लम्बे श्वास लेते हुए चिन्ता करने लगे कि, अब क्या करनेसे भला हो ? ॥ १ ॥ उन महामना महर्षिने मुझसे " पत्नीवियोगके कारण तुम अर्घ्य पानेके उपयुक्त पात्र नहीं हो " यह विषादजनक वचन कहा है और इस निशाचरने भी

राजोवाच ॥ अस्मिन्कृते कृतं सर्वं त्वया मे रजनीचर ॥ आगन्तव्यं च ते वीर कार्यकाले स्मृतेन मे ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा तु तद्रक्षस्तामादाय द्विजाङ्गनाम् ॥ निन्ये भर्तृगृहं शुद्धां दौःशील्यापगमात्तदा ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरे ब्राह्मणभार्यानयनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तां प्रेषयित्वा राजापि स्वभर्तृगृहमंगनाम् ॥ चिन्तयामास निःश्वस्य किमत्र सुकृतं भवेत् ॥ १ ॥ अनर्घयोग्यता कष्टं स यामाह महामनाः ॥ वैकल्यं विप्रमुद्दिश्य तथाहायं निशाचरः ॥२॥ सोऽहं कथं करिष्यामि त्यक्ता पत्नी मया हि सा ॥ अथवा ज्ञानदृष्टिं तं पृच्छामि मुनिसत्तमम् ॥ ३ ॥ संचिन्त्येत्थं स भूपालः समारुह्य च तं रथम् ॥ ययौ यत्र सधर्मात्मा त्रिकालज्ञो महामुनिः ॥ ४ ॥ अवरुह्य रथात्सोऽथ तं समेत्य प्रणम्य च ॥ यथावृत्तं समाचख्यौ राक्षसेन समागमम् ॥ ५ ॥ ब्राह्मण्या दर्शनं चैव दौःशील्यापगमं तथा ॥ प्रेषणं भर्तृगेहे च कार्यमागमने च यत् ॥ ६ ॥

विप्रको लक्ष्य करके इसी प्रकार पत्नीवियोगजनित वैकल्यका विषय कहा ॥२॥ मैंने अपनी पत्नीको त्याग किया है, अब मैं क्या करूं या मैं उन ज्ञानदृष्टिसंपन्न मुनिश्रेष्ठसे पूछूं ॥ ३ ॥ इस प्रकार चिन्ता करके वह राजा रथपर चढ जहां वह त्रिकालज्ञ धर्मात्मा महामुनि वास करते थे, वहां गये ॥ ४ ॥ फिर उन्होंने रथसे उतरकर उनके समीप उपस्थित हो उनको प्रणामपूर्वक, राक्षसका समागम ब्राह्मणीका दर्शन, उसके दुष्टस्वभावका नाश, उसको पतिके घर भेजना और अपने पुनर्वार आनेका उद्देश्य आद्योपान्त वर्णन किया ॥ ५ ॥ ६ ॥

ऋषि बोले—हे नराधिप ! आपका किया कार्य और मेरे समीप आपके आनेका उद्देश्य, मैंने यह सब पहिले ही जान लिया है ॥ ७ ॥ तो भी आप मुझसे स्वयं पूछे, यही उद्विग्न मनसे प्रतीक्षा करता था। हे महीपाल ! अब आपका कर्तव्य कार्य क्या है। वह सुनिये ॥८॥ पत्नीही मनुष्योंकी धर्मार्थ काम साधनका प्रबल कारण है विशेष कर भार्यात्यागी धर्मको भी त्याग करते हैं ॥ ९ ॥ हे भूपते ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र कोई भी पत्नी त्याग करके निज कार्यके अनुष्ठानमें समर्थ नहीं होते ॥ १० ॥ हे नृपते ! आपने पत्नी त्याग कर अच्छा नहीं किया, जिस भाँति स्त्रीको पतिका त्याग नहीं करना चाहिये, इसी प्रकार पतिको भी भार्याका त्याग करना उचित नहीं है ॥ ११ ॥ राजाने कहा " हे भगवन् ! मैं क्या करूं यह पत्नी-

ऋषिरुवाच ॥ ज्ञातमेतन्मया पूर्वं यत्कृतं ते नराधिप ॥ कार्यमागमने चैव मत्समीपे तवाखिलम् ॥ ७ ॥ प्रष्टुं मामिह किं कार्यं मयेत्यु-द्विग्नमानसः ॥ त्वमागतो महीपाल शृणु कार्यं च यत्त्वया ॥ ८ ॥ पत्नी धर्मार्थकामानां कारणं प्रबलं नृणाम् ॥ विशेषतश्च धर्मस्य स त्यक्तस्त्यजता हि ताम् ॥ ९ ॥ अपत्नीको नरो भूप न योग्यो निजकर्मणाम् ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यः शूद्रोऽपि वा नृप ॥ १० ॥ त्यजता भवता पत्नीं न शोभनमनुष्ठितम् ॥ अत्याज्यो हि यथा भर्त्ता स्त्रीणां भार्या तथा नृणाम् ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्किं करोम्येष विपाको मम कर्मणाम् ॥ नानुकूलानुकूलस्य यस्मात्त्यक्ता ततो मया ॥ १२ ॥ यद्यत्करोति तत्क्षान्तं दह्यमानेन चेतसा ॥ भगवंस्तद्वियोगातिविभीतेनान्तरात्मना ॥ १३ ॥ साम्प्रतं तु वने त्यक्ता न वेद्मि क्व नु सा गता ॥ भक्षिता वापि विपिने सिंहव्याघ्रनि-शाचरैः ॥ १४ ॥

परित्याग मेरे पूर्वजन्ममें किये कार्यका परिणाम है। मैं सदाही उसके प्रति अनुकूल था किन्तु वह मेरे प्रति कुछ भी अनुकूल नहीं थी, इसी कारण मैंने उसको त्याग दिया है ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! उसके वियोगकी यातनासे मेरा अन्तरात्मा भिन्न होता है और चित्त जलता है, इसी कारण उस पत्नीने जो जो अप्रिय आचरण किये वह सब क्षमा किये ॥ १३ ॥ किन्तु अब वनमें त्यागी हुई मेरी वह पत्नी कहां चली गई है, अथवा वनमें सिंह, व्याघ्र वा राक्षस उसको भक्षण कर गये, सो नहीं जानता " ॥ १४ ॥

ऋषि बोले--हे भूपाल ! सिंह व्याघ्र वा निशाचर आदिने उसको भक्षण नहीं किया, इस समय आपकी वह पत्नी विशुद्ध चरित्रसे रसातलमें वास करती है ॥ १५ ॥ राजाने कहा—हे ब्रह्मन् ! मेरी वह पत्नी किसके द्वारा रसातलमें पहुँची और किस प्रकारसे अदूषित होकर वहाँ वास करती है ? यह अद्भुत विषय यथावत् वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! पातालमें कपोतक नामक विख्यात नागराज वास करते हैं, वह आपके द्वारा त्यागीहुई तुम्हारी उस रूपशालिनी युवती भार्याको महावनमें भ्रमण करता देख, उसके प्रति अनुरागी हो अपना अभिप्राय प्रकट कर उसको पातालमें लेगये हैं ॥ १७॥ १८ ॥ हे महीपते ! उन बुद्धिमान् नागराजकी सुंदरी कन्याका नाम नन्दा है और उनकी भार्याका नाम मनोरमा है ॥ १९ ॥ उस नाग-

ऋषिरुवाच ॥ न भाक्षिता सा भूपाल सिंहव्याघ्रनिशाचरैः ॥ सा त्वविप्लुतचारित्रा साम्प्रतं तु रसातले ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ सा नीता केन पातालमास्ते साऽदूषिता कथम् ॥ अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन्यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ पाताले नागराजोऽस्ति प्रख्यातश्च कपोतकः ॥ तेन दृष्टा त्वया त्यक्ता भ्रममाणा महावने ॥ १७ ॥ सा रूपशालिनी तेन सानुरागेण पार्थिव ॥ वेदितार्थेन पातालं नीता सा युवती तदा ॥१८॥ ततस्तस्य सुता सुभ्रूर्नन्दा नाम महीपते ॥ भार्या मनोरमा चास्य नागराजस्य धीमतः ॥१९॥ तया मातुः सपत्नीयं सा भवित्रीति शोभना ॥ दृष्टा स्वगेहं सा नीता गुप्ता चान्तःपुरे शुभा ॥ २० ॥ यदा तु याचिता नन्दा न ददाति नृपोत्तरम् ॥ मूका भविष्यतीत्याह तदा तां तनयां पिता ॥२१॥ एवं शप्ता सुता तेन सा चास्ते तत्र भूपते ॥ नीता तेनोरगेन्द्रेण धृता तत्सुतया सती ॥२२॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो राजा परं हर्षमवाप्य तमपृच्छत ॥ द्विजवर्यं स्वदौर्भाग्यकारणे दयितां प्रति ॥ २३ ॥

कन्या नन्दाने इस सुंदरीको अपनी माताकी भविष्यत् सपत्नी देख अन्तःपुरमें अपने घरके भीतर ले जाकर छिपा रक्खा ॥ २० ॥ नागराज जब नन्दाके निकट उस सुन्दरीके लिये प्रार्थना करते, तब नन्दा उनको कुछ उत्तर नहीं देती, तदनन्तर नागराजने इस कन्यासे कहा "तू वाक्छक्तिहीन अर्थात् गूँगी होगी " ॥ २१ ॥ हे भूपते ! वह नागराजकी कन्या नन्दा पितासे इस प्रकार शापको प्राप्त हुई है और उन उरगेन्द्रके द्वारा पातालमें पहुँची हुई उस सतीको उनकी कन्याने पकड रक्खा है ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर राजाने परम हर्षको प्राप्त होकर उन द्विजश्रेष्ठसे अपने प्रति प्रियाके अप्रिय भावका कारण पूछा ॥ २३ ॥

राजाने कहा--हे भगवन्‌ ! मेरे प्रति संपूर्ण मनुष्योंकी अत्युत्तम प्रीति है, किन्तु मेरी स्वीय पत्नी मुझमें अनुरक्त नहीं है, इसका क्या कारण है ? ॥ २४ ॥ हे महामुने ! हे द्विजोत्तम ! मेरी वह पत्नी प्राणोंकी अपेक्षा प्रियतम होनेपर भी जिस कारण मेरे प्रति बुरा व्यवहार करती है, सो कहिये ॥ २५ ॥ ऋषि बोले—विवाहके समयमें आपके ऊपर रवि, मंगल और शनैश्चरकी दृष्टि थी और आपकी भार्याको शुक्र एवं बृहस्पति देख रहे थे ॥ २६ ॥ और उसी मुहूर्तमें आपकी पत्नीके चन्द्र और आपके बुध, यह परस्पर अत्यन्त विपक्ष थे ॥ २७ ॥ अब जाइये और स्वधर्मद्वारा पृथ्वीका पालन तथा भार्याके

राजोवाच ॥ भगवन्सर्वलोकस्य मयि प्रीतिरनुत्तमा ॥ किन्तु तत्कारणं येन स्वपत्नी नातिवत्सला ॥ २४ ॥ मम चासावतीवेष्टा प्राणेभ्योऽपि महामुने ॥ सा च मां प्रति दुःशीला ब्रूहि तत्कारणं द्विज ॥ २५ ॥ ऋषिरुवाच ॥ पाणिग्रहणकाले त्वं सूर्यभौमशनैश्चरैः ॥ शुक्रवाचस्पतिभ्यां च तव भार्यावलोकिता ॥ २६ ॥ तन्मुहूर्तेऽभवच्चन्द्रस्तस्याः सोमसुतस्तथा ॥ परस्परविपक्षौ तौ ततः पार्थिव ते भृशम्‌ ॥ २७ ॥ तद्गच्छ त्वं स्वधर्मेण परिपालय मेदिनीम्‌ ॥ पत्नीसहायः सर्वांश्च कुरु धर्मवतीः क्रियाः ॥ २८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्ते प्रणिपत्यैनमारुह्य स्यन्दनं ततः ॥ उत्तमः पृथिवीपाल आजगाम निजं पुरम्‌ ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः स्वनगरं प्राप्य तं ददर्श द्विजं नृपः ॥ समेतं भार्यया चैव शीलवत्या मुदान्वितम्‌ ॥ १ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ राजवर्य कृतार्थोऽस्मि यतो धर्मो हि रक्षितः ॥ धर्मज्ञेनेह भवता भार्यामानयता मम ॥ २ ॥

सहित मिलित होकर सब प्रकार धर्मयुक्त कार्यका अनुष्ठान कीजिये ॥ २८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—महामना ऋषिके इस प्रकार कहनेपर पृथ्वीपाल उत्तम उनको प्रणाम कर रथमें चढ अपने पुरमें आगये ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तममन्वन्तरे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर राजा उत्तमने अपने नगरमें पहुँचकर उस ब्राह्मणको सुशील भार्याके संग स्थित और हर्षयुक्त देखा ॥ १ ॥ ब्राह्मणने राजासे कहा हे राजश्रेष्ठ ! मैं कृतार्थ हुआहूं क्योंकि आपने धर्म जाननेके कारण मेरी भार्या लाकर मेरे धर्मकी रक्षा की है ॥ २ ॥

राजा बोले–हे द्विजश्रेष्ठ ! अपना धर्म प्रतिपालनके कारण आप कृतार्थ हुए हैं, किन्तु हे विप्र ! मेरे घरमें पत्नी नहीं है अतएव मैं अत्यन्त संकटमें पडा हूं ॥ ३ ॥ ब्राह्मणने कहा–हे नरेन्द्र ! यदि उसको वनमें हिंसक जीवोंने भक्षण कर लिया है, तो आपने क्रोधके वशवर्ती होकर धर्मको देखा नहीं अब क्या ? यदि नष्ट होगई हो तो उसके मिलनेकी आशा छोडकर अन्य कन्याका पाणिग्रहण क्यों नहीं करते ? हे नृपनन्दन ! कारण कि राजोंके घरमें अनेक कन्यायें हैं ॥ ४ ॥ राजा बोले–मेरी पत्नीको हिंसक जीवोंने नहीं खाया, अबतक विशुद्ध चरित्रसे जीवित है, फिर किस प्रकारसे मैं स्त्री ग्रहण

राजोवाच ॥ कृतार्थस्त्वं द्विजश्रेष्ठ निजधर्मानुपालनात् ॥ वयं सङ्कटिनो विप्र येषां पत्नी न वेश्मनि ॥ ३ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ नरेंद्र सा हि विपिने भक्षिता श्वापदैर्यदि ॥ क्रोधस्य वशमागम्य धर्मो नावेक्षितस्त्वया ॥ अलं तया किमन्यस्या न पाणिर्गृह्यते त्वया ॥ संति राज्ञां गृहे कन्याः शोभना नृपनन्दन ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ न भक्षिता मे दयिता श्वापदैः सा हि जीवति ॥ अविदूषितचारित्रा कथमेतत्करोम्यहम् ॥ ५ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ यदि जीवति ते भार्या न चैव व्याभिचारिणी ॥ अपत्नीकत्वतो जन्म किं पापं क्रियते त्वया ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ आनीतापि हि सा विप्र प्रतिकूला सदैव मे ॥ दुःखाय न सुखायालं तस्या मैत्री न वै मयि ॥ यथा ते ब्राह्मणी विप्र वशगा तव सुंदरी ॥ तथा त्वं कुरु यत्नं मे यथा सा वशगामिनी ॥ ७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ त्वयि संप्रीतये तस्या वरेष्टिरुपकारिणी ॥ क्रियते मित्रकामैर्या मित्रविन्दां करोमि ताम् ॥ ८ ॥

करूं ? ॥ ५ ॥ ब्राह्मणने कहा यदि आपकी पत्नी अभीतक अव्यभिचारिणी होकर जीवित है, तो तुम पत्नी परित्याग करके पाप क्यों करते हो ? ॥ ६ ॥ राजा बोले हे विप्र ! अपनी पत्नीके लानेपर भी वह सदा मेरे प्रतिकूल रहेगी, वह सुखका कारण नहीं है, केवल दुःखकाही कारण है क्योंकि मुझमें उसका स्नेह नहीं है। हे विप्रोत्तम ! जिससे वह मेरी पत्नी मेरे वशीभूत हो, आप उसीमें यत्न कीजिये ॥ ७ ॥ ब्राह्मणने कहा मित्रताकी कामना करनेवाले जो उपकारी श्रेष्ठ यज्ञ करते हैं, मैं तुम्हारी और तुम्हारी पत्नीकी प्रीतिके लिये वही "मित्रविन्दा" नामक यज्ञ करूंगा ॥ ८ ॥

हे मनुजेन्द्र ! असंतुष्ट स्त्रीपुरुषोंकी प्रीतिकारी और परम प्रीति उत्पन्न करनेवाली शक्तिका देनेवाला वह यज्ञ आपके निमित्त करूंगा ॥ ९ ॥ हे महीपते ! आपकी वह सुभ्रू भार्या जिस स्थानमें वास करती है वहांसे उसको लेआओ, वह आपमें परम प्रीतिवाली होगी ॥ १० ॥ (उसके तुम्हारे हितके अर्थ ऐसे अवसरमें धर्म नष्ट नहीं होताहै) मार्कण्डेयजी बोले—वह राजा उत्तम ब्राह्मणका वचन सुनकर संपूर्ण यज्ञकी सामग्री लाई और उस द्विजश्रेष्ठने भी उल्लिखित यज्ञ किया ॥ ११ ॥ अनन्तर उस द्विजोत्तमने राजाकी भार्याको सुशील करनेके लिये पुनः पुनः सात वार वह यज्ञ किया ॥ १२ ॥ जब महामुनिने उस राजमहिषीको स्वीय पतिके प्रति अनुरागवती समझा, तब राजासे कहा ॥ १३ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! अब अपनी उस प्रिय भार्याको अपने समीप लाकर उसके संग सांसारिक भोग भोगिये और यत्नसहित यज्ञ संपन्न कीजिये ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उस ब्राह्मणका इस प्रकार वचन सुनकर राजा अत्यन्त अचंभेमें हुए और उसी समय महावीर्य, सत्यप्रतिज्ञ उस निशाचरको स्मरण किया ॥ १५ ॥ हे महामुने ! स्मरण करतेही उस निशाचरने तत्काल वहाँ उपस्थित हो उनको प्रणाम करके कहा कि "मैं क्या करूं" ॥ १६ ॥ अनन्तर राजाके सब विस्तारसहित कहने पर निशाचर पातालमें जाय

अप्रीतयोः प्रीतिकरी सा हि संजननी परम् ॥ भार्यापत्योर्मनुष्येन्द्र तां तवेष्टिं करोम्यहम् ॥ ९ ॥ यत्र तिष्ठति सा सुभ्रूस्तव भार्या महीपते ॥ तस्मादानीयतां सा ते परां प्रीतिमुपैष्यति ॥ १० ॥ (तस्यास्तव हितार्थाय धर्मो यत्र न सीदति ॥) मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्तः स तु सम्भारानशेषानवनीपतिः ॥ आनिनाय चकारेष्टिं स च तां द्विजसत्तमः ॥ ११ ॥ सप्तकृत्वः स तु तदा चकारेष्टिं पुनः पुनः ॥ तस्य राज्ञो द्विजश्रेष्ठो भार्यासम्पादनाय वै ॥ १२ ॥ यदारोपितमैत्रां ताममन्यत महामुनिः ॥ स्वभर्त्तरि तदा विप्रस्तमुवाच नराधिपम् ॥ १३ ॥ आनीयतां नरश्रेष्ठ या तवेष्टात्मनोऽन्तिकम् ॥ भुंक्ष्व भोगांस्तया सार्द्धं यज यज्ञांस्तथादृतः ॥ १४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्तस्तेन विप्रेण भूपालो विस्मितस्तदा ॥ सस्मार तं महावीर्यं सत्यसन्धं निशाचरम् ॥ १५ ॥ स्मृतस्तेन तदा सद्यः समुपेत्य नराधिपम् ॥ किं करोमीति सोऽप्याह प्रणिपत्य महामुने ॥ १६ ॥ ततस्तेन नरेन्द्रेण विस्तरेण निवेदिते ॥ गत्वा पातालमादाय राजपत्नीमुपाययौ ॥ १७ ॥

राजपत्नीको लेकर फिर उपस्थित हुआ ॥ १७ ॥ उसने आनकर हार्दिक अत्यन्त प्रणयके साहित अपने पतिका दर्शन किया और प्रीतियुक्त होकर "मेरे प्रति प्रसन्न होओ" इस प्रकार वारंवार कहने लगी ॥ १८ ॥ अनन्तर राजाने उत्सुकताके सहित मानिनी पत्नीको आलिंगन करके कहा "हे प्रिये ! मैं तुम्हारे प्रति प्रसन्नही हूं तुम वारंवार क्यों कहती हो" ॥ १९ ॥ राजपत्नी बोली—हे नरेन्द्र ! यदि आपका मन मेरे प्रति प्रसन्न हुआ है, तो मैं प्रार्थना करती हूं, आप मेरे यथायोग्य सन्मानकी रक्षा कीजिये ॥ २० ॥ राजाने कहा—हे भीरु ! अपना अभिलाषित विषय निःशंक भावसे वर्णन करो । मेरे समीप तुमको कुछभी अलभ्य नहीं है । मैंही तुम्हारे अधीन हूं, इसमें अन्यथा नहीं है ॥ २१ ॥ राजपत्नी बोली—मेरी सखी नागराजकी कन्या मेरेही

आनीता चातिहार्देन सा ददर्श तदा पतिम् ॥ उवाच च प्रसीदेति भूयो भूयो मुदान्विता ॥१८॥ ततः स राजा रभसा परिष्वज्याह मानिनीम् ॥ प्रिये प्रसन्न एवाहं भूयोऽप्येवं ब्रवीषि किम् ॥ १९ ॥ पत्न्युवाच ॥ यदि प्रसादप्रवणं नरेन्द्र मयि ते मनः ॥ तदेतदभियाचे त्वां तत्कुरुष्व ममार्हणम् ॥२०॥ राजोवाच ॥ निःशंकं ब्रूहि मत्तो यद्भवत्या किंचिदीप्सितम् ॥ तदलभ्यं न ते भीरु तवायत्तोऽस्मि नान्यथा ॥ २१ ॥ पत्न्युवाच ॥ मदर्थं तेन नागेन सुता शप्ता सखी मम ॥ मूका भविष्यसीत्याह सा च मूकत्वमागता ॥ २२ ॥ तस्याः प्रतिक्रियां प्रीत्या मम शक्नोति चेद्भवान् ॥ वाग्विघातप्रशान्त्यर्थं ततः किं न कृतं मम ॥ २३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः स राजा तं विप्रमाहास्मिन्कीदृशी क्रिया ॥ तन्मूकतापनोदाय स च तं प्राह पार्थिवम् ॥ २४ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ भूप सारस्वतीमिष्टिं करोमि वचनात्तव ॥ पत्नी तवेयमानृण्यं यातु तद्वाक्प्रवर्तनात् ॥ २५ ॥

कारण नागराजके द्वारा "तू गूँगी होगी" इस प्रकार शापको प्राप्त हो वाक्शक्तिविहीन हुई है ॥ २२ ॥ आप मेरे प्रति प्रीतिके कारण यदि उसकी मूकताप्रशमनार्थ प्रतीकार करनेमें समर्थ हो तो मेरा आपने क्या कार्य नहीं किया ॥२३॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर राजाने उस ब्राह्मणसे पूछा कि नागराजकी कन्याका गूंगापन दूर होनेके लिये इस समय क्या कार्य करना आवश्यक है ? ॥ २४ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे भूप ! आपके वचनानुसार सारस्वती इष्टि करूंगा । आपकी यह पत्नी उसको मूकता दूर होनेपर ऋणमुक्त होगी ॥ २५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले--उस द्विजश्रेष्ठने उसकी मूकता नष्ट होनेके लिये सारस्वतीइष्टिका आरंभ किया और सावधान होकर सारस्वत सूक्तका जप करने लगा ॥ २६ ॥ तदनन्तर गर्गऋषिने रसातलमें प्रवृत्तवाक्या अर्थात् बोलनेकी शक्तिको प्राप्त हुई नागकन्यासे कहा तुम्हारी सखीके पतिने तुम्हारा यह दुष्कर उपकार किया है ॥ २७ ॥ नागकन्या नन्दा यह जानकर शीघ्रगतिसे उस पुरमें जाय अपनी सखी राज्ञीको आलिंगन ॥ २८ ॥ और उन भूपालके गुण गान करके आसनपर बैठ कल्याणवचनोंके द्वारा मधुर भावसे वारंवार कहने लगी ॥ २९ ॥ हे वीर ! इस समय आपके द्वारा मेरा जो उपकार साधित

मार्कण्डेय उवाच ॥ इष्टिं सारस्वतीं चक्रे तदर्थं स द्विजोत्तमः ॥ सारस्वतानि सूक्तानि जजाप च समाहितः ॥२६॥ ततः प्रवृत्तवाक्यां तां गर्गः प्राह रसातले ॥ उपकारः सखी भर्त्रा कृतोऽयमतिदुष्करः ॥२७॥ इत्थं ज्ञानं समासाद्य नन्दा शीघ्रगतिः पुरम् ॥ ततो राज्ञीं परिष्वज्य स्वसखीमुरगात्मजा ॥ २८ ॥ तं च संस्तूय भूपालं कल्याणोक्त्या पुनः पुनः ॥ उवाच मधुरं नागी कृतासनपरिग्रहा ॥ २९ ॥ उपकारः कृतो वीर भवता यो ममाधुना ॥ तेनास्म्याकृष्टहृदया यद्ब्रवीमि शृणुष्व तत् ॥३०॥ तव पुत्रो महावीर्यो भविष्यति नराधिपः ॥ तस्याप्रतिहतं चक्रमस्यां भुवि भविष्यति ॥३१॥ सर्वार्थशास्त्रतत्त्वज्ञो धर्मानुष्ठानतत्परः ॥ मन्वन्तरेश्वरो धीमान्भविष्यति स वै मनुः ॥३२॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति दत्त्वा वरं तस्मै नागराजसुता ततः ॥ सखीं तां संपरिष्वज्य पातालमगमन्मुने ॥ ३३ ॥ तत्र तस्य तया सार्द्धं रमतः पृथिवीपतेः ॥ जगाम कालः सुमहान्प्रजाः पालयतस्तथा ॥ ३४ ॥

हुआ है, उससे आकृष्टहृदय होकर मैं जो कहती हूं वह सुनो ॥ ३० ॥ हे नराधिप ! आपको महावीर्यवान् पुत्र उत्पन्न होगा और इस पृथ्वीमें उसका अखण्ड राज्यमण्डल प्रतिष्ठित होगा ॥ ३१ ॥ आपका सर्वार्थशास्त्रमें तत्त्वज्ञ, धर्मानुष्ठानमें तत्पर, वह बुद्धिमान् पुत्र मन्वन्तराधिपति मनु होगा ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे मुने ! तदनन्तर नागराजकी कन्या नन्दा उनको इस प्रकार वर दे, और उस सखीको गाढ आलिंगन कर पातालमें चली गई ॥ ३३ ॥ इधर पत्नीके सहित रमणपरायण उन पृथ्वीपतिका प्रजा पालन करते करते बहुत काल बीतगया ॥ ३४ ॥

अनन्तर रानीके गर्भसे महात्मा राजाके पूर्णिमाके संपूर्ण चन्द्रमण्डलकी समान मनोहर कान्ति एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ उन महात्माके जन्मग्रहणमें समस्त प्रजाने महाआनंद प्राप्त किया था, समस्त देवताओंकी दुन्दुभी बजी थीं और फूलोंकी वर्षा हुई थी ॥ ३६ ॥ आयेहुए मुनियोंने उसके देहकी कान्ति देखकर और भावस्वभाव जानकर उसका " औत्तम " नामसे नामकरण किया ॥ ३७॥ मुनियोंने कहा इस महात्माने उत्तम वंशमें, उत्तम कालमें और उत्तम अवयव (अंग) सम्पन्न होकर जन्मग्रहण किया है, इस कारण यह उत्तम नामसे विख्यात होगा ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे मुने भागुरे !

ततः स तस्यां तनयो जज्ञे राज्ञो महात्मनः ।। पौर्णमास्यां यथा कान्तश्चन्द्रः संपूर्णमण्डलः ॥३५॥ तस्मिञ्जाते मुदं प्रापुः प्रजाः सर्वाः सहामराः ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात च ।। ३६ ।। तस्य दृष्ट्वा वपुः कान्तं भविष्यं शीलमेव च ।। औत्तमश्चेति मुनयो नाम चक्रुः समागताः ।। ३७ ।। जातोऽयमुत्तमे वंशे बालः काले तथोत्तमे ॥ उत्तमावयवस्तेन औत्तमोऽयं भविष्याति ।। ३८ ।। मार्कण्डेय उवाच ॥ उत्तमस्य सुतः सोऽथ नाम्ना ख्यातस्तथौत्तमः ॥ मनुरासीत्तत्प्रभावो भागुरे श्रूयतां मम ॥ ३९ ॥ उत्तमाख्यानमखिलं जन्म चैवोत्तमस्य यः ॥ नित्यं शृणोति विद्वेषं स कदाचिन्न गच्छति ॥४०॥ इष्टैर्दारैस्तथा पुत्रैर्बन्धुभिर्वा कदाचन ॥ वियोगो नास्य भविता शृण्वतः पठतोऽपि वा ।। ४१ ।। तस्य मन्वन्तरं ब्रह्मन्वदतो मम विस्तरात् ॥ श्रूयतां तत्र यश्चेन्द्रो ये च देवास्तथर्षयः ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

पक्षान्तरमें " उत्तमके पुत्र थे " इसी कारण वह औत्तम नामसे अभिहित होकर मनु हुए थे । अब मुझसे उनका प्रभाव सुनो ॥ ३९ ॥ उत्तमनृपतिका आख्यान और औत्तम मनुका जन्मवृत्तान्त जो सुनते हैं, वह कभी विद्वेषको प्राप्त नहीं होते ॥ ४० ॥ जो इसको सुनते हैं वा पढते हैं, उनको कभी इष्ट, पुत्र, स्त्री और बंधुवर्गका वियोग सहना नहीं पडता ॥४१॥ उनके मन्वन्तरकी कथा विस्तारसहित वर्णन करता हूं सुनो । हे ब्रह्मन् ! उस समय जो इन्द्र, जो देवता, और जो ऋषि थे, वह भी कहता हूं ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तममन्वन्तरे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

मार्कण्डेय बोले—हे मुने ! औत्तम प्रजापतिके तीसरे मन्वन्तरके इन्द्र, देवता और ऋषियोंका विषय कहता हूं, सुनो ॥ १ ॥ प्रथमगण स्वधामा नामक देवताओंके नामानुरूप अपनी ज्योतिसे प्रकाशमान है और देवताओंका दूसरा गण सत्य नामसे विख्यात है ॥ २ ॥ हे मुनिसत्तम ! देवताओंका तीसरा गण "शिव" नामसे विख्यात है। इस नामका स्मरण करतेही वह पाप नाश करके "शिव" नामकी यथार्थता सम्पादन करता है ॥३॥ हे मुनिवर ! औत्तमन्वन्तरमें देवताओंका चौथा गण प्रतर्द्दन नामसे प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥ हे महामुने ! पांचवें गणमें वशवर्त्ती नामक देवता हैं वह सब नामानुरूप कार्यकारी

मार्कण्डेय उवाच ॥ मन्वन्तरे तृतीयेऽस्मिन्नौत्तमस्य प्रजापतेः ॥ देवानिन्द्रमृषीन्भूपान्निबोध गदतो मम ॥ १ ॥ स्वधामानस्तथा देवा यथानामानुकारिणः ॥ सत्याख्यश्च द्वितीयोऽन्यस्त्रिदशानां तथा गणः ॥ २ ॥ तृतीये तु गणे देवाः शिवाख्या मुनिसत्तम ॥ शिवाः स्वरूपतस्ते तु श्रुताः पापप्रणाशनाः ॥ ३ ॥ प्रतर्दनाख्यश्च गणो देवानां मुनिसत्तम ॥ चतुर्थस्तत्र कथित औत्तमस्यान्तरे मनोः ॥४॥ वशवर्तिनः पंचमेऽपि देवास्तत्र गणे द्विज ॥ यथाख्यातस्वरूपास्तु सर्व एव महामुने ॥५॥ एते देवगणाः पंच स्मृता यज्ञभुजस्तथा ॥ मन्वन्तरे मनुश्रेष्ठे सर्वे द्वादशका गणा ॥६॥ तेषामिन्द्रो महाभागस्त्रैलोक्यस्येश्वरोऽभवत् ॥ शतं क्रतूनामाहृत्य सुशान्तिर्नाम नामतः ॥७॥ यस्योपसर्गनाशाय नामाक्षरविभूषिता ॥ अद्यापि मानवैर्गाथा गीयते तु महीतले ॥८॥ सुशान्तिर्देवराट् कान्तः सुशान्तिं संप्रयच्छति ॥ सहितः शिवसत्याद्यैस्तथैव वशवर्तिभिः ॥९॥ अजः परशुचिर्दिव्यो महाबलपराक्रमः ॥ पुत्रास्तस्य मनोरासन्विख्यातास्त्रिदशोपमाः॥१०॥

हैं। हे द्विजोत्तम ! इस मन्वन्तरमें यज्ञभुक् देवताओंके पांच प्रकार गण और प्रत्येक गणमें बारह बारह देवता हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ उन देवताओंके सुशान्ति नामधारी महाभाग इन्द्र सौ अश्वमेध यज्ञ करके त्रैलोक्यके गुरु होते हैं ॥ ७ ॥ उन देवराज सुशान्तिकी नामाक्षरविभूषित यह गाथा पृथ्वीतलमें मनुष्यगण अबतक गाते हैं ॥ ८ ॥ वह कान्तिमान् देवराज सुशान्ति शिव सत्यादि देवताओंके सहित सुशान्ति प्रदान करते हैं, वशवर्तीनामक देवगण भी इसी प्रकार करते हैं ॥ ९ ॥ इन मनुके अज, परशुचि और दिव्य नामक देवतोंकी समान विख्यात महाबल पराक्रमी तीन पुत्र थे ॥ १० ॥

जितने दिनों उन उत्तम तेजा मनुका मन्वन्तर था, तबतक उनकी वंशोत्पन्न सन्तान सन्ततिने नरेश्वर होकर पृथ्वीका पालन किया था ॥ ११ ॥ युगकथनकालमें सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, यह चार युग कहे गये हैं, कुछ अधिक (इकहत्तर) उक्त चारों युगमें मन्वन्तर काल निर्दिष्ट है ॥ १२ ॥ अपने तेजोबलमें महातपोनामक महात्माके सात पुत्र औत्तम मन्वन्तरमें सप्त ऋषि हुए थे ॥ १३॥ मैंने यह तीसरे मन्वन्तरका वर्णन किया, अब तामस मनुका चौथा मन्वन्तर कहता हूं ॥ १४ ॥ विभिन्नयोनि-उत्पन्न जिन मनुके यशद्वारा जगत् प्रकाशित हुआ था उन मनुके जन्मका वृत्तान्त कहता हूं,

तत्सूतिसम्भवैर्भूमिः पालिताभून्नरेश्वरैः ॥ यावन्मन्वन्तरं तस्य मनोरुत्तमतेजसः ॥ ११ ॥ चतुर्युगानां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः ॥ कृतत्रेतादिसंज्ञानि यान्युक्तानि पुरा मया ॥ १२ ॥ स्वतेजसा हि तपसो वरिष्ठस्य महात्मनः ॥ तनयाश्चान्तरे तास्मिन्सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥ १३ ॥ तृतीयमेतत्कथितं तव मन्वन्तरं मया ॥ तामसस्य चतुर्थं तु मनोरन्तरमुच्यते ॥ १४ ॥ वियोनिजन्मनो यस्य यशसा द्योतितं जगत् ॥ जन्म तस्य मनोर्ब्रह्मञ्छ्रूयतां गदतो मम ॥१५॥ अतीन्द्रियमशेषाणां मनूनां चरितं तथा ॥ तथा जन्मापि विज्ञेयं प्रभावश्च महात्मनाम् ॥ १६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ मार्कंण्डेय उवाच ॥ राजाभूद्भुवि विख्यातः स्वराष्ट्रो नाम वीर्यवान् ॥ अनेकयज्ञकृत्प्राज्ञः संग्रामेष्वपराजितः ॥१॥ तस्यायुः सुमहद्दत्तं सूर्येण सुमहाद्युतेः ॥ (पुरा भगवता विप्र मंत्रिणाराधितेन वै) पत्नीनां च शतं तस्य धन्यानामभवद्द्विज ॥ २ ॥

सुनो ॥ १५॥ इन सब महात्मा अनेक मनुगणोंका चरित्र, उनके जन्मका वृत्तान्त, और उनका प्रभाव भलीभांतिसे जानना चाहिये ॥१६॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तममन्वन्तरं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ मार्कण्डेयजी बोले--अनेक यज्ञकारी ज्ञानसंपन्नसंग्राममें अपराजित वीर्यवान् स्वराष्ट्रनामक जगद्विख्यात एक राजा थे ॥ १ ॥ हे द्विज ! उनके मंत्रियोंद्वारा आराधित होकर महाद्युतिमान् भगवान् सूर्यने उनको दीर्घ आयु प्रदान की थी, उन राजाके सुन्दरी धन्या नामक सौ पत्नी थीं ॥ २ ॥

किन्तु हे मुने ! उन दीर्घायु राजाकी पत्नियें अतिदीर्घायु नहीं थीं, अतएव वह यथासमयमें मृत्युको प्राप्त हुई थीं और भृत्य तथा मंत्रिगणभी कालके वश होकर मृत्युको प्राप्त हुए थे ॥ ३ ॥ वयस्यगण (स्नेही), भृत्यगण और समस्त भार्याओंके वियोगमें उद्विग्नचित्त होकर राजा रातदिन वीर्यहीन होने लगे ॥ ४ ॥ विमर्द नामक समीपवर्ती अन्य राजाने, वीर्यहीन और विश्वासी भृत्योंके द्वारा छोडे हुए इस दुःखित राजाको राज्यसे च्युत किया ॥ ५ ॥ वह महाभाग राजा स्वराष्ट्र राज्यसे च्युत होनेके कारण दुःखित चित्तसे वनमें जाय वितस्तानदीके तटपर स्थित होकर तपस्या करने लगे ॥ ६ ॥ वह

तस्य दीर्घायुषः पत्न्यो नातिदीर्घायुषो मुने ॥ कालेन जग्मुर्निधनं भृत्यमन्त्रिजनास्तथा ॥३॥ स भार्याभिस्तथा मुक्तो भृत्यैश्च सहजन्मभिः ॥ उद्विग्नचेताः संप्राप वीर्यहानिमहर्निशम् ॥ ४ ॥ तं वीर्यहीनं निभृतैर्भृत्यैस्त्यक्तं सुदुःखितम् ॥ अनन्तरो विमर्दाख्यो राज्याच्च्यावितवांस्तदा ॥ ५॥ राज्याच्च्युतः सोऽपि वनं गत्वा निर्विण्णमानसः ॥ तपस्तेपे महाभागो वितस्तापुलिने स्थितः ॥६॥ ग्रीष्मे पंचतपा भूत्वा वर्षास्वभ्रावकाशकः ॥ जलशायी च शिशिरे निराहारो यतव्रतः ॥ ७॥ ततस्तपस्यतस्तस्य प्रावृट्काले महाप्लवः ॥ बभूवानुदिनं मेघैर्वर्षद्भिरनुसन्ततम् ॥ ८ ॥ न दिग्विज्ञायते पूर्वा दक्षिणा वा न पश्चिमा ॥ नोत्तरा तमसा सर्वमनुलिप्तमिवाभवत् ॥ ९ ॥ ततोऽतिपूरेण नृपः स नद्या प्रेरितस्तटम् ॥ प्रार्थयन्नपि नावाप ह्रियमाणोऽतिवेगिना ॥ १० ॥

ग्रीष्मके समय पंचाग्निमें पंचतपा, वर्षाके समय खुले स्थानमें बैठकर और शीतकालमें जलशायी होकर निराहार और संयत भावसे व्रत करने लगे ॥ ७ ॥ तदनन्तर तपस्यानुरक्त राजाकी तपस्याके समय एक दिन वर्षाकालमें मेघोंके चारों ओर निरन्तर जल बरसानेसे महाजलसमूह उपस्थित हुआ था ॥ ८ ॥ तब चारों दिशा अंधकारसे आच्छादित होगई, यही नहीं, वरन् उस काल दक्षिण, पूर्व, पश्चिम वा उत्तर कुछ नहीं जाना जाता था ॥ ९॥ अनन्तर वह राजा अति प्लावनकालमें नदीके तटसे प्रेरित होकर अत्यन्त वेगशाली जलधारासे खिंचकर भी प्रार्थित नदीके तटको प्राप्त नहीं हुए ॥ १० ॥

फिर महीपति जलके प्रवाहसे हरे जाकर एक रौही (मृगीविशेष) को प्राप्त हुए और उसकी पुच्छ पकडी ॥ ११ ॥ तदनन्तर उस जलसमूहमें खिंचे हुए राजा महीतलमें पहुँचे । अंधकारमें इधर उधर ढूँढकर किनारेपर पहुँचे ॥ १२ ॥ मृगीके द्वारा आकृष्यमाण वह राजा बहुत विस्तारवाली दुस्तर कीचडको तरकर एक मनोहर वनमें पहुँचे ॥ १३ ॥ अंधकारमें वह मृगी पुच्छमें लगे नाडियोंसे व्याप्त देहवाले महाभाग वसुधाधिपतिको खैंचने लगी ॥ १४ ॥ राजा स्वराष्ट्र अंधकारमें भ्रमण करते करते उसके स्पर्शसे कामासक्तचित्त हो अत्यन्त आनन्दको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ जब राजाने उस वनमें उसकी पीठका स्पर्श किया, तब मृगीने उनको अनुरागी जानकर कहा ॥१६॥ हे भूपाल ! काँपतेहुए हाथोंसे मेरी पीठका स्पर्श क्यों करते हो ? इस स्पर्शका भाव अन्य

अथ दूरे जलौघेन ह्रियमाणो महीपतिः ॥ आससाद जले रौहीं स पुच्छे जगृहे च ताम् ॥ ११ ॥ तेन प्लवेन स ययावूह्यमानो महीतले ॥ इतश्चेतश्चान्धकारे आससाद तटं ततः ॥१२॥ विस्तारिपङ्कमत्यर्थं दुस्तरं स नृपस्तरन् ॥ तथैव कृष्यमाणोऽन्यद्रम्यं वनमवाप सः ॥१३॥ तत्रान्धकारे सा रौही चकर्ष वसुधाधिपम् ॥ पुच्छे लग्नं महाभागं कृशं धमनिसन्ततम् ॥१४॥ तस्याश्च स्पर्शसंभूतामवाप मुदमुत्तमाम् ॥ सोऽन्धकारे भ्रमन्भूपो मदनाकृष्टमानसः ॥१५॥ विज्ञाय सानुरागं तं पृष्ठस्पर्शनतत्परम् ॥ नरेन्द्रं तं वृषस्यन्तं सा मृगी तमुवाच ह ॥१६॥ किं पृष्ठं वेपथुमता करेण स्पृशसे मम ॥ अन्यथैवास्य कार्यस्य सञ्जाता नृप ते गतिः ॥ १७ ॥ नास्थाने वा मनो यातं नागम्याहं तवेश्वर ॥ किंतु त्वत्सङ्गमे विघ्नमेष लोलः करोति मे ॥१८॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्या मृग्याश्च जगतीपतिः ॥ जातकौतूहलो रौहीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ का त्वं ब्रूहि मृगी वाक्यं कथं मानुषवद्वदेत् ॥ कश्चैव लोलो यो विघ्नं त्वत्सङ्गे कुरुते मम ॥२०॥

प्रकार विदित होता है ॥ १७ ॥ हे नरेश्वर ! अयोग्यके प्रति आपकी अभिलाषा नहीं हुई है मैं आपकी अगम्या नहीं हूं अर्थात् गमन करनेके योग्यही हूं किन्तु आपके समागममें यह लोल विघ्न करते हैं ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--उन राजाने उस मृगीका इस प्रकार वचन सुन कौतूहलयुक्त होकर मृगीसे कहा ॥ १९ ॥ तुम कौन हो ? मृगी होकर किस प्रकार मनुष्यकी समान बात कहती हो ? और तुम्हारे संग समागममें जो विघ्न उत्पन्न करते हैं, वह लोल कौन है ? सो कहो ॥ २० ॥

मृगीने कहा—हे भूपते ! मैं दृढधन्वाकी कन्या हूं, मैंही सैकडों रानियोंमें श्रेष्ठ थी मेरा नाम उत्पलावती है मैं आपकी प्रियतमा महिषी हूं ॥ २१ ॥ राजा बोले--तुमने ऐसा क्या कार्य किया है जिससे ऐसी योनि प्राप्त हुई है ? मेरी वह पत्नी पतिव्रता और धर्मपरायण होकर किस प्रकार ऐसी दशाको प्राप्त हुई ? ॥ २२ ॥ मृगी बोली--मैंने पिताके घर बाल्यअवस्थामें सखियोंके संग क्रीडा करनेके लिये वनमें जाकर मृगीकेसहित संगत एक मृगको देखा था ॥ २३ ॥ अनन्तर मैंने निकट जाकर मृगीको ताडन (प्रहार) किया, तब मृगी डरकर अन्यत्र चली गई, इस कारण मृगने क्रोधित होकर कहा ॥ २४ ॥ हे मूढे ! किसलिये ऐसी मत्त हुई, तेरी ऐसी दुःशीलताको धिक्कार है, क्योंकि मेरे इस गर्भादान कालको तैंने विफल किया ॥ २५ ॥ मनुष्यके समान वचन बोलने-

मृग्युवाच ॥ अहं ते दयिता भूप प्रागासमुत्पलावती ॥ भार्याशताग्रमहिषी दुहिता दृढधन्वनः ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ किन्तु यावत्कृतं कर्म येनेमां योनिमागता ॥ पतिव्रता धर्मपरा सा चेत्थं कथमीदृशी ॥ २२ ॥ मृग्युवाच ॥ अहं पितृगृहे बाला सखीभिः सहिता वनम् ॥ रन्तुं गता ददर्शैकं मृगं मृग्या समागतम् ॥ २३ ॥ ततः समीपवर्तिन्या मया सा ताडिता मृगी ॥ मया त्रस्ता गतान्यत्र क्रुद्धः प्राह ततो मृगः ॥ २४ ॥ मूढे किमेवं मत्तासि धिक्ते दौःशील्यमीदृशम् ॥ आधानकालो येनायं त्वया मे विफलीकृतः ॥ २५ ॥ वाचं श्रुत्वा ततस्तस्य मानुषस्येव भाषतः ॥ भीता तमब्रुवं कोऽसीत्येतां योनिमुपागतः ॥ २६ ॥ ततः स प्राह पुत्रोऽहमृषेर्निर्वृतिचक्षुषः ॥ सुतपा नाम मृग्यां तु साभिलाषो मृगोऽभवम् ॥ २७ ॥ इमां चानुगतः प्रेम्णा वांछितश्चानया वने ॥ त्वया वियोजिता दुष्टे तस्माच्छापं ददामि ते ॥ २८ ॥ मया चोक्तं तवाज्ञानादपराधः कृतो मुने ॥ प्रसादं कुरु शापं मे न भवान्दातुमर्हति ॥ २९ ॥

वाले उस मृगका वचन सुननेपर मैंने डरकर उससे पूछा कि, आप किस प्रकार इस मृगयोनिको प्राप्त हुए हैं ? ॥ २६ ॥ तब उसने कहा मैं निर्वृति-चक्षु मुनिका पुत्र हूं, मेरा नाम सुतपा है, मैंने मृगीमें अभिलाषा करके मृगरूप धारण किया है ॥ २७ ॥ इस वनमें इस मृगीके अभिलाषा करनेसे प्रीतिके वश होकर इसका अनुगमन किया था । हे दुष्टे ! तैंने उस मृगीसे मेरा वियोग कराया इस कारण तुझको शाप दूंगा ॥ २८ ॥ मैंने कहा हे मुनिवर ! अज्ञानके वश होकर मैंने आपका अपराध किया है, मेरे प्रति प्रसन्न होओ, मुझको शाप मत दो ॥ २९ ॥

हे महीपते ! इस प्रकार कहनेपर उन मुनिने भी मुझसे कहा, तुम यदि मुझमें आत्मप्रदान करोगी तो तुझको शाप नहीं दूंगा ॥ ३० ॥ मैंने कहा मैं मृगरूप धारिणी वा मृगी नहीं हूं, आपको वनमें अन्य मृगी मिलेगी, मेरे प्रति यह अभिलाषा निवृत्त कीजिये ॥ ३१ ॥ यह बात सुन उन्होंने कोपसे लाल नेत्र कर होठ कँपाते हुए कहा तैंने "मैं मृगी नहीं हूं" यह बात कही, इस कारण तू मृगीही होगी ॥ ३२ ॥ तब मैंने अत्यन्त व्यथित हो, उन स्वीयरूप-धारी अति क्रुद्ध मुनिको प्रणाम करके वारम्वार कहा, मैं बाला हूं अत एव वचन बोलना नहीं जानती इसीसे ऐसा कहा है, मेरे प्रति प्रसन्न होओ। पिताके न होनेमें स्त्री पतिको स्वयं वरती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ किन्तु हे मुनिसत्तम ! पिताके वर्तमान रहते मैं किस प्रकार स्वयं वरूं अथवा हे प्रभो ! मैंने

इत्युक्तः प्राह मां सोऽपि मुनिरित्थं महीपते ॥ न प्रयच्छामि शापं ते यद्यात्मानं ददासि ते ॥ ३० ॥ मया चोक्तं मृगी नाहं मृगरूपधरा वने ॥ लप्स्यसेऽन्यां मृगीं तावन्मयि भावो निवर्त्यताम् ॥३१॥ इत्युक्तः कोपरक्ताक्षः स प्राह स्फुरिताधरः ॥ नाह मृगी त्वयेत्युक्तं मृगी मूढे भविष्यसि ॥ ३२ ॥ ततो भृशं प्रव्यथिता प्रणम्य मुनिमब्रुवम् ॥ स्वरूपस्थमतिक्रुद्धं प्रसीदेति पुनः पुनः ॥ ३३ ॥ बालानभिज्ञा वाक्यानां ततः प्रोक्तमिदं मया ॥ पितर्यसति नारीभिर्व्रियते हि पतिः स्वयम् ॥ ३४ ॥ सति ताते कथं चाहं वृणोमि मुनिसत्तम ॥ साप-राधाथ वा पादौ प्रसीदेषा नमाम्यहम् ॥३५॥ प्रसीदेति प्रसीदेति प्रणतायां महामते ॥ इत्थं लालप्यमानायाः स प्राह मुनिपुङ्गवः ॥३६॥ न भवत्यन्यथा प्रोक्तं मम वाक्यं कदाचन ॥ मृगी भविष्यसि मृता वनेऽस्मिन्नेव जन्मनि ॥३७॥ मृगत्वे च महाबाहुस्तव गर्भमुपैष्यति ॥ लोलो नाम मुनेः पुत्रः सिद्धवीर्यस्य भामिनि ॥ ३८ ॥ जातिस्मरा भवित्री त्वं तस्मिन्गर्भमुपागते ॥ स्मृतिं प्राप्य तथा वाचं मानुषीमी-रयिष्यसि ॥ ३९ ॥

अपराध किया है, आपके चरणोंकी वन्दना करके नमस्कार करती हूं, आप प्रसन्न हूजिये ॥ ३५ ॥ हे महामते ! इस प्रणतके प्रति प्रसन्न होओ प्रसन्न होओ। मुझको इस भाँति वारंवार कहता देखकर वह मुनिवर बोले ॥ ३६ ॥ कभी मेरा कहाहुआ वचन मिथ्या नहीं होगा तुम मृत्युके पीछे दूसरे जन्ममें इसी वनमें मृगी होगी ॥ ३७ ॥ हे भामिनी ! जब तुम मृगत्वको प्राप्त होगी तब सिद्धवीर्य किसी मुनिका पुत्र महाबाहु लोल तुम्हारे गर्भसे जन्म ग्रहण करेगा ॥ ३८ ॥ जब तुम उस लोलको गर्भमें प्राप्त करोगी, तब तुम जातिस्मरा होगी और पूर्वजन्मका वृत्तान्त स्मरण करनेमें समर्थ होनेपर मनुष्यके समान वचन कहस-

कोगी ॥ ३९ ॥ उस महाबाहुके जन्म ग्रहण करनेपर तुम शापसे छूट और पतिके द्वारा अर्चित होकर पापकर्मकारी मनुष्य जो लोक प्राप्त नहीं करसकते तुम उसी लोकको प्राप्त करोगी ॥ ४० ॥ तदनन्तर वह महावीर्यवान् लोलही पिताके शत्रुओंको मार और समस्त वसुन्धराको जीतकर मनु होगा ॥४१॥ हे महाराज! मैंने इस प्रकार शापको प्राप्त हो तिर्यक् योनि लाभ की है, तुम्हारे स्पर्शके कारण मेरे जठरमें उस गर्भने जन्म ग्रहण कियाहै ॥ ४२ ॥ इसी निमित्त मैंने कहा था कि " मेरे प्रति जो आपकी अभिलाषा हुई है, वह अयोग्यस्थानमें नहीं है, आप भी मुझको अगम्य नहीं हैं, किन्तु यह गर्भस्थित

तस्मिञ्जाते मृगत्वात्त्वं विमुक्ता पतिनार्चिता॥ लोकानवाप्स्यासि प्राप्या ये न दुष्कृतकर्मभिः ॥ ४० ॥ सोऽपि लोलो महावीर्यः पितृशत्रून्निपात्य वै ॥ जित्वा वसुन्धरां कृत्स्नां भविष्यति ततो मनुः ॥ ४१॥ एवं शापमहं लब्ध्वा मृता तिर्यक्त्वमागता ॥ त्वत्संस्पर्शाच्च गर्भोऽसौ संभूतो जठरे मम ॥ ४२ ॥ अतो ब्रवीमि नास्थाने तव यातं मनो मयि ॥ न चाप्यगम्या गर्भस्थो लोलो विघ्नं करोत्यसौ ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवमुक्तस्ततः सोऽपि राजा प्राप्य परां मुदम् ॥ पुत्रो ममारीञ्जित्वेति पृथिव्यां भविता मनुः ॥ ४४ ॥ ततस्तं सुषुवे पुत्रं सा मृगी लक्षणान्वितम् ॥ तस्मिञ्जाते च भूतानि सर्वाणि प्रययुर्मुदम् ॥ ४५ ॥ विशेषतश्च राजासौ पुत्रे जाते महावने ॥ सा विमुक्ता मृगी शापात्प्राप लोकाननुत्तमान् ॥ ४६ ॥ ततस्तस्यर्षयः सर्वे समेत्य मुनिसत्तम ॥ अवेक्ष्य भाविनिमृद्धिं नाम चक्रुर्महात्मनः ॥ ४७ ॥

लोलही विघ्न करता है " ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले तदनन्तर " यह पुत्र मेरे शत्रुओंको जीतकर पृथ्वीमें मनु होगा " इस प्रकार वचन सुनकर वह राजा परमहर्षको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त उस मृगीने सुलक्षणयुक्त पुत्र प्रसव किया । बालकके जन्म ग्रहण करनेपर संपूर्ण प्राणी आनन्दित हुएथे ॥४५॥ इस महाबलवान् पुत्रके जन्म लेनेपर विशेषकर राजा आनन्दित हुए और वह मृगी भी शापसे छूटकर अति उत्तम लोकको प्राप्त हुई ॥४६॥ हे मुनिसत्तम! इसके पीछे सब ऋषियोंने आय, उस महात्माकी भविष्यत ऋद्धि देखकर नामकरण किया ॥ ४७ ॥

उन्होंने कहा—जगत्के तमः अर्थात् अन्धकारद्वारा आवृत होनेपर यह तामसी योनिको प्राप्त हुई माताके गर्भसे उत्पन्न हुआहै, इस कारण यह बालक "तामस" नामसे विख्यात होगा ॥ ४८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! वनमें पिताके द्वारा उस तामसने वर्द्धित होकर यथासमयमें बुद्धिका उदय होनेपर पितासे कहा ॥४९॥ हे तात ! आप कौन हैं ? किस प्रकार मैं आपका पुत्र हुआ ? तथा मेरी माता कौन है ? और आप किस निमित्त यहां आये हैं ? यह सब मुझसे सत्य कहो ॥ ५० ॥ उन महाबाहु जगतीपति पिताने, पुत्रके प्रति स्वीयराज्यसे भ्रष्ट होना इत्यादि संपूर्ण विषय यथावत् वर्णन किया ॥ ५१ ॥ उन तामसने पिताके यह समस्त वचन सुन, भास्करदेवकी आराधना कर निवर्त्तन मंत्रके सहित नानाप्रकारके सब दिव्य अस्त्र मंत्र लाभ किये ॥ ५२ ॥

तामसीं भजमानायां योनिं मातर्यजायत ॥ तमसा चावृते लोके तामसोऽयं भविष्यति ॥ ४८ ॥ ततः स तामसस्तेन पित्रा संवर्द्धितो वने ॥ जातबुद्धिरुवाचेदं पितरं मुनिसत्तम ॥ ४९ ॥ कस्त्वं तात कथं वाहं पुत्रो माता च का मम ॥ किमर्थमागतश्च त्वमेतत्सत्यं ब्रवीहि मे ॥ ५० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः पिता यथा वृत्तं स्वराज्यच्यावनादिकम् ॥ तस्याचष्टे महाबाहुः पुत्रस्य जगतीपतिः ॥ ५१॥ श्रुत्वा तत्सकलं सोऽपि समाराध्य च भास्करम् ॥ अवाप दिव्यान्यस्त्राणिससंहाराण्यशेषतः ॥ ५२ ॥ कृतास्त्रस्तानरीञ्जित्वा पितुरानिय चान्तिकम् ॥ अनुज्ञातान्मुमोचाथ स च स्वं धर्ममास्थितः ॥५३॥ पितापि तस्य स्वाँल्लोकांस्तपोयज्ञसमार्जितान् ॥ विसृष्टदेहः संप्राप्तो दृष्ट्वा पुत्रमुखं सुखम् ॥ ५४ ॥ जित्वा समस्तां पृथिवीं तामसाख्यः स पार्थिवः ॥ तामसाख्यो मनुरभूत्तस्य मन्वन्तरं शृणु ॥ ५५ ॥ ये देवास्तत्पतिर्यश्च देवेन्द्रो ये तथर्षयः ॥ ये पुत्राश्च मनोस्तस्य पृथिवीपरिपालकाः ॥ ५६ ॥

उन्होंने अस्त्रप्रयोगमें निपुण हो उन शत्रुओंको पराजय कर, पिताके समीप लाय उनकी आज्ञानुसार उनको छोडदिया इस प्रकार उन्होंने अपने धर्मकी रक्षा की ॥ ५३ ॥ इसके पीछे उनके पिता भी पुत्रका मुख देख सुखपूर्वक देह छोड तप और यज्ञके प्रभावसे अर्जित स्वर्गादि लोकोंमें चलेगये ॥ ५४ ॥ वह तामस नृपति संपूर्ण पृथ्वीको जीतकर तामस नामक मनु हुए थे, उनका मन्वन्तर सुनो ॥५५॥ उस मन्वन्तरमें जो जो देवता, देवताओंके अधिपति जो इन्द्र, जो ऋषि, और उन मनुके जिन जिन पुत्रोंने पृथ्वीका पालन किया था, सो सुनो ॥ ५६ ॥

हे मुने ! इस मन्वन्तरमें सत्यगण, सुधीगण, सुरूपगण और हरिगण, यह चार प्रकारके देवता हैं इनके प्रत्येक गणमें सत्ताईस देवता हैं ॥ ५७ ॥ इस मन्वन्तरमें महाबल महावीर्य शिखी नामक इन्द्र शत यज्ञ करके उन सब देवताओंके प्रभु हुए थे ॥ ५८ ॥ हे ब्रह्मन् ! ज्योतिर्धर्मा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, बलक और पीवर, यह सात जन सप्तर्षि थे ॥ ५९ ॥ नर, क्षान्ति, शान्त, दान्त, जानु, जंघा इत्यादि तामस मनुके महाबल पराक्रमशाली पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ ६० ॥ हे विप्र ! इस प्रकार तामस मन्वंतरका वृत्तान्त है, सो मैंने आपसे वर्णन किया । जो मनुष्य इसको पढेंगे अथवा सुनेंगे, उनको अज्ञानरूपी अंधकार बाधा नहीं देगा ॥६१॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां तामसमन्वन्तरे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—

सत्यास्तथान्ये सुधियः सुरूपा हरयस्तथा ॥ एते देवगणास्तत्र सप्तविंशतिका मुने ॥ ५७ ॥ महाबलो महावीर्यः शतयज्ञोपलक्षितः ॥ शिखिरिन्द्रस्तथा तेषां देवानामभवद्विभुः ॥ ५८ ॥ ज्योतिर्धर्मा पृथुः काव्यश्चैत्रोऽग्निर्बलकस्तथा ॥ पीवरश्च तथा ब्रह्मन्सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥५९॥ नरः क्षान्तिः शान्तदान्तजानुजंघादयस्तथा ॥ पुत्रास्तु तामसस्यासन्राजानः सुमहाबलाः ॥६०॥ इत्येतत्तामसं विप्र मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि तमसा स न बाध्यते ॥६१॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे तामसमन्वन्तरे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ पंचमोऽपि मनुर्ब्रह्मन्रैवतो नाम विश्रुतः ॥ तस्योत्पत्तिं विस्तरशः शृणुष्व कथयामि ते ॥ १ ॥ ऋषिरासीन्महाभाग ऋतवागिति विश्रुतः ॥ तस्यापुत्रस्य पुत्रोऽभूद्रेवत्यन्ते महात्मनः ॥ २ ॥ स तस्य विधिवच्चक्रे जातकर्मादिकाः क्रियाः ॥ तथोपनयनादींश्च स चाशीलोऽभवन्मुने ॥ ३ ॥ यतः प्रभृति जातोऽसौ ततः प्रभृति सोऽप्यृषिः ॥ दीर्घरोगपरामर्शमवाप मुनिपुङ्गवः ॥ ४ ॥

हे ब्रह्मन् ! अब रैवतनामक विख्यात पांचवें मनुकी उत्पत्तिका वृत्तान्त तुमसे विस्तारसहित वर्णन करताहूं, सुनो ॥१॥ ऋतवाक् नामक विख्यात महाभाग ऋषि पहिले तो अपुत्र थे, फिर रेवतीनक्षत्रके शेषमें उन ऋषिके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ हे मुने ! ऋषिने उस पुत्रकी विधिके अनुसार जातकर्मादि क्रिया और उपनयन आदि समस्त क्रिया संपन्न की । किन्तु वह पुत्र शीलवान् नहीं हुआ अर्थात् असच्चरित्र हुआ था ॥ ३ ॥ हे मुनिवर ! जबसे उक्त बालकका जन्म हुआ तबसेही वह ऋषि दीर्घकालव्यापी रोगद्वारा ग्रसित हुए थे ॥ ४ ॥

उसकी माताभी कुष्ठ (कोढ) रोगसे पीडित होकर अत्यन्त क्लेश भोगने लगी। तब उसके पिता दुःखित होकर चिन्ता करनेलगे ॥ ५ ॥ कि "क्यों ऐसा हुआ ?" अनन्तर उस अत्यन्त दुर्मति पुत्रने एक समय अन्य एक मुनिपुत्रके सन्मुख हो उसकी भार्याको हरण किया ॥ ६ ॥ इससे ऋतवाक्ऋषि दुःखितचित्त होकर कहनेलगे कि, "मनुष्यकी कुपुत्रतासे अपुत्रता श्रेष्ठ है" ॥ ७ ॥ क्योंकि कुपुत्र मातापिताके हृदयमें सदाही कष्टप्रदान करताहै और स्वर्गमें वास करनेवाले अपने पितरोंकोभी नीचे गिराताहै ॥ ८ ॥ इसके द्वारा सुहृद्गणोंकाभी उपकार नहीं होता पितृपुरुषोंकोभी तृप्ति नहीं होती । मातापिताके दुःखका हेतु दुष्कर्मकारी कुपुत्रके जन्मको धिक्कार है ॥ ९ ॥ जिसकी संतान सर्व जनादृत (अर्थात् जिसका सब कोई आदर करे), परोपकारी, शान्त-

माता तस्य परामार्तिं कुष्ठरोगादिपीडिता ॥ जगाम स पिता चास्य चिन्तयामास दुःखितः ॥५॥ किमेतादिति सोऽप्यस्य पुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्मतिः ॥ जग्राह भार्यामन्यस्य मुनिपुत्रस्य संमुखीम् ॥ ६ ॥ ततो विषण्णमनसा ऋतवागिदमुक्तवान् ॥ अपुत्रता मनुष्याणां श्रेयसे न कुपुत्रता ॥७॥ कुपुत्रो हृदयायासं सर्वदा कुरुते पितुः ॥ मातुश्च स्वर्गसंस्थांश्च स्वापितॄन्पातयत्यधः ॥ ८॥ सुहृदां नोपकाराय पितॄणां च न तृप्तये ॥ पित्रोर्दुःखाय धिग्जन्म तस्य दुष्कृतकर्मणः ॥९॥ धन्यास्ते तनया येषां सर्वलोकाभिसंमताः ॥ परोपकारिणः शान्ताः साधुकर्मण्यनुव्रताः ॥ १० ॥ अनिर्वृतं तथा मन्दं परलोकपराङ्मुखम् ॥ नरकाय न सद्गत्यै कुपुत्रालम्बि जन्म नः ॥ ११ ॥ करोति सुहृदां दैन्यमहितानां तदा मुदम् ॥ अकाले च जरां पित्रोः कुसुतः कुरुते ध्रुवम् ॥ १२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं सोऽत्यन्तदुष्टस्य पुत्रस्य चरितैर्मुनिः ॥ दह्यमानमनोवृत्तिर्वृत्तं गर्गमपृच्छत ॥ १३ ॥

प्रकृति और सत्कर्ममें अनुरक्त हैं, वही धन्य है ॥ १० ॥ हमारा परलोकपराङ्मुख, कुपुत्रावलंबी और असन्तुष्ट यह मन्द जन्म केवल नरककेही लिये हैं सद्गतिके लिये नहीं ॥ ११ ॥ कुपुत्र, सुहृद्गणोंकी दीनता, अपकारी शत्रुओंका आनन्द और अकालमें पितामाताकी जरा (बुढापा) निश्चयही संपादन करता है ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उन ऋषिने अत्यन्त दुष्टचरित्र पुत्रके कुव्यवहारसे इस प्रकार मनमें दग्ध हो सब वृत्तान्त कहकर गर्गऋषिसे इस भांति पूछा ॥ १३ ॥

ऋतवाक्‌ने कहा "पूर्वमें मैंने सद्व्रतोंमें रत होकर यथाविधि वेद पढे हैं और वेद पढनेके पीछे विधिपूर्वक स्त्री ग्रहण की है ॥ १४ ॥ हे महामुने! श्रौत, स्मार्त और वषट्कार क्रियास्वरूप जो सब कार्य भार्याके सहित करने चाहिये, स्त्रीग्रहण करनेतकसे आज पर्यन्त उन सब व्रतके किसी अनुष्ठानमें त्रुटि नहीं की है ॥ १५ ॥ हे मुने! मैंने पुन्नाम नरकके भयसे भीत होकर रक्षा पानेके लिये गर्भाधान विधानानुसार कर इस पुत्रको उत्पन्न किया है, कामानुरुद्ध होकर पुत्र उत्पन्न नहीं किया ॥ १६ ॥ हे मुने! तो भी यह बालक जो हमको दुःख देनेवाला और दुःस्वभावयुक्त बन्धुगणोंको शोकप्रद होकर उत्पन्न हुआ है, यह क्या अपने आत्मदोषसे अथवा मेरे दोषसे? ऐसा है" ॥ १७ ॥ गर्गजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! तुम्हारे पुत्रने रेव-

ऋतुवागुवाच ॥ सुव्रतेन पुरा वेदा गृहीता विधिवन्मया ॥ समाप्य वेदान्विधिवत्कृतो दारपरिग्रहः ॥१४॥ सदारेण क्रियाः कार्याः श्रौताः स्मार्त्ता वषट्क्रियाः ॥ न मे न्यूनाः कृताः काश्चिद्यावदद्य महामुने ॥ १५ ॥ गर्भाधानविधानेन न काममनुरुध्यता ॥ पुत्रार्थं जनित श्चायं पुन्नाम्नो बिभ्यता मुने ॥१६॥ सोऽयं किमात्मदोषेण मम दोषेण वा मुने ॥ अस्मद्दुःखावहो जातो दौःशील्याद्बन्धुशोकदः ॥१७॥ गर्ग उवाच ॥ रेवत्यन्ते मुनिश्रेष्ठ जातोऽयं तनयस्तव ॥ तेन दुःखायते दुष्टे काले यस्मादजायत ॥१८॥ न तेऽपचारो नैवास्य मातुर्नायं कुलस्य ते ॥ तस्य दौःशील्यहेतुत्वं रेवत्यन्तमुपागतम् ॥ १९ ॥ ऋतवागुवाच ॥ यस्मान्ममैकपुत्रस्य रेवत्यन्तसमुद्भवम् ॥ दौःशील्यमेतत्सा तस्मात्पतताम‌ाशु रेवती ॥ २० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तेनैवं व्याहृते शापे रेवत्यृक्षं पपात ह ॥ पश्यतः सर्वलोकस्य विस्मयाविष्टचेतसः ॥ २१ ॥

तीके अन्तमें जन्म ग्रहण किया है, यह दुष्ट कालमें जन्मा है, इसी कारण तुमको दुःख देता है ॥ १८ ॥ यह तुम्हारे वा तुम्हारी स्त्रीके, अथवा तुम्हारे वंशके स्वधर्मके व्यतिक्रमका फल नहीं है रेवतीका अन्तभागही इसके दुःस्वभावका कारण है ॥ १९ ॥ ऋतवाक्‌ने कहा—जब कि, रेवतीके अन्तमें जन्म होनेके कारण मेरे एक मात्र पुत्रका यह दुःस्वभाव हुआ है, इसी निमित्त वह रेवती शीघ्र पतित हो ॥२०॥ मार्कण्डेयजी बोले—जब उन ऋतवाक्‌ने यह शाप दिया तब सब मनुष्योंके सामनेही रेवतीनक्षत्रको पतित हुआ देखकर सबकाही चित्त आश्चर्ययुक्त हुआ ॥ २१ ॥

१ यह रेवती देवी पतित हुई थी।

उस रेवती नक्षत्रने कुमुदपर्वतमें गिरकर उसकी चारों दिशाके वन, कन्दरा और झरने इन सबको सहसा प्रकाशित किया ॥ २२ ॥ संपूर्ण पृथ्वीमें अत्यन्त मनोहर कुमुदपर्वत भी उसके गिरनेके कारण "रैवतक" नामसे विख्यात हुआ ॥ २३ ॥ उस नक्षत्रकी कान्तिसे पङ्कजयुक्त सरोवर हुआ और उस सरोवरसे अत्यन्त स्वरूपवान् एक कन्याने जन्म ग्रहण किया ॥ २४ ॥ हे भागुरे ! प्रमुचमुनिने उस कन्याको रेवतीकी कान्तिसे उत्पन्न हुआ देखकर उसका नाम 'रेवती' रक्खा ॥ २५ ॥ वह महाभाग प्रमुच रैवतकपर्वतमें अपने आश्रमके समीप उत्पन्न हुई कन्याका प्रतिपालन करने लगे ॥ २६ ॥

रेवत्यृक्षं च पतितं कुमुदाद्रौ समन्ततः ॥ भासयामास सहसा वनकन्दरनिर्झरान् ॥ २२ ॥ कुमुदाद्रिश्च तत्पातात्ख्यातो रैवतकोऽभवत् ॥ अतीव रम्यः सर्वस्यां पृथिव्यां पृथिवीधरः ॥ २३ ॥ तस्यर्क्षस्य तु या कान्तिर्जाता पङ्कजिनी सरः ॥ ततो जज्ञे तदा कन्यारूपेणातीव शोभना ॥ २४ ॥ रेवतीकान्तिसम्भूतां तां दृष्ट्वा प्रमुचो मुनिः ॥ तस्या नाम चकारेत्थं रेवती नाम भागुरे ॥ २५ ॥ पोषयामास चैवैतां स्वाश्रमाभ्याशसम्भवाम् ॥ प्रमुचः स महाभागस्तस्मिन्नेव महाचले ॥२६॥ तां तु यौवनिनीं दृष्ट्वा कन्यकां रूपशालिनीम् ॥ स मुनिश्चिन्तयामास कोऽस्या भर्ता भवेदिति ॥२७॥ एवं चिन्तयतस्तस्य ययौ कालो महान्मुने ॥ न चाससाद सदृशं वरं तस्या महामुनिः ॥२८॥ ततस्तस्या वरं प्रष्टुमग्निं स प्रमुचो मुनिः ॥ विवेश वह्निशालां वै पृष्टस्तं प्राह हव्यभुक् ॥ २९ ॥ महाबलो महावीर्यः प्रियवाग्धर्मवत्सलः ॥ दुर्गमो नाम भविता भर्त्ता ह्यस्या महीपतिः ॥ ३० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अनन्तरश्च मृगयाप्रसङ्गेनागतो मुने ॥ तस्याश्रमपदं धीमान्दुर्गमः स नराधिपः ॥ ३१ ॥

फिर वह मुनि उस रूपशालिनी कन्याको यौवनसंपन्न देखकर "कौन इसका भर्त्ता होगा" यह चिन्ता करने लगे ॥ २७ ॥ हे मुने ! इस प्रकार चिन्ता करते करते उनको बहुत दिन बीत गये, किन्तु उन महामुनिको उनकी समान वर नहीं मिला ॥ २८ ॥ अनन्तर प्रमुचमुनि अग्निसे उसके वरविषयको पूछनेके लिये वह्निशालामें गये वहां मुनिके पूछनेपर हुताशनने मुनिसे कहा ॥ २९ ॥ कि, महाबल, महावीर्य, प्रियवादी, धर्मवत्सल, दुर्गमनामक पृथ्वीपति इसके भर्त्ता होंगे ॥३०॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे मुने ! अनन्तर स्वायम्भुवमनुके ज्येष्ठपुत्र, प्रियव्रतके वंशमें जन्मे विक्रमशीलराजाकी कालिन्दीनामक महि-

षीके गर्भसे उत्पन्न, बुद्धिमान् महाबलपराक्रमशाली वह नराधिपति दुर्गम मृगया खेलतेहुए मुनिके उस आश्रमपदमें उपस्थित हुएथे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ वह भूमिपति आश्रममें प्रवेशपूर्वक ऋषिका दर्शन न पाया उस कृशाङ्गी कन्याको प्रिया कहकर पूछने लगे ॥ ३३ ॥ हे सुन्दरी ! वह भगवान् मुनिश्रेष्ठ इस आश्रमसे कहा गये हैं ? सो तुम कहो मैं उनको प्रणाम करनेकी इच्छा करताहूं ॥ ३४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—वह अग्निशालामें गयेहुए विप्र राजाका कहा यह वचन और " प्रिया " यह संबोधन सुनकर शीघ्र निकले ॥ ३५ ॥ उन मुनिने निकलतेही प्रथम नरेन्द्रचिह्नसहित विनयसे नम्र हुए महात्मा राजा दुर्गमको देखा ॥ ३६ ॥ उन्होंने उनको देखनेके पीछे गौतम नामक शिष्यसे कहा " हे गौतम ! इन भूपालके लिये शीघ्र अर्घ्य लाओ ॥ ३७॥ एक

प्रियव्रतान्वयभवो महाबलपराक्रमः ॥ पुत्रो विक्रमशीलस्य कालिन्दीजठरोद्भवः ॥३२॥ स प्रविश्याश्रमपद ता तन्वीं जगतीपतिः ॥ अपश्यमानस्तमृषिं प्रियेत्यामन्त्र्य पृष्टवान् ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ क्व गतो भगवानस्मादाश्रमान्मुनिपुङ्गवः ॥ तं प्रणेतुमिहेच्छामि तत्त्वं प्रब्रूहि शोभने ॥ ३४ ॥ मार्कंण्डेय उवाच ॥ अग्निशालां गतो विप्रस्तच्छ्रुत्वा तस्य भाषितम् ॥ प्रियेत्यामन्त्रणं चैव निश्चक्राम त्वरान्वितः ॥३५॥ स ददर्श महात्मानं राजानं दुर्गमं मुनिः ॥ नरेन्द्रचिह्नसहितं प्रश्रयावनतं पुरः ॥३६॥ तस्मिन्दृष्टे ततः शिष्यमुवाच स तु गौतमम् ॥ गौतमानीयतां शीघ्रमर्घोऽस्य जगतीपतेः ॥३७॥ एकस्तावदयं भूपश्चिरकालादुपागतः ॥ जामाता च विशेषेण योग्योऽर्घस्य मतो मम ॥३८॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः स चिन्तयामास राजा जामातृकारणम् ॥ विवेद च न तन्मौनी जगृहेऽर्घं च तन्नृपः ॥३९॥ तमासनगतं विप्रो गृहीतार्घं महामुनिः ॥ स्वागतं प्राह राजेन्द्रमपि ते कुशलं गृहे ॥ ४० ॥

तो यह राजा बहुत दिनोंके पीछे आश्रममें आये हैं, इस परभी फिर यह जामाता हैं अत एव मेरे मतसे यह यथार्थ ही अर्घ्यके योग्य पात्र हैं " ॥ ३८॥ मार्कण्डेयजी बोले--तदनन्तर राजा, ऋषिके जामाता कहनेके कारणकी चिन्ता करने लगे, किन्तु कुछ नहीं समझ सके, तब नृपतिने मौनावलम्बनपूर्वक वह अर्घ्य ग्रहण किया ॥ ३९ ॥ उन महामुनि विप्रने आसनपर बैठेहुए अर्घ्यग्रहणकारी राजेन्द्रसे पूछा हे नरेश्वर ! आप कुशलसे तो आये हैं ? हे महाबाहो ! आपके गृह कोशागार (खजाना) सैन्यगण, मित्रगण, एवं भृत्यगण और अमात्यगणकी कुशलता है ? आप सबके अवलम्बनस्थानके आप-

कीभी कुशलता है ? ॥ ४० ॥ ४१ ॥ आपकी पत्नी यहा कुशलपूर्वक अवस्थान करती है इसीसे मैंने उसके विषयमें नहीं पूछा । इसके अतिरिक्त आपके पुरकी अन्य स्त्रियें कुशलिनी तो हैं ॥ ४२ ॥ राजा बोले-हे सत्यपरायण ! आपके प्रसादसे मेरी किसी प्रकार अकुशल नहीं है, किन्तु हे मुने ! इस स्थानमें मेरी भार्या कौन है ? यह जाननेके लिये मुझको कौतूहल उत्पन्न हुआ है ॥ ४३ ॥ ऋषिने कहा हे राजन् ! रेवती नामक महाभागा त्रैलोक्यसुन्दरी वरारोहा आपकी भार्या है, उसको क्या आप नहीं जानते हैं ? ॥ ४४ ॥ राजाने कहा हे विभो ! सुभद्रा, शान्ततनया, कावेरीतनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, वरूथजा ॥ ४५ ॥ विपाठा और नन्दिनी इन प्रत्येकको भार्या जानता हूं, हे द्विज ! वह हमारेही घर वास करती हैं किंतु हे भगवन् ! इस रेवतीनामक भार्याको मैं नहीं जानता, यह कौन है ? ॥ ४६ ॥ ऋषि बोले-हे भूपाल ! अभी जिस वरवर्णिनीको " प्रिया " कहकर आपने संबोधन कियाहै, वह वरवर्णिनीही आपकी श्लाघनीय गृहिणी है आप क्या भूलगये ? ॥ ४७ ॥ राजाने कहा हे मुने ! सत्यही मैंने यह कहाहै किन्तु मेरे वचनमें मेरा दुष्टभाव नहीं है, आप इसके कारण मेरे प्रति कोप न करें यही प्रार्थना है ॥ ४८ ॥

कोशे बलेऽथ मित्रेषु भृत्यामात्ये नरेश्वर ॥ तथात्मनि महाबाहो यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥४१॥ पत्नी च ते कुशलिनी यत एवानुतिष्ठति ॥ पृच्छाम्यस्यास्ततो नाहं कुशलिन्योऽपरास्तव ॥ ४२ ॥ राजोवाच ॥ त्वत्प्रसादादकुशलं न क्वचिन्मम सुव्रत ॥ जातकौतूहलश्चास्मि मम भार्यात्र का मुने ॥ ४३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ रेवती सुमहाभागा त्रैलोक्यस्यापि सुन्दरी ॥ तव भार्या वरारोहा तां त्वं राजन्न वेत्सि किम् ॥ ४४ ॥ राजोवाच ॥ सुभद्रां शान्ततनयां कावेरीतनयां विभाम् ॥ सुराष्ट्रजां सुजातां च कदम्बां च वरूथजाम् ॥ ४५ ॥ विपाठां नन्दिनीं चैव वेद्मि भार्यां गृहे द्विज ॥ तिष्ठन्ति मे न भगवन्रेवतीं वेद्मि का न्वियम् ॥ ४६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ प्रियेति साम्प्रतं येयं त्वयोक्ता वरवर्णिनी ॥ किं विस्मृतं ते भूपाल श्लाघ्येयं गृहिणी तव ॥४७॥ राजोवाच ॥ सत्यमुक्तं मया किन्तु भावो दुष्टो न मे मुने ॥ नात्र कोपं भवान्कर्तुमर्हत्यस्मासु याचितः ॥ ४८ ॥

ऋषि बोले–हे भूपाल ! आपने कहा कि, "मेरा भाव दूषित नहीं है" यह सत्य है, किन्तु हे नृपते ! यह आपने अग्निकी प्रेरणासे ही कहाहै ॥४९॥ हे पृथ्वीपते ! मैंने अग्निसे पूछा था "कौन इसका पति होगा" हे भूपाल ! "आपही अब इसके पति होंगे" अग्निने यही कहा था ॥ ५० ॥ अतएव हे नराधिपते ! जिसको आपने प्रिया कहकर संबोधन किया है, मैं आपको वही कन्या देताहूं, ग्रहण कीजिये, आप विचार क्यों करते हैं ॥५१॥ मार्कण्डेयजी बोले–तदनन्तर वह राजा ऋषिके इस प्रकार कहनेपर मौन होगये। तब ऋषि उस कन्याके विवाहकी विधि संपादन करनेमें उद्यत हुए ॥ ५२ ॥

ऋषिरुवाच ॥ यत्त्वं ब्रवीषि भूपाल न भावस्तव दूषितः ॥ व्याजहार भवानेतद्वह्निना नृप चोदितः ॥ ४९ ॥ मया पृष्टो हुतवहः कोऽस्या भर्तेति पार्थिव ॥ भविता तेन चाप्युक्तो भवानेवाद्य वै वरः ॥ ५० ॥ तद्गृह्यतां मया दत्ता तुभ्यं कन्या नराधिप ॥ प्रियेत्यामन्त्रिता चेयं विचारं कुरुषे कथम् ॥५१॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततोऽसावभवन्मौनी तेनोक्तः पृथिवीपतिः ॥ ऋषिस्तथोद्यतः कर्तुं तस्या वैवाहिकं विधिम् ॥ ५२ ॥ तमुद्यतं सा पितरं विवाहाय महामुने ॥ उवाच कन्या यत्किंचित्प्रश्रयावनतानना ॥ ५३ ॥ यदि मे प्रीतिमांस्तात प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ रेवत्यृक्षे विवाहं मे तत्करोतु प्रसादितः ॥ ५४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ रेवत्यृक्षं न वै भद्रे चन्द्रयोगि व्यवस्थितम् ॥ अन्यानि सन्ति ऋक्षाणि सुभ्रु वैवाहिकानि ते ॥ ५५ ॥ कन्योवाच ॥ तात तेन विना कालो विफलः प्रतिभाति मे ॥ विवाहो विफले काले मद्विधायाः कथं भवेत् ॥ ५६ ॥

हे महामुने ! पिताको विवाह करनेमें उद्यत देखकर विनयसे (मस्तक झुकाये हुए) कन्याने संक्षेपसे कहा ॥ ५३ ॥ हे तात ! यदि मुझमें आपकी प्रीति हो, तो मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये आप प्रसन्न होकर रेवतीनक्षत्रमें मेरा विवाहकार्य संपन्न कीजिये ॥ ५४ ॥ ऋषि बोले–हे भद्रे ! रेवतीनक्षत्र चन्द्रयोगी होकर स्थित नहीं है, इसके अतिरिक्त विवाहमें अन्य सब श्रेष्ठ नक्षत्र वर्त्तमान हैं ॥ ५५ ॥ कन्या बोली–हे तात ! वह रेवतीनक्षत्रवर्जित काल मेरे सम्बन्धमें विफल बोध होता है, मेरी समान कन्याका विवाह विफलकालमें किस प्रकार हो ? ॥ ५६ ॥

ऋषिने कहा—पूर्वमें ऋतवाक्नामक विख्यात तपस्वीने रेवतीनक्षत्रके प्रति कुपित होकर उक्त नक्षत्रको आकाशसे गिरादिया है ॥ ५७ ॥ मैंने इसके पहिले राजासे प्रतिज्ञा करी है कि, इस मदिरेक्षणाको भार्यारूपमें तुम्हें प्रदान करूंगा, किन्तु तुम इस समय विवाह करनेमें सम्मत नहीं होतीहो, इस कारण मुझको संकट उपस्थित हुआ है ॥ ५८ ॥ कन्या बोली—हे तात ! उन ऋतवाक् मुनिने ऐसी क्या तपस्या की है कि, जो मेरे पिता आपके द्वारा वैसी तपस्या साधित नहीं हुई, तो मैं क्या ब्रह्मबन्धुकी कन्या हूं ? ॥ ५९ ॥ ऋषिने कहा--हे बाले ! तुम ब्राह्मणाधमकी कन्या नहीं हो और सामान्य तपस्वीकी कन्याभी नहीं हो, जो ऋषि अन्य देवताओंके उत्पन्न करनेमें समर्थ है, तुम उसी मुझ ऋषिकी कन्या हो ॥ ६० ॥ कन्या बोली--यदि मेरे पिता ऐसे

ऋषिरुवाच ॥ ऋतवागिति विख्यातस्तपस्वी रेवतीं प्रति ॥ चकार कोपं क्रुद्धेन तेनर्क्षं विनिपातितम् ॥ ५७ ॥ मया चास्मै प्रतिज्ञाता भार्येति मदिरेक्षणा ॥ न चेच्छसि विवाहं त्वं संकटं नः समागतम् ॥ ५८ ॥ कन्योवाच ॥ ऋतवाक्स मुनिस्तात किमेवं तप्तवांस्तपः ॥ न त्वया मम तातेन ब्रह्मबन्धोः सुतास्मि किम् ॥ ५९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ब्रह्मबन्धोः सुता न त्वं बाले नैव तपस्विनः ॥ सुता त्वं मम यो देवान्कर्तुमन्यान्समुत्सहे ॥ ६० ॥ कन्योवाच ॥ तपस्वी यदि मे तातस्तत्किमृक्षमिदं दिवि ॥ समारोप्य विवाहो मे तदृक्षे क्रियते न तु ॥ ६१ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं भवतु भद्रं ते भद्रे प्रीतिमती भव ॥ आरोपयामीन्दुमार्गे रेवत्यृक्षं कृते तव ॥६२॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततस्तपःप्रभावेण रेवत्यृक्षं महामुनिः ॥ यथापूर्वं तथा चक्रे सोमयोगि द्विजोत्तम ॥ ६३ ॥ विवाहं चैव दुहितुर्विधिवन्मन्त्रयोगिनम् ॥ निष्पाद्य प्रीतिमान्भूयो जामातरमथाब्रवीत् ॥ ६४ ॥

तपस्वी हैं, तो रेवती नक्षत्रको आकाशमें स्थित कर उस नक्षत्रमें मेरा विवाहकार्य सम्पादन क्यों नहीं करते ? ॥६१ ॥ ऋषिने कहा हे भद्रे ! ऐसाही हो, तुम्हारा मंगल हो अब प्रीतिमती होओ, मैं तुम्हारे निमित्त रेवतीनक्षत्रको चन्द्रमार्गमें स्थित करूंगा ॥ ६२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विजोत्तम ! इसके उपरांत उन महामुनि प्रमुचने तपस्याके प्रभावसे रेवतीनक्षत्रको पूर्वके समान चंद्रसंयुक्त किया ॥ ६३॥ फिर यथाविहित मंत्रोंके द्वारा दुहिताका विवाहकार्य संपन्न करके अत्यंत प्रसन्न चित्त हो जामातासे कहने लगे ॥ ६४ ॥

ऋषिने कहा-हे भूपाल ! मैं विवाहका यौतुकस्वरूप तुमको क्या दूं ? सो कहो। तुम्हारी मांगी हुई दुर्लभ वस्तुभी मैं अप्रतिहत तपके प्रभावसे तुम्हें दूंगा ॥ ६५ ॥ राजा बोले-हे मुने ! मैंने स्वायम्भुव मनुके वंशमें जन्म ग्रहण किया है, आपके प्रसादसे मन्वन्तराधिपति पुत्र प्राप्त करूं यही मेरी प्रार्थना है ॥ ६६ ॥ ऋषिने कहा-हे भूप ! तुम्हारी कामना पूर्ण होगी तुम्हारा पुत्र मनु होकर संपूर्ण पृथ्वीका भोग करेगा और धर्मज्ञ होगा ॥६७॥ मार्कण्डेयजी बोले ! इसके पीछे वह राजा भार्या रेवतीके सहित अपनी राजधानीमें चले गये। अनन्तर रेवतीके गर्भसे रैवतमनुने जन्म ग्रहण किया ॥ ६८ ॥ यह

ऋषिरुवाच ॥ औद्वाहिकं ते भूपाल कथ्यतां किं ददाम्यहम् ॥ दुर्लभ्यमपि दास्यामि ममाप्रतिहतं तपः ॥ ६५ ॥ राजोवाच ॥ मनोः स्वायम्भुवस्याहमुत्पन्नः सन्ततौ मुने ॥ मन्वन्तराधिपं पुत्रं त्वत्प्रसादाद्वृणोम्यहम् ॥ ६६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ भविष्यत्येष ते कामो मनुस्त्वत्तनयो महीम् ॥ सकलां भोक्ष्यते भूप धर्मविच्च भविष्यति ॥ ६७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तामादाय ततो भूपः स्वमेव नगरं ययौ ॥ तस्मादजायत सुतो रेवत्यां रैवतो मनुः ॥ ६८ ॥ समेतः सकलैर्धर्मैर्मानवैरपराजितः ॥ विज्ञाताखिलशास्त्रार्थो वेदविद्यार्थशास्त्रवित् ॥६९॥ तस्य मन्वन्तरे देवान्मुनिदेवेन्द्रपार्थिवान् ॥ कथ्यमानान्मया ब्रह्मन्निबोध सुसमाहितः ॥७०॥ सुमेधसस्तत्र देवास्तथा भूतनया द्विज ॥ वैकुण्ठश्चामिताभाश्च चतुर्दश चतुर्दश ॥ ७१ ॥ तेषां देवगणानां तु चतुर्णामपि चेश्वरः ॥ नाम्ना विभुरभूदिन्द्रः शतयज्ञोपलक्षकः ॥ ७२ ॥ हिरण्यलोमा वेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथापरः ॥ वेदबाहुः सुधामा च पर्जन्यश्च महामुनिः ॥ ७३ ॥

धर्मोंके जाननेवाले मनुष्योंसे अपराजित, संपूर्ण शास्त्रार्थमें पारगामी, और वेदविद्या और अर्थशास्त्रके ज्ञाता हुए थे ॥ ६९ ॥ हे ब्रह्मन् ! उनके मन्वन्तरके देवता, मुनि, इन्द्र और भूपालगणका विषय कहताहूं, सावधान होकर सुनो ॥ ७० ॥ हे द्विज ! देवगण सुमेधा, भूपति, वैकुण्ठ और अमिताभ, यह चार गण मुख्य हैं प्रत्येक गणमें चौदह चौदह देवता हैं ॥ ७१ ॥ उन चार गण मुख्य देवताओंके अधिपति शतयज्ञकारी विभु नामक इन्द्र थे ॥ ७२ ॥ हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, महामुनि, पर्जन्य ॥ ७३ ॥

और वेदवेदांगपारगामी महाभाग वसिष्ठ रैवत मन्वन्तरमें यह सप्तर्षि थे ॥ ७४ ॥ बलबन्धु, महावीर्य, सुयष्टव्य और सत्यक इत्यादि रैवतमनुके पुत्र थे ॥ ७५ ॥ रैवत मनुपर्यन्त जिन समस्त मनुगणोंका विषय मैंने तुमसे कहा, स्वारोचिष मनुके अतिरिक्त यह सब ही स्वायंभुव मनुके वंशमें उत्पन्न हुए थे ॥ ७६ ॥ (जो मनुष्य इस उत्तम आख्यानको नित्य सुनतेहैं वा पढतेहैं, वे संपूर्ण पापोंसे छूटकर अभिलषित लोकको प्राप्त होतेहैं) ॥ ७७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रैवतमन्वन्तरे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विजोत्तम ! यह पांच मन्वन्तरका विषय तुमसे वर्णन किया अब

वसिष्ठश्च महाभागो वेदवेदांगपारगः ॥ एते सप्तर्षयश्चासन्रैवतस्यान्तरे मनोः ॥७४॥ बलबन्धुर्महावीर्यः सुयष्टव्यस्तथापरः ॥ सत्यकाद्यास्तथैवासन्रैवतस्य मनोः सुताः ॥७५॥ रैवतान्तास्तु मनवः कथिता ये मया तव ॥ स्वायम्भुवाश्रया ह्येते स्वारोचिषमृते मनुम् ॥ ७६॥ (य एषां शृणुयान्नित्यं पठेदाख्यानमुत्तमम् ॥ विमुक्तः सर्वपापेभ्यो लोकं प्राप्नोत्यभीप्सितम् ॥ ७७ ॥) इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रैवतमन्वन्तरे द्विसप्ततितोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्येतत्कथितं तुभ्यं पंचमं मन्वन्तरं मया ॥ चाक्षुषस्य मनोः षष्ठं श्रूयतामिदमन्तरम् ॥१॥ अन्यजन्मानि जातोऽसौ चक्षुषः परमेष्ठिनः ॥ चाक्षुषत्वमतस्तस्य जन्मन्यास्मिन्नपि द्विज ॥२॥ (अनमित्रस्य राजर्षेर्भद्रा भार्या महात्मनः ॥ जज्ञे सुतं सुविद्वांसं शुचिं जातिस्मरं विभुम् ॥ ३ ॥) जातं माता निजोत्सङ्गे स्थितमुल्लाप्य तं पुनः ॥ परिष्वजाति हार्देन पुनरुल्लापयत्यथ ॥ ४ ॥ जातिस्मरः स जातो वै मातुरुत्सङ्गमास्थितः ॥ जहास तं तदा माता संक्रुद्धा वाक्यमब्रवीत ॥ ५ ॥

चाक्षुष मनुके छठे मन्वन्तरका वृत्तान्त कहताहूं, सुनो ॥ १ ॥ हे द्विज ! अन्य जन्ममें यह परमेष्ठी ब्रह्माजीके चक्षुसे उत्पन्न हुएथे, इसी कारण इस जन्ममेंभी उनका नाम चाक्षुष हुआ ॥ २ ॥ (महात्मा राजर्षि अनमित्रकी भद्रा नामक भार्याने विद्वान्, शुचि, जातिस्मर और विभु गुणयुक्त एक पुत्र उत्पन्न किया) ॥ ३ ॥ अपनी गोदीमें बैठेहुए उस नवीन उत्पन्न पुत्रका आदर करके जननीने फिर आनन्दमें भरकर आलिंगन किया । तदनन्तर फिर आदर करने लगी ॥ ४ ॥ इससे माताकी गोदीमें स्थित उस जातिस्मरपुत्रने हास्य किया तब माता अत्यन्त क्रोधित होकर उससे कहने लगी ॥ ५ ॥

हे वत्स ! मैं भीत हुई हूं, तुम्हारे वदनमें हँसी कैसीहै ? इस बालकपनमें ज्ञानोत्पन्न करके क्या कोई शुभ देखतेहो ? ॥ ६ ॥ (माताके यह वचन सुनकर पुत्र हँसकर कहनेलगा) पुत्र बोला—सन्मुख मार्जारी जो मुझको भक्षण करनेकी इच्छा करती है, यह क्या तुम नहीं देखती हो ? और यह जातहारिणी जो गुप्तभावसे विद्यमान है, इसकोभी क्या नहीं जान सकती ॥ ७ ॥ जब तुमने पुत्रप्रीतिद्वारा स्नेहवती होकर मुझको देखते देखते पुलकायमान और स्नेहसे प्रगट आँसुओंके द्वारा नेत्रोंको पूर्ण कर वारम्वार आदरपूर्वक मुझको आलिंगन किया, तब मुझको हंसी आगई, अब उसका कारण कहताहूं, सुनो ॥ ८ ॥ ९ ॥ मार्जारी और दूसरी छिपी हुई जातहारिणी अपने अर्थमें आसक्त होकर मुझको स्वार्थमें तत्पर होकर देखती हैं ॥ १० ॥ यह दोनों जिस प्रकार स्वार्थके

भीतास्मि किमिदं वत्स हासो यद्वदने तव ॥ अकालबोधः सञ्जातः कच्चित्पश्यसि शोभनम् ॥ ६ ॥ (तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा प्रहस्येदमथाब्रवीत्) ॥ पुत्र उवाच ॥ मामत्तुमिच्छति पुरो मार्जारी किं न पश्यसि ॥ अन्तर्द्धानगता चेयं द्वितीया जातहारिणी ॥ ७ ॥ पुत्रप्रीत्या च भवती सहार्दा मामवेक्षती ॥ उल्लाप्योल्लाप्य बहुशः परिष्वजति मां यतः ॥ ८ ॥ उद्भूतपुलका स्नेहसम्भवास्राविलेक्षणा ॥ ततो ममागतो हासः शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥ ९ ॥ स्वार्थे प्रसक्ता मार्जारी प्रसक्तं मामवेक्षते ॥ तथान्तर्द्धानगा चैव द्वितीया जातहारिणी ॥ १० ॥ स्वार्थाय स्निग्धहृदये यथैवैते ममोपरि ॥ प्रवृत्ते स्वार्थमास्थाय तथैव प्रतिभासि मे ॥ ११ ॥ किन्तु मदुपभोगाय मार्जारी जातहारिणी ॥ त्वं तु क्रमेणोपभोग्यं मत्तः फलमभीप्ससि ॥ १२ ॥ न मां जानासि कोऽप्येष न चैवोपकृतं मया ॥ सङ्गतं नातिकालीनं पंचसप्तदिनात्मकम् ॥ १३ ॥ तथापि स्निह्यसे सास्रा परिष्वजसि चाप्याति ॥ तातेति वत्स भद्रेति निर्व्यलीकं ब्रवीषि माम् ॥ १४ ॥

लिये मेरे प्रति नम्रहृदयवाली हुई है, तुमभी उसी प्रकार स्वार्थके निमित्त मेरे प्रति स्नेहवती हुईहो, मुझको यही बोध होता है ॥ ११ ॥ यह मार्जारी और जातहारिणी मुझको भोजन करनेके लिये हरण करेंगी, किन्तु तुम मुझसे क्रमशः अभिलाषित उपभोग्य काल प्राप्त करनेकी कामना करतीहो ॥ १२ ॥ मुझको जानती नहीं हो, मैं कौन हूं ? मैंने तुम्हारा कोई उपकारभी नहीं किया है, बहुत दिनोंका मिलनभी नहीं है, केवल पांच सात दिन माता पुत्ररूपमें मिलन हुआ है ॥ १३ ॥ किन्तु तो भी नेत्रोंमें आंसू भरकर मुझसे स्नेह करतीहो, आलिंगन करतीहो और अकपट हृदयसे मुझको " हे तात ! हे वत्स !! हे भद्र !!! " इस प्रकार कहतीहो ॥ १४ ॥

माता बोली-हे वत्स ! उपकारकी आशासे मैं तुमको आलिंगन नहीं करतीहूं, इस आलिङ्गन और खिलाने आदिके द्वारा यदि तुम्हारी प्रीतिका संचार नहीं होता, अर्थात् तुम प्रसन्न नहीं होते, तो मुझको तुम परित्याग करो ॥ १५ ॥ तुमसे मेरा जो स्वार्थ सिद्ध होगा, मैंनेभी उसको परित्याग किया । इस प्रकार कहकर प्रसूति जडवत् बाह्येन्द्रियसम्पन्न और विशुद्ध अन्तःकरण उस पुत्रको परित्याग करके सूतिकागृह (सोवर) से निकली । तदनन्तर जातहारिणीने उस माताके त्यागेहुए पुत्रको हरण किया ॥ १६ ॥ १७ ॥ जातहारिणीने इस बालकको हरण करके विक्रान्त नामक महीपालकी पत्नीकी शय्यामें स्थापनपूर्वक उसका नवप्रसूत पुत्र हरण किया ॥ १८ ॥ उस जातहारिणीने उस राजपुत्रको भी अन्यके घर रख, उसके पुत्रको हरण कर

मातोवाच ॥ न त्वाहमुपकारार्थं वत्स प्रीत्या परिष्वजे ॥ न चेदेतद्भवत्प्रीत्यै परित्यक्तास्म्यहं त्वया ॥१५॥ स्वार्थो मया परित्यक्तो यस्त्वत्तो मे भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा सा तमुत्सृज्य निष्क्रान्ता सूतिकागृहात् ॥ १६ ॥ जडाङ्गबाह्यकरणं शुद्धान्तःकरणात्मकम् ॥ जहार तं परित्यक्तं सा तदा जातहारिणी ॥१७॥ सा हित्वा तं तदा बालं विक्रान्तस्य महीभृतः ॥ प्रसूतपत्नीशयने न्यस्य तस्याददे सुतम् ॥१८॥ तमप्यन्यगृहे नीत्वा गृहीत्वा तस्य चात्मजम् ॥ तृतीयं भक्षयामास सा क्रमाज्जातहारिणी ॥ १९ ॥ हृत्वा हृत्वा तृतीयं तु भक्षयत्यातिनिर्घृणा ॥ करोत्यनुदिनं सा तु परिवर्तं तथान्ययोः ॥ २० ॥ विक्रांतोऽपि ततस्तस्य सुतस्यैव महीपतिः ॥ कारयामास संस्कारान्राजन्यस्य भवन्ति ये ॥ २१ ॥ आनन्देति च नामास्य पिता चक्रे विधानतः ॥ मुदा परमया युक्तो विक्रान्तः स नराधिपः ॥ २२ ॥ कृतोपनयनं तं तु गुरुराह कुमारकम् ॥ जनन्याः प्राग्रुपस्थानं क्रियतां चाभिवादनम् ॥ २३ ॥

अन्तमें तीसरेको भक्षण किया ॥ १९ ॥ अत्यन्त निर्दयी वह जातहारिणी प्रतिदिन इस प्रकार नवप्रसूत बालक हरणपूर्वक प्रथम दोका परिवर्त्तन करके तीसरेको भक्षण करती थी ॥ २० ॥ इसके पीछे उन महीपति विक्रान्तने, क्षत्रियोंके जो जो संस्कार हैं, उस परिवर्त्तित पुत्रके भी वह वह सब संस्कार किये ॥ २१ ॥ विक्रान्तनरपति अत्यन्त आनन्दित हुएथे, इस कारण विधानानुसार " आनन्द " इस नामसे पुत्रका नामकरण किया ॥ २२ ॥ गुरुजीने उस यज्ञोपवीत किये कुमारसे जननीके समीप जाकर प्रथम प्रणाम करनेको कहा ॥ २३ ॥

आनन्द गुरुजीका वचन सुनकर हँसता हुआ कहने लगा। आनन्द बोला—मैं किस माताकी वन्दना करूं ? जननीको अथवा पालनेवालीको प्रणाम करूं ? ॥ २४ ॥ गुरुजी बोले हे महाभाग ! यह जारुथात्मजा हैमिनी नामक विक्रान्तराजाकी प्रधान महिषी क्या तुम्हारी जननी नहीं है ? ॥ २५ ॥ आनन्दने कहा। यह बोध नामक विप्रश्रेष्ठके पुत्र विशालग्रामनिवासी चैत्रकी माता हैं, इनके गर्भसे वह चैत्रही उत्पन्न हुआथा, मैंने अन्यत्र जन्म ग्रहण किया है ॥ २६ ॥ गुरुजी बोले—हे आनन्द ! तुम कहांसे आये हो ? तुमने जिस चैत्रकी बात कही, वह चैत्र कौन है ? तुमने कहां ज़न्म लियाथा ? और यहां कैसे आये तथा यहां जो उत्पन्न हुआथा, वह कहां गया ? तुम क्या कहते हो ? यह तो महा संकट देखाजाता है ॥ २७ ॥ आनन्दने कहा—हे द्विज !

स गुरोस्तद्वचः श्रुत्वा विहस्यैवमथाब्रवीत् ॥ आनंद उवाच ॥ वंद्या मे कतमा माता जननी पालनी नु किम् ॥ २४ ॥ गुरुरुवाच ॥ नन्वियं ते महाभाग जनित्री जारुजात्मजा ॥ विक्रान्तस्याग्रमहिषी हैमिनी नाम नामतः ॥ २५ ॥ आनन्द उवाच ॥ इयं जनित्री चैत्रस्य विशालग्रामवासिनः ॥ विप्राग्र्यबोधपुत्रस्य योऽस्यां जातोऽन्यतोऽगमम् ॥ २६ ॥ गुरुरुवाच ॥ कुतस्त्वं कथयानन्द चैत्रः को वा त्वयोच्यते ॥ संकटं महदाभाति क्व जातोऽत्र ब्रवीषि किम् ॥ २७ ॥ आनन्द उवाच ॥ जातोऽहमनमित्रस्य क्षत्रियस्य गृहे द्विज ॥ तत्पत्न्यां गिरिभद्रायामाददे जातहारिणी ॥ २८ ॥ तयात्र मुक्तो हैमिन्यां गृहीत्वा च सुतं च सा ॥ बोधस्य द्विजमुख्यस्य गृहे नीतवती पुनः ॥ २९ ॥ भक्षयामास च सुतं तस्य बोधद्विजन्मनः ॥ स तत्र द्विजसंस्कारैः संस्कृतो हैमिनीसुतः ॥ ३० ॥ वयमत्र महाभाग संस्कृता गुरुणा त्वया ॥ मया तव वचः कार्यमुपैमि कतमां गुरो ॥ ३१ ॥

मैंने अवनीपति अनमित्र नामक क्षत्रियके घर उनकी पत्नी गिरिभद्राके गर्भसे जन्म ग्रहण कियाहै और मुझको जातहारिणी हरण करके इस स्थानमें रखगई है ॥ २८ ॥ और उस हैमिनिके पुत्रको हरण करके पुनर्वार द्विजश्रेष्ठ बोधके घर लेजाकर ॥ २९ ॥ उस द्विजोत्तम बोधकी सन्तानको भक्षण कर गईथी। हैमिनीसुत वह बालक विशाल ग्राममें द्विजके संस्कारसे संस्कृत हुआ है ॥ ३० ॥ और आपके द्वारा मैं यहां संस्कृत हुआहूं। हे महाभाग ! आप मेरे गुरु हैं। आपकी आज्ञा मुझको सम्यक्प्रकार पालनीय है हे गुरो ! मैं किस जननीको प्रणाम करूं ? ॥ ३१ ॥

गुरुजी बोले--हे वत्स ! अत्यन्त विषम महासंकट उपस्थित हुआहै कुछभी नहीं समझ सकता मानो मोहके कारण बुद्धि भ्रमण करती है ॥ ३२ ॥ आनन्दने कहा--हे विप्रर्षे ! इस प्रकार व्यवस्थावाले इस जगतमें मोहका विराम क्या है ? अतएव कौन किसका पुत्र है ? और जब प्राणी जन्मसे लेकर प्राणियोंके संग विविध सम्बन्धको प्राप्त होते हैं तब कोई किसीका बांधव नहीं है । संबंधयुक्त मनुष्यगण जिस भांति मृत्युके द्वारा लौटते रहतेहैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस संसारमें बांधवगणोंके सहित उत्पन्नहुए मनुष्योंका जो अखिल क्रम (सर्वानुगामी) संबंध है वहभी इसी प्रकार देहके विनाशके पीछे विनाशको प्राप्त होता है ॥ ३५॥ इसी कारण कहताहूं संसारमें वास करनेवालोंका कोई बंधु नहीं है और नित्य बंधुही कौन है ? अतएव किस

गुरुरुवाच ॥ अतीव गहनं वत्स संकटं महदागतम् ॥ न वेद्मि किंचिन्मोहेन भ्रमन्तीव हि बुद्धयः ॥ ३२ ॥ आनन्द उवाच ॥ मोहस्यावसरः कोऽत्र जगत्येवं व्यवस्थिते ॥ कः कस्य पुत्रो विप्रर्षे को वा कस्य न बान्धवः ॥३३॥ आरभ्य जन्मनो नृणां सम्बन्धित्वमुपैति यः ॥ अन्यसंबंधिनो विप्र मृत्युना सन्निवर्तिताः ॥३४॥ अत्रापि जातस्य सतः सम्बन्धा योऽस्य बान्धवैः ॥ सोऽप्यस्तमन्ते देहस्य प्रयात्येषोऽखिलक्रमः ॥ ३५ ॥ अतो ब्रवीमि संसारे वसतः को न बान्धवः ॥ को वापि सततं बन्धुः किं वो विभ्राम्यते मतिः ॥ ३६ ॥ पितृद्वयं मया प्राप्तमस्मिन्नेव हि जन्मनि ॥ मातृद्वयं च किं चित्रं यदन्यदेहसम्भवे ॥ ३७ ॥ सोऽहं तपः करिष्यामि त्वया यो ह्यस्य भूपतेः ॥ विशालग्रामतः पुत्रश्चैत्र आनीयतामिह ॥३८॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः स विस्मितो राजा सभार्यः सह बन्धुभिः ॥ तस्मान्निवर्त्य ममतामनुमेने वनाय तम् ॥ ३९ ॥ चैत्रमानीय तनयं राज्ययोग्यं चकार सः ॥ संमान्य ब्राह्मणं येन पुत्रबुद्ध्या स पालितः ॥ ४० ॥

निमित्त अपनी बुद्धि भ्रान्त होतीहै ॥ ३६ ॥ मैं इसी जन्ममें दो पिता और दो माताको प्राप्त हुआ हूं, अन्य देहधारणमें जो ऐसा संबंध होगा तो फिर आश्चर्यही क्या है ? ॥ ३७ ॥ अब मैं तपस्या करूंगा । आप विशालग्रामसे इन भूपतिके पुत्र उस चैत्रको इस स्थानमें लेआइये ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--तदनन्तर राजाने भार्या और बंधुगणोंके सहित विस्मित हो, उस पुत्रसे मोह छोड उसको वन जानेकी अनुमति दी ॥ ३९ ॥ और जिस ब्राह्मणने चैत्रको पालाथा, उस ब्राह्मणको सन्मानित कर अपने पुत्रको लाय, राजाने उसको राज्यमें अभिषिक्त किया ॥ ४० ॥

इधर वह आनन्द मोक्षविरोधी सब कर्मोंको क्षय करनेकी इच्छासे बाल्य अवस्थासेही महावनमें तपस्या करने लगा ॥ ४१ ॥ जब आनन्द इस प्रकार तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुआ, तब देव प्रजापतिने उससे कहा—हे वत्स ! किस निमित्त ऐसी तीव्र तपस्या करते हो ? सो कहो ॥ ४२॥ आनन्दने कहा—हे भगवन् ! जो सब कर्म मेरे संसारबंधनका हेतुस्वरूप हैं, उनके नाश करनेकी इच्छासे मैं आत्मशुद्धिके लिये तपस्या करताहूं ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले—क्षीणाधिकार मनुष्यगण मुक्तिके योग्य होते हैं, वह कर्मवान् नहीं होते तो तुम सत्त्वाधिकारी (प्राणियोंके ऊपर आधिपत्यशाली) होकर किस प्रकार मुक्तिको प्राप्त होगे ? ॥ ४४ ॥ तुम छठे मनु होगे अब जाओ—वैसाही कार्य करो, तो मुक्त होगे, अब तुम्हें तपस्या करनेकी आवश्यकता नहीं

सोऽप्यानन्दस्तपस्तेपे बाल एव महावने ॥ कर्मणां क्षपणार्थाय विमुक्तेः परिपन्थिनाम् ॥४१॥ तपस्यन्तं ततस्तं च प्राह देवः प्रजापतिः ॥ किमर्थं तप्यसे वत्स तपस्तीव्रं वदस्व तत् ॥४२॥ आनन्द उवाच ॥ आत्मनः शुद्धिकामोऽहं करोमि भगवंस्तपः ॥ बन्धाय मम कर्माणि यानि तत्क्षपणोन्मुखः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ क्षीणाधिकारो भवति मुक्तियोग्यो न कर्मवान् ॥ सत्त्वाधिकारवान्मुक्तिमवाप्स्यति ततो भवान् ॥ ४४ ॥ भवता मनुना भाव्यं षष्ठेन व्रज तत्कुरु ॥ अलं ते तपसा तस्मिन्कृते मुक्तिमवाप्स्यसि ॥ ४५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्तो ब्रह्मणा सोऽपि तथेत्युक्त्वा महामतिः ॥ तत्कर्माभिमुखो यस्तु तपसो विरराम ह ॥ ४६ ॥ चाक्षुषेत्याह तं ब्रह्मा तपसो विनिवर्तयन् ॥ पूर्वं नाम्ना बभूवाथ प्रख्यातश्चाक्षुषो मनुः ॥ ४७ ॥ उपयेमे विदर्भां स सुतामुग्रस्य भूभृतः ॥ तस्यां चोत्पादयामास पुत्रान्प्रख्यातविक्रमान् ॥ ४८ ॥ तस्य मन्वन्तरेशस्य येऽन्तरे त्रिदशा द्विज ॥ ये चर्षयस्तथैवेन्द्रो ये सुताश्चास्य ताञ्छृणु ॥ ४९ ॥

है ॥ ४५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्माजीके इस प्रकार कहने पर वह महामति " यही हो " इस प्रकार कह उस कर्मके अभिमुख हो तपस्यासे विरत हुए ॥४६॥ ब्रह्माजीने उनको तपस्यासे निवृत्त करके "चाक्षुष" इस पहिले नामसे अभिहित किया, अनन्तर वह 'चाक्षुषमनु' नामसे विख्यात हुए ॥४७॥ इसके पीछे उन्होंने उग्र नामक राजाकी कन्या विदर्भासे विवाह करके उसके गर्भसे अनेक विक्रमशाली पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४८ ॥ हे द्विज ! उन मन्वन्तराधिपतिके मन्वन्तरमें जो जो देवता, जो जो ऋषि, जो इन्द्र और इनकी जो जो सन्तान हुई, वह सुनो ॥ ४९ ॥

हे विप्र ! इस मन्वन्तरमें देवताओंका प्रथमगण आप्यनामक है, उस गणमें विख्यात कर्म और यज्ञमें हव्यभोजी आठ देवता थे ॥ ५० ॥ विख्यात बलवीर्य और प्रभामण्डलमध्यस्थ होनेसे दुर्दर्श अपर देवता थे देवताओंका प्रसूत नामक दूसरा गण है, इसमेंभी आठ देवता हैं ॥ ५१ ॥ हे द्विज ! तीसरे भव्याख्य देवतागणमें आठ और चौथे यूथग नामक गणमें आठ देवता थे ॥ ५२ ॥ पंचमगणमें देवता अमृताशी नामसे विख्यात हैं। हे द्विज ! उस मन्वन्तरमें अन्य देवगण लेखसंज्ञक हैं। इस पंचम गणमें भी अमृतभोजी देवता पूर्वके समान अष्टसंज्ञक हैं ॥ ५३ ॥ शत यज्ञ करके, यज्ञभागभुक् " मनोजव " नामक इन्द्र उनके अधिपति हुएथे ॥ ५४ ॥ सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उन्नत, मधु, अति और सहिष्णु, यह सप्तर्षि थे चाक्षुप मनुके उरु,

आप्या नाम सुरास्तत्र तेषामेकोऽष्टको गणः ॥ प्रख्यातकर्मणां विप्र यज्ञे हव्यभुजामयम् ॥ ५० ॥ प्रख्यातबलवीर्याणां प्रभामण्डलदुर्दर्शाम् ॥ द्वितीयश्च प्रसूताख्यो देवानामष्टको गणः ॥ ५१ ॥ तथैवाष्टक एवान्यो भव्याख्यो देवतागणः ॥ चतुर्थश्च गणस्तत्र यूथगाख्यस्तथाष्टकः ॥५२॥ लेखसंज्ञास्तथैवान्ये तत्र मन्वन्तरे द्विज ॥ पंचमे च गणे देवास्तत्संज्ञा ह्यमृताशिनः ॥५३॥ शतं क्रतूनामाहृत्य यस्तेषामधिपोऽभवत् ॥ मनोजवस्तथैवेन्द्रः संख्यातो यज्ञभागभुक् ॥ ५४ ॥ सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुन्नतो मधुः ॥ अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तासन्निति चर्षयः ॥ ५५ ॥ ऊरुपुरुशतद्युम्नप्रमुखाः सुमहाबलाः ॥ चाक्षुषस्य मनोः पुत्राः पृथिवीपतयोऽभवन् ॥५६॥ एतत्ते कथितं षष्ठं मया मन्वन्तरं द्विज ॥ चाक्षुषस्य तथा जन्म चरितं च महात्मनः ॥ ५७ ॥ साम्प्रतं वर्त्तते योऽयं नाम्ना वैवस्वतो मनुः ॥ सप्तमो येऽन्तरे तस्य देवाद्यास्ताञ्छृणुष्व मे ॥ ५८ ॥ (य इदं कीर्तयेद्धीमांश्चाक्षुषस्यांतरं भुवि ॥ शृणुते च लभेत्पुत्रानारोग्यसुखसंपदम्) ॥ ५९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे षष्ठमन्वन्तरं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

पुरु, शतद्युम्न इत्यादि महाबलवान् पुत्र गण पृथ्वीपति हुएथे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे द्विज ! मैंने इस छठे मन्वन्तरका विषय और महात्मा चाक्षुष मनुका जन्म एवं चरित्र तुमसे कहा ॥ ५७ ॥ अब वैवस्वतनामक जो सप्तम मनु वर्त्तमान है, उनके मन्वन्तरके देवता इत्यादिका विषय मुझसे सुनो ॥ ५८ ॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य पृथ्वीमें इस चाक्षुषमन्वन्तरका कीर्त्तन करेंगे अथवा इसको सुनेंगे, वह पुत्र आरोग्यता और सुखसंपदाको प्राप्त होंगे ॥ ५९ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे भाषाटीकायां षष्ठमन्वन्तरं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—हे महाभाग ! विश्वकर्माकी संज्ञा नामक कन्या मार्त्तण्डदेवकी पत्नी थी। उसके गर्भद्वारा भास्करके औरससे ॥ १ ॥ विख्यात यश अत्यन्त ज्ञानसंपन्न मनुने जन्मग्रहण कियाथा। यह विवस्वान्‌के पुत्र हुए, इस कारण इन मनुका वैवस्वत नाम विख्यात हुआथा ॥ २ ॥ सूर्यको देखतेही संज्ञा दोनों नेत्र मूँद लेतीथी इस निमित्त सूर्यदेवने एक दिन क्रोध करके उससे यह निष्ठुरवचन कहा ॥ ३ ॥ हे मूढे ! जब कि तू सदा मुझको देखकर नेत्र संयम करती है, अर्थात् बंद करतीहै तो इसी प्रकार तू प्रजासंयमपरायण यमको उत्पन्न करेगी ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--तबसे वह संज्ञादेवी भयाकुल होकर सूर्यके प्रति चंचलदृष्टि करने लगी। तब रविने चंचलनेत्रवाली देखकर फिर कहा ॥ ५ ॥ अब तुम मुझको देखकर जब दृष्टि चंचल

मार्कण्डेय उवाच ॥ मार्त्तण्डस्य रवेर्भार्या तनया विश्वकर्मणः ॥ संज्ञा नाम महाभाग तस्यां भानुरजीजनत् ॥ १ ॥ मनुं प्रख्यातयशसमनेकज्ञानपारगम् ॥ विवस्वतः सुतो यस्मात्तस्माद्वैवस्वतस्तु सः ॥ २ ॥ संज्ञा च रविणा दृष्टा निमीलयाते लोचने ॥ यतस्ततः स रोषोऽर्कः संज्ञां निष्ठुमरब्रवीत् ॥ ३ ॥ मयि दृष्टे सदा यस्मात्कुरुषे नेत्रसंयमम् ॥ तस्माज्जनिष्यसे मूढे प्रजासंयमनं यमम् ॥ ४॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः सा चपलां दृष्टिं देवी चक्रे भयाकुला ॥ विलोलितदृशं दृष्ट्वा पुनराह च तां रविः ॥ ५ ॥ यस्माद्विलोलिता दृष्टिर्मयि दृष्टे त्वयाधुना ॥ तस्माद्विलोलां तनयां नदीं त्वं प्रसविष्यासि ॥ ६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततस्तस्यां तु संजज्ञे भर्तृशापेन तेन वै ॥ यमश्च यमुना चेयं प्रख्याता सुमहानदी ॥ ७ ॥ सापि संज्ञा रवेस्तेजः सेहे दुःखेन भाविनी ॥ असहन्ती च सा तेजश्चिन्तयामास वै तदा ॥ ८ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि क्व गतायाश्च निर्वृतिः ॥ भवेन्मम कथं भर्ता कोपमर्कश्च नैष्याति ॥ ९ ॥

करतीहो तब तुम इसी प्रकार विलोला नदीरूपिणी कन्या प्रसव करोगी ॥ ६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर इस प्रकार पतिके शाप देनेपर उसके गर्भसे यमने जन्म ग्रहण किया और यमुना नामक विख्यात महानदी भी उत्पन्न हुई ॥ ७ ॥ उस संज्ञानामक कामिनीने उतने समयपर्यंत दुःखके सहित रविका तेज सहन कियाथा किन्तु अब वह तेज नहीं सहन कर सकनेके कारण चिन्ता करने लगी ॥ ८ ॥ "क्या करूं कहां जाऊं ? कहां जानेसे निर्वृति हो ? और किस किस प्रकारसे मेरे भर्ता कोपके वशीभूत न हो ? " ॥ ९ ॥

तब प्रजापतिकी कन्या उस महाभाग संज्ञाने इस प्रकार अनेक भाँति चिन्ता करके पिताके गृहकाही आश्रय लेना अच्छा समझा ॥ १० ॥ फिर उस यशस्विनीने पिताके घर जानेका निश्चय कर अपने देहसे रविकी प्रियतमा स्वीय छायामय शरीर निर्माण किया ॥ ११ ॥ और फिर उस छायासे कहा, इन सूर्यके घर जिस प्रकार मैं रहतीहूं तुमभी वैसेही भावसे रहना तथा पुत्र और स्वामी रविके प्रति मेरीही समान आचरण करना ॥ १२ ॥ भानुके पूँछनेपरभी मेरे इस जानेकी बात मत कहना, बरन् "वह संज्ञा मैं ही हूं" सदा यही बात कहना ॥ १३॥ छायासंज्ञा बोली हे देवी ! जबतक वह मेरे केशग्रहण नहीं केरंगे और शाप नहीं देंगे तबतक मैं तुम्हारे वचनानुसार कार्य करूंगी किन्तु शाप और केशाकर्षण होनेपर संपूर्ण वृत्तान्त कहदूंगी ॥ १४ ॥

इति संचिन्त्य बहुधा प्रजापतिसुता तदा ॥ बहु मेने महाभागा पितृसंश्रयमेव सा ॥ १० ॥ ततः पितृगृहे गन्तुं कृतबुद्धिर्यशस्विनी ॥ छायामयीमात्मतनुं निर्ममे दयितां रवेः ॥ ११ ॥ तां चोवाच त्वया वेश्मन्यत्र भानोर्यथा मया ॥ तथा सम्यगपत्येषु वर्तितव्यं यथा रवौ ॥ १२ ॥ पृष्टयापि न वाच्यं ते तथैतद्गमनं मम ॥ सैवास्मि नाम संज्ञेति वाच्यमेतत्सदा वचः ॥ १३ ॥ छायासंज्ञोवाच ॥ आकेशग्रहणाद्देवि आशापाच्च वचस्तव ॥ करिष्ये कथयिष्यामि वृत्तं तु शापकर्षणात् ॥ १४ ॥ इत्युक्ता सा तदा देवी जगाम भवनं पितुः ॥ ददर्श तत्र त्वष्टारं तपसा धूतकल्मषम् ॥ १५ ॥ बहुमानाच्च तेनापि पूजिता विश्वकर्मणा ॥ तस्थौ पितृगृहे सा तु कंचित्कालमनिन्दिता ॥ १६ ॥ ततस्तां प्राह चार्वङ्गीं पिता नातिचिरोषिताम् ॥ स्तुत्वा च तनयां प्रेमबहुमानपुरःसरम् ॥ १७ ॥ त्वां तु मे पश्यतो वत्से दिनानि सुबहून्यपि ॥ मुहूर्त्तार्द्धसमानि स्युः किन्तु धर्मो विलुप्यते ॥ १८ ॥

छाया संज्ञाके इस प्रकार कहनेपर संज्ञादेवी पिताके घर चली गई और वहां तपस्याद्वारा विधूतपाप अर्थात् पापरहित विश्वकर्माको देखा ॥ १५ ॥ उन विश्वकर्माने इसका बहुत मान करके पूजन किया, तब आनन्दित होकर संज्ञा कुछकाल पिताके घर रही ॥ १६ ॥ फिर थोडे कालके उपरान्त अपनी कन्या उस सुन्दरीसे उसके पिता विश्वकर्माने अत्यन्त स्नेहभाव और अत्यन्त मानके सहित श्रेष्ठ वचनोंद्वारा कहा ॥ १७ ॥ हे वत्से ! तुमको देखते देखते मेरे बहुत दिन बीतने परभी वह आधे मुहूर्त्तकी समान जान पडते हैं, किन्तु इससे धर्म लुप्त होता है ॥ १८ ॥

बाधवगणोंमें सदा वास करना स्त्रियोंके पक्षमें यशकारी कार्य नहीं है, स्त्रियोंका भर्त्ताके घरही वास करना बांधवोंको अभिमत है ॥ १९ ॥ हे पुत्रिके ! त्रैलोक्यनाथ सूर्य तुम्हारे भर्त्ता हैं, तुम उनके संग विवाहसूत्रमें मिलित हुई हो। पिताके घर सदा वास करना तुमको उचित नहीं है ॥ २० ॥ अतएव हे शुभे ! अब तुम पतिके घर जाओ, मैं संतुष्ट हुआहूं, और मेरे द्वारा तुमभी सम्मानित हुईहो. मेरे देखनेके निमित्त फिर आजाना ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे मुने ! पिता विश्वकर्माके इस प्रकार कहने पर वह संज्ञा " वही हो " ऐसा कह और पिताकी भली भांति पूजा करके उत्तरकुरुदेशमें चली गई ॥२२॥ सूर्यके तेजसे डरीहुई वह संज्ञा सूर्यके तापमें अनिच्छुक हो, वहां वडवा (घोडी) का रूप धारण करके तपस्या करने लगी ॥ २३ ॥ इस ओर " यही

बान्धवेषु चिरं वासो नारीणां न यशस्करः ॥ मनोरथो बान्धवानां नार्या भर्तृगृहे स्थितिः ॥ १९ ॥ सा त्वं त्रैलोक्यनाथेन भर्त्रा सूर्येण सङ्गता ॥ पितृगेहे चिरं कालं वस्तुं नार्हसि पुत्रिके ॥ २० ॥ सा त्वं भर्तृगृहं गच्छ तुष्टोऽहं पूजितासि मे ॥ पुनरागमनं कार्यं दर्शनाय शुभे मम ॥ २१॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्ता सा तदा पित्रा तथेत्युक्त्वा च सा मुने ॥ संपूजयित्वा पितरं जगामाथोत्तरान्कुरून् ॥२२॥ सूर्यतापमनिच्छन्ती तेजसस्तस्य बिभ्यती ॥ तपश्चचार तत्रापि वडवारूपधारिणी ॥२३॥ संज्ञेयमिति मन्वानो द्वितीयायामहस्पतिः ॥ जनयामास तनयौ कन्यां चैकां मनोरमाम् ॥ २४ ॥ छायासंज्ञा त्वपत्येषु यथा स्वेष्वतिवत्सला ॥ तथा न संज्ञाकन्यायां पुत्रयोश्चा-न्ववर्त्तत ॥ २५ ॥ लालनाद्युपभोगेषु विक्षेपमनुवासरम् ॥ मनुस्तत्क्षान्तवानस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥ २६ ॥ ताडनाय च वै कोपा-त्पादस्तेन समुद्यतः ॥ तस्याः पुनः क्षांतिमता न तु देहे निपातितः ॥ २७ ॥

संज्ञा है " ऐसा मनमें समझ दिनपति सूर्यने दूसरी पत्नीमें दो पुत्र और एक मनोहर कन्या उत्पन्न करीं ॥ २४ ॥ किन्तु छायासंज्ञा अपनी संतानके प्रति जिस प्रकार स्नेहवती थी, प्रकृत संज्ञाकी कन्या और दोनों पुत्रोंके प्रति वैसी नहीं थी ॥ २५ ॥ नित्यही लालनादि उपभोगके समय दोनों संतानमें भिन्न भाव दिखाती। मनुने तो उसको क्षमा कियाथा, किन्तु यमने उसके इस विषमभावकी क्षमा नहीं की ॥ २६ ॥ उन्होंने कोपके वशीभूत हो प्रहार कर-नेके लिये चरण उठा लिया, किन्तु फिर उसी समय क्षमा करके उक्त चरण छायासंज्ञाके देहमें निपातित नहीं किया ॥ २७ ॥

हे द्विज ! तदनन्तर उस छायासंज्ञाने, क्रोधित हो अपना हाथ उठाय होठ कंपाय यमको यह शाप दिया ॥ २८ ॥ कि, मैं तुम्हारे पिताकी पत्नी हूं । मेरी मर्यादा तोड चरण उद्यत करके मुझको घुडकता है, इस कारण अभी तेरा यह चरण पृथ्वीमें गिरै ॥ २९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--यम माताका दिया इस प्रकार शाप सुन, भयातुर हो, पिताके समीप जाकर प्रणामपूर्वक कहने लगे ॥ ३० ॥ यमने कहा--हे तात ! माता स्नेह त्यागकर पुत्रको शाप दे, यह अत्यन्त आश्चर्य है और कभी किसीने यह बात नहीं देखी है ॥ ३१ ॥ मनुने मुझसे जिस प्रकार कहा है, यह माता वैसी नहीं है, पुत्र असद्गुणयुक्त होनेपर भी माता कभी उसके प्रति विपरीत नहीं होती ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-भगवान् तिमिरारि (सूर्य) ने यमका वचन सुन छायासंज्ञाको

ततः शशाप तं कोपाच्छायासंज्ञा यमं द्विज ॥ किंचित्प्रस्फुरमाणौष्ठी विचलत्पाणिपल्लवा ॥ २८ ॥ पितुः पत्नीममर्यादं यन्मां तर्जयसे पदा ॥ भुवि तस्मादयं पादस्तवाद्यैव पतिष्यति ॥ २९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्याकर्ण्य यमः शापं मात्रा दत्तं भयातुरः ॥ अभ्येत्य पितरं प्राह प्रणिपातपुरःसरम् ॥ ३० ॥ यम उवाच ॥ तातैतन्महदाश्चर्यं न दृष्टमिति केनचित् ॥ माता वात्सल्यमुत्सृज्य शापं पुत्रे प्रयच्छति ॥ ३१ ॥ यथा मनुर्ममाचष्टे नेयं माता तथा मम ॥ विगुणेष्वपि पुत्रेषु न माता विगुणा भवेत् ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ यमस्यैतद्वचः श्रुत्वा भगवांस्तिमिरापहः ॥ छायासंज्ञां समाहूय पप्रच्छ क्व गतेति सा ॥३३ ॥ सा चाह तनया त्वष्टुरहं संज्ञा विभावसो ॥ पत्नी तव त्वयापत्यान्येतानि जनितानि मे ॥ ३४ ॥ इत्थं विवस्वतः सा तु बहुशः पृच्छतो यदा ॥ नाचचक्षे ततः क्रुद्धो भास्वांस्तां शप्तुमुद्यतः ॥ ३५ ॥ ततः सा कथयामास यथावृत्तं विवस्वतः ॥ विदितार्थश्च भगवाञ्जगाम त्वष्टुरालयम् ॥ ३६ ॥

सादर बुलाकर पूछा " संज्ञा कहां गई है " ॥ ३३ ॥ उसने कहा-हे विभावसो ! मैं विश्वकर्माकी कन्या, तुम्हारी पत्नी संज्ञा हूं । मेरेही गर्भसे आपकी इस सन्तानने जन्म ग्रहण किया है ॥ ३४ ॥ विवस्वान् सूर्यके जब इस प्रकार बहुत वार पूँछने पर भी उसने उसका यथार्थ उत्तर नहीं दिया । तब भास्वान् सूर्य क्रोधित होकर उसको शाप देनेमें उद्यत हुए ॥ ३५ ॥ तब जो जो बात हुई थी, वह सब उसने विवस्वान्से कहदी भगवान् मार्त्तण्डदेव यह सब बात जानकर विश्वकर्माके घर गये ॥ ३६ ॥

इसके उपरान्त विश्वकर्माने अपने घर आयेहुए त्रैलोक्यपूजित द्युतिमान् सूर्यकी परम भक्तिसहित पूजा करी ॥ ३७ ॥ अनन्तर जब विश्वकर्मासे सूर्यने संज्ञाका वृत्तान्त पूछा, तब उन्होंने कहा संज्ञा मेरे घर आई तो थी किन्तु मैंने उसको आपकेही घर भेजदिया ॥ ३८ ॥ तब दिवाकरने ध्यानमें स्थित होकर देखा कि, संज्ञा उत्तरकुरुवर्षमें घोडीका रूप धारण किये तपस्या कररही है ॥ ३९ ॥ और दिवाकरने यहभी देखा कि, "मेरे भर्ता सुन्दराकृति और सौम्यमूर्ति हों" यह उसके तपस्या करनेकी अभिलाषा है ॥ ४० ॥ हे द्विज ! भगवान् भास्करने फिर संज्ञाके पिता विश्वकर्मासे कहा मेरा तेज क्षीण

ततः स पूजयामास तदा त्रैलोक्यपूजितम् ॥ भास्वन्तं परया भक्त्या निजगेहमुपागतम् ॥ ३७ ॥ संज्ञां पृष्टस्तदा तस्मै कथयामास विश्वकृत् ॥ आगतैवेह मे वेश्म भवतः प्रेषितेति वै ॥ ३८ ॥ दिवाकरः समाधिस्थो वडवारूपधारिणीम् ॥ तपश्चरन्तीं ददृशे उत्तरेषु कुरुष्वथ ॥ ३९ ॥ सौम्यमूर्तिः शुभाकारो मम भर्त्ता भवेदिति ॥ अभिसन्धिश्च तपसो बुबुधेऽस्या दिवाकरः ॥ ४० ॥ शातनं तेजसो मेऽद्य क्रियतामिति भास्करः ॥ तं चाह विश्वकर्माणं संज्ञायाः पितरं द्विज ॥ ४१ ॥ संवत्सरभ्रमेस्तस्य विश्वकर्मा रवेस्ततः ॥ तेजसः शातनं चक्रे स्तूयमानश्च दैवतैः ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वैवस्वतमन्वन्तरे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततस्तं तुष्टुवुर्देवास्तथा देवर्षयो रविम् ॥ वाग्भिरीड्यमशेषस्य त्रैलोक्यस्य समागताः ॥ १ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्ते ऋक्स्वरूपाय सामरूपाय ते नमः ॥ यजुःस्वरूपरूपाय साम्नां धामवते नमः ॥ २ ॥

कीजिये ॥ ४१ ॥ तब विश्वकर्माने देवताओंके स्तुति करनेपर संवत्सरभ्रमणकारी उन रविका तेज क्षय कियाथा ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां वैवस्वतमन्वन्तरे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर देवता और देवर्षिगण समागत होकर सब त्रैलोक्यके पूज्य रविकी वाक्यद्वारा स्तुति करनेलगे ॥ १ ॥ देवता बोले—हे देव ! तुम ऋक्स्वरूप हो, तुमको नमस्कार है । तुम सामस्वरूप हो, तुमको नमस्कार है, तुम्हीं यजुःस्वरूप और सामके द्युतिमान् हो तुमको नमस्कार है ॥ २ ॥

तुम्हीं ज्ञानके एकमात्र आधारस्वरूप हो तमोनाशक हो शुद्धज्योतिःस्वरूप हो विशुद्ध और अमलात्मा हो, तुमको नमस्कार है ॥ ३ ॥ तुम शंख चक्र शार्ङ्ग और पद्म धारण करनेवाले हो तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं वरिष्ठ, वरेण्य, पर और परमात्मा हो तुम्हीं संपूर्ण जगद्व्यापिस्वरूप और आत्ममूर्ति हो तुमको नमस्कार है ॥ ४ ॥ तुम्हीं ज्ञानचेता मनुष्योंकी निष्ठा हो, सर्वभूतोंके कारणस्वरूप हो ॥ ५ ॥ तुम्हीं सूर्य स्वरूप प्रकाशात्मरूपी भास्कर और दिनकर हो तुमको नमस्कार है ॥ ६ ॥ तुम्हीं रात्रिके कारणस्वरूप हो एवं तुम्हीं संध्या और तुम्हीं ज्योत्स्नाकारी हो, तुमको नमस्कार है, तुम्हीं भगवान् हो, तुम्हारे द्वाराही जगत् जाग्रत् हो भ्रमित होता है ॥ ७ ॥ तुम्हारे द्वाराही यह चराचरयुक्त अखिल ब्रह्माण्ड विद्रुत होकर भ्रमण करता है। यह

ज्ञानैकधामभूताय निर्धूततमसे नमः ॥ शुद्धज्योतिःस्वरूपाय विशुद्धायामलात्मने ॥३॥ (चक्रिणे शंखिने धाम्ने शार्ङ्गिणे पद्मिने नमः ॥)
वरिष्ठाय वरेण्याय परस्मै परमात्मने ॥ नमोऽखिलजगद्व्यापिस्वरूपायात्ममूर्त्तये ॥ ४ ॥ सर्वकारणभूताय निष्ठायै ज्ञानचेतसाम् ॥ ५ ॥
नमः सूर्यस्वरूपाय प्रकाशात्मस्वरूपिणे ॥ भास्कराय नमस्तुभ्यं तथा दिनकृते नमः ॥ ६ ॥ शर्वरीहेतवे चैव सन्ध्याज्योत्स्नाकृते नमः ॥
त्वं सर्वमेतद्भगवञ्जगदुद्भ्रमता त्वया ॥ ७ ॥ भ्रमत्या विद्धमखिलं ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥ त्वदंशुभिरिदं स्पृष्टं सर्वं संजायते शुचिः ॥८॥
क्रियते त्वत्करैः स्पर्शाज्जलादीनां पवित्रता ॥ होमदानादिको धर्मो नोपकाराय जायते ॥ ९ ॥ तावद्यावन्न संयोगि जगदेतत्त्वदंशुभिः ॥
ऋचस्ते सकला ह्येता यजूंष्येतानि चान्यतः ॥ १० ॥ सकलानि च सामानि निपतन्ति त्वदङ्गतः ॥ ऋङ्मयस्त्वं जगन्नाथ त्वमेव च
यजुर्मयः ॥ ११ ॥ यतः साममयश्चैव ततो नाथ त्रयीमयः ॥ त्वमेव ब्रह्मणो रूपं परं चापरमेव च ॥ १२ ॥

स्पर्शयोग्य संपूर्ण द्रव्य तुम्हारी किरणोंके स्पर्शसेही पवित्र होते हैं ॥८॥ तुम्हारे किरणोंद्वाराही जलादिकी पवित्रता साधित होती है। तबतक होमदानादि धर्म उपकारके निमित्त नहीं होता ॥ ९ ॥ हे देव ! यह जगत् जबतक तुम्हारे किरणोंके संयोगको प्राप्त नहीं होता, तुम्हारे अंगसे जो किरणें निकलती हैं, वह समस्तही ऋक् यजुः और साम हैं। हे जगन्नाथ ! तुम्हीं ऋङ्मय, तुम्हीं यजुर्मय ॥ १० ॥ ११ ॥ और तुम्हीं साममय हो, अत एव हे प्रभो ! तुम्हीं त्रयीमय हो, तुम्हीं ब्रह्मरूपी, तथा तुम्हीं प्रधान और अप्रधान हो ॥ १२ ॥

तुम्हीं मूर्तिधारी और मूर्तिहीन हो, स्थूल और सूक्ष्मरूपसे तुम्हीं स्थित हो हे देव! तुम्हीं निमेषकाष्ठादिस्वरूप क्षयात्मककालरूपी हो, तुम प्रसन्न होओ, अपनी इच्छासे रूप और तेजक्षय करो ॥ १३ ॥ यह मनोहर स्तोत्र मनुष्योंको श्रद्धासे सुनना चाहिये और गुरुकोभी समाधिमें स्थित हो अपने शिष्यके निमित्त देना चाहिये ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर, देवता और देवर्षियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर तेजोराशि अव्यय सूर्यने अपना तेज मुक्त किया ॥ १५ ॥ उन रविके ऋङ्मय तेजसे पृथ्वी, यजुर्मय तेजसे आकाश और साममय तेजसे स्वर्ग हुआ ॥ १६ ॥ त्वष्टाने जो सूर्यके तेजका पंचदश

मूर्त्तामूर्त्तस्तथा सूक्ष्मः स्थूलरूपस्तथा स्थितः ॥ निमेषकाष्ठादिमयः कालरूपः क्षयात्मकः ॥ प्रसीद स्वेच्छया रूपं स्वतेजःशमनं कुरु ॥१३॥ (इदं स्तोत्रवरं रम्यं श्रोतव्यं श्रद्धया नरैः ॥ शिष्यो भूत्वा समाधिस्थो दत्त्वा देयं गुरोरपि ॥१४॥) मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं संस्तूयमानस्तु देवैर्देवर्षिभिस्तथा ॥ मुमोच स्वं तदा तेजस्तेजसां राशिरव्ययः ॥ १५ ॥ यत्तस्य ऋङ्मयं तेजो भविता तेन मेदिनी ॥ यजुर्मयेनापि दिवं स्वर्गः साममयं रवेः ॥ १६ ॥ शातितास्तेजसो भागा ये त्वष्ट्रा दश पंच च ॥ त्वष्ट्रैव तेन शर्वस्य कृतं शूलं महात्मना ॥१७॥ चक्रं विष्णोर्वसूनां च शंकवोऽथ सुदारुणाः ॥ पावकस्य तथा शक्तिः शिबिका धनदस्य च ॥१८॥ अन्येषामसुरारीणामस्त्राण्युग्राणि यानि वै ॥ यक्षविद्याधराणां च तानि चक्रे स विश्वकृत् ॥ १९ ॥ ततश्च षोडशं भागं बिभर्ति भगवान्विभुः ॥ तत्तेजः पंचदशधा शातितं विश्वकर्मणा ॥ २० ॥ ततोऽश्वरूपधृग्भानुरुत्तरानगमत्कुरून् ॥ ददृशे तत्र संज्ञां च वडवारूपधारिणीम् ॥ २१ ॥

भाग छीलदिया था, महात्मा त्वष्टाने उस तेजसेही महादेवका शूल ॥ १७ ॥ विष्णुका चक्र, और वसुगण, शंकर और पावककी दारुणशक्ति निर्माण की और उसीके द्वारा कुबेरकी पालकी ॥ १८॥ और अन्यान्य देवगणोंके एवं यक्ष विद्याधरोंके जो सब उग्र अस्त्र हैं, वह समस्तही विश्वकर्माने निर्माण किये थे ॥ १९ ॥ अनन्तर भगवान् विभु सूर्यने अपने तेजका षोडशभागमात्र धारण किया। विश्वकर्माने उसकोभी फिर पन्द्रहवार छीला ॥ २० ॥ इसके पीछे भानुने अश्वरूप धारण कर, उत्तरकुरुवर्षमें जाय वडवारूपधारिणी संज्ञाको देखा ॥ २१ ॥

वह संज्ञा उनको आताहुआ देख, पराये पुरुषकी आशंकासे; पीठकी रक्षामें तत्पर हो उनके सन्मुख गई ॥ २२ ॥ तदनन्तर उसी स्थानमें उन दोनोंकी नासिका मिलनेपर घोडीके मुखसे नासत्य और दस्र नामक दो पुत्र बाहर निकले ॥ २३ ॥ और उस वीर्यके शेष भागसे चर्म (ढाल) वर्म (कवच) खड्गधारी बाणतूणयुक्त अश्वारूढ रेवन्त नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥ तदनन्तर सूर्यने उसको (अश्विनीको) अपना अतुलरूप दिखाया तब बडवारूपधारिणी संज्ञाने उनका यथार्थ स्वरूप देख, प्रसन्न हो अपना स्वरूप धारण किया ॥ २५ ॥ तब जलशोषक भास्कर स्वरूपधारिणी संज्ञानाम्नी

सा च दृष्ट्वा तमायान्तं परपुंसो विशङ्कया ॥ जगाम संमुखं तस्य पृष्ठरक्षणतत्परा ॥ २२ ॥ ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्र समेतयोः ॥
नासत्यदस्रौ तनयावश्वीवक्त्रविनिर्गतौ ॥२३॥ रेतसोऽन्ते च रेवन्तः खड्गी चर्मी तनुत्रधृक् ॥ अश्वारूढसमुद्भूतो बाणतूणसमन्वितः ॥२४॥
ततः स्वरूपमतुलं दर्शयामास भानुमान् ॥ तस्यैषा च समालोक्य स्वरूपं मुदमाददे ॥२५॥ स्वरूपधारिणीं चेमामानिनाय निजाश्रमम् ॥
संज्ञां भार्यां प्रीतिमतीं भास्करो वारितस्करः ॥ २६ ॥ ततः पूर्वसुतो योऽस्याः सोऽभूद्वैवस्वतो मनुः ॥ द्वितीयश्च यमः शापाद्धर्मदृष्टि-
रभूत्सुतः ॥ २७ ॥ कृमयो मांसमादाय पादतोऽस्य महीतले ॥ पतिष्यन्तीति शापान्तं तस्य चक्रे पिता स्वयम् ॥ २८ ॥ धर्मदृष्टि-
र्यतश्चासौ समो मित्रे तथाऽहिते ॥ ततो नियोगं तं याम्ये चकार तिमिरापहः ॥ २९ ॥ यमुना च नदी जज्ञे कलिन्दान्तरवाहिनी ॥
अश्विनौ देवभिषजौ कृतौ पित्रा महात्मना ॥ ३० ॥

इस प्रीतिमती भार्याको अपने घर ले आये ॥ २६ ॥ तदनन्तर इसका ज्येष्ठ पुत्रही वैवस्वत नामक मनु हुआ था, दूसरे पुत्र यम शापके कारण धर्मदृष्टि हुए ॥ २७ ॥ "तुम्हारे चरणसे मांसके सहित समस्त कृमि पृथ्वीतलमें गिरेंगे" इस शापका प्रतीकार उनके पिताने स्वयं किया था ॥ २८ ॥ यमको धर्मदृष्टि और शत्रुमित्रमें समदृष्टि देखकर तिमिरारि सूर्यने उनको यमत्वमें नियुक्त किया ॥ २९ ॥ यमुना नामक कन्या नदीरूपसे कलिन्ददेशके मध्यमें बहने लगी और दोनों आश्विनीकुमार महात्मा पिताके द्वारा नियुक्त होकर स्वर्गके वैद्य हुए ॥ ३० ॥

और रेवन्त गुह्यकाधिपतित्वमें नियुक्त हुए अब छायासंज्ञाके पुत्रोंका नियोग मुझसे सुनो ॥ ३१ ॥ इसके उपरान्त पूर्वज वैवस्वतमनुके तुल्य छायासंज्ञाके गर्भसे उत्पन्न रविके ज्येष्ठ पुत्र सावर्णिक नामको प्राप्त हुए थे ॥ ३२ ॥ जिस समय बलि इन्द्र होंगे तब यहभी मनु होंगे, शनैश्चरभी पिताके द्वार ग्रहोंमें नियुक्त हुए ॥ ३३ ॥ सबसे छोटी एक कन्या थी, जिसका नाम तपती है, उसने संवरण नामक राजासे कुरुनामक एक पुत्र प्राप्त कियाथा ॥ ३४ ॥ अब मैं उन सातवें मनु वैवस्वतके अनन्तर समस्त ऋषि, देवगण, इन्द्र और उनके भूपाल पुत्रोंका विषय कहताहूं ॥ ३५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां वैवस्वतोत्पत्तिर्नाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्व, मरुत, भृगु और अंगिरा, इस

गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तोऽपि नियोजितः ॥ छायासंज्ञासुतानां च नियोगः श्रूयतां मम ॥ ३१ ॥ पूर्वजस्य मनोस्तुल्यश्छायासंज्ञासुतोऽग्रजः ॥ ततः सावर्णिकी संज्ञामवाप तनयो रवेः ॥३२॥ भविष्यति मनुः सोऽपि बलिरिन्द्रो यदा तदा ॥ शनैश्चरो ग्रहाणां च मध्ये पित्रा नियोजितः ॥ ३३ ॥ तयोस्तृतीया कन्या तु तपती नाम सा कुरुम् ॥ नृपात्संवरणात्पुत्रमवाप मनुजेश्वरम् ॥ ३४ ॥ तस्य वैवस्वतस्याहं मनोः सप्तममन्तरम् ॥ कथयामि सुतान्भूपानृषीन्देवान्सुराधिपम् ॥३५॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वैवस्वतमन्वन्तरे वैवस्वतोत्पत्तिर्नाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः ॥ भृगवोऽङ्गिरसश्चाष्टौ यत्र देवगणाः स्मृताः ॥१॥ आदित्या वसवो रुद्रा विज्ञेयाः कश्यपात्मजाः ॥ साध्याश्च वसवो विश्वे धर्मपुत्रगणास्त्रयः ॥२॥ भृगोस्तु भृगवो देवाः पुत्रा ह्यङ्गिरसः सुताः ॥ एष सर्गश्च मारीचो विज्ञेयः साम्प्रताधिपः ॥ ३ ॥ ऊर्ज्जस्वी नाम चैवेन्द्रो महात्मा यज्ञभागभुक् ॥ अतीतानागता ये च वर्तन्ते साम्प्रतं च ये ॥ ४ ॥

मन्वन्तरमें यह आठ देवता हैं ॥ १ ॥ तिनमें आदित्य, वसु और रुद्रगण कश्यपजीकी सन्तान हैं और साध्य, वसु एवं विश्वगण, यह तीन गण धर्मके पुत्र हैं ॥ २ ॥ भृगुगण देवता भृगुके पुत्र हैं, और अङ्गिरागण अंगिराके पुत्र हैं। हे द्विज ! इस सर्गको सम्प्रति मारीचसर्ग जानना चाहिये ॥ ३ ॥ इस मन्वन्तरमें महात्मा ऊर्जस्वी इन्द्र होकर यज्ञभागभुक् (यज्ञभाग भोगनेवाले) हुएथे, पूर्वमें इन्द्र हुएथे, तथा पीछे जो इन्द्र होंगे और अब जो इन्द्रत्वमें वर्त्तमान हैं ॥ ४ ॥

यह सब देवेन्द्रही समलक्षण कहकर विख्यात हैं। सबही सहस्राक्ष, वज्रधारी और पुरन्दर हैं ॥ ५ ॥ सबही मघवा, वृष शृंगधारी और गजगामी हैं और वह सबही शतयज्ञकारी एवं भूतपराभवकारी तेजयुक्त हैं ॥६॥ हे द्विज ! वह सबही शुद्ध धर्मादिके कारण होनेसे आधिपत्यगुणयुक्त एवं भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानके अधिपति हैं। अब त्रैलोक्यका विभाग सुनो ॥७॥ इस भूमिको " भूर्लोक " अन्तरिक्षको " दिव्य " और स्वर्गको " दिव्य " कहते हैं इन्हीं तीनोंको त्रैलोक्य कहाहै ॥ ८ ॥ अत्रि, वसिष्ठ, महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज, कुशिकनन्दन विश्वामित्र ॥ ९ ॥ और महात्मा भग-

सर्वे ते त्रिदशेन्द्रास्तु विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ॥ सहस्राक्षा कुलिशिनः सर्व एव पुरन्दराः ॥५ ॥ मघवन्तो वृषाः सर्वे शृङ्गिणो गजगामिनः ॥ ते शतक्रतवः सर्वे भूताभिभवतेजसः ॥ ६ ॥ धर्माद्यैः कारणैः शुद्धैराधिपत्यगुणान्विताः ॥ भूतभव्यभवन्नाथाः शृणु चैतत्त्रयं द्विज ॥ ७॥ भूर्लोकोऽयं स्मृता भूमिरन्तरिक्षं दिवः स्मृतम् ॥ दिव्याख्यश्च तथा स्वर्गस्त्रैलोक्यमिति गद्यते ॥८ ॥ अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपश्च महानृषिः ॥ गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ॥ ९ ॥ तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः ॥ जमदग्निस्तु सप्तैते मुनयोऽत्र तथान्तरे ॥ १० ॥ इक्ष्वाकुर्नाभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ॥ नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभागो दिष्ट एव च ॥ ११ ॥ करूषश्च पृषध्रश्च वसुमाँल्लोकविश्रुतः ॥ मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राः प्रकीर्तिताः ॥ १२ ॥ वैवस्वतमिदं ब्रह्मन्कथितं ते मयान्तरम् ॥ अस्मिञ्छ्रुते नरः सद्यः पठिते चैव सत्तम ॥ मुच्यत पातकैः सर्वैः पुण्यं च महदश्नुते ॥ १३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वैवस्वतमन्वन्तरे षट्सप्ततितमोऽध्याय ॥ ७६ ॥

वान् ऋचीकनन्दन जमदग्नि, यही सात मुनि इस मन्वन्तरमें सप्तर्षि हैं ॥ १० ॥ इक्ष्वाकु, नाभग, धृष्ट, शर्याति, नारिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट ॥ ११ ॥ करूष और पृषध्र, यह नौ वैवस्वतमनुके दीप्तिमान् और जगत्‌विख्यात पुत्र थे ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने इस वैवस्वतमन्वन्तरका तुमसे वर्णन किया। हे मुनिश्रेष्ठ ! इसका श्रवण और पाठ करनेपर मनुष्य शीघ्रही सब पापोंसे छूटकर पुण्य भोग करतेहैं ॥ १३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां वैवस्वतमन्वन्तरे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

कौष्टुकिने कहा—स्वायम्भुवादि सात मनुका विषय और उनके मन्वन्तरमें, जो जो देवता, जो जो राजा और जो जो ऋषि थे, वह तो आपने मुझसे कहा ॥ १ ॥ हे महामुने ! इस कल्पमें और जो सात मनु होंगे उनका विषय और उस समय जो देवादि होंगे उनका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—छायासंज्ञाके गर्भसे उत्पन्न पूर्वजात वैवस्वतमनुके तुल्य जिन सावर्णिका विषय तुमसे कहा है, वही आठवें मनु होंगे ॥ ३ ॥ इस मन्वन्तरमें राम, व्यास, गालव, दीप्तिमान्, कृप, ऋष्यशृंग और द्रौणि (अश्वत्थामा) यह सात जन सप्तर्षि होंगे ॥ ४ ॥ इस मन्वन्तरमें सुतपा, अमिताभ और

कौष्टुकिरुवाच ॥ स्वायम्भुवाद्याः कथिताः सप्तैते मनवो मम ॥ तदन्तरेषु ये देवा राजानो मुनयस्तथा ॥ १ ॥ अस्मिन्कल्पे सप्त येऽन्ये भविष्यन्ति महामुने ॥ मनवस्तान्समाचक्ष्व तथा देवादयश्च ये ॥ २ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कथितस्तव सावर्णिश्छायासंज्ञासुतश्च यः ॥ पूर्वजस्य मनोस्तुल्यः स मनुर्भविताष्टमः ॥ ३ ॥ रामो व्यासो गालवश्च दीप्तिमान्कृप एव च ॥ ऋष्यशृङ्गस्तथा द्रोणस्तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ॥४॥ सुतपाश्चामिताभाश्च मुख्याश्चैव त्रिधा सुराः ॥ विंशकः कथिताश्चैषां त्रयाणां त्रिगुणो गणः ॥५॥ तपस्तपश्च शक्रश्च द्युतिर्ज्योतिः प्रभाकरः ॥ प्रभासो दयितो धर्मस्तेजोरश्मिश्च वक्रतुः ॥ ६ ॥ इत्यादिकस्तु सुतपा देवानां विंशको गणः ॥ प्रभुर्विभुर्विभासाद्यस्तथान्यो विंशको गणः ॥ ७ ॥ सुराणाममितानां तु तृतीयमपि मे शृणु ॥ दमो दान्त ऋतः सोमो विन्ताद्याश्चैव विंशतिः ॥ ८ ॥

मुख्य, यह तीन प्रकारके देवगण हैं, इन देवताओंके प्रत्येक वीस गण हैं. सुतरां वह सब त्रिगुणित विंशक अर्थात् साठ हैं ॥ ५ ॥ तिनमें तपस्तपः, शक्र, द्युतिः, ज्योतिः, प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म, तेजः, रश्मि और वक्रतु ॥ ६ ॥ इत्यादि समस्त देवता सुतपा देवताओंके वीस गणोंके अन्तर्गत हैं । प्रभु विभु और विभासादि देवता, अमिताभ देवताओंके विंशक गण हैं ॥ ७ ॥ इसके पीछे तीसरे गणका विषय सुनो । दम, दान्त, रित, सोम और विन्त इत्यादि देवतागण मुख्य नामक तीसरे विंशक गणके अन्तर्गत हैं ॥ ८ ॥

यह सब मन्वन्तराधिपति और सब मरीचि-तनय प्रजापति कश्यपजीकी सन्तान हैं ॥ ९ ॥ यह सावर्णि मन्वन्तरमें देवता होंगे और हे मुने ! विरोचनके पुत्र बलि उस समयमें इनके इन्द्र होंगे ॥ १० ॥ जो दैत्यराज अब भी प्रतिज्ञापाशसे बँधकर पातालमें वास करते हैं । सावर्णिमनुके विरजा, अर्ववीर, निर्मोह, सत्यवाक्, कृति और विष्णु इत्यादि नामधारी पुत्र उस समयमें राजा होंगे ॥ ११ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां सावर्णिके मन्वन्तरे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—सूर्यका पुत्र सावर्णि (अर्थात् सूर्यकी छायासे उत्पन्न) कि, जिसको अष्टम मनु कहते हैं, उसकी

मुख्या ह्येते समाख्याता देवा मन्वन्तराधिपाः ॥ मारीचस्यैव ते पुत्राः काश्यपस्य प्रजापतेः ॥९ ॥ भविष्याश्च भविष्यन्ति सावर्णस्यान्तरे मनोः ॥ तेषामिन्द्रो भविष्यस्तु बलिर्वैरोचनिर्मुने ॥ १० ॥ पाताल आस्ते योऽद्यापि दैत्यः समयबन्धनः ॥ विरजाश्चार्ववीरश्च निर्मोहः सत्यवाक्कृतिः ॥ विष्ण्वाद्याश्चैव तनयाः सावर्णस्य मनोर्नृपाः ॥ ११ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥ ॐ नमश्चण्डिकायै ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः ॥ निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्गदतो मम ॥ १ ॥ महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः ॥ स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः ॥२॥ स्वारोचिषेऽतरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः ॥ सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमंडले ॥ ३ ॥ तस्य पालयतः सम्यक्प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ॥ ४ ॥ तस्य तैरभवद्युद्धमतिप्रबलदंडिनः ॥ न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥ ५ ॥

उत्पत्ति मैं विस्तारसहित कहताहूं सुनो ॥ १ ॥ महामाया भगवतीके अनुग्रहसे वह महाभाग सूर्यका पुत्र सावर्णि जिस भाँति समस्त ऐश्वर्यसे युक्त होकर मन्वन्तरका अधिपति होगया, सो सुनो ॥ २ ॥ स्वारोचिष नामक दूसरे मनुके राज्याधिकारमें कथासे पूर्व चैत्रके वंशमें उत्पन्न सुरथ नाम सब पृथ्वीमण्डलका राजा हुआ ॥ ३ ॥ जब वह सुरथ नामक नरपति अपनी प्रजाको नीतिसहित और अपने पुत्रोंकी भाँति पालने लगा, तब उस काल उसके कोलाविध्वंसी नामक राजा वैरी होगये ॥ ४ ॥ और उनका, अत्यन्त प्रबल दंड देनेवाले सुरथके संग संग्राम हुआ । यद्यपि कोलाविध्वंसी राजा थोडे थे

किन्तु तोभी उन्होंने उसे युद्धसे परास्त किया, अर्थात् जीत लिया ॥ ५ ॥ अनन्तर प्रबल वैरियोंसे दबकर वह महाभाग राजा सुरथ अपने पुरमें आन-कर अपने देशका राज्य करने लगा ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त उस पुरमें भी बलवान् और दुष्ट मन्त्रियोंने उस दुर्बल राजाका कोशागार (खजाना) और सेना समस्त हरण करी ॥ ७ ॥ तदनन्तर वह राजा अपना संपूर्ण राज्य हरण होजानेपर मृगयाके बहाने अकेला घोडेपर चढ गहन वनमें गया ॥ ८ ॥ वहां उसने पराई हिंसा न करनेवाले पशुओंसे पूर्ण और मुनि एवं उनके शिष्योंसे शोभित मेधा नामक महर्षिका आश्रम देखा ॥ ९ ॥ उस स्थानमें उन मुनिने उसका अत्यन्त सत्कार किया । तब वह राजा इधर उधर विचरण करता हुआ कुछ कालतक उन मुनिवरके आश्रममें रहा ॥ १० ॥

ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् ॥ आक्रांतः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥ ६ ॥ अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ॥ कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥ ७ ॥ ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः ॥ एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥ ८ ॥ स तत्राश्रममद्राक्षीद्द्विजवर्यः सुमेधसः ॥ प्रशांतश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥ ९ ॥ तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः ॥ इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥ १० ॥ सोऽचिंतयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टमानसः ॥ मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥ मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा ॥ ११ ॥ न जाने सुप्रधानो मे शूरो हस्ती सदा मदः ॥ मम वैरिवशं यातः कान्भोगानुपलप्स्यते ॥ १२ ॥ ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ॥ अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ॥ १३ ॥

अनन्तर जब उसके मनको वहांभी ममताने घुमाया तब वह चिन्ता करने लगा कि, जिस पुरका मेरे पुरखोंने पालन किया था, अब वह मुझ करके रहित होरहा है, वह मेरे दुराचारी सेवक उसकी धर्मपूर्वक रक्षा करते होंगे वा नहीं, यह मैं नहीं जानताहूं ॥ ११ ॥ सदा मदयुक्त मेरा वह प्रधान शूर हाथी शत्रुओंके वश होकर इस समय किस प्रकार भोगको प्राप्त होगा ? ॥ १२ ॥ और जो प्रतिदिन प्रसाद, धन और भोजनके देनेसे मेरे अनुगत अर्थात् आज्ञाकारी थे, वह अब निस्सन्देह अन्य राजाओंकी सेवा करते होंगे ॥ १३ ॥

और अन्याय रीतिसे व्यय करनेवाले निरन्तर व्यय करते हुए उन सेवकोंके द्वारा अतीव कष्टसे संचित किया खजाना नष्ट होजायगा ॥ १४ ॥ सुरथ राजा इस भाँति और अन्यान्य नाना प्रकारकी चिन्ता करने लगे। अनन्तर राजाने उन मुनिके आश्रमके निकट एक वैश्यको देखकर ॥ १५ ॥ पूछा तुम कौन हो ? और तुम्हारे यहां आनेका कारण क्या है ? और शोकयुक्तके समान तुम उदास क्यों दीखतेहो ? ॥ १६ ॥ राजाके इस प्रकार प्रणययुक्त वचन सुनकर वैश्यने अत्यन्त नम्रभावसे राजाको उत्तर दिया ॥ १७ ॥ वैश्य बोला—मैं धनवान् पुरुषोंके कुलमें उत्पन्न हुआ समाधि नामक वैश्य हूं,

असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ॥ संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति ॥ १४ ॥ एतच्चान्यच्च सततं चिंतयामास पार्थिवः ॥ तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः ॥१५॥ स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ॥ सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे ॥ १६ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ॥ प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥ १७ ॥ वैश्य उवाच ॥ समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥ पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः ॥ १८ ॥ विहीनः स्वजनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ॥ वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबंधुभिः ॥ १९ ॥ सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् ॥ प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः ॥ २० ॥ किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु सांप्रतम् ॥ कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ यैर्निरस्तो भवाल्लुँब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः ॥ तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥ २२ ॥

असज्जन स्त्रीपुत्रोंने धनके लालचसे ॥ १८ ॥ मेरा सब धन हरण करके मुझे घरसे निकाल दिया है और पुत्र स्त्री तथा धनहीन मुझको मेरे मित्र और भाई बंधुओंनेभी त्याग दिया, इस करण मैं दुःखी होकर इस वनमें आया हूं ॥१९ ॥ और यहां वनमें बैठाहुआ अपने पुत्रों बान्धवों तथा स्त्रियोंके कुशलाकुशलकी वार्त्ता नहीं जानता ॥२०॥ किन्तु उनके घरमें कुशल है, या कोई पीडा है और मेरे पुत्रोंका आचरण अब अच्छा है वा बुरा है ? ॥२१॥ राजाने कहा—जिन लालची पुत्र स्त्री इत्यादिने तुमको धनके लालचसे निकाल दिया, उनके प्रति अब तुम्हारा चित्त किसलिये स्नेह करता है ? ॥ २२ ॥

वैश्यने कहा—आपने मेरे संबंधमें जो कहा सो सत्य है, किन्तु मैं क्या करूं ? मेरा मन किसी प्रकारभी निष्ठुर नहीं होता ॥ २३ ॥ जिन पुत्रोंने धनके लालचसे पितृस्नेह छोडकर मुझे दूर किया, जिन पत्नियोंने पतिप्रेम और बंधुगणोंने बंधुके स्नेहको त्यागकर मुझको घरसे निकाल दिया, उन्हीं असज्जन पुत्र, स्त्री और बंधुवर्गमें मेरा मन फँस रहा है, हे महामते ! प्रतिकूल बांधवोंमें मेरा चित्त क्यों इतना प्रेमपरायण होता है, यह मैं जानकर भी नहीं समझ सकता ॥ २४ ॥ २५ ॥ उन्हींके निमित्त मेरा दीर्घ निःश्वास और चित्त खिन्न होता है, किन्तु क्या करूं उन निर्मोहियोंमें मेरा मन कठोर नहीं होता ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुनिसत्तम ! इसके उपरान्त राजा सुरथ और समाधि नामक वैश्य दोनों एकत्र मिलित होकर उन मेधा मुनिके निकट उपस्थित

वैश्य उवाच ॥ एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ॥ किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः ॥ २३ ॥ यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ॥ पतिस्वजनहार्दं च हार्दितेष्वेव मे मनः ॥ २४ ॥ किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते ॥ यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बंधुषु ॥ २५ ॥ तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते ॥ करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ॥ २६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ॥ समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ॥ २७ ॥ कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ॥ उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥ २८ ॥ राजोवाच ॥ भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ॥ दुखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ॥ २९ ॥ ममत्वं गतराज्यस्य राज्यांगेष्वखिलेष्वपि ॥ जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ॥ ३० ॥

हुए ॥ २७ ॥ तब राजा और वैश्य मुनिका यथोचित सन्मान कर पूजानुक्रमसे अधिकारानुसार बैठ उनके संग अनेक प्रकारकी बात चीत करने लगे ॥ २८ ॥ राजाने कहा—हे भगवन् ! जो विषय न समझ सकनेसे मेरा मन दुःखी रहता है, उसी विषयको आपसे पूछनेकी इच्छा करताहूं, वह आप मुझको समझा दीजिये ॥ २९ ॥ मैं पूछताहूं कि, यह भ्रम है, तथापि अज्ञके समान मेरी राज्य और संपूर्ण राज्याङ्गके ऊपर ऐसी ममता है हे मुनिश्रेष्ठ ! यह किस प्रकार है ? ॥ ३० ॥

और इस वैश्यको इसके पुत्रोंने अपमानित किया है स्त्री, भृत्य और बांधवोंने परित्याग किया है, तोभी यह वैश्य उन सब दुष्ट पुत्रादिमें अनुरक्त है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार मैं और यह वैश्य दोनों ही इस भाँति दृश्यमान दोषपूर्ण विषयमें ममतायुक्तचित्त होकर अत्यन्त दुःख पाते हैं ॥ ३२ ॥ हे महाभाग ! हम दोनों ज्ञानी होकर भी जो इस प्रकार विवेकान्धकी समान मोहको प्राप्त होते हैं, इसका कारण क्या है ? ॥ ३३ ॥ ऋषि बोले—समस्त जन्तुओंको विषयके दृष्टिगोचर होने पर ज्ञान है । किन्तु हे महाभाग ! विषय इस पृथक् पृथक् प्रकारसे ज्ञानको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ देखो कोई कोई प्राणी दिनमें नहीं देख सकता कोई कोई रात्रिमें नहीं देख सकता, और कोई कोई दिन रात्रिमें समानदृष्टिवाले हैं अर्थात् उन्हें दिन और रात्रिमें एकसा दीखताहै ॥ ३५ ॥ आप

अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥ स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्याति ॥३१॥ एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यंतदुःखितौ ॥ दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ॥ ३२ ॥ तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ॥ ममास्य च भवत्येषा विवेकांधस्य मूढता ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ज्ञानमस्ति समस्तस्य जंतोर्विषयगोचरे ॥ विषयाश्च महाभाग यांति चैवं पृथक्पृथक् ॥ ३४ ॥ दिवांधाः प्राणिनः केचिद्रात्रावंधास्तथापरे ॥ केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ॥३५॥ ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं तु ते न हि केवलम् ॥ यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः ॥ ३६ ॥ ज्ञानं न तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ॥ मनुष्याणां च यत्तेषां तुलयमन्यत्तथोभयोः ॥ ३७ ॥ ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान्पतंगाञ्छावचंचुषु ॥ कणमोक्षादृतान्मोहात्पीडयमानानापि क्षुधा ॥ ३८ ॥

जिस प्रकार ज्ञानकी बात कहते हैं यद्यपि मनुष्योंको ऐसा ज्ञान है यह सत्य है, किन्तु केवल जो मनुष्यमात्रही इस प्रकार ज्ञानके अधिकारी हैं, ऐसा नहीं है, क्योंकि पशु, पक्षी और मृगादि भी इसी प्रकार ज्ञानवान् हैं ॥ ३६ ॥ विषयगोचर ज्ञान जिस प्रकार पशु पक्षी इत्यादिका है, मनुष्योंका भी उसी प्रकार है और मनुष्योंका जो विषयगोचर ज्ञान है, पशु पक्षियोंका भी वही है, अतएव इस प्रकार ज्ञान मनुष्य और इतर प्राणियोंका समान है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार ज्ञान होनेपरभी परस्परमें विषयकी कितनी विभिन्नता है, देखो यद्यपि यह पक्षी भूंखसे पीडित हैं किन्तु तोभी अपने बच्चोंकी चोंचमें मोहसे धान्यादिका कण देतेहैं ॥ ३८ ॥

और हे मनुजश्रेष्ठ ! मनुष्य अपने पुत्रोंके प्रति अभिलाषी होकर उनका भरण पोषण करतेहैं मनुष्य केवल प्रत्युपकारके लोभसे ऐसा करते हैं, यह क्या नहीं देखतेहो ? ॥ ३९ ॥ इस प्रकार उपकार आदिकी आशा न होनेपरभी महामायाके संसारस्थितिकारी प्रभावसे संपूर्ण प्राणी वासनारूप भँवरवाले मोहरूपी गढेमें गिरते हैं ॥ ४० ॥ अतएव इस विषयमें आश्चर्य करना उचित नहीं है "महामाया जगत्पति हरिकी योगनिद्रास्वरूप है वही इस जगत्को मोहित करती हैं ॥ ४१ ॥ वह भगवती महामायाही ज्ञानियोंके चित्तको बलपूर्वक खैंचकर मोहमें डालतीहैं ॥ ४२ ॥ उसी देवीने इस चराचर जगत्को उत्पन्न किया है वही प्रसन्न होकर मनुष्योंको मुक्तिप्रद वर देती हैं ॥ ४३ ॥ वही मुक्तिकी उत्कृष्ट हेतुस्वरूप सनातनी ब्रह्मज्ञानस्वरूपा विद्या हैं, वही

मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान्प्रति ॥ लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान्किं न पश्यसि ॥ ३९ ॥ तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्त्ते निपातिताः ॥ महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा ॥४०॥ तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥ महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत् ॥ ४१ ॥ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥ बलदाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥ ४२ ॥ तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ॥ ४३ ॥ सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥ संसारबंधहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥ ४४ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्का हि सा देवी महामायेति यां भवान् ॥ ब्रवीति कथमुत्पन्ना कर्म चास्याश्च किं द्विज ॥४५॥ यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥ ४६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ नित्यैव सा जगन्मूर्त्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ॥ तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ॥ ४७ ॥

संसारबन्धन अर्थात् जन्म और मृत्यु इत्यादिका हेतु हैं वही ईश्वरकी भी ईश्वरी हैं" ॥ ४४ ॥ राजा बोला हे भगवन् ! आपने जिसको महामाया कहा है वह देवी कौन हैं ? हे द्विज ! उनकी उत्पत्तिका वृत्तान्त किस प्रकार है और उनके कर्म किस प्रकार हैं ॥ ४५ ॥ इसके अतिरिक्त उन देवीका स्वभाव और स्वरूप और वह जिससे उत्पन्न हैं, हे ब्रह्मज्ञश्रेष्ठ ! वह मैं सब विषय आपसे सुननेकी इच्छा करताहूं ॥ ४६ ॥ ऋषि बोले-वह जगन्मूर्त्ति नित्य अर्थात् उत्पत्तिविनाशरहित हैं वह संपूर्ण विश्वमें व्याप्त होरहीं हैं, किन्तु तो भी उनके बहुत प्रकार उत्पन्न होनेकी कथा कहताहूं, सुनो ॥ ४७ ॥

देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये वह जब आविर्भूत होती हैं, तब नित्य होनेपरभी लोकमें "उत्पन्न हुई कही जाती हैं" ॥४८॥ और कल्पके अन्तमें जब जगत् जलमय होगया, तब भगवान् विष्णुने अनन्त शय्याका आश्रय कर योगनिद्रा अवलम्बन की ॥ ४९ ॥ उसी समय दो अत्यन्त भयंकर असुर कि, जिनका नाम मधु और कैटभ विख्यात था विष्णुके कानके मलसे उत्पन्न होकर ब्रह्माजीका संहार करनेके लिये उद्यत हुए ॥ ५० ॥ विष्णुके नाभिकमलमें स्थित अति दीप्तिमान् प्रजापति ब्रह्मा उन दोनों भयंकर असुरोंको देख और विष्णुको सोताहुआ देख ॥ ५१ ॥ विष्णुके जगानेको एकाग्र हृदयसे भगवान्के नेत्रोंमें प्राप्त हुई, विष्णुकी निद्रास्वरूप विश्वेश्वरी, जगत्की रचनेवाली स्थिति, संहार करनेवाली और विष्णुके तेजकी अतुल मूर्ति ऐसी निद्रा-

देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ॥ उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ॥ ४८ ॥ योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ॥ आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पांते भगवान्प्रभुः ॥ ४९ ॥ तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ॥ विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हंतुं ब्रह्माणमुद्यतौ ॥ ५० ॥ स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ॥ दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ॥ ५१ ॥ तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ॥ प्रबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ॥ स्तौमि निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलतेजसः ॥ ५३ ॥ त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ॥ सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधामात्रात्मिका स्थिता ॥५४॥ अर्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥ त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥५५॥

भगवतीकी स्तुति करने लगे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे ब्रह्मस्वरूपे ! हे नित्ये ! तुम देवताओंके हवि देनेके मंत्र स्वाहास्वरूप हो, तुम्ही पितरोंके श्राद्धादिमें स्वधारूप हो, तुमही वषट्कार इन्द्रके हविर्दान मंत्रकी स्वरस्वरूप हो, हे देवि ! तुमही सुधास्वरूप हो और तुमही अक्षरोंमें ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत रूप तीन मात्रास्वरूप हो ॥ ५४ ॥ जिस अर्द्ध मात्राका उच्चारण विशेष रूपसे नहीं होता तुमही उस अर्द्धमात्रारूपमें स्थित हो हे देवि ! तुमही वह प्रसिद्ध गायत्रीस्वरूप हो । हे देवि ! तुमही वह सर्वोत्कृष्ट जगज्जननी प्रकृति स्वरूप हो ॥ ५५ ॥

हे देवि ! तुमही इस जगत्को उत्पन्न करतीहो, तुमही इसको धारण करतीहो, तुमही इसको पालन करतीहो और प्रलयकालमें तुमही इस जगत्को सदा ग्रास करतीहो ॥ ५६ ॥ तुमही सर्गकालमें सृष्टिरूप, पालनमें स्थितिरूप और हे जगन्मयि ! इस जगत्के विनाशकालमें तुमही संहाररूप हो ॥ ५७ ॥ हे देवि ! तुमही महाविद्या, तुमही महामेधा, तुमही महामाया और तुमही महास्मृति हो हे देवि ! तुमही महामोहा, महादेवी और महासुरी हो ॥ ५८ ॥ हे देवि ! तुमही सत्, रज, तमोगुणस्वरूपमें समस्त चराचरकी प्रकृति हो । तुमही कालरात्रि अर्थात् भयंकर यमस्वरूप हो । तुमही महारात्रि अर्थात् वस्तुमात्रकी आवरक तमोमय प्रलयस्वरूप हो । तुमही भयंकर मोहरात्रि अर्थात् जगत्की मोहजनक संसारस्वरूप हो ॥ ५९ ॥ हे देवि ! तुमही श्री

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ॥ त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यंते च सर्वदा ॥ ५६ ॥ विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ॥ तथा संहृतिरूपांते जगतोऽस्य जगन्मये ॥ ५७ ॥ महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ॥ महामोहा भगवती महादेवी महेश्वरी ॥ ५८ ॥ प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ॥ कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥ ५९ ॥ त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ॥ लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षांतिरेव च ॥ ६० ॥ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ॥ शंखिनी चापिनी बाणा भुशुंडी परिघायुधा ॥ ६१ ॥ सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुंदरी ॥ परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥ ६२ ॥ यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाऽखिलात्मके ॥ तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे मया ॥ ६३ ॥

अर्थात् लक्ष्मीबीज हो, तुमही ईश्वरी, तुमही लज्जा, तुमही बुद्धि और तुमही दिव्यज्ञानकी एक मात्र लक्ष्य हो । तुमही लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षान्तिस्वरूप हो ॥ ६० ॥ तुमही खड्गिनी (खड्गधारिणी) शूलिनी (शूलधारिणी) तथा भयंकर स्वरूपा हो । तुमही गदिनी, चक्रिणी, शंखिनी और चापिनी अर्थात् धनुषधारिणी हो । हे देवि ! बाण भुशुंडी और परिघभी तुम्हारे अस्त्र हैं ॥ ६१ ॥ हे देवि ! तुमही सौम्या और सौम्यतरा हो, अधिक क्या जगत्में जितने सुन्दर पदार्थ हैं तुम उन सबकी अपेक्षा सुन्दरी हो । हे देवि ! तुम श्रेष्ठ, श्रेष्ठसेभी श्रेष्ठतर और तुमही श्रेष्ठतरोंकी भी ईश्वरी हो ॥ ६२ ॥ हे अखिलात्मिके ! जो कुछ सत् और असत् वस्तु है, उनकी जो शक्ति है, तुमही वह शक्तिस्वरूप हो, अत एव तुम्हारी किस प्रकारसे

स्तुति करूं ? ॥ ६३ ॥ हे देवि ! जगत्की सृष्टि, स्थिति, प्रलय कर्त्ता उन भगवान् विष्णुको ही जब तुमने निद्राभिभूत कर रक्खा है, तब और कौन तुम्हारी स्तुति करनेमें समर्थ होगा ? ॥ ६४ ॥ हे देवि ! विष्णु, ईशान और मुझको जब तुमनेही शरीर ग्रहण कराया है, तब दूसरा कौन पुरुष तुम्हारी स्तुति करनेमें समर्थ होगा ? ॥ ६५ ॥ हे देवि ! वह तुम इस प्रकार स्वकीय उदार प्रभाववर्णनद्वारा संतुष्ट होकर इन दुराधर्ष मधु और कैटभ नामक दोनों असुरोंको मोहित करो ॥ ६६ ॥ और जगत्के स्वामी विष्णुभगवान्को शीघ्र जगाओ तथा इन महाअसुरोंको मारनेके लिये ज्ञान प्रदान करो ॥ ६७ ॥ ऋषि बोले जब ब्रह्माजीने उन दोनों असुरोंके विनाशार्थ विष्णुको जगानेके लिये इस प्रकारसे उन तमोगुणमयी निद्रारूपा देवीकी स्तुति करी ॥ ६८ ॥

यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ॥ सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥ ६४ ॥ विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ॥ कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान्भवेत् ॥ ६५ ॥ सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ॥ मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥ ६६ ॥ प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ॥ बोधश्च क्रियतामस्य हंतुमेतौ महासुरौ ॥ ६७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥ विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहंतुं मधुकैटभौ ॥ ६८ ॥ नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥ निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणा व्यक्तजन्मनः ॥ ६९ ॥ उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ॥ एकार्णवे हि शयनात्ततः स ददृशे च तौ ॥ ७० ॥ मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ॥ क्रोधरक्तेक्षणौ हंतुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ॥ ७१ ॥ समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान्हरिः ॥ पंचवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ॥ ७२ ॥

तब अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके देखते हुए भगवान् विष्णुके नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्षःस्थलसे निकलकर देवी स्थित हुई ॥ ६९ ॥ अनन्तर निद्रारूपा देवीके छोडदेने पर भगवान् विष्णुने एकार्णवस्थित अनन्तशय्यासे उठकर देखा ॥ ७० ॥ कि, वह दुरात्मा अत्यन्त वीर्य पराक्रमशाली क्रोधसे लाल लाल नेत्र किये मधु और कैटभ नामक दोनों असुर ब्रह्माजीके विनाशमें उद्यत हुए हैं ॥ ७१ ॥ उठनेके पीछे भगवान् विभु हरिने उन दोनों असुरोंके संग पांच हजार वर्षतक बाहुयुद्ध किया ॥ ७२ ॥

फिर उन अति बलोन्मत्त दोनों असुरोंने महामायाके द्वारा मोहित होकर केशवसे कहा "तुम हमसे वर ग्रहण करो" ॥ ७३ ॥ भगवान् बोले–तुम यदि मेरे ऊपर संतुष्ट हुए हो, तो दोनों मेरे वध्य होओ अर्थात् मेरे हाथसे मारे जाओ, मेरा यही वर है, दूसरे वरसे कोई प्रयोजन नहीं है ॥ ७४ ॥ ऋषि बोले–जब भगवान्‌ने इस प्रकार दोनोंको छला, तब उन दोनों असुरोंने संपूर्ण जगत्‌को जलमय देखकर भगवान् पुण्डरीकाक्षसे कहा ॥ ७५ ॥ हे केशव ! तुम्हारे संग युद्धमें हम प्रसन्न हुए हैं, अतएव तुम्हारे हाथसे हमारी मृत्यु श्लाघनीय है किन्तु जो स्थान जलमें डूबाहुआ न हो हमको उसी

तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥ उक्तवंतौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥ ७३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥ किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मया ॥ ७४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ वंचिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् ॥ विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान्कमलेक्षणः ॥ ७५ ॥ प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः ॥ आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥ ७६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ तथेत्युक्त्वा भगवता शंखचक्रगदाभृता ॥ कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥ ७७ ॥ एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ॥ प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ॥ ७८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वंतरे देवीमाहात्म्ये मधुकैटभवधो नाम अष्टसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७८ ॥ ऋषिरुवाच ॥ देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा ॥ महिषे सुराणामधिपे देवानां च पुरंदरे ॥ १ ॥

स्थानमें वध करो ॥ ७६ ॥ ऋषि बोले–"यही हो" यह कहकर भगवान्‌ने शंख, चक्र, गदा, धारणपूर्वक अपनी जंघापर रख चक्रसे उन दोनों असुरोंका मस्तक काटडाला ॥ ७७ ॥ स्वयं ब्रह्माजीके स्तवन करनेपर यह महामाया देवी इस प्रकारसे उत्पन्न हुईथी अब तुमसे इन देवीके प्रभावका वर्णन करताहूं सुनो ॥ ७८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां मधुकैटभवधो नाम अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ऋषि बोले–पूर्वकालमें जब पुरन्दर (इन्द्र) देवताओंके अधिपति और महिष नामक असुर असुरोंका स्वामी था, उस समय एक सौ वर्षपर्यन्त देवता और असुरोंका परस्पर युद्ध हुआ ॥ १ ॥

उस युद्धमें महावीर्यवान् असुरोंने देवतोंकी सेनाको पराजित किया और सब देवतोंको जीतकर फिर महिषासुर आप इन्द्र बन बैठा ॥ २ ॥ इसके पीछे पराजित देवता पद्मयोनि प्रजापति ब्रह्माजीको आगे करके जहां महादेव और विष्णु थे, उस स्थानमें गये ॥ ३ ॥ देवताओंने शिवजी और भगवान्‌के सन्मुख जो कुछ वृत्तान्त हुआथा और जैसी कुछ महिषासुरने चेष्टा की थी, तथा जिस भांति देवता पराजित हुए थे, वह सब विस्तारसहित कह सुनाया ॥ ४ ॥ कि, वह महिषासुर स्वयंही सूर्य, इन्द्र, अग्नि, पवन, चन्द्रमा, यम, वरुण और अन्यान्य देवताओंके अधिकारमें अधिष्ठान करता है ॥ ५ ॥ उस दुरात्मा महिषके द्वारा स्वर्गसे निकाले जाकर देवता मर्त्यलोकके मनुष्योंकी समान पृथ्वीमें विचरण करते हैं ॥ ६ ॥ आपके निकट उन असुरोंका सब पराक्रम

तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम् ॥ जित्वा च सकलान्देवानिंद्रोऽभून्महिषासुरः ॥ २ ॥ ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् ॥ पुरुस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ॥ ३ ॥ यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ॥ त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥ ४ ॥ सूर्येंद्राग्न्यनिलेंदूनां यमस्य वरुणस्य च ॥ अन्येषां चाधिकारान्स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ५ ॥ स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि ॥ विचरंति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥ ६ ॥ एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम् ॥ शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिंत्यताम् ॥ ७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः ॥ चकार कोपं शंभुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥ ८ ॥ ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः ॥ निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शंकरस्य च ॥ ९ ॥ अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः ॥ निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥ १० ॥

कहा गया । हम आपकी शरणमें आयेहैं. अब आप असुरके मारनेका उपाय विचारिये ॥ ७ ॥ ऋषि बोले—देवताओंके इस प्रकार वचन सुनकर विष्णु और महादेवजी अत्यन्त क्रोधित हुए और क्रोधसे उनका मुख तथा भ्रुकुटी कुटिल होगई ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त अत्यन्त कोपमें पूर्ण विष्णु, महादेव और ब्रह्माजीके मुखसे एक बडा तेज निकला ॥ ९ ॥ और इन्द्रादि अन्यान्य देवताओंके शरीरसेभी इसी प्रकार तेज निकला । फिर वह निकलाहुआ संपूर्ण तेज एकत्र मिलित हुआ ॥ १० ॥

अनन्तर उन देवताओंने उस अधिक तेजके पुंजको कि, जिसकी ज्वाला समस्त दिशाओंमें फैलगई थी, पर्वतके समान जलतेहुए देखा ॥ ११ ॥ इसके पीछे देवताओंको देहसे उत्पन्न हुआ और इकट्ठा हुआ तथा अपनी कान्तिसे तीनों लोकको प्रकाशित करनेवाला वह तेज एक स्त्रीरूप होगया ॥ १२ ॥ महादेवजीके मुखसे जो तेज निकलाथा उसके द्वारा उस स्त्रीका मुख बना। यमके तेजसे केश और विष्णुके तेजसे दोनों उसकी बाहु बनीं ॥ १३ ॥ चन्द्रमाके तेजसे दोनों स्तन, इन्द्रके तेजसे मध्यप्रदेश, वरुणके तेजसे जंघा और ऊरू, पृथ्वीके तेजसे नितम्ब ॥ १४ ॥ ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण, सूर्यके तेजसे पैरोंकी अंगुली और वसुगणोंके तेजसे उसके हाथोंकी अंगुली बनीं। कुबेरके तेजसे नासिका ॥ १५ ॥ प्रजापतिके तेजसे उसके दांत, पावकके

अतीव तेजसः कूटं ज्वलंतमिव पर्वतम् ॥ ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगंतरम् ॥ ११ ॥ अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ॥ एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥ १२ ॥ यदभूच्छांभवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् ॥ याम्येन चाभवन्केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥ १३ ॥ सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यमैंद्रेण चाभवत् ॥ वारुणेन च जंघोरू नितंबस्तेजसा भुवः ॥ १४ ॥ ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदंगुल्योऽर्कतेजसा ॥ वसूनां च करांगुल्यः कौबेरेण च नासिका ॥ १५ ॥ तस्यास्तु दंताः संभूताः प्राजापत्येन तेजसा ॥ नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा ॥ १६ ॥ भ्रुवौ च संध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च ॥ अन्येषां चैव देवानां संभवस्तेजसां शिवा ॥ १७ ॥ ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् ॥ तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ॥ १८ ॥ ततो देवा ददुस्तस्यै स्वानि स्वान्यायुधानि च ॥ ऊचुर्जय जयेत्युच्चैर्जयंतीं ते जयैषिणः ॥ १९ ॥

तेजसे तीनों नेत्र ॥ १६ ॥ दोनों संध्याओंके तेजसे भ्रुकुटि और वायुके तेजसे उसके दोनों कान बने और अन्यान्य विश्वकर्मादि देवताओंके तेजसे भी वह मंगलमयी देवी उत्पन्न हुई ॥ १७ ॥ तदनन्तर सब देवताओंके तेजसमूहसे उत्पन्न हुई उन देवीजीको देखकर महिषासुरके द्वारा पीडित हुए देवता अतिशय हर्षको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ तब देवताओंने उनके निमित्त अपने २ आयुध दिये और वह जयकी इच्छा करनेवाले जयन्तीके प्रति जय २ शब्द उच्चारण करने लगे ॥ १९ ॥

अनन्तर महादेवजीने अपने शूलसे शूल उत्पन्न करके उनको दिया। नारायणने अपने चक्रसे चक्र उत्पन्न करके उनको दिया ॥ २० ॥ वरुणने उनको शंख दिया, हुताशनने शक्ति दी, और वायुने उनको धनुष और बाणोंसे पूर्ण तरकस दिया ॥ २१ ॥ अमरेश्वर सहस्राक्ष इन्द्रने अपने वज्रसे वज्र उत्पन्न करके उनको दिया और ऐरावत हाथीसे घंटा खोलकर दिया ॥ २२ ॥ यमने कालदण्डसे दंड उत्पन्न करके उनको दिया, वरुणने उनको पाश दिया, दक्ष-प्रजापतिने उनको अक्षमाला दी, ब्रह्माजीने उनको कमण्डलू दिया ॥ २३॥ दिवाकर सूर्यने उन महादेवीके संपूर्ण रोमरोमकूपमें अपनी किरणें प्रदान कीं। कालने उनको निर्मल खड्ग और चर्म (ढाल) प्रदान किया ॥ २४ ॥ क्षीरोदक समुद्रने उनको निर्मल मोतियोंका हार, दो उज्ज्वल वस्त्र, सुन्दर चूडामणि,

शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकभृत् ॥ चक्रं च दत्तवान्कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः ॥ २० ॥ शंखं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः ॥ मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥ २१ ॥ वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः ॥ ददौ तस्यै सहस्राक्षो घंटामैरावताद्गजात् ॥ २२ ॥ कालदंडाद्यमो दंडं पाशं चांबुपतिर्ददौ ॥ प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमंडलुम् ॥ २३ ॥ समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन्दिवाकरः ॥ कालश्च दत्तवान्खड्गं तस्यै चर्म च निर्मलम् ॥ २४ ॥ क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथांबरे ॥ चूडामणिं तथा दिव्यं कुंडले कटकानि च ॥ २५ ॥ अर्द्धचंद्रं तथा शुभ्रं केयूरान्सर्वबाहुषु ॥ नूपुरौ विमलौ तद्वद्ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥ अंगुलीयकरत्नानि समस्तास्वंगुलीषु च ॥ २६ ॥ विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् ॥ अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाऽभेद्यं च दंशनम् ॥ २७ ॥ अम्लानपंकजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥ अददाज्जलधिस्तस्यै पंकजं चातिशोभनम् ॥ २८ ॥

दिव्य कुण्डल और कंगन दिये ॥ २५ ॥ इसके अतिरिक्त अर्द्धचंद्र (स्वेतवैना) सब भुजाओंमें बाजूबंद अत्यन्त सुन्दर पाजेब और एक अनुपम कंठका आभूषण तथा संपूर्ण अंगुलियोंमें सुन्दर अँगूठियां दीं ॥ २६ ॥ अत्यन्त निर्मल परशु अनेक प्रकारके अस्त्र और जो किसीसे न कटसके ऐसा कवच विश्वकर्माजीने उनको दिया ॥ २७ ॥ और समुद्रने नवीन खिले हुए कमलपुष्पोंकी माला कंठके लिये, और शिर पर धारण करनेके लिये और दूसरी शोभायमान माला दी ॥ २८ ॥

हिमालयने उनको वाहन सिंह और अनेक रत्न दिये । कुबेरने उनको सुरापूर्ण पानपात्र दिया ॥ २९ ॥ जो इस पृथ्वीको धारण कर रहे हैं, उन सर्व नागेश अनन्तने उन देवीको महामणिसे विभूषित नागहार दिया ॥ ३० ॥ अन्यान्य देवताओंने भी उनको अनेक प्रकारके अलंकार और शस्त्र दिये । इस भाँति उनके द्वारा सन्मानित होकर देवी अट्टहासके सहित वारम्वार गर्जना करने लगी ॥ ३१ ॥ उनके उस घोर गर्जनसे संपूर्ण आकाशमण्डल भरगया और फिर आकाशसे एक असंभव और बडा भारी प्रतिशब्द हुआ ॥ ३२ ॥ उससे संपूर्ण लोक क्षुब्ध हुए अर्थात् डिगमिगागये सब समुद्र काँपगये पृथ्वी हिल-नेलगी और संपूर्ण पर्वतभी चलायमान होगये ॥ ३३ ॥ तब देवता उन सिंहवाहिनी भगवतीके सामने प्रसन्नतासे जय जय शब्द कर उठे । मुनिगण भक्ति-

हिमवान्वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥ ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ॥ २९ ॥ शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ॥ नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ॥३०॥ अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥ संमानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ॥३१॥ तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ॥ अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् ॥३२॥ चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकंपिरे ॥ चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः ॥ ३३ ॥ जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥ तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममू-र्त्तयः ॥३४॥ दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ॥ सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ॥ ३५ ॥ आः किमेतदिति क्रोधादा-भाष्य महिषासुरः ॥ अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ॥ ३६ ॥ स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ॥ पादाक्रांत्यानतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् ॥ ३७ ॥

नम्रशरीर होकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३४ ॥ संपूर्ण त्रैलोक्यको इस प्रकार संचालित हुआ देखकर असुरगण सब सेनाको सजाय हाथोंमें अस्त्र शस्त्र लेकर उठ खडे हुए ॥ ३५ ॥ " आः ! यह क्या होता है ! " क्रोधसे इस प्रकार कह संपूर्ण असुरोंको साथ लिये महिषासुर उस शब्दकी ओर दौडा ॥ ३६ ॥ दौडकर उस महिषासुरने देखा कि, वह देवी अपनी प्रभासे तीनों लोकको व्याप्त करके स्थित हैं । और जो अपने चरणके आक्रमणसे पृथ्वीको दबारही हैं, मुकुटसे आकाशको छूरही हैं ॥ ३७ ॥

धनुषकी प्रत्यंचाकी टंकारसे संपूर्ण पाताल कंपायमान होरहा है, और देवी हजार भुजाओंसे समस्त दिशाओंको आच्छादन करके स्थिति करतीहैं ॥ ३८॥ इसके पीछे उन देवीके संग असुरोंका युद्ध आरंभ हुआ, उस युद्धमें छूटेहुए बहुत प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे आकाश प्रकाशित होगया ॥ ३९ ॥ महिषासुरका चिक्षुर नामक सेनापति महासुर युद्ध करनेलगा। चतुरांगिनी सेनासे युक्त चामर नामक असुर अनुगामी सेनाके सहित मिलकर युद्ध करनेलगा ॥ ४० ॥ छः अयुत अर्थात् साठ हजार रथ लेकर उदग्र नामक महाअसुर युद्ध करने लगा। महाहनुनामक असुर हजार अयुत अर्थात् एक करोड रथ लेजाकर लड-नेलगा ॥ ४१ ॥ असिलोम नामक महा असुर पांच करोड रथ सेनासे साथ लेकर युद्ध करनेलगा। बाष्कलनामक महाअसुर साठ हजार रथ लेकर युद्ध

क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम् ॥ दिशो भुजसहस्रेण समंताद्व्याप्य संस्थिताम् ॥३८॥ ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्वि-षाम् ॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगंतरम् ॥३९॥ महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः॥ युयुधे चामरश्चान्यश्चतुरंगबलान्वितः ॥४०॥ रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः ॥ अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः ॥ ४१ ॥ पंचाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥ अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे ॥४२॥ गजवाजिसहस्रौघैरनेकैरुग्रदर्शनः ॥ वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ॥४३॥ बिडालाख्यो महादैत्यः पंचाशद्भिरथायुतैः ॥ युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः ॥ ४४ ॥ वृतः कालो रथानां च रणे पंचाशतायुतैः ॥ युयुधे संयुगे तत्र तावद्भिः परिवारितः ॥ ४५ ॥ अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः ॥ युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः ॥४६॥ कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दंतिनां तथा ॥ हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः ॥ ४७ ॥

करनेलगा ॥ ४२॥ और अनेक हजार हाथी घोडोंसे युक्त होकर परिवारित नामक महाअसुर उस युद्धक्षेत्रमें करोड रथोंके सहित मिलित होकर युद्ध कर-नेलगा ॥ ४३ ॥ बिडाल नामक महाअसुर पांच लाख रथोंको लेकर उस रणस्थलमें युद्ध करनेलगा ॥ ४४ ॥ और इतनेही रथोंको लेकर महासेनाके साथ कालनामक दैत्य युद्ध करनेलगा ॥ ४५ ॥ और अन्यान्य अनेक महासुर उस रणस्थलमें अयुत अयुत रथ हाथी और घोडोंसे वेष्टित होकर उन देवीके संग युद्ध करनेलगे ॥ ४६ ॥ करोड करोड हजार रथ हाथी और घोडोंसे वेष्टित होकर महिषासुर उस युद्धमें गया ॥ ४७ ॥

तब असुरगण तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मुसल, खड्ग, फरसा और पट्टिश द्वारा देवीके संग युद्ध करने लगे ॥ ४८ ॥ किसीने शक्ति चलाई, किसीने पाश और कोई खड्ग प्रहारसे उन देवीको हनन करनेमें उद्यत हुआ ॥ ४९ ॥ फिर उन देवीने अपने अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करके उनके अस्त्रशस्त्र लीलापूर्वकही काटडाले ॥५०॥ उस काल प्रसन्नवदना देवीका देवता और ऋषिगण स्तव करने लगे । अनन्तर देवी असुरोंके देहमें अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करनेलगी ॥ ५१ ॥ देवीका वह वाहन केसरी भी केसर कंपित करके वनमें अग्निके समान उस असुरसैन्यमें विचरण करने लगा ॥ ५२ ॥ युद्ध करते करते देवीने जो निःश्वास

तोमरैर्भिंदिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥ युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥ ४८ ॥ केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे ॥ देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हंतुं प्रचक्रमुः ॥ ४९ ॥ सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चंडिका ॥ लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ॥ ५० ॥ अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ॥ मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ॥ ५१ ॥ सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेसरी ॥ चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ॥ ५२ ॥ निश्वासान्मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ॥ त एव सद्यः संभूता गणाः शतसहस्रशः ॥५३ ॥ युयुधुस्ते परशुभिर्भिंदिपालासिपट्टिशैः ॥ नाशयंतोऽसुरगणान्देवीशक्त्युपबृंहिताः ॥ ५४ ॥ अवादयंत पटहान्गणाः शंखांस्तथापरे ॥ मृदंगांश्च तथैवान्ये तस्मिन्युद्धमहोत्सवे ॥५५॥ ततो देवी त्रिशूलेन गदया शरवृष्टिभिः ॥ खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् ॥ ५६ ॥ पातयामास चैवान्यान्घंटास्वनविमोहितान् ॥ असुरान्भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् ॥ ५७ ॥

छोडे, उसके द्वारा शत सहस्रगण तत्काल उत्पन्न होकर असुरोंसे युद्ध करने लगे ॥ ५३ ॥ देवीके प्रभावसे वर्द्धित होकर वह गण फरशा, भिन्दिपाल, असि और पट्टिशके द्वारा असुरोंको हनन करने लगे ॥ ५४ ॥ किसी किसी गणने उस युद्धमहोत्सवमें शंखनाद किया कोई कोई ढोल कोई कोई मृदंग बजाने लगा ॥ ५५ ॥ अनन्तर देवीने त्रिशूल, गदा, शर, वृष्टि और खड्गादि द्वारा शत शत महा असुरोंका विनाश किया ॥ ५६ ॥ किसीको घंटेके शब्दसे मोहित करके मार डाला और अन्य असुरोंको पाशद्वारा बांधकर पृथ्वीमें खैंचा ॥ ५७ ॥

किसी किसीको अपने खड्गकी तीक्ष्ण धारसे दो खंड कर दिया और किसी किसीको गदाके प्रहारसे ऐसा मारा कि, वह पृथ्वीमें लोट गया ॥ ५८ ॥ कोई कोई मुसलके द्वारा ताडित होकर अतिशय रुधिरको वमन करने लगा और कितनेही छातीमें त्रिशूलद्वारा विदारित होकर पृथ्वीमें गिरपडे ॥ ५९ ॥ कोई कोई युद्धभूमिमें देवीके बाणसमूहसे निरन्तर अर्थात् मध्यदेशहीन हुए। असुरोंकी सेनाके साथवाले देवशत्रुगण इस प्रकार प्राणत्याग करनेलगे ॥ ६० ॥ किसी किसी असुरकी भुजायें कट गईं, किसी किसीकी ग्रीवा छिन्न होगई, अन्यान्य अनेक असुरोंके मस्तक कटगये, कोई कोई बीचमेंसे कटगया ॥ ६१ ॥ किसी महाअसुरकी जंघा कटकर पृथ्वीमें गिरपडी। देवीने किसी किसीकी एक एक बाहु, अक्षि (आंख) और चरण विनष्ट करडाला, किसीका मध्यदेश

केचिद्द्विधाकृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ॥ विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ॥५८॥ वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥ केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ॥५९॥ निरंतरशरौघेण कृत्ताः केचिद्रणाजिरे ॥ शैलानुकारिणः प्राणान्मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ॥६०॥ केषांचिद्बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥ शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ॥६१ ॥ विच्छिन्नजंघास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ॥ एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधाकृताः ॥ ६२ ॥ छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ॥ कबंधा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः ॥ ६३ ॥ ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥ कबंधाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः ॥ ६४ ॥ तिष्ठ तिष्ठेति भाषंतो देवीमन्ये महासुराः ॥ रुधिरौघविलुप्तांगाः संग्रामे लोमहर्षणे ॥ ६५ ॥

दो टुकडे कर दिया ॥ ६२ ॥ कोई २ मस्तक कटनेसे पृथ्वीमें गिरकर फिर उठे, कोई कबन्ध उत्कृष्ट ग्रहण करके देवीके संग युद्ध करनेलगे ॥ ६३ ॥ कितनेही कबंध बाजेकी लयके अनुसार नाचने लगे और उस युद्धमें कितनेही बडे बडे असुर कि, जिनके मस्तक कटगयेथे, और कबंध रहगयेथे, वह हाथोंमें खड्ग, शक्ति और दोनों ओर धारवाली तलवार लेकर ॥ ६४ ॥ देवीसे 'ठहरो ठहरो' इस प्रकार कहने लगे। जिस स्थानमें यह लोमहर्षण महासंग्राम हुआ, वह स्थान उन गिरे हुए रथ, हाथी, घोडे और असुरोंके द्वारा अगम्य होगया अर्थात् ऐसा होगया कि, जिसमें कोई जा न सके ॥६५॥

१ "नागानामयुतं तुरंगानियुतं सांगं रथानां शतम्। पत्तीनां दशकोट्यो निपतिता एकः कबन्धो रणे।" अर्थात् अयुत (१००००) हाथी, नियुत (१०००००) घोडे, डेढ सौ रथ और दश करोड पैदलोंके निहत होनेपर युद्धमें एक कबन्ध उठता है।

॥ ६६ ॥ और वहां शीघ्रही उस रणके मध्यमें असुरोंकी सेनाके हाथी, घोडे असुर और इनके रुधिरसमूहसे बडी नदियां वहने लगीं ॥ ६७ ॥ अग्नि जिस प्रकार तृण काष्ठके समूहको क्षणभरमें भस्म करती है, ऐसेही अम्बिका देवीने उन असुरोंके महा-सैन्यको क्षणमात्रमें क्षय किया ॥ ६८ ॥ देवीका वाहन सिंहभी बडा नाद करता हुआ अपने सटाके वालोंको कँपाताहुआ अत्यन्त क्रोधसे सब असुरोंके प्राण हरण करने लगा ॥ ६९ ॥ और असुरोंके शरीरोंमेंसे मानो प्राणोंहीको ढूँढने लगा। और देवीके सब गणोंनेभी उन महा असुरोंके संग ऐसा संग्राम किया कि, जिससे स्वर्गवासी देवता अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उनके

पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुंधरा ॥ अगम्या साऽभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः ॥ ६६ ॥ शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र विसुस्रुवुः ॥ मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥ ६७ ॥ क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथांबिका ॥ निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥ ६८ ॥ स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसरः ॥ शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥ ६९ ॥ देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः ॥ यथैनां तुष्टुवुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ ७० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः ॥ सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथांबिकाम् ॥ १ ॥ स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः ॥ यथा मेरुगिरेः शृंगं तोयवर्षेण तोयदः ॥ २ ॥ तस्य च्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान् ॥ जघान तुरगान्बाणैर्यंतारं चैव वाजिनाम् ॥ ३ ॥

ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्ये एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ उस सब सेनाको निहत हुआ देखकर सेनापति महासुर चिक्षुर युद्ध करनेके लिये क्रोधसे अम्बिकाके निकट आया ॥ १ ॥ जलधर जिस प्रकार सुमेरु पर्वतके शृंगमें जलकी वर्षा करते हैं, वह असुर भी इसी प्रकार देवीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २ ॥ फिर देवीने लीलापूर्वकही उसके बाणोंको छेदन करके, रथके घोडे और सारथीको बाणोंसे मार डाला ॥ ३ ॥

देवीने उसी समय फिर उसका धनुष और अत्यन्त ऊंची ध्वजा काटकर उस टूटेहुए धनुषवाले चिक्षुरका शरीर मारे बाणोंके वींध डाला ॥ ४ ॥ फिर जब उसका धनुष कट गया, रथ टूट गया, तथा घोडे और सारथी मरगये । तब वह असुर अपनी ढाल तलवार लेकर देवीकी ओर धावमान हुआ ॥५॥ और अत्यन्त वेगसे अपनी पैनी धारवाली तलवारके द्वारा सिंहके मस्तकमें आघात करके देवीकेभी बांये हाथमें आघात किया ॥ ६ ॥ हे नृपनन्दन ! उस असुरकी वह तलवार देवीके हाथका स्पर्श होतेही टूट गई । फिर क्रोधसहित लाल लाल नेत्र किये उस महाअसुरने शूल ग्रहण करके ॥ ७ ॥ उसने उसे भद्रकालीपर फेंका । तब देवीने उस त्रिशूलको तेजसे जाज्वल्यमान और आकाशसे गिरतेहुए दूसरे सूर्यमण्डलकी ॥ ८ ॥ समान देखकर अपना

चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम्॥ विव्याध चैनं गात्रेषु च्छिन्नधन्वानमाशुगः॥४॥ स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः॥ अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥५॥ सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि ॥ आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥ ६ ॥ तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनंदन ॥ ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥७॥ चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः ॥ जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिंबमिवांबरात् ॥ ८ ॥ दृष्ट्वा तदा पतच्छूलं देवीशूलममुंचत ॥ तेन तच्छतधा नीतं शूलं स च महासुरः ॥९॥ हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ ॥ आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥ १० ॥ सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम् ॥ हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥११॥ भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः ॥ चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥ १२ ॥

शूल चलाया । उस देवीके चलाये शूलने असुरके चलायेहुए शूलके शतखंड करके महाअसुर चिक्षुरके भी शत खंड करडाले ॥९॥ माहिषासुरका सेनापति वह महावीर्यवान् चिक्षुर नामक असुर जब मारा गया, तब देवताओंका शत्रु चामर नामक असुर हाथीपर चढकर युद्धार्थ देवीके सन्मुख आया ॥ १०॥ फिर उस महाअसुरने देवीको लक्ष्य करके शक्ति छोडी किंतु वह शक्ति देवीके हुंकार शब्दसे अभिहत और प्रभाहीन होकर पृथ्वीमें गिरगई ॥ ११ ॥ अपनी शक्तिको टूटकर गिरताहुआ देखकर चामर असुरने क्रोधपूर्वक शूल चलाया पर देवीने अपने बाणोंसे उस शूलकोभी छेदन किया ॥ १२ ॥

अनन्तर देवीका वाहन सिंह उछलकर गजके मस्तकपर चढगया और हाथीकी पीठपर बैठेहुए उस देवशत्रु असुरसे बाहुयुद्ध करने लगा ॥ १३ ॥ सिंह और चामरासुर दोनों युद्ध करते करते उस हाथीकी पीठसे नीचे गिरे और परस्पर अत्यन्त क्रोधित होकर दारुण प्रहारोंके द्वारा युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ अनन्तर कुछ कालोपरान्तही सिंहने आकाशमें उछल और फिर वहाँसे पृथ्वीमें गिरकर अपने पंजोंके प्रहारद्वारा चामर असुरके मस्तकको देहसे पृथक् करदिया ॥ १५ ॥ देवीने उदग्रनामक असुरको पत्थर और वृक्षोंकी वृष्टि करके मारडाला। दांत और घूंसोंके प्रहारसे कराल नामक असुरको विनाश किया ॥ १६ ॥ क्रोधमें भरीहुई देवीने गदापातद्वारा उद्धत नामक असुरको चूर्ण करडाला। फिर बाष्कल नामक असुरको भिंदिपालसे तथा ताम्र और

ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुंभांतरे स्थितः ॥ बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥ १३ ॥ युध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ ॥ युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥ १४ ॥ ततो वेगात्खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा ॥ करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥ १५ ॥ उदग्रश्चरणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः ॥ दंतमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥ १६ ॥ देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ॥ बाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथांधकम् ॥ १७ ॥ उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् ॥ त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥ १८ ॥ बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः ॥ दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ कालं च कालदंडेन कालरात्रिरपातयत् ॥ १९ ॥ "उग्रदर्शनमत्युग्रैः खड्गपातैरताडयत् ॥ असिनैवासिलोमानमच्छिदत्सा रणोत्सवे ॥ गणैः सिंहेन देव्या च जयक्ष्वेडा कृतोत्सवैः" ॥ २० ॥

अन्धक नामक दोनों असुरोंको बाणोंसे विनाश किया ॥ १७ ॥ त्रिनेत्रा परमेश्वरी देवीने त्रिशूलसे उग्रास्य, उग्रवीर्य और महाहनुनामक तीन असुरोंको संहार किया ॥ १८ ॥ असिद्वारा बिडालनामक असुरका मस्तक देहसे काटकर गिरा दिया। दुर्द्धर और दुर्मुख नामक दोनों असुरोंको बाणोंके द्वारा यमालयमें भेज दिया। और कालरात्रिने काल असुरको कालदण्डसे नष्ट कर गिरादिया ॥ १९ ॥ और उग्रदर्शनको बडे उग्र खड्गपातसे ताडन किया, और असिलोमाको असिद्वारा युद्धस्थलमें नष्ट करदिया, और गणोंने तथा सिंहने जयपूर्वक सिंहनाद किया ॥ २० ॥

इस प्रकारसे अपनी सेनाको क्षय होताहुआ देख महिषासुर अपना महिषरूप धारण कर देवीके उन गणोंको भय दिखाने लगा ॥ २१ ॥ किसीको मुखके प्रहारद्वारा किसीको खुरके प्रहारद्वारा किसीको पूंछके प्रहारद्वारा और किसी किसीको सींगोंसे विदारण करनेलगा ॥ २२ ॥ किसीको वेगद्वारा, किसीको गर्जनाद्वारा, किसीको भ्रमणद्वारा और किसी किसीको श्वासकी पवनसे मारकर भूमिमें गिरादिया ॥ २३ ॥ इस प्रकार प्रमथसैन्य अर्थात् देवीके गणोंको गिराकर वह असुर महादेवीके सिंहको मारनेकी इच्छासे दौडा, तब अम्बिका कुपित हुई ॥ २४ ॥ महावीर्यवान् महिषासुरभी अत्यन्त क्रोधित हो खुरोंसे

एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः ॥ माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान्गणान् ॥२१॥ कांश्चित्तुंडप्रहारेण क्षुरक्षेपैस्तथापरान् ॥ लांगूलताडितांश्चान्याञ्छृंगाभ्यां च विदारितान् ॥२२॥ वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च ॥ निश्वासपवनेनान्यान्पातयामास भूतले ॥२३॥ निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः ॥ सिंहं हंतुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽबिका ॥ २४ ॥ सोऽपि कोपान्महावीर्यः क्षुरक्षुण्णमहीतलः ॥ शृंगाभ्यां पर्वतानुच्चैश्चिक्षेप च ननाद च ॥ २५ ॥ वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत ॥ लांगूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥ २६ ॥ धुतशृंगविभिन्नाश्च खंडं खंडं ययुर्घनाः ॥ श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥ २७ ॥ इति क्रोधसमाध्मातमापतंतं महासुरम् ॥ दृष्ट्वा सा चंडिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत् ॥ २८ ॥ सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबंध महासुरम् ॥ तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥ २९ ॥

पृथ्वीको खोदताहुआ दोनों सींगोंसे संपूर्ण ऊंचे पर्वतोंको फेंककर गर्जना करनेलगा ॥ २५ ॥ और उसके वेगसहित भ्रमण करनेपर खुदीहुई भूमि मृदुल होगई तथा पूंछसे ताडित समुद्र चारों ओर फैलने लगा ॥ २६ ॥ कंपायमान सींगोंसे फाडेहुए मेघोंके टुकडे टुकडे होगये और इसके श्वासकी पवनद्वारा सैकडों पर्वत आकाशसे गिरपडे ॥ २७॥ इस प्रकार कोपमें भरेहुए असुरको निकट आता देखकर चण्डिकादेवीने भी कुपित हो उसी समय उसके मारनेकी इच्छा करी ॥ २८ ॥ फिर देवीने पाश फेंककर उस महा असुरको बांधलिया और उस महिषासुरनेभी उस युद्धक्षेत्रमें अपना महिषरूप त्याग ॥ २९ ॥

तत्काल सिंहरूप धारण किया अनन्तर ज्योंही अम्बिका देवी उसका मस्तक काटनेमें उद्यत हुई, तब वह खड्ग हाथमें लिये पुरुषरूपमें दिखाई देनेलगा॥ ३०॥ इसके उपरान्त देवीने बाणोंसे ढाल और तलवारके सहित उस पुरुषको छेदन करडाला, तब वह अत्यन्त बडे हाथीका रूप धारण करके सूंडसे देवीके वाहन महासिंहको खैंचताहुआ गर्जने लगा। तब देवीने खड्गसे उस सिंहको खैंचतेहुए हाथीकी सूंड काटडाली ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अनन्तर महा असुर पुनर्वार महिषरूप धारण करके पूर्वोक्त प्रकारसे सचराचर त्रैलोक्यको फिर क्षोभित (दुःखित) करनेलगा ॥ ३३ ॥ इसके पीछे जगत्की माता चण्डिका कुपित होकर उत्तम मधु पीने लगी और लाल लाल नेत्र किये वारंवार हँसने लगी ॥ ३४ ॥ तब वह बल, वीर्य, मतवाला असुरभी गर्जताहुआ दोनों सींगोंके

ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्यांबिका शिरः ॥ छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥ ३० ॥ तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः ॥ तं खड्गचर्मणा सार्धं ततः सोऽभून्महागजः ॥ ३१ ॥ करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च ॥ कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृंतत ॥ ३२ ॥ ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुराश्रितः ॥ तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३३ ॥ ततः क्रुद्धा जगन्माता चंडिका पानमुत्तमम् ॥ पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥ ३४॥ ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः ॥ विषाणाभ्यां च चिक्षेप चंडिकां प्रति भूधरान् ॥ ३५ ॥ सा च तान्प्रहितांस्तेन चूर्णयंती शरोत्करैः ॥ उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥ ३६ ॥ देव्युवाच ॥ गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम् ॥ मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यंत्याशु देवताः ॥ ३७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवमुक्त्वा समुत्पत्य सारूढा तं महासुरम् ॥ पादेनाक्रम्य कंठे च शूलेनैनमताडयत् ॥ ३८ ॥

द्वारा चण्डिकादेवीके ऊपर पर्वत फेंकने लगा ॥ ३५॥ देवी चण्डिका अपने बाणोंके द्वारा उसके चलाये सब पर्वतोंको चूर्ण करके उस असुरसे कहने लगी । किन्तु उस समय मद्य पीनेके कारण चण्डिकाका वदन रक्तवर्ण होगया और समस्त अक्षरोंका स्पष्ट उच्चारण नहीं हुआ ॥ ३६ ॥ देवी बोली-रे मूढ! जबतक मैं मधुपान करतीहूं, तबतक तू ' गर्ज ले गर्ज ले ' मेरेसे तुझको शीघ्र विनाश करनेपर देवतागण इसी स्थानमें गर्जना करेंगे ॥ ३७ ॥ ऋषि बोले-देवी इस प्रकार कह फिर उछलकर उस महा असुरके ऊपर चढगई और उसको अपने पैरोंसे दबाकर उसके कंठमें त्रिशूलसे छेदन करने लगी ॥ ३८ ॥

अनन्तर वह असुरभी देवीके पैरोंसे दबनेके कारण देवीके पराक्रमके सन्मुख अस्त होगया और उसके मुखकी कान्ति आधी रहगई ॥ ३९ ॥ तदनन्तर आधी कांतिवाले लडतेहुए उस महा असुरका देवीने उसे महाआसिके द्वारा मस्तक काटकर विनाश किया ॥ ४० ॥ इस प्रकारसे वह महिषासुर अपनी सेना और सुहृद्गणोंके सहित त्रिलोकीको मोहित कर अन्तमें देवीके हाथसे निहत हुआ ॥ ४१ ॥ उस समय महिषासुरके मरनेपर त्रिलोकीके देवता मनुष्य और पातालवासी बलि आदि असुरोंने देवीका जयजयकार किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर देवीने हाहाकार करतीहुई दैत्योंकी सब सेनाको नाश करदिया जिससे कि, सब देवता गण अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ देवता और दिव्यमहर्षिगण देवीकी स्तुति करने लगे । गन्धर्वपतिगण गाने लगे और अप्सरायें नाचने

ततः सोऽपि पदाक्रांतस्तया निजमुखात्ततः ॥ अर्द्धनिष्क्रांत एवासीद्देव्या वीर्येण संवृतः ॥ ३९ ॥ अर्द्धनिष्क्रांत एवासौ युध्यमानो महासुरः ॥ तया महासिना देव्या शिरश्छित्वा निपातितः ॥ ४० ॥ एवं स महिषो नाम ससैन्यः ससुहृद्गणः ॥ त्रैलोक्यं मोहयित्वा तु तया देव्या विनाशितः ॥ ४१ ॥ त्रैलोक्यस्थैस्तदा भूतैर्महिषे विनिपातिते ॥ जयेत्युक्तं ततः सर्वैः सदेवासुरमानवैः ॥ ४२ ॥ ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् ॥ प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥ ४३ ॥ तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः ॥ जगुर्गंधर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधो नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ ऋषिरुवाच ॥ ततः सुरगणाः सर्वे देव्या इंद्रपुरोगमाः ॥ स्तुतिमारेभिरे कर्त्तुं निहते महिषासुरे ॥ १ ॥ शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या ॥ तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ २ ॥

लगीं ॥ ४४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधो नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ ऋषि बोले-उस समय इन्द्रको आदि ले सब देवता महिषासुरके मरनेसे प्रसन्न हो देवीकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ जब भगवती देवीने देवताओंके वैरी अत्यन्त वीर्यवान् उस दुष्ट महिषासुरका वध किया, तब इन्द्र इत्यादि देवताओंके समूह कि, जिनके शोभायमान शरीर अतिप्रसन्नताके कारण पुलकित होगयेथे, अपने मस्तक, कंठ और कंधोंको झुकाकर नमस्कारपूर्वक नाना प्रकारके वचनोंसे दुर्गाका स्तवन करने लगे ॥ २ ॥

देवता बोले—जिन्होंने अपने प्रभावसे इस चराचर जगत्‌को विस्तारित किया है, संपूर्ण देवताओंके शक्तिसमूहसे मिलित होकर जो मूर्त्तिरूपमें परिणत हुई है और जो संपूर्ण देवता तथा महर्षियोंकी पूजनीय हैं हम भक्तिसहित उन अम्बिकादेवीको प्रणाम करते हैं वह हमारा मंगल करें ॥ ३ ॥ भगवान् अनन्तदेव, ब्रह्मा और महादेव जिनके प्रभाव और बलका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं होते; वह चण्डिका देवी संपूर्ण जगत्‌का पालन करनेके निमित्त तथा अमंगल और भय विनाशके निमित्त इच्छा करें ॥ ४ ॥ जो पुण्यवान् मनुष्योंके घरमें सम्पदास्वरूप है; जो पापियोंके घरमें अलक्ष्मीस्वरूप हैं; जो समस्त पढनेसे निर्मल अन्तःकरणवालेके हृदयमें बुद्धिस्वरूप हैं जो श्रेष्ठ आचरणवालोंकी श्रद्धास्वरूप और जो सत्कुलोत्पन्न मनुष्योंकी लज्जास्वरूप हैं, हम उन्हीं

देवा ऊचुः ॥ देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ॥ तामंबिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥ ३ ॥ यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननंतो ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलं बलं च ॥ सा चंडिकाखिलजगत्परिपालनाय नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥ ४ ॥ या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ॥ श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा तां त्वा नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥ ५ ॥ किं वर्णयाम तव रूपमचिंत्यमेतत्किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि ॥ किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥ ६ ॥ हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैर्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ॥ सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूतमव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ ७ ॥

तुमको नमस्कार करते हैं, हे देवि ! तुम विश्वका पालन करो ॥ ५ ॥ तुम्हारे इस प्रकार अचिन्त्यरूपका वर्णन करनेमें हम कैसे समर्थ हों । हे देवि ! तुम्हारा असुरक्षयकारी अपरिमित वीर्य तथा असुर और देवताओंके प्रति युद्धक्षेत्रमें वह सब अति अद्भुत व्यवहार हम किस भाँतिसे वर्णन करें ॥ ६ ॥ हे देवि ! तुम विकाररहित आद्याप्रकृति हो अथ च सत्व, रज और तमोगुणात्मिका होनेपरभी जगत्‌का हेतु हो, राग द्वेषादि युक्त विष्णु, महादेव आदिभी तुम्हारा प्रकृत तत्त्व नहीं जानते, हे देवि ! तुम अपार और सब पदार्थोंकी आश्रयस्वरूप हो, यह जगत तुम्हाराही अंशभूत है ॥ ७ ॥

मा० पु० ॥२५६॥

हे देवि ! संपूर्ण यज्ञोंमेंही तुम्हारा नाम उच्चारण करनेसे समस्त देवता तृप्तिलाभ करते हैं, क्योंकि तुम्हीं देवता और ऋषियोंको तृप्तिकारक स्वाहा और स्वधास्वरूप कहकर उच्चारित होती हो ॥ ८ ॥ हे देवि ! तुम्हारी बृहत् उपासनाका विषय अचिन्त्य है और जितेन्द्रिय तत्त्वसार तथा दोषहीन मोक्षार्थी मुनिगण तुमको मुक्तिका कारण कहकर सेवन करते हैं, हे देवि ! अतएव तुम्हीं भगवती सर्वोत्कृष्ट मोक्षविद्या हो ॥ ९ ॥ हे देवि ! तुम शब्दमय तीनों वेदस्वरूप हो और प्रणवयुक्त मनोहर पद पाठशाली ऋक्, यजु और सामवेदका आश्रयस्वरूप हो, तुम्हीं देवी सर्वैश्वर्ययुक्त हो, तुम्हीं संसारकी जीवन-रक्षाके निमित्त कृषिस्वरूप हो, हे देवि ! तुम्हीं संपूर्ण जगत्की विषम पीडाका विनाश करनेवाली हो ॥ १० ॥ हे देवि ! तुम्हीं बुद्धिस्वरूप हो, क्योंकि

यस्या समस्तसुरताः समुदीरणेन तृप्तिं प्रयांति सकलेषु मखेषु देवी ॥ स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतुरुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥ ८ ॥ या मुक्तिहेतुरविचिंत्यमहाव्रता त्वमभ्यस्यसे सुनियतेंद्रियतत्त्वसारैः ॥ मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥ ९ ॥ शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् ॥ देवि त्रयी भगवती भवभाव-नाय वार्त्तासि सर्वजगतां परमार्त्तिहंत्री ॥ १० ॥ मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसंगा ॥ श्रीः कैटभारिहृदयैक-कृताधिवासा गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥ ११ ॥ ईषत्सहासममलं परिपूर्णचंद्रबिंबानुकारि कनकोत्तमकांति कांतम् ॥ अत्य-द्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि वक्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥ १२ ॥ दृष्ट्वा तु देवि कुपितभ्रुकुटीकरालमुद्यच्छशांकसदृशच्छवि यन्न सद्यः ॥ प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं कैर्जीव्यते हि कुपितांतकदर्शनेन ॥ १३ ॥

भा० टी० अ० ८१

तुम दुर्गम भवसागरमें अद्वितीय नौकास्वरूप हो, तुम्हीं कैटभ शत्रुके मारनेवाले विष्णुभगवान्के हृदयमें वास करनेवाली लक्ष्मी हो और तुम्हीं शिवजीसे अपने वामभागमें प्रतिष्ठा कीगई गौरी हो ॥ ११ ॥ तथापि तुम्हारा मंद मंद मुसकुराता हुआ निर्मल, पूर्णचन्द्रमाके समान सुवर्णकांति और मनोहर मुख देखकरभी जो महिषासुरने क्रोधित होकर अस्त्रप्रहार किया था, यही अत्यन्त आश्चर्य है, तात्पर्य यह है कि, तुम्हारा मुख संसारको मोहित करनेवाला है, सो वह मोहित नहीं हुआ, सुतरां वह बडाही दुष्ट था ॥ १२ ॥ हे देवि ! क्रोधसे युक्त और भ्रुकुटियोंसे भीषण तथा उदय होतेहुए पूर्णिमाके चन्द्रकी सदृश, ऐसे तुम्हारे मुखको देखकर जो सद्यही महिषासुरने प्राण नहीं छोडे यह बडाही अचंभा है, क्योंकि कुपित यमराजको देखकर कौन जीवित रह-

सकता है ? ॥ १३ ॥ हे देवि ! तुम प्रसन्न होओ, तुम परमा अर्थात् लक्ष्मी हो और संसारका मंगल करनेके लियेही उत्पन्न होती हो, हे देवि ! तुम क्रोध करनेपर संपूर्ण कुलोंका नाश करदेती हो, यह अभी जानागया क्योंकि महिषासुरकी अत्यन्त बडी सेना और उसको तुमने विनाश किया ॥ १४ ॥ हे देवि ! तुम प्रसन्न होकर जिनको अभ्युदय (कल्याण) प्रदान करती हो, वही देशमें पूजित होते हैं, उनकोही धन और यश मिलता है, उनकाही धर्म नहीं घटता, वही धन्य और उनकेही पुत्र, स्त्री तथा सेवक उद्वेगहीने होते हैं ॥ १५ ॥ हे देवि ! तुम्हारेही प्रसादसे पुण्यशाली मनुष्य प्रतिदिन अत्यन्त आदरके सहित धर्मजनक कार्य करते हैं और मृत्युके पीछे तुम्हारेही अनुग्रहसे स्वर्गमें जाते हैं. अतएव हे देवि ! तुम्हीं तीनों लोकमें फलप्रदान करती

देवि प्रसीद परमा भवती भवाय सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि ॥ विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेतन्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥ १४ ॥ ते संमता जनपदेषु धनानि तेषां तेषां यशांसि न च सीदति बंधुवर्गः ॥ धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥ १५ ॥ धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्माण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति ॥ स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादाल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥ १६ ॥ दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजंतोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ॥ दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥ १७ ॥ एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते कुर्वंतु नाम नरकाय चिराय पापम् ॥ संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयांतु मत्वेति नूनमहितान्विनिहंसि देवि ॥ १८ ॥

हो ॥ १६ ॥ हे देवि ! तुम दुर्गत मनुष्योंके स्मरण करनेसे उनका भय हरण करती हो और जो स्वस्थचित्त मनुष्य तुमको स्मरण करते हैं, तुम उनको अत्यन्त मंगलजनक बुद्धि प्रदान करतीहो हे दरिद्र दुःखभय हरनेवाली ! तुम्हारे अतिरिक्त और किसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा आर्द्र अर्थात् दयासे कृपालु रहता है ? ॥ १७ ॥ " इन सब असुरोंके मरनेसे जगत् सुख लाभ करे और फिर वह नरकके लिये बहुत कालतक पाप करे तोभी इस समय रणक्षेत्रमें मरकर वह स्वर्गमें जाय " हे देवि ! तुम यही विचारकर निश्चय शत्रुओंको विनाश करतीहो ॥ १८ ॥

केवल देखनेमात्रसेही क्या तुम शत्रुओंके भस्म नहीं करसकतीहो ? किंतु " शत्रुगण शस्त्रसे पवित्र होकर स्वर्गमें जाँय " तुमने यही विचारकर शत्रुओंके ऊपर शस्त्र चलाया है मरेहुए असुरोंकाभी उपकार करनेके लिये जो तुम्हारी ऐसी मति है, वह अति साध्वी अर्थात् श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ॥ १९ ॥ हे देवि ! खड्गकी उग्र प्रभासमूहके निकलनेसे और त्रिशूलके अग्रभागकी कान्तिसमूहसे उन सब असुरोंकी दृष्टि जो विनाशको प्राप्त नहीं हुई, इसका कारण अन्य कुछ नहीं है, केवल तुम्हारे किरणोंसे शोभायमान चन्द्रखंडकी सदृश मुखको देखनेसे उनके नेत्र अत्यन्त शीतल होगयेथे ॥ २० ॥ हे देवि ! तुम्हारा स्वभाव दुष्ट पुरुषोंके दुराचारको नष्ट करनेवाला है एवं तुम्हारा रूप तुलनारहित और अचिन्त्य है । हे देवि ! तुम्हारा वीर्य देवताओंका पराक्रम हरनेवाले

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ॥ लोकान्प्रयांतु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता इत्थं मतिर्भवति तेष्व-
हितेषु साध्वी ॥ १९ ॥ खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः शूलाग्रकांतिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ॥ यन्नागता विलयमंशुमदिंदुखंडयो-
ग्यानन्नं तव विलोकयतां तदेतत् ॥ २० ॥ दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं रूपं तथैतदविचिंत्यमतुल्यमन्यैः ॥ वीर्यं च हंतृ हृतदेवपरा-
क्रमाणां वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥ २१ ॥ केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ॥ चित्ते कृपा
समरनिष्ठुरता च दृष्टा त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥ २२ ॥ त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन त्रातं त्वया समरमूर्द्धनि तेऽपि हत्वा ॥
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥ २३॥ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चांबिके ॥ घंटास्वनेन नः
पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ २४ ॥

असुरोंका नाशक है, इस प्रकार शत्रुओंके ऊपरभी तुम्हारी कृपा स्पष्ट प्रगट है ॥ २१ ॥ हे देवि ! किसके संग तुम्हारे इस पराक्रमकी तुलना होसकती है ? तुम्हारा रूप शत्रुओंको भयकारी और अत्यन्त मनोहर है । ऐसा रूप स्वर्ग, मर्त्य वा पातालमें और किसका है ! हे वरदे देवि ! तीनों भुवनके मध्य तुम्हारेही चित्तमें एक दया और समरमें निष्ठुरता देखीजाती है और कहीं नहीं ॥ २२ ॥ हे देवि ! तुमने शत्रुको मारकर त्रिभुवनकी रक्षा की तथा रणक्षेत्रमें उन शत्रुओंको मारकर स्वर्ग प्रदान किया और मदोद्धत असुरोंसे उत्पन्न हुआ हमाराभी भय दूर हुआ अतएव हे देवि ! तुमको नमस्कार है ॥ २३ ॥ हे देवि !

हमारी शूल द्वारा रक्षा करो हे अम्बिके ! हमारी खड्गद्वारा रक्षा करो । हे देवि ! घंटा और धनुषकी प्रत्यंचकि टंकारसे हमारी रक्षा करो ॥ २४ ॥ हे चण्डिके ! हे ईश्वरी ! अपना शूल घुमाकर हमारी पूर्वमें, पश्चिममें, दक्षिणमें और उत्तरमें रक्षा करो ॥ २५ ॥ तुम्हारे जितने सौम्यरूप और जितने अत्यन्तभयंकर रूप त्रिभुवनमें विचरण करते हैं, तुम उन सब रूपोंसे हमारी और पृथ्वीकी रक्षा करो ॥ २६ ॥ हे अम्बिके ! तुम्हारे करपल्लवमें खड्ग, शूल, गदादि जो अस्त्र रहते हैं, उन सब अस्त्रोंसे चारों ओर हमारी रक्षा करो ॥ २७ ॥ ऋषि बोले-देवताओंने इस प्रकार उनकी स्तुति करी और नन्दनवनमें उत्पन्न हुए पुष्प, दिव्यगंधानुलेपन और दिव्यधूपद्वारा भक्तिसहित उन जगज्जननीका पूजन किया ॥ २८ ॥ उस काल वर देनेकी इच्छासे उनका मुखमण्डल अत्यन्तही

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चंडिके रक्ष दक्षिणे ॥ भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ २५ ॥ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरंति ते ॥ यानि चात्यंतघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ २६ ॥ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ॥ करपल्लवसंगीनि तैरस्मान्रक्ष सर्वतः ॥ २७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नंदनोद्भवैः ॥ अर्चिता जगतां धात्री तथा गंधानुलेपनैः ॥ २८ ॥ भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यधूपैः सुधूपिता ॥ प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान्प्रणतान्सुरान् ॥ २९ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवांछितम् ॥ ददाम्यहमतिप्रीत्या स्तवैरेभिः सुपूजिता ॥ ३० ॥ कर्त्तव्यमपरं यच्च दुष्करं तन्न विद्महे ॥ इत्याकर्ण्य वचो देव्याः प्रत्यूचुस्ते दिवौकसः ॥ ३१ ॥ देवा ऊचुः ॥ भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते ॥ यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ॥ ३२ ॥ यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥ संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसीथाः परमापदः ॥ ३३ ॥

सुन्दर होगया, तब वह सम्पूर्ण प्रणत देवताओंसे कहने लगी ॥ २९ ॥ देवी बोली-हे त्रिदशगण ! तुम मुझसे अपना अभिलाषित वर मांगो मैं तुम्हारे इस स्तवसे संमानित हुई हूं, मैं तुमको अत्यन्त प्रीतिके सहित वह वर दूंगी ॥ ३० ॥ जो इस महिषासुरवधके उपरान्त कर्तव्य है सो हम नहीं जानती हैं जो कुछ तुमको दुस्साध्य हो वह हमसे कहो यह देवीके वचन सुनकर देवता कहने लगे ॥ ३१ ॥ देवता बोले-हे भगवती ! जब तुमने हमारे इस प्रबल शत्रु महिषासुरका वध किया तो आपने हमारा समस्त कार्यही संपादन किया है, अब कुछ अवशिष्ट नहीं है ॥ ३२ ॥ और यदि तुम हमको वर देनाही चाहती हो तो यह वर दो कि हम जब तुमको स्मरण करें, तभी तुम हमारी परम आपदा नष्ट करो ॥ ३३ ॥

हे अमलानने ! जो मनुष्य हमारे किये इस स्तवद्वारा तुम्हारी स्तुति करे, उनको तुम हमारे ऊपर प्रसन्न होकर ज्ञानकी अधिकता और ऐश्वर्यके सहित धन, दारा इत्यादि सम्पत्तिकी वृद्धि करना । क्योंकि हे अम्बिके ! तुम सब वस्तुके देनेमें समर्थ हो ॥ ३४ ॥ ऋषि बोले-हे नृप ! देवताओंसे जगत्के लिये और अपने अर्थ प्रसन्न की हुई भद्रकाली यह कहकर कि "ऐसाही होगा" अन्तर्धान होगई ॥ ३५ ॥ हे भूपते ! देवताओंके शरीरसे तीनों जगत्का हित करनेके लिये जिस प्रकार देवी पूर्व कालमें उत्पन्न हुई थी, वह तुमसे कहा ॥ ३६ ॥ अब पार्वतीके देहसे जिस प्रकार उत्पन्न होकर शुंभ, निशुंभ और अन्यान्य दुष्ट दैत्योंका नाश ॥ ३७ ॥ लोकोंकी रक्षा और देवताओंका उपकार किया वह तुमसे यथावत् कहताहूं सुनो ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्क-

यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥ तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसंपदाम् ॥ वृद्धयेऽस्मत्प्रपन्ना त्वं भवेथाः सर्वदांबिके ॥३४॥ ऋषिरुवाच ॥ इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथात्मनः ॥ तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवांतर्हिता नृप ॥ ३५ ॥ इत्येतत्कथितं भूप संभूता सा यथा पुरा ॥ देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥ ३६ ॥ पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत् ॥ वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुंभनिशुंभयोः ॥ ३७ ॥ रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी ॥ तच्छृणुष्व मया ख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे देवीमाहात्म्ये एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ऋषिरुवाच ॥ पुरा शुंभनिशुंभाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः ॥ त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात् ॥ १ ॥ तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैंदवम् ॥ कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ॥ २ ॥ तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च ॥ अन्येषां चाधिकारान्स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥ ३ ॥

ण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्ये एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ऋषि बोले-पूर्वकालमें शुंभ और निशुंभ नामक दो असुरोंने अपने घमंडके बलका आश्रय पाकर शचीपति इन्द्रके त्रैलोक्यका राज्य और संपूर्ण यज्ञभाग हरण किया ॥ १ ॥ वह शुंभ और निशुंभ सूर्य, चन्द्र, कुबेर और वरुणके अधिकारका कार्य स्वयं करने लगे और वही पवनका अधिकार तथा अग्निका कार्य करने लगे और अन्य सबकाभी अधिकार उन्होंने अपने ही हाथमें लिया ॥ २ ॥ अनन्तर उन दोनों महाअसुरोंके द्वारा हृताधिकार तिरस्कार किये राज्यहीन, पराजित ॥ ३ ॥

और निकालेहुये देवता उन अपराजिता देवीको स्मरण करनेलगे ॥ ४ ॥ "विपद् कालमें मुझको स्मरण करनेसे मैं तत्काल तुम्हारी परम आपदा नष्ट करूंगी" पूर्वमें हमको इस प्रकार देवीने वर दिया है. इस समय घोर विपद् उपस्थित है, अतएव सम्यक् रीतिसे उनकी ही शरण लेनी चाहिये ॥ ५ ॥ देवता इस प्रकार बुद्धि स्थिर कर पर्वतोंमें शिरोमणि हिमालय पर्वतमें जाय उन विष्णुमायाकी स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥ देवता बोले—देवीको नमस्कार है, महा देवीको नमस्कार है, शिवाको सर्वदा नमस्कार है, प्रकृतीको नमस्कार है, भद्राको नमस्कार है, हम प्रणत होकर उन देवीको नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥ रौद्राको नमस्कार है, नित्या, गौरी और धात्रीको वारम्वार नमस्कार है। जगत्की प्रतिष्ठा और कृत्याको नमस्कार है ॥ ८ ॥

ह्रताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः ॥ महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरंत्यपराजिताम् ॥ ४ ॥ तयास्माकं वरो दत्तो यथापत्सु स्मृताखिलाः ॥ भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥५॥ इति कृत्वा मतिं देवा हिमवंतं नगेश्वरम् ॥ जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ॥ नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ ७ ॥ रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ॥ नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥ ८ ॥ ज्योत्स्नायै चंद्ररूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ कल्याण्यै प्रणतामृध्यै सिद्ध्यै कूर्म्यै नमो नमः ॥ ९ ॥ नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥ दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिणी ॥ ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥ १० ॥ अतिसौम्यातिरौद्रायै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥ ११ ॥

उन प्रकाशरूप, चन्द्ररूप और परमानन्दरूप देवीको सदा नमस्कार करते हैं। कल्याणी और बुद्धिरूपा देवीको नमस्कार है, सिद्धिरूपा देवीको वारम्वार नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥ नैर्ऋतिस्वरूपा देवीको नमस्कार है। राजाओंके घरमें लक्ष्मीरूपा देवीको नमस्कार है, शर्वाणीस्वरूप तुमको नमस्कार है नमस्कार है। दुर्गा, दुर्गपारा, सारा, सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रास्वरूप देवीको हम सदा नमस्कार करते हैं ॥ १० ॥ जो अत्यन्त सौम्य और अत्यन्त रौद्र है, उन देवीको हम अति विनयसहित वारम्वार नमस्कार करते हैं। जगत्की प्रतिष्ठारूप देवीको नमस्कार

है, कृतिस्वरूप अर्थात् कार्यरूपिणी देवीको नमस्कार है ॥ ११ ॥ जो देवी संपूर्ण प्राणियोंमें विष्णुमाया नामसे कहीजाती है, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ १२ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें चेतना नामसे कही जाती हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ १३ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें बुद्धिरूपसे स्थित है, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ १४ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें निद्रारूपसे अवस्थित हैं; उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ १५॥ जो देवी सब प्राणियोंमें क्षुधारूपसे अवस्थान करती हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ १६ ॥ जो

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायोति शब्दिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १२ ॥ या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १३॥ या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १४ ॥ या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १५ ॥ या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १६ ॥ या देवी सर्वभूतेषु च्छायारूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १७ ॥ या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १८ ॥ या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १९ ॥ या देवी सर्वभूतेषु क्षांतिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २० ॥ या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २१ ॥

देवी संपूर्ण भूतमें छायारूपसे स्थिति करती हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ १७ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें शक्तिरूपसे विराजमान हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥१८॥ जो देवी सब प्राणियोंमें तृष्णारूपसे वास करतीहैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥१९॥ जो देवी सब प्राणियोंमें क्षान्तिरूपसे स्थित हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ २० ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें जातिरूपसे विराजित हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ॥ २१ ॥

जो देवी सब प्राणियोंमें लज्जारूपसे निवास करती हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार। ॥ २२ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें शान्तिरूपसे स्थित हैं उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २३ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें श्रद्धारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २४ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें कान्तिरूपसे अधिष्ठान करती हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २५ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें लक्ष्मीरूपसे वास करती हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २६ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें धृतिरूपसे स्थित हैं उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २७ ॥

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २२ ॥ या देवी सर्वभूतेषु शांतिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २३ ॥ या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २४ ॥ या देवी सर्वभूतेषु कांतिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २५ ॥ या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २६ ॥ या देवी सर्वभूतेषु धृतिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २७ ॥ या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८॥ या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२९॥ या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३० ॥ या देवी सर्वभूतेषु नीतिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३१ ॥ या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३२ ॥

जो देवी सब प्राणियोंमें वृत्तिरूपसे विराजमान हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार ॥ नमस्कार ॥२८॥ जो देवी सब प्राणियोंमें स्मृतिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २९ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें दयारूपसे अवस्थान करती हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ ३० ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें नीतिरूपसे अधिष्ठित हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ ३१ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें तुष्टिरूपसे अवस्थान करती हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ ३२ ॥

जो देवी सब प्राणियोंमें पुष्टिरूपसे वास करती हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ ३३ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें मातृरूपसे स्थित है, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ ३४ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें भ्रान्तिरूपसे अवस्थित हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ ३५ ॥ जो देवी संपूर्ण इन्द्रियोंकी और सब प्राणियोंकी अधिष्ठात्री है तथा, जो सब प्राणियोंमें व्याप्तिरूपसे विद्यमान हैं। उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ ३६ ॥ जो चैतन्यरूपसे समस्त जगत्में व्याप्त होकर अवस्थिति करतीहैं, उन देवीको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ ३७ ॥ पूर्वकालमें हमने अभीष्टलाभ करके जिनकी स्तुति की है, देवराज इन्द्र, शिव और सूर्यने जिनकी सेवा करीहै और जो मंगलके समूहका कारण हैं, प्रचण्डदैत्योंसे पीडित

या देवी सर्वभूतेषु पुष्टिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥३३॥ या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥३४॥ या देवी सर्वभूतेषु भ्रांतिरूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३५ ॥ इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानामखिलेषु या ॥ भूतेषु सततं व्याप्त्यै तस्यै देव्यै नमो नमः ॥३६॥ चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥३७॥ स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेशादिनेशसेविता ॥ करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहंतु चापदः ॥ ३८ ॥ या सांप्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ॥ या च स्मृता तत्क्षणमेव हंति नः सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ ३९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं स्तवाभियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती ॥ स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनंदन ॥४०॥ साऽब्रवीत्तान्सुरान्सुभ्रूर्भवाद्भिः स्तूयतेऽत्र का ॥ शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥४१॥

होकर हम इस समय जिन ईश्वरीको नमस्कार करते हैं भक्ति नम्र शरीर होकर हमारे स्मरण करनेपर जो तत्काल हमारी संपूर्ण विपद् नष्ट करती हैं, वह ईश्वरी देवी हमारा सब प्रकार मंगल करैं और संपूर्ण विपत्तियोंका नाश करैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ऋषि बोले—हे नृपनन्दन ! देवतालोग इस प्रकार स्तुति करतेथे इसी समय पार्वती देवी गंगाजलमें स्नान करनेके लिये जानेको उनके सन्मुख आई ॥ ४० ॥ वह सुन्दर भ्रुकुटिसे शोभित पार्वती देवताओंसे बोली "तुम लोग किसकी स्तुति करतेहो ?" उसी समयमें उन पार्वतीके शरीरकोशसे शिवा देवीने उत्पन्न होकर कहा ॥ ४१ ॥

" समरमें निशुंभके द्वारा हारेहुए और फिर शुंभके द्वारा निकालेहुए देवता एकत्र मिलित होकर मेरीही स्तुति करते हैं " ॥४२॥ अम्बिका उन पार्वतीके शरीरकोशसे उत्पन्न हुई, इस कारण समस्त भुवनमें वह " कौशिकी " नामसे कहीगई है ॥४३॥ उन कौशिकीदेवीके शरीरसे निकल जानेपर पार्वतीदेवीने कृष्णवर्ण धारण किया, तबसे वह कालिकाके नामसे विख्यात होकर हिमाचलमें वास करने लगी ॥ ४४ ॥ फिर अम्बिकाने परममनोहर रूप धारण किया। अनन्तर शुंभ और निशुंभ असुरके भृत्य चण्ड और मुण्डनामक दो असुरोंने उनका वह मनोहर रूप देखा ॥ ४५ ॥ तब चण्ड और मुण्डने शुम्भासुरके समीप जाकर कहा—हे महाराज ! अत्यन्त मनोहर कोई स्त्री हिमालय पर्वतको शोभित करतीहुई वास करती है ॥ ४६ ॥ हे असुरेश्वर !

स्तोत्रं ममैतत्क्रियते शुंभदैत्यनिराकृतैः ॥ देवैः समस्तैः समरे निशुंभेन पराजितैः ॥४२॥ शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृतांबिका ॥ कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥ ४३ ॥ तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती ॥ कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥ ४४ ॥ ततोऽबिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम् ॥ ददर्श चंडो मुंडश्च भृत्यौ शुंभनिशुंभयोः ॥ ४५ ॥ ताभ्यां शुंभाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा ॥ काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयंती हिमाचलम् ॥ ४६ ॥ नैव तादृक्क्वाचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् ॥ ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥ ४७ ॥ स्त्रीरत्नमतिचार्वंगी द्योतयंती दिशास्त्विषा ॥ सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान्द्रष्टुमर्हति ॥ ४८ ॥ यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो ॥ त्रैलोक्ये तु समस्तानि सांप्रतं तानि ते गृहे ॥ ४९ ॥ ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरंदरात् ॥ पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥ ५० ॥

ऐसा उत्तम रूप कहीं किसीने नहीं देखा, अतएव यह नारी कौन है ? ऐसा जानकर आप इस स्त्रीको ग्रहण कीजिये ॥ ४७ ॥ वह सुन्दर अंगवाली नारी स्त्रियोंमें रत्नरूप है। हे दैत्येन्द्र ! वह नारी अपने देहकी कान्तिसे संपूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करके वास कर रही है, उसको आपको देखना उचित है ॥४८॥ हे प्रभो ! त्रैलोक्यमें श्रेष्ठ मणि और श्रेष्ठ हाथी घोडे इत्यादि जो सब रत्न हैं, वह इस समय समस्तही आपके घरमें शोभा पाते हैं ॥४९॥ हाथियोंमें रत्न ऐरावत, मनोहर पारिजात वृक्ष और उच्चैःश्रवा घोडा इन्द्रके यहांसे लाया गया ॥ ५० ॥

विधाताका रत्नस्वरूप जो अद्भुत हंसयुक्त विमान है, वह भी लाया जाकर आपके आँगनमें रक्खाहुआ है ॥ ५१ ॥ यह महापद्म नामक निधिभी कुबेरके निटकसे लाई गई है, किञ्जल्किनी नामक विना मुरझाये कमलोंकी माला समुद्रने आपको अर्पण की है ॥ ५२ ॥ वरुणका कांचनस्रावि नामक छत्र और यह जो श्रेष्ठ रथ पहिले प्रजापतिके निकट था. वहभी आपके घरमें विद्यमान है ॥ ५३ ॥ यमकी मरणप्रदा जो शक्ति थी, हे ईश ! वहभी आपने हरण की है। और आपके भ्राता निशुंभके यहां वरुणका पाश ॥ ५४ ॥ और समुद्रमें उत्पन्न हुए संपूर्ण रत्न हैं, अग्निने उनको वह्निद्वारा पवित्र करके वस्त्र और उत्तरीय प्रदान किया है ॥ ५५ ॥ हे दैत्येन्द्र ! इस प्रकार यह संपूर्ण रत्न आपने हरण किये हैं, अब इस स्त्रीरत्न कल्याणीको आप

विमानं हंससंयुक्तमेतात्तिष्ठाति तेंऽगणे ॥ रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥ ५१ ॥ निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात् ॥ किंजल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपंकजाम् ॥ ५२ ॥ छत्रं ते वारुणं गेहे कांचनस्रावि तिष्ठति ॥ तथायं स्यंदनवरो यः पुरासीत्प्रजापतेः ॥ ५३ ॥ मृत्योरुत्क्रांतिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता ॥ पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥ ५४ ॥ निशुंभस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः ॥ वह्निश्चापि ददौ तुभ्यमाग्निः शौचे च वाससा ॥ ५५ ॥ एवं दैत्येंद्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते ॥ स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥ ५६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ निशम्येति वचः शुंभः स तदा चण्डमुण्डयोः ॥ प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरः ॥ ५७ ॥ शुंभ उवाच ॥ इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम ॥ यथा चाभ्योति संप्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥ ५८ ॥ स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने ॥ तां च देवीं ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥ ५९ ॥

किसलिये ग्रहण नहीं करते हैं ! ॥ ५६ ॥ ऋषि बोले—चण्ड और मुण्डके इस प्रकार वचन सुनकर महासुर शुंभने सुग्रीवनामक दूतको देवीके निकट भेजा ॥ ५७ ॥ शुंभने कहा "तुम जाकर मेरे वचनानुसार उससे इस प्रकार कहना और जिस भाँति वह अत्यन्त प्रसन्न होकर शीघ्र यहां आजाय तुम वैसाही कार्य करना" ॥ ५८ ॥ अत्यन्त शोभायमान पर्वतप्रदेशमें जहां पार्वती स्थित थीं, वह दूत उस स्थानमें जाकर मधुर वचनोंके द्वारा उनसे कहने लगा ॥ ५९ ॥

दूत बोला—हे देवि! दैत्येश्वर शुंभ त्रैलोक्यके परमेश्वर हैं, उन्होंनेही तुम्हारे निकट मुझको दूत बनाकर भेजा है; इसी कारण मैं इस स्थानमें आयाहूं ॥ ६० ॥ समस्त देवताओंमें उनकी आज्ञा अटल है, उन्होंने सब देवताओंको जीतलिया है, अब उन्होंने मुझसे जो कहा है, वह सुनो ॥ ६१ ॥ उन्होंने कहा है, यह संपूर्ण त्रैलोक्य मेरा है, समस्त देवताभी मेरे वशीभूत और अनुगत हैं, मैंही पृथक् पृथक् समस्त यज्ञभाग भोजन करताहूं ॥ ६२ ॥ और त्रिलोकीमें जितने सुन्दर रत्न हैं, सो सब मेरे वशमें हैं और संपूर्ण गजरत्न तथा इन्द्रका वाहन ऐरावत है, सोभी मैंने हरकर लेलियाहै ॥ ६३ ॥ और समुद्रके मथनेसे निकलाहुआ जो उच्चैःश्रवा नामक अश्वरत्न है, उसकोभी देवताओंने प्रणामपूर्वक मेरे अर्पण किया है ॥ ६४ ॥ अन्यान्य जो सब रत्न देवता, गंधर्व

दूत उवाच ॥ देवि दैत्येश्वरः शुंभस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः ॥ दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥६०॥ अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु ॥ निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥६१॥ मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः ॥ यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक्पृथक् ॥ ६२ ॥ त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः ॥ तथैव गजरत्नं च हृतं देवेंद्रवाहनम् ॥ ६३ ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः ॥ उच्चैःश्रवससंज्ञं तु प्रणिपत्य समर्पितम् ॥ ६४ ॥ यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च ॥ रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥ ६५ ॥ स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् ॥ सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥ ६६ ॥ मां वा ममानुजं वापि निशुंभमुरुविक्रमम् ॥ भज त्वं चंचलापांगि रत्नभूतासि वै यतः ॥ ६७ ॥ परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् ॥ एतद्बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥ ६८ ॥

अथवा सर्पोंके थे, हे शोभने ! इस समय वह सब मेरेही हैं ॥ ६५ ॥ हे देवि ! तुमको हम लोकमें स्त्री रत्न समझते हैं अतएव तुम रत्नस्वरूप हो, तुम हमारे घर चलो, क्योंकि इस समय हमी रत्नोंके भोगनेवाले हैं ॥ ६६ ॥ हे चंचलकटाक्षवाली ! मुझे वा मेरे बडे पराक्रमी छोटे भाई निशुंभको भजो. क्योंकि तुम रत्नस्वरूप हो ॥ ६७ ॥ मेरी भजना करनेसे तुम अतुलनीय परमैश्वर्यको प्राप्त होगी यह सब बात बुद्धिपूर्वक विचार कर मेरी भजना करो ॥ ६८ ॥

ऋषि बोले—दूतके इस प्रकार कहनेपर जो इस जगत्को धारण कर रही हैं वह भगवती भद्रा दुर्गादेवी गंभीर और गूढ भावसे कुछेक हँसकर कहने लगी ॥ ६९ ॥ देवी बोली—हे दूत ! तुमने सत्य कहा, इस तुम्हारे कहनेमें कुछभी मिथ्या नहीं है शुम्भ त्रैलोक्यके अधिपति और निशुंभभी उनकेही समान हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७० ॥ किन्तु मैंने जो पूर्वमें एक प्रतिज्ञा की है, उसको इस स्थलमें कैसे मिथ्या करूं ? मैंने अल्पबुद्धिके वश होकर जो प्रतिज्ञा करी है, वह सुनो ॥७१॥ "जो पुरुष मुझको युद्धमें जीतलेगा, जो मेरे अभिमानको तोडेगा और जो पुरुष संसारमें मेरे समान बली होगा, वही मेरा स्वामी होगा" ॥ ७२ ॥ अब महा असुर शुंभ वा निशुंभ आवें, उनमें जो समर्थ हो, वह मुझको जीतकर शीघ्र विवाह करले, विलम्बका क्या

ऋषिरुवाच ॥ इत्युक्ता सा तदा देवी गंभीरांतःस्मिता जगौ ॥ दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥ ६९ ॥ सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किंचित्त्वयोदितम् ॥ त्रैलोक्याधिपतिः शुंभो निशुंभश्चापि तादृशः ॥ ७० ॥ किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् ॥ श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥ ७१ ॥ यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति ॥ यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्त्ता भविष्यति ॥७२॥ तदा गच्छतु शुंभोऽत्र निशुंभो वा महासुरः ॥ मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ॥७३॥ दूत उवाच ॥ अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः ॥ त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुंभनिशुंभयोः ॥ ७४ ॥ अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि ॥ तिष्ठन्ति संमुखा देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ॥ ७५ ॥ इंद्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे ॥ शुंभादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि संमुखम् ॥ ७६ ॥ सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुंभनिशुंभयोः ॥ केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥ ७७ ॥

प्रयोजन है ? ॥ ७३ ॥ दूत बोला—हे देवि ! तुम अत्यन्त गर्वित हुई हो । मेरे निकट ऐसी बात मत कहो, तीनों लोकमें शुंभ और निशुंभके आगे कौन पुरुष ठहर सकता है ॥ ७४ ॥ शुंभ अथवा निशुंभकी बात तो दूर रहे, उनके अनुचर अन्यान्य दैत्योंके सन्मुख देवता मिलित होकरभी स्थिर नहीं रह सकते, फिर तुम अकेली स्त्री होकर किस प्रकार स्थिर रहोगी ? ॥७५॥ इन्द्रादि देवतागण जिन शुंभादिके सन्मुख खडे नहीं रह सकते, तो तू स्त्री होकर उनसे किस प्रकार युद्ध करने जाओगी ? ॥ ७६ ॥ अत एव तुम मेरे वचनानुसार शुंभ निशुंभके समीप चलो और नहीं तो मैं तुम्हारे केश पकडकर ले चलूंगा कि, जिससे तुम्हारा समस्त गौरव नष्ट हो जायगा ॥ ७७ ॥

देवी बोली–हे दूत ! शुंभ ऐसेही बली और निशुंभभी निःसन्देह अत्यन्त वीर्यवान् हैं, किन्तु क्या करूं ? अल्पबुद्धिसे पहिले इस प्रतिज्ञाके विषयमें मैंने विचार नहीं किया ॥ ७८ ॥ सो तुम जावो और मैंने जो कहा है वह सब आदरपूर्वक असुरेन्द्र शुंभसे कहो। फिर वह जो उचित समझेंगे, सो करेंगे ॥ ७९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्ये द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥ ऋषि बोले--देवीके इस प्रकार वचन सुन उस दूतने अत्यन्त क्रोधमें भर दैत्येश्वरके निकट जाकर सब वृत्तान्त विस्तारसहित कहा ॥ १ ॥ दूतके यह वचन सुनकर असुरराज शुंभने क्रोधपूर्वक दैत्याधिपति

श्रीदेव्युवाच ॥ एवमेतद्बली शुंभो निशुंभश्चातिवीर्यवान् ॥ किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ॥७८॥ स त्वं गच्छ मयैवोक्तं यदेतत्सर्वमादृतः ॥ तदाचक्ष्वासुरेंद्राय स च युक्तं करोतु तत् ॥ ७९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः ॥ समाचष्टे समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥ १ ॥ तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः ॥ सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥ २ ॥ हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः ॥ तामानय बलाद्दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥३॥ तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठते परः ॥ स हंतव्योऽमरो वापि यक्षो गंधर्व एव वा ॥४॥ ऋषिरुवाच ॥ तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः ॥ वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥ ५ ॥ स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् ॥ जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुंभनिशुंभयोः ॥ ६ ॥

धूम्रलोचनसे कहा ॥ २॥ हे धूम्रलोचन ! तुम अपनी सेनासहित वहां जाय, उस दुष्ट स्त्रीके केश खैंचकर विह्वल करतेहुए शीघ्र उसको लेआवो ॥ ३॥ यदि उसकी रक्षा करनेके लिये कोई अपर उद्यत हो, वह देवता यक्ष वा गन्धर्व क्यों न हो, उसको हनन करो ॥४ ॥ ऋषि बोले–शुंभकी इस प्रकार आज्ञा पाय वह धूम्रलोचननामक असुर साठ हजार असुरोंके सहित शीघ्र गया ॥ ५ ॥ फिर धूम्रलोचनने हिमाचलमें बैठीहुई देवीको देखकर उच्चस्वरसे कहा–हे देवि ! शुंभ और निशुंभके निकट चलो ॥ ६ ॥

यदि तुम इस समय प्रीतिसहित मेरे स्वामी शुंभके निकट नहीं चलोगी तो मैं तुम्हारे केश खैंच विह्वल करताहुआ बलपूर्वक लेजाऊंगा ॥७॥ देवी बोली–दैत्येश्वर शुंभने तुमको भेजा है, तुम स्वयं बलवान् और सेनासे युक्त हो, तुम यदि मुझको बलपूर्वक लेजाओगे, तो मैं तुम्हारा क्या करूंगी ॥ ८ ॥ ऋषि बोले–देवीके इस प्रकार कहतेही वह धूम्रलोचननामक असुर उनके ऊपरको दौडा । तब अम्बिकादेवीने हुंकारद्वारा उस असुरको भस्म कर-दिया ॥ ९ ॥ अनन्तर उस असुरकी सेना क्रोधित होकर अम्बिकाके ऊपर तीक्ष्ण शर, शक्ति और फरशेकी वृष्टि करने लगे ॥ १० ॥ तब देवीका वाहन सिंह क्रोधसे केसर कंपित करके भयंकर गर्जना करताहुआ असुरोंकी सेनाके ऊपर गिरा ॥ ११ ॥ और किसीको पंजोंके प्रहारसे, किसीको मुख-

न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्त्तारमुपैष्यसि ॥ ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान्ब-लसंवृतः ॥ बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥ ८ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः ॥ हुंकारेणैव तं भस्म सा चकारांबिका ततः ॥ ९ ॥ अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथांबिका ॥ ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥ १० ॥ ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् ॥ पपातासुरसेनायां सिंहो देव्यास्तु वाहनः ॥ ११ ॥ कांश्चित्करप्रहारेण दैत्यानास्येन चाप-रान् ॥ आक्रम्य चरणेनान्यान्निजघान महासुरान् ॥ १२ ॥ केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी ॥ तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृत-वान्पृथक् ॥ १३ ॥ विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे ॥ पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥ १४ ॥ क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ॥ तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥ १५ ॥

द्वारा किसीको आक्रमणद्वारा और किसी किसी महा असुरको होठसे पकड पकडकर मारने लगा ॥ १२ ॥ सिंहने किसी किसी महा असुरका हृदय नखद्वारा फाड डाला और किसी किसी असुरका मस्तक हथेलीके प्रहारद्वारा देहसे पृथक् कर दिया ॥ १३ ॥ कितनेही असुरोंके बाहु और मस्तक काट डाले और केसर कंपित करके अन्यान्य असुरोंके हृदयसे रक्त पी लिया ॥ १४ ॥ क्षणकालमेंही उस देवीके वाहन महात्मा केसरीने अत्यन्त कुपित होकर असुरोंके उस महासैन्यको विनाश कर डाला ॥ १५ ॥

धूम्रलोचन असुरको देवीने विनाश किया और संपूर्ण सेनाका देवीके वाहन सिंहने संहार कर डाला यह सुनकर ॥ १६ ॥ दैत्याधिपति शुंभ अत्यन्त कुपित हुआ। क्रोधसे उसके होठ फडकने लगे, तब शुंभने चण्ड और मुण्डको आज्ञा दी ॥ १७॥ हे चण्ड ! हे मुण्ड ! तुम बहुतसी सेनासे युक्त होकर उस स्थानमें जाओ और जाकर उस स्त्रीको शीघ्र ले आओ ॥ १८॥ उसको केश पकडकर अथवा बांधकर लेआओ। और यदि इस प्रकार लानेमें तुम असमर्थ हो तो संपूर्ण अस्त्रोंसे युक्त असुरोंके द्वारा उसको मार डालना ॥ १९ ॥ उस दुष्टा और सिंहके मारेजानेपर उस अम्बिकाको उसी दशामें

श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ॥ बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ॥ १६ ॥ चुकोप दैत्याधिपतिः शुंभः प्रस्फुरिताधरः ॥ आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥ १७ ॥ हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ ॥ गच्छतं तत्र गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥ १८ ॥ केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि ॥ तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥ १९ ॥ तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते ॥ शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथांबिकाम् ॥ २० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये धूम्रलोचनवधो नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३॥ ऋषिरुवाच ॥ आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चंडमुंडपुरोगमाः ॥ चतुरंगबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥ १ ॥ ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् ॥ सिंहस्योपरि शैलेंद्रशृंगे महति कांचने ॥ २ ॥ ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः ॥ आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥ ३ ॥ ततः कोपं चकारोच्चैरंबिका तानरीन्प्रति ॥ कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा ॥ ४ ॥

बांधकर और लेकर शीघ्र आओ ॥२०॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां धूम्रलोचनवधो नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३ ॥ ऋषि बोले–अनन्तर शुंभकी इस प्रकार आज्ञा पातेही चंड मुंड इत्यादि दैत्य चतुरंगिणीसेनासहित अस्त्र ग्रहण करके गये उन्होंने जाकर देखा कि, बडे सुवर्णमय हिमाचलके शिखरमें सिंहके ऊपर स्थित हुई देवी मंदमंद मुसकुरा रहीहैं ॥ १ ॥ २ ॥ वह असुर और उनके समीपवर्ती अन्यान्य असुरगण देवीको इस प्रकार देखनेपर धनुष खैंच और तलवार ग्रहण कर उनको पकडनेके लिये उद्योग करने लगे ॥ ३ ॥ तब अंबिकाने उन सब शत्रुओंपर अत्यन्त क्रोध किया उस

क्रोध करनेके कारण देवीका मुख श्यामवर्ण होगया ॥ ४ ॥ अनन्तर भ्रुकुटीके चढानेसे उसके ललाटसे शीघ्र एक भयंकर मुखवाली खड्ग और पाशको धारण किये करालवदन काली प्रगट हुई ॥५॥ वह विचित्र खट्वाङ्गको लिये; मुंडोंकी मालासे शोभायमान, बाघम्बर पहिरे अत्यन्त भयानक सूखे मांसवाली मुखको खोलेहुए, जिह्वाको लहलहाती भयंकर रूप, भीतरको घुसेहुए लाल लाल नेत्रवाली और अपने घोर शब्दसे दिशाओंके मुखोंको पूरित करतीहुई उत्पन्न हुई ॥ ६ ॥ ७ ॥ फिर वह भयंकरी देवी दैत्योंके सैन्यसमूहके ऊपर वेगसहित गिरकर संपूर्ण महाअसुरोंको विनाश करते करते असुरोंकी सेनाको भक्षण करनेलगी ॥ ८ ॥ और पार्श्वरक्षक, अंकुशवाले योद्धा तथा घंटा इनके सहितही हाथियोंको एकही हाथसे पकड पकडकर मुखमें

भ्रूकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम् ॥ काली करालवदना विनिष्क्रांतासि पाशिनी ॥ ५ ॥ विचित्रखट्वांगधरा नरमालाविभूषणा ॥ द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥ ६ ॥ अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा ॥ निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥ ७ ॥ सा वेगेनाभिपतिता घातयंती महासुरान् ॥ सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ॥ ८ ॥ पार्ष्णिग्राहांकुशग्राहयोधघंटासमन्वितान् ॥ समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥ ९ ॥ तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह ॥ निःक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयंत्यतिभैरवम् ॥१०॥ एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् ॥ पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥ ११ ॥ तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः ॥ मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥ १२ ॥ बलिनां तद्बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम् ॥ ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥ १३ ॥

फेंकने लगीं ॥ ९ ॥ एवं अश्व रथ और सारथीके सहित योद्धाओंको ग्रहणपूर्वक मुखमें डालकर अत्यन्त भयंकररूपसे चर्वण करने लगी ॥ १० ॥ किसीके केश पकडे किसी किसी असुरकी ग्रीवा पकडी और किसी किसी असुरकी छातीको चरणसे दबाकर मसल डाला ॥ ११ ॥ उन सब असुरोंके चलाये शस्त्र और महाअस्त्रोंको देवी क्रोधपूर्वक मुखमें ग्रहण कर दांतोंसे चाबने लगीं ॥ १२ ॥ बलवान् और अत्यन्त बडे शरीरवाले असुरोंकी उस समस्त सेनाको इस प्रकार मसलती हुई देवीने किसीको भक्षण करलिया और किसी किसीको मार भगाया ॥ १३ ॥

कोई कोई असुर खड्गके आघातसे नष्ट हुये, और कोई कोई खट्वांगसे ताडित तथा कोई कोई असुर दांतोंके अग्रभागसे चीथे जाकर विनाशको प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ असुरोंके उस बडी भारी सेनाको क्षणकालमें नष्ट हुआ देखकर चण्डासुर अत्यन्त भीषण उन काली देवीकी ओर वेगसहित दौडा ॥ १५ ॥ और मुण्डासुरने उन भीमाक्षी देवीके प्रति भयंकर बाणोंकी वर्षा और हजार हजार चक्र चलाकर उनको आच्छन्न कर दिया ॥ १६ ॥ वह समस्त चक्रभी उन देवीके मुखमें प्रविष्ट होने लगे और प्रवेशकालमें वह सब चक्र मेघमें प्रवेश करतेहुए अनेक सूर्यमण्डलके समान शोभा पाने लगे ॥ १७ ॥ अनन्तर घोरनादिनी कालीदेवी अत्यन्त क्रोधसे भयंकर हास्य करने लगीं। हँसनेके समय कराल मुखमें दुर्दर्श दांतोंकी प्रभासे वह उज्ज्वल हुई ॥ १८ ॥ तब देवी

असिना निहताः केचित्केचित्खट्वांगताडिताः ॥ जग्मुर्विनाशमसुरा दंताग्राभिहता रणे ॥ १४ ॥ क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां निपातितम् ॥ दृष्ट्वा चंडोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥ १५ ॥ शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः ॥ छादयामास चक्रैश्च मुंडक्षिप्तैः सहस्रशः ॥ १६ ॥ तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् ॥ बभुर्यथार्कबिंबानि सुबहूनि घनोदरम् ॥ १७ ॥ ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी ॥ काली करालवक्रांतदुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥ १८ ॥ उत्थाय च महासिंहं देवी चंडमधावत ॥ गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥ १९ ॥ छिन्ने शिरसि दैत्येंद्रश्चक्रे नादं सुभैरवम् ॥ तेन नादेन महता त्रासितं भुवनत्रयम् ॥ २० ॥ अथ मुंडोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चंडं निपातितम् ॥ तमप्यपातयद्भूमौ खट्वांगाभिहतं रुषा ॥ २१ ॥ हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चंडं निपातितम् ॥ मुंडं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ॥ २२ ॥

महासिंहके ऊपर खडी होकर चण्डासुरके ऊपर दौडी और केश खैंचकर अपनी असिसे उसका मस्तक काट डाला ॥ १९ ॥ उस दैत्येन्द्रने शिर कटनेके समय अत्यन्त भयंकर गर्जना करी, उस महत्‌गर्जनासे तीनों भुवन त्रसित होगये ॥ २० ॥ चण्डको गिरता देखकर मुण्ड देवीकी ओर दौडा, तब देवीने उसकोभी खट्वांगसे काटकर धराशायी किया ॥ २१ ॥ अनन्तर मरनेसे बचीहुई सेना महावीर्यवान् चण्ड और मुण्डको मराहुआ देखकर भयातुर होकर चारों ओर दिशाओंमें भागने लगी ॥ २२ ॥

इसके पीछे चण्डासुरका मस्तक ग्रहण कर काली चंडिकाके निकट उपस्थित होकर प्रचण्ड अट्टहासके सहित कहने लगी ॥ २३ ॥ "मैंने महापशु चण्ड मुण्ड नामक दो असुरोंका हनन करके तुमको उपहार प्रदान किया किन्तु तुम युद्धयज्ञमें स्वयंही शुंभ और निशुंभको हनन करना" ॥२४॥ ऋषि बोले-उन चण्ड और मुण्ड नामक दोनों महाअसुरोंको उस अवस्थामें लायाहुआ देखकर कल्याणी चण्डिका देवी कालीसे अत्यन्त मधुर वचनोंके द्वारा कहने लगी ॥ २५ ॥ देवी बोली-तुम चण्ड और मुण्डको ग्रहण करके आई हो. इस कारण हे देवी ! लोकमें तुम "चामुण्डाके नामसे विख्यात

शिरश्चंडस्य काली सा गृहीत्वा मौंडमेव च ॥ प्राह प्रचंडाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चंडिकाम् ॥२३॥ मया तवात्रोपहृतौ चंडमुंडौ महापशू ॥ युद्धयज्ञे स्वयं शुंभं निशुंभं च हनिष्यासि ॥२४॥ ऋषिरुवाच ॥ तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चंडमुंडौ महासुरौ ॥ उवाच कालीं कल्याणी ललितं चंडिका वचः ॥२५॥ श्रीदेव्युवाच ॥ यस्माच्चंडं च मुंडं च गृहीत्वा त्वमुपागता ॥ चामुंडेति ततो लोके ख्याता देवी भविष्यसि ॥२६॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे चंडमुंडवधो नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ चंडे च निहते दैत्ये मुंडे च विनिपातिते ॥ बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥ १ ॥ ततः कोपपराधीनचेताः शुंभः प्रतापवान् ॥ उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥ २ ॥ अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः ॥ कंबूनां चतुराशीतिर्निर्यांतु स्वबलैर्वृताः ॥ ३ ॥ कोटिवीर्याणि पंचाशदसुराणां कुलानि वै ॥ शतं कुलानि धूम्राणां निर्गच्छंतु ममाज्ञया ॥ ४ ॥

होगी" ॥२६॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चण्डमुण्डवधो नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥ ऋषि बोले-चण्ड और मुण्डके नाशको प्राप्त होनेपर तथा समस्त सेनाके मारे जानेपर असुरोंके स्वामी ॥ १ ॥ प्रतापवान् शुंभने अत्यन्त क्रोधके वशीभूत होकर असुरोंकी समस्त सेनाको युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥ २ ॥ कि, अभी अपनी सब प्रकारकी सेनाको संग लेकर छियासी (८६) उदायुध नामक दैत्य और कम्बु नामक चौरासी (८४) दैत्य जाँय ॥ ३ ॥ कोटिवीर्य नामक असुरोंकी पचास कुल और धूम्रवंशजात एक सौ कुलोत्पन्न असुरगण मेरी आज्ञासे निर्गत हों ॥ ४ ॥

कालक; दौहद्द मुरवंशोत्पन्न और कालकेय असुरगण शीघ्र मेरी आज्ञासे सज्जित होकर युद्धमें जाय ॥ ५ ॥ असुरपति भैरवशासन शुंभ इस प्रकार आज्ञा देकर सहस्रों महासेनाको साथ लेकर युद्धके लिये निकला ॥६॥ अत्यन्त भयंकर उस सेनाके समूहको आताहुआ देखकर चण्डिकाने धनुषके प्रत्यंचाकी टंकारसे पृथ्वी और आकाशको परिपूर्ण करदिया ॥ ७ ॥ हे नृप ! अनन्तर देवीके वाहन सिंहने अत्यन्त महानाद किया तब अम्बिकाने भी अपने घंटेके शब्दसे उस सिंहनादको दूना करदिया ॥ ८ ॥ धनुषके प्रत्यंचाकी टंकार तथा सिंह और घंटेके नादसे दिशाओंके मुख भरगये । फिर कालीने अपने मुखको चौडा कर अत्यन्त भयंकर नादसे जय जय शब्द किया ॥ ९ ॥ उस शब्दको सुनकर दैत्योंकी सेनाने क्रोधपूर्वक चण्डिकादेवी काली देवी और

कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः ॥ युद्धाय सज्जा निर्यांतु आज्ञया त्वरिता मम ॥ ५ ॥ इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुंभो भैरवशासनः ॥ निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥ ६॥ आयांतं चंडिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् ॥ ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनांतरम् ॥ ७ ॥ स च सिंहो महानादमतीव कृतवान्नृप ॥ घंटास्वनेन तन्नादमंबिका चाप्यवृंहयत् ॥ ८ ॥ धनुर्ज्यासिंहघंटानां नादापूरितदिङ्मुखा ॥ निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना ॥ ९ ॥ तन्निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ॥ देवी सिंहस्तथा काली शरोघैः परिवारिताः ॥ १० ॥ एतस्मिन्नंतरे भूप विनाशाय सुरद्विषम् ॥ भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विता ॥ ११ ॥ ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेंद्रस्य च शक्तयः ॥ शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चंडिकां ययुः ॥ १२ ॥ यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम् ॥ तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान्योद्धुमाययौ ॥ १३ ॥

सिंहको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १० ॥ हे भूप ! इसी अवसरमें असुरोंका विनाश करनेके लिये और देवताओंका कल्याण करनेके निमित्त अत्यन्त वीर्य और बलसे युक्त ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, शिव, स्वामी कार्तिक, विष्णु तथा इन्द्रके शरीरसे पृथक् पृथक् शक्तियां निकलकर और उन्हीं देवताओंके समान रूपधारणपूर्वक चण्डिकाके पास आई ॥ १२ ॥ जिस देवताका जैसा रूप जैसा भूषण और जैसा वाहन था. उस देवताके शरीरसे निकलीहुई शक्तिभी उसी प्रकार रूप, उसी प्रकार भूषण और उसी प्रकार वाहनसे मण्डित होकर असुरोंसे युद्ध करनेके लिये आई ॥ १३ ॥

हंसयुक्त विमानके ऊपर हाथमें अक्षमाला और कमण्डलु लेकर जो ब्रह्माजीकी शक्ति आई वह ब्रह्माणीके नामसे विख्यात है ॥ १४ ॥ और बैलपर चढी-हुई त्रिशूल तथा वरको धारण किये, चन्द्ररेखासे शोभायमान और बडे बडे सर्पोंके कंकण पहिरे शिवकी शक्ति माहेश्वरी आई ॥ १५ ॥ शक्ति हाथमें लिये गुहरूपिणी कौमारी शक्ति सुंदर मोरके वाहनपर चढकर युद्ध करनेके लिये आई ॥ १६ ॥ गरुडके ऊपर स्थित हुई वैष्णवी शक्ति शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग और खड्ग धारण करके आई ॥१७॥ यज्ञवराहरूपधारी भगवान् विष्णुकी जो शक्ति है, वहभी वराहरूप धारण करके आई ॥१८॥ नारसिंहीशक्ति नृसिंहरूप धारण करके आई और उनके सटाकेशोंके हिलनेसे नक्षत्रोंकी पंक्ति इधर उधर हिलने लगी ॥ १९ ॥ गजराजके ऊपर चढीहुई हजार नेत्रवाली

हंसयुक्तविमानस्था साक्षसूत्रकमंडलुः ॥ आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥ १४ ॥ माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी ॥ महाहिवलया प्राप्ता चन्द्रलेखाविभूषणा ॥ १५ ॥ कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना ॥ योद्धुमभ्याययौ दैत्यानंबिका गुहरू-पिणी ॥१६॥ तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता ॥ शंखचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥१७॥ जज्ञे वाराहमतुलं रूपं या बिभ्रती हरेः ॥ शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम् ॥ १८ ॥ नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ॥ प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्र-संहतिः ॥ १९ ॥ वज्रहस्ता तथैवैंद्री गजराजोपरि स्थिता ॥ सहस्रनयना प्राप्ता यथा शक्रस्तथैव सा ॥ २० ॥ ततः परिवृतस्ताभिरी-शानो देवशक्तिभिः ॥ हन्यंतामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याह चंडिकाम् ॥ २१ ॥ ततो देवीशरीरात्त विनिष्क्रांतिभीषणा ॥ चंडिका शक्तिर-त्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥ २२ ॥ सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता ॥ दूत त्वं गच्छ भगवन्पार्श्वं शुंभनिशुंभयोः ॥ २३ ॥

ऐन्द्री शक्ति हाथमें वज्र लियेहुए आई, उसकी आकृति इन्द्रकेही अनुरूप थी ॥ २० ॥ अनन्तर उन सब देवताओंकी शक्तियोंके समेत महादेवजीने चण्डिकासे कहा–" इन सब असुरोंको मेरी प्रसन्नताके लिये शीघ्र हनन करो " ॥२१॥ इसके उपरान्त देवीके शरीरसे अत्यन्त उग्र अत्यन्त भयंकर सौ शिवाओंके समान नाद करनेवाली चण्डिकाशक्ति निकली ॥२२॥ उन अपराजिता चण्डिका देवीने धूम्रवर्ण जटाशाली महेश्वरसे कहा–हे भगवन् ! तुम शुंभ और निशुंभके निकट दूत होकर जाओ ॥२३॥

और जाकर अत्यन्त गर्वित शुंभ निशुंभ तथा युद्धके निमित्त उपस्थित दानवोंसे कहो कि ॥ २४ ॥ "हे दानवो ! इन्द्र त्रैलोक्यलाभ करे, देवता पुनर्वार हवि भोजन करे, और तुम यदि जीवित रहनेकी इच्छा करतेहो तो पातालमें चले जाओ ॥ २५ ॥ अथवा बलके गर्वसे गर्वित होकर यदि तुम युद्धकी इच्छा रखते हो तो आओ, मेरी यह शिवागण तुम्हारे रुधिरसे तृप्ति लाभ करैं" ॥ २६ ॥ उन देवीने स्वयं शिवको दूतकार्यमें नियुक्त किया. इस कारण वह इस लोकमें शिवदूतीके नामसे विख्यात हुई ॥ २७ ॥ महेश्वरके मुखसे देवीके इस प्रकार वचन सुनकर वह महासुर क्रोधपूर्वक जहां कात्यायनी स्थित थी

ब्रूहि शुम्भं निशुंभं च दानवावतिगर्वितौ ॥ ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥ २४ ॥ त्रैलोक्यमिंद्रो लभतां देवाः संतु हविर्भुजः ॥ यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥ २५ ॥ बलावलेपादथ चेद्भवंतो युद्धकांक्षिणः ॥ तदा गच्छत तृप्यंतु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥ २६ ॥ यतो नियुक्तो दूत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् ॥ शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ॥ २७ ॥ तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः ॥ अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥ २८ ॥ तत प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ॥ ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ॥ २९ ॥ सा च तत्प्रहितान्बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ॥ चिच्छेद लीलयाध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥ ३० ॥ तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् ॥ खट्वांगपोथितांश्चारीन्कुर्वंती व्यचरत्तदा ॥ ३१ ॥ कमंडलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजसः ॥ ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून्येन येन स्म धावति ॥ ३२ ॥

वहां गये ॥ २८ ॥ तदनन्तर वह अत्यन्त क्रोधित असुर प्रथम उन देवीके आगे शर, शक्ति और ऋष्टि इत्यादिकी वर्षा करने लगे ॥ २९ ॥ उन सब असुरोंके चलायेहुए बाण, शूल, चक्र और फरशे इत्यादि सबको चण्डिकादेवीने धनुष खैंचकर छोडेहुए बडे बडे बाणोंसे लीलापूर्वकही काटडाला ॥ ३० ॥ उसी समयमें उन चण्डिकादेवीके सन्मुख काली किसी किसी असुरको शूलसे चीरती और किसीको खट्वांगसे कुचलतीहुई विचरण करने लगी ॥ ३१ ॥ शत्रुगण जिस जिस ओरको दौडने लगे उसी उसी ओरमें ब्रह्माणी शक्ति उनके ऊपर कमण्डलुका जल वर्षाकर उनको हतवीर्य और हततेज करने लगी ॥ ३२ ॥

माहेश्वरी शक्ति त्रिशूलद्वारा और वैष्णवी शक्ति चक्रद्वारा दैत्योंको हनन करने लगी। अत्यन्त क्रोधित कौमारी शक्तिने शक्तिद्वारा अनेक दैत्योंको हनन किया ॥ ३३ ॥ और ऐन्द्रीके वज्रप्रहारसे विदारित सैकडों दैत्य दानव रुधिरको वमन करते करते पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ३४ ॥ वराहमूर्त्ति शक्तिके मुख-प्रहारसे विध्वस्त चक्रप्रहारसे विदारित और दंष्ट्राके अग्रभागसे छातीके कटजानेपर दैत्यगण गिरने लगे ॥ ३५ ॥ गर्जन द्वारा दिशा और आकाशको पूर्ण करके नारसिंही शक्ति नखविदारित असुरोंको भक्षण करते करते युद्धक्षेत्रमें विचरण करने लगी ॥ ३६ ॥ शिवदूतीके प्रचंड अट्टहासद्वारा अभिहत होकर असुरगण पृथ्वीमें गिरने लगे। तब देवी शिवदूतीभी उन गिरेहुए असुरोंको भक्षण करनेलगी ॥ ३७ ॥ इस प्रकार अनेक उपाय क्रोधसहित मर्दन करती

माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ॥ दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥ ३३ ॥ ऐंद्री कुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः ॥ पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥ ३४ ॥ तुंडप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ॥ वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥ ३५ ॥ नखैर्विदारितांश्चान्यान्भक्षयंती महासुरान् ॥ नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगंतरा ॥ ३६ ॥ चंडाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः ॥ पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥ ३७ ॥ इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयंतं महासुरान् ॥ दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥३८॥ पलायनपरान्दृष्ट्वा दैत्यान्मातृगणार्दितान् ॥ योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥ ३९ ॥ रक्तबिंदुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः ॥ समुत्पतति मेदिन्यास्तत्प्रमाणो महासुरः ॥४०॥ युयुधे स गदापाणिरिंद्रशक्त्या महासुरः ॥ ततश्चैंद्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥ ४१ ॥

हैं यह देखकर संपूर्ण असुरोंकी सेना भागने लगी ॥ ३८ ॥ मातृगणोंके द्वारा पीडित होकर दैत्यगण भागते हैं. यह देखकर रक्तबीज नामक महाअसुर क्रोधपूर्वक युद्ध करनेके लिये आया ॥ ३९ ॥ इस रक्तबीज महाअसुरके शरीरसे एक बूंद रक्त जब भूमिमें गिरता तब उसी समय भूमिसे उसके अनुरूप एक असुर उत्पन्न हो जाता ॥ ४० ॥ वही महाअसुर रक्तबीज गदा हाथमें ले इन्द्रकी शक्तिके संग युद्ध करने लगा। तब ऐन्द्रीने अपने वज्रसे रक्तबीजको ताडित किया ॥ ४१ ॥

फिर वज्रपीडित रक्तबीजके शरीरसे जैसेही रुधिरसे उसीके अनुरूप और समान पराक्रमशाली अनेक योद्धा उत्पन्न होगये ॥ ४२ ॥ रुधिर टपका वैसेही उस टपकेहुए उसके शरीरसे रक्तकी जितनी बूँदें गिरीं उतनेही पुरुष उत्पन्न हुए वह पुरुष बल, वीर्य और पराक्रममें रक्तबीजकेही सदृश थे ॥ ४३ ॥ वह रक्तकी बूँदोंसे उत्पन्न हुए पुरुषभी मातृगणोंके संग उस रणक्षेत्रमें अत्यन्त उग्र शस्त्र चलाकर अतिभयंकर युद्ध करने लगे ॥ ४४ ॥ पुनर्वार जब ऐन्द्रीने वज्रपातसे इस असुरका मस्तक काटा, तब उस क्षतस्थानसे रक्तप्रवाह बहने लगा, और उससे हजार हजार असुर उत्पन्न हुए ॥ ४५ ॥ वैष्णवी शक्तिने युद्धस्थलमें

कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम् ॥ समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ ४२ ॥ यावंतः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिं-
दवः ॥ तावंतः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥ ४३ ॥ ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः ॥ समं मातृभिरत्युग्रं शस्त्रपातातिभी-
षणम् ॥ ४४ ॥ पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा ॥ ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥ ४५ ॥ वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणा-
भिजघान ह ॥ गदया ताडयामास ऐंद्री तमसुरेश्वरम् ॥ ४६ ॥ वैष्णवचक्राभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः ॥ सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्म-
हासुरैः ॥ ४७ ॥ शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना ॥ माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥ ४८ ॥ स चापि गदया दैत्यः
सर्वा एवाहनत्पृथक् ॥ मातॄः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥ ४९ ॥ तस्या हतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि ॥ पपात यो वै रक्तौ-
घस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ॥ ५० ॥

उसको चक्रसे काटा और ऐन्द्रीने गदासे इस असुरेश्वरको ताडन किया ॥ ४६ ॥ वैष्णवीके चक्रसे कटेहुए उस असुरके रुधिर बहनेसे उत्पन्न हुए उसीके सदृश हजारों बडे बडे असुरोंसे जगत् व्याप्त होगया ॥ ४७ ॥ कौमारी शक्तिद्वारा वाराही असिद्वारा और माहेश्वरी त्रिशूलद्वारा उस महाअसुर रक्तबीजको मारने लगीं ॥ ४८ ॥ और वह महा असुर रक्तबीज भी क्रोधयुक्त होकर गदाद्वारा समस्त मातृगणोंको पृथक् पृथक् मारने लगा ॥ ४९ ॥ शक्ति, शूल आदि नाना प्रकारके अस्त्रोंसे आहत उस रक्तबीजके शरीरसे जो रक्त भूमिमें गिरा उससे सैकडों असुर उत्पन्न हुए ॥ ५० ॥

मा० पु०
॥२६८॥

उस असुरके रक्तसे उत्पन्न हुए असुरोंने संपूर्ण जगतको व्याप्त करदिया । तब देवता अत्यन्त भीत हुए ॥ ५१ ॥ अनन्तर देवताओंको इस प्रकार डराहुआ देखकर चंडिकाने शीघ्रतासहित कालीसे कहा हे चामुण्डे ! तुम अपना मुख फैलाओ ॥५२॥ और मेरे शस्त्रघातसे उत्पन्न हुई रक्तकी बूंदोंको तथा रक्तकी बूँदोंसे उत्पन्न हुए महा असुरोंको तुम इस मुखमें वेगसहित ग्रहण करो ॥ ५३ ॥ और उससे उत्पन्न हुए महाअसुरोंको भक्षण करतीहुई रणमें विचरती रहो, ऐसा करनेसे जब इस दैत्यका रुधिर क्षीण हो जायगा, तब यह विनाशको प्राप्त होगा ॥ ५४ ॥ जब तुम उसको भक्षण करना आरंभ करोगी, फिर

तैश्चासुरासृक्संभूतैरसुरैः सकलं जगत् ॥ व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥ ५१ ॥ तान्विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चंडिका प्राह सत्वरा ॥ उवाच कालीं चामुंडे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥ ५२ ॥ मच्छस्त्रपातसम्भूतान्रक्तबिंदून्महासुरान् ॥ रक्तबीजात्प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ॥ ५३ ॥ भक्षयंती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान् ॥ एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥ भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा नैवोत्पत्स्यंति चापरे ॥ ५४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ॥ मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् ॥ ५५ ॥ ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चंडिकाम् ॥ न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि ॥ ५६ ॥ तस्या हतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् ॥ यतस्ततः स्ववक्त्रेण चामुंडा संप्रतीच्छति ॥ ५७ ॥ मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः ॥ तां चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् ॥ ५८ ॥

मा० टी०
अ० ८९

वह उत्पन्न नहीं हो सकेगा । ऋषि बोले–कालीसे यह बात कहकर चण्डिकादेवीने त्रिशूलसे उस असुरको घायल किया और काली उस घायल रक्तबीजका शोणित मुखमें ग्रहण करने लगी ॥५५॥ तब उस रक्तबीज असुरने रणक्षेत्रमें गदासे देवीको आघात किया, किन्तु उस गदाके प्रहारसे देवीको अल्प मात्र वेदनाभी उत्पन्न नहीं करसका ॥ ५६ ॥ इधर उस घायलहुए असुरके शरीरसे जो रुधिर गिरा, चामुण्डाने वह सब शोणित मुखमें ग्रहण किया ॥ ५७ ॥ चामुण्डादेवीके मुखमें रक्त गिरनेसे जो महाअसुर उत्पन्न हुए, वह उन सब असुरोंको रुधिरके सहित भक्षण करने लगीं ॥ ५८ ॥

जब चामुण्डाने इस प्रकार रक्तबीजका शोणित पान किया तब चण्डिकादेवीने उसको शूल, चक्र, बाण, असि और रिष्टिसे हनन किया ॥ ५९ ॥ अनन्तर हे महीपाल ! वह महाअसुर रक्तबीज शस्त्रोंके समूहसे मारा हुआ नीरक्त अर्थात् रुधिरहीन होकर पृथिवीतलमें गिरपडा ॥ ६० ॥ हे नृप ! तदनन्तर देवताओंने अतुलहर्ष प्राप्त किया और मातृगण असुरोंका रक्त पीनेसे मदोद्धत होकर नृत्य करने लगीं ॥६१॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये भाषाटीकाया पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ राजाने कहा–हे भगवन् ! आपने रक्तबीजवधविषयक अद्भुत देवीचरित्रका माहात्म्य मुझसे वर्णन किया॥ १॥

देवी शूलेन चक्रेण बाणैरसिभिरिष्टिभिः ॥ जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् ॥ ५९ ॥ स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसंहतितो हतः ॥ नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः ॥ ६० ॥ ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ॥ तेषां मातृगणो मत्तो ननर्त्तासृङ्मदोद्धतः ॥६१॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ राजोवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्भवता मम ॥ देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥ १॥ भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते ॥ चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ॥२॥ ऋषिरुवाच ॥ चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते ॥ शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥३॥ हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् ॥ अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया ॥ ४ ॥ तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः ॥ संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हंतुं देवीमुपाययुः ॥ ५ ॥

अब रक्तबीजके मारे जानेपर अत्यन्त क्रोधित शुंभ और निशुंभने जो कार्य किया, उसके सुननेकी इच्छा करताहूं ॥ २ ॥ ऋषि बोले–समरमें रक्तबीजके मारेजानेपर और अन्यान्य सेनाके निहत होनेपर शुंभ और निशुंभ दोनों असुर अत्यन्त क्रोधयुक्त हुए ॥ ३॥ अनन्तर उस सब सेनाको निहत होता देखकर अत्यन्त क्रोधसे असुरोंकी मुख्य सेनाको साथ लेकर निशुंभासुर देवीके सन्मुख दौडा ॥ ४॥ और उस दैत्यके आगे तथा पीछे और दोनों ओर बडे बडे असुर अपने २ होठोंको चबाते हुए क्रोधपूर्वक देवीको विनाश करनेके निमित्त आये ॥ ५ ॥

फिर अपनी सेनाको साथ लिये महावीर्यवान् शुंभासुरभी मातृगणोंके संग युद्ध करके देवीको मारनेके अर्थ क्रोधित होकर आया ॥ ६ ॥ तब देवीके संग जलवर्षणकारी दो मेघोंकी समान अत्यन्त प्रचंड शरवर्षण करी शुंभ और निशुंभका भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ७ ॥ चण्डिका उन दोनों असुरोंके चलाये शरसमूहको अपने शरसमूहद्वारा शीघ्र काटकर शस्त्रोंसे दोनों असुरेश्वरोंके अंगोंमें ताडना करने लगीं ॥ ८ ॥ पैनी तलवार और चमकती हुई ढाल लेकर निशुंभने देवीके उत्तम वाहन सिंहके मस्तकमें मारी ॥ ९ ॥ वाहनको ताडित देखकर देवीने क्षुरप्र नामक अस्त्रसे निशुंभकी उत्तम तलवार

आजगाम महावीर्यः शुंभोऽपि स्वबलैर्वृतः ॥ निहंतुं चंडिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥ ६ ॥ ततो युद्धमतीवासीद्देव्याः शुंभनिशुंभयोः ॥ शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥ ७ ॥ चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चंडिका स्वशरोत्करैः ॥ ताडयामास चांगेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥ ८ ॥ निशुंभो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् ॥ अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥९॥ ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ॥ निशुंभस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचंद्रकम् ॥१०॥ छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ॥ तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥ ११ ॥ कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः ॥ आयांतं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥ १२॥ अथादाय गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ॥ सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥ १३ ॥ ततः परशुहस्तं तमायांतं दैत्यपुंगवम् ॥ आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥ १४ ॥

काटकर अष्टचन्द्रक ढालभी काटडाली ॥ १० ॥ तलवार और ढालके कटजानेपर निशुंभासुरने शक्ति छोडी किन्तु देवीने उस सामने आतीहुई शक्तिकेभी चक्रद्वारा दो खंड करदिये ॥ ११ ॥ अनन्तर कोपमें भरे हुए असुर दानवने शूल ग्रहण करके चलाया और देवीने आतेहुए उस शूलकोभी मुष्टिपातसे चूर्ण करडाला ॥ १२ ॥ तब उस असुरने गदा घुमाकर चलाई, किन्तु उस गदाकोभी देवीने त्रिशूलसे तोडकर भस्म करदिया ॥ १३ ॥ फिर फरसा हाथमें लेकर आयेहुए उस दैत्यश्रेष्ठ निशुंभको देवीने बाणोंसे घायल करके पृथ्वीमें गिरादिया ॥ १४ ॥

भयंकर विक्रम भ्राता निशुंभको भूमिमें गिरताहुआ देखकर शुंभासुर अत्यन्त क्रोधसे देवीके मारनेको गया ॥ १५ ॥ और बडे बडे आयुध लेकर तथा अत्यन्त लम्बी लम्बी अतुल पराक्रमवाली आठ भुजाओंसे युक्त वह रथमें बैठकर और समस्त आकाशमण्डलमें व्याप्त होकर दीखने लगा ॥ १६ ॥ उसको आताहुआ देखकर देवीने शंख बजाया और अत्यन्त दुःसह धनुष्यकी प्रत्यंचाका शब्द किया ॥ १७ ॥ तथा समस्त दैत्योंकी सेनाका तेज विनाश करनेवाले अपने घंटेके शब्दसे संपूर्ण दिशाओंको पूरित करदिया ॥ १८ ॥ फिर हाथियोंके महामदको दूर करनेवाले महानादसे सिंहनेभी आकाश, पृथ्वी

तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे ॥ भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हंतुमंबिकाम् ॥ १५ ॥ सरथस्थस्तदात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ॥ भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥ १६ ॥ तमायांतं समालोक्य देवी शंखमवादयत् ॥ ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥ १७ ॥ पूरयामास ककुभो निजघंटास्वनेन च ॥ समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥ १८ ॥ ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः ॥ पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥ १९ ॥ ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् ॥ कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥ २० ॥ अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह ॥ तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥ २१ ॥ दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहारांबिका यदा ॥ तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥ २२ ॥ शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा ॥ आयांती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥ २३ ॥

और दशों दिशाओंको पूरित करदिया ॥ १९ ॥ अनन्तर कालीने आकाशमें उछलकर फिर दोनों हाथोंसे पृथ्वीमें आघात किया, उस आघातके शब्दसे पहला संपूर्ण शब्द मन्द होगया ॥ २० ॥ शिवदूतीने भी शत्रुओंका अमंगलकारी अत्यन्त उच्च हास्य किया, उस शब्दसे असुरगण त्रसित (दुःखी) हुए और फिर शुंभ अतिशय क्रोधित हुआ ॥ २१ ॥ जब अम्बिकाने शुंभसे "दुरात्मन् ! ठहर, ठहर" इस प्रकार कहा, तब आकाशमें स्थित हुए देवता जय जय शब्द करनेलगे ॥ २२ ॥ शुंभासुरने आनकर उग्रदीप्ति अतिभयंकर जो शक्ति छोडी उस अग्निकी समान आतीहुई शक्तिको देवीने महोल्कानाम्नी शक्तिसे काटकर दूर फेंकदी ॥ २३ ॥

अनन्तर शुम्भके सिंहनादसे तीनों लोक व्याप्त होगये. तब हे अवनीपाल! आकाशसे उत्पन्न हुए विद्युत्के घोर शब्दने उस शुंभके नादको जीत लिया ॥ २४ ॥ शुंभके चलाये शतसहस्र बाण देवीने अपने उग्र बाणोंसे काटडाले और शुंभनेभी देवीके चलाये सैकडों हजारों बाणोंको अपने उग्र बाणोंसे काट डाले ॥ २५ ॥ इसके पीछे उन चण्डिका देवीने क्रोधित होकर शूलद्वारा घायल किया और शूलाहत शुंभासुर मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिरगया ॥ २६ ॥ अनन्तर निशुंभासुर चेतना प्राप्त कर धनुषधारणपूर्वक बाणोंसे देवी काली और सिंहको घायल करने लगा ॥२७॥ फिर दनुजपति निशुंभदैत्यने दश हजार बाहु धारण करके चक्र और आयुधोंके द्वारा चण्डिका देवीको आच्छादित कर दिया ॥ २८ ॥ तब संकटनाशिनी भगवती दुर्गाने क्रोधित होकर उन

सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयांतरम् ॥ निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥ २४ ॥ शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिता-ञ्छरान् ॥ चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२५॥ ततः सा चंडिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् ॥ स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ॥ २६ ॥ ततो निशुंभः संप्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः ॥ आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ॥ २७॥ पुनश्च कृत्वा बाहू-नामयुतं दनुजेश्वरः ॥ चक्रायुतेन दितिजश्छादयामास चंडिकाम् ॥ २८ ॥ ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी ॥ चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥ २९ ॥ ततो निशुंभो वेगेन गदामादाय चंडिकाम् ॥ अभ्यधावत वै हंतुं दैत्यसेनासमावृतः ॥ ३० ॥ तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चंडिका ॥ खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥३१॥ शूलहस्तं तमायान्तं निशुंभममरार्दनम् ॥ हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चंडिका ॥ ३२॥ भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः ॥ महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥३३॥

समस्त चक्र और बाणोंको अपने बाणोंसे काट डाला ॥ २९ ॥ तदनन्तर दैत्योंकी सेना साथ लिये निशुंभ उन देवीको हनन करनेके लिये गदा ग्रहण करके अत्यन्त वेगसे दौडा ॥ ३० ॥ तब आतीहुई निशुंभासुरकी उस गदाको देवी चण्डिकाने तीक्ष्णधारवाले खड्गसे काटडाली फिर निशुंभने शूल ग्रहण किया ॥ ३१ ॥ अनन्तर शूल ग्रहण करके सन्मुख आतेहुए निशुंभासुरको देवीने अत्यन्त वेगसे अपना त्रिशूल चलाकर हृदयमें विद्ध किया ॥ ३२ ॥ फिर शूलद्वारा भिन्न उस असुरके हृदयसे अन्य एक पुरुष महाबल और महावीर्यवान् देवीसे "ठहर" यह बात कहताहुआ निकला ॥ ३३ ॥

तब देवीने नादपूर्वक हँसकर उस बाहर निकलेहुए असुरका मस्तक खड्गसे काटडाला और वह भूमिमें गिरगया ॥ ३४ ॥ अनन्तर तीक्ष्ण दांतोंके द्वारा गर्दन चाबकर सिंह असुरोंको भक्षण करने लगा तथा शिवदूती और काली अन्यान्य असुरोंको भक्षण करने लगीं ॥ ३५ ॥ कोई कोई महाअसुर कौमारीशक्तिकी शक्तिसे कटकर मरगये । ब्रह्माणीके मंत्रपूत जलका स्पर्श करनेसे अपरापर अनेक असुर नष्ट होगये ॥ ३६ ॥ अपर अनेक असुर माहेश्वरीके त्रिशूलाघातसे भिन्न होकर गिरपडे और कोई कोई असुर वाराहीके मुखके प्रहारसे चूर्ण होकर भूमिमें गिरगये ॥ ३७ ॥ अन्यान्य दानवोंको

तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः ॥ शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥ ३४ ॥ ततः सिंहश्चखादोग्रदंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ॥ असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥ ३५ ॥ कौमारी शक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः ॥ ब्राह्मणीमंत्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥ ३६ ॥ माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे ॥ वाराहीतुंडघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥ ३७ ॥ खंडं खंडं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः ॥ वज्रेण चैंद्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ॥ ३८ ॥ केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् ॥ भक्षिताश्चापरे काली शिवदूतीमृगाधिपैः ॥३९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये निशुंभवधो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥ ऋषिरुवाच ॥ निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसंमितम् ॥ हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ १ ॥ बलावलेपाद्दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह ॥ अन्यासां बलमाश्रित्य युध्यसे याति मानिनी ॥ २ ॥

वैष्णवीने चक्रसे खंड २ कर डाला और ऐन्द्रीके हाथसे छुटेहुए वज्रद्वारा आहत होकर अपर असुरोंमें ॥ ३८ ॥ कोई नष्ट हुए, कोई कोई महायुद्धसे भागगये । तथा जो असुर बचेथे, उनको काली शिवदूती और सिंहने भक्षण कर लिया ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे देवीमाहात्म्ये भाषाटीकायां षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ऋषि बोले–प्राणतुल्य भ्राता निशुंभ और सेनाको मराहुआ देखकर शुंभने क्रोधित होकर कहा ॥ १ ॥ हे दुष्टे दुर्गे ! तू बलके अभिमानसे गर्व मत करै, तू औरोंके बलके आश्रयसे अत्यन्त मानवती होकर युद्ध करती है ॥ २ ॥

देवी बोली–रे दुष्ट ! इस जगत्में एक मैंही विद्यमान हूं, मेरे अतिरिक्त दूसरा कौन है ? देख यह सब मेरी विभूति मुझमेंही प्रवेश करती हैं ॥ ३ ॥ ऋषि बोले--अनन्तर ब्रह्माणी इत्यादि समस्त शक्तियें देवीके शरीरमें विलीन होगईं तब अम्बिका अकेली विद्यमान रहगई ॥ ४ ॥ फिर देवीने कहा--रे शुंभ ! मैं अपनी विभूतिके द्वारा इस स्थानमें बहुतरूपसे स्थित थी अब उन सब रूपोंका संहार करके युद्धक्षेत्रमें अकेलीही रह गई हूं तू स्थिर हो ॥ ५ ॥ ऋषि बोले--अनन्तर देखतेहुए देवता और असुरोंके सन्मुख देवी और शुम्भासुर, इन दोनोंका दारुण युद्ध उपस्थित हुआ ॥ ६ ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ॥ पश्यैता दुष्ट मय्येव विशंत्यो मद्विभूतयः ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् ॥ तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासत्तिदांबिका ॥ ४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ॥ तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥ ५॥ ऋषिरुवाच ॥ ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः ॥ पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥ ६ ॥ शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथा चास्त्रैः सुदारुणैः ॥ तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयंकरम् ॥ ७ ॥ दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथांबिका ॥ बभंज तानि दैत्येंद्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥ ८ ॥ मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ॥ बभंज लीलयैवोग्रहुंकारोच्चारणादिभिः ॥ ९ ॥ ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः ॥ सा च तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥ १० ॥

फिर उन देवी और शुंभासुरकी शरवृष्टि शाणित शस्त्र और दारुण अस्त्रोंके परस्पर महारद्वारा संपूर्ण लोकोंको भय उत्पन्न करनेवाला युद्ध आरंभ हुआ ॥ ७ ॥ अम्बिकाने जो शत शत दिव्यास्त्र छोडे उन समस्त दिव्य अस्त्रोंको उस दैत्येन्द्र शुंभासुरने, उन अस्त्रोंको काटनेवाले अस्त्रोंके द्वारा काटडाला ॥ ८ ॥ और शुंभासुरने जो दिव्यास्त्र छोडे उन सब दिव्य अस्त्रोंको परमेश्वरी चण्डिकानेभी लीलापूर्वकही उग्र हुंकारोच्चारणादिद्वारा तोड डाला ॥ ९ ॥ फिर उस महाअसुरने सैकडों बाण वर्षांकर देवीको ढकदिया । तब देवीनेभी कुपित होकर बाणोंसे उसका धनुष काटडाला ॥ १० ॥

धनुषके कटजाने पर दैत्यपतिने शक्ति ग्रहण की, किन्तु देवीने शुंभके हाथमें स्थित उस शक्तिकोभी चक्रसे काटडाला ॥ ११ ॥ तब दैत्याधिपति शुंभ खड्ग और दीप्तियुक्त शतचन्द्र विशिष्ट ढाल ग्रहण करके देवीके ऊपर दौडा ॥ १२ ॥ तब आतेहुए शुंभके खड्ग और सूर्यकी किरणसदृश निर्मल चर्म (ढाल) को चण्डिकाने धनुषसे छोडेहुए पैने बाणोंसे काटडाला ॥ १३ ॥ जब उस दैत्यपतिके रथके घोडे मरगये, धनुष टूटगया और सारथी निहत होगया, तब वह घोर मुद्गर ग्रहण करके अम्बिकाके मारनेको उद्यत हुआ ॥ १४ ॥ तब देवीने सन्मुख आतेहुए असुरका मुद्गर पैने बाणोंसे काटडाला, किन्तु

छिन्ने धनुषि दैत्येंद्रस्तथा शक्तिमथाददे ॥ चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥११॥ ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ अभ्यधावत तां हंतुं दैत्यानामाधिपेश्वरः ॥ १२ ॥ तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चंडिका ॥ धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥ १३ ॥ अश्वांश्च पातयामास रथं सारथिना सह ॥ हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः ॥ जग्राह मुद्गरं घोरमंबिकानिधनोद्यतः ॥ १४ ॥ चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः ॥ तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥ १५ ॥ स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुंगवः ॥ देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥१६॥ तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले ॥ स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥ १७ ॥ उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः ॥ तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चंडिका ॥ १८ ॥ नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् ॥ चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥ १९ ॥

तोभी वह महाअसुर घूंसा तानकर अत्यन्त वेगसे देवीकी ओर दौडा ॥ १५ ॥ दैत्यश्रेष्ठने वह घूँसा देवीके हृदयमें मारा। तब देवीनेभी थप्पड द्वारा उसकी छातीमें प्रहार किया ॥ १६ ॥ थप्पडके प्रहारसे पीडित होकर दैत्यराज महीतलमें गिरगया और तत्कालही फिर उठा ॥ १७ ॥ अनन्तर देवीको ग्रहणपूर्वक उछलकर शुंभ आकाशमें स्थित हुआ और देवीभी आकाशमें निरालम्ब होकर उसके संग नियुद्ध[1] करने लगीं ॥ १८ ॥ फिर आकाशमें शुंभ और चण्डिकादेवी प्रथम सिद्ध और मुनियोंको आश्चर्य करनेवाला युद्ध करने लगी ॥ १९ ॥

---

१ शस्त्र हाथमें लिये विना केवल भुजासे युद्ध करनेको " नियुद्ध " कहते हैं।

उस असुरके संग बहुत कालतक नियुद्ध करके उसे ऊपरको उछालकर घुमाया और फिर पृथ्वीमें पटक दिया ॥ २० ॥ तब वह दुष्टात्मा असुर पृथ्वीमें गिर-कर अत्यन्त वेगसे घूँसा उठाय चण्डिकाको मारनेकी इच्छासे दौडा ॥ २१ ॥ उस सर्वदैत्येश्वर शुंभको आताहुआ देखकर देवीने अपने शूलसे उसका हृदय वेधकर उसको भूमिमें गिरादिया ॥ २२ ॥ देवीके शुलाग्रद्वारा शुंभासुरका हृदय घायल हुआ और जब वह प्राणरहित होकर भूमिमें गिरा, उस समय समुद्र द्वीप और पर्वतोंके सहित संपूर्ण पृथ्वी विचलित हुई ॥ २३ ॥ फिर उस दुरात्मा असुरके मारेजानेपर सब प्रसन्न हुए, जगत् अत्यन्त स्वस्थ हुआ और आकाशभी अत्यन्त निर्मल होगया ॥ २४ ॥ जो सब अनिष्टसूचक मेघ और उल्कागण शुंभके रहते विद्यमान थे, शुंभके मारेजानेपर वह

ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनांबिका सह ॥ उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥२०॥ स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः ॥ अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥ २१ ॥ तमायांतं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् ॥ जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥ २२ ॥ स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः ॥ चालयन्सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥ २३ ॥ ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन्दुरात्मनि ॥ जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ॥ २४ ॥ उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः ॥ सरितो मार्गवाहिन्यस्तथा शुंभे निपातिते ॥ २५ ॥ ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ॥ बभूवुर्निहते तस्मिन्गंधर्वा ललितं जगुः ॥ २६ ॥ अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ २७ ॥ जज्वलुश्चाग्नयः शांताः शांतदिग्जनितस्वनाः ॥ २८ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे देवीमाहात्म्ये शुम्भवधो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अदृश हुए और नदियें अपने अपने मार्गोंमें बहने लगीं ॥ २५ ॥ और उसके निहत होनेपर समस्त देवतागण अत्यन्त हर्षिताचित्त हुए और गंधर्व मधुर गान करने लगे ॥ २६ ॥ कोई बाजा बजानेलगे और अप्सरागण नृत्य करनेलगे, सुंदर शीतल वायु चलने लगी और दिवाकर (सूर्य) नेभी सुन्दर प्रभा धारण करी ॥ २७ ॥ बुझीहुई होमकी अग्नि जलने लगी और दिशाओंमें शांत शांत शब्द होने लगे ॥ २८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये भाषाटीकायां शुम्भवधो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

ऋषि बोले--जब देवीने उस महा असुरेन्द्रका संहार कर डाला, तब इन्द्र और अग्निको आगे करके समस्त देवता अपने इष्ट फलकी प्राप्ति होजानेके कारण अपने प्रसन्न मुखकमलोंसे दिशाओंको प्रकाशित करते हुए उन कात्यायनी देवेकि स्तव करनेलगे ॥ १ ॥ देवता बोले--हे शरणागतदुःखहरे देवि ! प्रसन्न होओ, हे अखिलजगज्जननि ! प्रसन्न होओ, हे विश्वेश्वरि ! प्रसन्न होओ, तुम विश्वकी रक्षा करो, हे देवि ! तुम्हीं चराचर विश्वकी ईश्वरी हो ॥ २ ॥ हे देवि ! तुम्हीं जगत्‌की अद्वितीय आधारस्वरूप हो, क्योंकि मही (भूमि) स्वरूपसे स्थिति करती हो, हे देवि ! तुम्हीं जलस्वरूपसे अवस्थान करतीहुई इस

ऋषिरुवाच ॥ देव्या हते तत्र महासुरेंद्रे सेंद्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् ॥ कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥१॥
देवाः ऊचु ॥ देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ॥ प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥ २ ॥
आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ॥ अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्याय्यते कृत्स्नमलंघ्यवीर्ये ॥३॥ त्वं वैष्णवी
शक्तिरनंतवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया ॥ संमोहितं देवि समस्तमेतत्त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥ ४ ॥ विद्याः समस्तास्तव
देवि भेदाः स्त्रियः समस्ता सकलं जगच्च ॥ त्वयैकया पूरितमंबयैतत्का ते स्तुति स्तव्यपरा परोक्तिः ॥ ५ ॥ सर्वभूता यदा देवी भुक्तिमु-
क्तिप्रदायिनी ॥ त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवंति परमोक्तयः॥ ६ ॥

संपूर्ण विश्वको तृप्त करती हो, हे देवि ! तुम्हारा वीर्य उल्लंघन करनेके अयोग्य है ॥३॥ हे देवि ! तुम्हीं अनन्त वीर्य वैष्णवी शक्ति हो, तुम्हीं संसारकी हेतु-भूत परममाया हो, तुमनेही संपूर्ण विश्वको मोहित कर रक्खा है, हे देवि ! पृथ्वीमें तुम्हीं प्रसन्न होकर मुक्तिका कारण होती हो ॥ ४ ॥ हे देवि ! संपूर्ण विद्याही तुम्हारी मूर्त्तिविशेष और त्रिभुवनमें जितनी स्त्री हैं, सबहीं तुम्हारी मूर्तिविशेष हैं, हे जननि ! तुम एकही इस विश्वमें व्याप्त होरही हो अधिक और तुम्हारी क्या स्तुति करैं, तुम स्तुतिसे परे और स्तुतिकी परम उक्ति हो ॥५॥ तुम्हीं सर्वभूतस्वरूपमें प्रकाशमान हो तुम्हीं स्वर्ग और मुक्ति प्रदान करती हो

इस कारण तुम्हारी स्तुति करते हैं, किन्तु हे देवि ! तुम्हारे निर्गुण ब्रह्मस्वरूपकी स्तुति करनेमें कौनसी उक्ति श्रेष्ठ है, कोईभी नहीं, क्योंकि तुममें गुण नहीं है निर्गुणकी गुण कीर्त्तनरूप स्तुति किस प्रकारसे संभव होसकती है ? ॥६॥ तुम बुद्धिरूपसे सबके हृदयमें वास करती हो, हे स्वर्गमुक्ति देनेवाली ! हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥७॥ हे विश्वविनाशमें समर्थ ! तुम कला और काष्ठादिरूपसे जगत्का परिणामविधान करती हो अर्थात् क्षणमुहूर्त्तादि कालकरके मनुष्योंको अंतकी देनेवाली हो हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥८॥ हे सर्वमंगलमाङ्गल्ये ! हे शिवे ! हे सर्वार्थसाधिके ! हे शरण देनेवाली ! हे तीन नेत्रवाली ! हे गौरि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥९॥ हे सनातनि ! हे गुणाश्रये ! हे गुणमये ! हे नारायणि ! तुम सृष्टि, स्थिति और विनाशकी

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ॥ स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥७॥ कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि ॥ विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥ सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥ शरण्ये त्र्यंबके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥९॥ सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातानि ॥ गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १० ॥ शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे ॥ सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥ हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ॥ कौशांभःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १२ ॥ त्रिशूलाचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ॥ माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१३॥ मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे ॥ कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥

शक्तिस्वरूप हो, तुमको नमस्कार है ॥१०॥ हे देवि ! हे नारायणि ! तुम शरणागत, दीन और आर्त मनुष्योंकी रक्षा करनेवाली हो और सबका दुःख हरतीहो, तुमको नमस्कार है ॥११॥ हे देवि ! नारायणि ! तुमको ब्रह्माणीरूपसे हंसयुक्त विमानमें स्थित होकर युद्धक्षेत्रमें कुशाभिमंत्रित जल छिडकती हो तुमको नमस्कार है ॥१२॥ हे देवि ! तुमने माहेश्वरीरूपसे बैलपर चढकर अर्द्धचन्द्र और नागभूषणसे विभूषित होकर त्रिशूल धारण कियाथा, तुमको नमस्कार है ॥१३॥ हे अनघे ! हे नारायणि ! तुमने कौमारीरूप धारणपूर्वक मयूर और कुक्कुटसे युक्त होकर महाशक्ति धारण की थी, तुमको नमस्कार है ॥ १४ ॥

हे नारायणि ! तुमने वैष्णवीशक्तिरूपसे रणस्थलमें शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्गधनुरूप महाअस्त्रोंको धारण किया था तुमको नमस्कार है, तुम प्रसन्न होओ ॥१५॥ हे शिवे ! हे नारायणि ! तुमनेही महावराहरूप धर दांतोंके द्वारा जलमें डूबीहुई पृथ्वीको पातालसे उखाडकर प्रचण्ड महाचक्र धारण किया था, तुमको नमस्कार है ॥१६॥ हे नारायणि ! तुमने भयंकर नृसिंहरूपसे दैत्योंके वध करनेमें उद्यत होकर तीनों लोककी रक्षा करी थी तुमको नमस्कार है ॥१७॥ हे किरीट धारण करनेवाली! हे महावज्रवाली! हे सहस्र नेत्रोंसे उज्ज्वल! हे वृत्रासुरके प्राण हरनेवाली ! हे ऐंद्रि! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥१८॥ हे नारायणि! तुमने शिवदूतीस्वरूपसे भयंकर रूप धारण करके उत्कट शब्दके द्वाराही दैत्योंकी बडी भारी सेनाको नाश किया था, तुमको नमस्कार

शंखचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ॥ प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१५॥ गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुंधरे ॥ वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥ नृसिंहरूपेणोग्रेण हंतुं दैत्यान्कृतोद्यमे ॥ त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १७ ॥ किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ॥ वृत्रप्राणहरे चैंद्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १८ ॥ शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्ये महाबले ॥ घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १९ ॥ दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे ॥ चामुंडे मुंडमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२०॥ लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टे स्वधे ध्रुवे ॥ महारात्रे महामाये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२१॥ मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि ॥ नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २२ ॥ सर्वतः पाणिपादांते सर्वतोक्षिशिरोमुखे ॥ सर्वतः श्रवणघ्राणे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२३॥

है ॥१९॥ हे नारायणि ! तुम दंष्ट्राकरालमुखसे चामुण्डारूप धारण करके शिरोमाला द्वारा विभूषित हुईथीं एवं चण्ड और मुण्ड नामक दोनों असुरोंको विनाश कियाथा, तुमको नमस्कार है ॥२०॥ हे नारायणि ! तुम्हीं लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, महारात्रि और महामोहस्वरूप और तुम्हीं ध्रुवा अर्थात् नित्या हो तुमको नमस्कार है ॥२१॥ हे नारायणि ! तुम्हीं मेधा, सरस्वती, श्रेष्ठा, बाभ्रवी, भूति और तामसी हो तुमको नमस्कार है । हे नियते ! हे ईशे ! तुम प्रसन्न होओ ॥२२॥ तुम सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, शिर, मुख, श्रवण, नासिकावाली हो अर्थात् यह समष्टि शिर आदि तुम्हारेही स्वरूप हैं

हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥ २३ ॥ हे देवि ! तुम सर्वस्वरूप ईश्वरी सर्वशक्तिसमन्वित हो अतएव हमारी भयसे रक्षा करो. हे दुर्गे ! हे देवि ! तुमको नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे कात्यायनि ! तुम्हारा यह तीन नेत्रोंसे विभूषित सौम्य मुख सब प्राणियोंसे हमारी रक्षा करै, हे देवि ! तुमको नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे भद्रकालि ! तुम्हारा यह ज्वालाओंसे कराल अतिउग्र और संपूर्ण असुरोंको नाश करनेवाला त्रिशूल हमारी भयसे रक्षा करै, तुमको नमस्कार है ॥ २६ ॥ शब्दद्वारा संपूर्ण जगत्‌को पूर्ण करके जो घंटा दैत्योंके तेजका नाश करता है, तुम्हारा वह घंटा पुत्रके समान हमारी संपूर्ण पापोंसे रक्षा करै ॥ २७ ॥ हे चण्डिके ! हम तुमको नमस्कार करते हैं, असुरोंके रक्त और वसा (चरबी) रूप पंकद्वारा चर्चित और किरणोंसे उज्ज्वल यह तुम्हारे

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ॥ भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ २४ ॥ एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ॥ पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥ ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ॥ त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥२६॥ हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ॥ सा घंटा पातु नो देवि पापेभ्यो नः सुतानिव ॥२७॥ असुरासृग्वसापंकचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ॥ शुभाय खड्गो भवतु चंडिके त्वां नता वयम् ॥ २८ ॥ रोगानशेषानपहंसि तुष्टा दृष्टा तु कामान्सकलानभीष्टान् ॥ त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयांति ॥ २९ ॥ एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ॥ रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्त्तिं कृत्वांबिके तत्प्रकरोति कान्या ॥ ३० ॥ विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ॥ ममत्वगर्त्तेऽतिमहांधकारे विभ्रामयस्येतदतीव विश्वम् ॥ ३१ ॥

हाथका शोभायमान खड्ग हमारा मंगल करै ॥२८॥ हे देवि ! संतुष्ट होनेपर रोग विनाश करती हो और रुष्ट होनेपर सब अभिलाषित और प्रियवस्तु हरण करती हो । हे देवि ! तुम्हारे आश्रित मनुष्योंको विपद् नहीं रहती और जो तुमको आश्रय करते हैं, वह सबके आश्रयस्वरूप होते हैं ॥ २९ ॥ और हे देवि ! अनेक प्रकारकी मूर्त्ति धारण करके जो आज तुमने धर्मके शत्रु ऐसे बडे बडे असुरोंका वध किया है, सो क्या कोई अन्य स्त्री करसकती है ? ॥ ३० ॥ और चतुर्दश विद्याओंके तथा षट् शास्त्रोंके और ज्ञानरूपी दीपक ऐसे आद्यवाक्य कहिये वेदोंके वर्त्तमान रहनेपरभी घोर अंधकारवाले इस ममतारूपी गढेमें

इस जगत्को तुम्हारे अतिरिक्त और दूसरा कौन अधिक घुमासकता है ॥ ३१ ॥ हे देवि ! जिस स्थानमें राक्षस हैं, जिस स्थानमें क्रूर सर्प हैं, जिस स्थानमें शत्रु हैं, जिस स्थानमें चोरोंके झुंड हैं. और जिस स्थानमें दावानल है, तुम उसी उसी स्थान और समुद्रमें स्थित होकर विश्वकी रक्षा करती हो ॥ ३२ ॥ हे देवि ! तुम विश्वेश्वरी हो, क्योंकि इस विश्वकी रक्षा करती हो, तुम्ही विश्वात्मिका हो कारण कि, विश्वको धारण कररही हो और विश्वेश्वरादि अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादिकी भी वन्दनीया हो. क्योंकि जो ब्रह्मादि देवता विश्वका आश्रय हैं, वहभी तुम्हारे प्रति भक्तिनम्र होते हैं और जो मनुष्य तुम्हारे प्रति भक्तिनम्र होते हैं, वह विश्वका आश्रय होते हैं ॥ ३३॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ और जिस प्रकार असुरोंका वध करके इस समय रक्षा

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ॥ दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥ ३२ ॥ विश्वेश्वरी त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ॥ विश्वेशवंद्या भवती भवंती विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥ ३३ ॥ देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेर्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ॥ पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥ ३४॥ प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्त्तिहारिणि ॥ त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥ ३५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वरदाहं सुरगणाः वरं यं मनसेच्छथ ॥ तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥ ३६ ॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ॥ एवमेतत्त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥ ३७ ॥

करी है, इसी प्रकार शत्रुभयसे हमारी सदा रक्षा करो । और संपूर्ण जगत्के पापोंका तथा उत्पातोंके होनेसे उठेहुए जो जो महामारी आदि उपद्रव हैं, उनको शीघ्र शान्त करो ॥ ३४ ॥ हे संसारकी आपत्तिको दूर करनेवाली देवि ! प्रणत मनुष्योंके ऊपर प्रसन्न होओ, हे त्रैलोक्यवासियोंकी पूजनीय ! तुम समस्त मनुष्योंको वर देनेवाली होओ ॥ ३५ ॥ देवीने कहा—हे सुरगण ! मैं वरदा अर्थात् वर देनेवाली हूं, तुम तीनों जगत्के उपकार करनेवाली जिस वरकी मनमें इच्छा करते हो, वह माँगो मैं उसको दूंगी ॥ ३६ ॥ देवता बोले—हे अखिलेश्वरि ! त्रैलोक्यके सर्व प्रकार विघ्नोंकी शान्ति करो और इसी भाँति हमारे शत्रुओंको विनाश करती रहो, यही हमारा वर है ॥ ३७ ॥

देवीने कहा—वैवस्वत मन्वन्तरमें जब अट्ठाईसवां युग आवेगा, तब शुंभ और निशुंभ नामक अन्य दो महाअसुर जन्म ग्रहण करेंगे ॥ ३८ ॥ तब मैं नन्दगोपके घर यशोदाके गर्भसे जन्मग्रहणपूर्वक विन्ध्याचलवासिनी होकर उनकोभी विनाश करूंगी ॥ ३९ ॥ फिर पृथ्वीतलमें अत्यन्त भयंकररूपसे अवतीर्ण होकर मैं वैप्रचित्त नामक दानवोंको हनन करूंगी ॥ ४० ॥ उन वैप्रचित्त नामक उग्र असुरोंके भक्षणकालमें मेरे दांत दाडिमी कुसुमकी समान रक्तवर्ण हो जाँयगे ॥ ४१ ॥ अनन्तर स्वर्गमें देवता और मर्त्यमें मनुष्यगण स्तव करनेके समय सदा मुझको " रक्तदन्तिका " कहकर कीर्त्तन करेंगे ॥ ४२ ॥ और फिर जब सौ वर्ष पर्यन्त वर्षा नहीं होगी, तब जलके अभावमें मुनिगण मेरी स्तुति करेंगे, उस काल मैं मनुष्ययोनिके विनाही उत्पन्न हूंगी ॥ ४३॥ तब मैं

श्रीदेव्युवाच ॥ वैवस्वतेंऽतरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे ॥ शुंभो निशुंभश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥ ३८ ॥ नंदगोपकुले जाता यशोदागर्भसंभवा ॥ ततस्तौ नाशयिष्यामि विंध्याचलनिवासिनी ॥ ३९॥ पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ॥ अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥ ४० ॥ भक्षयंत्याश्च तानुग्रान्वैप्रचित्तान्सुदानवान् ॥ रक्ता दंता भविष्यंति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥ ४१ ॥ ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः ॥ स्तुवंतो व्याहरिष्यंति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥ ४२ ॥ भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनंभसि ॥ मुनिभिः संस्तुता भूमौ संभविष्याम्ययोनिजा ॥ ४३ ॥ ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ॥ कीर्त्तयिष्यंति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥ ४४ ॥ ततोहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ॥ भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥ ४५ ॥ शाकंभरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ॥ तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥ (दुर्गादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ॥ पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले) ॥ ४६ ॥ रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ॥ ४७ ॥

सौ नेत्रोंके द्वारा मुनियोंको देखूंगी, इसलिये मुनिगण मुझको " शताक्षी " कहेंगे ॥ ४४ ॥ इसके पीछे जबतक वर्षा नहीं होगी, तबतक हे देवताओ ! स्वकीय देहसे उत्पन्न प्राणधारक शाकद्वारा संपूर्ण लोकोंका पोषण करूंगी ॥ ४५॥ इस कारण मैं पृथ्वीमें " शाकम्भरी " नामसे विख्यात हूंगी और उस अनावृष्टिकालमेंही दुर्गम नामक महाअसुरको वध करूंगी । फिर जब मैं मुनियोंकी रक्षा करनेके लिये हिमाचलमें भयंकर रूप धारण करके राक्षसोंको मारूंगी ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

उस काल समस्त मुनिगण नम्रमूर्ति होकर मेरी स्तुति करेंगे और मेरा "भीमादेवी" यह नाम विख्यात होगा ॥ ४८ ॥ और जिस समयमें अरुण नामक महाअसुर त्रैलोक्यको महाबाधा करेगा, उस कालमें असंख्य षट्पदसमन्वित भ्रमरोंका रूप धारण करके ॥ ४९ ॥ त्रैलोक्यका हित करनेके लिये उस असुरको वध करूंगी, इस कारण मनुष्य मेरा (भ्रामरी) के नामसे स्तव करेंगे ॥ ५० ॥ इस प्रकार जब जब दानवोंकी करीहुई बाधा उपस्थित होगी, तब तब मैं अवतार लेकर शत्रुओंका विनाश करूंगी ॥ ५१ ॥ इति श्रीमा० पु० देवीमाहात्म्ये भाषाटीकायामष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ देवी

तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यंत्यानम्रमूर्तयः ॥ भीमादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ॥ ४८ ॥ यदाऽरुणाख्यैस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥ तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् ॥ ४९ ॥ त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥ भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यंति सर्वतः ॥ ५० ॥ इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥ तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसं-क्षयम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे देवीमाहात्म्ये नारायणीस्तुतिर्नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ॥ तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ १ ॥ मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम् ॥ कीर्त्तयिष्यंति ये तद्वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ २ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः ॥ स्तोष्यंति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥ न तेषां दुष्कृतं किंचिद्दुष्कृतोत्था न चापदः ॥ न भविष्यति दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥ ४ ॥ शत्रुतो न भयं तेषां दस्युतो वा न राजतः ॥ न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्संभविष्यति ॥ ५ ॥

बोली—इन सब स्तवोंसे सावधान होकर जो मनुष्य मेरी नित्य स्तुति करेगा, मैं उसकी संपूर्ण बाधा नष्ट करूंगी, इसमें सन्देह नहीं ॥ १ ॥ मधुकैटभ महि-षासुर और शुंभनिशुंभवधरूप मेरा उत्तम माहात्म्य एकाग्र चित्तसे भक्तिसहित जो अष्टमी, चतुर्दशी अथवा नवमी तिथिमें कहेंगे वा सुनेंगे ॥ २ ॥ ३ ॥ उनका कुछ पाप वा पापसे उत्पन्न हुई कोई आपत्ति नहीं रहेगी और दारिद्र्य तथा प्रिय जनोंका वियोग नहीं होगा ॥ ४ ॥ शत्रुसे, चोरोंसे, अथवा राजासे किसी स्थलमें भय नहीं होगा और शस्त्र, अनल तथा जलसेभी कभी भय नहीं होगा ॥ ५ ॥

इस कारण मेरा माहात्म्य सावधान होकर पढे और सुने। मेरा यह माहात्म्यही सर्वोत्तम स्वस्त्ययन है ॥ ६ ॥ यह मेरा माहात्म्य महामारीसे उत्पन्न हुए समस्त उपद्रवोंको और तीन प्रकारके उत्पातको शमन करता है ॥ ७ ॥ जिस घरमें मेरा यह माहात्म्य सम्यक् प्रकार पढा जाता है, मैं उस घरको परित्याग नहीं करती और उसीके समीप स्थित रहती हूं ॥८॥ बलि देनेके समय, पूजाके समय तथा होमकार्य इत्यादि महोत्सवमें मेरा यह संपूर्ण चरित्र उच्चारण और श्रवण करना चाहिये ॥ ९ ॥ मनुष्यगण जानकर वा विना जाने जो कुछ बलि पूजा करते हैं वा अग्निमें होम करते हैं, उस सबको मैं

तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ॥ श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं महत् ॥ ६ ॥ उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान् ॥ तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥ ७ ॥ यत्रैतत्पठ्यते सम्यक् नित्यमायतने मम ॥ सदा न तद्विमोक्ष्यामि सांनिध्यं तत्र मे स्थितम् ॥ ८ ॥ बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे ॥ सर्वं ममैतच्चारितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥ ९ ॥ जानताजानता वापि बलिं पूजां तथा कृताम् ॥ प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥ १० ॥ शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ॥ तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥ ११ ॥ सर्वबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसमन्वितः ॥ मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥१२॥ श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथोत्पत्तीः पृथक् शुभाः ॥ पराक्रमांश्च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥ १३ ॥ रिपवः संक्षयं यांति कल्याणं चोपपद्यते ॥ नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥ १४ ॥

प्रसन्नतासहित ग्रहण करती हूं ॥ १० ॥ शरत्कालमें जो वार्षिकी महापूजा करीजाती है, उस पूजाके समय मेरा यह माहात्म्य भक्तियुक्त होकर श्रवण करने पर ॥ ११ ॥ मनुष्य मेरे प्रसादसे संपूर्ण विपद्से छूट जाते हैं, और धन, धान्य तथा पुत्रयुक्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १२ ॥ मेरा यह माहात्म्य, इस शुभ उत्पत्तिकी कथा और युद्धमें पराक्रम सुननेसे मनुष्य निर्भय होता है ॥ १३ ॥ उसके शत्रु नष्ट होते हैं और कल्याण होता है। मेरे माहात्म्य सुननेवाले पुरुषका कुल आनन्दयुक्त होता है ॥ १४ ॥

सब शान्ति कर्मोंमें, दुःस्वप्न देखनेमें और भयंकर ग्रहपीडाके समय मेरा माहात्म्य सुने ॥ १५ ॥ इसके सुननेसे उपद्रव और दारुण ग्रहपीडा शान्त होती है और मनुष्यको दीखे हुए दुःस्वप्न सुस्वप्नकी समान श्रेष्ठफल प्रदान करते हैं ॥ १६ ॥ यह मेरा माहात्म्य पूतना, डाकिनी, शाकिनी, बालग्रहोंसे ग्रसित हुए बालकोंकी शान्ति करनेवाला है, और यदि मनुष्योंमें परस्पर फूट होजाय, तो उत्तमरीतिसे मित्रता करानेवाला है ॥ १७ ॥ और संपूर्ण दुराचारी जनोंके परमबलकी हानि करनेवाला है, इसके पाठ करनेसेही राक्षस, भूत और पिशाचोंका नाश होजाता है ॥ १८ ॥ यह मेरा संपूर्ण माहात्म्य पाठकको मेरे समीप करनेवाला है। यह आदि, मध्य, अवसानमें सर्वथा मेरी सब प्रकार प्रसन्नता करता है ॥ १९ ॥ उत्कृष्ट पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, गंध, दीप, ब्राह्म-

शांतिकर्माणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने ॥ ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥१५॥ उपसर्गाः शमं यांति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ॥ दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥ १६ ॥ बालग्रहाभिभूतानां बालानां शांतिकारकम् ॥ संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्त-मम् ॥ १७ ॥ दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ॥ रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥ १८ ॥ सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम संनि-धिकारकम् ॥ १९ ॥ पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥ विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रेक्षणीयैरहर्निशम् ॥ २० ॥ अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ॥ प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन्सकृदुच्चरितश्रुते ॥ २१ ॥ श्रुतं हरति पापानि तथारोग्यं प्रयच्छति ॥ रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्त्तनं मम ॥ २२ ॥ युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ॥ तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ॥ २३ ॥

णभोजन, होम, प्रोक्षणीय ॥ २० ॥ और अन्यान्य विविध भोग द्वारा एक वर्षतक रातदिन पूजा करनेसे मैं जितनी प्रसन्न होती हूं, इस माहात्म्यको केवल एक वार सुननेसेही उतनी प्रसन्न होजाती हूं ॥२१॥ मेरा माहात्म्य सुना जानेसे सब पापोंको हरता है और आरोग्यता प्रदान करता है, मेरे जन्मका की-र्त्तन करनेपर भूतोंसे रक्षा होती है ॥ २२ ॥ तथा युद्धोंमें जो दुष्ट दैत्योंके नाशका चरित्र है, उसके श्रवण करनेपर पुरुषको शत्रुसे कियाहुआ भय नहीं होता है ॥ २३ ॥

तुमने जो स्तुति की है, तथा ब्रह्मर्षियोंने जो स्तुतियां करी हैं और ब्रह्माजीने जो स्तव किया है, उन सब स्तुतियोंके पढनेपर वह शुभ मति देती है ॥ २४ ॥ चोरोंसे घिरनेपर, मित्ररहित स्थानमें शत्रुओंसे घिरनेपर वनमें वा प्रान्तरमें दावाग्निसे पीडित होनेपर ॥ २५ ॥ सिंह वा व्याघ्रके पीछे दौडनेपर वनमें वनके हाथियोंसे घिरनेपर अग्निमें गिरनेपर क्रुद्ध राजाके द्वारा वधकी आज्ञा दीजानेपर बंधनमें प्राप्त होनेपर ॥ २६ ॥ महासमुद्रमें छोटी डोंगीपर बैठनेके कारण वायुद्वारा आघूर्णित होनेपर, अत्यन्त भयंकर संग्राममें शस्त्रसमूहके गिरनेपर ॥ २७ ॥ अधिक क्या ? सब प्रकारकी विपत्तियोंमें ही यंत्रणासे ग्रसित

युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥ ब्रह्मणा च कृता यास्ताः प्रयच्छांति शुभां गतिम् ॥ २४ ॥ अरण्ये प्रांतरे वापि दावाग्निपरिवारितः ॥ दस्युभिर्वा युतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः ॥ २५ ॥ सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥ राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्ते वध्ये बन्धगतोऽपि वा ॥ २६ ॥ आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥ पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे ॥ २७ ॥ सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा ॥ स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत संकटात् ॥२८॥ मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ॥ दूरादेव पलायंते स्मरतश्चरितं मम ॥ २९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ॥ पश्यतामेव देवानां तत्रैवांतरधीयत ॥ ३० ॥ तेऽपि देव्या निरातंकाः स्वाधिकारान्यथा पुरा ॥ यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः ॥ ३१ ॥ दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥ जगद्विध्वंसके तस्मिन्महोग्रेऽतुलविक्रमे ॥ निशुंभे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥ ३२ ॥

होनेपर मनुष्य यदि मेरा चरित्र स्मरण करे तो संपूर्ण संकटसे छूट जाता है ॥ २८ ॥ मेरे चरित्रको जो मनुष्य स्मरण करता है, उसको देखकर मेरे प्रभावसे सिंहादि हिंसक जन्तु, चोर और शत्रुगण दूर भागजाते हैं ॥ २९ ॥ ऋषि बोले—इस प्रकार कहकर उग्र पराक्रमवाली चण्डिका देखते हुए देवताओंके सामनेसे उसी स्थानमें अन्तर्धान होगई ॥ ३० ॥ तब वह शत्रुरहित देवताभी निर्भय यज्ञभाग भोजन करते हुए अपने विषयका अधिकार करने लगे ॥ ३१ ॥ जगत्के विध्वंस करनेवाले अतुल विक्रम देवशत्रु शुंभ और महावीर्यवान् निशुंभ जब युद्धक्षेत्रमें देवीके हाथसे मारेगये, तब बचेहुए

दैत्योंने पातालमें गमन किया ॥ ३२ ॥ हे भूप ! वह देवी भगवती नित्या होनेपर भी इस प्रकार वारंवार उत्पन्न होकर जगत्का पालन करती हैं ॥ ३३॥ वही भगवती इस विश्वको मोहित करती हैं, वही इस विश्वको प्रसव (उत्पन्न) करती हैं और उनके निकट प्रार्थना करनेसे वह संतुष्ट होकर तत्त्वज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करती हैं ॥ ३४ ॥ हे मनुजेश्वर ! यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड उनसेही व्याप्त होरहा है और प्रलयकालमें महामारीस्वरूपा महाकालीसे व्याप्त होता है ॥ ३५ ॥ और वही, जब काल आता है, तो महामारीरूप होजाती है, तथा संसारोत्पत्तिके समय वही सृष्टिरूप होजाती है और रक्षाकालमें वही

एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः ॥ सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥ ३३॥ तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते ॥ सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति॥३४॥व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ॥ महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥३५॥ सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा ॥ स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥ ३६ ॥ भवकाले नृणां सैव लक्ष्मी वृद्धिप्रदा गृहे ॥ सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥ ३७ ॥ स्तुता संपूजिता पुष्पैर्गंधधूपादिभिस्तथा ॥ ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके देवीमाहात्म्ये शुंभनिशुंभवधो नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥ १ ॥ विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया ॥ तथा त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥ मोह्यंते मोहिताश्चैव मोहमेष्यंति चापरे ॥ २ ॥

सनातनी देवी प्राणियोंकी रक्षा करती हैं ॥३६॥ मंगलके समयमें वही मनुष्योंके घरमें अनेक प्रकारका ऐश्वर्य प्रदान करती हैं और उसीके अभावमें विनाशके निमित्त लक्ष्मी अन्तर्धान होजाती हैं ॥३७॥ उसकी स्तुति करने और गन्ध, पुष्प, धूप, दीपादिद्वारा पूजा करनेसे वह धन, पुत्र और धर्ममें शुभगति प्रदान करती हैं ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां फलश्रुतिर्नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥ ऋषि बोले--हे राजन् ! आपके निकट मैंने यह उत्तम देवीमाहात्म्य कहा । जो इस जगत्को धारण कररही हैं, उनका प्रभाव इस प्रकार है वही भगवती विष्णुमायाही तत्त्वज्ञान देती हैं वही तुमको

इस वैश्यको और अन्यान्य विवेकी पुरुषोंकोभी मोहित करती हैं और किया है तथा उनके द्वाराही भविष्य प्राणी मोहित होंगे ॥ १ ॥ २॥ हे महाराज! उन भगवती परमेश्वरीकीही शरणमें आओ। उनकी आराधना करनेसेही वह मनुष्यको भोग, स्वर्ग और मुक्ति प्रदान करती हैं ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे महामुने! अतिशय ममता और राज्य हरण होजानेसे अत्यन्त दुःखित वह नराधिप सुरथ ऋषिके यह वचन सुन कठोर व्रत सम्पन्न उन महाभाग ऋषिको प्रणाम कर तत्काल तपस्याके लिये चलेगये और वह वैश्यभी इसी प्रकार तपस्याके लिये चलागया ॥ ४ ॥५॥ वह राजा और वैश्य नदीके किनारे स्थित हो भगवतीके दर्शनार्थ उत्कृष्ट देवीसूक्तका जप करतेहुए तपस्यामें रत हुए ॥ ६ ॥ वैश्य और राजाने उस पुलिनमें देवीकी मिट्टीके द्वारा

तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ॥ आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ॥ प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं संशितव्रतम् ॥ ४ ॥ निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥ जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ॥ ५ ॥ संदर्शनार्थमंबाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥ स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ॥ ६ ॥ तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ॥ अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ॥ ७॥ निराहारौ यतात्मानौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥ ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ॥ ८ ॥ एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥ परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चंडिका ॥९॥ श्रीदेव्युवाच ॥ यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन ॥ मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥ १० ॥

मूर्ति बनाय, पुष्प, धूप, होम और तर्पण इत्यादिसे उसकी पूजा करी ॥ ७ ॥ उन्होंने कभी निराहार और नियमिताहारपूर्वक उसमें चित्त लगाय तथा सावधान हो अपने अपने देहसे रक्त टपकाकर बलि दी ॥ ८ ॥ इस प्रकार संयतचित्त हो तीन वर्ष आराधना करनेपर जगद्धात्री चण्डिकाने संतुष्ट होकर उनसे प्रत्यक्ष कहा ॥ ९ ॥ देवी बोली–हे राजन्! तुम जो प्रार्थना करतेहो, और हे कुलनन्दन वैश्य! तुमभी जो प्रार्थना करतेहो, तुम मेरे निकटसे उन सबको प्राप्त होंगे, मैं संतुष्ट होकर वह प्रदान करती हूं ॥ १० ॥

मार्कण्डेयजी बोले–अनन्तर राजाने दूसरे जन्ममें अखंडित राज्य और इस जन्ममें बलप्रकाशपूर्वक शत्रुओंको वध करके जिससे अपना राज्य प्राप्त करसकूं यह वर माँगा ॥ ११ ॥ और दुःखितचित्त उस बुद्धिमान् वैश्यनेभी " यह मेरा " और " यह मैं " इस प्रकारके मोहके संगका नाशक ज्ञान माँगा ॥ १२ ॥ देवी बोली:–हे नृपते ! तुम थोडेही दिनोंमें शत्रुकुल निर्मूलन करके अपने राज्यको प्राप्त होगे और इसके पीछे फिर तुमको राज्यसे भ्रष्ट होना नहीं पडेगा ॥ १३ ॥ फिर मृत्युके उपरान्त तुम सूर्य देवसे उत्पत्ति लाभ करके पृथ्वीमें सावर्णिनामसे विख्यात मनु होगे ॥१४॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यग्रजन्मानि ॥ अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥ ११ ॥ सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ॥ ममेत्यहमिति प्राज्ञः संगविच्युतिकारकम् ॥ १२ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥ हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥ १३ ॥ मृतश्च भूयः संप्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ॥ सावर्णिको नाम मनुर्भवान्भुवि भविष्याति ॥ १४ ॥ वैश्यवर्य त्वयास्मत्तो वरो यश्चाभिवांछितः ॥ तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्याति ॥ १५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥ बभूवांतर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ॥ १६ ॥ एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥ सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ १७ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे सूर्यसावर्णिके मन्वंतरे देवीमाहात्म्ये नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ संपूर्णं देवीमाहात्म्यम् ॥

हे वैश्यश्रेष्ठ ! तुमनेभी मुझसे जिस वरकी प्रार्थना करी तुम्हारी सिद्धिके लिये वह तुमको देतीहूं, तुमको ज्ञान होगा ॥ १५ ॥ मार्कंण्डेयजी बोले-देवी उनको इस प्रकार यथाभिलाषित वर देकर तत्काल अन्तर्धान होगई । अन्तर्धान होनेके पहिले उन्होंनेभी उनका भक्तिपूर्वक स्तव कियाथा ॥ १६ ॥ इस प्रकार क्षत्रियश्रेष्ठ सुरथ देवीके निकटसे वर पाय सूर्यदेवसे उत्पत्ति लाभ कर पृथ्वीमें सावर्णिनामक मनु होंगे ॥ १७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्यं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

मार्कण्डेयजी बोले–हे मुनिसत्तम ! यह सावर्णिक मन्वन्तर तुमसे कहागया और इसीके प्रसंगमें देवीमाहात्म्य, महिषासुरविनाश ॥ १ ॥ महायुद्धमें मातृगणोंकी और देवीकी उत्पत्ति चामुण्डा देवीकी उत्पत्ति ॥ २ ॥ शिवदूतीका माहात्म्य, शुंभ-निशुंभवध और रक्तबीजवध, इन सबकाभी सम्यक् प्रकार-तुमसे वर्णन किया ॥ ३॥ हे मुनिशार्दूल ! अब होनेवाले नवम मनु दक्ष-पुत्र सावर्णके मन्वन्तरका वर्णन करता हूं, सुनो ॥४॥ उस मनुके मन्वन्तरमें जो जो देवता, जो जो ऋषि और जो जो राजा होंगे, वह कहताहूं । पारा, मरीचि, भर्ग और सुधर्मादेवताओंके ॥ ५ ॥ यह तीन गण और प्रत्येक गणमें

मार्कण्डेय उवाच ॥ सावर्णिकमिदं सम्यक्प्रोक्तं मन्वन्तरं तव ॥ तथैव देवीमाहात्म्यं महिषासुरघातनम् ॥ १ ॥ उत्पत्तयश्च या देव्या मातृणां च महाहवे ॥ तथैव संभवो देव्याश्चामुण्डाया यथा भवः ॥ २ ॥ शिवदूत्याश्च माहात्म्यं वधः शुंभनिशुंभयोः ॥ रक्तबीजवधश्चैव सर्वमेतत्तवोदितम् ॥ ३ ॥ श्रूयतां मुनिशार्दूल सावर्णिकमथापरम् ॥ दत्तपुत्रश्च सावर्णिर्भावी यो नवमो मनुः ॥ ४ ॥ कथयामि मनोस्तस्य ये देवा मुनयो नृपाः ॥ पारा मरीचिभर्गाश्च सुधर्माणस्तथा सुराः ॥५॥ एते त्रिधा भविष्यन्ति सर्वे द्वादशका गणाः ॥ तेषामिंद्रो भविष्यस्तु सहस्राक्षो महाबलः ॥ ६ ॥ साम्प्रतं कार्तिकेयो यो वह्निपुत्रः षडाननः ॥ अद्भुतो नाम शक्रोऽसौ भावी तस्यान्तरे मनोः ॥ ७ ॥ मेधातिथिर्वसुः सत्यो ज्योतिष्मान्द्युतिमांस्तथा ॥ सप्तर्षयोऽन्यः सबलस्तथान्यो हव्यवाहनः ॥ ८ ॥ धृष्टकेतुर्बर्हकेतुः खड्गहस्तो निरामयः ॥ पृथुश्रवास्तथार्चिष्मान्भूरिद्युम्नो बृहद्भयः ॥९॥ एते नृपसुतास्तस्य दत्तपुत्रस्य वै नृपाः ॥ मनोस्तु दशमस्यान्यच्छृणु मन्वन्तरं द्विज ॥ १० ॥

द्वादश-संख्यक देवता हैं । इस समय जो वह्नि-पुत्र षडानन कीर्त्तिकेय वर्त्तमान हैं, वही इस भावी मन्वन्तरमें अद्भुत नामक महाबलशाली सहस्राक्ष इन्द्र होंगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सबल और हव्यवाहन यह उस समय सप्तर्षि होंगे ॥ ८ ॥ धृष्टकेतु, बर्हकेतु, पञ्चहस्त, निरामय, पृथुश्रवाः, आर्चिष्मान्, भूरिद्युम्न और बृहद्भय ॥ ९ ॥ यह कई दक्षपुत्र सावर्ण मनुके पुत्र राजा होंगे । हे द्विज ! इसके पीछे दशवें मनुके अन्य मन्वन्तरको सुनो ॥ १० ॥

इस मन्वन्तरमें बुद्धिमान् ब्रह्माजीके पुत्र दशवें मनु होंगे तथा उनके मन्वन्तर सुखासीन और निरुद्धादि नामक तीन प्रकारके देवता होंगे ॥ ११ ॥ भावी मनुके मन्वन्तरमें भविष्य देवता शतसंख्यक अर्थात् सौ हैं, क्योंकि इस मन्वन्तरमें प्राणियोंकी संख्या शत है, इस कारण देवताओंकी संख्याभी शत होगी ॥ १२ ॥ इन्द्रके संपूर्ण गुणोंसे युक्त शान्तिही उस समय इन्द्र होंगे और जो सप्तर्षि होंगे, उनका विषय कहता हूं, सुनो ॥ १३ ॥ आपोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिम और सप्तम वसिष्ठ, यह सप्तर्षि हैं ॥ १४॥ सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूरिषेण, वीर्यवान्, शतानीक, वृषभ, अनमित्र,

मन्वन्तरे च दशमे ब्रह्मपुत्रस्य धीमतः ॥ सुखासीना निरुद्धाश्च द्विप्रकाराः सुराः स्मृताः ॥ ११॥ शतसंख्या हि ते देवा भविष्या भाविनो मनोः ॥ यत्पुत्राणां शतं भावि तद्देवानां तदा शतम् ॥१२॥ शान्तिरिन्द्रस्तथा भावी सर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः ॥ सप्तर्षींस्तान्निबोध त्वं ये भविष्यन्ति वै तदा ॥ १३ ॥ आपोमूर्तिर्हविष्मांश्च सुकृती सत्य एव च ॥ नाभागोऽप्रतिमश्चैव वासिष्ठश्चैव सप्तमः ॥ १४ ॥ सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिषेणश्च वीर्यवान् ॥ शतानीकोऽथ वृषभो ह्यनमित्रो जयद्रथः ॥ १५ ॥ भूरिद्युम्नः सुपर्वा च तस्यैते तनया मनोः ॥ भाविष्या धर्मपुत्रस्य सावर्णस्यान्तरं शृणु ॥ १६ ॥ विहंगमाः कामगाश्च निर्माणरतयस्तथा ॥ त्रिःप्रकारा भविष्यन्ति एकैकस्त्रिंशको गणः ॥ १७ ॥ मासर्तुदिवसा ये तु निर्माणपतयस्तु ते ॥ विहङ्गमा रात्रयोऽथ मौहूर्ताः कामगा गणाः ॥ १८ ॥ इन्द्रो वृषाख्यो भविता तेषां प्रख्यातविक्रमः ॥ हविष्मांश्च वरिष्ठश्च ऋषिरन्यस्तथारुणिः ॥ १९ ॥ निश्चरश्चानघश्चैव विष्टिश्चान्यो महामुनिः ॥ सप्तर्षयोऽन्तरे तस्मिन्नग्नितेजाश्च सप्तमः ॥ २० ॥

जयद्रथ ॥ १५ ॥ भूरिद्युम्न और सुपर्वा यह कई दशम मनुके पुत्र हैं, भावी मनु धर्मपुत्र सावर्णका मन्वन्तर सुनो ॥ १६॥ विहंगम, कामग और निर्माणपति, देवताओंके यह तीन प्रकारके गण हैं और प्रत्येक गणमें तीस देवता रहेंगे ॥ १७ ॥ जो मास, ऋतु और दिवस है, वही निर्माणपति हैं, रात्रि विहङ्गम देवता और समस्त मुहूर्तजात विषय कामग देवताओंके गण हैं ॥ १८ ॥ प्रसिद्धपराक्रम वृषाख्य उनके इन्द्र होंगे । इस मन्वन्तरमें हविष्मान्, वरिष्ठ, अरुणतनय ऋषि ॥ १९ ॥ निश्चर, अनघ, महामुनि विष्टि और सप्तम अग्नि देव, यही सप्तर्षि हैं ॥ २० ॥

सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानीक, पुरूद्वह, हेमधन्वा और दृढायु, यह उस मनुके पुत्र और भावी नरपति होंगे ॥ २१ ॥ रुद्रपुत्र सावर्णमनुके बारहवें मन्वन्तरमें जो देवता और मुनि होंगे, अब उनका विषय सुनो ॥ २२ ॥ सुधर्मा, सुमना, हरित, रोहित और सुवर्ण, उस मन्वन्तरमें यह पांच प्रकारके देवगण हैं और प्रत्येक गणमें दश देवता रहेंगे ॥ २३ ॥ संपूर्ण इन्द्रके गुणोंसे युक्त महाबलवान् ऋतधामाको उनका इन्द्र जानना चाहिये । अब मुझसे सप्तर्षियोंका विषय सुनो ॥ २४ ॥ द्युति, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोनिधि, तपोरति और सप्तम तपोधृति, यही सप्तर्षि हैं ॥ २५ ॥ देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ,

सर्वत्रगः सुशर्मा च देवानीकः पुरूद्वहः ॥ हेमधन्वा दृढायुश्च भाविनस्तत्सुता नृपाः ॥ २१ ॥ द्वादशे रुद्रपुत्रस्य प्राप्ते मन्वन्तरे मनोः ॥ सावर्णाख्याश्च ये देवा मुनयश्च शृणुष्व तान् ॥ २२ ॥ सुधर्माणः सुमनसो हरितो रोहितस्तथा ॥ सुवर्णाश्च सुरास्तत्र पञ्चैते दशका गणाः ॥ २३ ॥ तेषामिन्द्रस्तु विज्ञेय ऋतधामा महाबलः ॥ सर्वैरिन्द्रगुणैर्युक्ताः सप्तर्षीनपि मे शृणु ॥ २४॥ द्युतिस्तपस्वी सुतपास्तपोमूर्तिस्तपोनिधिः ॥ तपोरतिस्तथैवान्यः सप्तमस्तु तपोधृतिः ॥ २५ ॥ देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः ॥ मित्रवान्मित्रविन्दश्च भाविनस्तत्सुता नृपाः ॥ २६ ॥ त्रयोदशस्य पर्याये रौच्याख्यस्य मनोः सुरान् ॥ सप्तर्षींश्च नृपांश्चैव गदतो मे निशामय ॥ २७ ॥ सुधर्माणः सुरास्तत्र सुकर्माणस्तथापरे ॥ सुशर्माणः सुरा ह्येते समस्ता मुनिसत्तम ॥२८॥ महाबलो महावीर्यस्तेषामिन्द्रो दिवस्पतिः ॥ भविष्यानथ सप्तर्षीन्गदतो मे निशामय ॥ २९ ॥ धृतिमानव्ययश्चैव तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः ॥ निर्मोहः सुतपाश्चान्यो निष्प्रकम्पश्च सप्तमः ॥ ३० ॥

मित्रवान् और मित्रविन्द यही उस भावी मनुके पुत्र और राजा होंगे ॥ २६॥ रौच्य नामक तेरहवें मनुकी पर्यायप्राप्तिमें सप्तर्षि और उसके जो पुत्र राजा होंगे, उनका विषय कहताहूं, सुनो ॥ २७ ॥ हे मुनिसत्तम ! उस मन्वन्तरमें सुधर्मा, सुकर्मा, और सुशर्मा यह सब देवता हैं ॥ २८ ॥ महाबल महावीर्य दिवस्पति उनके इन्द्र होंगे । अब भविष्यत् सप्तर्षियोंका विषय कहताहूं, सुनो ॥ २९॥ धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और सप्तम निष्प्रकम्प यही सात जन सप्तर्षि हैं ॥ ३० ॥

चित्रसेन, विचित्र, नियति, निर्भय, दृढ, सुनेत्र, क्षत्रबुद्धि और सुव्रत, यही रौच्यमनुके पुत्र होंगे ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रौच्यमन्वन्तरे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–पूर्वकालमें प्रजापति रुचि ममतारहित, अहंकाररहित और पर्यटनमें जहां सूर्यास्त होय वहां शयन करनेवाला होकर इस पृथ्वीमें विचरण करतेथे ॥ १ ॥ उनके पितर उनको अग्निहीन, गृहहीन, एकाहार, आश्रमहीन और संगत्यागी मुनिव्रतचारी देखकर इस प्रकार कहने लगे ॥ २ ॥ पितरोंने कहा– हे वत्स ! तुमने दारपरिग्रह (विवाह) रूप पवित्रकार्य क्यों नहीं किया वह स्वर्ग और मुक्तिका कारण

चित्रसेनो विचित्रश्च नियतिर्निर्भयो दृढः ॥ सुनेत्रः क्षत्रबुद्धिश्च सुव्रतश्चैव तत्सुताः ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रौच्यमन्वन्तर एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ रुचिः प्रजापतिः पूर्वं निर्ममो निरहंकृतः ॥ यत्रास्तमितशायी च चचार पृथिवीमिमाम् ॥ १ ॥ अनग्निमनिकेतं तमेकाहारमनाश्रमम् ॥ विमुक्तसङ्गं तं दृष्ट्वा प्रोचुस्तत्पितरो मुनिम् ॥ २ ॥ पितर ऊचुः ॥ वत्स कस्मात्त्वया पुण्यो न कृतो दारसंग्रहः ॥ स्वर्गापवर्गहेतुत्वाद्बन्धस्तेनानिशं विना ॥ ३ ॥ गृही समस्तदेवानां पितॄणां च तथार्हणाम् ॥ ऋषीणामतिथीनां च कुर्वंल्लोकानुपाश्नुते ॥ ४ ॥ स्वाहोच्चारणतो देवान्स्वधोच्चारणतः पितॄन् ॥ विभजत्यन्नदानेन भूताद्यानतिथीनपि ॥ ५ ॥ स त्वं दैवादृणाद्बन्धं बन्धमस्मदृणादपि ॥ अवाप्नोषि मनुष्यर्षिभूतेभ्यश्च दिनेदिने ॥ ६ ॥ अनुत्पाद्य सुतान्देवानसन्तर्प्य पितॄंस्तथा ॥ भूतादींश्च कथं मौढ्यात्सुगतिं गन्तुमिच्छसि ॥ ७ ॥

होनेसे विवाहके विना समस्तही बंधन है ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण देवता, पितर, पूज्य ऋषि और अतिथिगणोंका सत्कार करके गृही पुरुष स्वर्गादि लोक भोग करते हैं ॥ ४ ॥ "स्वाहा" उच्चारण करके देवताओंकी "स्वधा" उच्चारण करके पितरोंकी और अन्नदानद्वारा अतिथिकी सेवारूप तीन ऋण निवटाकर पुरुष गृही होताहै, किन्तु तुम दिन दिन (गृही न होकर) देवऋण, पितृऋण, मनुष्य और संपूर्ण प्राणियोंके निकट बंधनको प्राप्त होतेहो ॥ ५ ॥ ६ ॥ विना पुत्र उत्पन्न किये तथा देवता और पितरोंका विना तर्पण किये और विना कर्म किये मूर्खतासे किस प्रकार श्रेष्ठगति प्राप्त करनेकी इच्छा करते हो ? ॥ ७ ॥

हे पुत्र ! तुमको जो जो क्लेश होगा, उस प्रत्येकको हम जानते हैं, मृतपुरुषके नरक भोगनेकी समान तुमको अन्य जन्ममें अनेक प्रकारका क्लेश होगा॥ ८॥ रुचिने कहा–दारपरिग्रह अर्थात् विवाह करना अत्यन्त दुःखप्रद और पापका कारणस्वरूप है, उससेही अधोगति होती है इसीलिये पूर्वमें मैंने विवाह नहीं किया ॥ ९ ॥ इन्द्रियदमनहेतु जो आत्मसंयम किया जाता है, वही मुक्तिका कारण है, विवाह करना कभी मुक्तिका कारण नहीं हो सकता ॥ १० ॥ परिग्रहहीन पुरुष ममतारूपी कीचडमें लिप्त आत्माको प्रतिदिन जो चित्तरूप जलसे धोते हैं, वही उत्तम हैं ॥ ११ ॥ अनेक जन्मजनित कर्मरूपी कीचडमें लिप्त आत्माको सद्वासनारूपी जलसे धोनाही संयतेन्द्रिय बुद्धिमानोंका कर्त्तव्य हैं ॥ १२ ॥ पितरोंने कहा यद्यपि संयतेन्द्रिय पुरुषोंको आत्माका प्रक्षालन

क्लेशमेवैहिकं पुत्र मन्यामोऽत्र भवेत्तव ॥ मृतस्य नरकं तद्वत्क्लेशमेवान्यजन्मनि ॥ ८ ॥ रुचिरुवाच ॥ परिग्रहोऽतिदुःखाय पापायाधो-
गतेस्तथा ॥ भवत्यतो मया पूर्वं न कृतो दारसंग्रहः ॥ ९ ॥ आत्मनः संयमो योऽयं क्रियतेऽक्षानियन्त्रणात् ॥ स मुक्तिहेतुर्न भवत्यसा-
वपि परिग्रहात् ॥ १० ॥ प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसं यदात्मा निष्परिग्रहैः ॥ ममत्वपङ्कदिग्धोऽपि चित्ताम्भोभिर्वरं हि तत् ॥ ११ ॥ अनेकभ-
वसंभूतकर्मपङ्कांकितो बुधैः ॥ आत्मा सद्वासनातोयैः प्रक्षाल्यो नियतेन्द्रियैः ॥ १२॥ पितर ऊचुः ॥ युक्तं प्रक्षालनं कर्तुमात्मनो नियते-
न्द्रियैः ॥ किन्तु लेपाय मार्गोऽयं यत्र त्वं पुत्र वर्तसे ॥ १३ ॥ पंचर्णदीनैरशुभं नुद्यतेऽनभिसान्धितैः ॥ फलैस्तथोपभोगैश्च पूर्वकर्मशुभा-
शुभैः ॥ १४ ॥ एवं न बन्धो भवति कुर्वतः कारणात्मकः ॥ न च बन्धाय तत्कर्म भवत्यनभिसान्धितम् ॥ १५ ॥ पूर्वकर्म कृतं भोगैः
क्षीयतेऽहर्निशं तथा ॥ सुखदुःखात्मकैर्वत्स पुण्यापुण्यात्मकैर्नृणाम् ॥ १६ ॥

करना कर्त्तव्य है, किन्तु हे पुत्र ! तुमने जिस मार्गका अवलम्बन किया है यह क्या मोक्ष प्राप्त होनेका मार्ग है ? ॥१३॥ जिस प्रकार कामनारहित दानसे अशुभ नष्ट होता है इसी प्रकार शुभाशुभ फलभी उसका उपभोग करनेसे पूर्वजन्मार्जित कर्म क्षय होता है ॥ १४ ॥ इस प्रकार करुणात्मक कर्मकारियोंको संसारबंधन नहीं होता, क्योंकि अनभिसंधि तो उस कर्म बंधनका हेतु नहीं है ॥१५ ॥ हे वत्स ! सुखदुःखात्मक भोगद्वारा मनुष्योंके पूर्वजन्मकृत पुण्यापुण्यात्मक कर्म रात दिन क्षयको प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य आत्माको इस प्रकार प्रक्षालन करैं और बंधनसे रक्षा करैं, किन्तु अविवेकरूप पापपंकद्वारा आत्माको लिप्त न करै ॥ १७ ॥ रुचिने कहा— हे पितामहगण! वेदमें कर्ममार्गको अविद्या कहकर पढा है, तो फिर किस निमित्त आप मुझको कर्ममार्गमें प्रवृत्त करते हैं? ॥ १८ ॥ पितर बोले—यह कर्ममार्ग जो अविद्या है सो सत्य है और कर्मद्वाराही यह वचन मिथ्या होता है. क्योंकि कर्म जो विद्याप्राप्तिका हेतु है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ समस्त कर्त्तव्य कार्य विना किये असत् पुरुष मुक्तिके निमित्त जो संयम करते हैं, वह अन्तकालमें अधोगति प्रदान करते हैं ॥ २० ॥ हे वत्स! तुम मनमें यह समझते हो कि, मैं "आत्माको प्रक्षालन करताहूं" किन्तु विहितकर्मसम्पादन न करनेसे उसके पापमें दग्ध होते हो ॥ २१ ॥ अपकारक विष

एवं प्रक्षाल्यते प्राज्ञैरात्मा बन्धाच्च रक्ष्यते ॥ न त्वेवमविवेकेन पापपङ्केन लिप्यते ॥ १७ ॥ रुचिरुवाच ॥ अविद्या पठ्यते वेदैः कर्ममार्गः पितामहाः ॥ तत्कथं कर्मणो मार्गे भवन्तो योजयन्ति माम् ॥ १८ ॥ पितर ऊचुः ॥ अविद्या सत्यमेवैतत्कर्म नैतन्मृषावचः ॥ किन्तु विद्यापरिप्राप्तौ हेतुः कर्म न संशयः ॥ १९ ॥ विहिताकरणात्पुंभिरसद्भिः क्रियते तु यः ॥ संयमो मुक्तये नासौ प्रत्युताऽधोगतिप्रदः ॥ २० ॥ प्रक्षालयामीति भवान्वत्सात्मानं तु मन्यते ॥ विहिताकरणोद्भूतैः पापैस्त्वं तु विलिप्यसे ॥ २१ ॥ अविद्याप्युपकाराय विषवज्जायते नृणाम् ॥ अनुष्ठिताभ्युपायेन बन्धायान्यायतो हि सा ॥ २२ ॥ तस्माद्वत्स कुरुष्व त्वं विधिवद्दारसंग्रहम् ॥ मां जन्म विफलं तेऽस्तु असम्प्राप्य तु लौकिकम् ॥ २३ ॥ रुचिरुवाच ॥ वृद्धोऽहं साम्प्रतं को मे पितरः सम्प्रदास्यति ॥ भार्यां तथा दरिद्रस्य दुष्करो दारसंग्रहः ॥ २४ ॥

जिस प्रकार मनुष्यका उपकार साधन करता है, इसी प्रकार यह अविद्याभी मनुष्यका उपकार करनेवाली है। यह अन्यरूप होनेपरभी अनुष्ठित कार्य कल्याणकारी उपायके सहित हमारे पक्षमें मंगलदायक है ॥ २२ ॥ हे वत्स! इस कारण तुम विधिवत् दारपरिग्रह अर्थात् विवाह करो, जिससे लौकिकधर्म सम्यक् प्रकार प्राप्त न होनेके कारण तुम्हारा जन्म विफल न हो ॥ २३ ॥ रुचिने कहा—हे पितृगण! अब मैं वृद्ध होगया हूं अतएव कौन मुझको स्त्री देगा? विशेष कर दरिद्रके पक्षमें भार्याग्रहण अत्यन्त दुष्कर (कठिन) है ॥ २४ ॥

पितर बोले–हे वत्स ! यदि तुम हमारे वचनका अनुमोदन नहीं करोगे अर्थात् स्वीकार नहीं करोगे तो हमारा पतन और तुम्हारीभी अधोगति होगी ॥ २५॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे मुनिसत्तम ! यह कहकर उनके पितर देखते देखते वायुसे बुझेहुए दीपककी समान सहसा अन्तर्धान होगये ॥ २६॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रुच्युपाख्यानं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२॥ मार्कण्डेयजी बोले–वह विप्रर्षि रुचि इस प्रकार पितरोंका वचन सुन अत्यन्त उद्विग्नमन हो और कन्याकी अभिलाषा करके पृथ्वीमें भ्रमण करनेलगे ॥ १ ॥ पितरोंके वचनरूपी अग्निसे दीप्तिमान् होकर वह कन्या प्राप्त न करसकनेके कारण अत्यन्त उद्विग्नमनसे बडी चिन्तामें प्राप्त हुए ॥ २ ॥ " क्या करूं ? कहां जाऊं ! किस प्रकारसे मेरे पितरोंका अभ्युदय करनेवाला

पितर ऊचुः ॥ अस्माकं पतनं वत्स भवतश्चाप्यधोगतिः ॥ नूनं भावि भवित्री च नाभिनन्दसि नो वचः ॥ २५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतो मुनिसत्तम ॥ बभूवुः सहसाऽदृश्या दीपा वाताहता इव ॥ २६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रुच्युपाख्याने द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ स तेन पितृवाक्येन भृशमुद्विग्नमानसः ॥ कन्याभिलाषी विप्रर्षिः परिबभ्राम मेदिनीम् ॥ १ ॥ कन्यामलभमानोऽसौ पितृवाक्याग्निदीपितः ॥ चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसः ॥ २ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे दारसंग्रहः ॥ क्षिप्रं भवेत्पितॄणां यो ममाभ्युदयकारकः ॥ ३ ॥ इति चिन्तयतस्तस्य मतिर्जाता महात्मनः ॥ तपसाराधयाम्येनं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ ४ ॥ ततो वर्षशतं दिव्यं तपस्तेपे स वेधसम् ॥ दिदृक्षुः सुचिरं कालं परं नियममास्थितः ॥ ५ ॥ ततः स्वं दर्शयामास ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ उवाच तं प्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ॥ ६ ॥

मेरा दारपरिग्रह (विवाह) कार्य शीघ्र संपन्न हो । " ॥ ३ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते करते उन महात्माको यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि " मैं तपस्याद्वारा भगवान् कमलयोनि ब्रह्माजीकी आराधना करूं " ॥ ४ ॥ तब उन्होंने विधाताकी आराधनाके कारण यथावत् नियममें स्थित होकर दिव्य शतवर्षतक तपस्या की थी ॥ ५ ॥ तब लोकपितामह ब्रह्माजीने उनको अपनी मूर्त्तिका दर्शन देकर कहा " मैं प्रसन्न हुआहूं, अब तुम अपना अभीष्ट विषय वर्णन करो " ॥ ६ ॥

तब रुचिने जगत्के गतिस्वरूप भगवान् ब्रह्माजीको प्रणाम करके पितरोंके वचनानुसार जो करनेकी इच्छा करी है, वह कहा। तब ब्रह्माजीने विप्रर्षि रुचिका अभीष्ट विषय सुनकर उनसे कहा ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे विप्र ! तुम प्रजापति होंगे तुम्हारे द्वारा प्रजा उत्पन्न होगी, प्रजासृष्टि और सन्तान उत्पादन-पूर्वक समस्त क्रिया ॥ ८ ॥ करके जब तुम अधिकाररहित होगे, तब सिद्धिलाभमें समर्थ होगे, इस कारणही तुमसे पितृगण विवाह करनेको कहते हैं ॥ ९॥ "यह अवश्य कर्तव्य है" इस प्रकार विचार कर तुम पितरोंकी पूजा करो। वह पितृगण सन्तुष्ट होनेपर तुमको अभीष्ट पत्नी और पुत्र प्रदान करेंगे, क्योंकि पितर सन्तुष्ट होनेपर क्या नहीं देते हैं ? ॥ १० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अव्यक्तजन्मा ऋषि ब्रह्माका इस प्रकार वचन सुनकर उन्होंने नदीके

ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माणं जगतो गतिम् ॥ पितॄणां वचनात्तेन यत्कर्तुमभिवाञ्छितम् ॥ ब्रह्मा चाह रुचिं विप्रं श्रुत्वा तस्याभिवाञ्छितम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रजापतिस्त्वं भविता स्रष्टव्या भवता प्रजाः ॥ सृष्ट्वा प्रजाः सुतान्विप्र समुत्पाद्य क्रियास्तथा ॥ ८ ॥ कृत्वा कृताधिकारस्त्वं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ स त्वं यथोक्तं पितृभिः कुरु दारपरिग्रहम् ॥ ९ ॥ कामं चेममभिध्याय क्रियतां पितृपूजनम् ॥ त एव तुष्टाः पितरः प्रदास्यन्ति तवेप्सितान् ॥ पत्नीं सुतांश्च सन्तुष्टाः किं न दद्युः पितामहाः ॥ १० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ नद्या विविक्ते पुलिने चकार पितृतर्पणम् ॥११॥ तुष्टाव च पितॄन्विप्रः स्तवैरेभिस्तथादृतः ॥ एकाग्रः प्रयतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥ १२ ॥ रुचिरुवाच ॥ नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धे ये वसन्त्यधिदेवताः ॥ देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये च श्राद्धे स्वधोत्तरैः ॥ १३ ॥ नमस्येऽहं पितॄन्स्वर्गे ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः ॥ श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्या भुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥ १४ ॥

निर्जन पुलिनमें पितरोंका तर्पण किया ॥ ११ ॥ हे विप्र ! उन्होंने आदरसहित, एकाग्रचित्त, प्रयत और भक्तिसे नम्रग्रीव हो इस स्तोत्रसे पितरोंको संतुष्ट किया ॥ १२ ॥ रुचिने कहा—श्राद्धमें जो अधिदेवतारूपसे वास करते हैं, देवताभी श्राद्धमें स्वाहा उच्चारण करके जिनको तृप्त करते हैं उन पितरोंको मैं नमस्कार करताहूं ॥ १३ ॥ स्वर्गमें भुक्ति मुक्तिकी अभिलाषा करनेवाले मनोमय श्राद्धद्वारा महर्षिगण भक्तिपूर्वक जिनको तृप्त करते हैं उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ १४ ॥

स्वर्गमें सिद्धिगण श्राद्धके समय अति उत्तम दिव्य सब उपहारोंसे जिनको तृप्त करतेहैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ १५ ॥ अत्युत्कृष्ट अत्यन्त समृद्धिके अभिलाषी गुह्यकगण तन्मयभावसे भक्तिसहित जिनकी अर्चना करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ १६ ॥ मर्त्यलोकमें मनुष्य श्राद्धमें जिन अभीष्ट लोकोंके देनेवाले पितरोंकी श्रद्धासहित अर्चना करते हैं, उनको नमस्कार करताहूं ॥ १७ ॥ जो प्राजापत्य पद प्रदान करनेवाले पितरगण वांछित विषय प्राप्त होनेके निमित्त ब्राह्मणोंके द्वारा पृथ्वीमें पूजित होते हैं, उनको नमस्कार करताहूं ॥ १८ ॥ यताहारी और तपके द्वारा नष्ट होगये हैं पाप जिनके, ऐसे अरण्यवासिगण वन्यश्राद्धद्वारा जिनको तृप्त करते हैं उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ १९ ॥ संयतात्मा नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्राह्मण

नमस्येऽहं पितॄन्स्वर्गे सिद्धाः सन्तर्पयन्ति यान् ॥ श्राद्धेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः ॥ १५ ॥ नमस्येऽहं पितॄन्भक्त्या येऽर्च्यन्ते गुह्यकैरपि ॥ तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिर्ऋद्धिमात्यन्तिकीं पराम् ॥ १६ ॥ नमस्येऽहं पितॄन्मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ॥ श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः ॥ १७ ॥ नमस्येऽहं पितॄन्विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ॥ वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः ॥१८॥ नमस्येऽहं पितॄन्ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः ॥ वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकिल्बिषैः ॥ १९॥ नमस्येऽहं पितॄन्विप्रैर्नैष्ठिकव्रतचारिभिः ॥ ये संयतात्मभिर्नित्यं संतर्प्यन्ते समाधिभिः ॥ २०॥ नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धे राजन्यास्तर्पयन्ति यान् ॥ कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकत्रयफलप्रदान् ॥२१॥ नयस्येऽहं पितॄन्वैश्यैरर्च्यंते भुवि ये सदा ॥ स्वकर्माभिरतैर्नित्यं पुष्पधूपान्नवारिभिः ॥२२॥ नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैर्यै शूद्रैरपि भक्तितः ॥ सन्तर्प्यन्ते जगत्यत्र नाम्ना ख्याताः सुकालिनः ॥ २३ ॥

समाधिद्वारा जिनको तृप्त करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ २० ॥ राजन्य गण अर्थात् क्षत्रिय लोग जिन तीनों लोकमें फलप्रद पितरोंको श्रद्धापूर्वक अशेष कव्य (श्राद्धान्न) द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरोंको मैं प्रणाम करताहूं ॥ २१ ॥ अपने कर्ममें आसक्त वैश्यगण पृथ्वीमें जिनको पुष्प धूप अन्न और जलद्वारा संतुष्ट करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ २२ ॥ इस जगत्में शूद्रगण जिन सुकालीन नामक विख्यात पितरोंको भक्तिसहित श्राद्धद्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ २३ ॥

पातालमें दम्भ मदत्यागी महासुरगण जिन स्वधाहार पितरोंको सदा श्राद्धद्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ २४॥ रसातलमें कामाभिलाषी नागकुल जिनको अशेष भोग और श्राद्धद्वारा सर्वदा यथाविधि संतुष्ट करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करता हूं ॥२५॥ मंत्र, भोग और सम्पत्तसंयुक्त सर्पगण पातालमें सदा जिन पितरोंको श्राद्धद्वारा विधिवत् सन्तर्पित करते हैं, उन पितरोंको प्रणाम करताहूं ॥ २६ ॥ जो देवलोक और अंतरिक्षमें प्रत्यक्ष भावसे वास करते हैं और पृथ्वीतलमें जो देवताओंके द्वारा पूजित होतेहैं, उन पितरोंको प्रणाम करताहूं, वह मेरी दीहुई पूजा ग्रहण करैं ॥२७॥ जो

नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैः पाताले ये महासुरैः ॥ सन्तर्प्यन्ते स्वधाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा ॥ २४ ॥ नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैरर्च्यन्ते ये रसातले ॥ भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैः कामानभीप्सुभिः ॥ २५ ॥ नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैः सर्पैः सन्तर्पितान्सदा ॥ तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः ॥ २६ ॥ पितॄन्नमस्ये निवसन्ति साक्षाद्ये देवलोके च तथान्तरिक्षे ॥ महीतले ये च सुरादिपूज्यास्ते मे प्रतीच्छन्तु मयोपनीतम् ॥ २७ ॥ पितॄन्नमस्ये परमात्मभूता ये वै विमाने निवसन्ति मूर्त्ताः ॥ यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥२८॥ पितॄन्नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ ॥ प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु ॥ २९ ॥ तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरः समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान् ॥ सुरत्वमिन्द्रत्वमतोऽधिकं वा सुतान्पशून्स्वानि बलं गृहाणि ॥ ३० ॥ सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति ॥ तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु ॥ ३१ ॥

मूर्तिमान् परमात्माभूत और विमानमें वास करते हैं और योगीश्वरगण विमल मनसे क्लेशविमोचक ज्ञानद्वारा जिनकी यज्ञमें आराधना करतेहैं उन पितरोंको प्रणाम करताहूं ॥ २८ ॥ जो स्वर्गमें मूर्तिमान् काम्यफलप्राप्तिविषयमें स्वधाभोजी हैं, जो सब प्रार्थी गणोंको इष्टप्रदानमें समर्थ हैं और जो कामनावर्जित कार्यमें विमुक्तिप्रदान करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥२९॥ जो प्रार्थिगणोंको प्रार्थना की हुई वस्तु देते हैं और जो सुरत्व, इन्द्रत्व, वा इससेभी अधिक अथवा पुत्र, पशु, अर्थ, बल, गृह इत्यादि कामनारूप दान करतेहैं, मेरी इस पूजासे वह तृप्त हों ॥ ३० ॥ जो सदा चन्द्रमाकी किरणोंमें सूर्यबिम्बमें

और शुक्ल विमानमें वास करते हैं, वह पितृगण मेरे द्वारा तृप्त हों और वह अन्न, जल तथा गन्धादि द्वारा पुष्टिको प्राप्त हों ॥ ३१ ॥ अग्निमें घृतकी आहुति देनेसे जो तृप्त होते हैं जो ब्राह्मणके शरीरमें स्थित होकर भोजन करते हैं और पिण्डदान करनेसे जो संतुष्ट होते हैं, वही पितृगण इस अन्न, जल-द्वारा इस विषयमें तृप्त हों ॥ ३२॥ देवता गैंडेके मांस और अभीष्ट दिव्य मनोहर काले तिलोंसे जिनको प्रसन्न करते हैं और महर्षिगण वर्षके पीछे काल शाकद्वारा जिनको तृप्त करते हैं वह पितृगण इस विषयमें संतुष्ट हों ॥ ३३ ॥ देवताओंसे अर्चित उन पितृगणोंके जो समस्त अभीष्ट कव्य हैं, मैंने वही पुष्प, गन्ध, अन्न, भोज्य संग्रह किया है, वह इनके समीप उपस्थित हों ॥ ३४ ॥ जो प्रतिदिन पूजा ग्रहण करते हैं, पृथ्वीमें जो प्रतिमास तीनों अष्टकोंमें

येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः ॥ ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैः ॥ ३२ ॥ ये खड्गिमांसेन सुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च ॥ कालेन शाकेन महर्षिवर्यैः संप्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु ॥ ३३ ॥ कव्यान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषाममरार्चितानाम् ॥ तेषां तु सान्निध्यमिहास्तु पुष्पगन्धान्नभोज्येषु मया कृतेषु ॥ ३४ ॥ दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽर्चां मांसातपूज्यां भुवि येऽष्टकासु ॥ ये वत्सरांतेऽभ्युदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तृप्तिम् ॥ ३५ ॥ पूज्या द्विजानां कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणां च नवार्कवर्णाः ॥ तथा विशां ये कनकावदाता नीलीनिभाः शूद्रजनस्य ये च ॥३६॥ तेऽस्मिन्समस्ता मम पुष्पगंधधूपान्नतोयादिनिवेदनेन ॥ तथाग्निहोमेन च यांतु तृप्तिं सदा पितृभ्यः प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥ ३७ ॥

पूजित होते हैं; और जो वर्षके अन्तमें उत्सवके दिन पूजे जाते हैं, वह पितृगण मेरी इस पूजासे तृप्त हों ॥ ३५ ॥ जो पितृगण (कुमुद और चन्द्रमा) की सदृश शुक्लवर्ण प्रभायुक्त होकर देवताओंके पूज्य होते हैं, जो नवीन उदयहुए सूर्यके समान रक्तवर्णयुक्त होकर क्षत्रियोंके पूज्य होते हैं, जो कनककी सदृश सुन्दर कान्तियुक्त होकर वैश्योंके पूज्य और जो (नीलीकी समान) रूपसे शूद्रोंके पूज्य होते हैं ॥ ३६ ॥ वह सम्पूर्ण पितृगण मेरे पुष्प, गन्ध धूप, अन्न और जलादिनिवेदन तथा अग्निहोम द्वारा मुझसे तृप्त हों, मैं सदा उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ ३७ ॥

१ शाकाष्टका, मांसाष्टका और पूपाष्टका ।

जो अतितृप्तिहेतु देवताओंके आगे आहुत होमे हुए समस्त शुभ कव्य अन्न आहार करते हैं और जो तृप्त होकर अणिमादि अष्टैश्वर्यकी सृष्टि करते हैं, वह मेरे द्वारा तृप्त हों मैं उनको प्रणाम करताहूं ॥ ३८ ॥ जो राक्षस, भूत और उग्र असुरोंके घातक तथा प्रजाके अमंगलका नाश करते हैं, जो देवताओंके आदि पुरुष हैं और जो अमरेश इन्द्रके पूज्य हैं, वह पितृगण मेरे द्वारा तृप्त हों, मैं उनको प्रणाम करताहूं ॥ ३९ ॥ अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, आज्यपा और सोमपा पितृगण मेरे द्वारा तर्पित होकर इस श्राद्धमें तृप्ति लाभ करें ॥ ४० ॥ अग्निष्वात्ता पितर मेरी पूर्वदिशामें और बर्हिषद पितर दक्षिण दिशामें रक्षा करें ॥ ४१ ॥ आज्यपा पितर पश्चिमदिशामें और सोमपा पितृगण इसी प्रकार उत्तर दिशामें राक्षस, भूत, पिशाच और

ये देवपूर्वाण्यतितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहुतानि ॥ तृप्ताश्च ये भूतिसृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३८॥ रक्षांसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्नाशयन्तस्त्वशिवं प्रजानाम् ॥ आद्याः सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यंतु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३९॥ अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा ॥ व्रजंतु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पिता मया ॥४०॥ अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम् ॥ तथा बर्हिषदः पान्तु याम्यां ये पितरः स्मृताः ॥४१॥ प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः ॥ रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ॥४२॥ सर्वतश्चाधिपस्तेषां यमो रक्षां करोतु मे ॥ विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्मो धन्यः शुभाननः ॥४३॥ भूतिदो भूतिकृद्भूतिः पितॄणां ये गणा नव ॥ कल्याणः कल्यताकर्त्ता कल्यः कल्यतराश्रयः ॥४४॥ कल्यताहेतुरनघः षडिमे ते गणाः स्मृताः ॥ वरो वरेण्यो वरदः पुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा ॥ ४५ ॥ विश्वपाता तथा धाता सप्तैवैते तथा गणाः ॥ महान्महात्मा महितो महिमावान्महाबलः ॥ ४६ ॥

असुरोत्पन्न दोषसे रक्षा करें ॥ ४२ ॥ जिन पितरोंके विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धन्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत और भूति यह नव संख्यात्मकगण हैं, उनके अधिपति यम मेरी सब दिशाओंमें रक्षा करें । कल्याण, कल्यताकर्त्ता, कल्य, कल्यतराश्रय ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ कल्यताहेतु और अनघ, जिन पितृपुरुषोंके यह छः प्रकारके गण हैं जिन पितृपुरुषोंके वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद ॥ ४५ ॥ विश्वपाता और धाता यह सप्तविध गण हैं, महान्, महात्मा, महित, महिमावान् और महाबल नामक ॥ ४६ ॥

जो पितरोंके पापनाशक यह पांच प्रकारके गण हैं और सुखद, धनद, धर्मद और भूतिदाता गण हैं ॥ ४७ ॥ पितरोंके यह जो चार गण कहेगये हैं, सब समेत वह एकत्रिंशत् अर्थात् एकतीस पितृगण हैं, जो संपूर्ण जगत्को व्याप्त कररहे हैं, वह मेरे द्वारा तृप्त होकर मुझको संतुष्ट करैं और मेरा सदा हित करैं ॥ ४८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रुचिकृतपितृस्तवनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—जब रुचिने इस प्रकार स्तवन किया, तब सहसा उनके निकट उच्छ्रित (उच्च शिखायुक्त) और गगनव्यापक तेज प्रादुर्भूत हुआ ॥ १ ॥ समस्त जगत्को आच्छादन करके अव-

गणाः पञ्च तथैवैते पितॄणां पापनाशनाः ॥ सुखदो धनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्च भूतिदः ॥ ४७ ॥ पितॄणां कथ्यते चैतत्तथा गणचतुष्टयम् ॥ एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥ ते मेऽनुतृप्तास्तुष्यंतु यच्छन्तु च सदा हितम् ॥४८॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रौच्यमन्वन्तरे रुच्युपाख्याने पितृस्तवनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं तु स्तुवतस्तस्य तेजसो राशिरुच्छ्रितः ॥ प्रादुर्बभूव सहसा गगनव्याप्तिकारकः ॥ १ ॥ तद्दृष्ट्वा सुमहत्तेजः समासाद्य स्थितं जगत् ॥ जानुभ्यामवनिं गत्वा रुचिः स्तोत्रमिदं जगौ ॥ २ ॥ रुचिरुवाच ॥ अमूर्तानां च मूर्त्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम् ॥ नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम् ॥ ३ ॥ इन्द्रादीनां च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा ॥ सप्तर्षीणां तथान्येषां तान्नमस्यामि कामदान् ॥ ४ ॥ मन्वादीनां मुनीन्द्राणां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ॥ तान्नमस्याम्यहं सर्वान्पितरश्चार्णवेषु ये ॥ ५ ॥ नक्षत्राणां ग्रहाणां च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा ॥ द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृतांजलिः ॥ ६ ॥

स्थित उस तेजको देखकर रुचि जानुद्वारा पृथ्वीस्पर्शपूर्वक यह स्तोत्र कीर्त्तन करनेलगे ॥ २ ॥ रुचिने कहा—उन ध्यानरत, दिव्यचक्षु, दीप्ततेजा, अर्चित और मूर्त्तिहीन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ ३ ॥ दक्ष, मरीचि, सप्तर्षि गण तथा इन्द्रादि अन्यान्य सबके नेता, उन कामदाता पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ ४ ॥ मनु इत्यादि मुनींद्रगणोंके तथा सूर्य एवं चन्द्रमाके नेता और कामदाता तथा समुद्र और जलमें स्थित उन समस्त पितरोंको प्रणाम करताहूं ॥ ५ ॥ जो नक्षत्र, ग्रह, वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथ्वीके नेता तथा कामदाता हैं, उन पितरोंको कृताञ्जलि हो अर्थात् हाथ जोडकर नमस्कार करताहूं ॥ ६ ॥

जो देवर्षियोंके उत्पन्न करनेवाले, सर्वलोकनमस्कृत अक्षयत्व अर्थात् अक्षय फलके दाता हैं, उन पितरोंको सदा हाथ जोडकर प्रणाम करताहूं ॥ ७ ॥ जो प्रजापतियोंमें कश्यप, एवं सोम, वरुण और योगेश्वररूपी है, सदा हाथ जोडकर मैं उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ ८ ॥ जो सप्तलोकके मध्य सप्तगणोंमें स्थित हैं उनको नमस्कार करताहूं और योगचक्षु स्वयम्भू ब्रह्माके स्वरूप उन पितरोंको प्रणाम करताहूं ॥ ९ ॥ जो सोमके आधार, योगमूर्तिधारी सोमरूपी और जगत्के पिता हैं, उन पितरोंको मैं नमस्कार करताहूं ॥ १० ॥ जिन अशेष पितरोंसे अग्नि सोम यह विश्व उत्पन्न है, उन अग्निरूपी और

देवर्षीणां ग्रहाणां च सर्वलोकनमस्कृतान् ॥ अक्षय्यस्य सदा दातॄन्नमस्येऽहं कृतांजलिः ॥७॥ प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च ॥ योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृतांजलिः ॥८॥ नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु ॥ स्वयंभुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ॥९॥ सोमाधारान्पितृगणान्योगमूर्तिधरांस्तथा ॥ नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् ॥१०॥ अग्निरूपांस्तथैवान्यान्नमस्यामि पितॄनहम् ॥ अग्नीषोममयं विश्वं यत एतदशेषतः ॥११॥ ये तु तेजासि ये चैते सोमसूर्याग्निमूर्त्तयः ॥ जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥१२॥ तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः ॥ नमो नमो नमस्ते मे प्रसीदंतु स्वधाभुजः ॥ १३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं स्तुतास्ततस्तेन तेजसा मुनिसत्तम ॥ निश्चक्रमुस्तेऽपि ततो भासयन्तो दिशो दश ॥ १४ ॥ निवेदितं च यत्तेन पुष्पगन्धानुलेपनम् ॥ तद्भूषितानथ स तान्ददृशे पुरतः स्थितान् ॥ १५ ॥

अन्यान्य पितरोंको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ११ ॥ जो तेजःस्थित होकर सोम सूर्याग्निमूर्ति अवलम्बन करनेसे जगत्स्वरूपी और ब्रह्मस्वरूपी हैं उन संपूर्ण योगी पितरोंको मैं संयतमन होकर वारंवार नमस्कार करताहूं, वह स्वधाभोजी पितृगण मेरे प्रति प्रसन्न हों ॥ १२ ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुनिसत्तम ! रुचिके इस प्रकार स्तुति करनेपर पितृगण तेजद्वारा दशों दिशाओंको प्रकाशमान करतेहुए निकले ॥ १४ ॥ अनन्तर उन्होंने जो पुष्पगन्धानुलेपन कव्य निवेदन किया था, विप्रवर रुचिने उनको उसके द्वारा विभूषित होकर सन्मुख आते देखा ॥ १५ ॥

और फिरभी हाथ जोडकर भक्तिसहित प्रणामपूर्वक पृथक् पृथक् प्रत्येकसे " तुमको नमस्कार तुमको नमस्कार " इस प्रकार आदरसे कहनेलगे ॥ १६ ॥ तदनन्तर पितरोंने प्रसन्न होकर उन मुनिश्रेष्ठसे कहा—वर मांगो । तब विप्रवर रुचि गर्दन झुकाकर उनसे बोले ॥ १७ ॥ रुचिने कहा—इस समय ब्रह्माजीने मुझको सृष्टि उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी है । इस कारण अब मैं धन्या दिव्य (सुंदरी) और संतान उत्पन्न करनेमें समर्थ पत्नीके प्राप्त करनेकी अभिलाषा करताहूं ॥ १८ ॥ पितर बोले-तुमको अभी इस स्थानमें मनोहर पत्नी प्राप्त होगी, उसके गर्भसे तुम्हारे श्रेष्ठ मनु पुत्र उत्पन्न होगा ॥ १९ ॥ हे रुचे ! मन्वन्तराधिप बुद्धिमान् तुम्हारा पुत्र तुम्हारे नामानुसारही विख्यात होगा । अर्थात् तीनों जगत्में रौच्यनामसे प्रसिद्ध होगा ॥ २० ॥ उस रौच्यकेभी

प्रणिपत्य पुनर्भक्त्या पुनरेव कृतांजलिः ॥ नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः ॥१६॥ ततः प्रसन्नाः पितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम् ॥ वरं वृणीष्वेति स तानुवाचानतकंधरः ॥१७॥ रुचिरुवाच ॥ साम्प्रतं सर्गकर्तृत्वमादिष्टं ब्रह्मणा मम ॥ सोऽहं पुत्रीमभीप्सामि धन्यां दिव्यां प्रजावतीम् ॥१८॥ पितर ऊचुः ॥ अद्यैव सद्यः पत्नी ते भवत्वतिमनोरमा ॥ तस्यां च पुत्रो भविता भवतो मनुरुत्तमः ॥१९॥ मन्वन्तराधिपो धीमांस्त्वन्नाम्नैवोपलक्षितः ॥ रुचे रौच्य इति ख्यातिं यो यास्यति जगत्त्रये ॥२०॥ तस्यापि बहवः पुत्रा महाबलपराक्रमाः ॥ भविष्यन्ति महात्मानः पृथिवीपरिपालकाः ॥ २१ ॥ त्वं च प्रजापतिर्भूत्वा प्रजाः सृष्ट्वा चतुर्विधाः ॥ क्षीणाधिकारो धर्मज्ञ ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥२२॥ स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मांस्तोष्यति भक्तितः ॥ तस्य तुष्टा वयं भोगानात्मज्ञानं तथोत्तमम् ॥२३॥ शरीरारोग्यमर्थं च पुत्रपौत्रादिकं तथा ॥ प्रदास्यामो न संदेहो यच्चान्यदभिवांछितम् ॥ २४ ॥

महाबल पराक्रमी महात्मा पृथ्वीपालक बहुत पुत्र जन्म ग्रहण करेंगे ॥ २१ ॥ तुमभी प्रजापति हो चार प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करके जब धर्मज्ञ और क्षीणाधिकार होंगे, तब तुमको सिद्धि प्राप्त होगी ॥ २२ ॥ जो नर इस स्तोत्रके द्वारा भक्तिसहित हमारी स्तुति करेंगे, हम उनके प्रति संतुष्ट होकर भोग और उत्तम आत्मज्ञान प्रदान करेंगे ॥ २३ ॥ शरीरकी आरोग्यता धन और पुत्रपौत्रादिकके चाहनेवाले तथा और भी वांछित अभिलाषके चाहनेवाले इस स्तोत्रके द्वारा सदा हमारी स्तुति करै, तो हम निःसंदेह उनकी अभीष्ट वस्तु प्रदान करेंगे ॥ २४ ॥

इस कारण लोकमें पुण्यफलकी इच्छा करनेवालोंको इस स्तोत्रसे पितरोंकी अक्षयतृप्ति करनी चाहिये ॥ २५ ॥ हमारी प्रीतिकी इच्छावालोंको यह निरन्तर पढना चाहिये श्राद्धकालमें भोजन करतेहुए ब्राह्मणोंके सन्मुख स्थित होकर जो हमारे प्रीतिकर ॥ २६ ॥ इस स्तोत्रको भक्तिसहित पढेगा और स्तोत्र श्रवणसे उत्पन्न हुई प्रीतिद्वारा समीपमें ॥ २७ ॥ स्थितिको इष्ट समझेगा, उसके द्वारा निःसन्देह हमारा अक्षयश्राद्ध सम्पन्न होगा। यद्यपि श्राद्ध श्रोत्रियहीन वा दूषित हो ॥ २८ ॥ अथवा यदि अन्यायसे उत्पन्न किये धनसे संपादित वा अन्यथा किया जाय, या अकालमें अदेशमें अविहित रूपसे श्रद्धासे

तस्मात्पुण्यफलं लोके वांछद्भिः सततं नरैः ॥ पितॄणां चाक्षयां तृप्तिं स्तव्याः स्तोत्रेण मानवैः ॥२५॥ वांछद्भिः सततं स्तव्याः स्तोत्रेणानेन वै यतः ॥ श्राद्धे च य इमं भक्त्या अस्मत्प्रीतिकरं स्तवम् ॥ २६ ॥ पठिष्यंति द्विजाग्र्याणां भुंजतां पुरतः स्थितः ॥ स्तोत्रश्रवणसंप्रीत्या सन्निधाने परे कृते ॥ २७ ॥ अस्माकमक्षयं श्राद्धं तद्भविष्यत्यसंशयम् ॥ यद्यप्यश्रोत्रियं श्राद्धं यद्यप्युपहतं भवेत् ॥ २८ ॥ अन्यायोपात्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा ॥ अश्राद्धार्हैरुपहतैरुपहारैस्तथा कृतम् ॥ २९ ॥ अकालेऽप्यथवाऽदेशे विधिहीनमथापि वा ॥ अश्रद्धया वा पुरुषैर्दम्भमाश्रित्य वा कृतम् ॥ ३० ॥ अस्माकं तृप्तये श्राद्धं तथाप्येतदुदीरणात् ॥ यत्रैतत्पठ्यते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ॥ ३१ ॥ अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी ॥ हेमंते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत्प्रयच्छति ॥ ३२ ॥ शिशिरे द्विगुणाब्दांश्च तृप्तिं स्तोत्रमिदं शुभम् ॥ वसंते षोडश समास्तृप्तये श्राद्धकर्मणि ॥ ३३ ॥

हीन दूषित उपहारके द्वारा किया जाय अथवा श्रद्धाहीन दंभी पुरुषोंके द्वारा किया जाय ॥ २९ ॥ ३० ॥ किन्तु तोभी इस स्तोत्रपाठके कारण वह श्राद्ध हमारी तृप्ति करनेवाला होगा जिस श्राद्धमें हमारा सुखकर यह स्तोत्र पढा जाता है ॥ ३१ ॥ उस श्राद्धसे हमको बारह वर्षतक तृप्ति प्राप्त होती है, यह स्तोत्र हेमन्तकालमें हमको द्वादश वार्षिक तृप्ति प्रदान करता है ॥ ३२ ॥ यह शुभ स्तोत्र शीतकालमें हमको चौबीस वर्ष पर्यन्त तृप्तिप्रदान करता है। वसन्तके समय श्राद्धकालमें इस स्तोत्रका पाठ करनेसे सोलह वर्षतक तृप्तिप्रदान करता है ॥ ३३ ॥

और ग्रीष्मकालमें भी इस स्तोत्रका पाठ करनेसे सोलह वर्षपर्यन्त तृप्तिकारक होता है किसी कारणसे श्राद्धके विकृत होनेपर इस स्तोत्रपाठद्वारा वह सम्पन्न होता है ॥ ३४ ॥ हे रुचे ! वर्षाकालमें श्राद्धके समय इस स्तोत्रका पाठ करनेसे हमारी अक्षय तृप्ति होती है। पुरुष यदि शरत्कालमें इस स्तोत्रका पाठ करके श्राद्धीय द्रव्य प्रदान करै ॥ ३५ ॥ तो पंचदश (१५) वर्ष पर्यन्त हमारी तृप्ति होती है, जिस घरमें यह स्तोत्र लिखाहुआ सदा रक्खा रहता है ॥ ३६ ॥ उस घरमें श्राद्ध करनेसे हमारा सन्निधान होता है, अर्थात् श्राद्धके समय हम उस घरमें उपस्थित होते हैं; इस कारण तुम श्राद्धमें भोजन करतेहुए ब्राह्मणोंके सन्मुख खडे होकर ॥ ३७ ॥ हे महाभाग ! हमारी पुष्टिका हेतु यह स्तोत्र सुनाओ । हे मुनिसत्तम ! पितरगण रुचिसे इस प्रकार कहकर स्वर्गमें चले

ग्रीष्मे षोडशैवैतत्पठितं तृप्तिकारकम् ॥ विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेन साधिते ॥ ३४ ॥ वर्षासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते रुचे ॥ शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति ॥ ३५ ॥ अस्माकमेतत्पुरुषस्तृप्तिं पंचदशाब्दिकीम् ॥ यस्मिन्गृहे च लिखितमेतात्तिष्ठति नित्यदा ॥ ३६ ॥ सन्निधानं कृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति ॥ तस्मादेतत्त्वया श्राद्धे विप्राणां भुंजतः पुरः ॥ ३७ ॥ श्रवणीयं महाभाग अस्माकं पुष्टिहेतुकम् ॥ इत्युक्त्वा पितरस्तस्य स्वर्गता मुनिसत्तम ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रौच्ये मन्वन्तरे पितृवरप्रदानं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौ मनोरमा ॥ प्रम्लोचा नाम तन्वंगी तत्समीपे वराप्सराः ॥ १ ॥ सा चोवाच महात्मानं रुचिं सुमधुराक्षरम् ॥ प्रश्रयावनता सुभ्रूः प्रम्लोचा वै वराप्सराः ॥ २ ॥ अतीव रूपिणी कन्या मत्सुता तपतां वर ॥ जाता वरुणपुत्रेण पुष्करेण महात्मना ॥ ३ ॥

गये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां पितृवरप्रदानं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—इसके उपरान्त उस नदीमेंसे प्रम्लोचानामक क्षीणांगी मनोहर उत्तम अप्सरा रमणी निकलकर उन रुचिके समीप उपस्थित हुई ॥ १ ॥ फिर श्रेष्ठ अप्सरा प्रम्लोचा नामक सुन्दरीने विनयसे नम्र हो महात्मा रुचिके निकट मधुर वचनोंके द्वारा कहा ॥ २ ॥ हे तापसश्रेष्ठ ! वरुणपुत्र महात्मा पुष्करके द्वारा उत्पन्न हुई अत्यन्त रूपवती मेरी एक कन्या है ॥ ३ ॥

मैं उस वरवर्णिनीको देतीहूं, आप उसको भार्याके लिये ग्रहण कीजिये। उसके गर्भसे तुम्हारा पुत्र मनु जन्म ग्रहण करेगा ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-जब रुचिने " यही हो " इस प्रकार कहा, तब उस प्रम्लोचाने जलसे सुन्दर कान्तियुक्त मालिनीनामक कन्याको निकाला ॥ ५ ॥ मुनिवर रुचिने उस नदीके पुलिनमें महामुनियोंको बुलाकर विधिवत् पाणिग्रहण किया ॥ ६ ॥ उसके गर्भसे महात्मा रुचिके एक महावीर्य महामति पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पुत्र पितृनामानुसार रौच्यनामसे वसुधातलमें विख्यात हुआ ॥ ७ ॥ उनके मन्वन्तरमें देवता सप्तर्षि और उनके समस्त नृपति पुत्रोंका विषय तुमसे

तां गृहाण मया दत्तां भार्यार्थं वरवर्णिनीम् ॥ मनुर्महामतिस्तस्यां समुत्पस्यति ते सुतः ॥ ४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तथेति तेन साऽ-प्युक्ता तस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् ॥ उज्जहार ततः कन्यां मालिनी नाम नामतः ॥ ५ ॥ नद्याश्च पुलिने तस्मिन्स रुचिर्मुनिसत्तमः ॥ जग्राह पाणिं विधिवत्समानाय्य महामुनीन् ॥ ६ ॥ तस्यां तस्य सुतो जज्ञे महावीर्यो महामतिः ॥ रौच्योऽभवत्पितुर्नाम्ना ख्यातोऽत्र वसुधा-तले ॥ ७ ॥ तस्य मन्वन्तरे देवास्तथा सप्तर्षयश्च ये ॥ तनयाश्च नृपाश्चैव ते सम्यक्कथितास्तव ॥ ८ ॥ धर्मवृद्धिस्तथारोग्यं धनधान्यसु-तोद्भवः ॥ नृणां भवत्यसन्दिग्धमस्मिन्मन्वंतरे श्रुते ॥ ९ ॥ पितृस्तवं तथा श्रुत्वा पितॄणां च तथागणान् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति तत्प्र-सादान्महामुने ॥ १० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मालिनीपरिणयो नाम पंचनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ इति रौच्यमन्वन्तरं समाप्तम् ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः परं तु भौत्यस्य समुत्पत्तिं निशामय ॥ देवानृषींस्तथा पुत्रांस्तथैव वसुधाधिपान् ॥ १ ॥

सम्यक् प्रकार कहागया है ॥ ८ ॥ इस मन्वन्तरकी कथा सुननेसे मनुष्यकी धर्मवृद्धि, आरोग्य, धन धान्य और पुत्रोत्पत्ति होती है ॥ ९ ॥ हे महामुने ! पितरोंकी स्तुति और पितरोंके गण श्रवण करनेपर उनके प्रसादसे संपूर्ण कामना सिद्ध होती हैं ॥ १० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां मालिनीपरिणयो नाम पंचनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--इसके उपरान्त भौत्य मनुकी उत्पत्ति तथा उस मन्वन्तरके देवता, ऋषि और उनके वसुधाधिपति पुत्रोंका विषय सुनो ॥ १ ॥

मुनिश्रेष्ठ अंगिराके भूतिनामक एक शिष्य थे, वह अत्यन्त कोपनस्वभाव और अल्प अर्थ अर्थात् थोडे अपराधपरही तीक्ष्ण शाप देते तथा निरपराध पुरुषके प्रतिभी वह कटुवचन प्रयोग करते ॥ २ ॥ उन कोपनस्वभाव अमिततेजा ऋषिके भयसे उनके आश्रममें वायु अत्यन्त निष्ठुरभावसे नहीं बहता सूर्य अत्यन्त तेज ताप प्रदान नहीं करते, और पर्जन्यदेव (इन्द्र) भी अधिक जल वर्षाकर कीचड नहीं करते ॥ ३॥ और परिपूर्ण चन्द्रमाभी अपनी किरणोंसे अत्यन्त शीतलता नहीं करते और उन कोपनस्वभाव मुनिके भयसे शीतलता विशेष नहीं करतेथे ॥ ४ ॥ उनकी आज्ञानुसार ऋतुगण पर्याय त्यागकर उनके आश्रमस्थ वृक्षोंमें सर्वकालके फल, पुष्प उत्पन्न करती ॥ ५ ॥ आश्रमसमीपगामी जल महात्मा भूतिके भयसे उनकी इच्छानुसार मुहूर्तमात्रके बीच

बभूवाङ्गिरसः शिष्यो भूतिर्नाम्नातिकोपनः ॥ चण्डशापप्रदोऽल्पेऽर्थे मुनिरागस्यसौम्यवाक् ॥ २ ॥ तस्याश्रमे मातरिश्वा न ववावतिनिष्ठुरम् ॥ नातितापं रविश्चक्रे पर्जन्यो नातिकर्दमम् ॥ ३ ॥ नातिशीतं च शीतांशुः परिपूर्णोऽपि रश्मिभिः ॥ चकार भीत्या वै तस्य कोपनस्यातितेजसः ॥ ४॥ ऋतवश्च क्रमं त्यक्त्वा वृक्षेष्वाश्रमजन्मसु ॥ तस्य पुष्पफलं चक्रुराज्ञया सार्वकालिकम् ॥ ५ ॥ ऊहुरापश्च छन्देन तस्याश्रमसमीपगाः ॥ कमण्डलुगताश्चैव तस्य भीता महात्मनः ॥ ६ ॥ नातिक्लेशसहो विप्रः सोऽभवत्कोपनो भृशम् ॥ अपुत्रश्च महाभागः स तपस्यकरोन्मनः ॥७ ॥ पुत्रकामो यताहारः शीतवातानलाहतः ॥ तपस्यामि विचिंत्येति तपस्येव मनो दधे ॥ ८ ॥ तस्येन्दुर्नातिशीताय नातितापाय भास्करः ॥ अभवन्मातरिश्वा च ववौ नाति महामुने ॥ ९ ॥

उनके कमण्डलुमें आजाता ॥ ६ ॥ हे विप्र ! वह अत्यन्त कोपनस्वभाव मुनि क्लेश नहीं सहसकतेथे, किन्तु तो भी उन महाभागने अपुत्र होनेके कारण मनमें तपस्या करनेकी इच्छा करी ॥७॥ उन पुत्रकी कामना करनेवाले ऋषिने " संयताहार और शीत वायु अग्निका कष्ट सहकर तपस्या करूंगा " इस प्रकार चिन्ता करके तपस्यामें ही मन लगाया ॥८॥ हे महामुने ! तपस्याकालके समयभी उनके पक्षमें चन्द्र अत्यन्त शीतका कारण और सूर्य अत्यन्त तापका कारण न हुए अर्थात् चन्द्रमा अधिक शीतलता और सूर्य अधिक उष्णता नहीं करतेथे तथा वायुभी अत्यन्त प्रबलभावसे नहीं बहताथा ॥९ ॥

वह मुनिसत्तम भूति जब द्वन्द्वभाव शीत उष्णसे पीडित होकर भी अपनी अभिलाषाको प्राप्त नहीं हुए, तब तप करना छोडदिया ॥ १० ॥ सुवर्चा नामक उनके एक भाई थे, उन्होंने इनको यज्ञमें निमन्त्रण दिया। तब यह वहां जानेकी इच्छा कर महामति, शान्तिनाम अपने शिष्यसे बोले ॥ ११ ॥ हे मुनिसत्तम! यह अक्षरकी समान शान्त गुरुके कार्यमें विनीत सदा कामको उद्यत और शुभाचार तथा परमोदार थे ॥ १२ ॥ भूतिने कहा—हे शान्ते! भ्राता सुवर्चाके बुलानेसे मैं उनके यज्ञमें जाताहूं, अब तुमको यहां रहकर जो करना चाहिये, सो सुनो ॥ १३ ॥ तुम मेरे आश्रममें नित्य अग्नि जगाये रखना और जिससे अग्नि न बुझे यत्नपूर्वक वही करना ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले- कि, गुरुजीकी इस प्रकार आज्ञा पाय शिष्य शान्तिने "ऐसाही होगा" यह

आपीड्यमानो द्वन्द्वैश्च स भूतिर्मुनिसत्तमः ॥ अनवाप्याभिलाषं तं तपसः सन्यवर्त्तत ॥ १० ॥ तस्य भ्राता सुवर्च्चाऽभूद्यज्ञे तेनाभिमन्त्रितः ॥ यियासुः शान्तिनामानं शिष्यमाह महामतिम् ॥ ११ ॥ प्रशान्तमक्षप्रतिमं विनीतं गुरुकर्मणि ॥ सदोद्युक्तं शुभाचारमुदारं मुनिसत्तमम् ॥ १२ ॥ भूतिरुवाच ॥ अहं यज्ञं गमिष्यामि भ्रातुः शान्ते सुवर्च्चसः ॥ तेनाहूतस्त्वया चेह यत्कर्त्तव्यं शृणुष्व तत् ॥ १३ ॥ अतिजागरणं वह्नेस्त्वया कार्यं ममाश्रमे ॥ तथा त्वया प्रयत्नेन यथाग्निर्न शमं व्रजेत् ॥ १४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्याज्ञाप्य तथेत्युक्तो गुरुः शिष्येण शान्तिना ॥ जगाम यज्ञं तं भ्रातुराहूतः स यवयिसः ॥ १५ ॥ स च शान्तिर्वनाद्यावत्समित्पुष्पफलादिकम् ॥ उपानयाति भूत्यर्थं गुरोस्तस्य महात्मनः ॥ १६ ॥ अन्यच्च कुरुते कर्म गुरुभक्तिवशानुगः ॥ प्रशान्तस्तावदनलो योऽसौ भूतिपरिग्रहः ॥ १७ ॥ तं दृष्ट्वा सोऽनलं शान्त शान्तिरत्यन्तदुःखितः ॥ भीतश्च भूतेर्बहुधा चिन्तामाप महामातिः ॥ १८ ॥

कहा। तब भूति कनिष्ठ भ्राताके बुलानेपर भ्राताके उस यज्ञमें गये ॥ १५ ॥ वह शान्ति जब महात्मा गुरुकी अग्निपोषके लिये वनसे समिध, पुष्प, फलादि लाने लगे ॥ १६ ॥ और गुरुकी भक्तिके वशीभूत होकर अन्यान्य कार्य संपादन करनेलगे, उसी समयमें उन भूतिकी यत्नपूर्वक रक्खीहुई अग्नि शान्त होगई ॥ १७ ॥ वह महामति शान्ति उस अनलको शान्त हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए और भूतिके भयसे भीत होकर अनेक भाँतिकी चिन्ता करनेलगे ॥ १८ ॥

क्या करूं ? इस स्थानमें किस प्रकारसे गुरुका आगमन होगा अब मुझको क्या करना उचित है क्या करनेसे भला हो ॥ १९ ॥ यदि मेरे गुरु इस अग्निको गृहमें शान्त अर्थात् बुझाहुआ देखेंगे, तो उसी समय निःसन्देह मुझको विषम दुःखमें नियोजित करेंगे ॥ २० ॥ यदि मैं इस अग्निके स्थानमें अन्य अग्नि स्थापन करूं, तो वह सर्व प्रत्यक्षदर्शी मुनि मुझको अवश्यही भस्म करदेंगे ॥ २१ ॥ यह पापात्मा मैं उन गुरुके कोप और शापका हेतुभूत वैसा शोक नहीं करता जिस प्रकार गुरुके निकट किये पापका शोक है ॥ २२ ॥ गुरु अग्निको शान्त देखकर निश्चयही मुझको शाप देंगे अथवा पावकही क्रोधित होंगे अर्थात् उनके भयसे अग्निभी मुझको शाप देसकते हैं क्योंकि मेरे गुरुका वीर्यही ऐसा है ॥ २३ ॥ देवताभी जिनके प्रभावसे भीत होकर

किं करोमि कथं वात्र भविता गमनं गुरोः ॥ मयाद्य प्रतिपत्तव्यं किं कृते सुकृतं भवेत् ॥ १९ ॥ प्रशान्ताग्निमिमं धिष्ण्यं यदि पश्यति मे गुरुः ॥ ततो मां विषमे ह्यद्य व्यसने सन्नियोक्ष्यति ॥ २० ॥ यद्यन्यमग्निमत्राहमाग्निस्थाने करोमि तत् ॥ सर्वप्रत्यक्षदृग्भस्म सोऽवश्यं मां करिष्यति ॥ २१ ॥ सोऽहं पापो गुरोस्तस्य निमित्तं कोपशापयोः ॥ तथात्मानं न शोचामि यथा पापं कृतं गुरोः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा प्रशान्तमनलं नूनं शप्स्यति मां गुरुः ॥ यथा वा पावकः क्रुद्धस्तथा वीर्यो हि स द्विजः ॥ २३ ॥ यस्य प्रभावाद्बिभ्यन्ते देवास्तिष्ठन्ति शासने ॥ कृतागसं स मां युक्त्या कया नो धर्षयिष्यति ॥२४॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ बहुधैवं विचिन्त्यासौ भीतस्तस्य सदा गुरोः ॥ ययौ मतिमतां श्रेष्ठः शरणं जातवेदसम् ॥ २५ ॥ स चकार तदा स्तोत्रं सप्तार्चेर्यतमानसः ॥ स चैकचित्तो मेदिन्यां न्यस्तजानुः कृताञ्जलिः ॥२६॥ शान्तिरुवाच ॥ ओं नमः सर्वभूतानां साधनाय महात्मने ॥ एकद्विपञ्चधिष्ण्याय राजसूये षडात्मने ॥ २७ ॥

शासनाधीन हुए हैं, वह मुझको अपराधी देखकर किस युक्तिद्वारा अवमानित नहीं करेंगे ? ॥ २४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उन गुरुके भयसे सदा भीत वह बुद्धिमान् शान्ति इस प्रकार अनेक भाँतिकी चिन्ता करके जातवेदाः अग्निकी शरणागत हुए ॥ २५ ॥ तदनन्तर वह शान्ति संयत मनसे एकाग्रचित्त हो पृथ्वीमें घुटने टेक और हाथ जोडकर सप्तशिखायुक्त अग्निका स्तोत्रपाठ करने लगे ॥ २६ ॥ शान्तिने कहा—जो संपूर्ण प्राणियोंके साधन हैं, जो महात्मा हैं जो एक दो पंचरूपी हैं, और जो राजसूययज्ञमें षण्मूर्तिधारी हैं, उनको नमस्कार है ॥ २७ ॥

जो समस्त देवताओंको वृत्ति प्रदान करते हैं, जो सुवर्चाः हैं और जो सब जगत्‌की स्थिति प्रदान करते हैं उन शुक्ररूपी तुमको नमस्कार है ॥ २८ ॥ तुम्हीं सब देवताओंके मुखस्वरूप हो, भगवान् तुम्हारे द्वाराही घृतपान करके सब देवताओंको संतुष्ट करते हैं तुम्हीं सब देवताओंके प्राणस्वरूप हो ॥ २९ ॥ तुममेंही हविः हुत होकर अमल मेध्यत्वको प्राप्त होती है और पीछे वह जलरूपमें परिणत होती है ॥ ३० ॥ हे अनिलसारथे ! उससेही समस्त औषधी उत्पन्न होती हैं और उन सब औषधियोंसेही जीवगण सुखपूर्वक जीवित रहते हैं ॥ ३१ ॥ हे पावक ! मनुष्यगण तुम्हारी उत्पन्न की हुई औषधियोंके द्वारा जो यज्ञ करते हैं और उन यज्ञोंके द्वारा ही देवता, दैत्य और राक्षसगण ॥ ३२ ॥ आप्यायित अर्थात् तृप्त होते हैं । हे हुताशन ! तुम्हीं उन सब

नमः समस्तदेवानां वृत्तिदाय सुवर्च्चसे ॥ शुक्ररूपाय जगतामशेषाणां स्थितिप्रदः ॥ २८ ॥ त्वं मुखं सर्वदेवानां त्वयात्तं भगवन्हविः ॥
प्रीणयस्यखिलान्देवांस्त्वत्प्राणाः सर्वदेवताः ॥२९॥ हुतं हविस्त्वय्यनल मेधत्वमुपगच्छति ॥ ततश्च जलरूपेण परिणाममुपैति यत् ॥३०॥
तेनाखिलौषधीजन्म भवत्यनिलसारथे ॥ औषधीभिरशेषाभिः सुखं जीवन्ति जन्तवः ॥ ३१ ॥ वितन्वते नरा यज्ञांस्त्वत्सृष्टास्वोषधीषु
च ॥ यज्ञैर्देवास्तथा दैत्यास्तद्वद्रक्षांसि पावक ॥३२॥ आप्याय्यन्ते च ते यज्ञास्त्वदाधारा हुताशन ॥ अतः सर्वस्य योनिस्त्वं वह्ने सर्वमय-
स्तथा ॥ ३३ ॥ देवता दानवा यक्षा दैत्या गन्धर्वराक्षसाः ॥ मानुषाः पशवो वृक्षा मृगपक्षिसरीसृपाः ॥ ३४ ॥ आप्याय्यन्ते त्वया सर्वे
संवर्ध्यन्ते च पावक ॥ त्वत्त एवोद्भवं यान्ति त्वय्यन्ते च तथा लयम् ॥ ३५ ॥ अपः सृजसि देवत्वं त्वमत्सि पुनरेव ताः ॥ पच्यमाना-
स्त्वया ताश्च प्राणिनां पुष्टिकारणम् ॥ ३६ ॥ देवेषु तेजोरूपेण कान्त्या सिद्धेष्ववस्थितः ॥ विषरूपेण नागेषु वायुरूपः पतत्रिषु ॥३७॥

यज्ञोंके आधारस्वरूप हो, अतएव हे वह्ने ! तुम्हीं सबके उत्पन्नकर्त्ता और सर्वमय हो ॥ ३३ ॥ हे पावक ! देवता, दानव, यक्ष, दैत्य, गंधर्व, राक्षस, मनुष्य, पशु, वृक्ष, मृग, पक्षी और सरीसृपगण ॥ ३४ ॥ तुम्हारे द्वाराही तृप्त होते हैं, संवर्द्धित होते हैं और तुमसेही उत्पन्न होकर अन्तसमय तुममेंही विलीन होतेहैं ॥ ३५ ॥ हे देव ! तुम्हीं जल उत्पन्न करतेहो और फिर तुम्हीं उसको पान करते हो तथा तुम्हारे द्वाराही वह पाचित होकर प्राणियोंका पुष्टिकारक होता है ॥ ३६ ॥ हे भगवन् अग्ने ! तुम्हीं देवताओंमें तेजरूपसे, सिद्धोंमें कान्तिरूपसे, नागोंमें विषरूपसे और पक्षियोंमें वायुरूपसे वर्त्तमान हो ॥ ३७ ॥

हे देव ! तुम्हीं मनुष्योंमें क्रोध रूपसे, पक्षी और मृगादिमें मोहरूपसे, वृक्षोंमें स्थितिरूपसे, पृथ्वीमें काठिन्य अर्थात् कठिनतारूपसे ॥ ३८ ॥ और जलमें द्रवत्वरूपसे स्थिति करते हो तुम्हींने वायुमें वेगरूपसे और आकाशमें व्याप्तित्वरूपसे आत्माको अवस्थित किया है ॥ ३९ ॥ हे अग्ने ! तुम्हीं पालन करते करते सब जीवोंके अन्तरमें विचरण करते हो, कविगण तुमको एक कहकर निर्देश करते हैं, किन्तु फिर वही तुमको त्रिविध कहते हैं ॥ ४० ॥ कविगण तुमको अष्टधा कल्पित कर आद्य यज्ञको कल्पना करते हैं तुम्हारे द्वाराही जगत् उत्पन्न हुआ है, यह परमर्षिगण कहते हैं ॥ ४१ ॥ हे हुताशन ! तुम्हारे नष्ट होनेपर संपूर्ण जगत् तत्काल विनाशको प्राप्त होता है। ब्राह्मणगण तुम्हारी हव्य कव्यादिके द्वारा पूजा करके स्वधा स्वाहा उच्चारणके कारण

मनुजेषु भवान्क्रोधो मोहः पक्षिमृगादिषु ॥ अवष्टम्भोऽसि तरुषु काठिन्यं त्वं महीं प्रति ॥ ३८ ॥ जले द्रवस्त्वं भगवाञ्जवरूपी तथाऽनिले ॥ व्यापित्वेन तथैवाग्ने नभसि त्वं व्यवस्थितः ॥ ३९ ॥ त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि पालयन् ॥ त्वामेकमाहुः कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधः पुनः ॥ ४० ॥ त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञवाहमकल्पयन् ॥ त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्ति परमर्षयः ॥ ४१ ॥ त्वामृते हि जगत्सर्वं सद्यो नश्येद्धुताशन ॥ तुभ्यं कृत्वा द्विजः पूजां स्वकर्मविहितां गतिम् ॥ ४२ ॥ प्रयान्ति हव्यकव्याद्यैः स्वधास्वाहाभ्युदीरणात् ॥ परिणामात्मवीर्याणि णिनाममरार्चित ॥४३॥ दहन्ति सर्वभूतानि ततो निष्क्रम्य हेतयः ॥ जातवेदस्त्वयैवेदं विश्वं सृष्टं महाद्युते ॥४४॥ तवैव वैदिकं कर्म सर्वभूतात्मकं जगत् ॥ नमस्तेऽनल पिङ्गाक्ष नमस्तेऽस्तु हुताशन ॥ ४५॥ पावकाद्य नमस्तेऽस्तु नमस्ते हव्यवाहन ॥ त्वमेव सर्वभूतानां पावनाद्विश्वपावनः ॥ त्वमेव भुक्तपीतानां पाचनाद्विश्वपाचकः ॥ ४६ ॥

स्वकर्मविहित गतिको प्राप्त होते हैं। हे अमरार्चित अर्थात् देवताओंसे पूजित ! प्राणियोंकी परिणामात्मा वीर्यस्वरूप ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ समस्त अग्निशिखा तुमसेही निकलकर भूतगणोंको दग्ध करती है। हे महाद्युते जातवेदः ! यह विश्व तुम्हारीही सृष्टि है ॥ ४४ ॥ हे अनल ! वैदिक कर्म और सर्वभूतात्मक जगत् तुम्हारेही अधीन है। हे पिंगाक्ष अनल ! तुमको नमस्कार करताहूं हे हुताशन ! तुमको प्रणाम करताहूं ॥ ४५ ॥ हे आद्य ! हे पावक ! तुमको प्रणाम करताहूं तुम्हीं भुक्त (भोजन किये) और पीतद्रव्य (पियेहुए) को पचानेके कारण विश्वपावन

हो। हे विश्वपावन! तुम सर्व भूतके पवित्र करनेवाले हो ॥ ४६ ॥ तुम्हीं सस्यके पाककर्ता अर्थात् पकानेवाले और जगत्को पुष्टिकारक हो तुम्हीं मेघ, तुम्हीं वायु, तुम्हीं सस्योत्पादनके हेतु बीजस्वरूप ॥ ४७ ॥ और तुम्हीं सब भूतोंका पोषण करनेके लिये भूत भविष्यत तथा वर्त्तमानरूपी हो तुम्हीं समस्त भूतोंमें ज्योतिस्वरूप और आदित्य सूर्य हो ॥४८॥ तुम्हीं दिन तुम्हीं रात्रि और तुम्हीं दोनों संध्या हों। हे वह्ने! तुम्हीं हिरण्यरेता और हिरण्य (सुवर्ण) को उत्पन्न करनेवाले हो ॥ ४९ ॥ तुम्हीं हिरण्यगर्भ और हिरण्यकी समान कान्तियुक्त हो। तुम्हीं मुहूर्त्त, तुम्हीं क्षण, तुम्हीं त्रुटि और तुम्हीं लव हो ॥ ५० ॥ हे जगत्प्रभो! तुम्हीं कला काष्ठा निमेषादि रूपमें परिणामात्मक अनन्तकाल हो ॥ ५१ ॥ हे प्रभो! आपकी जो कालनिष्ठाकरी

सस्यानां पाककर्त्ता त्वं पोष्टा त्वं जगतस्तथा ॥ त्वमेव मेघस्त्वं वायुस्त्वं बीजं सस्यहेतुकम् ॥ ४७ ॥ पोषाय सर्वभूतानां भूतभव्यभवो ह्यसि ॥ त्वं ज्योतिः सर्वभूतेषु त्वमादित्यो विभावसुः ॥४८॥ त्वमहस्त्वं तथा रात्रिरुभे सन्ध्ये तथा भवान् ॥ हिरण्यरेतास्त्वं वह्ने हिरण्योद्भवकारणम् ॥ ४९॥ हिरण्यगर्भश्च भवान्हिरण्यसदृशप्रभः ॥ त्वं मुहूर्त्तं क्षणश्च त्वं त्वं त्रुटिस्त्वं तथा लवः ॥५०॥ कलाकाष्ठानिमेषादिरूपेणासि जगत्प्रभो ॥ त्वमेतदखिलं कालः परिणामात्मको भवान् ॥५१॥ या जिह्वा भवतः काली कालनिष्ठाकरी प्रभो ॥ तथा नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५२ ॥ कराली नाम या जिह्वा महाप्रलयकारणम् ॥ तथा नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥५३॥ मनोजवा च या जिह्वा लघिमागुणलक्षणा ॥ तथा नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५४ ॥ करोति कामं भूतेभ्यो या ते जिह्वा सुलोहिता ॥ तथा नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५५ ॥

काली जीभ है, उसके द्वारा हे देव! पाप भय और ऐहिकमहाभयसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५२ ॥ महाप्रलयके कारण कराली नामक जो आपकी जीभ है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५३ ॥ लघिमागुणयुक्त मनोजवा नामक जो आपकी जीभ है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५४ ॥ जो तुम्हारी सुलोहिता नामक जीभ प्राणियोंकी कामना पूर्ण करती है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५५ ॥

भा० पु० ॥२९१॥

सुधूम्रवर्ण नामक जो आपकी जीभ प्राणियोंके रोग दग्ध करती है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५६ ॥ आपकी स्फुलिङ्गिनी नामक जिस जीभसे जो पुद्गल अर्थात् आत्मा और देह उत्पन्न होता है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५७ ॥ आपकी विश्वा नामक जो जीभ प्राणियोंको मंगल प्रदान करती है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५८ ॥ हे हुताशन ! आपके नेत्र पिंगल वर्ण ग्रीवा लोहितवर्ण और आप स्वयं कृष्ण वर्ण है । आप मेरी सब प्रकारके दोषोंसे रक्षा कीजिये और मेरा इस संसारसे उद्धार कीजिये ॥ ५९ ॥ हे वह्ने ! आप सप्तार्चिः, हव्यवाहन, कृशानु, अग्नि, पावक, शुक्र इत्यादि आठ नामोंसे कथित होते हो आप प्रसन्न हूजिये ॥ ६० ॥

सुधूम्रवर्णा या जिह्वा प्राणिनां रोगदायिका ॥ तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥५६॥ स्फुलिङ्गिनी च या जिह्वा यतः सकलपुद्गलाः ॥ तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५७ ॥ याते विश्वसृजा जिह्वा प्राणिनां शर्मदायिनी ॥ तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५८ ॥ पिङ्गाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्त्म हुताशन ॥ त्राहि मां सर्वदोषेभ्यः संसारादुद्धरेह माम् ॥ ५९ ॥ प्रसीद वह्ने सप्तार्चिः कृशानो हव्यवाहन ॥ अग्निपावकशुक्रादिनामाष्टाभिरुदीरितः ॥ ६० ॥ अग्नेऽग्रे सर्वभूतानां समुत्पत्तिर्विभावसो ॥ प्रसीद हव्यवाहाख्य अभिष्टुत मयाव्यय ॥ ६१ ॥ त्वमक्षयो वह्निरचिन्त्यरूपः समृद्धिमन्दुष्प्रसहोऽतितीव्रः ॥ तवाव्ययं भीममशेषलोकसंवर्धकं हन्त्यथवातिवीर्यम् ॥ ६२ ॥ त्वमुत्तमं तत्त्वमशेषसत्त्वहृत्पुंडरीकस्थमनन्तमीड्यम् ॥ त्वया ततं विश्वमिदं चराचरं हुताशनैको बहुधा त्वमत्र ॥ ६३ ॥

भा० टी० अ० ९६

हे अग्ने ! आप संपूर्ण भूतोंसे आगे उत्पन्न हुए हैं। हे विभावसो! हे अव्यय हव्यवाह! मैं आपकी स्तुति करताहूं आप स्तुतिको प्राप्त होकर मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये ॥ ६१ ॥ हे वह्ने ! आपका क्षय नहीं है, आपका रूप अचिन्त्य अर्थात् चिन्ताकाभी अविषय है, आप समृद्धिसंपन्न, आश्रय और अत्यन्त तीव्र हैं, मूर्तिमान होनेपर आप ऐसे बलशाली होते हैं कि, अव्यय और भीमरूप संपूर्ण जगत्कोभी नाश करते हैं ॥ ६२॥ हे हुताशन ! आप उत्तम सत्त्व और संपूर्ण प्राणियोंके हृदयकमलस्वरूप हो, और आप सबके पूजनीय अनन्त ब्रह्मस्वरूप हो। आपनेही ब्रह्मस्वरूपसे इस चराचर विश्वको व्याप्त कर रक्खा

है, अत एव आप एक होकरभी बहुत प्रकारसे इस संसारमें अवस्थान करतेहो ॥ ६३ ॥ हे अनल ! आप अक्षय हैं आपही पर्वतवनयुक्त पृथ्वीस्वरूप हैं. आप ही चन्द्रसूर्ययुक्त समस्त आकाशस्वरूप हैं आपही दिन रात इत्यादि निखिल कालस्वरूप हैं आपही महासमुद्रके भीतर वडवाग्नि हैं और आपही परम विभूतिके द्वारा सर्व किरणमें अवस्थित हैं ॥ ६४ ॥ हे हुताशन ! आप हुत हविः भोजन करते हैं, इस कारण नियमपरायण महर्षिगण महायज्ञमें आपकी सदा पूजा करते हैं और आपभी उनके द्वारा स्तुतिको प्राप्त होकर जगत्के मंगलार्थ सोमरस और वषट्कारसहित हविः पान करतेहैं ॥६५॥ समस्त वेदाङ्गमें आपही गाये जातेहैं और यज्ञपरायण आपके लिये द्विजश्रेष्ठगण सदा वेदाङ्ग अध्ययन करते हैं ॥६६॥ आपही यजनपरायण ब्रह्मा आपही विष्णु और

त्वमक्षयः सगिरिवना वसुन्धरा नभः ससोमार्कमहर्दिवाखिलम् ॥ महोदधेर्जठरगतश्च वाडवो भवान्विभुः पिबति पयांसि पावक ॥ ६४ ॥
हुताशनस्त्वमिति सदाभिपूज्यसे महाक्रतौ नियमपरैर्महर्षिभिः ॥ अभिष्टुतः पिबसि च सोममध्वरे वषट्कृतान्यपि च हवींषि भूतये ॥६५॥
त्वं विप्रैः सततमिहेज्यसे फलार्थं वेदाङ्गेष्वथ सकलेषु गीयसे त्वम् ॥ त्वद्धेतोर्यजनपरायणा द्विजेन्द्रा वेदाङ्गान्यधिगमयन्ति सर्वकाले ॥६६॥
त्वं ब्रह्मा यजनपरस्तथैव विष्णुर्भूतेशः सुरपतिरर्यमा जलेशः ॥ सूर्येन्दू सकलसुरासुराश्च हव्यैः सन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति ॥६७॥
अर्चिर्भिः परममहोपघातदुष्टं संस्पृष्टं तव शुचि जायते समस्तम् ॥ स्नानानां परममतीव भस्मना सत्सन्ध्यायां मुनिभिरतीव सेव्यसे तत् ॥ ६८ ॥ तत्कृत्वा त्रिदिवमवाप्नुवन्ति लोकाः सद्भक्त्या सुखनियताः समूहगतिम् ॥ ६९ ॥ प्रसीद वह्ने शुचिनामधेय प्रसीद वायो विमलातिदीप्ते ॥ प्रसीद मे पावक वैद्युताभ प्रसीद हव्याशन पाहि मां त्वम् ॥ ७० ॥

आपही भूतनाथ महादेव हैं । देवराजेन्द्र, अर्यमा, जलेश्वर वरुण, सूर्य और चन्द्रमाभी आपही हैं । देवता और असुर सभी हव्यद्वारा आपको संतुष्ट करके वांछित फलको प्राप्त होते हैं ॥६७॥ अत्यन्त उपघातसे दूषित संपूर्ण वस्तु आपकी शिखाके स्पर्शसे पवित्र होती हैं, विविध स्नानमें भस्मद्वारा स्नानही श्रेष्ठ है, इस कारण मुनिगण सन्ध्याकालमें वही स्नान करते हैं ॥ ६८ ॥ ऐसा करनेसे लोक स्वर्गको प्राप्त होते हैं और सद्भक्ति कर अनेक सुखको प्राप्त करते हैं ॥ ६९ ॥ हे वह्ने ! इस निमित्त ही आप शुचिनामधारी हैं आप उसी रूपसे मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये आपही विमल और अतिप्रबल वायुस्वरूप हैं आप

उसी रूपसे प्रसन्न हूजिये । हे पावक ! आप वैद्युताग्नि इत्यादि नामोंसे कीर्त्तित होते हैं आप उसी रूपसे मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये । हे हव्याशन ! आप प्रसन्न हूजिये और मेरी रक्षा कीजिये ॥ ७० ॥ हे वह्ने ! आपका जो मंगलमयरूप और जो सप्तहेति (ज्वाला) हैं, हे देव ! मेरे द्वारा स्तुतिको प्राप्त होकर उन सबसे, पिता जिस प्रकार पुत्रकी रक्षा करता है, वैसेही मेरी रक्षा कीजिये ॥ ७१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां भौत्यमन्वन्तरे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने ! शान्तिके इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् हव्यवाहन ज्वालामालासे युक्त होकर वहां उनके सन्मुख प्रगट हुए ॥ १ ॥ हे द्विज ! देव विभावसुने इस स्तोत्रके द्वारा प्रसन्न होकर उन प्रणत शान्तिसे मेघके समान गंभीर वचनद्वारा कहा ॥ २ ॥ अग्नि बोले—हे विप्र !

यत्ते वह्ने शिवं रूपं ये च ते सप्त हेतयः ॥ तैः पाहि न स्तुतो देव पिता पुत्रमिवात्मजम् ॥७१॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भौत्यमन्वंतरेऽग्निस्तोत्रं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं स्तुतस्ततस्तेन भगवान्हव्यवाहनः ॥ ज्वालामालावृततनुस्तस्यासीदग्रतो मुने ॥१॥ देवो विभावसुः प्रीतस्तोत्रेणानेन वै द्विज ॥ तं शान्तिमाह प्रणतं मेघगम्भीरवागथ ॥२॥ अग्निरुवाच ॥ परितुष्टोऽस्मि ते विप्र भक्त्या या ते स्तुतिः कृता ॥ वरं ददामि भवते प्रार्थ्यतां यत्तवेप्सितम् ॥ ३ ॥ शान्तिरुवाच ॥ भगवन्कृतकृत्योऽस्मि यत्त्वा पश्यामि रूपिणम् ॥ तथापि भक्तिनम्रस्य भवता श्रूयतां मम ॥४॥ भ्रातृयज्ञं गतो देव ममाचार्यो निजाश्रमात् ॥ आगतश्चाश्रमं धिष्ण्यं त्वत्सनाथं स पश्यतु ॥ ५ ॥ ममापराधात्सन्त्यक्तं धिष्ण्यं यत्ते विभावसो ॥ तत्त्वयाधिष्ठितं सोऽद्य पूर्ववत्पश्यतु द्विजः ॥ ६ ॥

तुमने जो भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करी है, इससे मैं संतुष्ट हुआहूं । मैं तुमको वर देताहूं तुम अपने अभिलषित विषयकी प्रार्थना करो ॥ ३ ॥ शान्तिने कहा—हे भगवन् ! आपको मूर्त्तिमान् दर्शन करकेही मैं कृतकृत्य हुआहूं । तोभी मैं भक्तिनम्र होकर जो कहताहूं, वह सुनिये ॥ ४ ॥ हे देव ! मेरे आचार्य अपने आश्रमसे भ्राताके यज्ञमें गये हैं । वह आश्रममें आनकर अग्निकुण्डको अग्नियुक्त देखें ॥ ५ ॥ हे विभावसो ! मेरे अपराधके कारण जिस अग्निकुण्डको आपने त्याग दियाहै वह द्विज उसको इस समय आपके द्वारा पूर्ववत् अधिष्ठित देखें ॥ ६ ॥

हे देव ! आप यदि प्रसन्न हुए हैं, तो मेरी दूसरी प्रार्थना यह है, कि, मेरे अपुत्र गुरुके विशिष्ट (गुणशाली) पुत्र हो ॥ ७ ॥ मेरे गुरु जिस प्रकार उस अपने पुत्रसे स्नेह करैं, उनका मन उसी प्रकार सब प्राणियोंके प्रति मृदु अर्थात् स्नेहशाली हो ॥ ८॥ हे अव्यय ! मुझपर प्रसन्न हुआ देखकर जो आपकी स्तुति करे, मेरे प्रति प्रसन्न होकर आप उसके संबंधमें इस स्तोत्रद्वारा वरदायक हों ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—पावक गुरुभक्तिद्वारा और इस स्तोत्रद्वारा आराधित हो उस द्विजश्रेष्ठ शान्तिका वचन सुनकर उससे कहनेलगे ॥ १० ॥ अग्नि बोले—हे ब्रह्मन् ! तुमने जो गुरुके लिये दो वर मांगे और अपने लिये

तथान्यदपि मे देव प्रसादं कुरुषे यदि ॥ पुत्रो विशिष्टो भवतु तदपुत्रस्य मे गुरोः ॥ ७ ॥ तथा च मैत्रीं तनये स करिष्यति मे गुरुः ॥ तथा समस्तसत्त्वेषु भवत्वस्य मनो मृदु ॥ ८ ॥ यश्च त्वां स्तोष्यतेऽनेन प्रीतिं यातोऽसि मेऽव्यय ॥ स्तोत्रेण तस्य वरदो भवेथा मत्प्रसादितः ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य तमाह द्विजसत्तमम् ॥ स्तोत्रेणाराधितस्तेन गुरुभक्त्या च पावकः ॥ १० ॥ अग्निरुवाच ॥ गुरोरर्थे यतो ब्रह्मन्याचितं ते वरद्वयम् ॥ नात्मार्थं तेन मे प्रीतिस्त्वय्यतीव महामुने ॥ ११ ॥ भविष्यत्येतदखिलं गुरोर्यत्प्रार्थितं त्वया ॥ मैत्री समस्तभूतेषु पुत्रश्चास्य भविष्यति ॥ १२ ॥ मन्वन्तराधिपः पुत्रो भौत्यो नाम भविष्यति ॥ महाबलो महावीर्यो महाप्राज्ञो गुरुस्तव ॥ १३ ॥ अनेन यश्च स्तोत्रेण स्तोष्यते मां समाहितः ॥ तस्याभिलषितं सर्वं पुण्यं चास्य भविष्यति ॥ १४ ॥ यज्ञेषु पर्वकालेषु तीर्थेज्याहोमकर्मसु ॥ धर्माय पठतामेतन्मम पुष्टिकरं परम् ॥ १५ ॥

कुछ भी नहीं माँगा. हे महामुने ! इससे मैं तुम्हारे प्रति औरभी अधिक प्रसन्न हुआहूं ॥ ११॥ तुमने गुरुके लिये जो प्रार्थना करी है, वह समस्तही पूर्ण होगी समस्त प्राणियोंमें उनकी मित्रता होगी और उनके पुत्र भी होगा ॥ १२॥ तुम्हारे गुरु महाप्राज्ञ हैं, उनके महाबल, महावीर्य भौत्य नामक मन्वन्तराधिपति पुत्र उत्पन्न होगा ॥ १३ ॥ और जो पुरुष सावधान होकर इस स्तोत्रद्वारा मेरी स्तुति करेगा, उसकी समस्त कामना पूर्ण होंगी और पुण्यसंचय होगा ॥ १४ ॥ यज्ञमें, पर्वकालमें, तीर्थयज्ञमें और होमकर्ममें धर्मार्थ मेरा यह पुष्टिकारक स्तोत्र पाठ करनेसे ॥ १५ ॥

तथा इसको एकवार श्रवण मात्र करनेसे दिन और रात्रिका किया समस्त पाप निःसन्देह नष्ट होगा। हे द्विज ! यह स्तव मेरा अत्यन्त सन्तोषजनक है ॥ १६ ॥ होमकालके बीतजानेपर वा अनधिकारी मनुष्यके होमादि करनेपर जो दोष होता है, इस स्तवके सुननेसे वह तत्काल प्रशमित होता है ॥ १७ ॥ मेरा यह श्रेष्ठ स्तव पूर्णिमा, अमावास्या अथवा अन्य पर्वकालमें सुननेसे मनुष्योंका पाप नष्ट होगा ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले हे मुने ! दीपककी अग्नि जिस प्रकार सहसा निवृत्त होजाती है, उसी प्रकार भगवान् अग्नि यह कहकर देखते देखते उनके सन्मुखसे अन्तर्धान होगये ॥ १९ ॥ अग्निके अन्तर्धान होनेपर वह शान्ति संतुष्टचित्त और हर्षसे पुलकिततनु होकर गुरुके आश्रममें गये ॥ २० ॥ अनन्तर वह शान्ति गुरुके अग्निकुण्डमें

अहोरात्रकृतं पापं श्रुतमेतत्सकृद्द्विज ॥ नाशयिष्यत्यसन्दिग्धं मम तुष्टिकरं परम् ॥ १६ ॥ अहोमकालदोषादीनयोग्यैरपि तत्कृतैः ॥ ये दोषास्तानिदं सद्यः शमयिष्यति संश्रुतम् ॥ १७ ॥ पौर्णमास्याममावास्यां पर्वस्वन्येषु च स्तवः ॥ ममैष संश्रुतो मर्त्यैर्भविता पापनाशनः ॥ १८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवानग्निः पश्यतस्तस्य वै मुने ॥ बभूवादर्शनः सद्यो दीपस्थो निर्वृतो यथा ॥१९॥ स च शान्तिर्गते वह्नौ परितुष्टेन चेतसा ॥ हर्षरोमाञ्चिततनुः प्रविवेशाश्रमं गुरोः ॥ २० ॥ जाज्वल्यमानं तत्रासौ गुरुधिष्ण्ये हुताशनम् ॥ ददर्श पूर्ववत्प्राप ततः स परमां मुदम् ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि गुरुस्तस्य महात्मनः ॥ भ्रातुर्यवीयसो यज्ञादाजगाम स्वमाश्रमम् ॥ २२ ॥ तस्याग्रतश्च शिष्योऽसौ चक्रे पादाभिवन्दनम् ॥ गृहीतासनपूजश्च तमाह स तदा गुरुः ॥ २३ ॥ वत्सातिहार्दं त्वयि मे तथान्येषु च जन्तुषु ॥ न वेद्मि किमिदं त्वं चेद्वेत्स्ये तत्कथयाशु मे ॥ २४ ॥

अग्निको पूर्ववत् जाज्वल्यमान देखकर अत्यन्त मुदित हुए ॥ २१ ॥ इसी अवसरमें वह महात्मा शान्तिके गुरुभी कनिष्ठ भ्राताके यज्ञसे अपने आश्रममें लौटकर आये ॥ २२ ॥ तब आगे जाकर उस शिष्यने उनके चरणोंकी वंदना करी । तदनन्तर गुरुने पूजा और आसन ग्रहण करके शान्तिसे कहा ॥२३॥ हे वत्स ! तुम्हारे प्रति और अन्यान्य प्राणियोंके प्रति मेरा स्नेह उत्पन्न होताहै. ऐसा क्यों हुआ, सो मैं नहीं जानता । हे वत्स ! तुम यदि जानतेहो तो शीघ्र मुझसे कहो ॥ २४ ॥

हे महामुने ! तब शान्तिनामक उस विप्रने अग्निनाशादि वह समस्त घटना आचार्यसे यथावत् कहसुनाई ॥ २५ ॥ हे महामुने ! उन गुरुने यह समस्त सुनकर स्नेहार्द्रनेत्रोंसे शिष्यको आलिंगन करके उसको साङ्गोपाङ्ग संपूर्ण वेद प्रदान किये ॥ २६ ॥ तदनन्तर उन भूतिके पुत्र भौत्यनामक मनुने जन्म ग्रहण कियाथा उन विख्यातकर्मा भविष्य मनुके मन्वन्तरमें जो देवता, ऋषि, भूपति और जो इन्द्र होंगे उनका विषय मैं विस्तारसहित वर्णन करताहूं सुनो ॥ २७ ॥ २८ ॥ चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिर और धारावृक यह पांच प्रकारके देवगण होंगे ॥ २९ ॥ उस समय संपूर्ण इन्द्रके गुणोंसे

ततः स शान्तिस्तत्सर्वमाचार्याय महामुने ॥ अग्निनाशादिकं विप्रः समाचष्टे यथातथम् ॥२५॥ तच्छ्रुत्वा स परिष्वज्य स्नेहार्द्रनयनो गुरुः ॥ शिष्याय प्रददौ वेदान्साङ्गोपाङ्गान्महामुने ॥ २६ ॥ भौत्यो नाम मनुस्तस्य पुत्रो भूतेरजायत ॥ तस्य मन्वन्तरे देवानृषीन्भूपांश्च मे शृणु ॥२७॥ भविष्यस्य भविष्यांस्तु गदतो मम विस्तरात् ॥ देवेन्द्रो यश्च भविता तस्य विख्यातकर्मणः ॥२८॥ चाक्षुषाश्च कनिष्ठाश्च पवित्रा भ्राजिरास्तथा ॥ धारावृकाश्चेत्येते वै पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥२९॥ शुचिरिन्द्रस्तदा तेषां त्रिदशानां भविष्यति ॥ महाबलो महावीर्यः सर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः ॥३०॥ आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च शुचिर्मुक्तोऽथ माधवः ॥ शुक्रोऽजितश्च सप्तैते तदा सप्तर्षयः स्मृताः ॥३१॥ गुरुर्गंभीरो ब्रध्नश्च भरतोऽनुग्रहस्तथा ॥ श्रीमानी च प्रतीरश्च विष्णुः संक्रन्दनस्तथा ॥३२॥ तेजस्वी सुबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः ॥ चतुर्दशं मयैतत्ते मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥३३॥ श्रुत्वा मन्वन्तराणीत्थं क्रमेण मुनिसत्तम ॥ पुण्यमाप्नोति मनुजस्तथाऽक्षीणां च सन्ततिम् ॥३४॥

युक्त महाबल महावीर्य " शुचि " उन देवताओंके इन्द्र होंगे ॥ ३० ॥ आग्निध्र, अग्निबाहु, शुचि, सुक्त, माधव, शक्र और अजित, यह सात जनही उस समय सप्तर्षि होंगे ॥ ३१ ॥ गुरु, गंभीर, ब्रध्न, भरत, अनुग्रह, श्रीमानी, प्रतीर, विष्णु, संक्रमण ॥ ३२ ॥ और तेजस्वी सुबल, यही भौत्यमनुके पुत्र होंगे। यह मैंने तुम्हारे निकट चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन किया ॥ ३३ ॥ हे मुनिसत्तम ! क्रमानुसार यह संपूर्ण मन्वन्तर श्रवण करनेसे मनुष्यगण पुण्यसंचयमें समर्थ होते हैं और उनका वंश कभी क्षीण नहीं होता ॥ ३४ ॥

मनुष्यगण प्रथम मन्वन्तर (स्वायम्भुव) श्रवण करके धर्मको प्राप्त होते हैं, दूसरा स्वारोचिष मन्वन्तर सुननेसे उनकी संपूर्ण कामना सिद्ध होतीहैं ॥ ३५॥ तीसरे औत्तममन्वन्तरके सुननेसे धन और चौथे तामसमन्वन्तरके सुननेसे ज्ञानलाभ होता है। पांचवें रैवतमन्वन्तरके सुननेसे बुद्धि और स्वरूपवती स्त्री प्राप्त होती है ॥ ३६ ॥ छठे चाक्षुषमन्वन्तरके सुननेसे पुरुष आरोग्यता लाभ करते हैं, सातवें वैवस्वत मन्वन्तरके सुननेसे बल और आठवें सूर्य सावर्णिक मन्वन्तरके सुननेसे गुणवान् पुत्र पौत्र लाभ करते हैं ॥ ३७ ॥ मनुष्यगण नवम ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तर श्रवण करनेसे माहात्म्य दशवा धर्मसावर्णिक सुननेसे मंगल और ग्यारहवाँ रुद्रसावर्णिकमन्वन्तर सुननेसे सुमति और जय प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ हे नरोत्तम ! बारहवां दक्षसावर्णिकमन्वन्तर सुननेसे

श्रुत्वा मन्वन्तरं पूर्वं धर्ममाप्नोति मानवः ॥ स्वारोचिषस्य श्रवणात्सर्वकामानवाप्नुते ॥ ३५ ॥ औत्तमे धनमाप्नोति ज्ञानमाप्नोति तामसे ॥ रैवते च श्रुते बुद्धिं सुरूपां विन्दते स्त्रियम् ॥ ३६ ॥ आरोग्यं चाक्षुषे पुंसां श्रुते वैवस्वते बलम् ॥ गुणवत्पुत्रपौत्रांस्तु सूर्यसावर्णिके श्रुते ॥ ३७ ॥ माहात्म्यं ब्रह्मसावर्णेर्धर्मसावर्णिके शुभाम् ॥ मतिमाप्नोति मनुजो रुद्रसावर्णिके जयम् ॥३८॥ ज्ञातिश्रेष्ठो गुणैर्युक्तो दक्षसावर्णिके श्रुते ॥ निशातयत्यरिबलं रौच्यं श्रुत्वा नरोत्तम ॥ ३९ ॥ देवप्रसादमाप्नोति भौत्ये मन्वन्तरे श्रुते ॥ तथाग्निहोत्रं पुत्रांश्च गुणयुक्तानवाप्नुते ॥ ४० ॥ सर्वाण्यनुक्रमाद्यश्च शृणोति मुनिसत्तम ॥ मन्वन्तराणि तस्यापि श्रूयतां फलमुत्तमम् ॥ ४१ ॥ तत्र देवानृषीनिन्द्रान्मनूंस्तत्तनयान्नृपान् ॥ श्रुत्वा वंशांश्च सर्वेभ्यः पापेभ्यो विप्र मुच्यते ॥ ४२ ॥

मनुष्य ज्ञातिमें श्रेष्ठ और गुणयुक्त होता है. तेरहवां रौच्यमन्वन्तर सुननेसे शत्रुबलध्वंस करनेमें समर्थ होता है ॥ ३९ ॥ चौदहवां भौत्यमन्वन्तर सुननेसे देवप्रसादलाभ होता है और अग्निहोत्र फल तथा गुणयुक्त पुत्र प्राप्त होसकता है ॥ ४० ॥ हे मुनिसत्तम ! जो मनुष्य स्वायम्भुवमन्वन्तरसे क्रमानुसार सब मन्वन्तर सुनते हैं, उनकी उत्तम फल प्राप्तिका विषय सुनो ॥ ४१ ॥ हे विप्र ! उन उन मन्वन्तरके देवता समस्त ऋषि, मनुके नृपति, पुत्रगण और उनके वंशका वृत्तान्त सुनेपर मनुष्य संपूर्ण पापोंसे छूट जाता है ॥ ४२ ॥

और देवता, ऋषि, इन्द्र, नृपगण तथा अपर जो उस मन्वन्तरके अधिपति हैं, वह प्रसन्न होते हैं और वह प्रसन्न होनेपर सुमति देते हैं ॥ ४३ ॥ तदनन्तर सुमतिको प्राप्त होकर शुभ कर्म करनेसे जबतक चौदह इन्द्र रहेंगे, तबतक मनुष्य शुभमतिको प्राप्त होंगे ॥ ४४ ॥ क्रमानुसार मन्वन्तरोंकी स्थिति सुननेसे समस्त ऋतु क्षेमकारी होतीहैं और समस्त ग्रह सौम्य होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४५॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चतुर्दशमन्वन्तरवर्णनसमाप्तिर्नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ क्रौष्टुकिने कहा–हे भगवन् ! आपने मन्वन्तरोंकी स्थितिका विषय सम्यक् प्रकारसे कहा है और मैंने भी क्रमशः

देवर्षीन्द्रनृपाश्चान्ये ये तन्मन्वन्तराधिपाः ॥ ते प्रीयन्ते तथा प्रीता प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ॥ ४३ ॥ ततः शुभां मतिं प्राप्य कृत्वा कर्म तथा शुभम् ॥ शुभां गतिमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ४४ ॥ सर्वे स्युर्ऋतवः क्षेम्याः सर्वे सौम्यास्तथा ग्रहाः ॥ भवन्त्यसंशयं श्रुत्वा क्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे चतुर्दशमन्वन्तरवर्णनसमाप्तिर्नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ भगवन्कथिता सम्यक्त्वया मन्वन्तरस्थितिः ॥ क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तो मया चैवावधारिता ॥ १ ॥ ब्रह्माद्यमखिलं वंशं भूभुजां द्विजसत्तम ॥ श्रोतुं ममेच्छतः सम्यग्भगवन्प्रब्रवीहि मे ॥ २ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणु वत्स नृपाणां त्वमशेषाणां समुद्भवम् ॥ चरितं च जगन्मूलमादौ कृत्वा प्रजापतिम् ॥ ३ ॥ अयं हि वंशो भूपालैरनेकक्रतुकर्तृभिः ॥ संग्रामजिद्भिर्धर्मज्ञैः शतसंख्यैरलंकृतः ॥४॥ श्रुत्वा चैषां नरेन्द्राणां चरितानि महात्मनाम् ॥ उत्पत्तयश्च पुरुषः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥

वह विषय आपके निकटसे विस्तारसहित सुना है ॥ १ ॥ हे द्विजसत्तम ! ब्रह्माजीसे आरंभ करके मैं राजाओंका संपूर्ण वंश सुननेकी इच्छा करताहूं । हे भगवन् ! वह मुझसे भलीभाँति वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे वत्स ! तुम जगत्मूल प्रजापति ब्रह्माजीसे आरंभ करके संपूर्ण राजाओंके जन्मका वृत्तान्त और चरित्र सुनो ॥ ३ ॥ अनेक यज्ञकारी रणविजयी, धर्मज्ञ शतशत राजाओंके द्वारा यह वंश अलंकृत है ॥ ४ ॥ इन महात्मा राजाओंकी उत्पत्तिका विषय और सब चरित्र सुनकर पुरुष समस्त पापोंसे छूटजाते हैं ॥ ५ ॥

जिस वंशमें मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य, भगीरथ और अन्यान्य शत शत धर्मज्ञ, यज्ञकारी शूर और परमज्ञानी भूपालगणोंने जन्म ग्रहण करके सम्यक् प्रकारसे पृथ्वीका पालन कियाथा, उस वंशका विषय सुननेपर पुरुष संपूर्ण पापसमूहसे छूट जाता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ वटवृक्षसे अंकुर उत्पन्न होकर जिस प्रकार वह स्वतन्त्र वटवृक्षरूपमें परिणत होता है, उसी प्रकार इस वंशसे मनुजेन्द्रगणोंके सहस्र सहस्र वंश उत्पन्न हुए हैं, सो सुनो ॥ ८ ॥ हे द्विजसत्तम ! पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्माजीने विविध प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छा करके दहिने अँगूठेसे दक्षको उत्पन्न कियाथा ॥ ९ ॥ जगत्प्रसवकारी प्रभु भगवान् ब्रह्माजीने जगत्की सृष्टिके लिये बायें अँगूठेसे उस दक्षकी पत्नीको उत्पन्न किया ॥ १० ॥ उस दक्षकी अदिति नामक सुंदरी कन्या उत्पन्न हुईथी । उसके गर्भ

मनुर्यत्र तथेक्ष्वाकुरनरण्यो भगीरथः ॥ अन्ये च शतशो भूपाः सम्यक्पालितभूमयः ॥ ६ ॥ धर्मज्ञा याज्विनः शूराः परमार्थार्थवेदिनः ॥ श्रुते तस्मिन्पुमान्वंशे पापौघाद्विप्र मुच्यते ॥ ७ ॥ तदयं श्रूयतां वंशो यतो वंशाः सहस्रशः ॥ भिद्यन्ते मनुजेन्द्राणामवरोहा यथा वटात् ॥८॥ ब्रह्मा प्रजापतिः पूर्वं सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥ अङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षमसृजद्द्विजसत्तम ॥ ९॥ वामाङ्गुष्ठाच्च तत्पत्नीं जगत्सूतिकरो विभुः ॥ ससर्ज भगवान्ब्रह्मा जगतां कारणं परम् ॥ १० ॥ आदीतिस्तस्य दक्षस्य कन्याजायत शोभना ॥ तस्यां च कश्यपो देवं मार्तण्डं समजीजनत् ॥ ११ ॥ ब्रह्म स्वरूपं जगतामशेषाणां वरप्रदम् ॥ आदिमध्यान्तभूतं च सर्गस्थित्यंतकर्मसु ॥१२॥ यतोऽखिलमिदं यस्मिन्नशेषं च स्थितं द्विज ॥ यत्स्वरूपं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ॥१३॥ यः सर्वभूतः सर्वात्मा परमात्मा सनातनः ॥ आदित्यामभवद्भास्वान्पूर्वमाराधितस्तया ॥ १४ ॥

और कश्यपके औरससे मार्तण्डदेवका जन्म हुआ ॥ ११ ॥ हे द्विज ! जो ब्रह्मस्वरूप अशेष जगत्को वर देनेवाले हैं, सृष्टि, स्थिति, प्रलय कर्ममें जो आदि, मध्य, अन्तस्वरूप है ॥ १२॥ जिनसे यह संपूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनमें यह संपूर्ण जगत् अवस्थित है, देवासुर और मनुष्ययुक्त यह जगत् जिनका स्वरूप है ॥ १३ ॥ जो सर्वभूतस्वरूप है, जो सर्वात्मा हैं और जो सनातन परमात्मा हैं, उन्हीं भास्वान् सूर्यने पूर्वमें आदितिके द्वारा आराधित होकर उसके गर्भसे जन्म ग्रहण किया ॥ १४ ॥

कौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! विवस्वान् सूर्यका जो स्वरूप है और जिस कारणसे वह आदिदेव कश्यपके पुत्र हुए यह सुननेकी इच्छा करताहूं ॥ १५॥ तथा वह जिस प्रकार कश्यप और देवी अदितिके द्वारा आराधित हुएथे और आराधित होकर उन भास्करदेवने जो कहाथा ॥ १६ ॥ और गृहीतजन्मा दिवाकरका प्रभाव इससे पहिले आपने जिस प्रकार कहा है हे मुनिसत्तम ! वहभी सब भलीभाँति विस्तारसहित सुननेकी अभिलाषा है ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—विस्पष्टा, परमा, विद्या, ज्योतिः, शाश्वती और प्रकाशिता, दीप्ति, कैवल्य, ज्ञान, आविर्भाव, प्राकाम्य, संवित् ॥१८॥ बोध, अवगति, स्मृति और विज्ञान, यह समस्तही सूर्यमूर्त्तिका स्वरूप है ॥१९॥ हे महाभाग ! आपने जो पूछा कि, " रविका किस प्रकार आविर्भाव हुआथा ? " वह मैं विस्तार-

कौष्टुकिरुवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि यत्स्वरूपं विवस्वतः ॥ यत्कारणं चादिदेवः सोऽभवत्कश्यपात्मजः ॥ १५ ॥ यथा चाराधितो देव्या सोऽदित्या कश्यपेन च ॥ आराधितेन चोक्तं यत्तेन देवेन भास्वता ॥१६॥ प्रभावं चावतीर्णस्य यथावन्मुनिसत्तम ॥ भवता कथितं सम्यक्छ्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥ १७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ विस्पष्टा परमा विद्या ज्योतिर्भा शाश्वती स्फुटा ॥ कैवल्यं ज्ञानमाविर्भूः प्राकाम्यं संविदेव च ॥ १८ ॥ बोधश्चावगतिश्चैव स्मृतिर्विज्ञानमेव च ॥ इत्येतानीह रूपाणि तस्यारूपस्य भास्वतः ॥ १९ ॥ श्रूयतां च महाभाग विस्तराद्वदतो मम ॥ यत्पृष्टवानसि रवेराविर्भावो यथाभवत् ॥ २० ॥ निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोके सर्वतस्तमसावृते ॥ बृहदण्डमभूदेकमक्षरं कारणं परम् ॥ २१ ॥ तद्बिभेद तदन्तःस्थो भगवान्प्रपितामहः ॥ पद्मयोनिः स्वयं ब्रह्मा यः स्रष्टा जगतां प्रभुः ॥ २२ ॥ तन्मुखादोमिति महानभूच्छब्दो महामुने ॥ ततो भूस्तु भुवस्तस्मात्ततश्च स्वरनन्तरम् ॥ २३ ॥

पूर्वक कहताहूं, सुनो ॥ २० ॥ सृष्टिके पहिले जब कुछ भी नहीं था, तब इस जगत्के प्रभाहीन और प्रकाशहीन होकर भलीभाँति अंधकारसे ढकजानेपर परम कारण, क्षयरहित एक बडा अंडा उत्पन्न हुआ था ॥ २१ ॥ उसके मध्यमें भगवान् प्रपितामह, पद्मयोनि स्थित थे. जो जगत्के उत्पन्नकर्त्ता हैं, उन्हीं प्रभु ब्रह्माजीने स्वयं इस अंडेको भेदन किया ॥ २२ ॥ हे महामुने ! ब्रह्माजीके मुखसे उस समय " ॐ " यह महाशब्द हुआ था । इस ओंकारसे प्रथम ' भू ' फिर ' भुवः ' और इसके पीछे ' स्वः ' उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥

यह तीन प्रकारकी व्याहृतिही भगवान् सूर्यका स्वरूप है। इस 'ॐ' स्वरूपसेही रविका परम सूक्ष्मरूप हुआ है ॥ २४ ॥ फिर उससे स्थूल रूप 'महः' इसके पीछे स्थूलतररूप 'जन' फिर उसकी अपेक्षाभी स्थूल रूप 'तपः' और तदनन्तर उसकी अपेक्षाभी स्थूलरूप 'सत्य' उत्पन्न हुआ। सूर्यका यह समस्त रूप मूर्त्त अर्थात् स्थूल है ओंकारसे विवस्वान्के स्थूल सूक्ष्म भेदसे यह सात रूप उत्पन्न हुए हैं ॥२५॥ भगवान् भास्करके यह समस्त रूप होनेपर भी कभी प्रकाशित होते हैं और कभी अप्रकाशित होते हैं, क्योंकि उनके स्वभाव और भावका अस्तित्वभी संशयको प्राप्त होता है ॥२६॥ हे विप्र! इस विश्वके आदि और अन्तमें जो रूपविहीन परमसूक्ष्म परमात्मा स्थित हैं, मैंने जो ॐकार कहा, सो ॐकार वही है। हे विप्र! वह परमब्रह्मही

एता व्याहृतयस्तिस्रः स्वरूपं तद्विवस्वतः ॥ ओमित्यस्मात्स्वरूपात्तु सूक्ष्मरूपं रवेः परम् ॥२४॥ ततो महरिति स्थूलं जनं स्थूलतरं ततः ॥ ततस्तपस्ततः सत्यमिति मूर्त्तानि सप्तधा ॥ २५ ॥ स्थितानि तस्य रूपाणि भवन्ति न भवन्ति च ॥ स्वभावभावयोर्भावं यतो गच्छन्ति संशयम् ॥२६॥ आद्यन्तं यत्परं सूक्ष्ममरूपं परमं स्थितम् ॥ ओमित्युक्तं मया विप्र तत्परं ब्रह्म तद्वपुः ॥२७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वंशानुकीर्त्तनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तस्मादण्डाद्विभिन्नात्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ऋचो बभूवुः प्रथमं प्रथमाद्वदनान्मुने ॥ १ ॥ जपापुष्पनिभाः सद्यस्तेजोरूपा ह्यसंहताः ॥ पृथक्पृथग्विभिन्नाश्च रजोरूपवहास्ततः ॥ २ ॥ यजूंषि दक्षिणाद्वक्त्रादनिरुद्धानि कानिचित् ॥ यादृग्वर्णं तथा वर्णान्यसंहातिधराणि च ॥ ३ ॥ पश्चिमं यद्विभोर्वक्त्रं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ आविर्भूतानि सामानि तत्तच्छन्दांसि तान्यथ ॥ ४ ॥

मार्त्तण्डदेवका शरीर है ॥ २७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां वंशानुकीर्तनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-हे मुने! जब वह अण्डा विभिन्न हुआ अर्थात् फटा और उसमेंसे अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी निकले, तब उनके पहिले मुखसे ऋग्वेद उत्पन्न हुआ ॥१॥ वह जपापुष्पके समान, तेजोरूप अन्त संहत और परस्पर विभिन्न रजोरूपधारी था ॥ २ ॥ उनके दक्षिण मुखसे कंचनके समान वर्णयुक्त असंहति धारण करनेवाला समस्त यजुः अनिरुद्धभावसे बहिर्गत हुआ अर्थात् निकला ॥ ३ ॥ अनन्तर परमेष्ठी ब्रह्माजीकी पश्चिम दिशामें जो मुख है, उससे समस्त साम आविर्भूत हुआ। वह समस्त साम छन्दःसंयुक्त था ॥ ४ ॥

उन ब्रह्माजीके उत्तर मुखसे इसी प्रकार मारण उच्चाटनादि आभिचारिक और शान्तिकारक घोररूप भौंरे और अंजनके समूहके समान कृष्णवर्ण प्रभायुक्त सुख, सत्व और तमोबहुल सौम्य और असौम्यरूपी अशेष अथर्व प्रगट हुआ था ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे मुने ! समस्त ऋक् रजोगुणयुक्त समस्त यजुः सत्वगुणयुक्त; समस्त साम तमोगुणयुक्त और समस्त अथर्व सत्त्व तथा तमोगुणात्मक है ॥ ७ ॥ इन सबनेही अप्रतिम तेजद्वारा उज्ज्वल होकर पूर्ववत् पृथक् पृथक् भावसे अवस्थान किया ॥८॥ तदनंतर प्रथमका वह जो तेज है, जिसको 'ॐ' कहा गया है, उसके स्वभावसे उत्पन्न हुआ जो तेज है उसको वह आवृत करके अवस्थित हुआ ॥ ९ ॥ हे महामुने ! इसी प्रकार उसने साममय तेज और यजुर्मय तेजको भी आवृत किया, इस

अथर्वणामशेषं च भृङ्गाञ्जनचयप्रभम् ॥ यावद्घोरस्वरूपं तदाभिचारिकशान्तिकम् ॥ ५ ॥ उत्तरात्प्रकटीभूतं वदनात्तस्य वेधसः ॥ सुख-सत्त्वतमःप्रायं सौम्यासौम्यस्वरूपवत् ॥६॥ ऋचो रजोगुणाः सत्त्वं यजुषां च गुणा मुने ॥ तमोगुणानि सामानि तमःसत्त्वमथर्वसु ॥७॥ एतानि ज्वलमानानि तेजसाऽप्रतिमेन वै ॥ पृथक्पृथगवस्थानभाञ्जि पूर्वमिवाभवन् ॥८॥ ततस्तदाद्यं यत्तेज ओमित्युक्त्वाभिशब्द्यते ॥ तस्य स्वभावाद्यत्तेजस्तत्समावृत्य संस्थितम् ॥९॥ यथा यजुर्मयं तेजस्तद्वत्साम्नां महामुने ॥ एकत्वमुपयातानि परे तेजासि संश्रये ॥१०॥ शान्तिकं पौष्टिकं चैव तथा चैवाभिचारिकम् ॥ ऋगादिषु लयं ब्रह्मंस्त्रितयं त्रिष्वथागमत् ॥ ११ ॥ ततो विश्वमिदं सद्यस्तमोनाशात्सु-निर्मलम् ॥ विभावनीयं विप्रर्षे तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥१२॥ ततस्तन्मण्डलीभूतं छान्दसं तेज उत्तमम् ॥ परेण तेजसा ब्रह्मन्नेकत्वमुपगम्य तत् ॥ १३ ॥ आदित्यसंज्ञामगमदादावेव यतोऽभवत् ॥ विश्वस्यास्य महाभाग कारणं चाव्ययात्मकम् ॥ १४ ॥

भाँतिसे समस्त तेजही उस ओंकाररूप परमतेजको आश्रय करके एकताको प्राप्त हुए ॥ १० ॥ हे ब्रह्मन् ! अनन्तर ऋक् इत्यादि तीनों वेदमें शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक यह त्रिविध अथर्व वेद लीन हुआ ॥ ११ ॥ हे विप्रर्षे ! फिर अंधकारका नाश होनेसे यह विश्व तत्काल निर्मल हुआ, इससे उसका ऊर्ध्व, अध और तिर्यक् (पार्श्व) देश प्रकाशित हुआ ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसके उपरान्त वह छान्दस (वैदिक) उत्तम तेज मण्डलीभूत होकर फिर श्रेष्ठ तेज ओंकारके सहित एकताको प्राप्त हुआ ॥१३॥ इस प्रकार यह तेज आदिमें (प्रथममें) उत्पन्न हुआ इस कारण आदित्यसंज्ञाको प्राप्त हुआ हे महाभाग ! यह इस विश्वका अव्ययात्मक कारण है ॥ १४ ॥

ऋक्, यजु और सामनाम्नी त्रयीही प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और अपराह्णकालमें तपती है ॥ १५ ॥ हे मुनिसत्तम! तिनमें प्रातःसमय ऋक् मध्याह्नमें यजुः और अपराह्णमें साम तपताहै ॥ १६ ॥ पूर्वाह्णके समय ऋक्में शान्तिकर्म, मध्याह्नके समय यजुःमें पौष्टिक और सायाह्नके समय साममंत्रमें समस्त आभिचारिक कार्य विन्यस्त हैं ॥ १७ ॥ मध्याह्न और अपराह्ण दोनों कालमें आभिचारिक कार्य करे और केवल अपराह्णमें ही सामद्वारा पितरोंका कार्य करना चाहिये ॥ १८॥ सृष्टिकालमें ब्रह्मा ऋङ्मय, स्थितिकालमें विष्णु यजुर्मय और संहारकालमें रुद्र साममय कहेगयेहैं, इसी कारण अपराह्णको अशुचि

प्रातर्मध्यन्दिने चैव तथा चैवापराह्णिके ॥ त्रयी तपाति सा काले ऋग्यजुःसामसंज्ञिता ॥१५॥ ऋचस्तपंति पूर्वाह्णे मध्याह्ने च यजूंषि वै ॥ सामानि चापराह्णे वै तपन्ति मुनिसत्तम ॥१६॥ शान्तिकमृक्षु पूर्वाह्णे यजुःष्वेव च पौष्टिकम् ॥ विन्यस्तं साम्नि सायाह्ने ह्याभिचारिकमन्ततः ॥१७॥ मध्यन्दिनेऽपराह्णे च समे चैवाभिचारिकम् ॥ अपराह्णे पितॄणां तु साम्ना कार्याणि तानि वै ॥१८॥ विसृष्टौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मयः ॥ रुद्रः साममयोऽन्ते च तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥१९॥ तदेवं भगवान्भास्वान्वेदात्मा वेदसंस्थितः ॥ वेदविद्यात्मकश्चैव परः पुरुष उच्यते ॥२०॥ सर्गस्थित्यन्तहेतुश्च रजःसत्त्वादिकान्गुणान् ॥ आश्रित्य ब्रह्मविष्ण्वादिसंज्ञामभ्येति शाश्वतः ॥२१॥ देवैः सदेड्यः स तु वेदमूर्तिरमूर्तिराद्योऽखिलमर्त्यमूर्तिः ॥ विश्वाश्रयं ज्योतिरवेद्यधर्मा वेदान्तगम्यः परमः परेशः ॥ २२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मार्त्तण्डमाहात्म्ये नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

कहा है ॥ १९ ॥ अतएव उल्लिखित प्रकारसे वेदात्मा वेदसंस्थित और वेद विद्यामय भगवान् भास्वान् परमपुरुष कहेगये हैं ॥ २० ॥ सृष्टिस्थितिप्रलयकारी यह शाश्वत आदित्य सत्त्व रज और तमोगुणका आश्रय करके ब्रह्मा, विष्णु और शिवनामको प्राप्त होतेहैं ॥ २१ ॥ सर्वदा देवताओंके द्वारा पूज्य वेदमूर्ति निराकार और संपूर्ण प्राणियोंके मूर्त्तिरूपमें मूर्तिमान् ज्योतिस्वरूपमें आदिपुरुष वह भगवान् आदित्य विश्वके आश्रयस्वरूप अवेद्यधर्मा, वेदान्तगम्य और श्रेष्ठसेभी श्रेष्ठतर हैं ॥ २२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां मार्तण्डमाहात्म्यं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर आदित्यके तेजद्वारा ऊर्ध्व और अधः संतापित होनेपर सृष्टिकी कामना करनेवाले पद्मयोनि पितामह चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥ कि, मेरे सृष्टि करनेपरभी सृष्टि स्थिति संहारकारी महात्मा भास्करके तीव्र तेजसे वह समस्तही नष्ट होगी ॥ २॥ उनके तेजसे समस्त प्राणी प्राणहीन और जल शुष्क होता है, फिर जलके विना इस विश्वकी सृष्टिभी नहीं होगी ॥ ३ ॥ लोकपितामह ब्रह्मा इस प्रकार चिन्ता करके तन्मय हो भगवान् रविकी स्तुति करनेलगे ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले—जो संपूर्ण विश्वके आत्मस्वरूप हैं और जो इस विश्वरूपमें ही वर्त्तमान हैं, विश्वही जिनकी मूर्त्ति है और योगिगण जिस अनिन्द्रियगाह्य परम ज्योतिका ध्यान करते हैं मैं उनको नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥ जो अचिन्त्यशक्ति ऋग्वेदमय, जो यजुर्वेदके निधान (आधार)

मार्कण्डेय उवाच ॥ तस्य सन्ताप्यमाने तु तेजसोर्ध्वमधस्यथा ॥ सिसृक्षुश्चिन्तयामास पद्मयोनिः पितामहः ॥१॥ सृष्टिः कृतापि मे नाशं प्रयास्यत्यभितेजसा ॥ भास्वतः सृष्टिसंहारस्थितिहेतोर्महात्मनः ॥२॥ अप्राणाः प्राणिनः सर्वं आपः शुष्यन्ति तेजसा ॥ न चाम्भसा विना सृष्टिर्विश्वस्यास्य भविष्यति ॥ ३ ॥ इति सञ्चिन्त्य भगवान्स्तोत्रं भगवतो रवेः ॥ चकार तन्मयो भूत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ये यन्मयं सर्वमेतत्सर्वमयश्च यः ॥ विश्वमूर्तिः परं ज्योतिर्यत्तद्ध्यायन्ति योगिनः ॥ ५ ॥ य ऋङ्मयो यो यजुषां निधानं साम्नां च यो योनिरचिन्त्यशक्तिः ॥ त्रयीमयः स्थूलतयार्धमात्रा परस्वरूपो गुणपारयोग्यः ॥ ६ ॥ त्वां सर्वहेतुं परमं च वेद्यमाद्यं परं ज्योतिरवेद्यरूपम् ॥ स्थूलं च देवात्मतया नमस्ते भास्वन्तमाद्यं परमं परेभ्यः ॥ ७ ॥ सृष्टिं करोमि यदहं तव शक्तिराद्या तत्प्रेरितो जलमहीपवनाग्निरूपाम् ॥ तद्देवतादिविषयां प्रणवाद्यशेषां नात्मेच्छया स्थितिलयावपि तद्वदेव ॥ ८ ॥

जो सामवेदकी उत्पत्तिके कारण, जो स्थूलताप्रयुक्त त्रयीमय, जो अर्द्धमात्रास्वरूप एवं जो परमब्रह्मस्वरूप और गुणातीत हैं ॥ ६ ॥ पहिले उन्हीं सर्वकारणरूपी परमपूज्य, परमवेद्य अवह्निरूप परमज्योति, देवात्मताहेतु स्थूलरूप और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतर आदि पुरुष भगवान् भास्वान्को नमस्कार करता हूं ॥ ७॥ हे देव ! तुम्हारी शक्तिही आद्या है क्योंकि मैं उसीके द्वारा प्रेरित होकर जल, मही, पवन और अग्निरूपा देवतादिविषया और प्रणवादि अशेष सृष्टि करताहूं । इसी प्रकार स्थिति और प्रलयभी अपनी इच्छासे नहीं करता, तुम्हारी शक्तिके द्वारा प्रेरित होकर ही करताहूं ॥ ८ ॥

हे भगवन् ! तुम्हीं वह्निरूपी हो । जब तुम पृथ्वीका जल सोखते हो तब मैं जगत्‌की सृष्टि और प्रथम पाक संपन्न करताहूं । तुम्हीं सर्वव्यापक गगनस्वरूप हो, तुम्हीं पंचरूप इस विश्वकी रक्षा करते हो ॥ ९ ॥ हे विवस्वन् ! परमात्मविद्‌गण अखिल यज्ञमय विष्णुरूपमें तुम्हारी यज्ञद्वारा अर्चना करते हैं, आत्ममोक्षाभिलाषी जितेन्द्रिय यतिगण परम सर्वेश्वर जानकर तुम्हारा ध्यान करते हैं ॥ १० ॥ तुम्हीं देवरूप हो: तुमको प्रणाम करताहूं, तुम्हीं यज्ञरूप और तुम्हीं योगिजनोंके चिन्तनीय परब्रह्मस्वरूप हो, तुमको प्रणाम करताहूं ॥ ११ ॥ हे विभो ! तुम तेज निवृत्त करो, मैं सृष्टि करनेमें उद्यत हुआहूं, तुम्हारा

वह्निस्त्वमेव जलशोषणतः पृथिव्याः सृष्टिं करोषि जगतां च तथाद्य पाकम् ॥ व्यापी त्वमेव भगवन्गगनस्वरूपं त्वं पञ्चधा जगदिदं परिपासि विश्वम् ॥ ९ ॥ यज्ञैर्यजन्ति परमात्मविदो भवन्तं विष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमयं विवस्वन् ॥ ध्यायन्ति चापि यतयो नियतात्मचित्ताः सर्वेश्वरं परममात्मविमुक्तिकामा ॥ १० ॥ नमस्ते देवरूपाय यज्ञरूपाय ते नमः ॥ परब्रह्मस्वरूपाय चिन्त्यमानाय योगिभिः ॥ ११ ॥ उपसंहर तेजो यत्तेजसः संहतिस्तव ॥ सृष्टेर्विघाताय विभो सृष्टौ चाहं समुद्यतः ॥ १२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्येवं संस्तुतो भास्वान्ब्रह्मणा सर्गकर्तृणा ॥ उपसंहृतवांस्तेजः परं स्वल्पमधारयत् ॥ १३ ॥ चकार च ततः सृष्टिं जगतः पद्मसम्भवः ॥ तथा तेषु महाभागः पूर्वकल्पान्तरेषु वै ॥ १४ ॥ देवासुरादीन्मर्त्यांश्च पश्वादीन्वृक्षवीरुधः ॥ ससर्ज पूर्ववद्ब्रह्मा नरकांश्च महामुने ॥ १६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे आदित्यस्तवो नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

यह तेजसमूह सृष्टिमें विघ्नकारी होता है ॥१२॥ मार्कण्डेयजी बोले—भगवान् भास्वान्‌ने सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजीके द्वारा इस प्रकार स्तुतिको प्राप्त होकर परमतेज निवृत्त किया और केवल स्वल्पतेज धारण किया ॥ १३ ॥ तब महाभाग पद्मयोनि ब्रह्माजीने पूर्व कल्पान्तके समान उस कल्पमें भी जगत्‌की सृष्टि करी ॥ १४ ॥ हे महामुने ! ब्रह्माजीने पूर्वके समान देव, असुर, नर, पशु, वृक्ष, लता इत्यादि और सब नरक सृजन किये ॥ १५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामादित्यस्तवो नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्माजीने जगत्‌को उत्पन्न करके पूर्ववत् वर्ण, आश्रम, समुद्र, पर्वत और समस्त द्वीपोंका विभाग किया ॥ १ ॥ भगवान् कमलयोनि (ब्रह्मा) जीने देवता, दैत्य और उरगगणोंका रूप तथा स्थान देवताओंसे आरंभ करके पूर्ववत् निर्दिष्ट किया ॥ २ ॥ मरीचि नामसे विख्यात ब्रह्माजीके जो पुत्र थे, उनके कश्यप नामसे विख्यात एक पुत्र हुए, वह काश्यप नामसेभी प्रसिद्ध हुए थे ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! दक्षकी तेरह कन्या उनकी भार्या हुई थीं उनके गर्भसे उनके देवता दैत्य और उरगादि अनेक पुत्र हुएथे ॥ ४ ॥ अदितिने त्रिभुवनेश्वर देवताओंको उत्पन्न कियाथा, दितिने दैत्योंको और दनुने

मार्कण्डेय उवाच ॥ सृष्ट्वा जगदिदं ब्रह्मा प्रविभागमथाकरोत् ॥ वर्णाश्रमसमुद्राद्रिद्वीपानां पूर्ववद्यथा ॥ १ ॥ देवदैत्योरगादीनां रूपस्थानानि पूर्ववत् ॥ वेदेभ्य एव भगवानकरोत्कमलोद्भवः ॥ २ ॥ ब्रह्मणस्तनयो योऽभून्मरीचिरिति विश्रुतः ॥ कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभूत्काश्यपो नाम नामतः ॥ ३ ॥ दक्षस्य तनया ब्रह्मंस्तस्य भार्यास्त्रयोदश ॥ बहवस्तत्सुताश्चासन्देवदैत्योरगादयः ॥ ४ ॥ अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ॥ दैत्यान्दितिर्दनुश्चोग्रान्दानवानुरुविक्रमान् ॥५॥ गरुडारुणौ च विनता यक्षरक्षांसि वै खसा ॥ कद्रूः सुषाव नागांश्च गन्धर्वान्सुषुवे मुनिः ॥ ६ ॥ क्रोधाया जज्ञिरे कुल्या रिष्टायाश्चाप्सरोगणाः ॥ ऐरावतादीन्मातङ्गानिरा च सुषुवे द्विज ॥ ७ ॥ ताम्रा च सुषुवे श्येनीप्रमुखाः कन्यका द्विज ॥ यासां प्रसूताः खगमाः श्येनभासशुकादयः ॥ ८ ॥ इलायाः पादपा जाताः प्रधाया यादसां गणाः ॥ अदित्यां या समुत्पन्ना कश्यपस्येति सन्ततिः ॥ ९ ॥

महाविक्रम उग्र दानवोंको ॥ ५ ॥ विनताने गरुड और अरुणको, खसाने यक्ष और राक्षसोंको; कद्रूने नागोंको और मुनिने गंधर्वोंको उत्पन्न कियाथा ॥ ६ ॥ हे द्विज ! क्रोधाने कुल्यागणको, रिष्टाने अप्सराओंको और इराने ऐरावतादि हाथियोंको उत्पन्न कियाथा ॥ ७ ॥ ताम्राने श्येनी इत्यादि कन्याओंको उत्पन्न कियाथा । उक्त कन्याओंनेही श्येन, भास और शुकादि खेचरगणको उत्पन्न किया है ॥ ८ ॥ इलासे पादपगण और प्रधासे पतंगगण उत्पन्न हुएथे । हे मुने ! अदितिके गर्भसे कश्यपकी जो सब सन्तति (सन्तान) उत्पन्न हुईथी ॥ ९ ॥

उनके पुत्र दौहित्र (धेवते) पौत्र दौहित्रिकादि और उनकी सन्तानसे जगत् व्याप्त होगया ॥ १० ॥ हे मुन! कश्यपजीके पुत्रोंमें देवतागणही प्रधान हैं, उनके सात्त्विक, राजस और तामस यह त्रिविधगण हैं ॥ ११ ॥ ब्रह्मज्ञश्रेष्ठी परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीने देवताओंको त्रिभुवनेश्वर और यज्ञभुक् कियाथा ॥ १२ ॥ किन्तु विमाताके दैत्य, दानव और राक्षसगण मिलित होकर शत्रुताचरण करतेहुए देवताओंको बाधा देनेलगे इस कारण दवेताओंके संग उनका दिव्य सहस्रवर्षपर्यन्त दारुण युद्ध हुआ। हे विप्र ! इस युद्धमें देवता पराजित हुए अर्थात् हारगये और बलशाली दैत्य दानव विजयी हुए ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे मुनिस-

तस्याश्च पुत्रदौहित्रैः पौत्रदौहित्रिकादिभिः ॥ व्याप्तमेतज्जगत्सूत्या तेषां तासां च वै मुने ॥ १० ॥ तेषां कश्यपपुत्राणां प्रधाना देवतागणाः ॥ सात्त्विका राजसास्त्वेते तामसाश्च मुने गणाः ॥ ११ ॥ देवान्यज्ञभुजश्चक्रे तथा त्रिभुवनेश्वरान् ॥ ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ १२ ॥ तानबाधन्त सहिताः सपत्ना दैत्यदानवाः ॥ राक्षसाश्च तथा युद्धं तेषामासीत्सुदारुणम् ॥ १३ ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं तु पराजीयन्त देवताः ॥ जयिनश्चाभवन्विप्र बलिनो दैत्यदानवाः ॥ १४ ॥ ततो निराकृतान्पुत्रान्दैतेयैर्दानवैस्तथा ॥ हृतत्रिभुवनान्दृष्ट्वा ह्यदितिर्मुनिसत्तम ॥१५॥ आच्छिन्नयज्ञभागांश्च शुचा संपीडिता भृशम् ॥ आराधनाय सवितुः परं यत्नं प्रचक्रमे ॥ १६ ॥ एकाग्रा नियताहारा परं नियममास्थिता ॥ तुष्टाव तेजसां राशिं गगनस्थं दिवाकरम् ॥ १७ ॥ अदितिरुवाच ॥ नमस्तुभ्यं परां सूक्ष्मां सौवर्णीं बिभ्रते तनुम् ॥ धाम धामवतामीश धाम्नामाधार शाश्वत ॥ १८ ॥ जगतामुपकाराय तथापस्तव गोपते ॥ आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम् ॥ १९ ॥

त्तम ! इसके उपरान्त दैत्य दानवोंके द्वारा त्रिभुवनको हरण एवं पुत्रोंको पराजित और यज्ञभागसे वंचित हुआ देख, अदिति शोकसे अत्यन्त पीडित हो सवितृदेव (सूर्यदेव) की आराधना करनेके लिये परम यत्नवती हुई ॥ १५ ॥ १६ ॥ वह एकाग्रचित्त नियताहार और श्रेष्ठ नियमपरायण हो गगनमें स्थित तेजोराशिस्वरूप दिवाकरकी स्तुति करनेलगी ॥ १७ ॥ अदितिने कहा–हे शाश्वत ! तुम सुन्दर सूक्ष्म सौवर्णतनुधारी हो तुम्हीं ज्योतिःस्वरूप हो, ज्योतिष्कगणोंमें तुम्हीं प्रधान और, ज्योतिके आधार हो तुमको नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे गोपते ! जगत्‌का उपकार करनेके लिये

जल ग्रहण करनेके समय तुम्हारी जो वह मूर्त्ति तीव्र होतीहै, उसको मैं प्रणाम करतीहूं ॥१९॥ तुम आठ मास काल इन्दुमय रसग्रहण करनेके लिये जो अत्यन्त तीव्रमूर्त्ति ग्रहण करते हो मैं उस मूर्त्तिको प्रणाम करतीहूं ॥ २० ॥ हे भगवन् ! वह समस्त रस वर्षणार्थ परित्याग करनेके समय तुम जो तृप्तिकारिणी मेघरूप मूर्ति ग्रहण करते हो तुम्हारी उस मेघमूर्तिको प्रणाम करतीहूं ॥ २१ ॥ जलवर्षणद्वारा उत्पन्न हुई अशेष औषधियोंको पकानेके लिये तुम अन्य जिस प्रकारकी मूर्ति धारण करते हो, तुम्हारी उस भास्कर मूर्तिको प्रणाम करतीहूं ॥२२ ॥ हे देव तरणे ! हेमन्तकालमें सस्यपोषणके लिये तुम्हारा जो हिमवर्षणादिद्वारा शीतलरूप होताहै तुम्हारी उस मूर्तिको प्रणाम करतीहूं ॥ २३ ॥ हे रवे ! वसंतऋतुमें तुम्हारी जो मूर्त्ति अत्यन्त तीव्र नहीं है और

ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनेन्दुमयं रसम् ॥ बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत् ॥ २० ॥ तमेव मुञ्चतः सर्वं रसं वै वर्षणाय यत् ॥ रूपमाप्यायकं भास्वंस्तस्मै मेघाय ते नमः ॥ २१ ॥ वार्युत्सर्गविनिष्पन्नमशेषं चौषधीगणम् ॥ पाकाय तव यद्रूपं भास्करं तं नमाम्यहम् ॥ २२ ॥ यच्च रूपं तवातीतं हिमोत्सर्गादिशीतलम् ॥ तत्कालसस्यपोषाय तरणे तस्य ते नमः ॥ २३ ॥ नातितीव्रं च यद्रूपं नातिशीतं च यत्तव ॥ वसन्तर्त्तौ रवे सौम्यं तस्मै देव नमो नमः ॥ २४ ॥ आप्यायनमशेषाणां देवानां च तथापरम् ॥ पितॄणां च नमस्तस्मै सस्यानां पाकहेतवे ॥२५॥ यद्रूपं जीवनायैकं वीरुधाममृतात्मकम् ॥ पीयते देवपितृभिस्तस्मै सोमात्मने नमः ॥ २६ ॥ आप्यायदाहरूपाभ्यां रूपं विश्वमयं तव ॥ समेतमग्नीषोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने ॥ २७ ॥

अत्यन्त शीतलभी नहीं है, तथा सौम्य हे देव ! तुम्हारी उस मूर्तिको नमस्कार करतीहूं ॥ २४ ॥ तुम्हारा जो रूप अशेष देवता और पितरोंको परम तृप्त करनेवाला तथा सस्यको पकानेवाला है, तुम्हारे उस रूपको नमस्कार करतीहूं ॥ २५॥ तुम्हारा जो अमृतमय रूप समस्त गुल्मलताके जीवनका कारण है और अमृतमय होनेसेही जिसको देवता और पितर पान करते हैं, उस सोमस्वरूप तुमको नमस्कार है ॥ २६ ॥ अग्नि और सोम, यम दो अर्करूप मिलित होनेसे तुम्हारा जो विश्वमयरूप हुआ है उन गुणात्माको नमस्कार करती हूं ॥ २७ ॥

हे विभावसो ! ऋक्, यजु, और साम इन तीन वेदके मिलित होनेसे तुम्हारा जो त्रयी नामक रूप विश्वमें तपता है, तुम्हारे उस रूपको नमस्कार है ॥ २८॥ उसकी अपेक्षाभी तुम्हारा जो श्रेष्ठ सूक्ष्म, अनन्त और विमलरूप ओंकार कहा गया है, तुम्हारे उस नित्यरूपको नमस्कार है ॥२९॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने ! वह देवी अदिति इस प्रकार नियमयुक्त और निराहार हो विवस्वान् सूर्यका आराधन करनेकी इच्छासे दिनरात इस भाँति स्तुति करने लगी ॥ ३० ॥ हे द्विजोत्तम ! अनन्तर बहुतकालपीछे भगवान् तपन आकाशमेंही इस दाक्षायणीके प्रत्यक्ष गोचर हुए ॥ ३१ ॥ जो दीप्तिशालिनी

यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैक्येन तपते तव ॥ विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो ॥ २८ ॥ यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिशब्दि-
तम् ॥ अस्थूलानन्तममलं नमस्तस्मै सदात्मने ॥ २९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं स नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहर्निशम् ॥ निराहारा
विवस्वन्तमारिराधयिषुर्मुने ॥ ३० ॥ ततः कालेन महता भगवांस्तपनोऽम्बरे ॥ प्रत्यक्षतामगादस्या दाक्षायण्या द्विजोत्तम ॥ ३१ ॥
सा ददर्श महाकूटं तेजसोऽम्बरसंश्रितम् ॥ जगाद मे प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते ॥ ३२ ॥ यथा दृष्टवती पूर्वमम्बरस्थं सुदुर्दृशम् ॥
निराहारा विवस्वन्तं तपन्तं तदनन्तरम् ॥३३॥ संघातं तेजसां तद्वदिह पश्यामि भूतले ॥ प्रसादं कुरु पश्येयं यद्रूपं ते दिवाकर ॥ भक्ता-
नुकम्पक विभो भक्ताहं पाहि मे सुतान् ॥ ३४ ॥

अंशुमाला द्वारा आकाशविवरमें दुर्दर्श थे, उन्हीं तेजोराशिरूप रविको अदितिने धरातलमें स्थिति करते देखा । उनको इस प्रकार देखकर वह देवी अत्यन्त भयको प्राप्त हुई और कहने लगी हे गोपते ! मेरे ऊपर प्रसन्न होओ, मैं तुमको नहीं देखसकी ॥ ३२ ॥ पहिले निराहार होकर आकाशस्थित दुर्दर्श सूर्यको जिस प्रकार ताप प्रदान करतेहुए देखाथा, उसके पीछे अब इस भूतलमें भी उसी प्रकार तेजःसमूहकी मूर्ति देखतीहूं । हे दिवाकर ! मुझपर प्रसन्न हूजिये जिससे मैं तुम्हारा प्रकृतरूप देखूं । हे विभो ! तुम भक्तोंपर कृपा करते हो मैं तुम्हारी भक्त हूं; मेरे पुत्रोंकी रक्षा कीजिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

तुम ब्रह्मके रूपसे इस विश्वको उत्पन्न करते हो, तुम्हीं स्थिति करनेमें प्रवृत्त होकर पालन करते हो और प्रलयके समय अखिलतत्त्व तुममें ही लयको प्राप्त होताहै अतएव सर्व लोकमें तुम्हारे अतिरिक्त अन्य गति नहीं है ॥ ३५ ॥ तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं हरि, तुम्हीं अजसंज्ञित महादेव, तुम्हीं इन्द्र, धनेश्वर कुबेर पितृपति (यम), अम्बुपति (वरुण) और समीर हो तुम्हीं सोम, अग्नि, गगन, महीधर और समुद्र हो । तुम्हीं संपूर्ण तेजः पदार्थोंकी आत्मास्वरूप हो और तुम्हारी क्या स्तुति करूं ? ॥ ३६ ॥ हे यज्ञेश ! आत्मकर्मानुरक्त द्विजगण प्रतिदिन विविध (छन्दबद्धवाक्यादि) द्वारा स्तव करके तुम्हारी पूजा करते हैं । संयतचित्त योगिजन तुम्हारा ध्यान करते करते योगमूर्तिद्वारा परमपदको प्राप्त होतेहैं ॥ ३७ ॥ तुम्हीं विश्वमें ताप देतेहो, तुम्हीं विश्वको पक्व

त्वं धाता विसृजसि विश्वमेतत्त्वं पासि स्थितिकरणाय सम्प्रवृत्तः ॥ त्वय्यन्ते लयमखिलं प्रयाति तत्त्वं त्वत्तोऽन्या न हि गतिरस्ति सर्वलोके ॥ ३५ ॥ त्वं ब्रह्मा हरिरजसंज्ञितस्त्वमिन्द्रो वित्तेशः पितृपतिरप्पतिः समीरः ॥ सोमोऽग्निर्गगनपतिर्महीधरोऽब्धिः किं स्तव्यं तव सकलात्मरूपधाम्नः ॥ ३६ ॥ यज्ञेश त्वामनुदिनमात्मकर्मसक्ताः स्तुन्वन्तो विविधपदैर्द्विजा यजन्ति ॥ ध्यायन्तो विनियतचेतसो भवन्तं योगस्थाः परमपदं प्रयान्ति मर्त्याः ॥ ३७ ॥ तपसि पचसि विश्वं पासि भस्मीकरोषि प्रकटयसि मयूखैर्ह्लादयस्यम्बुगर्भैः ॥ सृजसि कमलजन्मा पालयस्यच्युताख्यः क्षपयसि च युगांते रुद्ररूपस्त्वमेकः ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दिवाकरस्तुतिर्नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः स्वतेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः ॥ अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमप्रभः ॥ १ ॥

रक्षित, भस्म, किरणोंसे प्रकाशित करते हो तथा जलगर्भवाली किरणसमूहोंसे आह्लादित और फिर उत्पन्न करतेहो, देवता और मनुष्य तुमकोही प्रणाम करते हैं और पापकर्मकारी स्थिर भावना करनेपरभी तुमको प्राप्त नहीं होते ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां दिवाकरस्तुतिर्नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—इसके उपरान्त प्रभु विभावसु उस अपने तेजोमण्डलके मध्यसे तपेहुए तांबेके समान कलेवर होकर प्रकट हुए ॥ १ ॥

मा० पु० ॥३०१॥

हे मुने ! उनका दर्शन करतेही देवी अदितिने उनको प्रणाम किया तब भास्वान् सूर्यने उनसे कहा तुम्हारी जैसी इच्छा हो वही मुझसे अभीष्ट वर माँगो ॥ २ ॥ उन देवी अदितिने जानुद्वारा पृथ्वीको स्पर्श कर मस्तकद्वारा प्रणामपूर्वक वर देनेके लिये उपस्थित विवस्वान्से कहा हे देव ! प्रसन्न हूजिये । अधिक बलवान् दैत्य और दानवोंने मेरे पुत्रोंका त्रिभुवन और यज्ञभाग हरण कर लिया है ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे गोपते ! इसी निमित्त मुझपर प्रसन्न हूजिये और आप अंशरूपमें उनके भ्राता होकर शत्रुओंका विनाश कीजिये ॥५॥ हे प्रभो दिवाकर ! जिस प्रकार मेरे पुत्र फिर यज्ञभागभोजनमें अधिकारी और त्रैलोक्यके अधिपति हों ॥ ६ ॥ हे रवे ! मेरे प्रति प्रसन्न होकर मेरे पुत्रोंपर उसी प्रकार कृपा प्रकाश कीजिये । हे दुःखियोंके भयहारिन् ! तुमको लोकस्थिति (पालन)

अथ तां प्रणतां देवीं तस्य संदर्शनान्मुने ॥ प्राह भास्वन्वृणुष्वेष्टवरं मत्तो यमिच्छसि ॥ २ ॥ प्रणता शिरसा सा च जानुपीडितमेदिनी ॥
प्रत्युवाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम् ॥ ३ ॥ देव प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम ॥ यज्ञभागाश्च दैत्यैश्च दानवैश्च बलाधिकैः ॥ ४ ॥
तन्निमित्तं प्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते ॥ अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा नाशय तद्रिपून् ॥५॥ यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो ॥
भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर ॥ ६ ॥ तथानुकम्पां पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे मम ॥ कुरु प्रपन्नार्तिहर स्थितिकर्त्ता त्वमुच्यसे ॥ ७ ॥
मार्कण्डेय उवाच ॥ ततस्तामाह भगवान्भास्करो वारितस्करः ॥ प्रणतामदितिं विप्र प्रसादसुमुखो विभुः ॥ ८ ॥ सहस्रांशेन ते गर्भे
सम्भूयाहमशेषतः ॥ त्वत्पुत्रशत्रूनदिते नाशयाम्याशु निर्वृतः ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वा भगवान्भास्वानन्तर्द्धानमुपागमत् ॥ निवृत्ता सापि तपसः
संप्राप्ताखिलवाञ्छिता ॥ १० ॥ ततो रश्मिसहस्रात्तु सौषुम्नाख्यो रवेः करः ॥ विप्रावतारं संचक्रे देवमातुरथोदरे ॥ ११ ॥

भा० टी० अ० १०२

कर्ता कहते हैं ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले- हे विप्र ! तदनन्तर वारि सुखानेवाले भगवान् भास्करने प्रसन्नमुख होकर उन प्रणत अदितिसे कहा ॥८॥ हे अदिते ! मैं सहस्रांशमें तुम्हारे गर्भसे जन्म ग्रहण कर तुम्हारे पुत्रोंके समस्त शत्रुओंको समूल विनाश करूंगा । तुम्हारे पुत्र शीघ्रही सुखी होंगे ॥ ९ ॥ यह कहकर भगवान् भास्वान् वहांसे अन्तर्धान होगये और वह अदितिभी वांछित वरको प्राप्त कर तपस्यासे निवृत्त होगई ॥१०॥ हे विप्र! इसके उपरान्त रविकी सौषुम्न नामक किरण सहस्रांशुसे देवमाता अदितिके गर्भसे अवतीर्ण हुई ॥ ११ ॥

हे द्विज ! वह अदिति सावधान होकर कृच्छ्रचांद्रायणादि व्रतानुष्ठानपूर्वक पवित्रतासे दिव्यगर्भ धारण करने लगी ॥ १२ ॥ तब कश्यपजीने उससे कुछेक कोपयुक्त वचनद्वारा कहा, तू नित्य उपवासी होकर क्या इस गर्भस्थ अण्डको मारित अर्थात् नष्ट करेगी ? ॥ १३॥ अदितिने उनसे कहा—हे क्रुद्धस्वभाव ! यह जो गर्भाण्ड देखतेहो, इसको मारती नहीं हूं, यह शत्रुओंके विनाशका कारण होगा ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—यह कहकर सुरमाता अदितिने पतिके वचनद्वारा क्रोधित होकर तेजसे जाज्वल्यमान उस गर्भको परित्याग किया ॥ १५ ॥ कश्यप उदयकालीन भास्करके समान प्रभाशाली वह गर्भ देखकर प्रणामपूर्वक आदरसहित आद्यऋक् मंत्रसमूहद्वारा स्तव करने लगे ॥१६॥ तब उनके द्वारा स्तुतिको प्राप्त हो वह भास्कर तेजद्वारा दिशाओंके मुख

कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि सा च चक्रे समाहिता ॥ शुचिः संधारयामास दिव्यं गर्भमिति द्विज ॥१२॥ ततस्तां कश्यपः प्राह किञ्चित्कोपप्लुताक्षरम् ॥ किं मारयसि गर्भाण्डमिति नित्योपवासिनी ॥ १३ ॥ सा च तं प्राह गर्भाण्डमेतत्पश्येति कोपना ॥ न मारितं विपक्षाणां मृत्यवे तद्भविष्यति ॥१४॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्त्वा तं तदा गर्भमुत्ससर्ज्ज सुरारणिः ॥ जाज्वल्यमानं तेजोभिः पत्युर्वचनकोपिता ॥ १५॥ तं दृष्ट्वा कश्यपो गर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम् ॥ तुष्टाव प्रणतो भूत्वा ऋग्भिराद्याभिरादरात् ॥ १६ ॥ संस्तूयमानः स तदा गर्भाण्डात्प्रकटोऽभवत् ॥ पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुखः ॥१७ ॥ अथान्तरिक्षादाभाष्य कश्यपं मुनिसत्तमम् ॥ सतोयमेघगम्भीरवागुवाचाशरीरिणी ॥ १८ ॥ मारितं ते यतः प्रोक्तमेतदण्डं त्वया मुने ॥ तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्त्तण्डाख्यो भविष्यति ॥ १९ ॥ सूर्याधिकारं च विभुर्जगत्येष करिष्यति ॥ हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन् ॥ २० ॥ देवा निशम्येति वचो गगनात्समुपागमन् ॥ प्रहर्षमतुलं याता दानवाश्च हतौजसः ॥ २१ ॥

व्याप्त करते हुए पद्मपत्रके समान वर्णयुक्त हो गर्भाण्डसे बाहर निकले ॥१७॥ अनन्तर सजल जलदके समान गंभीर अशरीरिणी वाणी अन्तरिक्षसे मुनिवर कश्यपको संबोधन देकर कहने लगी ॥ १८ ॥ हे मुने ! तुमने इस अण्डको "मारित" कहाथा, इस कारण तुम्हारे पुत्रका नाम "मार्त्तण्ड" होगा ॥ १९ ॥ यह विभु जगतमें सूर्यका कार्य करेंगे, और यज्ञभागहारी देवशत्रु असुरोंको यही विनाश करेंगे ॥ २० ॥ देवतागण उक्त वचन श्रवणपूर्वक अतुल हर्षको प्राप्त हो आकाशसे आये और दानवगण तेजहीन होगये ॥ २१ ॥

तदनन्तर देवताओंके सहित शतक्रतु (इन्द्र) ने युद्धके लिये दैत्योंको बुलाया, तब दानवगण प्रसन्नचित्त होकर आये ॥ २२ ॥ तिस काल असुरोंके सहित देवताओंका घोर युद्ध होने लगा और संपूर्ण भुवनान्तर देवता और असुरोंके अस्त्रशस्त्रोंकी दीप्तिसे सम्यक् प्रकारसे दीप्तिमान् होगया ॥ २३ ॥ उस युद्धमें महा असुरगण भगवान् मार्त्तण्डदेवके देखनेसे तथा उनके तेजद्वारा दग्ध होकर भस्म होगये ॥ २४ ॥ तब संपूर्ण देवताओंने अतुलहर्षको प्राप्त हो समस्त तेजके आकरस्वरूप मार्त्तण्डदेवकी और अदितिकी स्तुति करी ॥२५ ॥ देवता पूर्ववत् अपने अधिकार और यज्ञभागको प्राप्त हुए और भगवान् मार्त्तण्डभी इस स्वीय अधिकारानुरूप सूर्यका कार्य करने लगे ॥ २६ ॥ वह कदम्बपुष्पवत् नीचे और ऊपरमें किरणों द्वारा दीप्तिशाली होकर गोलाकार

ततो युद्धाय दैतेयानाजुहाव शतक्रतुः ॥ सह देवैर्मुदा युक्तो दानवाश्च समभ्ययुः ॥ २२ ॥ तेषां युद्धमभूद्घोरं देवानामसुरैः सह ॥ शस्त्रास्त्रदीप्तिसंदीप्तं समस्तभुवनान्तरम् ॥ २३ ॥ तस्मिन्युद्धे भगवता मार्त्तण्डेन निरीक्षिताः ॥ तेजसा दह्यमानास्ते भस्मीभूता महासुराः ॥ २४ ॥ ततः प्रहर्षमतुलं प्राप्ताः सर्वे दिवौकसः ॥ तुष्टुवुस्तेजसां योनिं मार्त्तण्डमदितिं तथा ॥ २५ ॥ स्वाधिकारांस्तथा प्राप्ता यज्ञभागांश्च पूर्ववत् ॥ भगवानपि मार्तण्डः स्वाधिकारमथाकरोत् ॥ २६ ॥ कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्ध्वं च रश्मिभिः ॥ वृत्ताग्निपिण्डसदृशो दध्रे नातिस्फुरद्वपुः ॥२७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मार्त्तण्डोत्पत्तिर्नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अथ तस्मै ददौ कन्यां संज्ञां नाम विवस्वते ॥ प्रसाद्य प्रणतो भूत्वा विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥ १ ॥ वैवस्वतस्तु सम्भूतो मनुस्तस्यां विवस्वतः ॥ पूर्वमेव तथाख्यातं तत्स्वरूपं विशेषतः ॥ २ ॥

अग्निपिण्डके समान दिखाई देनेलगे और अधिक स्फुरनासे रहित शरीर धारण किया ॥ २७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां मार्तण्डोत्पत्तिर्नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥ मार्कण्डेयजी बोले–अनन्तर प्रजापति विश्वकर्माने प्रणत होकर भगवान् विवस्वान्को प्रसन्न करके संज्ञानाम्नी अपनी कन्या दी ॥ १ ॥ उस संज्ञाके गर्भसे विवस्वान्के ' वैवस्वत ' मनु नामक जिस पुत्रका जन्म हुआ, उसका वृत्तान्त पहिलेही विशेष करके कहा है ॥ २ ॥

क्रौष्टुकिने कहा—मैं मार्तण्डमहात्माका चरित्र फिर भी सुननेकी इच्छा करताहूं जो चरित्र सुननेवालोंके कलिसम्बन्धी पापोंका विनाश करताहै ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने ! गोपति सूर्यने संज्ञाके गर्भसे दो महाभाग पुत्र और यमुना नामक एक कन्या यह तीन संतान उत्पन्न करीं ॥ ३ ॥ तिनमें श्राद्धदेव प्रजापति वैवस्वत मनु ज्येष्ठ हैं । तदनन्तर यम और यमी नामक यमल सन्ता की उत्पत्ति हुई ॥ ४ ॥ तिस काल विवस्वान् मार्त्तण्डका जो अधिक तेज था, उसके द्वारा वह सचराचर तीनों लोकोंको तापित करतेथे ॥ ५ ॥ संज्ञा विवस्वानूका वह गोलाकाररूप देख और उनका महत्तेज सहनेमें असमर्थ हो अपनी छायाकी ओर देखकर कहने लगी ॥ ६ ॥ संज्ञा बोली—हे शुभे ! तुम्हारा कल्याण हो । मैं अपने पिताके घर जातीहूं, तुम मेरी आज्ञा पालन

क्रौष्टुकिरुवाच ॥ (भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि मार्त्तण्डस्य महात्मनः ॥ चरितं हंति यत्पापं कलौ संशृण्वतां नृणाम् ॥ १ ॥) मार्कण्डेय उवाच ॥ त्रीण्यपत्यान्यसौ तस्यां जनयामास गोपतिः ॥ द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्यां च यमुनां मुने ॥ ३ ॥ मनुर्वैवस्वतो ज्येष्ठः श्राद्धदेवः प्रजापतिः ॥ ततो यमो यमी चैव यमलौ संबभूवतुः ॥ ४ ॥ यत्तेजोऽभ्यधिकं तस्य मार्तण्डस्य विवस्वतः ॥ तेनातितापयामास त्रीँल्लोकान्सचराचरान् ॥ ५ ॥ गोलाकारं तु तद्दृष्ट्वा संज्ञारूपं विवस्वतः ॥ असहन्ती महत्तेजः स्वां छायां प्रेक्ष्य साऽब्रवीत् ॥ ६ ॥ संज्ञोवाच ॥ अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः ॥ निर्विकारं त्वयाप्यत्र स्थेयं मच्छासनाच्छुभे ॥ ७ ॥ इमौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी ॥ संभाव्यौ नैव चाख्येयमिदं भगवते त्वया ॥ ८ ॥ छायोवाच ॥ आकेशग्रहणाद्देवि आशापान्नैव कर्हिचित् ॥ आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गम्यतां यत्र वाञ्छितम् ॥ ९ ॥ इत्युक्ता छायया संज्ञा जगाम पितृमन्दिरम् ॥ तत्रावसत्पितुर्गेहे कञ्चित्कालं शुभेक्षणा ॥ १० ॥

करतीहुई निर्विकाराचित्तसे इस स्थानमें रहना ॥ ७ ॥ मेरे इन दोनों बालक और इस वरवर्णिनी कन्याके प्रति सस्नेह व्यवहार करना और यह वृत्तान्त भगवानूके निकट कभी प्रकाश नहीं करना ॥ ८ ॥ छायाने कहा—हे देवि ! जबतक वह मेरे केश ग्रहण न करेंगे और जबतक मुझको शाप नहीं देंगे, तबतक मैं भगवानूके निकट अपनी बात नहीं कहूंगी, तुम अपने अभिलषित स्थानमें जाओ ॥ ९ ॥ छायाके इस प्रकार कहनेपर शुभदर्शन संज्ञाने पिताके घर जाकर कुछ काल वहां वास किया ॥ १० ॥

हे विप्र ! अनन्तर "भर्त्ताके घर जाओ" यह वचन पिता विश्वकर्माके वारंवार कहनेपर संज्ञा बडवा (घोडी) का रूप धारण कर उत्तर कुरुदेशमें चली गई ॥ ११ ॥ हे महामुने ! साध्वी संज्ञा वहां अनाहार हो तपस्या करने लगी। जब संज्ञा पिताके घर चलीगई, तब छाया उसीके वचनानुसार ॥ १२॥ उसीका रूप धारण कर भगवान् भास्करकी भजना करने लगी। भगवान् सूर्यनेभी उसको अपनी पत्नी संज्ञा विचारकर ॥ १३॥ उसके गर्भसेभी दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न की। हे द्विजसत्तम ! इन दो पुत्रोंमें जो ज्येष्ठ पुत्र थे, वह संज्ञाके पुत्र पूर्वोत्पन्न वैवस्वतमनुके समान सावर्णि नामक मनु हुए और दूसरे पुत्र शनैश्वर नामक ग्रह हुए ॥ १४ ॥ १५ ॥ और तपती नामक जो कन्या उत्पन्न हुई, पीछे संवरण नामक नरपतिने उससेही विवाह किया छाया-

भर्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा पुनः पुनः ॥ अगच्छद्बडवा भूत्वा कुरूग्विप्रोत्तरांस्ततः ॥ ११ ॥ तत्र तेपे तपः साध्वी निराहारा महामुने ॥ पितुः समीपं यातायाः संज्ञाया वाक्यतत्परा ॥ १२ ॥ तद्रूपधारिणी छाया भास्करं समुपास्थिता ॥ तस्यां च भगवान्सूर्यः संज्ञेयमिति चिन्तयन् ॥ १३ ॥ तथैव जनयामास द्वौ सुतौ कन्यकां तथा ॥ पूर्वजस्य मनोस्तुल्यः सावर्णिस्तेन सोऽभवत् ॥ १४ ॥ यस्तयोः प्रथमं जातः पुत्रयोर्द्विजसत्तम ॥ द्वितीयो योऽभवच्चान्यः स ग्रहोऽभूच्छनैश्वरः ॥१५॥ कन्याभूत्तपती या तां वव्रे संवरणो नृपः ॥ संज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजानां यथाऽकरोत् ॥ १६ ॥ स्नेहान्न पूर्वजातानां तथा कृतवती सती ॥ मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्या यमश्चास्या न चक्षमे ॥ १७ ॥ बहुशो याच्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः ॥ स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ॥ १८ ॥ पदा सन्तर्जयामास छायासंज्ञां यमो मुने ॥ ततः शशाप च यमं संज्ञा सामर्षिणी भृशम् ॥ १९ ॥

संज्ञा सावर्णि मनु इत्यादि अपने पुत्रोंके प्रति जैसा स्नेह व्यवहार करती ॥ १६ ॥ संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न हुए वैवस्वतमनु इत्यादिके प्रति वैसा व्यवहार नहीं करती। छाया संज्ञाका इस प्रकार असमान व्यवहार देखकरभी वैवस्वतमनुने उसको सहलिया, किन्तु यमने न सहा ॥ १७ ॥ और इससे अत्यन्त दुःखित होकर पितृपत्नीकर्तृक वारंवार याचित होकरभी उसको न सहसके। हे मुने ! यमने कोपाविष्ट और भावी अर्थ-बलके कारण अर्थात् होनेवाली बातके वशीभूत हो ॥ १८ ॥ छायासंज्ञाको घुडककर चरण उठाया, इससे छाया संज्ञाने अत्यन्त क्रोधित हो यमको यह कहकर शाप दिया ॥ १९ ॥

संज्ञाने कहा-" मैं तुम्हारे पूजनीय पिताकी भार्या हूं मुझको पद दिखाकर घुडका अतएव तुम छिन्नपद होंगे अर्थात् तुम्हारा यह चरण कटकर गिरजायगा, इसमें सन्देह नहीं " ॥ २०॥ धर्मात्मा यमने इस शापसे अत्यन्त पीडितमन हो मनुके सहित पिताके समीप जाकर संपूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २१ ॥ यमने कहा-हे देव ! माता हमारे प्रति तुल्यस्नेह न करके हमारे ज्येष्ठ होनेपरभी हमारा अनादर करतीहुई दोनों कनिष्ठके भरण पोषणमें इच्छा करती है ॥ २२ ॥ इस कारण मैंने बाल्यस्वभाव अथवा मोहवशसे उसकी ओर चरण उठाया था, किन्तु आघात नहीं किया, आप मेरे उस अपराधको क्षमा कीजिये ॥ २३॥ हे तापदातृ श्रेष्ठ पितः ! यदि पुत्र दुराचारी भी हो, तोभी माता उसके प्रति कभी बुरा व्यवहार नहीं करती, अतएव पुत्रको " तुम्हारा

छायोवाच ॥ पदा तर्जयसे यस्मात्पितृभार्यां गरीयसीम् ॥ तस्मात्तवैव चरणः पतिष्यति न संशय ॥ २० ॥ यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः ॥ मनुना सह धर्मात्मा सर्वं पित्रे न्यवेदयत् ॥ २१ ॥ यम उवाच ॥ स्नेहेन तुल्यमस्मासु माता देव न वर्तते ॥ विसृज्य ज्यायसोऽप्यस्मान्कनीयांसौ बुभूर्षति ॥ २२ ॥ तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः ॥ बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ २३ ॥ शप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो यतः ॥ ततो न मन्ये जननीमिमां वै तपतां वर ॥२४ ॥ विगुणेष्वपि पुत्रेषु न माता विगुणा पितः ॥ पादस्ते पततां पुत्र कथमेतत्प्रवक्ष्यति ॥ २५ ॥ तव प्रसादाच्चरणो न पतेद्भगवन्यथा ॥ मातृशापादयं मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते ॥ २६ ॥ रविरुवाच ॥ असंशयमिदं पुत्र भविष्यत्यत्र कारणम् ॥ येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ॥ २७॥ सर्वेषामेव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते ॥ न तु मात्राभिशप्तानां क्वचिच्छापनिवर्तनम् ॥ २८ ॥

चरण गिरजाय " ऐसा शाप कैसे देगी । जब जननी होकर पुत्रके प्रति कोपके कारण इस प्रकार शाप दिया, तब यह माता नहीं जान पडती ॥२४॥२५॥ हे भगवन् ! मातृशापके कारण जिससे मेरा पैर न गिरे हे गोपते ! अनुग्रहपूर्वक उसी उपायकी चिन्ता कीजिये ॥ २६ ॥ सूर्यने कहा-हे पुत्र ! तुम धर्मज्ञ और सत्यवादी होकरभी जब क्रोधके वशीभूत हुए, तब निःसन्देह ऐसा होनेकी संभावना है ॥ २७ ॥ अन्यान्य समस्त शापही प्रतिहत होसकते हैं, किन्तु मातृशाप मोचन करनेका कोई उपाय नहीं है ॥ २८ ॥

अतएव मैं तुम्हारी माताका वचन मिथ्या करनेमें समर्थ नहीं हूं किन्तु पुत्रस्नेहके वश होकर कुछेक अनुग्रह विधान करूंगा ॥ २९ ॥ " क्रिमि तुम्हारे पैरका मांस ग्रहण करके महीतलमें लेजाँयगे " ऐसा होनेसे तुम्हारी माताका वचन सत्य होगा और तुमभी रक्षित होंगे ॥ ३० ॥ मार्कण्डेयजी बोले–फिर आदित्यने छायासे कहा " तुम्हारे समस्त पुत्रही तुल्य स्नेहके पात्र हैं, किन्तु ऐसा न करके एकके प्रति स्नेह करती हो ॥ ३१ ॥ इस कारण बोध होता है तुम इनकी माता संज्ञा नहीं हो, अपर कोई संज्ञाके रूपमें अवस्थान करतीहो, नहीं तो पुत्रके दुराचारी होनेपर माता क्या कभी शाप देसकती है ? " ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–छाया संज्ञाने समस्त वृत्तान्त छिपाकर दिवाकरसे कुछभी नहीं कहा । किन्तु दिवस्पति समाधिके बलसे सब सत्य

न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्तुं मातुर्वचस्तव ।। किञ्चित्तव विधास्यामि पुत्रस्नेहादनुग्रहम् ।। २९ ।। कृमयो मांसमादाय प्रयास्यन्ति महीतलम् ।। कृतं तस्या वचः सत्यं त्वं च त्रातो भविष्यसि ।। ३० ।। मार्कण्डेय उवाच ।। आदित्यस्त्वब्रवच्छायां किमर्थं तनयेषु वै ।। तुल्येष्वप्यधिकः स्नेह एकत्र क्रियते त्वया ।। ३१ ।। नूनं नैषां त्वं जननी संज्ञा कापि त्वमागता ।। विगुणेष्वप्यपत्येषु कथं माता शपेत्सुतम् ।।३२।। मार्कण्डेय उवाच ।। सा तत्परिहरन्ती च नाचचक्षे विवस्वतः ।। स चात्मानं समाधाय युक्तस्तत्त्वमपश्यत ।।३३।। तं शप्तुमुद्यतं दृष्ट्वा छायासंज्ञा दिवस्पतिम् ।। भयेन कंपिता ब्रह्मन्यथावृत्तं न्यवेदयत् ।। ३४ ।। विवस्वांस्तु ततः क्रुद्धः श्रुत्वा श्वशुरमभ्यगात् ।। स चापि तं तथान्यायमर्चयित्वा दिवाकरम् ।। निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास सुव्रतः ।। ३५ ।। विश्वकर्मोवाच ।। तवातितेजसा व्याप्तमिदं रूपं सुदुःसहम् ।। असहन्ती ततः संज्ञा वने चरति वै तपः ।। ३६ ।।

वृत्तान्त अवलोकन कर ॥ ३३ ॥ शाप देनेमें उद्यत हुए हे ब्रह्मन् ! यह देख छायासंज्ञाने भयसे काँपते हुए सब वृत्तान्त ज्यों का त्यों कहदिया ॥ ३४ ॥ विवस्वान् यह सब वृत्तान्त सुनकर क्रोधित चित्त हो श्वशुरके समीप गये। जब सुव्रत विश्वकर्माने देखा कि, इन्होंने रोषद्वारा समस्तही दग्ध करनेकी अभिलाषा करी है, तब इनकी यथाविधि पूजा करके समझाया ॥ ३५ ॥ विश्वकर्माने कहा–संज्ञा आपका यह अतिरिक्त तेजसे व्याप्त दुःसह रूप न सह सकनेके कारण वनमें तपस्या करती है ॥ ३६ ॥

आप अभी अपने रूपके कारण वनमें महातप करतीहुई, शुभकार्यमें तत्पर उस अपनी भार्याको देखिये ॥ ३७ ॥ हे देव ! मुझको ब्रह्माजीका वचन स्मरण होता है उसमें यदि आपकी अनुमति हो, तो हे दिवस्पते ! आपके इस रूपको कान्तरूपमें परिवर्त्तित करूं ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अपने उपस्थित रूपकी मण्डलाकारता होनेसे भगवान् रविने त्वष्टाको उस कार्यमें आज्ञा दी ॥ ३९ ॥ विश्वकर्मानेभी आज्ञा पाय शाकद्वीपमें विवस्वान्को भ्रमियंत्र (शान) में आरोपणपूर्वक शातन करने (निराकरण करने) का उपक्रम किया ॥ ४० ॥ हे ब्रह्मन् ! संपूर्ण जगत्के नाभिस्वरूप आदित्यके घूमनेसे समुद्र-गिरि-

द्रक्ष्यते तां भवानद्य स्वभार्यां शुभचारिणीम् ॥ रूपार्थं भवतोऽरण्ये चरन्तीं सुमहत्तपः ॥ ३७ ॥ स्मृतं मे ब्रह्मणो वाक्यं यदि ते देव रोचते ॥ रूपं निवर्तयाम्येतत्तव कान्तं दिवस्पते ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ यतो हि भास्वतो रूपं प्रागासीत्परिमण्डलम् ॥ ततस्तथेति तं प्राह त्वष्टारं भगवान्रविः ॥ ३९ ॥ विश्वकर्मा त्वनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वतः ॥ भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातनायोपचक्रमे ॥ ४० ॥ भ्रमताऽशेषजगतां नाभिभूतेन भास्वता ॥ समुद्राद्रिवनोपेता सा रुरोह मही नभः ॥ ४१ ॥ गगनं चाखिलं ब्रह्मन्सचन्द्रग्रहतारकम् ॥ अधोगतं महाभाग बभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥ ४२ ॥ विक्षिप्तसलिलाः सर्वे बभूवुश्च तथाब्धयः ॥ व्यभिद्यन्त महाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धनाः ॥ ४३ ॥ ध्रुवाधाराण्यशेषाणि धिष्ण्यानि मुनिसत्तम ॥ त्रुट्यद्रश्मिनिबन्धानि ह्यधो जग्मुः सहस्रशः ॥ ४४ ॥ वेगभ्रमणसंजातवायुक्षिप्ताः समन्ततः ॥ व्यशीर्यंत महामेघा घोररावविराविणः ॥ ४५ ॥ भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तं भूम्याकाशरसातलम् ॥ जगदाकुलमत्यर्थं तदासीन्मुनिसत्तम ॥ ४६ ॥

वन-वेष्टित महीतल आकाशमें मिलगया ॥ ४१ ॥ और हे महाभाग ! चन्द्र, ग्रह, तारकादिसंकुल संपूर्ण गगन नीचे गिरतासा आकुल होनेलगा ॥ ४२ ॥ समुद्रोंका जल उछलने लगा, महापर्वतसमूह शिखर विखरनेसे विभिन्न होनेलगे ॥ ४३ ॥ और हे मुनिसत्तम ! ध्रुवाधार सब नक्षत्रकुल अपनी रशनाबंधन स्खलित होनेसे नीचेको जानेलगे ॥ ४४ ॥ चारों दिशाओंमें महामेघोंके वेगसे भ्रमण करने पर उठीहुई वायुद्वारा परस्पर लगकर घोर गर्जनसहित विचरण करतेहुए विशीर्ण होनेलगे ॥ ४५ ॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार स्वर्ग, मर्त्य, पाताल संपूर्ण जगतही सूर्यके भ्रमणसे विभ्रान्त होकर अतिशय आकुल हो

उठा ॥ ४६ ॥ हे विप्र ! त्रैलोक्यके इस प्रकार घूमनेपर सुरर्षि और देवता, ब्रह्माजीके सहित सूर्यकी स्तुति करने लगे ॥४७॥ उन्होंने कहा—तुम देवताओंमें आदिदेव हो, यह स्वरूपसेही ज्ञात होता है। सृष्टि, स्थिति और प्रलयकालके भेदसे तुम त्रिधा विभक्त होकर स्थिति करते हो ॥४८॥ हे जगन्नाथ! हे ग्रीष्म-वर्षा-हिमाकर ! तुम्हारा मंगल हो। हे देवदेव ! हे दिवाकर ! तुम लोकोंकी शान्तिविधान करो ॥ ४९ ॥ आयेहुए इन्द्रने सूर्य देवकी मूर्त्ति लिख " हे देव ! हे जगद्व्यापिन् ! हे अशेषजगत्पते ! तुम्हारी जय हो " इस प्रकार कहकर स्तुति करी ॥५०॥ इसके उपरान्त वसिष्ठ अत्रि इत्यादि सप्त

त्रैलोक्ये सकले विप्र भ्रममाणे सुरर्षयः ॥ देवाश्च ब्रह्मणा सार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवुः ॥४७॥ आदिदेवोऽसि देवानां ज्ञातमेतत्स्वरूपतः ॥ स्वर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधा भेदेन तिष्ठसि ॥ ४८ ॥ स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ घर्मवर्षाहिमाकर ॥ जुषस्व शान्तिं लोकानां देवदेव दिवाकर ॥ ४९ ॥ इन्द्रश्चागत्य तं देवं लिख्यमानं यथाऽस्तुवत् ॥ जयदेव जगद्व्यापिञ्जयाशेषजगत्पते ॥ ५० ॥ ऋषयश्च ततः सप्त वसिष्ठात्रिपुरोगमाः ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः स्वस्ति स्वस्तीति वादिनः ॥५१॥ वेदोक्ताभिरथाद्याभिर्वालखिल्याश्च तुष्टुवुः ॥ भास्वन्तमृग्भिराद्याभिर्लिख्यमानं मुदा युताः ॥ ५२ ॥ त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः ॥ त्वं गतिः सर्वभूतानां कर्मकाण्डेऽपि वर्तताम् ॥ ५३ ॥ शं प्रजाभ्योऽस्तु देवेश शन्नोऽस्तु जगतांपते ॥ शन्नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शन्नश्चास्तु चतुष्पदे ॥ ५४ ॥ ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ कृताञ्जलिपुटाः सर्वे शिरोभिः प्रणता रविम् ॥ ५५ ॥

ऋषियोंने स्वस्ति वाक्य उच्चारण कर विविध स्तोत्रोंके द्वारा स्तुति करी ॥ ५१ ॥ प्रसन्नचित्त वालखिल्यगण लिखीहुई भास्करदेवकी वेदोक्त आद्य ऋकके द्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥५२॥ हे नाथ ! तुम मुमुक्षु पुरुषोंके पक्षमें मोक्ष ध्यानी पुरुषोंके एक मात्र ध्येय और कर्मकांडमें प्रवृत्त सब जीवोंकेभी तुम्हीं गति हो ॥५३॥ हे देवेश ! हे जगन्नाथ ! सब प्रजाका, हमारा, एवं हमारे द्विपद और चतुष्पदोंका मंगलविधान करो ॥५४॥ तदनन्तर विद्याधर, यक्ष, राक्षस और पन्नगगण कृताञ्जलिपुटसे रविको मस्तकद्वारा प्रणाम कर ॥ ५५ ॥

“ हे भूतभावन ! आपका तेज समस्त भूतके सहने योग्य हो ” इस प्रकार मन और कानोंको सुखकर वचन कहनेलगे ॥ ५६ ॥ अनन्तर षड्ज, मध्यम और गाधार इन तीनों ग्राममें विशारद हाहा हूहू नारद तुम्बुरु इत्यादि संगीतविद्गणोंने मूर्च्छना और तालादिके सुप्रयोगानुसार रविके सन्मुख सुखदायक संगीत आरंभ किया ॥ ५७ ॥ ५८॥ देव विभावसुके इस प्रकार लिख्यमान होनेपर विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजन्या और रम्भा इत्यादि श्रेष्ठ अप्सरायें ॥ ५९ ॥ हाव, भाव, विलासादि अनेक अभिनयसहित नृत्य करने लगीं ॥ ६० ॥ वेणु, वीणा, झर्झर, पणव, पुष्कर, मृदंग, पटह,

ऊचुरेवंविधा वाचो मनःश्रोत्रसुखावहाः ॥ सह्यं भवतु ते तेजो भूतानां भूतभावन ॥ ५६॥ ततो हाहा हुहूश्चैव नारदस्तुम्बुरुस्तथा ॥ उपगायितुमारब्धा गान्धर्वं कुशला रविम् ॥५७॥ षड्जमध्यमगान्धारग्रामत्रयविशारदाः ॥ मूर्च्छनाभिश्च तानैश्च संप्रयोगैः सुखप्रदम् ॥५८॥ विश्वाची च घृताची च उर्वश्यथ तिलोत्तमा ॥ मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसां वरा ॥ ५९ ॥ ननृतुर्जगतामीशे लिख्यमाने विभावसौ ॥ ज्ञानभावविलासाढ्यान्कुर्वन्तोऽभिनयान्बहून् ॥ ६० ॥ प्रावाद्यन्त ततस्तत्र वेणुवीणादिझर्झराः ॥ पणवाः पुष्कराश्चैव मृदङ्गा पटहानकाः ॥ ६१ ॥ देवदुन्दुभयः शङ्खा शतशोऽथ सहस्रशः ॥ गायद्भिश्चैव गांधर्वं नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ॥ ६२ ॥ तूर्यवादित्रघोषैश्च सर्वं कोलाहलीकृतम् ॥ ततः कृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ॥ ६३ ॥ लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेमुः सर्वदेवताः ॥ ततः कोलाहले तस्मिन्सर्वदेवसमागमे ॥ तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्मा शनैःशनैः ॥ ६४ ॥

आनक ॥ ६१ ॥ देवदुन्दुभी और शंख इत्यादि सैकडों हजारों बाजोंकी ध्वनि होनेलगी । इस प्रकार गन्धर्वोंके संगीत स्वर्गकी अप्सराओंके नृत्य ॥ ६२ ॥ और तूर्य बाजोंके अनेक शब्दद्वारा उस काल संपूर्ण जगत् कोलाहलसे पूर्ण होगया । अनन्तर सब देवताओंने हाथ जोड भक्ति कर नम्रमूर्त्ति हो ॥ ६३ ॥ लिख्यमान सहस्रांशुको प्रणाम किया । देवता इत्यादिके समागमका उस समय कोलाहल उपस्थित होनेपर विश्वकर्माने धीरे धीरे तेज क्षीण किया ॥ ६४ ॥

शिशिर, वर्षा और ग्रीष्मकालके हेतुस्वरूप और हरि, हर तथा ब्रह्माजीके द्वारा स्तुतिको प्राप्त हुए भानुदेवकी यह तनुपरिलिखन कथा सुननेसे जीवनके अन्तमें दिवाकरलोककी प्राप्ति होती है ॥ ६९॥ इति श्रीमा० पु० भाषाटीकायां भानुतनुलेखनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-प्रजापति विश्वकर्माने भानुतनु क्षीण करते करते पुलकित हो विवस्वान्‌की लिखित मूर्त्तिका यह कहकर स्तव किया था ॥ १ ॥ प्रणत मनुष्योंका हितानुष्ठान और उनपर कृपाकारी सम वेगयुक्त, सप्ताश्वशाली, कमलकुल खिलानेवाले और तमोराशिविनाशक तेजस्वी महात्मा विवस्वान्‌को नमस्कार करताहूं ॥ २ ॥ अतिशय पावन, पुण्यकर्मा, अनेक काम्य विषयदायक भास्वर अग्निसदृश किरणशाली और सर्व लोकोंके हितकारी देवको नमस्कार

इति हिमजलघर्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ॥ तनुपरिलिखनं निशम्य भानोर्व्रजति दिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥ ६९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भानुतनुलेखने त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ लिख्यमाने ततो भानौ विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥ उद्भूतपुलकः स्तोत्रमिदं चक्रे विवस्वतः ॥ १ ॥ विवस्वते प्रणतहितानुकम्पिने महात्मने समजवसप्तसप्तये ॥ सुतेजसे कमलकुलावबोधिने नमस्तमःपटलपटावपाटिने ॥ २ ॥ पावनातिशयपुण्यकर्मणे नैककामविषयप्रदायिने ॥ भास्वरानलमयूखशायिने सर्वलोकहितकारिणे नमः ॥ ३ ॥ अजाय लोकत्रयकारणाय भूतात्मने गोपतये वृषाय ॥ नमो महाकारुणिकोत्तमाय सूर्याय चक्षुःप्रभवालयाय ॥ ४ ॥ विवस्वते ज्ञानभृतेऽन्तरात्मने जगत्प्रतिष्ठाय जगद्धितैषिणे ॥ स्वयम्भुवे लोकसमस्तचक्षुषे सुरोत्तमायामिततेजसे नमः ॥५॥ क्षणमुदयाचलमौलिमणिः सुरगणमहित हितो जगतः ॥ त्वमु मयूखसहस्रवपुर्जगति विभासि तमांसि नुदन् ॥ ६ ॥

करताहूं ॥ ३ ॥ स्वयं उत्पत्तिरहित किन्तु तीनों लोकोंको उत्पन्न करनेके कारण स्वरूप भूतात्मा रश्मिपति, वृष (साक्षात् धर्मस्वरूप) महाकारुणिक श्रेष्ठ चाक्षुषविषयके आलयस्वरूप सूर्यको प्रणाम करताहूं ॥ ४ ॥ ज्ञानियोंका अन्तरात्मरूपी जगदाधार जगत्‌के हितैषी स्वयंभू समस्त लोकके चक्षुस्वरूप सुरश्रेष्ठ अमिततेजा विवस्वान्‌को नमस्कार करताहूं ॥५॥ तुम जगत्‌के हितकी कामनासे देवताओंसे महित क्षणकाल उदयाचलके शिरकी माल्यस्वरूप हो यह तेज किरणोंके द्वारा वपुग्रहणपूर्वक अंधकारके समूहका विनाश करतेहुए जगत्‌में प्रकाश पाते हो ॥ ६ ॥

हे मिहिर ! जगत्के तिमिररूप आसव पीनेकी मत्तताके कारण लोहितमूर्ति होकर तुम त्रिभुवनप्रकाशक किरणोंके द्वारा अतिशय दीप्ति पाते हो ॥ ७॥ हे भगवन् ! तुम जगत्का हित करनेके लिये सदा समान अवयववाले अत्यन्त मनोरम कुछेक कंपायमान विस्तृत रथमें चढकर घोडोंके द्वारा विचरण करतेहो ॥ ८ ॥ हे अरिनिषूदन ! तुम संजीवनी सुधाद्वारा देवता और पितरोंकी एकही समयमें तृप्ति संपादन करते हो । इसी कारण जगत्के हितकी कामनासे मैंने तुमको प्रणाम करके तुम्हारा वपुः (देह) लिखा है ॥ ९ ॥ हे प्रणतजनवत्सल ! हे त्रिभुवनपावन भास्कर ! मैं तुम्हारीही तोतेके समान वर्णवाली अश्वसृष्टिके कारण विख्यात हुआहूं और तुम्हारेही चरणोंकी रजसे इस समय अत्यन्त पवित्र हुआहूं इस प्रणतजनकी रक्षा करो ॥ १० ॥ इस

भवतिमिरासवपानमदाद्भवति विलोहितविग्रहता ॥ मिहिर विभासि यतः सुतरां त्रिभुवनभावनभानिकरैः ॥ ७ ॥ रथमधिरुह्य समावयवं चारुविकम्पितमुरुरुचिरम् ॥ सततमखिन्नहयैर्भगवंश्चरसि जगद्धिताय विततम् ॥ ८ ॥ अमृतमयेन रसेन समं विबुधपितॄनपि तर्पयसे ॥ अरिगणसूदन तेन नव प्रणतिमुपेत्य लिखामि वपुः ॥ ९ ॥ शुकसमवर्णहयप्रथितं तव पदपांसुपवित्रतमम् ॥ नतजनवत्सल मां प्रणतं त्रिभुवनपावन पाहि रवे ॥ १०॥ इति सकलजगत्प्रसूतिभूतं त्रिभुवनभावनधामहेतुमेकम् ॥ रविमखिलजगत्प्रदीपभूतं त्रिदशवर प्रणतोऽस्मि सर्वदा त्वाम् ॥ ११ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सूर्यस्तवनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं सूर्यस्तवं कुर्वन्विश्वकर्मा दिवस्पतेः ॥ तेजसः षोडशं भागं मण्डलस्थमधारयत् ॥ १ ॥ शातितैस्तेजसो भागैर्दशभिः पञ्चभिस्तथा ॥ अतीवकान्तिमच्चारु भानोरासीत्तदा वपुः ॥ २ ॥

प्रकार संपूर्ण जगत्के कारणरूपी, त्रिभुवनको पवित्र करनेवाले, तेजस्वरूप, इस अखिल जगत्के प्रदीपतुल्य विश्वकर्मा (विश्वस्रष्टा) रविदेवको मैं सदा प्रणाम करताहूं ॥ ११ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां सूर्यस्तवनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–विश्वकर्माने इस प्रकार दिवस्पति सूर्यकी स्तुति करके उनके तेजका सोलहवां भाग मण्डलमें रक्खा ॥ १ ॥ तिस काल तेजके पन्द्रह भाग निकल जानेसे सूर्यका कलेवर अतीव सुन्दर और कान्तियुक्त हुआ था ॥ २ ॥

सूर्यके निकलेहुए तेजद्वारा शत्रुओंके विनाशार्थ विष्णुका चक्र, शिवका शूल, कुबेरकी पालकी ॥ ३ ॥ यमका दण्ड, कार्तिकेयकी शक्ति और अन्यान्य देवताओंके सब प्रदीप्त अस्त्र विश्वकर्माने निर्माण किये थे ॥ ४ ॥ इस प्रकार मार्त्तण्ड क्षीणतेज होकर शोभा पानेलगे और शत्रुओंके नाशके निमित्त उनका शरीर मनोहर होगया ॥ ५ ॥ और अत्यन्त तीव्रतारहित तेज द्वारा समस्त अंगोंसे युक्त शोभायमान शरीर धारण किया और फिर समाधिस्थ होकर अपनी भार्याको घोडीके रूपमें देखा ॥ ६ ॥ कि, वह उत्तरकुरुदेशमें सब भूतोंसे अधर्षित होकर अत्यन्त नियमसहित तप करतीहै तदनन्तर भानु उत्तरकुरुदेशमें जाकर अश्वरूप ग्रहणपूर्वक उसके निकट गये ॥ ७ ॥ तब वडवाकृति संज्ञा उनको आताहुआ देखकर पराये पुरुषकी शंकासे पीठकी

शातितं चास्य यत्तेजस्तेन चक्रं विनिर्मितम् ॥ विष्णोः शूलं च शर्वस्य शिबिका धनदस्य च ॥ ३ ॥ दंडः प्रेतपतेः शक्तिर्देवसेनापतेस्तथा ॥ अन्येषां चैव देवानामायुधानि स विश्वकृत् ॥ ४ ॥ चकार तेजसा भानोर्भासुराण्यरिशान्तये ॥ इति शातिततेजाः स शुशुभे नातितेजसा ॥ ५ ॥ वपुर्दधार मार्त्तण्डः सर्वावयवशोभनम् ॥ स ददर्श समाधिस्थः स्वां भार्यां वडवाकृतिम् ॥६ ॥ अधृष्यां सर्वभूतानां तपसा नियमेन च ॥ उत्तरांश्च कुरून्गत्वा भूत्वाऽश्वो भानुरागमत् ॥ ७ ॥ सा च दृष्ट्वा तमायान्तं परपुंसो विशङ्कया ॥ जगाम संमुखे तस्य पृष्ठरक्षणतत्परा ॥ ८ ॥ ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्र समेतयोः ॥ वडवायां च तत्तेजो नासिकाभ्यां विवस्वतः ॥ ९ ॥ देवौ तत्र समुत्पन्नावश्विनौ भिषजां वरौ ॥ नासत्यदस्रौ तनयावश्विवक्राद्विनिर्गतौ ॥ १० ॥ मार्त्तण्डस्य सुतावेतावश्वरूपधरस्य हि ॥ रेतसोऽन्ते च रेवन्तः खड्गी धन्वी तनुत्रधृक् ॥ ११ ॥ अश्वारूढः समद्भूतो बाणतूणसमन्वितः ॥ ततः स्वरूपममलं दर्शयामास भानुमान् ॥१२॥

रक्षाके लिये सावधान होकर उनके सन्मुख गई ॥ ८ ॥ तब समीपस्थ दोनोंकी नासिका संयुक्त होनेसे विवस्वान्‌का तेज नासिकायुगलद्वारा घोडीके गर्भमें प्रविष्ट होनेपर ॥ ९ ॥ उससे भिषक्श्रेष्ठ दो अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए और अश्वके मुखसे निकले हुए ' नासत्य ' एवं ' दस्र ' यह दोनों ॥ १० ॥ अश्वरूपधारी मार्त्तण्डकेही पुत्र हैं वीर्यके शेषभागसे वर्मयुक्त शरीर खड्गधारी धनुष धारी, घोडे पर चढे बाण और तरकस संयुक्त रेवन्त उत्पन्न हुए । अनन्तर अंशुमाली सूर्यने अपना निर्मलरूप दिखाया ॥ ११ ॥ १२ ॥

उनका यह शान्त स्वरूप देखनेसे परम प्रसन्न हो संज्ञानेभी अपना स्वरूप धारण करलिया । तब वारिशोषक भास्कर प्रीतिमती अपनी भार्याको अपने घर ले आये । जो संज्ञाके ज्येष्ठ पुत्र थे, वह वैवस्वत मनु हुए ॥ १३ ॥ १४ ॥ और दूसरे पुत्र यम शाप एवं अनुग्रहके कारण धर्मदृष्टि हुएथे । यम उस शापके हेतु अत्यन्त व्यथित होकर ॥ १५ ॥ धर्माचरणमें प्रवृत्त हुए थे, इस कारण वह धर्मराजके नामसे कीर्त्तित हुए हैं, कृमि तुम्हारे पैरसे मांसग्रहण करके पृथ्वीतलमें ॥ १६ ॥ पतित होंगे, उनके पिताने इस प्रकार शापान्त किया था । यम धर्मदृष्टि होकर शत्रुमित्रमें समान व्यवहार करते थे ॥ १७॥ इस का-

तस्य शान्तं समालोक्य सा रूपं मुदमाददे ॥ स्वरूपधारिणीं चेमां स निनाय निजालयम् ॥ १३॥ संज्ञां भार्यां प्रीतिमतीं भास्करो वारितस्करः ॥ ततः पूर्वसुतो योऽस्याः सोऽभूद्वैवस्वतो मनुः ॥ १४ ॥ द्वितीयश्च यमः शापाद्धर्मदृष्टिरनुग्रहात् ॥ यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः ॥ १५ ॥ धर्मोऽभिरोचते यस्माद्धर्मराजस्ततः स्मृतः ॥ कृमयो मांसमादाय पादतस्ते महीतलम् ॥ १६ ॥ पतिष्यन्तीति शापान्तं तस्य चक्रे पिता स्वयम् ॥ धर्मदृष्टिर्यतश्चासौ समो मित्रे तथाऽहिते ॥ १७॥ ततो नियोगे तं याम्ये चकार तिमिरापहः ॥ तस्मै ददौ पिता विप्र भगवाँल्लोकपालताम् ॥ १८॥ पितॄणामाधिपत्यं च परितुष्टो दिवाकरः ॥ यमुनां च नदीं चक्रे कालिंदान्तरवाहिनीम् ॥ १९॥ अश्विनौ देवभिषजौ कृतौ पित्रा महात्मना ॥ गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तो विनियोजितः ॥ २० ॥ एवमप्याह च ततो भवगवाँल्लोकभावितः ॥ त्वमप्यशेषलोकस्य पूज्यो वत्स भविष्यसि ॥ २१ ॥ अरण्यादिमहादाववैरिदस्युभयेषु च ॥ त्वां स्मरिष्यन्ति ये मर्त्या मोक्ष्यन्ते ते महापदः ॥ २२ ॥

रण सूर्यने उनको याम्य अधिकारमें नियुक्त किया । हे विप्र ! भगवान् दिवाकरने परितुष्ट होकर उनको लोकपालत्व ॥ १८ ॥ और पितरोंका आधिपत्यभी प्रदान किया । पिताने यमुनाको कलिन्ददेशवाहिनी नदी किया ॥ १९ ॥ और उन्हीं महात्मा पिताने दोनों अश्विनीकुमारोंको देवताओंका वैद्य किया । रेवन्त गुह्यकगणोंके आधिपत्यमें नियुक्त हुए ॥ २० ॥ और भूतभावन भगवान्‌ने उनसे यहभी कहा कि, हे वत्स ! तुम अशेषलोकोंके पूज्य होंगे ॥ २१ ॥ मनुष्यगण वन, दावानल, शत्रु और चोरोंके भयसे भीत होकर यदि तुमको स्मरण करेंगे, तो तुम उन सब महाविपद्‌से छुडाओगे ॥ २२ ॥

और मनुष्योंके पूजा करनेपर उनके प्रति संतुष्ट होकर उनको मंगल, सुबुद्धि, सुख, राज्य, आरोग्य, कीर्ति और उन्नति प्रदान करोगे ॥ २३ ॥ छायासंज्ञाके महायशवान् सावर्णनामक पुत्र भावी कालमें सावर्णिकनामसे आठवें मनु होंगे ॥ २४ ॥ इस समयभी वह मेरुपृष्ठपर घोर तपस्या करते हैं उनके भ्राता शनैश्चर आदित्यकी आज्ञासे ग्रह हुए हैं ॥ २५ ॥ हे द्विजोत्तम ! आदित्यकी युवती कन्या लोकपावनी यमुना नदियोंमें श्रेष्ठ हुई है ॥ २६ ॥ जो ज्येष्ठपुत्र वैवस्वत मनु हैं, इस समय जिनकी सृष्टि चलती है, उनके वंशका विस्तार पीछे वर्णन करूंगा ॥ २७ ॥ इन सूर्यपुत्र देवताओंके जन्मकी कथा और

क्षेमं बुद्धिं सुखं राज्यमारोग्यं कीर्तिमुन्नतिम् ॥ नराणां परितुष्टस्त्वं पूजितः संप्रदास्यसि ॥२३॥ छायासंज्ञासुतश्चापि सावर्णिः सुमहायशाः ॥ भाव्यः सोऽनागते काले मनुः सावर्णिकोऽष्टमः ॥ २४॥ मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरति प्रभुः ॥ भ्राता शनैश्चरस्तस्य ग्रहोऽभूच्छासनाद्रवेः ॥ २५ ॥ यवीयसी तु या कन्याऽऽदित्यस्याभूद्द्विजोत्तम ॥ अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा तपती लोकपावनी ॥२६॥ यस्तु ज्येष्ठो महाभागः सर्गो यस्येह साम्प्रतम् ॥ विस्तरं तस्य वक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥२७॥ इदं यो जन्म देवानां शृणुयाद्वा पठेत वा ॥ विवस्वतस्तनूजानां रवेर्माहात्म्यमेव च ॥२८॥ आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महायशः ॥ अहोरात्रकृतं पापमेतच्छ्रमयते श्रुतम् ॥ माहात्म्यमादिदेवस्य मार्तण्डस्य महात्मनः ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रवेर्माहात्म्यवर्णनं नाम पंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ भगवन्कथितः सम्यग्भानोः सन्ततिसंभवः ॥ माहात्म्यमादिदेवस्य स्वरूपं चातिविस्तरात् ॥ १ ॥

रविका माहात्म्य जो पुरुष सुनते हैं वा पढते हैं ॥ २८ ॥ वह उपस्थित विपद्से छूटकर महायशको प्राप्त होतेहैं और आदिदेव महात्मा मार्तंडका माहात्म्य सुननेसे अहोरात्रके किये संपूर्ण पाप नष्ट होते हैं ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रवेर्माहात्म्यवर्णनं नाम पंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ क्रौष्टुकिने कहा–हे भगवन् ! आपने भानुकी सन्ततिका होना और उन आदिदेवका माहात्म्य तथा स्वरूप विस्तारपूर्वक भलीभाँति वर्णन किया ॥ १ ॥

किन्तु हे मुनिसत्तम ! भास्करके सम्यक् माहात्म्यका वृत्तान्त फिर सुननेकी इच्छा करताहूं उसको आप प्रसन्न होकर वर्णन कीजिये ॥ २॥ मार्कण्डेयजी बोले—आदिदेव विवस्वान्‌ने पूर्वकालमें जनोंके द्वारा आराधित होकर जो जो संपादन कियाथा, वह समस्त माहात्म्यका विषय तुमसे कहताहूं ॥ ३ ॥ दमके पुत्र विख्यात राज्यवर्द्धन राजा होकर सम्यक् प्रकारसे पृथ्वीका पालन करते थे ॥४॥ हे विप्र ! उन महात्माके स्वधर्मपूर्वक प्रजापालन करनेपर उस समय राष्ट्र, धन, जनसे नित्य वृद्धिको प्राप्त हुआ था ॥ ५ ॥ और उनके राजा होनेपर अन्यान्य राजागण, समग्र पृथ्वी और पौरजनगण निर्भय होकर

भूयोऽपि भास्वतः सम्यङ्माहात्म्यं मुनिसत्तम ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहं तन्मे प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ श्रूयतामादिदेवस्य माहात्म्यं कथयामि ते ॥ विवस्वतो यच्चकार पूर्वमाराधितो जनैः ॥ ३ ॥ दमस्य पुत्रो विख्यातो राजाभूद्राज्यवर्धनः ॥ स सम्यक्पालनं चक्रे पृथिव्या पृथिवीपतिः ॥ ४ ॥ धर्मतः पाल्यमानं तु तेन राष्ट्रं महात्मना ॥ ववृधेऽनुदिनं विप्र जनेन च धनेन च ॥५॥ हृष्टपुष्टमतीवासीत्तस्मिन्राजन्यशेषतः ॥ निर्भयः सकलश्चोर्व्यां पौरजानपदो जनः ॥ ६ ॥ नोपसर्गो न च व्याधिर्न च व्यालोद्भवं भयम् ॥ न चावृष्टिभयं तत्र दमपुत्रे महीपतौ ॥ ७ ॥ स ईजे च महायज्ञैर्ददौ दानानि चार्थिनाम् ॥ सुधर्मस्याविरोधेन बुभुजे विषयानपि ॥ ८ ॥ तस्यैवं कुर्वतो राज्यं सम्यक्पालयतः प्रजाः ॥ सप्त वर्षसहस्राणि जग्मुरेकमहर्यथा ॥ ९॥ विदूरथस्य तनया दाक्षिणात्यस्य भूभृतः ॥ तस्य पत्नी बभूवाथ मानिनी नाम मानिनी ॥१०॥ कदाचित्तस्य सा सुभ्रूः शिरसोऽभ्यञ्जनादृता ॥ पश्यतो राजलोकस्य मुमोचाश्रूणि मानिनी ॥११॥

अत्यन्त हृष्ट पुष्ट हुए थे ॥ ६ ॥ दमपुत्र महीपति राज्यवर्द्धनके शासनकालमें कोई उपसर्ग, व्याधि, सर्पादि हिंसकजन्तुका भय वा अवृष्टिका भय नहीं था ॥ ७ ॥ वह महामहायज्ञकार्यमें अर्थिगणोंको दान करके अति धर्मके सहित विषयोंको भोगते थे ॥ ८ ॥ इस प्रकार राज्यकार्य और सम्यक् प्रकार प्रजापालन करके उन्होंने एक दिनके समान सात हजार वर्ष बिताये थे ॥ ९ ॥ विदूरथनामक दक्षिणदेशके अधिपतिकी मानिनी नामक कन्या उनकी पत्नी थी ॥ १० ॥ एक समय सुभ्रू मानिनीने राजपुरुषोंके सामने राजाके मस्तकमें तेल मलते मलते आंसू गिराया ॥ ११ ॥

क्रमानुसार वह आंसू राजाके गात्रमें गिरा, तब राज्यवर्द्धनने मानिनीको अश्रुपूर्णनेत्र देखकर इसका वृत्तान्त पूछा ॥ १२ ॥ किन्तु वह कुछभी उत्तर न देकर केवल आंसू गिरातीहुई निःशब्द भावसे रोनेलगी । यह देखकर राज्यवर्द्धनने फिर मानिनीसे पूछा यह क्या ? तुम क्यों रोतीहो ? ॥ १३ ॥ मनस्विनीने स्वामीके इस प्रकार पूछनेपर ' कुछ नहीं ' केवल मात्र यह उत्तर दिया ॥१४॥ राजाने उस सुमध्यमासे बहुतही पूछा परंतु फिर उसने राज्यवर्धनसे कुछ न कहा, राजाने उस मानिनीसे फिर पूछा कि, यह क्या है जब राजाने बहुतही पूछा तब भामिनीने राजाको केशोंके मध्यमें एक श्वेतबाल

तदश्रुबिन्दवो गात्रे यदा तस्य महीपतेः ॥ तदा वीक्ष्याश्रुवदनां तामपृच्छत मानिनीम् ॥१२॥ निःशब्दमश्रुमोक्षेण रुदन्तीं तां विलोक्य वै ॥ किमेतदिति पप्रच्छ मानिनीं राज्यवर्धनः ॥ १३ ॥ पृष्टा सा तु ततस्तेन भर्त्रा प्राह मनस्विनी ॥ न किंचिदिति तां भूयः पप्रच्छ स महीपतिः ॥१४॥ बहुशः पृच्छतस्तस्य भूभृतः सा सुमध्यमा ॥ (न किंचिदिति होवाच सा भूयो राज्यवर्धनम् ॥ किमेतदिति पप्रच्छ मानिनीं पार्थिवः पुनः ॥ बहुशः प्रेरिता तेन सा भर्त्रा तत्र भामिनी ॥) दर्शयामास पलितं केशभारान्तरोद्भवम् ॥ १५ ॥ एतत्पश्येति भूपाल किमन्यन्मन्युकारणम् ॥ ममातिमन्दभाग्याया जहासाथ नृपस्ततः ॥१६॥ स विहस्याह तां पत्नीं शृण्वतां सर्वभूभृताम् ॥ पौराणां च महीपाला ये तत्रासन्समावृताः ॥१७॥ शोकेनालं विशालाक्षि रोदितव्यं न ते शुभे ॥ जन्मर्द्धिपरिणामाद्या विकाराः सर्वजन्तुषु ॥१८॥ अधीताः सकला वेदा इष्टा यज्ञाः सहस्रशः ॥ दत्तं द्विजानां पुत्राश्च समुत्पन्ना वरानने ॥ १९ ॥

दिखाया ॥ १५ ॥ हे राजन् ! इसको देखो क्रोधका कारण नहीं है यह मुझ मन्दभागिनीका भाग्य है यह सुनकर राजाको बडी हँसी आई ॥ १६ ॥ वह हँसते हँसते आयेहुए राजगण और पौरगणोंके सामने पत्नीसे कहने लगे ॥ १७ ॥ हे विशालाक्षि ! हे कल्याणि ! रोदन मत करो । समस्त जन्तुओंमेंही जन्म वृद्धि और परिणामादि विकार दिखाई देते हैं सुतरां इसके लिये शोक करना निष्प्रयोजन है ॥ १८ ॥ हे वरानने ! मैंने संपूर्ण वेद अध्ययन सहस्र सहस्रयज्ञ संपादन ब्राह्मणोंके अर्थादि दान पुत्रोत्पादन ॥ १९ ॥

तुम्हारे संग मनुष्योंको अतिदुर्लभ समस्त भोगने योग्य विषय उपभोग सम्यक् प्रकार पृथ्वीका पालन न्यायपूर्वक युद्धानुष्ठान ॥ २० ॥ और प्रियमित्रोंके सहित हास्य परिहास तथा वनविहार आदि अनेक कार्य कियेहैं. हे भद्रे ! ऐसा क्या कार्य नहीं किया है, जो तुम मेरा पलित (पका केश) देखकर भीत होती हो ॥ २१ ॥ हे शुभे ! मेरे केश पलित हों अर्थात् पक जाँय, वलि प्रकटित हों और शरीर शिथिलताको प्राप्त हो इससे कुछ हानि नहीं है क्योंकि हे मानिनि ! मैं इस समय कृतकृत्य हुआहूं ॥ २२ ॥ हे भद्रे ! मेरे मस्तकमें जो पकाहुआ केश देखा है, मैं वनाश्रमका आश्रय करके उसकी चिकित्सा करूंगा ॥ २३ ॥ बालकपनमें बालक्रीडा, तथा कौमार और यौवनमें भी उसके योग्य कार्य (विद्याभ्यास विषयभोगादि) संपादन करके वृद्धावस्थामें

भुक्ता भोगास्त्वया सार्द्धं ये मर्त्यैरतिदुर्लभाः ॥ सम्यक्च पालिता पृथ्वी शौर्यं युद्धेष्वनुष्ठितम् ॥ २० ॥ मित्रैः सहेष्टैर्हसितं विहृतं च वनान्तरे ॥ किमन्यन्न कृतं भद्रे पलितेभ्यो बिभेषि यत् ॥ २१ ॥ भवन्तु केशाः पलिता वलयः सन्तु मे शुभे ॥ शैथिल्यमेतु मे कायः कृतकृत्योऽस्मि मानिनि ॥ २२ ॥ मूर्ध्नि यद्दर्शितं भद्रे भवत्या पलितं मम ॥ चिकित्सामेव तस्याहं करोमि वनसंश्रयात् ॥ २३ ॥ बाल्ये बालक्रियापूर्वं तद्वत्कौमारके च या ॥ यौवने चापि या योग्या वार्द्धके वनसंश्रया ॥ २४॥ एवं मत्पूर्वजैर्भद्रे कृतं त्वत्पूर्वजैश्च यत् ॥ अतो न तेऽश्रुपातस्य किंचित्पश्यामि कारणम् ॥ २५ ॥ अलं ते मन्युना भद्रे नन्वभ्युदयकारि मे ॥ दर्शनं पलितस्यास्य मा रोदीर्निष्प्रयोजनम् ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ ततः प्रणम्य तं भूपाः पौराश्चैव समीपगाः ॥ साम्ना प्रोचुर्महीपाला महर्षे राज्यवर्धनम् ॥२७॥ न रोदितव्यमनया तव पत्न्या नराधिप ॥ रोदितव्यमिहास्माभिरथवा सर्वजन्तुभिः ॥ २८ ॥

वनकाही आश्रय करना उचित है ॥२४॥ हे भद्रे ! मेरे पूर्वपुरुषगण और उनकेभी पूर्वपूर्व पुरुषगण इसी प्रकार करते आये हैं, अतएव मैं तुम्हारे अश्रुपातका कोईभी कारण नहीं देखताहूं हे भद्रे ! शोक परित्याग करो ॥ २५ ॥ मेरा यह पलित केश दीखना भाग्योदयकारी है, अतएव निष्प्रयोजन रोदन मत करो ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे महर्षे ! अनन्तर समीपस्थ भूपाल और पौरगण राजा राज्यवर्द्धनको प्रणाम करके विनयपूर्वक कहने लगे ॥ २७॥ हे नराधिप ! आपकी पत्नीका रोदन अनावश्यक है किन्तु हमारा अथवा संपूर्ण जन्तुओंकाही इस समय रोदन काल उपस्थित हुआहै ॥ २८ ॥

हे नाथ ! आप हमारे प्रतिपालक हैं, हे नृप ! आपने जो वनवास आश्रय करनेकी बात कही इससे हमारे प्राण निकले जाते हैं ॥ २९ ॥ यदि आप वनमें जाँयगे, तो हमभी सब वहाँ चलेंगे । हे नाथ ! आपके वनवासी होनेपर पृथ्वीवासियोंकी निःसंदेह श्रौतस्मार्त्त अशेष क्रियाकी हानि होगी ॥ ३० ॥ इसमें यदि धर्मकी बाधा विचारते हो तो इस संकल्पको परित्याग कीजिये ॥ ३१ ॥ हे नराधिप ! आपने सात हजार वर्ष इस पृथ्वीका पालन किया है, उससे कैसे महापुण्यका उदय हुआ है, देखिये ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! आप वनमें वास करके जो तप करेंगे, वह इस पृथ्वीपालनके षोडश भागके समान नहीं

त्वं ब्रवीषि यथा नाथ वनवासाश्रितं वचः ॥ पतन्ति तेन नः प्राणा लालितानां त्वया नृप ॥ २९ ॥ सर्वे यास्यामहे भूप यदि याति भवान्वनम् ॥ ततोऽशेषक्रियाहानिः सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥ ३० ॥ भविष्यति न सन्देहस्त्वयि नाथ वनाश्रये ॥ सा च धर्मोपघाताय यदि तत्प्रविमुच्यताम् ॥ ३१ ॥ सप्त वर्षसहस्राणि त्वयेयं पालिता मही ॥ तत्समुत्थं महापुण्यमालोकय नराधिप ॥ ३२ ॥ वने वसन्महाराज त्वं करिष्यसि यत्तपः ॥ तन्महीपालनस्यास्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ सप्त वर्षसहस्राणि मयेयं पालिता मही ॥ इदानीं वनवासस्य मम कालोऽयमागतः ॥ ३४ ॥ ममापत्यानि जातानि दृष्टा मेऽपत्यसन्ततीः ॥ स्वल्पैरेवमहोभिर्मे ह्यन्तको न सहिष्यति ॥ ३५ ॥ यदेतत्पलितं मूर्ध्नि तद्विजानीत नागराः ॥ दूतभूतमनार्यस्य मृत्योरत्युग्रकर्मणः ॥ ३६ ॥ सोऽहं राज्ये सुतं कृत्वा भोगांस्त्यक्त्वा वनाश्रयः ॥ तपस्तप्स्ये समायान्ति न यावद्यमसैनिकाः ॥ ३७ ॥

होगा ॥ ३३ ॥ राजाने कहा—मैंने सात हजार वर्ष इस पृथ्वीका पालन किया है, अब मेरे वनवासकाही उपयुक्त समय उपस्थित है ॥ ३४ ॥ मेरे पुत्र उत्पन्न होगये हैं, अब उन सब पुत्रोंकी सन्तानको देखकर अन्तक (यम) अल्पकालके लिये भी सहन नहीं करेंगे अर्थात् शीघ्रही आयु शेष होगी ॥ ३५ ॥ हे नगरवासियो ! मेरे मस्तकमें जो पलित केश देखा है, इसीको उग्रकर्मा अनार्य मृत्युका दूत जानना चाहिये ॥ ३६ ॥ अतएव मैं पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करके भोगपरित्यागपूर्वक वनवासी हो यमसेनाके आगमनकालपर्यन्त तपस्या करूंगा ॥ ३७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर पृथ्वीपतिने वन जानेमें स्थिर संकल्प हो ज्योतिषियोंसे पुत्रके राज्याभिषेकका दिन लग्न पूछा ॥ ३८ ॥ ज्योतिषीगण शास्त्रदर्शी होकरभी राजाका वचन सुननेसे व्याकुलचित्तताके कारण दिन लग्न होरा इत्यादिके देखनेमें असमर्थ होकर ॥ ३९ ॥ बाष्पगद्गद वाणीके द्वारा राजासे कहनेलगे हे नृप ! आपका वचन सुननेसे हमारा ज्ञान नष्ट होगयाहै ॥ ४० ॥ हे मुने ! फिर क्रमानुसार अन्यान्य नगर अधीन हुए राष्ट्र और उस राजधानीसे अनेकानेक वृद्ध द्विजश्रेष्ठ गण ॥ ४१ ॥ आय वनवासेच्छुक राजासे मस्तक कम्पायमान करतेहुए कहनेलगे ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! प्रसन्न हूजिये ।

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो यियासुः स वनं दैवज्ञानवनीपतिः ॥ पुत्रराज्याऽभिषेकाय दिनलग्नान्यपृच्छत ॥ ३८ ॥ श्रुत्वा च ते तु नृपतेर्वचो व्याकुलचेतसः ॥ दिनं लग्नं च होराश्च न विदुः शास्त्रदृष्टयः ॥ ३९ ॥ ऊचुश्च तं महीपालं दैवज्ञा बाष्पगद्गदम् ॥ ज्ञानानि नः प्रणष्टानि श्रुत्वैतत्ते वचो नृप ॥ ४० ॥ ततोऽन्यनगरेभ्यश्च भृत्यै राष्ट्रेभ्य एव च ॥ ततस्तस्माच्च नगरात्प्राचुर्येणाभ्युपागमन् ॥ ४१ ॥ समुत्पत्य महीपालं तं यियासुं मुने वनम् ॥ प्रकम्पिशिरसो भूत्वा प्रोचुर्ब्राह्मणसत्तमाः ॥ ४२ ॥ प्रसीद पाहि नो राजन्पालिताः स्म यथा पुरा ॥ सीदिष्यत्यखिलो लोकस्त्वयि भूप वनाश्रये ॥ ४३ ॥ त्वं कुरुष्व तथा राजन्यथा नो सीदते जगत् ॥ यावज्जीवामहे वीर स्वल्पकालमिमे वयम् ॥ नेच्छामश्च भवच्छून्यं द्रष्टुं सिंहासनं विभो ॥ ४४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्येवं तैस्तथान्यैश्च द्विजैः पौरपुरःसरैः ॥ भूपैर्भृत्यैरमात्यैश्च राजा प्रोक्तः पुनः पुनः ॥ ४५ ॥ वनवासविनिर्बन्धं नोपसंहरते यदा ॥ क्षमिष्यत्यन्तको नेति ददौ स च तदोत्तरम् ॥ ४६ ॥

अनुग्रहपूर्वक पूर्वके समान हमारा पालन कीजिये । हे भूपाल ! आपके वनगमन करनेसे समस्त मनुष्य अत्यन्त दुःखी होजायँगे ॥ ४३ ॥ अतएव हे राजन् ! जिससे संपूर्ण जगत् दुःखी न हो, आप वही कीजिये हे वीर ! हम और केवल थोडे काल जियेंगे इसके बीचमें तुम्हारे शून्य सिंहासनको देखनेकी अभिलाषा नहीं करते ॥ ४४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—इस प्रकार उन सब तथा अन्यान्य ब्राह्मणगण पौरगण भूपालगण अमात्य और भृत्यगणके वारंवार अनुरोध करनेपरभी ॥ ४५ ॥ उन्होंने वनवासकी कामना परित्याग न करके 'क्षम कभी क्षमा न करेंगे' केवल यही उत्तर दिया ॥ ४६ ॥

तब ब्राह्मण, पौरवृद्ध, अमात्य और भृत्यगण मिलित होकर परामर्श करने लगे कि, " इस समय क्या कियाजाय ? " ॥ ४७ ॥ हे विप्र ! धार्मिकप्रवर राजाके प्रति अनुरागी उन सब ब्राह्मणादिकोंने परामर्शमें यही स्थिर किया कि ॥ ४८ ॥ हम सम्यक् प्रकार ध्यानमें रत होकर तपस्याके द्वारा भास्करकी आराधना करें और उनसे इन महीपतिकी आयु माँगे ॥ ४९ ॥ अनन्तर वह सब इस कार्यमें एक निश्चय हो कोई कोई घरमें अर्घ्योपचारादि उपहारद्वारा भास्करकी पूजा करने लगे ॥ ५० ॥ कोई मौनी होकर ऋक् मंत्रके जपद्वारा, कोई यजुर्वेदानुयायी और कोई सामानुयायी जपद्वारा रविका संतोष साधन

ततोऽमात्याश्च भूपाश्च पौरवृद्धास्तथा द्विजाः ॥ समेत्य मन्त्रयामासुः किमत्र क्रियतामिति ॥ ४७ ॥ तेषां मन्त्रयतां विप्र निश्चयोऽयमजायत ॥ अनुरागवतां तत्र महीपालेऽतिधार्मिके ॥ ४८ ॥ सम्यग्ध्यानपरा भूत्वा प्रार्थयामः समाहिताः ॥ तपसाराध्य भास्वन्तमायुरस्य महीपतेः ॥ ४९ ॥ तत्रैकनिश्चयाः कार्ये केचिद्गेहे च भास्करम् ॥ सम्यगर्घोपचाराद्यैरुपहारैरपूजयन् ॥ ५० ॥ अपरे मौनिनो भूत्वा ऋग्जापेन तथाऽपरे ॥ यजुषामथ साम्नां च तोषयाञ्चक्रिरे रविम् ॥ ५१ ॥ अपरे च निराहारा नदीपुलिनशायिनः ॥ तपांसि चक्रुरिच्छंतो भास्कराराधनं द्विजाः ॥ ५२ ॥ अग्निहोत्रपराश्चान्ये रविसूक्तान्यहर्निशम् ॥ जेपुस्तत्रापरे तस्थुर्भास्करे न्यस्तदृष्टयः ॥ ५३ ॥ इत्येवमतिनिर्बन्धं भास्कराराधनं प्रति ॥ बहुप्रकारं चक्रुस्ते तं तं विधिमुपाश्रिताः ॥ ५४ ॥ तथा तु यततां तेषां भास्कराराधनं प्रति ॥ सुदामा नाम गन्धर्व उपगम्येदमब्रवीत् ॥५५॥ यद्याराधनमिष्टं वो भास्करस्य द्विजातयः ॥ तदेतत्क्रियतां येन भानुः प्रीतिमुपैष्यति ॥५६॥

करने लगे ॥ ५१ ॥ अपर कोई नदीके पुलिनमें निराहार तपस्याचरण करके परिश्रमसहित भास्करकी आराधना करने लगे ॥ ५२ ॥ कोई अग्निहोत्रमें तत्पर हुए दिनरात रविसूक्तका जप करने लगे और कोई भास्करकी ओर दृष्टि लगाकर खडे रहे ॥५३॥ इस भाँति वह उस उस प्रसिद्ध विधिके अनुसार अनेक प्रकारसे सूर्यकी आराधनामें दृढसंकल्प रहे ॥ ५४ ॥ उनका इस प्रकार सूर्यकी आराधनामें अतिशय यत्न देख, सुदामा नामक गन्धर्वने वहां आनकर कहा ॥५६॥ हे ब्राह्मणो ! यदि भानुकी आराधना करनाही आपका अभीष्ट है, तो जिससे वह प्रसन्न हों, उसी कार्यके करनेकी चेष्टा करो ॥५६॥

कामरूप महापर्वतमें सिद्धोंके द्वारा सेवित 'गुहविशाल' नामक वनमें शीघ्र जाकर ॥ ५७ ॥ वहां सावधान चित्तसे भानुकी आराधना करो, इससे आपकी वांछित अभिलाषा सिद्ध होगी, क्योंकि इन सब कार्योंमें सिद्धक्षेत्रही अधिक फलदायक है ॥ ५८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विजोत्तम ! ब्राह्मणगण गन्धर्वके उक्त वचन सुनकर उस वनमें गये और वहां भगवान् भास्करका पवित्र मन्दिर देखा ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणादि सब वर्णोंनेही उस स्थानमें नियताहार अवलम्बनपूर्वक आलस्यरहित हो धूप और पुष्पादि उपहारद्वारा भास्करदेवकी पूजा करी ॥ ६० ॥ हे ब्रह्मन् ! अनुलेपन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, जप, होम

तस्माद्गुरुविशालाख्यं वनं सिद्धनिषेवितम् ॥ कामरूपे महाशैले गम्यतां तत्र वै लघु ॥ ५७ ॥ तस्मिन्नाराधनं भानोः क्रियतां सुसमाहितैः ॥ सिद्धक्षेत्रं हितं तत्र सर्वकामानवाप्स्यथ ॥ ५८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति ते तद्वचः श्रुत्वा गत्वा तत्काननं द्विजाः ॥ ददृशुर्भास्वतस्तत्र पुण्यमायतनं शुभम् ॥५९॥ तत्र ते नियताहारा वर्णा विप्रादयो द्विज ॥ धूपपुष्पोपहाराढ्यां पूजां चक्रुरतन्द्रिताः ॥६०॥ पुष्पानुलेपनाद्यैश्च धूपगन्धादिकैस्तथा ॥ जपहोमान्नदानाद्यैः पूजनं ते समाहिताः ॥ कुर्वन्तस्तुष्टुवुर्ब्रह्मन्विवस्वन्तं द्विजातयः ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ देवदानवयक्षाणां ग्रहाणां ज्योतिषामपि ॥ तेजसाभ्यधिकं देवं व्रजाम शरणं रविम् ॥ ६२ ॥ दिवि स्थितं च देवेशं द्योतयन्तं समन्ततः ॥ वसुधामन्तरिक्षं च व्याप्नुवन्तं मरीचिभिः ॥ ६३ ॥ आदित्यं भास्करं भानुं सवितारं दिवाकरम् ॥ पूषाणमर्यमाणं च स्वर्भानुं दीप्तदीधितिम् ॥ ६४ ॥ चतुर्युगान्तकालाग्निदुष्प्रेक्ष्यं प्रलयान्तगम् ॥ योगीश्वरमनन्तं च रक्तं पीतं सितासितम् ॥ ६५ ॥

और नैवेद्य इत्यादिके द्वारा सावधानचित्तसे पूजा करते करते ब्राह्मणगण सूर्यदेवकी स्तुति करने लगे ॥ ६१ ॥ ब्राह्मण बोले—देव, दानव, यक्ष और ज्योतिष्कग्रहोंमें अधिक तेजस्वी सूर्य देवकी हम शरणागत हुये हैं ॥ ६२ ॥ जो देवेश्वर आकाशमें स्थित होकर संपूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हैं, जो किरणोंसे वसुधा और अन्तरिक्षको व्याप्त कर रहेहैं ॥ ६३ ॥ जो भास्कर, सविता, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु, दीप्तदीधिति ॥ ६४ ॥ और योगीश्वर नामसे कथित हैं, जो चारों युगके अन्तमें दुर्निरीक्ष्य कालाग्निस्वरूप हैं जो अनन्त रक्त, पीत, श्वेत, कृष्ण हैं ॥ ६५ ॥

जो ऋषियोंके अग्निहोत्रकालमें यज्ञदेवाधिष्ठाता हैं, जो अक्षर आर परमगुह्य अति उत्तम मोक्षद्वारा ब्रह्मस्वरूप हैं जो एक वार जोडेहुए छन्दोरूप अश्वद्वारा आकाशगामी हैं जो उदयास्त गमनमें और सुमेरुकी प्रदक्षिणामें सदा नियुक्त हैं और ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ जो मिथ्या, सत्य, पुण्यतीर्थ और पृथक् प्रकारसे विश्वस्थितिस्वरूप हैं, उन्हीं अदितिके गर्भसे उत्पन्न अनन्त अचिन्त्य आदिदेव प्रभाकरका हमने आश्रय लिया है ॥ ६८ ॥ जो ब्रह्मा हैं, जो महादेव हैं, जो विष्णु हैं, जो प्रजापति हैं, जो वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र ॥ ६९ ॥ ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रादि, वनस्पति, वृक्ष और औषधीस्वरूप हैं

ऋषीणामग्निहोत्रेषु यज्ञदेवेष्ववास्थितम् ॥ व्रजाम शरणं देवं तेजोराशिं तमच्युतम् ॥ अक्षरं परमं गुह्यं मोक्षद्वारमनुत्तमम् ॥६६॥ छन्दोभिरश्वरूपैश्च सकृद्युक्तैर्विहङ्गमम् ॥ उदयास्तमन युक्तं सदा मेरोः प्रदक्षिणे ॥ ६७ ॥ अनृतं च ऋतं चैव पुण्यतीर्थं पृथग्विधम् ॥ विश्वस्थितिमचिन्त्यं च प्रपन्नाः स्म प्रभाकरम् ॥ ६८ ॥ यो ब्रह्मा यो महादेवो यो विष्णुर्यः प्रजापतिः ॥ वायुराकाशमापश्च पृथिवीगिरिसागराः ॥ ६९ ॥ ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्या वानस्पत्यं द्रुमौषधम् ॥ व्यक्ताव्यक्तेषु भूतेषु धर्माधर्मप्रवर्त्तकः ॥ ७० ॥ ब्राह्मी माहेश्वरी चैव वैष्णवी चैव ते तनुः ॥ त्रिधा यस्य स्वरूपं तु भानोर्भास्वान्प्रसीदतु ॥७१॥ यस्य सर्वमयस्येदमङ्गभूतं जगत्प्रभोः ॥ स नः प्रसीदतां भास्वाञ्जगतां यश्च जीवनम् ॥ ७२ ॥ यस्यैकमक्षरं रूपं प्रभामण्डलदुर्दृशम् ॥ द्वितीयमैन्दवं सौम्यं स नो भास्वान्प्रसीदतु ॥ ७३ ॥ ताभ्यां च तस्य रूपाभ्यामिदं विश्वं विनिर्मितम् ॥ अग्नीषोममयं भास्वान्स नो देवः प्रसीदतु ॥ ७४ ॥

जो व्यक्ताव्यक्त भूतगणोंके धर्माधर्मप्रवर्त्तक हैं ॥ ७० ॥ और ब्राह्मी, माहेश्वरी तथा वैष्णवी तनुभेदसे जिनका स्वरूप त्रिधा विभिन्न हुआ है, वह भास्कर हमारे प्रति प्रसन्न हों ॥७१ ॥ सब पदार्थही जिन अनादि जगत्प्रभुकी गोदीमें स्थित हैं और जो जगत्के जीवनस्वरूप हैं, वह भास्वान् हमारे प्रति प्रसन्न हों ॥७२ ॥ जिनका अद्वितीय प्रकाशमान प्रभामण्डल दुर्निरीक्ष्य है दिवाकर और सौम्य सुधाकर यह दो रूप हैं, वह भास्करदेव हमारे प्रति प्रसन्न हों ॥ ७३ ॥ जिनके उन प्रसिद्ध दो रूपोंसे यह अग्नीसोममय विश्व निर्मित हुआ है, वही भास्कर हमारे प्रति प्रसन्न हों ॥ ७४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार जब उन्होंने अत्यन्त भक्तिसहित तीन महीनेतक स्तवपाठपूर्वक पूजा करी तब भगवान् भास्कर सन्तुष्ट हुए ॥ ७५ ॥ और स्वयं दुर्निरीक्ष्य होकरभी उन्होंने मण्डलसे निकल अपने उदयकालीन मण्डलकी प्रभासे उनको दर्शन दिया ॥ ७६ ॥ तब उन मनुष्योंने उनका स्पष्टरूप देखनेसे पुलकित और भक्तिनम्र हो उन अनादि सविताको यह कहकर प्रणाम किया ॥ ७७ ॥ हे सहस्ररश्मे ! तुमको नमस्कार है तुम समस्त भूतके कारण और अखिल जगत्के पताकास्वरूप हो । हे अखिलयज्ञेश्वर ! तुम्हीं पूज्य, तुम्हीं सब यज्ञोंके आधार और योगविद् पुरुषोंके ध्यानका विषय हो, तुम हमारे प्रति प्रसन्न होओ ॥ ७८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां भानुस्तवो नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ मार्कण्डेयजी

मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्थं स्तुत्या तदा भक्त्या सम्यक्पूजाविधानतः ॥ तुतोष भगवान्भास्वांस्त्रिभिर्मासैर्द्विजोत्तम ॥ ७५ ॥ ततः स मण्डलादुद्यन्निजबिंबसमप्रभः ॥ अवतीर्य ददौ तेभ्यो दुर्दृशो दर्शनं रविः ॥ ७६ ॥ ततस्ते स्पष्टरूपं तं सवितारमजं जनाः ॥ पुलकोत्कम्पिनो विप्रा भक्तिनम्राः प्रणेमिरे ॥ ७७ ॥ नमो नमस्तेऽस्तु सहस्ररश्मे सर्वस्य हेतुस्त्वमशेषकेतुः ॥ पाता त्वमीड्योऽखिलयज्ञधाम ध्येयस्तथा योगविदां प्रसीद ॥ ७८ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे भानुस्तवो नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ ततः प्रसन्नो भगवान्भानुराहाखिलाञ्जनान् ॥ व्रियतां यदभिप्रेतं मत्तः प्राप्तुं द्विजादयः ॥ १ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ ततस्ते प्रणिपत्योचुर्विप्रक्षत्रादयो जनाः ॥ ससाध्वसमशीतांशुमवलोक्य पुरः स्थितम् ॥ २ ॥ प्रजा ऊचुः ॥ भगवन्यादि नो भक्त्या प्रसन्नस्तिमिरापह ॥ ३ ॥ दश वर्षसहस्राणि ततो नो जीवतांनृपः ॥ निरामयो जितारातिः सुकोशः स्थिरयौवनः ॥ ४ ॥

बोले—इसके पीछे भगवान् भानुने प्रसन्न होकर उन संपूर्ण जनोंसे कहा हे द्विजातिगण ! तुमने मुझसे जो प्राप्त करनेकी अभिलाषा की है, उसको मांगो ॥ १ ॥ तब द्विजातिप्रजागणोंने उष्णांशुको सन्मुख देख, भ्रमसहित प्रणाम कर उन वर देनेवाले जगदीश्वरसे कहा ॥ २ ॥ प्रजाने कहा—हे भगवन् ! हे तिमिरहारी ! यदि आप हमारी भक्तिसे प्रसन्न हुए हैं ॥ ३ ॥ तो हमारे राजा राज्यवर्द्धन निरामय रोगरहित विजितशत्रु पूर्णकोश और स्थिरयौवन होकर दश हजार वर्ष जीवित रहें ॥ ४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—हे महामुने ! भगवान् उस सब प्रजासे तथास्तु कहकर अन्तर्धान होगये । और वहभी वरलाभ करनेसे प्रसन्नचित्त हो राजाके समीप आये ॥ ५ ॥ हे द्विज ! सहस्रांशु सूर्यके समीप वरलाभ इत्यादि जो कुछ हुआ था ब्राह्मणोंने वह सब राजासे निवेदन किया ॥ ६ ॥ हे द्विज ! नरेन्द्र-पत्नी मानिनी यह सुनकर अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुई तथा परमहर्षसे शरीर पुलकित होगया किन्तु राजा उनसे कुछ न कहकर बहुतकालतक चिन्ता करते रहे ॥७॥ इसके उपरान्त मानिनीने प्रसन्न चित्त हो पतिसे कहा हे महीपाल ! सुवृद्ध आयुके द्वारा आप वृद्धिको प्राप्त हूजिये ॥८॥ हे द्विज! आनन्दचित्त मानिनीके द्वारा इस प्रकार सत्कारको प्राप्त होकरभी राजाने चिन्ताकुल चित्तसे कोई उत्तर नहीं दिया ॥९॥ तब मानिनी फिर नीचेको मुख किये चिन्ता-

मार्कण्डेय उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा जनान्भास्वानदृश्योऽभून्महामुने ॥ तेऽपि लब्धवरा हृष्टाः समाजग्मुर्जनेश्वरम् ॥ ५ ॥ यथा वृत्तं च ते तस्मै नरेन्द्राय न्यवेदयन् ॥ वरं लब्ध्वा सहस्रांशोः सकाशादखिलं द्विज ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा जहृषे तस्य सा पत्नी मानिनी द्विज ॥ (प्रहर्षं परमं याता हर्षोद्गततनूरुहा) ॥ स च राजा चिरं दध्यौ नाह किंचिच्च तं जनम् ॥७॥ ततः सा मानिनी भूपं हर्षापूरितमानसा ॥ दिष्ट्या-ऽऽयुषा महीपाल वर्द्धस्वेत्याह तं पतिम् ॥ ८ ॥ तथा तया मुदा भर्त्ता मानिन्याथ सभाजितः ॥ नाह किंचिन्महीपालश्चिन्ताजडमना द्विज ॥ ९ ॥ सा पुनः प्राह भर्त्तारं चिन्तयानमधोमुखम् ॥ कस्मान्न हर्षमभ्येषि परमाभ्युदये नृप ॥ १० ॥ दशवर्षसहस्राणि नीरुजः स्थिरयौवनः ॥ भावी त्वमद्यप्रभृति किं तथापि न हृष्यसे ॥ ११ ॥ किन्तु तत्कारणं ब्रूहि यच्चिन्ताकृष्टमानसः ॥ परमाभ्युदयेऽपि त्वं संप्राप्ते पृथिवीपते ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ कथमभ्युदयो भद्रे किं सभाजयसे च माम् ॥ प्राप्तो दुःखसहस्राणां किं सभाजनमिष्यते ॥१३॥

कुल भर्तासे कहने लगी । हे नृप ! आप ऐसे आनन्दके समयमेंभी किस निमित्त हर्षको प्राप्त नहीं होते ? ॥१०॥ आप रोगरहित और स्थिरयौवन होकर अबसे दश हजार वर्ष जीवित रहेंगे इसपरभी आप प्रसन्न क्यों नहीं होते ॥ ११ ॥ हे पृथ्वीपते ! ऐसे आनन्दकालके उपस्थित होनेपरभी किस निमित्त आप चिन्ताकुल होरहेहैं इसका कारण प्रकाश कीजिये ॥ १२ ॥ राजा बोले—हे भद्रे ! मेरा क्या भाग्योदय हुआ तुम क्यों मेरा सत्कार करतीहो ? सहस्रों दुःखके प्राप्त होनेमें क्या आनंद भोगूंगा ? ॥ १३ ॥

मैं अकेला दश हजार वर्ष जीवित रहूंगा किन्तु तुम नहीं रहोगी, सुतरां तुम्हारी विपत्तिमें क्या मुझको दुःख नहीं होगा ॥१४॥ पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और अन्यान्य प्रियबान्धवोंकी मृत्यु देखनेसे क्या मुझको अल्प दुःख होनेकी सम्भावना है ॥ १५॥ हे भद्रे! अत्यन्त भक्त, भृत्यगण और मित्रोंके मरनेपर मुझको सदा अपार दुःख अनुभव करना पडेगा ॥१६ ॥ जिन्होंने मेरे लियेही नसोंको सुखाकर तपस्या की है, उनकीभी मृत्यु होगी किन्तु मैं जीवित रहकर भोग सुख अनुभव करूंगा यह क्या मुझको धिक्कार नहीं है? ॥१७॥ हे वरारोहे! यह जो दश हजार वर्षकी परमायु है सो मुझको आपदा उप-

दशवर्षसहस्राणि जीविष्याम्यहमेककः ॥ न त्वं तव विपत्तौ मे किन्न दुःखं भविष्यति ॥ १४ ॥ पुत्रान्पौत्रान्प्रपौत्रांश्च तथान्यानिष्टबान्धवान् ॥ पश्यतो मे मृतान्दुःखं किमल्पं हि भविष्यति ॥ १५ ॥ भृत्येषु चातिभक्तेषु मित्रवर्गे तथा मृते ॥ भद्रे दुःखमपारं मे भविष्यति तु सन्ततम् ॥ १६ ॥ यैर्मदर्थं तपस्तप्तं कृशैर्धमनिसन्ततैः ॥ ते मरिष्यन्त्यहं भोगी जीविष्यामीति धिक्करम् ॥ १७ ॥ सेयमापद्वरारोहे प्राप्ता नाभ्युदयो मम ॥ कथं वा मन्यसे न त्वं यत्सभाजयसेऽद्य माम् ॥१८॥ मानिन्युवाच ॥ महाराज यथात्थ त्वं तथैतन्नात्र संशयः ॥ मया पौरैश्च दोषोऽयं प्रीत्या नालोकितस्तव ॥ १९ ॥ एवं गतेऽत्र किं कार्यं नरनाथ विचिन्त्यताम् ॥ नान्यथा भावि यत्प्राह प्रसन्नो भगवान्रविः ॥२०॥ राजोवाच ॥ उपकारः कृतः पौरैः प्रीत्या भृत्यैश्च यो मम ॥ कथं भोक्ष्याम्यहं भोगान्गत्वा तेषामनिष्कृतिम् ॥२१॥ सोऽहमद्यप्रभृत्यद्रिं गत्वा नियतमानसः ॥ (पौरलोकहितार्थं च तोषयिष्यामि भास्करम् ॥ यथा पौरा मम कृते बान्धवाश्च समन्ततः ॥ आराधनाय देवेशं तथाहमपि सांप्रतम्) ॥ तपस्तप्स्ये निराहारो भानोराराधनोद्यतः ॥ २२ ॥

स्थित हुई है, यह भाग्योदय नहीं है, तुम इस बातको विना विचारे क्यों मुझे हर्षित करतीहो? ॥१८॥ मानिनी बोली–हे महाराज! आपने जो कहा यह इसी प्रकार दुःखकर है, इसमें सन्देह नहीं मैंने तथा पौरवर्गने आपके प्रति प्रीतिसे यह दोष नहीं देखा ॥ १९ ॥ हे नरनाथ! ऐसा होनेपर अब क्या कर्तव्य है, सो विचारिये क्योंकि भगवान् रविने प्रसन्न होकर जो कहाहै वह मिथ्या होनेवाला नहीं है ॥ २० ॥ राजा बोले–पौर और भृत्यगणोंने प्रसन्नमन होकर मेरा जो उपकार किया है, मैं उससे विना निष्कृति लाभ किये किस प्रकार भोगोंका अनुभव करूं ॥ २१ ॥ सो मैं अब प्रभृति पर्वतपर

जाय दुष्कर तपस्या कर पुरवासियोंके हितके निमित्त दुष्कर तप करूंगा जैसे पुरवासी और बांधवोंने मेरे निमित्त आराधना की है वैसे मैंभी उनके निमित्त आराधना करूंगा सूर्यदेवके आराधनके निमित्त निराहार हो तप करूंगा ॥ २२ ॥ जिस प्रकार उनके प्रसादसे स्थिर यौवन और निरामय (रोगरहित) होकर मैं दश हजार वर्ष पर्यंत जीवित रहूंगा ॥ २३ ॥ हे वरानने ! उसी प्रकार मेरी समस्त प्रजा, भृत्य, तुम, कन्या, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और सुहृद्गणभी जीवित रहें । भगवान् रवि यदि इस प्रकार अनुग्रह प्रकाश करेंगे तो मैं प्रसन्नचित्तसे राज्यमें राजा होकर समस्त राज्यसुख भोग करूंगा॥ २४ ॥ २५ ॥ और यदि सूर्य ऐसा अनुग्रह नहीं करेंगे तो हे मानिनी ! जबतक मेरा प्राण नष्ट न होगा तबतक उसी पर्वतमें निराहार होकर तपस्या करूंगा ॥ २६ ॥

दशवर्षसहस्राणि यथाहं स्थिरयौवनः ॥ तस्य प्रसादाद्देवस्य जीविष्यामि निरामयः ॥ २३ ॥ तथा यदि प्रजाः सर्वा भृत्यास्त्वं च सुताश्च मे ॥ पुत्रा पौत्रा प्रपौत्राश्च सुहृदश्च वरानने ॥२४॥ जीवन्त्येतं प्रसादं च करोति भगवान्रविः ॥ ततोऽहं भविता राज्ये भोक्ष्ये भोगांस्तथा मुदा ॥ २५ ॥ न चेदेवं करोत्यर्कस्तदाद्रौ तत्र मानिनि ॥ तपस्तप्स्ये निराहारो यावज्जीवितसंक्षयः ॥२६॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्ता सा तदा तेन तथेत्याह नराधिपम् ॥ जगाम तेन च समं साऽपि तं धरणीधरम् ॥ २७ ॥ स तदायतनं गत्वा भार्यया सह पार्थिवः ॥ भानोराराधनं चक्रे शुश्रूषानिरतो द्विज ॥२८॥ निराहारा कृशा सा च यथासौ पृथिवीपतिः ॥ तेपे तपस्तथैवोग्रं शीतवातातपक्षमा ॥२९॥ तस्य पूजयतो भानुं तप्यतश्च तपो महत् ॥ साग्रे संवत्सरे याते ततः प्रीतो दिवाकरः ॥ ३०॥ समस्तभृत्यपौरादिपुत्राणां च कृते द्विज ॥ ददौ यथाभिलषितं वरं द्विजवरोत्तम ॥ ३१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—मानिनीने नराधिपका वचन ' तथास्तु ' कहकर स्वीकार किया और फिर पतिके संग पूर्वोक्त पर्वतमें चलीगई ॥२७ ॥ हे द्विज ! राजा स्त्रीसहित पूर्वोल्लिखित मन्दिरमें जाय भास्करकी सेवामें तत्पर हो भानुकी आराधना करने लगे ॥२८॥ नरपति निराहारके कारण जिस प्रकार दिन दिन कृश होतेथे, रानी मानिनीभी उसी प्रकार क्षीणशरीरमें शीत वायु गरमी इत्यादिका कष्ट सहकर उग्र तपस्यामें नियुक्त हुई ॥ २९ ॥ हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार जब उन्होंने भानुकी आराधना और महत् तपस्या करके एक वर्षसे अधिक समय बिताया तब दिवाकरने प्रसन्न होकर ॥ ३० ॥ समस्त भृत्य, पौर और पुत्रादिके लिये अभिलषित वर दिया ॥ ३१ ॥

अनन्तर राजा वर प्राप्त करके अपने घर आये और हर्षितचित्तसे धर्मपूर्वक प्रजापालन करके राज्य करने लगे ॥ ३२॥ वह धर्मात्मा राजा अनेक भाँतिके यज्ञ दिन रात सत्पात्रमें दान और महिषी मानिनीके संग विविध भोगोंको भोगने लगे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार उन्होंने पुत्र पौत्र भृत्य पौर इत्यादिके सहित प्रसन्नचितसे स्थिरयौवन होकर दश हजार वर्ष बितायेथे ॥ ३४ ॥ उस समय भृगुवंशोत्पन्न प्रमति नामक ऋषिने उनका यह चरित्र देखनेसे आश्चर्ययुक्त चित्त हो उस प्रकार गाथा गाई थी ॥ ३५ ॥ "भानुभक्तिकी क्या आश्चर्यप्रद शक्ति है ? जिसके बलसे राजा राज्यवर्द्धनने अपनी और आत्मीयजनोंकी आयु बढाई है" ॥३६॥ हे विप्र ! तुमने आदिदेव विवस्वान् आदित्यके माहात्म्य विषयमें जो पूछा था वह तुमसे वर्णन किया ॥ ३७ ॥ मनुष्यगण

लब्ध्वा वरं स नृपतिः समभ्येत्यात्मनः पुरम् ॥ चकार मुदितो राज्यं प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ ३२ ॥ ईजे यज्ञान्स च बहून्ददौ दानान्यहर्निशम् ॥ मानिन्या सहितो भोगान्बुभुजे च स धर्मवित् ॥ २३ ॥ दश वर्षसहस्राणि पुत्रपौत्रादिभिः सह ॥ भृत्यैः पौत्रैः प्रमुदितः सोऽभवत्स्थिरयौवनः ॥ ३४ ॥ तस्येति चरितं दृष्ट्वा प्रमतिर्नाम भार्गवः ॥ विस्मयाकृष्टहृदयो गाथामेतामगायत ॥ ३५ ॥ भानुभक्तेरहो शक्तिर्यद्राजा राज्यवर्द्धनः ॥ आयुषो वर्द्धने जातः स्वजनस्य तथात्मनः ॥३६॥ इति ते कथितं विप्र यत्पृष्टोऽहं त्वयोदितः ॥ आदिदेवस्य माहात्म्यमादित्यस्य विवस्वतः ॥ ३७॥ विप्रैतदखिलं श्रुत्वा भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ पठंश्च मुच्यते पापैः सप्तरात्रकृतैर्नरः ॥३८॥ अरोगी धनवानाढ्यः कुले महति धीमताम् ॥ जायते च महाप्राज्ञो यश्चैतद्धारयेद्बुधः ॥ ३९ ॥ (यजते च महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणः ॥ श्रुत्वा चरितमेतद्धि समानं लभते फलम् ॥) मन्त्राश्च येऽत्राभिहिता भास्वतो मुनिसत्तम ॥ जपः प्रत्येकमेतेषां त्रिसंध्यं पातकापहः ॥४०॥

भानुका यह समस्त उत्तम माहात्म्य ब्राह्मणके मुखसे श्रवण और पाठ करनेके कारण सप्तरात्रके किये पापसे छूटजाते हैं ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य इन भानुका माहात्म्य बुद्धिमें धारण करके रखते है वह बुद्धिमानोंके महाकुलमें धनवान् अरोगी और महाप्राज्ञ होकर जन्म ग्रहण करते हैं ॥ ३९ ॥ और बडी दक्षिणावाले यज्ञोंसे यजन करते हैं इस चरित्रको सुनकर अपने समान फल लाभ करते हैं हे मुनिसत्तम ! मूर्खमनुष्यभी पापसे युक्त होकर यदि भास्करके इस जापसमूहमेंसे जो कोई एक त्रिसंध्यामें जप करते हैं उनके पातक नष्ट होतेहैं ॥ ४० ॥

जिस देवमन्दिरमें रविका यह संपूर्ण माहात्म्य पढाजाता है भगवान् उसकी समीपताको नहीं छोडते ॥ ४१ ॥ अतएव हे ब्रह्मन् ! तुमभी महत् पुण्यकी अभिलाषासे भानुका यह उत्तम महामाहात्म्य अन्तरमें धारण कर और जप कर ॥४२॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो पुरुष सुवर्णशृंग मढाकर अति सुन्दर पयस्विनी अर्थात् दूधवाली गाय दान करते हैं और जो पुरुष संयत होकर तीन दिन यह माहात्म्य सुनते हैं इन दोनोंका पुण्यफल समान जानना चाहिये ॥ ४३॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे भाषाटीकायां भानोर्माहात्म्यं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७॥ मार्कण्डेयजी बोले-हे क्रौष्टुके ! तुमने भक्तिसहित मुझसे

समस्तमेतन्माहात्म्यं यत्र चायतने रवेः ॥ पठ्यते तत्र भगवान्सान्निध्यं न विमुंचति ॥ ४१ ॥ तस्मादेतत्त्वया ब्रह्मन्भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ धार्यं मनसि जाप्यं च महत्पुण्यमभीप्सता ॥ ४२ ॥ सुवर्णशृङ्गीमतिशोभनाङ्गीं पयस्विनीं गां प्रददाति यो हि ॥ शृणोति चैतत्त्र्यहमात्मवान्नरः समं तयोः पुण्यफलं द्विजाग्र्य ॥४३॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भानोर्माहात्म्यं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥ एवंप्रभावो भगवाननादिनिधनो रविः ॥ यस्य त्वं क्रौष्टुके भक्त्या माहात्म्यं परिपृच्छसि ॥ १ ॥ परमात्मा स योगिनां युंजतां चेतसां लयम् ॥ क्षेत्रज्ञः सांख्ययोगानां यज्ञेशो यज्विनामपि ॥ २ ॥ सूर्याधिकारं वहतो विष्णोरीशस्य वेधसः ॥ मनुस्तस्याभवत्पुत्रश्छिन्नसर्वार्थसंशयः ॥ ३ ॥ मन्वन्तराधिपो विप्र यस्य सप्तममन्तरम् ॥ इक्ष्वाकुर्नाभगो रिष्टो महाबलपराक्रमः ॥ ४ ॥ नरिष्यन्तोऽथ नाभागः पृषध्रो धृष्ट एव च ॥ एते पुत्रा मनोस्तस्य पृथग्राज्यस्य पालकाः ॥ ५ ॥

जिनका माहात्म्य पूछा था, वह अनादिनिधन भगवान् रवि इस प्रकार प्रभावशाली हैं ॥ १ ॥ वह संयतचित्त योगियोंके परमात्मा सांख्ययोगियोंके क्षेत्रज्ञ और याज्ञिकगणोंके यज्ञेश्वर हैं ॥ २ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर स्वरूप सूर्याधिकार वहनकारी उन मार्तण्डदेवके सर्वार्थ संशयशून्य मनुनामक पुत्र उत्पन्न हुआथा ॥ ३ ॥ जिस मनुका सप्तम मन्वन्तर इस समय वर्त्तमान है महाबलपराक्रमी इक्ष्वाकु, नाभग, रिष्ट ॥ ४ ॥ नरिष्यन्त, नाभाग, पृषध्र और धृष्ट नामक मनुके यह समस्त पुत्रगण पृथक् पृथक् राज्यके परिपालक ॥ ५ ॥

सभी विख्यातकीर्ति, एवं शास्त्रपारग और विशेष अस्त्राभिज्ञ थे। इसके पीछे कृतिश्रेष्ठ मनुने विशिष्टतर पुत्रकी कामनासे ॥ ६ ॥ मित्रावरुणका यज्ञ किया था। हे महामुने! होताके अपचारसे उस यज्ञके अपहुत अर्थात् दूषित वा अंगहीन होनेपर ॥ ७ ॥ इलानाम्नी सुमध्यमा कन्याकी उत्पत्ति हुई थी। अनन्तर मनु यज्ञोत्पन्न उस कन्याको देखकर ॥८॥ मित्रावरुणकी स्तुति करनेलगे और बोले कि, आपके अनुग्रहसे मैं असाधारण पुत्र प्राप्त करूं ॥९॥ इसी अभिलाषासे यज्ञ करके यह कन्या पाई है हे वरदगण! यदि आप प्रसन्न हुए हैं, तो आपके अनुग्रहसे मेरी यह कन्या ॥१०॥ अत्यन्त गुणवान् पुत्र

विख्यातकीर्त्तयः सर्वे सर्वे शस्त्रास्त्रपारगाः ॥ विशिष्टतरमन्विच्छन्मनुः पुत्रं तथा पुनः ॥ ६ ॥ मित्रावरुणयोरिष्टिं चकार कृतिनां वरः ॥
यत्र चापहुते होतुरपचारान्महामुने ॥७॥ इला नाम समुत्पन्ना मनोः कन्या सुमध्यमा ॥ तां दृष्ट्वा कन्यकां तत्र समुत्पन्नां ततो मनुः ॥८॥
तुष्टाव मित्रावरुणौ वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ भवत्प्रसादात्तनयो विशिष्टो मे भवेदिति ॥९॥ कृते मखे समुत्पन्ना तनया मम धीमतः ॥ यदि
प्रसन्नौ वरदौ तदियं तनया मम ॥१०॥ प्रसादाद्भवतोः पुत्रो भवत्वतिगुणन्वितः ॥ तथेति चाभ्यामुक्ते तु देवाभ्यां सैव कन्यका ॥११॥
इला समभवत्सद्यः सुद्युम्न इति विश्रुतः ॥ पुनश्चेश्वरकोपेन मृगयामटता वने ॥ १२ ॥ स्त्रीत्वमासादितं तेन मनुपुत्रेण धीमता ॥ पुरू-
रवसनामानं चक्रवर्तिनमूर्जितम् ॥ १३॥ जनयामास तनयं यत्र सोमसुतो बुधः ॥ जाते सुते पुनः कृत्वा सोऽश्वमेधं महाक्रतुम् ॥१४॥
पुरुषत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नः पार्थिवोऽभवत् ॥ सुद्युम्नस्य त्रयः पुत्रा उत्कलो विनयो गयः ॥ १५ ॥ पुरुषत्वे महावीर्या याज्विनः पृथुलौ-
जसः ॥ पुरुषत्वे तु ये जातास्तस्य राज्ञस्त्रयः सुताः ॥ १६ ॥

होजाय। फिर दोनों देवताओंके 'तथास्तु' कहनेपर वह कन्या ॥११॥ इला तत्काल सुद्युम्ननामक पुत्र होगई। एक समय यही बुद्धिमान् मनुपुत्र वनमें मृगया (शिकार) के लिये जाकर ईश्वरके कोपसे ॥१२॥ फिर यह मनुपुत्र स्त्री हुए थे। उसी समय सोमपुत्र बुधने उसके गर्भसे पुरूरवनामक तेजस्वी चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न किया, पुत्रोत्पत्तिके पीछे फिर अश्वमेध यज्ञ करनेसे ॥१३॥१४॥ वह सुद्युम्न पुरुषत्वको प्राप्त होकर राजा हुए थे सुद्युम्नके पुरुष होनेपर उनके उत्कल, विनय और गय नामक ॥१५॥ महावीर याज्ञिक और विपुल तेजवाले तीन पुत्र हुए थे। उनके पुरुषकालमें जो तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥१६॥

वही राज्य लाभ करके धर्मानुसार पृथ्वीका पालन करते थे, राजाके स्त्रीकालमें जो पुरूरवा उत्पन्न हुए थे ॥ १७ ॥ वह बुधके पुत्र होनेसे पृथ्वीका भाग प्राप्त नहीं करसके किन्तु वसिष्ठजीकी आज्ञासे उनको प्रतिष्ठान नामक उत्तम पुर दियागया वह उसी मनोहर प्रदेशमें राजा हुए थे ॥ १८ ॥ इति श्रीमा० पु० भाषाटीकायां वंशानुक्रमो नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-मनुपुत्र पृषध्र एक समय मृगयाकी अभिलाषासे वनमें गयेथे। उन्होंने निर्जन वनमें इधर उधर भ्रमण करके भी ॥ १ ॥ कोई मृग नहीं पाया। किन्तु सूर्यकी किरणसे तप्त और भूख प्याससे पीडित होकर इधर उधर

बुभुजुस्ते महीमेतां धर्मे नियतचेतसः॥ स्त्रीभूतस्य तु यो जातस्तस्य राज्ञः पुरूरवाः॥१७॥ न स लेभे महाभागं यतो बुधसुतो हि सः॥ ततो वसिष्ठवचनात्प्रतिष्ठानं पुरोत्तमम् ॥ तस्मै दत्तं स राजाभूत्तत्रातीव मनोहरे ॥१८॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे वंशानुक्रमो नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ पृषध्राख्यो मनोः पुत्रो मृगयामगमद्वनम् ॥ तत्र चंक्रममाणोऽसौ विपिने निर्जने वने ॥ १ ॥ नाससाद मृगं कञ्चिद्भानुदीधितितापितः। क्षुत्तृट्तापपरीताङ्ग इतश्चेतश्च चंक्रमन् ॥ २ ॥ स ददर्श तदा तत्र होमधेनुं मनोहराम् ॥ लतान्तर्देहच्छिन्नार्धां ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥ ३ ॥ स मन्यमानो गवयमिषुणा तामताडयत् ॥ पपात सापि तद्बाणविभिन्नहृदया भुवि ॥ ४ ॥ ततोऽग्निहोत्रिणः पुत्रो ब्रह्मचारी तपोरतिः ॥ शप्तवान्स पितुर्दृष्ट्वा होमधेनुं निपातिताम् ॥ ५ ॥ गोपालः प्रेषितः पुत्रो बाभ्रव्यो नाम नामतः॥ कोपामर्षपराधीनचित्तवृत्तिस्ततो मुने ॥ ६ ॥

विचरण करते करते ॥ २ ॥ वहां किसी अग्निहोत्री ब्राह्मणकी खुलीहुई मनोहर होमधेनु लताके अन्तरमें छिपी देखी ॥ ३ ॥ उन्होंने उसको गवय (गोसदृश जीव) जान बाण मारा और वह धेनुभी बाणसे हृदय फट जानेके कारण पृथ्वीमें गिरगई ॥४॥ हे मुने ! अग्निहोत्री ऋषिका गोपालनमें नियुक्त ब्रह्मचारी और तपस्यानुरागी बाभ्रव्यनामक पुत्र तिस कालमें पिताकी होमधेनुको गिरता हुआ देख, क्रोधित हो अत्यन्त क्रोधसे नष्टज्ञान एवं पसीनेसे आर्द्र देह और अश्रुपूर्ण घूर्णित नेत्रोंसे राजाके शाप देनेमें उद्यत हुआ ॥ ५ ॥ ६ ॥

राजा पृषध्र मुनिबालकके अंगमें क्रोधसे पसीना निकलता हुआ देखकर कहने लगे ॥ ७ ॥ प्रसन्न हूजिये, क्यों शूद्रके समान ऐसा क्रोध करतेहो ? आप उत्तम ब्राह्मणके कुलमें जन्म ग्रहण करके जिस प्रकार शूद्र समान आचरण करते हैं, इस प्रकार किसी क्षत्रिय वा वैश्यकोभी कोपके वशीभूत नहीं देखा जाता ॥८॥ मार्कण्डेयजी बोले–जब राजाने इस प्रकार "शूद्रवत्" कहकर तिरस्कार किया, तब अग्निहोत्री 'मौलि' ऋषिके उस पुत्रने दुर्मति राजाको यह शाप दिया कि शूद्रही होंगे ॥ ९ ॥ और तुमने मेरे पिताकी होमधेनुका वध किया है उस कारण तुम्हारी गुरुके मुखसे पढीहुई संपूर्ण ब्रह्मविद्या नष्ट होजायगी" ॥ १०॥ हे विप्र ! राजाने इस प्रकार शापको प्राप्त होकर शापव्यथित हृदयसे क्रोधपूर्वक प्रतिशाप इच्छा कर हाथमें जल ग्रहण किया ॥ ११ ॥

चुकोप विगलत्स्वेदजललोलाविलेक्षणः ॥ तं क्रुद्धं प्रेक्ष्य स नृपः पृषध्रो मुनिदारकम् ॥७॥ प्रसीदेति जगौ कस्माच्छूद्रवत्कुरुषे रुषम् ॥ न क्षत्रियो न वा वैश्य एवं क्रोधमुपैति वै ॥ यथा त्वं शूद्रवज्जातो विशिष्टे ब्रह्मणः कुले ॥८॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति निर्भर्त्सितस्तेन स राज्ञा मौलिनः सुतः ॥ शशाप तं दुरात्मानं शूद्र एव भविष्यसि ॥ ९ ॥ प्रयास्यति क्षयं ब्रह्मन्यत्तेऽधीतं गुरोर्मुखात् ॥ होमधेनुर्मम गुरोर्यदियं हिंसिता त्वया ॥ १० ॥ एवं शप्तो नृपः क्रुद्धस्तच्छापपरिपीडितः ॥ प्रतिशापपरो विप्र तोयं जग्राह पाणिना ॥ ११॥ सोऽपि राज्ञो विनाशाय कोपं चक्रे द्विजोत्तमः ॥ तमभ्येत्य त्वरायुक्तो वारयामास वै पिता ॥ १२ ॥ वत्सालमलमत्यर्थं कोपेनातीव वैरिणा ॥ ऐहिकामुष्मिकहितः शम एव द्विजन्मनाम् ॥ १३ ॥ कोपस्तपो नाशयति क्रुद्धो भ्रश्यत्यथायुषः ॥ क्रुद्धस्य गलते ज्ञानं क्रुद्धस्यार्थाश्च हीयते ॥ १४ ॥ न धर्मः क्रोधशीलस्य नार्थं चाप्नोति रोषणः ॥ नालं सुखाय कामातिः कोपेनाविष्टचेतसाम् ॥ १५ ॥

तब द्विजोत्तम मुनिबालकभी राजाके विनाश करनेकी कामनासे अत्यन्त क्रोधित हुआ, इसी अवसरमें उसके पिता शीघ्रतासहित आय उसको निवारण करते हुए कहनेलगे ॥ १२ ॥ हे वत्स ! भावी कालका अहितकारी कोप परित्याग करो, परित्याग करो । ब्राह्मणोंकी शान्तिही इस लोक और परलोकमें मंगलकारी है ॥ १३ ॥ कोप तपस्याका नाशकर्ता है और क्रोध होनेसे आयु क्षय होतीहै, ज्ञान लोप होता है, और अर्थहीनता अर्थात् दरिद्र होता है ॥ १४ ॥ क्रोधी पुरुष धर्म और अर्थ संचय नहीं करसकता और कोपपरवशचित्त होनेपर कामप्राप्तिभी सुख संपादनमें समर्थ नहीं होती ॥ १५ ॥

यदि राजाने जानकरही इस धेनुकी हत्या करी है तो इनके ऊपर अपना हित चाहनेवाले पुरुषको दयाही करनी उचित है ॥ १६॥ और यदि अज्ञानसे उन्होंने मेरी धेनुको मारा है तो यह किस प्रकार शापके योग्य होसकतेहैं। क्योंकि इनका अन्तःकरण निर्दोष है ॥ १७ ॥ जो मनुष्य अपने हितकी इच्छासे दूसरेको दुःख देतेहैं उन मूढबुद्धि मनुष्योंके ऊपरभी दयालु पुरुषोंको दयाही प्रकाश करनी चाहिये ॥१८॥ और विना जाने अपराध करनेपर जो बुद्धिमान् पुरुष दण्ड देते हैं, उनकी अपेक्षा मैं अज्ञानी पुरुषोंको श्रेष्ठ समझताहूं ॥ १९ ॥ अतएव हे पुत्र ! इस समय तुम राजाको शाप मत दो। गाय अपने कर्मके वश होकरही इस दुःखकर मृत्युमुखमें गिरी है ॥ २० ॥ मार्कण्डेयजी बोले--फिर पृषध्रभी मस्तक झुकाय मुनिपुत्रको प्रणाम कर उच्चस्वरसे

यदि राज्ञा हता धेनुरियं विज्ञानिना सता ॥ युक्तमत्र दयां कर्तुमात्मनो हितबोधिना ॥१६॥ अथवाऽजानता धेनुरियं व्यापादिता मम ॥ तत्कथं शापयोग्योऽयं दुष्टं नास्य मनो यतः ॥ १७ ॥ आत्मनो हितमन्विच्छन्बाधते योऽपरं नरः ॥ कर्तव्या मूढविज्ञाने दया तत्र दयालुभिः ॥ १८ ॥ अज्ञानतः कृते दण्डं पातयन्ति बुधा यदि ॥ बुधेभ्यस्तमहं मन्ये वरमज्ञानिनो नराः ॥ १९ ॥ नाद्य शापस्त्वया देयः पार्थिवस्यास्य पुत्रक ॥ स्वकर्मणैव पतिता गौरेषा दुःखमृत्युना ॥ २० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ पृषध्रोऽपि मुनेः पुत्रं प्रणम्यानम्रकन्धरः ॥ प्रसीदेति जगादोच्चैरज्ञानाद्धातितेति च ॥२१॥ मया गवयबुद्ध्या गौरवध्या घातिता मुने ॥ अज्ञानाद्धोमधेनुस्ते प्रसीद त्वं च नो मुने ॥ २२ ॥ ऋषिपुत्र उवाच ॥ आजन्मनो महीपाल न मया व्याहृतं मृषा ॥ क्रोधश्चाद्य महाभाग नान्यथा मे कदाचन ॥ २३ ॥ तन्नाहमेनं शक्नोमि शापं कर्तुं नृपान्यथा ॥ यस्ते समुद्यतः शापो द्वितीयः स निवर्तितः ॥ २४ ॥

कहने लगे, प्रसन्न हूजिये, मैंने विना जाने धेनुकी हत्या करी है ॥ २१ ॥ हे मुने ! मैंने गवय विचार करही अवध्या गौभी आपकी इस होमधेनुको नष्ट किया है, हे मुने ! आप मुझपर प्रसन्न हूजिये ॥ २२ ॥ ऋषिपुत्रने कहा हे महीपाल ! मैंने जन्मसे लेकर कभी मिथ्या नहीं बोला है, सुतरां हे महाभाग ! मेरा यह क्रोधभी कभी मिथ्या नहीं होगा ॥ २३ ॥ अतएव हे नृप ! इस शापकोभी अन्यथा नहीं करसकता। किन्तु आपको जो दूसरा शाप देनेमें उद्यत हुआ था, उससे निवृत्त होताहूं, अर्थात् वह आपको नहीं देता ॥ २४ ॥

बालकके इस प्रकार कहनेपर उसके पिता उसको आश्रममें लेगये। इसके उपरान्त वह पृषध्रभी शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां पृषध्रोपाख्याने नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९॥ मार्कण्डेयजी बोले--महावीर कारुष क्षत्रियगण करूषके पुत्र हैं। वह संख्यामें सात सौ हैं और उन समस्त कारुषोंसेभी अन्य हजारों वीर उत्पन्न हुए थे ॥ १ ॥ दिष्टपुत्र नाभागने प्रथम यौवनके समयमें किसी दिन एक अति मनोहर वैश्यकी कन्याको देखा ॥२ ॥ राजपुत्रने केवलमात्र उसको देखतेही अत्यन्त कामासक्त मन होकर दीर्घ श्वास छोडते छोडते ॥ ३ ॥ उसके पिताके समीप जाकर

इत्युक्तवन्तं तं बालमादाय स पिता ततः ॥ जगाम स्वाश्रमं सोऽपि पृषध्रः शूद्रतामगात् ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वंशानुचरिते पृषध्रोपाख्याने नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कारुषाः क्षत्रियाः शूराः करूषस्याभवन्सुताः ॥ ते तु सप्तशतं वीरास्तेभ्यश्चान्ये सहस्रशः ॥ १ ॥ दिष्टपुत्रस्तु नाभागः स्थितः प्रथमयौवने ॥ ददर्श वैश्यतनयामतीव सुमनोहराम् ॥ २ ॥ तस्यां संदृष्टमात्रायां मदनाक्षिप्तमानसः ॥ बभूव भूपतनयो निःश्वासाक्षेपतत्परः ॥३॥ तस्याः स गत्वा जनकं वव्रे तां वैश्यकन्यकाम् ॥ ततोऽनङ्गपराधीनमनोवृत्तिं नृपात्मजम् ॥ ४ ॥ तं चाह स पिता तस्या राजपुत्रं कृतांजलिः ॥ बिभ्यत्तस्य पितुर्विप्र प्रश्रयावनतं वचः ॥५ ॥ भवन्तो भूभुजो भृत्या वयं वः करदायकाः ॥ कथं सम्बन्धमसमैरस्माभिरभिवाञ्छसि ॥ ६ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ साम्यं मानुषदेहस्य काममोहादिभिः कृतम् ॥ तथापि काले तैरेव योज्यते मानुषं वपुः ॥ ७ ॥

इस वैश्यकन्याकी प्रार्थना करी। कारण कि, कामसे उनकी पराधीनवृत्ति होगई थी ॥ ४ ॥ हे विप्र ! उसका पिताभी महाराज दिष्टके भयसे भीत हो हाथ जोड कामासक्तचित्त राजनन्दनसे विनीतभावद्वारा कहने लगा ॥ ५ ॥ आप राजा और हम आपको कर देनेवाले सेवक हैं, आप ऐसे असमान मनुष्यके साथ किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करनेकी अभिलाषा करते हो ॥ ६ ॥ राजपुत्रने कहा- मनुष्य देहमें काम क्रोधादि समानभावसेही विधाताने निर्मित किये हैं, किन्तु सदाही जो काम क्रोधादि मनुष्यदेहमें रहता है, ऐसा नहीं है. किसी किसी समयमें उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥

और विभिन्नजातिके मनुष्योंमेंभी काम क्रोधादि उपकारी होते हैं तो (दूसरे दूसरेसे जीते हैं) अर्थात् मनुष्यगण काम क्रोधादिका अवलम्बन नहीं करते, अन्यभाव अवलम्बन करते हैं ॥८॥ काम क्रोधादि तथा अन्य और भी किसीके अयोग्य होनेपर काल पाकर योग्य होते हैं और योग्यभी अयोग्य होते हैं अतएव योग्यता कालकेही अधीन है ॥९॥ आहारादि इष्टवस्तुद्वारा जो देहको तृप्त करते हैं वहभी नहीं रहता। केवल योग्यताका नियम बिगाडनेवाला काल भुक्त करके उनको सुखा देता है ॥ १०॥ इसी कारण तुम्हारी कन्यामें मेरी अभिलाषा हुई है, वह मुझको प्रदान करो नहीं तो मेरे शरीरका विनाश देखोगे ॥११॥ वैश्यने कहा मैं पराधीन हूं और आपभी महीपालके अधीन हैं, अतएव आप पिताकी आज्ञा लेकर ग्रहण कीजिये मैं कन्या दूंगा ॥१२॥

तथैव चोपकाराय जायन्ते तस्य तान्यपि ॥ अन्यानि चान्ये जीवन्ति भिन्नजातिमतां सताम् ॥ ८ ॥ तथान्यान्यप्ययोग्यानि योग्यतां यान्ति कालतः ॥ योग्यान्ययोग्यतां यान्ति कालवश्या हि योग्यता ॥ ९ ॥ आप्याय्यते यच्छरीरमाहारादिभिरीप्सितैः ॥ कालं ज्ञात्वा तथा भुक्तं तदेव परिशिष्यते ॥ १० ॥ इत्थं ममैषाभिमता तनया दीयतां त्वया ॥ अन्यथा मच्छरीरस्य विपत्तिरुपलक्ष्यते ॥ ११ ॥ वैश्य उवाच ॥ परतन्त्रा वयं त्वं च परतन्त्रो महीभुजः ॥ पित्रा तेनाभ्यनुज्ञातस्त्वं गृहाण ददाम्यहम् ॥ १२ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ प्रष्टव्या सर्वकार्येषु गुरवो गुरुवर्तिभिः ॥ न त्वीदृशेष्वकार्येषु गुरूणां वाक्यगोचरः ॥ १३ ॥ क्व मन्मथकथालापो गुरूणां श्रवणं क्व च ॥ विरुद्धमेतदन्यत्र प्रष्टव्या गुरवो नृभिः ॥ १४ ॥ वैश्य उवाच ॥ एवमेतत्स्मरालापस्तवायं पृच्छ मा गुरुम् ॥ अहं पृच्छामि नालापो मम कामकथाश्रयः ॥ १५ ॥

राजपुत्रने कहा गुरुजनोंकी आज्ञामें रहनेवाले मनुष्योंको यद्यपि संपूर्ण विषयोंमेंही पूछना उचित है, किन्तु तोभी ऐसी बातका गुरुके निकट प्रकाशित न करनाही अच्छा है ॥ १३ ॥ कहां कामकथाका प्रसंग और कहां गुरुजनोंका श्रवणगोचरत्व अर्थात् सुनना इन दोनोंमें बडा अन्तर है अतएव यह विरुद्ध है इसके अतिरिक्त और सब कार्योंमेंही गुरुजनोंसे पूछना आवश्यक है ॥ १४ ॥ वैश्य बोला-आप सत्यही कहतेहैं कि, गुरुकी आज्ञा लेना आपके पक्षमें कामकथा होगी, अतएव मैं इस विषयको पूछताहूं इसमें फिर कामकथाकी सम्भावना नहीं रहेगी ॥ १५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले जब वैश्यने यह बात कही तब राजपुत्र निरुत्तर होगये। तब वैश्यनेभी राजपुत्रका अभीष्ट विषय राजासे ज्योंका त्यों कहा ॥ १६ ॥ तब राजाने ऋचीक इत्यादिक द्विजश्रेष्ठगण और पुत्रको उपस्थित करके उपरोक्त समस्त विषय प्रकाशपूर्वक ॥ १७ ॥ मुनियोंसे पूछा हे द्विजश्रेष्ठगणो ! आप इस उपस्थित विषयमें मुझको क्या आज्ञा देते हैं ? ॥ १८ ॥ ऋषि बोले--हे राजकुमार ! आप यदि वैश्यकी कन्यामें अनुरागी हुए हैं सो इसमें अधिक अधर्म नहीं है किन्तु न्यायपूर्वक होना आवश्यक है ॥ १९ ॥ पहिले मूर्द्धाभिषिक्त (अभिषेकयोग्य राज्ञी) कन्याका पाणिग्रहण करके फिर इस कन्याको आप भार्या कीजिये ॥ २० ॥ यदि आप इस प्रकार इस कन्यासे भोग करेंगे तो आपको किसी दोषके होनेकी

मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्तः सोऽभवन्मौनी राजपुत्रः स चापि तत् ॥ तत्पित्रे सर्वमाचष्ट राजपुत्रस्य यन्मतम् ॥ १६ ॥ ततस्तस्य पिता विप्रानृचीकादीन्द्विजोत्तमान् ॥ प्रवेश्य राजपुत्रं च यथाख्यानं न्यवेदयत् ॥ १७ ॥ निवेद्य च ततः प्राह मुनीनेवं व्यवस्थिते ॥ यत्कर्तव्यं तदादेष्टुमर्हन्ति द्विजसत्तमाः ॥ १८ ॥ ऋषय ऊचु ॥ राजपुत्रानुरागस्ते यद्यस्यां वैश्यसन्ततौ ॥ तदस्तु धर्म एवैष किं तु न्यायक्रमेण सः ॥ १९ ॥ मूर्धाभिषिक्ततनयापाणिग्राहोत्सवः पुरा ॥ भवत्वनन्तरं चेयं तव भार्या भविष्याति ॥ २० ॥ एवं न दोषो भवति तथेमामुपभुञ्जतः ॥ अन्यथाऽभ्येति ते जातिरुत्कृष्टा बालकानयात् ॥ २१ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्तस्तदपास्यैव वचस्तेषां महात्मनाम् ॥ विनिष्क्रम्य गृहीत्वा तामुद्यतासिरथाब्रवीत् ॥ २२ ॥ राक्षसेन विवाहेन मया वैश्यसुता हृता ॥ यस्य सामर्थ्यमत्रास्ति स एतां मोचयत्विति ॥ २३ ॥ ततः स वैश्यस्तां दृष्ट्वा गृहीतां तनयां द्रुतम् ॥ त्राहीति पितरं तस्य प्रययौ शरणं द्विज ॥ २४ ॥

संभावना नहीं है नहीं तो बालिका हरणके कारण आपको इस श्रेष्ठजातिमें नीचा होना पडेगा ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—जब उन समस्त महात्माओंने इस प्रकार अभिप्राय प्रकट किया तब उनके वचनोंको अस्वीकार करके राजपुत्र बाहर निकला और उस कन्याको ग्रहणपूर्वक खड्ग उद्यत करके कहने लगा ॥ २२ ॥ मैंने इस वैश्यकन्याको राक्षसविवाहद्वारा हरण किया, जिसमें सामर्थ्य हो, मुझसे इसको छुडाले ॥ २३ ॥ हे द्विज ! तब वैश्यने कन्याको राजपुत्रके द्वारा हरण होता देख शीघ्रपदसे राजाके समीप उपस्थित हो " रक्षा करो " यह कहकर आश्रय ग्रहण किया ॥ २४ ॥

अनन्तर राजाने अत्यन्त क्रोधित हो " इस धर्मदूषक नाभागको शीघ्र वध करो " यह कहकर सेनाको आज्ञा दी ॥ २५॥ तब सेनाने राजाकी आज्ञासे राजपुत्रके संग युद्ध आरंभ किया, किन्तु राजपुत्रने अस्त्रोंके द्वारा उस सेनाके अधिकांशको गिरादिया ॥२६॥ फिर राजपुत्रके द्वारा सेनाको निहत हुआ सुन भूपति स्वयंही अन्यान्यसेनाके सहित युद्धमें गये ॥ २७ ॥ अपने पुत्रके सहित भूपतिका युद्ध होनेपर अस्त्र शस्त्रादिद्वारा राजपुत्रकी अपेक्षा पिताकीही अधिकता हुई ॥ २८ ॥ इसी अवसरमें आकाशसे सहसा परिव्राजकमुनि (नारद) आनकर राजादिष्टसे बोले--हे महीपाल! युद्धसे निवृत्त हूजिये ॥ २९ ॥

ततस्तस्य पिता क्रुद्ध आदिदेश बलं महत् ॥ हन्यतां हन्यतां दुष्टो नाभागो धर्मदूषकः ॥ २५ ॥ ततस्तद्युयुधे सैन्यं तेन भूभृत्सुतेन वै ॥ कृतास्त्रेण तदास्त्रेण तत्प्राचुर्येण पातितम् ॥ २६ ॥ स श्रुत्वा निहतं सैन्यं राजपुत्रेण भूपतिः ॥ स्वयमेव ययौ योद्धुं स्वसैन्यपरिवारितः ॥ २७ ॥ ततो युद्धमभूत्तस्य भूभुजः स्वसुतेन यत् ॥ राजपुत्रेण शस्त्रास्त्रैस्तत्रातिशायितः पिता ॥ २८ ॥ ततोऽन्तरिक्षादागत्य परिव्राट् सहसा मुनिः ॥ प्रत्युवाच महीपालं विरमस्वेति संयुगात् ॥ २९ ॥ त्वत्पुत्रस्य महाभाग विधर्मोऽयं महात्मनः ॥ तवापि वैश्येन सह न युद्धं धर्मवन्नृप ॥ ३० ॥ ब्राह्मण्या ब्राह्मणः पूर्वं कुर्वन्दारपरिग्रहम् ॥ ब्राह्मण्यात्सर्ववर्णेषु न ह्यानिमुपगच्छति ॥३१॥ तथैव क्षत्रियसुतां क्षत्रियः पूर्वमुद्वहन् ॥ इतरे च ततो राजंश्च्यवते न स्वधर्मतः ॥ ३२ ॥ पूर्वं वैश्यस्तथा वैश्यां पश्चाच्छूद्रकुलोद्भवाम् ॥ न हीयते वैश्यकुलादयं न्यायः क्रमोदितः ॥ ३३ ॥

हे नृप ! आपका पुत्र विधर्मी होगया है, अतएव वैश्यके संग आपका युद्ध धर्मसंगत नहीं है ॥ ३० ॥ ब्राह्मण प्रथम ब्राह्मणी स्त्रीका पाणिग्रहण करके फिर यदि समस्त वर्णकी स्त्री ग्रहण करे, तोभी उसके ब्राह्मणत्वकी हानि नहीं होती ॥ ३१ ॥ इसी प्रकार क्षत्रियभी प्रथम क्षत्रियकन्यासे विवाह करके फिर वैश्य और शूद्रकी कन्या ग्रहण करने पर भी अपने धर्मसे च्युत नहीं होता ॥ ३२ ॥ वैश्यभी इसी प्रकार पहिले वैश्यकन्यासे विवाह करके फिर शूद्रकन्यासे विवाह करने परभी वैश्यकुलसे पतित नहीं होता इस भाँति क्रमानुसार नीति चली आती है ॥ ३३ ॥

हे नृप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सवर्णा कन्याका पाणिग्रहण विना किये अन्य वर्णा कन्यासे विवाह करनेपर जिस जातिकी हीनवर्ण कन्याका पाणिग्रहण करते हैं, वह पतित होकर उसीकी जातिको प्राप्त होते हैं और प्रथम सवर्णा कन्याका पाणिग्रहण न करनेसे वह दायाधिकारी नहीं हो सकते ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ आपका यह मन्दबुद्धि पुत्र वैश्यत्वको प्राप्त हुआ है और आप क्षत्रिय हैं अतएव आपके संग यह युद्ध करनेका अधिकारी नहीं है ॥ ३६ ॥ हे नृपनन्दन ! इससे किस प्रकारका कारण उत्पन्न होगा सो मैं नहीं जानता । अब आप युद्धसे निवृत्त हूजिये ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां नाभागा

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः सवर्णापाणिसंग्रहम् ॥ अकृत्वाऽन्यभवापाणेः पतन्ति नृप संग्रहात् ॥ ३४ ॥ यस्या यस्या हि हीनायाः कुरुते पाणिसंग्रहम् ॥ अकृत्वा वर्णसंयोगं सोऽपि तद्वर्णभाग्भवेत् ॥ ३५ ॥ सोऽयं वैश्यत्वमापन्नस्तव पुत्रः सुमन्दधीः ॥ नास्याधिकारो युद्धाय क्षत्रियेण त्वया सह ॥ ३६ ॥ वयमेतन्न जानीमः कारणं नृपनन्दन ॥ यथा भविष्यतीदं च निवर्त्त रणकर्मतः ॥३७॥ इति श्रीमार्कण्डेय-पुराणे वंशानुचरिते नाभागाख्यानं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ निवृत्तोऽसौ ततो भूपः संग्रामात्स्व-सुतेन वै ॥ उपयेमे च तां वैश्यतनयां सोऽपि तत्सुतः ॥१॥ ततः स वैश्यतां प्राप्तः समुपेत्याह पार्थिवम् ॥ भूपाल यन्मया कार्यं तत्ममा-दिश्यतां मम ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ धर्माधिकरणे युक्ता बाभ्रव्याद्यास्तपस्विनः ॥ यदस्य कर्मधर्माय तद्वदंतु तथाचर ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततस्ते मुनयस्तस्य पाशुपाल्यं तथा कृषिम् ॥ वाणिज्यं च परं धर्ममाचचख्युः सभासदः ॥ ४ ॥

ख्यानं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर पुत्रके संग युद्ध करनेसे राजा निवृत्त हुए और उनका पुत्रभी उस कन्यासे विवाह करके वैश्यत्वको प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ तब उसने वैश्यत्वको प्राप्त हो राजाके समीप जाकर पूछा हे भूपाल ! अब मुझको क्या करना चाहिये, सो आज्ञा कीजिये ॥ २ ॥ राजाने कहा—बाभ्रव्यादि जो समस्त तपस्वी धर्माधिकरणमें नियुक्त हैं वह जिस कर्मको धर्मानुयायी कहकर आज्ञा दें, उसीके अनुसार आचरण कर ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तब उन सभासद मुनियोंने कहा पशुपालन, कृषि और वाणिज्यकर्मही तुम्हारा उत्तम धर्म है ॥ ४ ॥

राजपुत्रभी अपने धर्मसे च्युत होकर राजाकी आज्ञानुसार उन धर्मवादियोंके निर्दिष्ट धर्मका आचरण करनेलगे ॥ ५ ॥ उनके भलन्दननामक पुत्र हुआथा उसकी माताने उसको हे वत्स ! गोपाल होओ ॥ ६ ॥ यह कहकर गोपालनमें नियुक्त किया। तब वह माताकी आज्ञा पाय माताको प्रणामपूर्वक हिमालयपर्वतवासी नीपनामक राजर्षिके निकट गये ॥ ७ ॥ भलन्दनराजर्षिके समीप उपस्थित हो यथाविधि चरणवन्दनापूर्वक प्रणाम करके कहने लगे ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! माताने मुझको "तुम गोपाल होओ" यह आज्ञा दी है, सुतरां पृथ्वीपालन अवश्यही मेरा कर्त्तव्य है, किन्तु यह गोपालन किस प्रकार स्वीकार

तथैव चक्रे स सुतस्तस्य राज्ञो यथोदितम् ॥ तैर्धर्मवादिभिर्धर्मं च्युतस्य निजधर्मतः ॥ ५ ॥ तस्य पुत्रस्ततो जातो नाम्ना ख्यातो भलन्दनः ॥ स मात्रा प्रहितो गच्छद्गोपालो भव पुत्रक ॥ ६ ॥ मात्रा तथा नियुक्तोऽथ प्रणिपत्य स्वमातरम् ॥ राजर्षिमगमन्नीपं हिमवत्पर्वताश्रयम् ॥ ७ ॥ तं समेत्य च जग्राह तस्य पादौ यथाविधि ॥ प्रणिपत्याह चैवैनं राजर्षिं स भलन्दनः ॥८॥ आदिष्टो भगवन्मात्रा गोपालस्त्वं भवेति वै ॥ मया च पालनीया क्ष्मा तस्याः स्वीकरणं कथम् ॥९॥ मया हि गौः पालनीया सा यदा स्वीकृता भवेत् ॥ आक्रान्ता बलवद्भिः सा दायादैः पृथिवी मम ॥ १० ॥ तां यथा प्राप्नुयां पृथ्वीं त्वत्प्रसादादहं विभो ॥ तथादिश करिष्यामि तवाज्ञां प्रणतोऽस्मि ते ॥११॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः स नीपो राजर्षिस्तस्मै निरवशेषतः ॥ भलन्दाय ददौ ब्रह्मन्नस्त्रग्रामं महात्मने ॥१२॥ प्राप्तास्त्रविद्यः स ययौ पितृव्यतनयान्द्विज ॥ वसुरातादिकान्पुत्रानादिष्टः स महात्मना ॥ १३ ॥

करूं ? ॥ ९ ॥ क्योंकि पृथ्वीपालन मेरे स्वीकार करनेपरभी इस समय बलवान् ज्ञातिगणके द्वारा आक्रान्त हो रही है ॥ १० ॥ अतएव हे विभो ! जिसमें आपके अनुग्रहसे मैं पृथ्वीलाभ करसकूं इस प्रणतजनको वही आज्ञा दीजिये, मैं उसीका अनुष्ठान करूंगा ॥ ११ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-हे ब्रह्मन् ! तब राजर्षि नीपने महात्मा भलन्दनको संपूर्ण अस्त्रविद्या प्रदान करी ॥ १२ ॥ हे द्विज ! भलन्दन अस्त्रविद्यालाभ करके राजर्षिकी आज्ञाग्रहणपूर्वक पितृव्यपुत्र वसुरात इत्यादिके निकट गये ॥ १३ ॥

और पितृपैतामहिक राज्यके अर्द्धांशकी प्रार्थना की। उन्होंने उत्तर दिया, "तुम वैश्यपुत्र हो, पृथ्वीपालन तुमको उचित नहीं है" ॥ १४ ॥ तब अस्त्रलाभ किये क्रोधित भलनन्दनका अस्त्रवर्षी ज्ञाति वसुरात इत्यादिके संग युद्धारंभ हुआ ॥ १५ ॥ तब धर्मात्मा भलन्दनने धर्मयुद्धमें ही सब सेनाको शस्त्रसे घायल करके पराजयपूर्वक पृथ्वी हरण करी ॥ १६ ॥ भलन्दने इस प्रकार शत्रुओंको जीत समस्त पृथ्वी राज्य पिताके चरणोंमें समर्पण किया, किन्तु पिता उसको ग्रहण न करके पत्नीके सामनेही पुत्रसे कहने लगे ॥ १७ ॥ नाभागने कहा–हे वत्स भलन्दन ! पूर्वपुरुषशासित यह राज्य तुम्हीं भोगो ॥ १८ ॥ मैं राज्य पालनमें असमर्थ हूं, ऐसा नहीं है पूर्वमें मैं पिताकी आज्ञामें रहकरभी पिताकी असम्मतिसे ॥ १९ ॥ वैश्यकन्या ग्रहण करनेके कारण वैश्यत्वको प्राप्त हो

अयाचत स राज्यार्धं पितृपैतामहोचितम् ॥ ते चोचुर्वैश्यपुत्रस्त्वं कथं भोक्ष्यसि मेदिनीम् ॥ १४ ॥ ततस्तैर्युद्धमभवद्भलन्दस्यात्मवंशजैः ॥ वसुरातादिभिः क्रुद्धैः कृतास्त्रस्यास्त्रवर्षिभिः ॥ १५ ॥ स जित्वा तानशेषांस्तु शस्त्रविक्षतसैनिकान् ॥ जहार पृथिवीं तेषां धर्मयुद्धेन धर्मवित् ॥ १६ ॥ स निर्जितारिः सकलां पृथ्वीं राज्यं तथा पितुः ॥ निवेदयामास ततस्तत्पिता जगृहे न च ॥ प्रत्युवाच स तं पुत्रं भार्यायाः पुरतस्तदा ॥ १७ ॥ नाभाग उवाच ॥ भलन्द राज्यमेतत्ते क्रियतां पूर्वजैः कृतम् ॥ १८ ॥ अहं न कृतवान्राज्यं नासामर्थ्ययुतः पुरा ॥ वैश्यतां तु पुरस्कृत्य तथैवाज्ञाकरः पितुः ॥ १९ ॥ कृत्वाऽप्रीतिं पितुरहं वैश्यकन्यापरिग्रहात् ॥ न पुण्यलोकभाग्राजा यावदाभूतसंप्लवम् ॥ २० ॥ उल्लंघ्याज्ञां पुनस्तस्य पालयामि महीं यदि ॥ नास्ति मोक्षस्ततो नूनं मम कल्पशतैरपि ॥ २१ ॥ न चापि युक्तं त्वद्बाहुनिर्जितं मम मानिनः ॥ राज्यं भोक्तुमनीहस्य दुर्बलस्येव कस्यचित् ॥ २२ ॥ राज्यं कुरु स्वयं पुत्र दायादेभ्यो विमुंच वा ॥ ममाज्ञापालनं शस्तं पितुर्न क्षितिपालनम् ॥ २३ ॥

राज्यभोगका अधिकारी नहीं होसका। अब मैं फिर यदि पिताकी आज्ञा उल्लंघन करके पृथ्वीका पालन करूं तो मिथ्या आज्ञाके कारण राजाभी प्रलयकालपर्यन्त पुण्यलोकभागी नहीं होसकेंगे और शतकल्पमेंभी मुझको मुक्ति प्राप्त होनेकी संभावना नहीं है ॥ २० ॥ २१ ॥ और मेरे समान निकारांक्षी मानी मनुष्यको, दुर्बलके परवर्जित विषय भोगके समान तुम्हारे बाहुबलसे जीताहुआ राज्य भोगना भी उचित नहीं है ॥ २२ ॥ तुम स्वयं राज्यपालन करो अथवा ज्ञातिगणको फिर देसकते हो, मुझको पिताकीही आज्ञा पालन करनी उत्तम है, पृथ्वीपालन उचित नहीं है ॥ २३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले-तब उनकी 'सुप्रभा' नामक भार्याने हँसकर कहा हे भूप! यह समृद्धिशाली राज्य ग्रहण कीजिये ॥ २४ ॥ आप वैश्य नहीं है और मैंनेभी वैश्यकुलमें जन्म नहीं लिया है, आपभी क्षत्रिय हैं और मैं भी क्षत्रियके कुलमें उत्पन्न हुई हूं ॥ २५ ॥ पूर्वकालमें सुदेवनामक एक विख्यात राजा थे और राजा धूम्राश्वके पुत्र नलनामक उनके सखा थे ॥ २६ ॥ हे पार्थिव! एक दिन वैशाखमासमें राजा इन सखा और पत्नियोंके सहित आम्रवनमें वनविहारको गये थे ॥ २७ ॥ वहां सखा और भार्याओंके सहित अनेक प्रकारसे खाने पीनेकी वस्तु भोगने लगे ॥ २८ ॥ तदनन्तर पुष्करिणीके तटमें

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः प्रहस्य तद्भार्या सुप्रभा नाम भामिनी ॥ प्रत्युवाच पतिं भूप गृह्यतां राज्यमूर्जितम् ॥ २४ ॥ न त्वं वैश्यो न चैवाहं जाता वैश्यकुले नृप ॥ क्षत्रियस्त्वं तथैवाहं क्षत्रियाणां कुलोद्भवा ॥ २५ ॥ पूर्वमासन्महीपालः सुदेव इति विश्रुतः ॥ तस्याभूच्च सखा राज्ञो धूम्राश्वस्य सुतो नलः ॥२६॥ स तेन सख्या सहितो जगामाम्रवनं वनम् ॥ पत्नीभिः स समं रन्तुं माधवेमासि पार्थिव ॥२७॥ ततः पानान्यनेकानि भक्ष्याणि बुभुजे तदा ॥ भार्याभिः सहितस्ताभिस्तेन सख्या समन्वितः ॥ २८ ॥ ततः पुष्करिणीतीरे ददर्शाति-मनोरमाम् ॥ पत्नीं च्यवनपुत्रस्य प्रमतेः पार्थिवात्मजाम् ॥ २९ ॥ सखा तस्य नलो मत्तो जगृहे तां च दुर्मतिः ॥ पश्यतस्तस्य राज्ञश्च त्रातत्रातेति वादिनीम् ॥ ३० ॥ आक्रन्दितं निशम्यैव स तस्याः प्रमतिः पतिः ॥ आजगाम त्वरायुक्तः किमेतदिति वै वदन् ॥ ३१ ॥ ततो ददर्श राजानं सुदेवं तत्र संस्थितम् ॥ गृहीतां च तथा पत्नीं नलेन सुदुरात्मना ॥३२॥ ततः सुदेवं प्रमतिः प्राहायं शास्यतामिति ॥ त्वं च शास्ता भवद्राज्ये दुष्टश्चायं नलो नृप ॥ ३३ ॥

च्यवनपुत्र महर्षि प्रमतिकी मनोहर पत्नीको देखा तब राजाके सखा दुर्मति नलने उसको ग्रहण किया। यह प्रमतिपत्नी किसी एक राजाकी कन्या थी। फिर प्रमतिपत्नी राजाके सन्मुख "रक्षा करो रक्षा करो" यह कहकर रोनेलगी॥२९॥३०॥ उसके पति महर्षि प्रमति दूरसे रोनेका शब्द सुनकर "यह क्या है? यह क्या है?" कहते कहते शीघ्र वहां आये ॥३१॥ वहां आनकर देखा कि, महाराज सुदेव बैठे हैं और दुरात्मा नल पत्नीको हरण कर रहाहै ॥३२॥ तब प्रमतिने सुदेवसे कहा, इसको निवृत्त कीजिये आपही राजा हैं आपही शासनकर्त्ता हैं, अतएव तुम्हीं इस दुष्टनलको शासन करना उचित है ॥ ३३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले-प्रमतिके इस प्रकार आर्त्तवचन सुनकर राजा सुदेवने नलके गौरवकी रक्षा करनेको कहा "मैं वैश्य हूं, आप रक्षाके लिये किसी क्षत्रियके निकट जाइये" ॥ ३४ ॥ प्रमतिने सुदेवके वचनसे अत्यन्त क्रोधित हो, अपने तेजसे मानो दग्ध करते करतेही "मैं वैश्य हूं" इस प्रकार उक्तिकारी उस राजासे कहा ॥ ३५ ॥ प्रमति बोले-तथास्तु । तुम सत्यही वैश्य हो, क्योंकि आर्त्तमनुष्योंकी रक्षाके लियेही क्षत्रियसंज्ञाकी उत्पत्ति है, 'आर्त्त' शब्दपर्यन्त न हो, इसी अभिप्रायसे क्षत्रिय गण शस्त्रधारण करतेहैं, अतएव तुम कभी क्षत्रिय नहीं हो तुम कुलाधम वैश्यही होगे ॥ ३६ ॥ इति श्रीमा० पु० भाषाटीकायां एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-हे द्विज ! भार्गव प्रमतिने इस प्रकार सुदेवको शाप देकर क्रोधसे मानो त्रैलोक्यके दग्ध करनेमें

मार्कण्डेय उवाच ॥ तस्यार्तस्य वचः श्रुत्वा सुदेवो नलगौरवात् ॥ प्राह वैश्योऽस्मि गच्छान्यं क्षत्रियं त्राणकारणात् ॥ ३४ ॥ ततः स प्रमतिः क्रुद्धस्तेजसा निर्दहन्निव ॥ प्रत्युवाचाथ राजानं वैश्योऽस्मीत्यभिभाषिणम् ॥ ३५ ॥ प्रमतिरुवाच ॥ एवमस्तु भवान्वैश्यः क्षत्रियः क्षतरक्षणात् ॥ क्षत्रियैर्धार्यते शस्त्रं नार्त्तशब्दो भवेदिति ॥ स त्वं न क्षत्रियो भावी वैश्य एव कुलाधमः ॥ ३६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नाभागचरिते एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥ मार्कंडेय उवाच ॥ तस्मै दत्त्वा ततः शापं नलं क्रुद्धोऽब्रवीद्द्विज ॥ प्रमतिर्भार्गवः कोपात्त्रैलोक्यं निर्दहन्निव ॥ १ ॥ मदोन्मत्तो यतो भार्यां भवानत्र ममाश्रमे ॥ बलाद्गृह्णाति भस्मत्वं तस्माद्व्रजतु मा चिरम् ॥२॥ तेनोदाहृतमात्रे च वाक्ये तस्मिस्तदा नलः ॥ देहजेनाग्निना सद्यो भस्मपुञ्जस्तदाऽभवत् ॥३॥ दृष्ट्वा प्रभावं तं तस्य सुदेवो विमदस्ततः ॥ प्रणामनम्रः प्राहेदं क्षम्यतां क्षम्यतामिति ॥४॥ यदुक्तवांस्त्वां भगवन्सुरापानमदाकुलम् ॥ तत्क्षम्यतां प्रसीद त्वं शापोऽयं विनिवर्त्यताम् ॥५॥

उद्यत हो नलसे कहा ॥ १ ॥ तैंने मदोन्मत्त होकर जब मेरे आश्रममें मेरी भार्याको बलात्कारसे ग्रहण किया है, तो तू अभी भस्म हो ॥ २ ॥ उनके वचनकी समाप्ति होतेही नल स्वदेहज अग्निद्वारा तत्काल भस्म होगया ॥ ३ ॥ तब सुदेव प्रमतिका इस प्रकार प्रभाव देख, ममता छोड प्रणाम करके विनीतभावसे कहने लगे-हे भगवन् ! क्षमा करो, क्षमा करो ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! सुरापानजनित मत्तताके कारण आपसे जो कुछ कहाहै, प्रसन्न होकर वह सब क्षमा कीजिये और यह शाप निवृत्त कीजिये ॥ ५ ॥

राजाके इस प्रकार प्रसन्न करनेपर और नलको दग्ध करने पर तब भार्गवप्रमतिका कोप शान्त हुआ। फिर वह अनासक्त चित्तसे कहने लगे यद्यपि मेरा वचन अन्यथा होनेवाला नहीं है, किन्तु तोभी प्रसन्नचित्तसे आपके ऊपर अनुग्रह करताहूं ॥ ६ ॥ ७ ॥ अवश्यही कुछ दिन आपको वैश्यजातीय होना पडेगा, किन्तु इस जन्ममेंही आप फिर क्षत्रिय होजायँगे ॥ ८ ॥ जब कोई क्षत्रियकुमार बलपूर्वक आपकी कन्याको ग्रहण करेगा, हे वैश्य ! उसी समय आप फिर स्वयं क्षत्रिय होंगे ॥ ९ ॥ हे भूपाल ! इस प्रकार मेरे पिता सुदेव वैश्य हुएथे। हे महाभाग ! अब मैं अपनाभी समस्त परिचय तुमसे कहतीहूं,

एवं प्रसादितस्तेन प्रमतिः प्राह भार्गवः ॥ गतकोपो नले दग्धे नावनीतेन चेतसा ॥ ६॥ नान्यथा भावि तद्वाक्यं यन्मया समुदीरितम् ॥ तथापि ते करिष्यामि प्रसन्नोऽनुग्रहं परम् ॥ ७ ॥ भविता वैश्यजातीयो भवान्नास्त्यत्र संशयः ॥ भविता क्षत्रियो वैश्यस्तस्मिन्नेवाशु जन्मनि ॥ ८ ॥ ग्रहीष्यति बलात्कन्यां यदा ते क्षत्रसम्भवः ॥ तदा त्वं क्षत्रियो वैश्यः स्वगृहीतो भविष्यसि ॥ ९ ॥ एवं स वैश्यो भूपाल सुदेवोऽस्मत्पिताभवत् ॥ अहं च या महाभाग तत्सर्वं श्रूयतां त्वया ॥ १०॥ सुरतो नाम राजर्षिः प्रागासीद्गन्धमादने ॥ तपस्वी नियताहारस्त्यक्तसङ्गो वनाश्रयः ॥ ११॥ ततः श्येनमुखभ्रष्टां दृष्ट्वैकां शारिकां भुवि ॥ कृपाऽभूज्जनिता मूर्च्छा तथा तस्य महात्मनः ॥ १२॥ ततो मूर्च्छावसानेऽहं तस्योत्पन्ना शरीरतः ॥ स मां दृष्ट्वा च जग्राह स्निह्यमानेन चेतसा ॥ १३ ॥ यस्मात्कृपाभिभूतस्य मम जातेयमात्मजा ॥ तस्मात्कृपावती नाम्ना भविष्यत्याह स प्रभो ॥ १४ ॥ ततोऽहमाश्रमे तस्य वर्धमाना दिवानिशम् ॥ सखीभिः सह तुल्याभिर्विचरामि वनानि च ॥ १५ ॥

सुनो ॥ १० ॥ पूर्वकालमें सुरथनामक राजर्षि गंधमादन पर्वतमें वनाश्रयपूर्वक नियताहार और संगरहित हो तपस्या करते थे ॥ ११ ॥ एक समय पृथ्वीतलमें एक बाजके मुखसे छूटीहुई शारिका देखकर कृपासे उन महात्माको मूर्च्छा उपस्थित हुई ॥ १२॥ हे प्रभो ! फिर मूर्च्छाके दूर होनेपर मैं उनके शरीरमेंसे उत्पन्न हुई। उन्होंनेभी मुझको देखकर स्नेहार्द्रचित्तसे ग्रहण कर लिया ॥ १३॥ और कहा " मेरे कृपाभिभूत होनेपर इस कन्याने जन्म ग्रहण किया है, अतएव इसका नाम " कृपावती " हुआ ॥ १४ ॥ इसके पीछे मैं उनके आश्रममें रहकर दिन दिन बढने लगी और समान अवस्थावाली

सखियोंके संग सदा बनोंमें विचरण करने लगी ॥ १५ ॥ एक दिन अगस्त्यके समान प्रभावशाली अगस्त्यमुनिके भ्राता वनमें पुष्पादि बीनते थे इसी समयमें मेरी सखियोंने उनको क्रोधित किया, तब उन्होंने क्रोधित चित्तसे मुझको यह कहकर शाप दिया कि, "तैंने मुझको वैश्य कहा है, इस कारण तू मेरे शापसे वैश्यकीही कन्या होगी" यह दारुण शाप सुनकर मैंने उनसे कहा–हे द्विजसत्तम ! मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया है, अन्यके अपराधमें मुझको शाप क्यों देतेहो ? ॥ १६ ॥ १७॥ ऋषि बोले–केवल एक बूँद सुराके पडनेसेही जिस प्रकार पंचगव्यपूर्ण घट दूषित होजाता है, ऐसेही निर्दोष मनुष्यभी दुष्टका संसर्ग होनेसे दुष्ट होजाता है ॥ १८ ॥ हे बालिके ! तैंने प्रणामपूर्वक "मैं दुष्टा नहीं हूं" कहकर जो मुझे प्रसन्न किया है इस निमित्त

ततो मुनेरगस्त्यस्य भ्रातागस्त्य इति श्रुतः ॥ स चिन्वन्कानने वन्यं सखीभिः कोपितोऽशपत् ॥ १६ ॥ यस्मान्मां वैश्य इत्याह भवती तेन ते शपे ॥ वैश्या भविष्यसीत्युक्ते प्रसाद्योक्तो मया मुनिः ॥ नापराधं कृतवती तवाहं द्विजसत्तम ॥ अन्यासामपराधेन किमर्थं शप्तवानसि ॥ १७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ दुष्टतां दुष्टसंसर्गाददुष्टमपि गच्छति ॥ सुराबिंदुनिपातेन पञ्चगव्यघटो यथा ॥१८॥ प्रणिपत्य ह्यनिष्टोऽपि यत्त्वयाहं प्रसादितः ॥ तस्मादनुग्रहं बाले शृणुष्व च करोम्यहम् ॥ १९ ॥ वैश्ययोनौ यदा जाता त्वं पुत्रं बोधयिष्यसि ॥ राज्याय जातिस्मरतां तदा त्वं समवाप्स्यसि ॥ २० ॥ ततो भूयः क्षत्रजातिं प्राप्ता त्वं पतिना सह ॥ दिव्यानवाप्स्यसे भोगान्गच्छभीतिरपैतु ते ॥ २१ ॥ एवं शप्तास्मि राजेन्द्र तेन पूर्वं महर्षिणा ॥ पिता च मे पूर्वमेवं शप्तः प्रमतिनाऽभवत् ॥ २२ ॥

मैं तुझपर अनुग्रह करताहूं सुन ॥ १९ ॥ तू वैश्ययोनिमें उत्पन्न होकर जब अपने पुत्रको राज्यलाभके लिये नियुक्त करेगी, उसी समय तू जातिस्मरताको प्राप्त होगी ॥ २० ॥ और पतिके संग फिर क्षत्रियत्वको प्राप्त होकर दिव्य भोगमें अधिकारिणी होगी । अतएव अब आश्रममें जा और भय परित्याग कर ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार उन महर्षिके द्वारा पूर्वकालमें मैं शापको प्राप्त हुई थी और प्रमतिने पूर्वकालमें मेरे पिताकोभी ऐसाही शाप दिया था ॥ २२ ॥

सुतरां हे राजन् ! आप वा मेरे पिता कोई वैश्य नहीं हैं। इसी भाँति मेरे निर्दोष होनेपर मेरे संसर्गसे आप किस प्रकार दूषित होंगे, अतएव ऐसा कभी नहीं आप सदा अदुष्ट हैं ॥ २३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—धर्मज्ञराजाने भार्या और पुत्रके यह वचन सुनकर फिर उनसे पृथक् पृथक् कहा ॥ १ ॥ पत्नीसे कहा मैंने पिताकी आज्ञानुसार जिस राज्यको एक बार त्यागदिया है, उसको अब फिर ग्रहण नहीं करूंगा तुम वाक्य व्ययकरके क्यों वृथा कष्ट पातीहो ? ॥ २ ॥ पुत्रसे कहा मैं वैश्यवृत्तिमेंही रहकर तुमको कर दूंगा तुम यह संपूर्ण राज्य भोगो; अथवा इच्छा हो तो परित्यागभी कर सकते हो ॥ ३ ॥ राजपुत्र भलन्दन इस प्रकार पिताकी आज्ञा पाय धर्मानुसार राज्यपालन करनेलगे

एवं वैश्यो न राजंस्त्वं न च वैश्यः पिता मम ॥ न त्वं हि मय्यदुष्टायामदुष्टो दुष्यसे कथम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा पुत्रस्य स च पार्थिवः ॥ पुनः प्रोवाच धर्मज्ञस्तां पत्नीं तनयं तथा ॥ १ ॥ यन्मया पितुरादेशात्त्यक्तं राज्यं न तत्पुनः ॥ ग्रहीष्यामि वृथोक्तेन किमात्मा क्लिश्यते त्वया ॥ २ ॥ अहं ते सम्प्रदास्यामि करं वैश्यव्रते स्थितः ॥ भुङ्क्ष्व राज्यमशेषं त्वमिच्छया वा परित्यज ॥ ३ ॥ इत्युक्तः स तदा पित्रा राजपुत्रो भलन्दनः ॥ चकार राज्यं धर्मेण तद्वद्दारपरिग्रहम् ॥ ४ ॥ अव्याहतं तस्य चक्रं पृथिव्यामभवद्द्विज ॥ न चाधर्मे मनो भूपास्तस्य सर्वेऽभवन्वशे ॥५॥ तेनेष्टो विधिवद्यज्ञैः सम्यक्शास्ति वसुन्धराम् ॥ स एवैकोऽभवद्भर्त्ता पृथिव्यामरिशासनः ॥ ६ ॥ अजायत सुतस्तस्य वत्सप्रीरिति नामतः ॥ पितातिशयितो येन गुणौघेन महात्मना ॥ ७ ॥

और यथासमयमें दारपरिग्रह अर्थात् विवाह किया ॥ ४ ॥ हे द्विज ! पृथ्वीके समस्त स्थानोंमेंही उनका रथचक्र (बेरोक टोक भ्रमा था) उनका मनभी कभी अधर्ममार्गमें अग्रेसर नहीं हुआ अतएव संपूर्ण भूपालही उनके वशीभूत हुए थे ॥ ५ ॥ वह यथाविधि यज्ञानुष्ठान और वसुंधराका सम्यक् प्रकार पालन करते थे क्रमानुसार सब पृथ्वीमेंही उनका शासन व्याप्त होनेसे वह पृथ्वीके अद्वितीय अधीश्वर हुए थे ॥ ६ ॥ वत्सप्री नामक उनके एक पुत्र हुआ था और उस महात्माने गुणोंसे पिताको विवर्द्धित किया था ॥ ७ ॥

विदूरथकन्या सौनन्दा नामक वत्सश्रीकी भार्या थी वह इन्द्रके शत्रु कुजृम्भ नामक दैत्यनाथको मारकर इस पतिव्रता महाभाग्यवतीको प्राप्त हुए थे ॥ ८ ॥ क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! वत्सश्रीने किस प्रकार कुजृम्भको मारकर सौनन्दाको प्राप्त किया था, आप प्रसन्नचित्तसे यह आख्यान वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—भूमण्डलमें विदूरथ नामक विख्यात कीर्ति एक राजा थे, उनके सुनीति और सुमति नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ १० ॥ किसी समय विदूरथने मृगयाके लिये जाकर पृथ्वीका मुखस्वरूप निकला हुआ एक बडा गर्त्त (गढा) देखा ॥ ११ ॥ उन्होंने वह भयंकर गर्त्त देखकर पहिले विचारा

तस्यापि भार्या सौनन्दा विदूरथसुताऽभवत् ॥ पतिव्रता महाभागा सा प्राप्ता तेन शौर्यतः ॥ हत्वा पुरन्दररिपुं कुजृंभं दितिजेश्वरम् ॥८॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ भगवंस्तेन संप्राप्ता कुजृंभनिधनात्कथम् ॥ एतदाख्यानमाख्याहि प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ विदूरथो नाम नृपः ख्यातकीर्तिरभूद्भुवि ॥ तस्य पुत्रद्वयं जातं सुनीतिः सुमतिस्तथा ॥ १० ॥ एकदा तु वनं यातो मृगयां स विदूरथः ॥ ददर्श गर्तं सुमहद्भूमेर्मुखमिवोद्गतम् ॥ ११ ॥ तं दृष्ट्वा चिन्तयामास किमेतदिति भैरवम् ॥ पातालविवरं मन्ये नैतद्भूमेश्चिरन्तनम् ॥ १२ ॥ चिन्तयन्निति तत्रासौ ददर्श विजने वने ॥ ब्राह्मणं सुव्रतं नाम तपस्विनमुपागतम् ॥ १३ ॥ स तं पप्रच्छ च नृपः किमेतदिति विस्मितः ॥ अतिगम्भीरमवनेर्दर्शितांतर्गतोदरम् ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ किन्न वेत्सि महीपाल वागर्थस्त्वं हि मे मतः ॥ ज्ञेयं सर्वं नरेन्द्रेण वर्तते यन्महीतले ॥ १५ ॥

“ यह क्या है ? ” फिर सोचा “ यह कभी पुरातन समयका भूमिविवर नहीं है मुझको बोध होताहै कि, यह पाताल विवर है ” ॥ १२ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते थे, इसी अवसरमें उस विजन वनमें सुव्रत नामक एक ब्राह्मण तपस्वीको आताहुआ देखा ॥ १३ ॥ आश्चर्ययुक्त राजाने उसको पृथ्वीका वह गंभीर विवर दिखाय “ यह क्या है ” इस प्रकार कहकर उसका वृत्तान्त पूछा ॥ १४ ॥ ऋषिने कहा—हे महीपाल ! आप क्या इसको नहीं जानते ? जब पृथ्वीका समस्त वृत्तान्तही राजाको जान रखना उचित है, तो मेरे मतसे आप यह सुननेके यथार्थ योग्य पात्र हैं ॥ १५ ॥

महावीर्यशाली उग्र एक दानव रसातलमें वास करता है। वह पृथ्वीको जृम्भित (जँभाईवाला) करता है; इस कारण सब उसको कुजृम्भ कहते हैं ॥१६॥ हे नराधिप! इस भूमण्डल और स्वर्ग राज्यके प्रतिप्राणीमेंही जो समस्त घटना होती है, वह सब इसीका कार्य है, आप क्या उसको जानते नहीं हैं? ॥१७॥ पूर्वकालमें विश्वकर्माने सुनन्दनामक जो मुशल निर्माण किया था, यह दुरात्मा उसीको ग्रहण करके युद्धकालमें उसीके द्वारा शत्रुओंका हनन करता है ॥ १८ ॥ और उसके द्वाराही रसातलमें पृथ्वी भेदकर अन्यान्य सब असुरोंके लिये द्वार बनाता है ॥ १९ ॥ उस सुनन्द मुशलके आघातसेही इस-स्थानको पृथ्वी भेदकर उसने यह विचार किया है आप उसको विना पराजय किये किस प्रकार भोग करते हैं? उग्रकर्मा दैत्य मुशलायुधसे अधिक

दानवः सुमहावीर्यो वसत्युग्रो रसातले ॥ स जृम्भयति यत्पृथ्वीं कुजृम्भः प्रोच्यते ततः ॥ १६ ॥ क्रियते तेन यत्किञ्चिद्रत्नभूतं मही-तले ॥ त्रिदिवे वा नरपते तं कथं वेत्ति नो भवान् ॥ १७ ॥ सुनन्दं नाम मुशलं त्वष्ट्रा यन्निर्मितं पुरा ॥ तज्जहार स दुष्टात्मा तेन हन्ति रणे रिपून् ॥ १८॥ पातालान्तर्गतस्तेन भिनत्ति वसुधामिमाम् ॥ ततोऽसुराणां सर्वेषां द्वाराणि कुरुतेऽसुरः ॥१९॥ तेन भिन्नात्र वसुधा सुनन्दमुशलेन तु ॥ भोक्ष्यते वसुधामेतां तमजित्वा कथं भवान् ॥ २० ॥ यज्ञान्विध्वंसयत्युग्रो देवानामुपरोधकः ॥ आप्याययति दैते-यान्स बली मुशलायुधः ॥ २१ ॥ यद्यरिं घातयस्येनं पातालान्तरगोचरम् ॥ ततः समस्तवसुधापतिस्त्वं परमेश्वरः ॥ २२ ॥ मुशलं तस्य बलिनः सौनन्दं प्रोच्यते जनैः ॥ तथा बलाबलं चैव तं वदन्ति विचक्षणाः ॥ २३ ॥ तत्तु निर्वीर्यतां याति संस्पृष्टं योषिता नृप ॥ तस्मिन्दिने द्वितीयेऽह्नि वीर्यवत्तदुदीर्यते ॥ २४ ॥

बलशाली होकर यज्ञकर्मका विनाश और देवताओंको व्यथित करताहुआ दैत्योंको तृप्त करता है ॥ २० ॥ २१ ॥ आप यदि पातालमें रहनेवाले इस शत्रुको पराजय करसकेंगे तो आप संपूर्ण पृथ्वीके अधीश्वर होकर परमेश्वर (सम्राट्) होनेमें समर्थ होंगे ॥२२॥ जनगण इस मुशलको "सौनन्द" कहते हैं और विचक्षण पुरुषभी उसके बलाबल सम्बन्धमें इस प्रकार कहतेहैं ॥ २३ ॥ वह मुशल जिस दिन स्त्रीके हाथसे छुआजाय उस दिन वीर्यहीन होता है और उसके दूसरेही दिन फिर पूर्ववत् बलशाली होजाता है ॥ २४ ॥

किन्तु वह दुराचारी मुशलका यह प्रभाव और स्त्रीजातिके हस्ताग्रस्पर्शसेभी उसके बलहानिरूप दोषकी बात नहीं जानता है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! दुरात्मा दानवका और मुशलका इस प्रकार बल आपसे कहागया । अब मेरे कहनेके अनुसार कार्य कीजिये ॥ २६ ॥ हे महीपते ! तुम्हारे पुरके निकटही उसने यह भूमिरन्ध्र किया है, फिर आप क्यों निश्चिन्त होरहे हैं ? ॥ २७ ॥ जब ऋषि इस प्रकार कहकर चलेगये तब राजाभी अपने पुरमें आये और वहां मंत्रज्ञ मंत्रियोंसे मंत्रणा करनेलगे ॥ २८ ॥ मूशलका प्रभाव और वीर्यहानि इत्यादि जो जो सुन आये थे, वह सब मंत्रियोंके समीप प्रकाशित किया ॥ २९ ॥ जब

न स वेत्ति दुराचारः प्रभावं मुशलस्य तम् ॥ योषित्कराग्रसंस्पर्शे दोषं वीर्यविशातनम् ॥ २५ ॥ एवं तस्य बलं भूप दानवस्य दुरात्मनः ॥ मुशलस्य च ते प्रोक्तं यद्युक्तं तत्समाचर ॥ २६ ॥ आसन्नमेतद्भवतः पुरस्य पृथिवीपते ॥ कृतं तेन महारंध्रं निश्चिन्तः किं भवान्वृथा ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा तु गते तस्मिन्पुरं गत्वा महीपतिः ॥ मन्त्रयामास मन्त्रज्ञैः पुरमध्ये तु मन्त्रिभिः ॥ २८ ॥ यथाश्रुतमशेषं तत्कथयामास मन्त्रिणाम् ॥ मुशलस्य प्रभावं च वीर्यशातनमेव च ॥ २९ ॥ तं मन्त्रं क्रियमाणं तु मन्त्रिभिस्तेन भूभृता ॥ तत्पार्श्ववर्तिनी कन्या शुश्रावाथ मुदावती ॥ ३० ॥ ततः कतिपयाहे तु तां कन्यां वयसान्विताम् ॥ जहारोपवनाद्दैत्यः कुजृम्भः स सखीवृताम् ॥ ३१ ॥ तच्छ्रुत्वा स महीपालः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ पुत्रावुवाच त्वरितं गच्छतं वनकोविदौ ॥ ३२ ॥ निर्विन्ध्यायास्तटे गर्तस्तेन गत्वा रसातलम् ॥ स हन्यतां योऽपहर्ता मुदावत्याः सुदुर्मतिः ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततस्तौ तत्सुतौ प्राप्य तं गर्त्तं तत्पदानुगौ ॥ युयुधाते कुजृम्भेण स्वसैन्येनातिकोपितौ ॥ ३४ ॥

राजा मंत्रियोंके संग यह परामश कर रहे थे, उनकी कन्या मुदावतीभी उस समय पार्श्वमें बैठीहुई सब सुन रही थी ॥ ३० ॥ इस घटनाके कई दिन पीछेही सखियोंके संग मुदावती जब उपवनमें थी तब कुजृम्भदैत्यने उस अवस्थावाली कन्याको उस उपवनसे हरण किया ॥ ३१ ॥ यह संवाद सुनतेही महीपालने क्रोधसे नेत्र लाल कर वनप्रदेशके जाननेवाले दोनों पुत्रोंसे कहा, तुम वनप्रदेशके जाननेवाले हो अतएव तुम शीघ्र जाओ ॥ ३२ ॥ निर्विन्ध्यानदीके तटमें जो गर्त्त है, उसके द्वारा रसातलमें जाकर मुदावतीके हरण करनेवाले उस दुर्मतिको मारो ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--अनन्तर दोनों राजपुत्र उस गर्त्तपर पहुँचे,

उसमें उसके पैरोंके अनुसरणसे गमन करके अत्यन्तक्रोधपूर्वक अपनी सेनासहित कुजृम्भके संग युद्ध किया ॥ ३४ ॥ तिस समय परिघ, निस्त्रिंश (आयुध-विशेष), शक्ति, शूल, फरशे और बाणोंके द्वारा उनका अविरत दारुण युद्ध होनेलगा ॥ ३५ ॥ किन्तु मायाके बलसे बली दैत्योंने युद्धस्थलमें दोनों राज-पुत्रोंकी संपूर्ण सेना मारकर दोनोंको बाँधलिया ॥ ३६ ॥ हे मुनिसत्तम ! दोनों पुत्रोंके बंधनका सम्वाद जब महीपालने सुना तब हृदयमें अत्यन्त दुःखित होकर सेनासे कहा कि ॥ ३७ ॥ जो उस दैत्यको मारकर मेरी कन्या और दोनों पुत्रोंको छुडासकेगा उसको अपनी बडी बडे नेत्रोंवाली मुदावती कन्या दूंगा ॥ ३८ ॥ हे मुने ! राजाने पुत्र कन्याके छूटनेके विषयमें निराश होकर अपने नगरमें इस प्रकार ढंढोरा पिटवाया था ॥ ३९ ॥ बलवान् वीर्यशाली

ततः परिघनिस्त्रिंशशक्तिशूलपरश्वधैः ॥ बाणैश्चाविरतं युद्धं तेषामासीत्सुदारुणम् ॥ ३५ ॥ ततो मायाबलवता तेन दैत्येन तावुभौ ॥ राजपुत्रौ रणे बद्धौ निहताशेषसैनिकौ ॥३६॥ तच्छ्रुत्वा स महीपालः प्राहेदं सर्वसैनिकान् ॥ बद्धपुत्रः परामार्तिमुपेतो मुनिसत्तम ॥३७॥ यस्तं निहत्य दैतेयं मोचयिष्यति मे सुताम् ॥ तस्याहं संप्रदास्यामि तामेवायतलोचनाम् ॥ ३८ ॥ इत्येवं घोषयांचक्रे स राजा स्वपुरे तदा ॥ निराशः पुत्रतनयाबन्धमोक्षाय वै मुने ॥३९॥ ततः शुश्राव वत्सप्रीर्भलन्दनसुतो हि तत् ॥ आघोष्यमाणं बलवान्कृतास्त्रः शौर्य-संयुतः ॥ ४० ॥ स चागम्याभिवाद्यैनं प्राह पार्थिवसत्तमम् ॥ विनयावनतो भूत्वा पितुर्मित्रमनुत्तमम् ॥ ४१ ॥ आज्ञापयाशु मामेव तनयौ मोचयामि ते ॥ तवैव तेजसा हत्वा तं दैत्यं तनयां च ते ॥४२॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ स तं मुदा परिष्वज्य प्रियसख्युरथात्मजम् ॥ गम्यतामिति संसिद्ध्यै वत्सेत्याह स पार्थिवः ॥ ४३ ॥ स्थाने स्थास्यति मे वत्सो यद्येवं कुरुते विधिम् ॥ वत्सैतात्क्रियतामाशु यद्यु-त्साहि मनस्तव ॥ ४४ ॥

अस्त्रवित् भलन्दनपुत्र वत्सप्री यह घोषणा सुनकर आये और पिताके मित्र पार्थिवसत्तम विदूरथको प्रणाम करके विनयसे नम्र होकर कहा ॥ ४० ॥ ४१ ॥ " मुझको आज्ञा दीजिये मैं अभी आपके तेजबलसे उस दैत्यको मारकर आपकी कन्या और पुत्रोंको छूडाताहूं " ॥ ४२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-राजाने मित्रपुत्र वत्सप्रीको सहर्ष आलिंगन करके कहा " हे वत्स ! कार्यसिद्धिके लिये जाओ ॥ ४३ ॥ यदि यह कार्य करसको तो तुम्हारे द्वारा यथार्थ मित्रपुत्रका काय संपन्न हुआ समझूंगा और हे वत्स ! यदि इस कार्यमें तुम्हारा मन अत्यन्त उत्साहपूर्ण हो, तो इस कार्यको शीघ्र संपादन करो " ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले–इसके पीछे महावीर वत्सप्री खड्ग, धनुष, गोधा और अंगुलित्राण (चर्मका अंगुलीमें पहराजाता है) इत्यादि धारण कर उसी गर्त्तके द्वारा शीघ्रपदसे पातालमें घुसे ॥ ४५ ॥ और वहां राजपुत्रने अपने उग्र धनुषके प्रत्यंचाकी टंकार करी कि, जिससे संपूर्ण पातालविवर परिपूर्ण होगया ॥ ४६ ॥ दानवपति कुजृम्भ इस धनुषकी प्रत्यंचाका शब्द सुननेसे अत्यन्त क्रोधित हो अपनी सेनासहित आनकर उपस्थित हुआ ॥४७॥ तब बलशाली सेनासे युक्त राजपुत्रके संग सेनाकी अधिकाईसे बली कुजृम्भका युद्ध हुआ ॥ ४८ ॥ दानव तीन दिनतक उनके संग संग्राम करके क्रोधितचित्तसे मूशल लेनेको दौडा ॥ ४९ ॥ हे महाभाग ! प्रजापतिनिर्मित वह मूशल गंध, माल्य, धूप इत्यादिके द्वारा पूजित होकर

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः सखड्गः सधनुर्बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ॥ जगाम वीर पातालं तेन गर्तेन सत्वरः ॥ ४५ ॥ ततो ज्यास्वनमत्युग्रं स चक्रे पार्थिवात्मजः ॥ येन पातालमखिलमासीदापूरितान्तरम् ॥४६॥ ततो ज्यास्वनमाकर्ण्य कुजृम्भो दानवेश्वरः ॥ आजगामातिकोपेन स्वसैन्यपरिवारितः ॥४७॥ ततो युद्धमभूत्तस्य तेन पार्थिवसूनुना ॥ ससैन्यस्य ससैन्येन बलिनो बलशालिना ॥४८॥ दिनानि त्रीणि स यदा योधितस्तेन दानवः ॥ ततः कोपपरीतात्मा मुसलायाभ्यधावत ॥४९॥ गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैः पूज्यमानः स तिष्ठति ॥ अन्तःपुरे महाभाग प्रजापतिविनिर्मितः ॥ ५० ॥ ततो विज्ञातमुशलप्रभावा सा मुदावती ॥ पस्पर्श मुशलश्रेष्ठमतिनम्रशिरोधरा ॥ ५१ ॥ पुनर्यावत्स गृह्णाति मुशलं तं महासुरः ॥ तावत्सा वन्दनव्याजात्पस्पर्शानेकशः शुभा ॥५२॥ ततः स गत्वा युयुधे मुसलेनासुरेश्वरः ॥ व्यर्था मुशलपातास्ते संजग्मुस्तेषु शत्रुषु ॥५३॥ परमास्त्रे तु निर्वीर्ये सौनन्दे मुशले मुने ॥ अस्त्रैः शस्त्रैश्च दैतेयः सोऽयुध्यत रणेऽरिणा ॥५४॥

अन्तःपुरमें रक्खा रहता था ॥ ५० ॥ मुदावती पहिलेसेही मूशलका प्रभाव जानती थी, उसने मस्तक झुकाकर उसको स्पर्श कर दिया था ॥ ५१ ॥ और जब असुरने वह मूशल ग्रहण किया तबतक उस सुंदरीने पूजाके बहाने उसको वारंवार स्पर्श किया था ॥५२॥ इसके उपरान्त असुरपति रणस्थलमें उपस्थित हो मूशलके द्वारा युद्ध करनेलगा । किन्तु शत्रुओंमें मुशलपात व्यर्थ होनेलगा ॥ ५३॥ हे मुने ! सौनन्द परम अस्त्र मुशलके वीर्यहीन होने पर दैत्य अस्त्रशस्त्रद्वाराही संग्राममें शत्रुके संग युद्ध करनेलगा ॥ ५४ ॥

किन्तु दैत्यराज पुत्रके समान अस्त्रशस्त्रद्वारा युद्धमें पारदर्शी नहीं था और उसको जो मूशलका बल था, वहभी बुद्धिबलसे व्यर्थ किया गया था ॥ ५५ ॥ अतएव राजपुत्रने उसके संपूर्ण अस्त्र शस्त्र व्यर्थ करके उसको तत्काल रथविहीन किया। तब दैत्य फिर तलवार और ढाल ग्रहण करके दौडाहुआ आया ॥५६॥ इन्द्रशत्रु उस दैत्यके क्रोधयुक्त होकर वेगसहित आनेपर राजपुत्रने कालाग्नितुल्य चमकतेहुए आग्नेयास्त्रद्वारा उसको वध किया ॥५७॥ देव-शत्रु कुजृम्भने उस आग्नेयास्त्रसे हृदयमें अत्यन्त घायल हो जैसेही प्राण परित्याग किया, उसी समय पातालवासी उरगोंमें महाउत्सव उपस्थित हुआ ॥५८॥

शस्त्रास्त्रैर्नः समस्तस्य राजपुत्रस्य सोऽसुरः ॥ मुशलेन बलं तस्य तच्च तन्व्या निराकृतम् ॥ ५५ ॥ ततः पराजित्य स भूपसूनुरस्त्राणि शस्त्राणि च दानवस्य ॥ चकार सद्यो विरथं ततश्च सचर्मखड्गः पुनरप्यधावत् ॥ ५६॥ तमापतन्तं रभसाऽभ्युदीर्णं विस्पष्टकोपं त्रिदशेन्द्र-शत्रुम् ॥ शस्त्रेण वह्नेर्भुवि राजपुत्रो जघान कालानलसप्रभेण ॥ ५७ ॥ स पावकास्त्रेण हृदि क्षतो भृशं तत्याज देहं त्रिदशारिरात्मनः ॥ बभूव सद्यश्च महोरगाणां रसातलान्तेषु महानथोत्सवः ॥ ५८ ॥ ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिर्महीपालसुतोपरि ॥ जगुर्गन्धर्वपतयो देववाद्यानि सस्वनुः ॥ ५९ ॥ स चापि राजपुत्रस्तं हत्वा तौ नृपतेः सुतौ ॥ मोचयामास तन्वङ्गीं तां च कन्यां मुदावतीम् ॥ ६० ॥ तस्मिापि मुसलं तस्मिन्कुजृम्भे विनिपातिते ॥ जग्राह नागाधिपतिरनन्तः शेषसंज्ञितः ॥६१॥ तस्याश्च परितुष्टोऽसौ शेषः सर्वोरगेश्वरः ॥ मुदावत्या मुदा ध्यातमनोवृत्तिस्तपोधनः ॥ ६२ ॥ सुनन्दमुसलस्पर्शं यच्चकार पुनः पुनः ॥ योषित्करतलस्पर्शप्रभावज्ञातिशोभना ॥ ६३ ॥

तिस काल राजपुत्रके ऊपर पुष्पवृष्टि होनेलगी, गंधर्वोंने संगीत आरंभ किया और समस्त देवबाजे बज उठे ॥५९॥ राजपुत्र वत्सप्रीनेभी दैत्यका विनाश करके सुनीति और सुमति नामक दोनों राजपुत्र और राजकन्या क्षीणाङ्गी मुदावतीको छुडाया ॥ ६० ॥ कुजृम्भके मारेजानेपर शेषनामक नागराज अनन्तने उस मूशलको ग्रहण किया ॥६१॥ और हे द्विज ! तपोधन नागराज राजकन्या मुदावतीका अभिप्राय समझकर सहर्ष उसके प्रति संतुष्ट हुए ॥६२॥ स्त्रीके करतलस्पर्शका प्रभाव जानकर मुदावतीने जो बारम्बार मूशलको स्पर्श किया था ॥ ६३ ॥

इस कारण नागराजने सानन्द मुदावतीका सौनन्द मूशलके गुणसे ' सुनन्दा ' यह नाम रक्खा ॥६४॥ राजपुत्रने दोनों भ्राताओंके सहित उस कन्याको शीघ्र पिताके समीप लाय प्रणामपूर्वक कहा ॥६५॥ हे तात! आपकी आज्ञानुसार आपके यह दोनों पुत्र और मुदावतीको ले आयाहूं, अब मुझको अन्य जो करना होगा, उसकी आज्ञा दीजिये ॥ ६६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–तब महीपालने प्रीतिपूर्ण हृदय हो उच्चस्वर और मधुर वचनोंसे "साधु वत्स! साधु वत्स!" इस प्रकार कहकर ॥ ६७ ॥ फिर कहा हे वत्स! आज मैं तीन कारणोंसे देवताओंके द्वाराभी प्रशंसित हुआहूं। प्रथम तो तुमको जामात प्राप्त किया, दूसरे शत्रु मारागया ॥ ६८ ॥ और तीसरे मेरे पुत्र कन्या फिर अक्षत शरीर (स्वस्थशरीर) से यहां लौट आये हैं, अतएव हे राजपुत्र!

मुदावत्यास्ततो नाम नागराजस्तदाकरोत् ॥ सुनन्दामिति सानन्दं सौनन्दगुणजं द्विज ॥ ६४ ॥ स चापि राजपुत्रस्तां भ्रातृभ्यां सहितां पितुः ॥ समीपमानिनायाशु प्रणिपत्याह चैव तम् ॥ ६५ ॥ आनीतौ तनयौ तात तथैवेयं मुदावती ॥ तवाज्ञया मयान्यद्यत्कर्तव्यं तत्स-मादिश ॥ ६६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः प्रहर्षसंपूर्णहृदयः स महीपतिः ॥ साधुसाध्वित्यथाहोच्चैर्वत्स वत्सेति शोभनम् ॥६७॥ सभा-जितोऽस्मि त्रिदशैर्वत्साहं कारणैस्त्रिभिः ॥ त्वं जामाता च यत्प्राप्तो यच्चारिर्विनिपातितः ॥ ६८ ॥ आगतान्यक्षतान्यत्र यच्चापत्यानि मे पुनः ॥ तद्गृहाणाद्य शस्तेऽह्नि पाणिमस्या मयोदितम् ॥ ६९ ॥ त्वं राजपुत्र चार्वङ्ग्याः कन्याया दुहितुर्मम ॥ मुदावत्या मुदा युक्तः सत्यवाक्यं कुरुष्व माम् ॥ ७० ॥ राजपुत्र उवाच ॥ तातस्याज्ञा मया कार्या यद्ब्रवीषि करोमि तत् ॥ त्वमेव तात जानीषे नैवात्राधि-कृता वयम् ॥ ७१॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततस्तयोः स राजेन्द्रश्चक्रे वैवाहिकं क्रमम् ॥ मुदावत्याश्च दुहितुर्भलन्दनसुतस्य वै ॥ ७२ ॥

आज शुभदिनमें मेरी आज्ञानुसार सहर्ष शोभनाङ्गी लक्षणयुक्त मेरी इस दुहिता मुदावतीका पाणिग्रहण करो, तो मैं सत्यवादी हूंगा ॥ ६९ ॥ ७० ॥ राजपुत्रने कहा हे तात! आपकी आज्ञा अवश्यही प्रतिपालन करने योग्य है, अतएव जो आज्ञा देते हो वही करूंगा हे तात! आपभी जानते हैं कि, पूज्यपुरुषोंकी आज्ञा पालनमें मैं कभी विमुख नहीं हुआ ॥७१॥ मार्कण्डेयजी बोले–अनन्तर राजेन्द्र विदूरथने कन्या मुदावती और भलन्दनपुत्र वत्स-श्रीका विवाहकार्य संपादन किया ॥ ७२ ॥

तदनन्तर नवयुवक वत्सप्रीभी सुदावतीके सहित रमणीयदेश और प्रासादशिखरमें विहार करने लगे ॥७३॥ कालक्रमसे वत्सप्रीके पिता भलन्दन वृद्ध होकर वनमें चलेगये, तब वत्सप्री राजा होकर ॥ ७४ ॥ यज्ञानुष्ठान और धर्मानुसार प्रजाका पालन करने लगे। प्रजों उन महात्माके द्वारा पुत्रके समान पाली जाकर ॥ ७५॥ उत्तरोत्तर समृद्धिशाली होने लगी और उनके राज्यमें कहीं वर्णसंकरकी उत्पत्ति नहीं हुई उनके शासनकालमें चोर, हिंसक जन्तु, दुर्वृत्त कुचाली और अन्यान्य विघ्नोंसे कोई भय नहीं था ॥ ७६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां भलन्दनवत्सप्रीचरितं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽ-

ततः स तया रेमे वत्सप्रीर्नवयौवनः ॥ रमणीयेषु देशेषु प्रासादशिखरेषु च ॥ ७३ ॥ कालेन गच्छता वृद्धः पिता तस्य भलन्दनः ॥ वनं जगाम वत्सप्रीः स बभूव महीपतिः ॥७४॥ इयाज यज्ञान्सततं प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ पुत्रवत्पाल्यमानास्तु प्रजास्तेन महात्मना ॥७५॥ ववृधुर्विषये तस्य न चाभूद्वर्णसङ्करः ॥ न दस्युव्यालदुर्वृत्तभयमासीच्च कस्यचित् ॥ नोपसर्गभयं चैव तस्मिञ्छासति भूपतौ ॥ ७६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भलन्दनवत्सप्रीचरितं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तस्य तस्यां सुनन्दायां पुत्रा द्वादश जज्ञिरे ॥ प्रांशुः प्रवीरः शूरश्च सुचक्रो विक्रमः क्रमः ॥ १ ॥ बली बलाकश्चण्डश्च प्रचण्डश्च सुविक्रमः ॥ सुनयश्च महाभागाः सर्वे संग्रामजित्तमाः ॥ २ ॥ तेषां ज्येष्ठो महावीर्यः प्रांशुरासीन्नराधिपः ॥ इतरे भृत्यवत्तस्य बभूवुर्वशव-र्त्तिनः ॥ ३ ॥ तस्य यज्ञे द्विजत्यक्तैरनेकैर्द्रव्यराशिभिः ॥ न्यूनवर्णविसृष्टैश्च सत्यनामा वसुन्धरा ॥ ४ ॥ सम्यक्पालयतस्तस्य प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ ॥ योऽभूद्धनचयः कोशे तेन निष्पादितास्तु ये ॥ ५ ॥

ध्यायः ॥ ११३॥ मार्कण्डेयजी बोले–उस सुनन्दाके गर्भसे वत्सप्रीके बारह पुत्र उत्पन्न हुए थे उनके नाम प्रांशु, प्रवीर, शूर, सुचक्र, विक्रम, क्रम ॥ १ ॥ बल, बलाक, चण्ड, प्रचण्ड, सुविक्रम और स्वरूप। यह सब महाभाग और संग्राम जीतनेवाले थे ॥ २ ॥ तिनमें ज्येष्ठ महावीर प्रांशु राजा हुए थे और अन्यान्य ग्यारह भ्राता भृत्यके समान उनके वशवर्त्ती रहते थे ॥ ३॥ उनके यज्ञकालमें ब्राह्मणोंने और दूसरी जातिने अनेकानेक द्रव्यका त्याग किया इसी कारण पृथ्वीने "वसुन्धरा" यह सार्थक नाम धारण किया था ॥ ४ ॥ औरस पुत्रके समान प्रजापालन करकेभी उनके राजकोशमें

जो धन इकट्ठा होता ॥५॥ उसके द्वाराही जो समस्त असंख्य यज्ञकार्य सम्पादित हुए थे हे मुने ! उनकी अयुत, करोड, पद्म इत्यादि संख्याद्वाराभी गिनती नहीं होसकती ॥६॥ प्रांशुके प्रजातिनामक पुत्र हुए थे उनके यज्ञमें बलिश्रेष्ठ शतक्रतु इन्द्रने देवताओंके सहित यज्ञभागद्वारा तृप्तिलाभ करके महावीर्यशाली (९९) दानव बल और जम्भ नामक दोनों असुरराज तथा अन्यान्य महाबली देवताओंके शत्रुओंको मारा था. हे मुने ! खनित्र इत्यादि प्रजातिके पांच पुत्र थे ॥ ७ ॥ ८॥९॥ तिनमें खनित्रही अपने विक्रमद्वारा विख्यात राजा हुए हैं, यह शान्त, सत्यवादी, शूर, सब प्राणियोंका हित करनेवाले ॥१०॥

क्रतवः शतं सहस्रास्ते तेषां संख्या न विद्यते ॥ अयुताद्येन कोटीभिर्न च पद्मादिभिर्मुने ॥ ६ ॥ प्रजातिस्तस्य पुत्रोऽभूद्यस्य यज्ञे शतक्रतुः ॥ अवाप्य तृप्तिमतुलां यज्ञभागैः सुरैः सह ॥ ७ ॥ दानवानां सुवीर्याणां जघान नवतीर्नव ॥ बलं च बलिनां श्रेष्ठो जम्भं चासुरसत्तमम् ॥ ८ ॥ अन्यांश्च सुमहावीर्यानाजघानामरद्विषः ॥ प्रजातेस्तनयाः पंच खनित्रप्रमुखा मुने ॥ ९ ॥ तेषां खनित्रो राजाभूत्प्रख्यातो निजविक्रमैः ॥ स शान्तः सत्यवाक्छूरः सर्वप्राणिहिते रतः ॥ १० ॥ स्वधर्माभिरतो नित्यं वृद्धसेवी बहुश्रुतः ॥ वाग्मी विनयसंपन्नः कृतास्त्रोऽप्यविकत्थनः ॥११॥ सर्वलोकप्रियो नित्यमुवाचैतदहर्निशम् ॥ नन्दन्तु सर्वभूतानि स्निह्यन्तु विजनेष्वपि ॥ १२ ॥ स्वस्त्यस्तु सर्वभूतेषु निरातङ्कानि सन्तु च ॥ मा व्याधिरस्तु भूतानामाधयो न भवन्तु च ॥ १३ ॥ मैत्रीमशेषभूतानि पुष्यन्तु सकले जने ॥ शिवमस्तु द्विजातीनां प्रीतिरस्तु परस्परम् ॥ १४ ॥ समृद्धिः सर्ववर्णानां सिद्धिरस्तु च कर्मणाम् ॥ भो लोकाः सर्वभूतेषु शिवा वोऽस्तु सदा मतिः ॥ १५ ॥

स्वधर्मपरायण सदा वृद्धसेवी, बहुशास्त्रदर्शी, वाग्मी, विनयी, अस्त्रज्ञ, अहंकाररहित ॥ ११ ॥ और सर्वलोकप्रिय थे, वह सदाही यह बात कहते " सब प्राणी आनन्द भोगें, विजनस्थानमेंभी प्रीतिमान् हो ॥ १२ ॥ सब जीवोंका मंगल हो और सभी भयरहित हों प्राणियोंकी पीडा नष्ट हो, किसीको मनोव्यथा उपस्थित न हो ॥ १३ ॥ और समस्तप्राणी सबके प्रति मैत्रीभाव प्रकाश करें, ब्राह्मणोंका मंगल, परस्पर प्रीति ॥ १४ ॥ संपूर्ण वर्णोंकी समृद्धि और संपूर्ण कर्मोंकी सिद्धि संघटित हो, हे जनगण ! तुम्हारी सब प्राणियोंमेंही सदा मंगलमय बुद्धि प्रवृत्त रहे ॥ १५ ॥

तुम जिस प्रकार अपनी और अपने पुत्रके हितकी कामना करतेहो, इसी प्रकार सब जीवोंके हितकी कामना करो ॥ १६ ॥ यही तुम्हारा अत्यन्त हितकारक है, कौन किसके निकट अपराधी होता है, जो कोई मन्दबुद्धि किसीका अहित करता है ॥ १७ ॥ तो उसीका अहित होता है, क्योंकि कर्मफल कर्त्ताकोही भोगना पडता है, हे मनुष्यगण ! तुम यह विचारकर समस्त प्राणियोंमें हितबुद्धि होओ अर्थात् सदैव सब प्राणियोंके हितकी चेष्टा करते रहो ॥ १८ ॥ हे बुधगण ! तुम लौकिक पापमें प्रवृत्त न होना । ऐसा करनेसे तुम पुण्यलोकोंको प्राप्त होगे । जो इस समय मुझसे स्नेह रखता है, पृथ्वीमें उसका सदा मंगल हो ॥ १९ ॥ और जो मुझसे द्वेष करता है, वहभी सदा मंगल भोगे । समस्तगुणसंपन्न, पद्मपलाशलोचन राजाके पुत्र वह श्रीमान्

यथात्मनि यथा पुत्रे हितमिच्छथ सर्वदा ॥ तथा समस्तभूतेषु वर्त्तध्वं हितबुद्धयः ॥१६॥ एतद्वो हितमत्यन्तं को वा कस्यापराध्यते ॥ यत्करोत्यहितं किंचित्कस्यचिन्मूढमानसः ॥ १७ ॥ तं समभ्येति तन्नूनं कर्तृगामिफलं यतः ॥ इति मत्वा समस्तेषु भो लोका हितबुद्धयः ॥१८॥ सन्तु मा लौकिकं पापं लोकाः प्राप्स्यथ वै बुधाः ॥ यो मेऽद्य स्निह्यते तस्य शिवमस्तु सदा भुवि ॥१९॥ यश्च मां द्वेष्टि लोकेऽस्मिन्सोऽपि भद्राणि पश्यतु ॥ एवं स्वरूपः पुत्रोऽभूत्खनित्रस्तस्य भूपतेः ॥२०॥ समस्तगुणसम्पन्नः श्रीमानब्जदलेक्षणः ॥ तेन ते भ्रातरः प्रीत्या पृथग्राज्येषु योजिताः ॥ २१ ॥ स्वयं च पृथिवीमेतां बुभुजे सागराम्बराम् ॥ प्राच्यां तेन कृतः शौरिर्दक्षिणस्यामुदावसुः ॥२२ ॥ दिशि प्रतीच्यां सुनय उत्तरस्यां महारथाः ॥ तेषां तस्य च भूपस्य पृथग्गोत्राः पुरोहिताः ॥२३॥ बभूवुर्मुनयश्चैव मन्त्रिवंशक्रमागताः ॥ शौरेरत्रिकुलोद्भूतः सुहोत्रो नाम वै द्विजः ॥ २४ ॥ उदावसोः कुशावर्त्तो गौतमान्वयजोऽभवत् ॥ काश्यपः प्रमतिर्नाम सुनयस्य पुरोहितः ॥ २५ ॥

खनित्र इस प्रकार थे । वह प्रीतिपूर्वक भ्राताओंको पृथक् पृथक् राज्यमें नियुक्त कर ॥ २० ॥ २१ ॥ स्वयं समुद्रपर्यन्त इस पृथ्वीको पालते भोगते रहे । शौरिको पूर्वप्रदेशमें, उदावसुको दाक्षिणदेशमें ॥ २२ ॥ पश्चिममें मुनि और उत्तरमें महारथी उस राजाके पृथक् गोत्रके पुरोहित ॥ २३ ॥ खनित्र और उनके भ्राताओंके मंत्रिवंशके क्रमसे प्राप्त पृथक् गोत्री जो मुनिगण पुरोहित थे उसीके अनुसार आत्रिकुलोत्पन्न सुहोत्र नामक ब्राह्मण शौरिके ॥ २४ ॥ गौतमवंशोत्पन्न कुशावर्त्त उदावसुके काश्यपगोत्रज प्रमति सुनयके ॥ २५ ॥

और वसिष्ठ महारथके पुरोहित थे। उक्त चारों भाई राजा होकर अपने अपने राज्यको भोगते थे ॥ २६ ॥ समस्त वसुधाधिपति खनित्र उनके अधीश्वर थे। महाराज खनित्र सब भाई ॥ २७ ॥ और समस्त प्रजाके प्रति पिता जिस प्रकार पुत्रसे व्यवहार करताहै, सदा उसी प्रकार हित व्यवहार करते थे एक दिन मन्त्री विश्ववेदीने शौरिसे कहा ॥ २८ ॥ हे महीपाल ! इस एकान्त समयमें मुझे कुछ कहना है। यह समस्त पृथ्वी और भूपालगण जिनके वशीभूत हैं ॥ २९ ॥ वह और उनके पुत्र पौत्र इत्यादि वंशधरही राजा होते हैं और उनके अपर भाई प्रथम अल्प राज्यके अधिकारी होते हैं ॥ ३० ॥ क्रमानुसार उनके पुत्र उससेभी अल्प और फिर उनके पौत्र उनकी अपेक्षाभी अल्प राज्यके अधिकारी होते हैं, समय पाकर पुरुषानुक्रमसे वह घटते घटते

महारथस्य वासिष्ठः पुरोधाऽभून्महीभृतः ॥ बुभुजुस्ते स्वराज्यानि चत्वारोऽपि नराधिपाः ॥२६॥ खनित्रश्चाधिपस्तेषामशेषवसुधाधिपः ॥ तेषु भ्रातृष्वशेषेषु खनित्रः स महीपतिः ॥ २७ ॥ प्रजासु च समस्तासु पुत्रेष्विव सदा हितः ॥ एकदा मन्त्रिणा शौरिः स प्रोक्तो विश्ववेदिना ॥ २८ ॥ विविक्ते पृथिवीपाल किंचिद्वक्तव्यमास्ति नः ॥ यस्येयं पृथिवी कृत्स्ना यस्य भूपा वशानुगाः ॥ २९ ॥ स राजा तस्य पुत्रश्च तत्पौत्राश्चान्वयस्ततः ॥ इतरे भ्रातरस्तस्य प्राक्स्वल्पविषयाधिपाः ॥ ३० ॥ तत्पुत्राश्चाल्पकास्तस्मात्तत्पौत्राश्चाल्पकाल्पकाः ॥ कालेन ह्रासमासाद्य पुरुषात्पुरुषान्तरम् ॥ ३१ ॥ कृष्योपजीविनो भूप भवन्तीति तदन्वयाः ॥ नोद्धारं कुरुते भ्राता भ्रातृस्नेहबलार्पणः ॥ ३२ ॥ स्नेहः कः पृथिवीपाल परयोर्भ्रातृपुत्रयोः ॥ तत्पुत्रयोः परतरा मतिर्भवति पार्थिव ॥ ३३ ॥ तत्पुत्रः केन कार्येण प्रीतियुक्तो भविष्यति ॥ अथवा येन तेनैव संतोषं कुरुते नृपः ॥ ३४ ॥

अन्तमें ॥ ३१ ॥ तिस वंशके मनुष्य खेतीसे जीविका निर्वाह करतेहैं। हे पृथ्वीपाल ! भ्रातृस्नेहमें बद्ध होकर भ्राता कभी भ्राताका उद्धार नहीं करता ॥ ३२ ॥ फिर उक्त दोनों भ्राताओंके दोनों पुत्रभी परस्पर परस्परको पराया विचारते हैं। हे पार्थिव ! उनके पुत्र उत्पन्न होनेपर वह उत्पन्न हुआ पुत्र फिर और भी पराया विचारता है ॥ ३३ ॥ और किस कार्यके करनेसे अपना पुत्र सुखमें रहै, उस विषयमेंही वह अधिक मन लगाते हैं। और भी जो किसी प्रकार संतोष मात्र राजाका अवलम्बनीय हो ॥ ३४ ॥

तो भूपालगण किस प्रयोजनके लिये मंत्रियोंको रखतेहैं, मेरे समान मंत्री रहनेपर आप समस्त राज्यही भोग सकेंगे ॥ ३५ ॥ और मैं यदि चेष्टा करूं तो क्यों आप वृथा संतोष धारण कररहे हैं ? राज्य करनेवालेका कार्य करदेनाही मंत्रीका इष्ट है ॥ ३६ ॥ किन्तु तिनमें राज्यलाभकार्यमें आप कर्त्ता और मैं कारण हूं। * अतएव कारणके द्वारा पितृपैतामहिक राज्यशासन कीजिये। हम इसी लोकमें आपको फलदाता होंगे परलोकके फलदाता नहीं होंगे ॥ ३७ ॥ राजाने कहा महीपालक राजा हमारे ज्येष्ठ हैं और हम उनके अनुज हैं, अतएव वह सब पृथ्वी भोगते हैं और हम अल्पमात्र पृथ्वीका भाग

क्रियते तत्किमर्थं तु भूपैर्मंत्रिपरिग्रहः ॥ भुज्यते सकलं राज्यं मया ते मंत्रिणा सता ॥ ३५ ॥ तत्किं मुधा धारयसे संतोषं कुरुते यदि ॥ कार्यनिष्पादकं राज्यं करणं कर्तुरिष्यते ॥ ३६ ॥ राज्यलब्धुश्च ते कार्यं त्वं कर्त्ता करणं वयम् ॥ सोऽस्माभिः करणै राज्यं पितृपैतामहं कुरु ॥ फलप्रदा भविष्यामः परलोकेन ते वयम् ॥३७॥ राजोवाच ॥ ज्येष्ठो भ्राता महीपालो वयं तस्यानुजा यतः ॥ ततः स भुंक्ते पृथिवीं वयं चाल्पवसुंधराम् ॥ ३८ ॥ वयं तु भ्रातरः पंच पृथ्वी चैका महामते ॥ अतोऽस्याः पृथगैश्वर्यं कथं कृत्स्नं भविष्यति ॥ ३९ ॥ विश्ववेद्युवाच ॥ एवमेतद्भवत्वत्र यद्येका वसुधा नृप ॥ तां त्वमेवाभिपद्यस्व ज्येष्ठः शास्तु यथा भवान् ॥ ४० ॥ सर्वाधिपत्यः सर्वेभ्यो भव त्वमखिलेश्वरः ॥ यतन्ते च यथाहं ते तेषामपि हि मान्त्रिणः ॥ ४१ ॥

भोग करते हैं ॥ ३८ ॥ हे महामते ! हम पांच भाई हैं, किन्तु पृथ्वी केवल एक है इस कारण इस पृथ्वीका समस्त ऐश्वर्य हम किस प्रकार पृथक् भावसे भोग करनेमें समर्थ होंगे ? ॥ ३९ ॥ विश्ववेदी बोले हे नृप ! आपने जो कहा सो सत्य है, पृथ्वीको यदि एकही मान लिया जाय, तो आपही उसको ग्रहण कीजिये और सबमें प्रधान होकर आपही इस पृथ्वीका शासन कीजिये ॥ ४० ॥ सर्वाधिपत्य लाभ करके सब भाइयोंमें आपही अखिलेश्वर हूजिये मेरे सामन उनके नियुक्त मंत्री भी इसी प्रकार चेष्टा करते हैं ॥ ४१ ॥

---

* जिसके द्वारा कार्य संपन्न हो, उसीको कारण कहते हैं।

राजाने कहा–ज्येष्ठ भ्राता हमारा पुत्रके समान स्नेहसहित पालन करते चले आते हैं फिर मैं किस प्रकार उन राजाके राज्यमें ममता (लोभ) करूं ? ॥ ४२ ॥ विश्ववेदी बोला–आप राज्य अधिकारपूर्वक ज्येष्ठ होकर भाँति २ के सत्कारसे पूजाद्वारा उनकी अर्चना कीजिये । अथवा राज्यकी चाहना करनेवाले मनुष्यको बडे छोटेका विचार करना निष्प्रयोजन है ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे सत्तम ! अनन्तर राजाके यह बात स्वीकार करनेपर मंत्री विश्ववेदीने उनके अन्यान्य भ्राताओंको वशीभूत कर लिया ॥ ४४ ॥ और उनके पुरोहितोंको अपने शान्तिकर्म और खनित्रके आभिचारिक कार्यमें नियुक्त किया ॥ ४५ ॥ खनित्रके विश्वासी भृत्योंको सामदानादि द्वारा भेदयुक्त करके अपने दण्डके प्रभाव बढानेमें उद्योग करनेलगा ॥ ४६ ॥ जब

राजोवाच ॥ ज्येष्ठो राजा यथा प्रीत्या भजतेऽस्मान्सुतानिव ॥ कथं तस्य करिष्यामि ममत्वं जगतीगतम् ॥ ४२ ॥ विश्ववेद्युवाच ॥ राज्ये स्थितः पूजयेथा ज्येष्ठं भूपार्हणैर्धनैः ॥ कनिष्ठज्येष्ठता केयं राज्यं प्रार्थयतां नृणाम् ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तथेति च प्रतिज्ञाते भूभुजा तेन सत्तम ॥ विश्ववेदी ततो मन्त्री तद्भ्रातॄननयद्वशम् ॥ ४४ ॥ तेषां पुरोहितांश्चैव आत्मनः शांतिकादिषु ॥ नियोजयामास ततः खनित्रस्याभिचारके ॥ ४५ ॥ बिभेद तस्य निभृतान्सामदानादिभिस्तथा ॥ चक्रे च परमोद्योगं निजदंडप्रभावने ॥ ४६ ॥ आभिचारिकमत्युग्रमहन्यहानि कुर्वताम् ॥ पुरोधसां चतुर्णां च जज्ञे कृत्याचतुष्टयम् ॥४७॥ विकरालं महावक्त्रमतिभीषणदर्शनम् ॥ समुद्यतमहाशूलं प्रभूतमतिदारुणम् ॥ ४८ ॥ ततस्तदागतं तत्र खनित्रो यत्र पार्थिवः ॥ निरस्तं चाप्यदुष्टस्य तस्य पुण्यचयेन तत् ॥४९॥ कृत्याचतुष्टयं तेषु निपपात दुरात्मसु ॥ पुरोहितेषु भूपानां तथा वै विश्ववेदिनि ॥ ५० ॥

चार पुरोहित नित्य अत्युग्र आभिचारिक कार्य करनेमें प्रवृत्त हुए तब चार कृत्या उत्पन्न हुईं ॥ ४७ ॥ वह सब कराल देह, विकट वदन और देखनेमें अति भयंकर थीं उनके हाथमें महाशूल उद्यत, देह अतिविशाल और वह अत्यन्त दारुण थीं ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त वह चारों कृत्या राजा खनित्रके समीप उपस्थित हुईं । किन्तु निष्पाप राजाके पुण्यबलसे तेजहत होकर ॥ ४९ ॥ वह राजाओंके उन दुरात्मा चारों पुरोहित और विश्ववेदीके निकट लौटकर आईं ॥ ५० ॥

तब यह पुरोहित और शौरिको दुष्ट परामर्श देनेवाला मंत्री विश्ववेदी कृत्याओंके द्वारा निहत होकर भस्म होगया ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४॥ मार्कण्डेयजी बोले–तिस काल समस्त लोकोंकोही यह एक महान् आश्चर्य उपस्थित हुआ था कि, पृथक् पृथक् पुरवासी होकर भी यह किस प्रकार एकही कालमें नाशको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ हे मुनिसत्तम ! इसके उपरान्त महाराज खनित्र भ्राताके पुरोहित और भ्राताके मंत्री विश्ववेदीका दग्ध होकर मरना सुन ॥ २ ॥ इसका कारण न जान, 'यह क्या हुआ ?' इस प्रकार चिन्ता करके अत्यन्त

ततो निहन्त्या निर्दग्धाः कृत्यया ते पुरोहिताः ॥ विश्ववेदी तथा मन्त्री स शौरेर्दुष्टमन्त्रदः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे खनित्रचरित्रे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः समस्तलोकस्य विस्मयः सोऽभवन्महान् ॥ यदेककालं नेशुस्ते पृथक्पुरनिवासिनः ॥ १ ॥ ततः शुश्राव निधनं यातान्भ्रातृपुरोहितान् ॥ मन्त्रिणं च तथा भ्रातुर्दग्धं तं विश्ववेदिनम् ॥ २ ॥ किमेतदिति सोऽतीव विस्मितो मुनिसत्तम ॥ खनित्रोऽभून्महाराजो नाजानात्तच्च कारणम् ॥ ३ ॥ ततो वसिष्ठं पप्रच्छ स राजा गृहमागतम् ॥ यत्कारणं विनेशुस्ते भ्रातृमन्त्रिपुरोहिताः ॥ ४ ॥ तेन पृष्टस्तदा प्राह यथा वृत्तं महामुनिः ॥ यच्छौरिमन्त्रिणा प्रोक्तं यच्च शौरिरुवाच तम् ॥ ५ ॥ यथा चानुष्ठितं तेन भ्रातॄणां भेदकारि वै ॥ मन्त्रिणा तेन दुष्टेन यच्चक्रुश्च पुरोहिताः ॥६॥ यन्निमित्तं विनेशुस्ते अपापस्यापकारिणः ॥ पुरोहितास्तस्य राज्ञः शत्रावपि दयावतः ॥ ७ ॥

आश्चर्यमें हुए ॥ ३ ॥ फिर वसिष्ठजीके घर आनेपर जिस कारणसे भ्राताके मंत्री और पुरोहित नष्ट हुए थे राजाने वह उनसे पूछा ॥ ४ ॥ जब महामुनि वसिष्ठजीसे इस प्रकार पूछा गया; तब उन्होंने शौरिके मंत्री और शौरिकी परस्पर जो बातचीत हुईथी ॥ ५ ॥ उस दुष्ट मंत्रीके द्वारा भ्राताओंमें भेद साधन करनेवाले जो सब कार्य अनुष्ठित हुए थे पुरोहितोंने जो किया था ॥ ६ ॥ और शत्रुपर भी दया करनेवाले वह पुरोहित जिस कारण निरपराधीका अपकार करनेमें उद्यत होकर नष्ट हुए थे, वह सब यथावत कहा ॥ ७ ॥

हे द्विज ! राजा यह सब वार्ता सुन "हा हतोस्मि" इस प्रकार कह वसिष्ठजीके सामनेही अपनपेकी अत्यन्त निन्दा करने लगे ॥ ८ ॥ राजा बोले— मेरा पुण्यसंचय नहीं है, मैं अल्पभाग्य और शोभाहीन हूं, दैवभी मेरे प्रतिकूल है और मैं सर्व लोकमें निन्दित तथा पापी हूं, मुझको धिक्कार है ॥ ९ ॥ क्योंकि मेरे निमित्तही चार ब्राह्मण मृत्युको प्राप्त हुएहैं, अतएव मेरी अपेक्षा भूमण्डलमें और अधिक पापी मनुष्य कौन है ? ॥ १० ॥ इस पृथ्वीमें मैं यदि पुरुष होकर जन्म ग्रहण नहीं करता, तो फिर मेरे भ्राताओंके पुरोहित नष्ट नहीं होते ॥ ११ ॥ मैंही ब्राह्मणोंके नाशका कारण हुआहूं, अतएव मेरे

स तच्छ्रुत्वा ततो राजा हा हतोऽस्मीति वै वदन् ॥ निनिन्दात्मानमत्यर्थं वसिष्ठस्याग्रतो द्विज ॥८॥ राजोवाच ॥ धिङ्मामपुण्यसंस्थानमल्पभाग्यमशोभनम् ॥ दैवदोषकृतं पापं सर्वलोकविगर्हितम् ॥९॥ मन्निमित्तं विनष्टं तत्तद्ब्राह्मणचतुष्टयम् ॥ मत्तः कोऽन्यः पापतरो भविष्यति पुमान्भुवि ॥ १० ॥ नाभविष्यं यदि पुमानहमत्र महीतले ॥ ततस्ते न विनश्येयुर्मम भ्रातृपुरोहिताः ॥ ११ ॥ धिग्राज्यं धिक्च मे जन्म भूभुजां महतां कुले ॥ कारणत्वं गतो योऽहं विनाशस्य द्विजन्मनाम् ॥ १२ ॥ कुर्वन्तः स्वामिनां तेऽथ भ्रातॄणां मम याजकाः ॥ नाशं ययुर्न दुष्टास्ते दुष्टोऽहं नाशकारणे ॥१३॥ किं करोमि क्व गच्छामि नान्यो मत्तो हि पापकृत ॥ पृथिव्यामस्ति हेतुत्वं द्विजनाशस्य योगतः ॥१४॥ इत्थमुद्विग्नहृदयः खनित्रः पृथिवीपतिः ॥ वनं यियासुः पुत्रस्य कृतवानभिषेचनम् ॥ १५ ॥ अभिषिच्य सुतं राज्ये क्षुपसंज्ञं महीपतिः ॥ भार्याभिस्तिसृभिः सार्धं तपसे स वनं ययौ ॥ १६ ॥

इस राज्य और महत् राजकुलमें मेरे इस जन्मको धिक्कार है ॥ १२ ॥ मेरे भ्राताओंके याजकगण प्रभुका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये जाकर नष्ट हुये हैं, सुतरां वह दोषी नहीं है, उनके विनाशका कारण होकर मैं ही दोषी हुआ ॥ १३ ॥ मैं अब क्या करूं ? कहाँ जाऊं ? ब्रह्महत्याका कारण होकर मेरे समान पापकारी पृथ्वीमें दूसरा नहीं है ॥ १४ ॥ इस प्रकार महीपाल खनित्रने उद्विग्नचित्त होकर वन जानेकी इच्छासे पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त किया ॥ १५ ॥ राजा क्षुप नामक पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करके तीन पत्नियोंके संग तपस्याके लिये वनमें चलेगये ॥ १६ ॥

नृपसत्तमने वनमें उपस्थित होकर वानप्रस्थ विधानानुसार साढे तीन सौ वर्ष तपस्याकी थी ॥१७॥ इसके उपरान्त हे द्विजोत्तम ! राजकुलतिलक वनवासी उन राजाने तपस्याद्वारा क्षीणदेह होनेपर सर्व स्रोत (इन्द्रियपथ) निरोधकरके प्राणपरित्याग किया ॥ १८ ॥ अन्यान्य राजा शत शत अश्वमेध करकेभी जिस लोकको प्राप्त नहीं होसकते महाराज खनित्र मृत्युके पीछे उसी सर्वाभीष्टप्रद अक्षय पुण्यलोकको प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ उनकी तीनों भार्याभी स्वामीके संग प्राण त्याग करके उन महात्माके संगही समान लोकमें गईं ॥ २० ॥ हे महाभाग ! इस प्रकार यह खनित्रचरित्र कहा गया । इसके

तत्रागत्वा तपस्तेपे वानप्रस्थविधानवित् ॥ शतानि त्रीणि वर्षाणां सार्द्धानि नृपसत्तमः ॥ १७ ॥ तपसा क्षीणदेहस्तु राजवर्यो द्विजोत्तम ॥ निगृह्य सर्वस्रोतांसि तत्याजासून्वनेचरः ॥ १८ ॥ ततः पुण्यान्ययौ लोकान्सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरवाप्या ये नराधिपैः ॥ १९ ॥ भार्याश्च तस्य तास्तिस्रः समन्तेनैव तत्यजुः ॥ प्राणानवापुः सालोक्यं तेनैव सुमहात्मना ॥ २० ॥ एतत्खनित्रचरितं श्रुतं कल्मषनाशनम् ॥ पठतां च महाभाग क्षुपस्यातो निशामय ॥ २१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे खनित्रचरितसमाप्तिर्नाम पंचदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ क्षुपः खनित्रपुत्रस्तु प्राप्य राज्यं यथा पिता ॥ तथैव पालयामास प्रजाधर्मेण रञ्जयन् ॥ १ ॥ स दानशीलो यष्टा च यज्ञानामवनपीतिः ॥ समः शत्रौ च मित्रे च व्यवहारादिवर्त्मनि ॥ २॥ एकदा स महीपालो निजस्थागनतो मुने ॥ सूतैरुक्तो ययापूर्वं क्षुपो राजा तथाऽभवत् ॥ ३ ॥

सुनने वा पढनेसे पापसमूह नष्ट होते हैं । अब क्षुपका चरित्र वर्णन करताहूं, सुनो ॥ २१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां खनित्रचरित्रसमाप्तिर्नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥ मार्कण्डेयजी बोले-खनित्र-पुत्र क्षुप राज्यको प्राप्त हो पिताके समान प्रजाका मन प्रसन्न करतेहुए धर्मपूर्वक प्रजापालन करने लगे ॥ १ ॥ यह राजा क्षुपभी यज्ञ करनेवाले दाता और व्यवहारादि (स्मृतिमें कहे अठारह विवाद पद) मार्गमें शत्रु मित्रके प्रति समान भाववाले हुए थे ॥ २ ॥ हे मुने ! एक समय सूतगणोंने राज्यासनमें बैठेहुए राजासे कहा-आप ठीक पूर्ववर्ती क्षुपराजाके समान हैं ॥ ३ ॥

ब्रह्माके पुत्र क्षुप पूर्वमें पृथ्वीपति हुए थे, उनके चरित्र और चेष्टा जिस प्रकार थी, आपकीभी वैसीही है ॥ ४ ॥ राजाने कहा-महात्मा क्षुपका चरित्र सुननेकी इच्छा करताहूं, यदि मैंभी उनके समान आचरण करनेमें समर्थ हूं, तो उसकी चेष्टा करूंगा ॥ ५ ॥ सूतगण बोले-हे राजन् ! वह महात्मा क्षुप राजा गौ ब्राह्मणसे कर नहीं लेते थे और छठे अंशद्वारा पृथ्वीमें यज्ञकार्य सम्पादन करते थे ॥ ६ ॥ राजाने कहा-मेरे समान कौन मनुष्य उन महात्माके कार्यका अनुकरण कर सकता है ? इसकी संभावनाभी नहीं है किन्तु तोभी ऐसे महात्माओंका आचरण जिस प्रकार उत्कृष्ट है, वैसे आचरणमें उद्यम करना उचित है ॥ ७ ॥ अतएव मैं जो इस समय प्रतिज्ञा करताहूं, वह सुनो । मैं आजसे महाराज क्षुपके कार्यका अनुकरण करूंगा ॥ ८ ॥ मैंने चारों वर्ण

ब्रह्मणस्तनयः पूर्वं क्षुपोऽभूत्पृथिवीपतिः ॥ यादृक्चरितमस्यासीत्तादृक्तस्यैव चेष्टितम् ॥४॥ राजोवाच ॥ श्रोतुमिच्छामि चरितं क्षुपस्य सुमहात्मनः ॥ यदि तादृङ्मया शक्यं चेष्टितुं तत्करोम्यहम् ॥ ५॥ सूता ऊचुः ॥ स चकाराकरान्भूप राजा गोब्राह्मणान्पुरा ॥ षष्ठांशेन कृता चोर्व्यामिष्टिस्तेन महात्मना ॥६॥ राजोवाच ॥ तेषां महात्मनां राज्ञां कोऽनुयास्यति मद्विधः ॥ तथाप्युत्कृष्टचेतानां चेष्टासूद्यमवान्भवेत् ॥ ७ ॥ तच्छ्रूयतां प्रतिज्ञा या साम्प्रतं क्रियते मया ॥ क्षुपस्यानुकरिष्यामि महाराजस्य चेष्टितम् ॥ ८ ॥ त्रींस्त्रीन्यज्ञान्करिष्यामि सस्यापाते गतागते ॥ पृथिव्यां चतुरन्तायां प्रतिज्ञेयं कृता मया ॥ ९ ॥ यच्च गोब्राह्मणाः पूर्वमदद्न्भूभृते करम् ॥ तमेव प्रतिदास्यामि ब्राह्मणानां तथा गवाम् ॥ १० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति प्रतिज्ञाय वचः क्षुपस्तत्कृतवांस्तथा ॥ सस्यापाते स यज्ञांस्त्रीनयजद्यजतां वरः ॥११॥ गोब्राह्मणाः पुरा राज्ञामदद्यं च वै करम् ॥ तावत्संख्यमदाद्वित्तमन्यद्गोब्राह्मणाय सः ॥ १२ ॥

और पृथ्वीमें यह प्रतिज्ञा करी कि, खेतीके आनेवाले उपस्थित और बीतनेके कालमें तीन तीन यज्ञ करूंगा ॥ ९ ॥ और पूर्व पूर्वकालमें गो ब्राह्मणसे राजाओंने जो कर ग्रहण किया है, वह उनको लौटा दूंगा ॥ १० ॥ मार्कण्डेयजी बोले-यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ नृपने इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वैसेही प्रतिज्ञाकी रक्षा की अर्थात् उन याज्ञिक श्रेष्ठने सस्यके उपस्थिति कालमें तीन यज्ञ संपादन किये ॥ ११ ॥ और गौ ब्राह्मणोंने पहिले जिन सब राजाओंको कर दिया था, उतना द्रव्य गौ ब्राह्मणको दे दिया ॥ १२ ॥

उनके प्रमथा नामक महिषीके गर्भसे महावीर और सुंदर एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्रने अपने शौर्य वीर्यके बलसे सब राजाओंको वशीभूत किया था ॥ १३ ॥ विदर्भराजकुमारी नन्दिनी उनकी पत्नी हुई थी उस महिषीके गर्भसे उन्होंने विविंश नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १४ ॥ महावीर विविंश नरपतिके पृथ्वीशासन कालमें महीतल प्रजासमूहसे ऐसा व्याप्त हुआ था कि, कहींभी स्थान नहीं था ॥ १५ ॥ उस समय मेघगण यथाकालमें वर्षा करते और पृथ्वीभी उसी प्रकार सस्यसे परिपूर्ण हुई थी। और समस्त सस्यफलशाली, फलरसयुक्त ॥ १६ ॥ रसपुष्टिकर और पुष्टि उन्माद करनेवाली नहीं

तस्य पुत्रोऽभवद्वीरः प्रमथायामनिन्दितः ॥ यस्य प्रतापशौर्याभ्यां कृता वश्या महीभृतः ॥१३॥ तस्यापि नन्दिनी नाम वैदर्भी दयिताऽभवत् ॥ विविंशं तनयं तस्यां जनयामास स प्रभुः ॥ १४ ॥ विविंशे शासति महीं महीपाले महौजसि ॥ महीतलमभूद्व्याप्तं निरन्तरतया नरैः ॥ १५ ॥ ववर्ष काले पर्जन्यो मही सस्यवती तथा ॥ सुफलानि च सस्यानि रसवन्ति फलानि च ॥ १६ ॥ रसाः पुष्टिकराश्चासन्पुष्टिर्नोन्मादकारिणी ॥ न वित्तनिचया नृणां प्रभूतां मदहेतवः ॥ १७ ॥ तत्प्रतापेन रिपवो भयमापुर्महामुने ॥ स्वास्थ्यं जनः सुहृद्वर्गो मुदमाप सुपूजितः ॥ १८ ॥ इष्ट्वा स यज्ञान्सुबहून्सम्यक्संपाल्य मेदिनीम् ॥ संग्रामे निधनं प्राप्य शक्रलोकमितो गतः ॥ १९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे विविंशचरितं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तस्य पुत्रः खनीनेत्रो महाबलपराक्रमः ॥ यस्य यज्ञेष्वगायन्त गन्धर्वा विस्मयान्विताः ॥ १ ॥

थी। मनुष्य बहुत धनके अधिकारी होकरभी उन्मत्त नहीं होते थे ॥ १७ ॥ हे महामुने ! शत्रु उनके प्रभावसे सदा भीत रहकर स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकते थे सुहृद्वर्ग संतुष्ट चित्तसे रहते थे ॥ १८ ॥ इस प्रकार विविंशराजा अनेकानेक यज्ञोंका अनुष्ठान और भलीभाँति राज्यपालन करतेहुए संग्राममें मृत्यु पाय इन्द्रलोकको प्राप्त हुए थे ॥ १९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां विविंशचरितं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-विविंशके पुत्र महाबलवान् विक्रमशाली खनीनेत्र हुए उनका यज्ञानुष्ठान देखनेसे विस्मित होकर गंधर्वोंने इस प्रकार गाया था ॥ १ ॥

कि, “ खनीनेत्रके समान भूमण्डलमें अन्य यज्ञ करनेवाला नहीं होगा क्योंकि उन्होंने दश हजार यज्ञ संपादन करके सागरपर्यन्त पृथ्वी दान करी है ” ॥ २ ॥ महाराज खनीनेत्रने महात्मा ब्राह्मणोंको सब पृथ्वी देकर तपस्या द्वारा अनेक द्रव्यलाभ करके उसको छुडायाथा ॥ ३ ॥ हे विप्र ! ब्राह्मणोंने उन देनेवालोंमें श्रेष्ठ खनीनेत्रके निकटसे विपुल धनको प्राप्त हो फिर उन्होंने दूसरेके निकटसे दान नहीं लिया ॥ ४ ॥ उन्होंने तिहत्तर हजार सात सौ सरसठ यज्ञ किये थे और प्रत्येक यज्ञमें बहुत दक्षिणा दीथीं ॥ ५ ॥ हे महामुने ! एक समय महीपाल खनीनेत्रने अपुत्र होनेके कारण पुत्रकी कामनासे पितृयज्ञ करनेके लिये मांसकी इच्छा की थी और वह उस समय गोध और अंगुलित्राण बांधकर हाथमें धनुष बाण और खड्ग धारणपूर्वक सेनाके विनाही अकेले

खनीनेत्रसमो नान्यो भुवि यज्वा भविष्यति ॥ तेन यज्ञायुते पूर्णे दत्ता पृथ्वी ससागरा ॥ २ ॥ दत्त्वा च सकलां पृथ्वीं ब्राह्मणानां महात्मनाम् ॥ तपसा द्रव्यमासाद्य मोदयन्साधितेन यः ॥३॥ यतश्च प्राप्य वित्तार्द्धिमतुलां दातृसत्तमात् ॥ जगृहुर्ब्राह्मणा विप्र नान्यराज्ञः प्रतिग्रहम् ॥ ४ ॥ सप्तषष्टिसहस्राणि सप्तषष्टिशतानि च ॥ सप्तषष्टिं च यो यज्ञानयजद्भूरिदक्षिणान् ॥ ५ ॥ अपुत्रः स महीपालो मृगयामुपचक्रमे ॥ पुत्रार्थं पितृयज्ञाय मांसकामो महामुने ॥ ६ ॥ अश्वारूढो विना सैन्यमेक एव महावने ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणो बाणखड्गधनुर्धरः ॥ ७ ॥ तं वाहयन्तं तुरगमन्यतो गहनाद्वनात् ॥ विनिष्क्रम्य मृगः प्राह मां हत्वाभिमतं कुरु ॥ ८ ॥ राजोवाच ॥ अन्ये मृगाः पलायन्ते महाभीत्या विलोक्य माम् ॥ कथमात्मप्रदानं त्वं मृत्यवे कर्तुमिच्छसि ॥ ९ ॥ मृग उवाच ॥ अपुत्रोऽहं महाराज वृथा जन्मप्रयोजनम् ॥ विचारयन्न पश्यामि प्राणानामिह धारणम् ॥ १० ॥

घोडेपर चढकर महावनमें मृगयाके लिये गयेथे ॥ ६ ॥ ७ ॥ जब उन्होंने उस गहन वनसे दूसरे वनमें जानेके लिये घोडा दौडाया, उस समय एक मृगने निकलकर कहा—हे महाराज ! मुझको मारकर अपना अभीष्ट संपादन कीजिये ॥ ८ ॥ राजाने कहा—अन्यान्य मृग मेरे देखनेसे भीत होकर भागते हैं फिर तू मृत्युके लिये आत्मप्रदान करनेकी इच्छा क्यों करता है ? ॥ ९ ॥ मृग बोला—हे महाराज ! मैं अपुत्र हूं, इस कारण अपने जीवन धारण करनेको वृथा विचारताहूं ॥ १० ॥

मार्कण्डेयजी बोले—इसी समयमें और एक मृगने उपस्थित होकर पहिले मृगके सामनेही कहा—हे पार्थिव ! इस मृगको लेकर आप क्या करेंगे ? ॥ ११ ॥ मुझको मारकर मेरे मांससे कर्म संपादन कीजिये इससे आपका प्रयोजन सिद्ध होगा और मेराभी उपकार हो जायगा ॥ १२ ॥ हे महाराज ! आप पुत्रकी कामनासे पितृयज्ञ करेंगे । किन्तु इस अपुत्रके मांससे किस प्रकार अभिलाषा सिद्ध होगी ॥ १३ ॥ क्योंकि जो कर्म जैसा हो, उसके लिये वैसाही द्रव्य लाना चाहिये । देखो, दुर्गन्धद्वारा सुगांधित वस्तुका गंधज्ञान निर्णय नहीं होसकता ॥ १४ ॥ राजाने कहा—पहिले मृगने कहा है कि, अपुत्रताही मेरे वैराग्यका कारण है, किन्तु तुमको प्राण परित्याग विषयमें वैराग्य क्यों हुआ ? सो कहो ॥ १५ ॥ मृग बोला—हे राजन् ! मेरे पुत्र और कन्या बहुत हैं,

मार्कण्डेय उवाच ॥ अथाभ्येत्य मृगः प्राह तमन्यो वसुधाधिपम् ॥ मृगस्य तस्य प्रत्यक्षमलमेतेन पार्थिव ॥ ११ ॥ घातयस्वेति मां मांसैर्मम कर्म समाचर ॥ यथा कृतार्थता ते स्यान्मम चाप्युपकारि तत् ॥ १२ ॥ पुत्रार्थं त्वं महाराज स्वपितॄन्यष्टुमिच्छसि ॥ अपुत्रस्यास्य मांसेन लप्स्यसे वांछितं कथम् ॥ १३ ॥ यादृक्कर्म विनिष्पाद्यं तादृग्द्रव्यमुपाहरेत् ॥ दुर्गन्धैर्न सुगन्धानां गन्धज्ञानविनिर्णयः ॥ १४ ॥ राजोवाच ॥ वैराग्यकारणं प्रोक्तमनेनापुत्रता मम ॥ कथ्यतां प्राणसंत्यागे यत्ते वैराग्यकारणम् ॥ १५ ॥ मृग उवाच ॥ बहवो मे सुता भूप बह्व्यो दुहितरस्तथा ॥ यच्चिन्तादुःखदावाग्निज्वालामध्ये वसाम्यहम् ॥ १६ ॥ सर्वसाध्या नरेन्द्रेयं मृगजातिः सुकातरा ॥ तेष्वपत्येषु मे चातिममत्वं तेन दुःखितः ॥ १७ ॥ मनुष्यसिंहशार्दूलवृकादिभ्यो बिभेम्यहम् ॥ विहीनात्सर्वसत्त्वेभ्यः श्वशृगालादपि प्रभो ॥ १८ ॥ सोऽहं निमित्तं बन्धूनामिमां शून्यां वसुन्धराम् ॥ नृसिंहादिभयात्सर्वामिच्छामि सुनृशंसकृत् ॥ १९ ॥

उनकी चिन्तासेही मैं दुःखदावानलमें दग्ध होता रहताहूं ॥ १६ ॥ हे नरेन्द्र ! यह कातर मृगजाति सहजमेंही सब जीवोंके अधीन होजाती है, मेरीभी सन्तानके प्रति अधिक ममता है, इस कारण मुझको सदाही दुःख भोगना पडता है ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! मनुष्य, सिंह, व्याघ्र, वृक, अधिक क्या सब जीवोंमें हीन गीदड और कुत्ते आदिसे भी मैं डरता रहताहूं ॥ १८ ॥ सुतरां इन मनुष्य, सिंह इत्यादिके भयसे पृथ्वी रहित हो और मैं निर्विघ्न हूं, सदा यही कामना करता रहताहूं ॥ १९ ॥

गौ, मेष, बकरी, अश्व इत्यादि पशुओंके तृण भक्षण करने पर पृथ्वीमें समस्त तृण शेष होंगे, तो मेरे पुत्र, कन्या क्या खाकर जीवित रहेंगे। इसी कारण उनका पोषण करनेके लिये मुझको तृणभोजी पशुओंकी मृत्युकामना करनी पडती है ॥ २० ॥ जब मेरे पुत्र कन्या अलग अलग निकलते हैं, तो स्नेहके वश होकर मुझको सैकडों चिन्ता उपस्थित होती हैं ॥ २१ ॥ जान पडता है या तो कोई पुत्र कहीं कठिन पाश या वज्र अथवा जालमें पतित हुआ है या सिंहादिके द्वारा नष्ट होगयाहै ॥ २२ ॥ और जो एक आता है तो दूसरोंकी चिन्ता होती है जो महावनमें चरने गये हैं, नहीं जानता कि, उनकी वहां कैसी अवस्था होरही है ? ॥२३॥ हे नृप ! पुत्रगण जब मेरे समीप आते हैं, तब उनको देखकर कुछेक संतोष प्राप्त होता है, किन्तु उस समयभी

तृणान्यन्येऽपि खादन्ति गोऽजावितुरगादिकाः ॥ तांस्तेषां पोषणायाहमिच्छामि निधनं गतान् ॥ २० ॥ निष्क्रान्तेषु ततस्तेषु ममापत्येषु वै पृथक् ॥ भवन्ति चिन्ताः शतशो ममत्वावृतचेतसः ॥ २१ ॥ किं कूटपाशं किं वज्रं वागुरां किं सुतो मम ॥ प्राप्तश्च- रन्वने किं वा नृसिंहादिवशं गतः ॥ २२ ॥ प्राप्तोऽयमेकः संप्राप्तास्तेऽवस्थां कीदृशीं मम ॥ साम्प्रतं ते चिरायंते ये गताः सुमहाव- नम् ॥ २३॥ दृष्ट्वा प्राप्तान्ममाभ्याशमहं तानात्मजान्नृप ॥ ईषदुच्छ्वसितः क्षेममिच्छामि रजनीं पुनः ॥२४॥ प्रभाते दिवसं क्षेममस्तगेऽर्के निशामपि॥ वांछाम्यहं कदा क्षेमं सर्वकालं भविष्याति ॥२५॥ एतत्ते कथितं भूप महोद्वेगस्य कारणम् ॥ अतः प्रसादं कुरु मे बाणोऽयं पात्यतां मयि ॥ २६ ॥ इति दुःखशताविष्टः प्राणान्नाहं त्यजामि यत् ॥ तत्कारणं निबोध त्वं ब्रुवतो मम पार्थिव ॥ २७ ॥ असूर्या नाम ते लोका यान्गच्छन्त्यात्मघातकाः ॥ यज्ञोपयुक्ताः पशवः सम्प्रयान्त्युच्छ्रितीः प्रभो ॥ २८ ॥

समस्त रात्रिके लिये मंगलचिन्ता करताहूं ॥ २४ ॥ और फिर प्रभात होने पर दिनकी और सूर्यास्त होनेपर रात्रिकी मंगलचिन्ता करताहूं कि, वह सर्व- काल निरापद अवस्थामें रहैं, प्रतिक्षण इसीकी चिन्ता करता रहताहूं ॥ २५ ॥ हे भूप ! यह मैंने अपने उद्वेगका कारण कहा, अब अनुग्रह करके मेरेही बाण मारिये ॥ २६ ॥ हे पार्थिव ! जिस कारण मैं इस प्रकार सैकडों दुःखसे आक्रान्त होकर प्राण परित्याग करनेकी इच्छा करताहूं, वह आप समझिये ॥ २७ ॥ हे प्रभो ! आत्मघाती असूर्य नामक नरकको प्राप्त होते हैं, और यज्ञार्थमें नियुक्त समस्त पशु सद्गतिलाभ करते हैं ॥ २८ ॥

पूर्वकालमें अग्नि, वरुण और सूर्य पशुत्व ग्रहण करके यज्ञकार्यमें नियुक्त हुएथे, इसी कारण सद्गति प्राप्त की है ॥ २९ ॥ अतएव हे नृप ! मेरे ऊपर कृपा करके मुझको सद्गति प्रदान कीजिये । ऐसा करनेसे आपको पुत्रलाभमें अभीष्टप्राप्ति होगी ॥ ३० ॥ पूर्वमृगने कहा—हे राजेन्द्र ! यह मृग हत्याके उपयुक्त नहीं है, क्योंकि जिसके बहुत संतान है, वह सुकृती (पुण्यवान्) और धन्य हैं । मैं अपुत्र हूं अतएव मुझको मारना चाहिये ॥ ३१ ॥ उत्तरमृग बोला—एकमात्र देहके कारण जिसको एकमात्र दुःख उत्पन्न होता है, वह तुम्हारे समान धन्य है किन्तु जिसके देह बहुत हैं, उसको दुःख भी अनेकानेक होते

अग्निः पशुरभूत्पूर्वं पशुरासीज्जलाधिपः ॥ भास्वानथोच्छ्रितीः प्राप्ता यज्ञे निष्ठामुपागताः ॥ २९ ॥ तन्ममैतां कृपां कृत्वा नय मामुच्छ्रितिं नृप ॥ आत्मनश्चेप्सितं कामं पुत्रलाभादवाप्स्यसि ॥ ३० ॥ पूर्वमृग उवाच ॥ राजेन्द्र नैष हन्तव्यो धन्योऽयं सुकृती मृगः ॥ बहवस्तनया ह्यस्य हन्तव्योऽहमसन्ततिः ॥ ३१ ॥ उत्तरमृग उवाच ॥ एकदेहभयं यस्य दुःखं धन्यः स वै भवान् ॥ बहूनि यस्य देहानि तस्य दुःखान्यनेकधा ॥ ३२ ॥ एको यदाहमासं तु प्राक्तदा देहजं मम ॥ दुःखमासीन्ममत्वे तु भार्यायास्तदभूद्द्विधा ॥ ३३ ॥ यदा जातान्यपत्यानि तदा यावन्ति तानि वै ॥ तावच्छरीरभूमीनि मम दुःखान्यथाभवन् ॥ ३४ ॥ न कृतार्थो भवाम्यस्य नातिदुःखाय सम्भवः ॥ इह दुःखाय मत्सूतिः परत्र च विरोधिनी ॥ ३५ ॥ यतो रक्षणपोषार्थमपत्यानां करोमि तत् ॥ चिन्तयामि च संभूतिस्तेन मे नरके ध्रुवम् ॥ ३६ ॥

हैं ॥ ३२ ॥ प्रथम जब मैं एक था, तब मुझको दुःखभी एक देहका था फिर जब भार्या हुई, तब स्नेहवश यही दुःख दो भागमें विभक्त हुआ ॥ ३३ ॥ और अब जितनी संतान उत्पन्न हुई है, देहभी उतनेही भागमें विभक्त हुआ है, इस कारण मुझको अनेक देहजनित दुःख उत्पन्न हुआ है ॥ ३४ ॥ तुमको जब अधिक दुःख भोगना नहीं पडता तब क्या तुम कृतार्थ नहीं हो ? मेरी संतान इस लोकमेंभी दुःखका कारण और परलोकमेंभी विरोधी है । ॥ ३५ ॥ देखो मैं पुत्रोंकी रक्षा तथा उनका पोषण करनेके लिये जो कुछ करताहूं जो कुछ चिन्ता करताहूं निःसन्देह वह सब नरकमें जानेका हेतुस्वरूप है ॥ ३६ ॥

राजाने कहा—हे मृग ! पुत्रवान् और अपुत्रमें कौन धन्य है, यह मैं नहीं जानसकता, मेराभी इस कार्यमें पुत्रके लियेही उद्योग है, अतएव मेरा मन अत्यन्त चंचल होता है ॥ ३७ ॥ यद्यपि सन्ततिके कारण इस लोक और परलोकमें दुःख भोगना पडता है यह बात सत्य है किन्तु तोभी मैंने ऐसी नीति सुनी है कि, अपुत्र मनुष्य ऋणी होता है ॥ ३८ ॥ अतएव हे मृग ! मैं विनाही प्राणीका वध किये पूर्वकालके राजाओंके समान प्रचण्ड तपस्याद्वारा पुत्र प्राप्त होनेकी चेष्टा करूंगा ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां खनीनेत्रचरिते सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-

राजोवाच ॥ न वेद्मि किं सन्ततिमान्धन्योऽपुत्रोऽत्र किं मृग ॥ पुत्रार्थश्चायमारम्भो मम दोलायते मनः ॥ ३७ ॥ दुःखाय सन्ततिः सत्यमैहिकामुष्मिकाय तत् ॥ तथाप्यतनयान्यान्ति ऋणानीति श्रुतं मया ॥ ३८ ॥ सोऽहं यतिष्ये पुत्रार्थमृते प्राणिवधं मृग ॥ तपसैव प्रचण्डेन यथापूर्वं महीपतिः ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे खनित्रचरिते सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः स नृपतिर्गत्वा गोमतीं पापनाशिनीम् ॥ तत्र तुष्टाव नियतो भूत्वा देवं पुरन्दरम् ॥ १ ॥ तप्यमानस्तपश्चोग्रं यतवाक्कायमानसः ॥ तुष्टाव प्रयतः शक्रमपत्यार्थं महीपतिः ॥ २ ॥ तस्य स्तोत्रेण तपसा भक्त्या चापि सुरेश्वरः ॥ तुतोष भगवानिन्द्रः प्राह चैनं महामुने ॥ ३ ॥ अनेन तपसा भक्त्या स्तोत्रेणोच्चारितेन च ॥ परितुष्टोऽस्मि ते भूप व्रियतां भवता वरः ॥४॥ राजोवाच ॥ अपुत्रस्य सुतो मेऽस्तु सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ सदा चाव्याहतैश्वर्यो धर्मकृद्धर्मवित्कृती ॥ ५ ॥

अनन्तर राजा खनीनेत्र पापनाशिनी गोमतीके तटपर जाय संयतेन्द्रिय हो, देवपुरन्दरकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ हे महामुने ! जब महीपतिने काय मन वचनसे संयत होकर पुत्रकी कामना करके इन्द्रकी स्तुति की, तब भगवान् सुरेश्वरने उनकी भक्ति और स्तुतिसे संतुष्ट होकर उनसे कहा ॥ २ ३ ॥ हे भूप ! तुम्हारे इस तप भक्ति और स्तोत्रउच्चारणके द्वारा मैं अत्यन्त संतुष्ट हुआहूं अतएव वर मांगो ॥ ४ ॥ राजाने कहा—मैं अपुत्र हूं मेरे सब शस्त्रधारियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ सदा प्रतिबंधरहित ऐश्वर्यवाला धर्मज्ञ, धर्मचारी और कृतकार्य पुत्र हो ॥ ५ ॥

मार्कंण्डेयजी बोले-जब राजाकी प्रार्थना इन्द्रने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार करी, तब राजा प्रजापालनके लिये अपने पुरमें लौट आये ॥ ६ ॥ वह यज्ञानुष्ठान और प्रजापालन करनेपर इन्द्रके प्रसादसे उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ राजाने उसका 'बलाश्व' नाम रक्खा । और उसको संपूर्ण अस्त्र-विद्या प्रदान की ॥ ८॥ हे विप्र ! बलाश्वने पिताकी मृत्युके उपरान्त साम्राज्येश्वर राजा होकर पृथ्वीके समस्त राजाओंको अपने वशीभूत किया ॥९॥ आर सारग्रहणपूर्वक उनसे करग्रहण और प्रजाका सम्यक् प्रकारसे पालन करने लगा ॥ १० ॥ अनन्तर उन समस्त राजा और उनकी दुर्मद ज्ञातिगणने

मार्कण्डेय उवाच ॥ तथेति चोक्तः शक्रेण राजा प्राप्तमनोरथः ॥ प्रजाः पालयितुं भूप आजगाम निजं पुरम् ॥ ६ ॥ तत्रास्य कुर्वतो यज्ञं सम्यक्पालयतः प्रजाः ॥ अजायत सुतो विप्र तदा शक्रप्रसादतः ॥ ७ ॥ तस्य नाम पिता चक्रे बलाश्व इति भूपतिः ॥ अस्त्रग्राम-मशेषं च ग्राहयामास तं सुतम् ॥ ८ ॥ पितर्युपरते विप्र सोऽधिराज्ये स्थितो नृपः ॥ स बलाश्वो वशं निन्ये भुवि सर्वमहीक्षितः ॥ ९ ॥ करं च दापयामास सारग्रहणपूर्वकम् ॥ स सर्वभूमिपान्राजा पालयामास च प्रजाः ॥ १०॥ अथाखिलनरेन्द्रास्ते दायादास्तस्य दुर्मदाः ॥ न चाभ्युत्थाय सततं त चास्मै प्रददुः करान् ॥ ११ ॥ व्युत्थिताः स्वेषु राष्ट्रेषु न सन्तोषपरास्ततः ॥ भुवं तस्य नरेन्द्रस्य जगृहुस्ते नराधिपाः ॥ १२ ॥ स गृहीत्वा स्वकं राज्यं पृथिवीशो बलान्मुने ॥ तस्थौ स्वनगरे भूपैर्विरोधो बहुभिः कृतः ॥ १३ ॥ समेत्य सुमहा-वीर्याः ससाधनधनास्ततः ॥ रुरुधुस्तं महीपालं पुरे तत्र नरेश्वराः ॥ १४ ॥ पुररोधेन तेनाथ कुपितः स महीपतिः ॥ स्वल्पकोशोऽल्प-दण्डश्च वैक्लव्यं परमं गतः ॥ १५ ॥

अभ्युत्थानरूप सत्कार न देकर कर देना बंद करदिया ॥ ११ ॥ और वह अभ्युत्थानरहित होकर स्वाधीन भावसे राज्यशासन करकेही संतुष्ट नहीं हुए वरन् अन्तमें उन्होंने उन नरेन्द्र बलाश्वकी अधिकृत भूमितक ग्रहण करली ॥ १२ ॥ पृथ्वीश्वर बलाश्व अनेक राजाओंके संग युद्धमें हीनबल हो अपना राज्यमात्र ग्रहण कर अपनी राजधानीमें वास करने लगे ॥ १३ ॥ किन्तु तोभी इन सब साधन और धनसंपन्न महाबलवान् राजाओंने उनको पुरमें घेर लिया ॥ १४ ॥ तब महीपति पुर घिर जानेके कारण अत्यन्त कुपित हुए. किन्तु वह बलशाली बलाश्व तिस काल अत्यन्त अल्पको और अल्पदण्ड-

युक्त होनेसे ॥ १५ ॥ और रक्षाका दूसरा कोई उपाय न देखकर अति विकल हुए और व्यथित हृदयसे दोनों हाथ मुखपर रखकर लम्बे श्वास त्यागने लगे ॥ १६ ॥ इससे मुखकी वायु आहत होकर उसके मध्यसे शत शत योद्धा रथ हाथी और घोडे निकले ॥ १७ ॥ हे मुने ! इस प्रकार क्षणकालमेंही बलशाली सर्वोत्तम उस सैन्यसमूहद्वारा भूपतिका संपूर्ण नगर व्याप्त होगया ॥ १८ ॥ अनन्तर उस सब महत् सेनाके सहित राजाने नगरसे निकलकर शत्रुओंको जीता ॥ १९ ॥ हे महाभाग ! तब नरपती उनको पराजयपूर्वक वशीभूत और पूर्वके समान करदे अर्थात् कर देनेवाला करके सौभाग्यशाली

अपश्यमानः शरणं सबलो द्विजसत्तम ॥ करौ मुखाग्रतः कृत्वा निशश्वासार्तमानसः ॥ १६ ॥ ततोऽस्य हस्तविवरान्मुखानिलसमाहताः ॥ निर्जग्मुः शतशो योधा रथनागतुरङ्गमाः ॥ १७ ॥ ततः क्षणेन तत्सर्वं नगरं तस्य भूपतेः ॥ व्याप्तमासीद्बलौघेन सारेणातिबलान्मुने ॥ १८ ॥ अथ सोऽतिबलौघेन महता तेन संवृतः ॥ निर्मथ्य नगरात्तस्मात्तान्विजिग्ये नराधिपः ॥ १९ ॥ जित्वा च वशमानीय चकार करदान्पुनः ॥ यथापूर्वं महाभाग महाभाग्यो नरेश्वरः ॥२०॥ धुतयोः करयोर्जज्ञे यतस्तस्यारिदाहदम् ॥ बलं करन्धमस्तस्मात्स बलाश्वोऽभिधीयते ॥ २१ ॥ स धर्मात्मा महात्मा च स मैत्रः सर्वजन्तुषु ॥ करन्धमोऽभवद्भूपस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ २२ ॥ सम्प्राप्तस्य परामार्त्तिं ददावरिविनाशनम् ॥ बलं धर्मेण चाक्षिप्तमभ्युपेत्य स्वयं नृपम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे करन्धमचरितं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

हुए ॥२०॥ बलाश्वके धूत अर्थात् कम्पित दोनों हाथोंके मध्यसे जो शत्रुओंको हनन करनेवाली सेना उत्पन्न हुई इस कारण बलाश्व ' करन्धम ' नामसे विख्यात हुए थे ॥ २१ ॥ करन्धम तीनों लोकमें विख्यात, धर्मात्मा, महात्मा और सब प्राणियोंमें मित्रभावापन्न थे ॥ २२ ॥ वह नृप स्वयं धर्मप्रदत्त बललाभ करके परमआर्त्त मनुष्योंके शत्रुओंका नाश करदेते थे ॥ २३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विजोत्तम ! स्वयंवरस्थलमें सुन्दरी शुभव्रता वीरा नाम्नी वीर्यचन्द्रकी कन्याने महाराज करन्धमको पतित्वमें वरण किया था ॥ १ ॥ उन राजेन्द्रने उसके गर्भसे अवीक्षित नामक जगद्विख्यात वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न किया ॥ २ ॥ उस पुत्रके उत्पन्न होनेपर राजाने ज्योतिषियोंसे पूछा कि, मेरे इस पुत्रने प्रशस्त लग्न और शुभ नक्षत्रमें तो जन्मग्रहण किया है ॥ ४ ॥ इसके लग्नथानमें सब शुभग्रहोंकी दृष्टि तो है ? और यह दुष्टग्रहोंकी तो दृष्टिमें पतित नहीं हुआ ? अर्थात् इसपर दुष्टग्रहोंकी तो दृष्टि नहीं पडी ॥ ४ ॥ दैवज्ञगणोंने इस प्रकार पूछे जानेपर उत्तर दिया—हे महाराज ! आपका

मार्कण्डेय उवाच ॥ वीर्यचन्द्रसुता सुभ्रूर्वीरा नाम शुभव्रता ॥ स्वयंवरे सा जगृहे महाराजं करन्धमम् ॥ १ ॥ तस्यां पुत्रं स राजेन्द्रो जनयामास वीर्यवान् ॥ अविक्षितमिति ख्यातिमुपेतं जगतीतले ॥ २ ॥ जाते तस्मिन्सुते राजा स दैवज्ञानपृच्छत ॥ कच्चित्प्रशस्तनक्षत्रे शस्तलग्ने सुतो मम ॥ ३ ॥ कच्चिच्चालोकितं जन्म मम पुत्रस्य शोभनैः ॥ ग्रहैः कच्चिन्न दुष्टानां ग्रहाणां दृक्पथं गतम् ॥४॥ इत्युक्तास्तेन दैवज्ञास्तमूचुर्नृपतिं ततः ॥ शस्ते मुहूर्ते नक्षत्रे लग्ने चैव सुतस्तव ॥ ५ ॥ समुत्पन्नो महावीर्यो महाभागो महाबलः ॥ भविष्यति महाराज महाराजस्तवात्मजः ॥ ६ ॥ अवेक्षतेमं देवानां गुरुः शुक्रश्च सप्तमः ॥ सोमश्चतुर्थस्तनयं तवेनं समवैक्षत ॥ ७ ॥ उपान्तसंस्थितश्चैव सोमपुत्रोप्यवैक्षत ॥ नावैक्षतेमं सविता न भौमो न शनैश्चरः ॥ ८ ॥ तव पुत्रं महाराज धन्योऽयं तनयस्तव ॥ सर्वकल्याणसम्पत्तिसमवेतो भविष्यति ॥ ९ ॥

पुत्र प्रशस्त मुहूर्त्त, प्रशस्त नक्षत्र और प्रशस्त लग्नमें उत्पन्न हुआ है ॥ २ ॥ अतएव हे राजन् ! यह आपका पुत्र महाभाग्यवान्, अत्यन्त वीर्यवान् असीम बलशाली और महाराज होंगे ॥ ६ ॥ यह देखिये, इस पुत्रको बृहस्पति और शुक्र सप्तम हैं वा सप्तम घरपर देखते हैं और चतुर्थ स्थानको चन्द्र अवलोकन करता है ॥ ७ ॥ और ग्यारहवें स्थानमें स्थित बुधकी भी इनपर दृष्टि है और आपके पुत्र पर रवि, मंगल तथा शनैश्चरकी दृष्टि नहीं है ॥ ८ ॥ अतएव हे महाराज ! यह आपके पुत्र धन्य और सर्व कल्याण संपत्तियुक्त होंगे ॥ ९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—ज्योतिषीगणोंके इस प्रकार वचन सुनकर वसुधेश्वर प्रीतिपूर्ण मनसे अपने स्थानपर बैठे हुए कहने लगे ॥ १० ॥ " बृहस्पति और बुध यह पुत्रको अवलोकन करते हैं, किन्तु रवि, शनि, मंगल नहीं देखते " ॥ ११ ॥ आपने वारम्वार " अवैक्षत " शब्द कहा है, अतएव यह पुत्र ' अवीक्षित ' नामसे विख्यात होगा ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उनके वेदवेदाङ्गपारग पुत्र अवीक्षितने कण्वपुत्रसे संपूर्ण अस्त्रविद्या ग्रहण की थी ॥ १३ ॥ राजपुत्रने रूपमें देववैद्य दोनों अश्विनीकुमार, बुद्धिमें वाचस्पति, कान्तिमें शशाङ्क (चन्द्रमा) तेजमें सूर्य ॥ १४ ॥ धैर्यमें समुद्र, और

मार्कण्डेय उवाच ॥ इति दैवज्ञवचनं निशम्य वसुधाधिपः ॥ हर्षपूर्णमनाः प्राह निजस्थानगतस्तदा ॥१०॥ अवैक्षतेमं देवानां गुरुः सोमः सितो बुधः ॥ नावैक्षतैनमादित्यो नार्कसूनुर्न भूमिजः ॥ ११ ॥ अवैक्षतेति यत्प्रोक्तं भवद्भिर्बहुशो वचः ॥ आविक्षितोति तेनास्य ख्यातं नाम भविष्याति ॥१२॥ मार्कंडेय उवाच ॥ अविक्षितः सुतस्तस्य वेदवेदाङ्गपारगः ॥ अस्त्रग्राममशेषं स कण्वपुत्रादथाग्रहीत् ॥ १३ ॥ स्वरूपेणातिभिषजौ देवानां पार्थिवात्मजः ॥ बुद्ध्या वाचस्पतिं कांत्या शशाङ्कं तेजसा रविम् ॥ १४ ॥ धैर्येणाब्धिं तथोर्वीं च सहिष्णुत्वेन वीर्यवान् ॥ शौर्येण न समस्तस्य कश्चिदासीन्महात्मनः ॥ १५ ॥ स्वयंवरे तं जगृहे हेमधर्मात्मजा वरा ॥ सुदेवतनया गौरी सुभद्रा बलिनः सुता ॥ १६ ॥ लीलावती वीरसुता वीरभद्रसुता निभा ॥ भीमात्मजा मान्यवती दम्भपुत्री कुमुद्वती ॥ १७ ॥ याश्चैनं नाभिनन्दन्ति स्वयंवरकृतक्षणाः ॥ ताश्चापि स बलाद्वीरो जग्राह नृपतेः सुतः ॥ १८ ॥ निराकृत्य नृपान्सर्वान्हतासां पितृकुलानि च ॥ स्वयं हि वीर्यमाश्रित्य बलवान्स बलोद्धतः ॥ १९ ॥

सहिष्णुतामें पृथ्वीको अतिक्रम किया था और कोई पुरुषभी उन महात्माके समान शौर्यशाली नहीं था ॥ १५ ॥ हेमधर्मकी कन्या वरा, सुदेवकी कन्या गौरी, बलिकी पुत्री सुभद्रा ॥ १६ ॥ वीरभद्रकी कन्या निभा, वीरकन्या लीलावती, भीमपुत्री मान्यवती और दम्भकन्या कुमुद्वतीने उनको स्वयंवरमें वरण किया था ॥ १७ ॥ और जिन राजकन्याओंने स्वयंवरमें उनको सन्मानित नहीं किया अर्थात् वरण नहीं किया, बलवान् बलोन्मत्त राजपुत्रने अपने पराक्रमसे अन्यान्य राजाओं और उनके पितृकुलको पराजय करके उनकोभी बलत्कारसे ग्रहण किया ॥ १८ ॥ १९ ॥

हे विप्रर्षे ! एक समय वैदेशाधिपति विशालराजाकी कन्या सुदती वैशालिनीने स्वयंवरके समय उनको ॥ २० ॥ वरनेकी इच्छा नहीं की, तब उन्होंने बलके गर्वसे जिस प्रकार अन्यान्य राजकन्याओंको ग्रहण किया, इसी प्रकार समस्त राजाओंको पराजित करके बलात्कारसे उसको भी ग्रहण किया ॥ २१ ॥ इससे यह सब राजा मानी अवीक्षितके द्वारा वारम्वार पराजित होकर दुःखितचित्त और व्याकुलभावसे परस्परमें कहने लगे ॥ २२ ॥ एकजाती बलशाली समस्त इकट्ठे राजाओंके सामने एक मात्र वीरने इस ललनाको ग्रहण किया, यह देखकर भी तुम सहन कर गये, अतएव तुम्हारे जन्मको धिक्कार है ॥ २३ ॥

एकदा तु विशालस्य विशालाधिपतेः सुताम् ॥ वैशालिनीं स सुदतीं स्वयंवरकृतक्षणाम् ॥ २० ॥ परिभूयाखिलान्भूपान्स्वेच्छया न वृतस्तया ॥ बलाज्जग्राह विप्रर्षे यथान्या बलगर्वितः ॥ २१ ॥ ततस्ते भूभृतः सर्वे बहुशस्तेन मानिना ॥ निराकृताः सुनिर्विण्णाः प्रोचुरन्योन्यमाकुलाः ॥२२॥ क्षमतां वंचनामेतामेकस्माद्बलशालिनाम् ॥ बहूनामेकवर्णानां जन्म धिग्वो महीभृताम् ॥२३॥ क्षत्रियो यः क्षतात्त्राणं वध्यमानस्य दुर्मदैः ॥ करोति तस्य तन्नाम वृथैवान्ये हि बिभ्रति ॥ २४ ॥ आत्मनोऽपि क्षतत्राणं दुष्टादस्मादकुर्वताम् ॥ भवतां क्षत्रियकुले जातानां कीदृशी मतिः ॥ २५ ॥ उच्चार्यंते स्तुतिर्या वः सूतमागधबन्दिभिः ॥ सा सत्या मा वृथा वीरा भवत्वरिविनाशनात् ॥ २६ ॥ चरतां सा तथैवैषा भूपाश्चारैर्दिगन्तरे ॥ पौरुषाश्रयिणः सर्वे विशिष्टकुलसम्भवाः ॥ २७ ॥

दुष्टमनुष्यके मारनेपरभी उसकी जो रक्षा करता है, उसीका नाम प्रकृतक्षत्रिय है, अन्य पुरुष क्षत्रिय नाम वृथा धारण करते हैं ॥ २४ ॥ दूसरेकी तो बातही क्या है, तुम लोग इस दुष्टके हाथसे अपनी रक्षा करनेका भी उद्योग नहीं करते क्षत्रियकुलमें जन्मग्रहण करके यह तुम्हारी कैसी बुद्धि है ? ॥२५॥ हे वीरगण ! सूत, मागध और बन्दीगण तुम्हारी जो स्तुति करते हैं, वह वृथा न हो, शत्रुविनाश करके उसको सत्यमें परिणत करो ॥ २६॥ तुम्हारा " भूप " शब्द दिगन्तरमें वृथा प्रचारित न हो, तुम सबनेही श्रेष्ठ कुलमें जन्मग्रहण किया है, अतएव सबही पौरुषशाली हो ॥ २७ ॥

कौन मनुष्य मत्युका भय नहीं करता और युद्ध परित्याग करकेही कौन अमर होता है ? यह सब विचारकर शस्त्रधारीमात्रकोही पौरुष छोडना उचित नहीं है ॥ २८ ॥ यह सब वचन सुनकर भूपालगण अत्यन्त कुपित हो परस्पर उत्साहपूर्ण बातचीत करने लगे और फिर शस्त्रग्रहण करके उठ खडे हुए ॥ २९ ॥ कोई रथ कोई हाथी तथा कोई घोडेपर चढगये और कोई कोई क्रोधित चित्तसे पदाति होकर अर्थात् पैदलही अवीक्षितके समीप आये ॥ ३० ॥ इति श्रीमा०पु०भाषाटीकायामेकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–उस कालभी अवीक्षितके द्वारा बहुतवार हारेहुऐ वह राजपुत्र और राजालोग इस प्रकार संग्राममें सुसज्जित हुए ॥ १ ॥ हे मुने ! तब बहुतसे उन राजा और राजपुत्रोंके संग एकमात्र अवीक्षितका

बिभेति को न मरणात्को युद्धेन विनाऽमरः ॥ विचिन्त्यैतन्न हातव्यं पौरुषं शस्त्रवृत्तिभिः ॥ २८ ॥ एतन्निशम्य ते भूपा विस्पष्टामर्षपूरिताः ॥ ऊचुः परस्परं सर्वे समुत्तस्थुश्च सायुधाः ॥ २९ ॥ केचिद्रथानारुरुहुः केचिन्नागांस्तथा हयान् ॥ अन्येऽमर्षपराधीनास्तमुपेताः पदातयः ॥ ३० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति संग्रामसज्जास्ते भूपा भूपसुतस्तथा ॥ निराकृताः सुबहुशस्तत्कालं चाप्यविक्षिता ॥ १ ॥ ततो बभूव संग्रामस्तस्य तैः सह दारुणः ॥ एकस्य बहुभिर्भूपैर्भूपपुत्रवरैर्मुने ॥२॥ तेऽसिशक्तिगदाबाणपाणयस्तं सुदुर्मदाः ॥ अभिघ्नन्तो युयुधिरे तैः समस्तैरसावपि ॥३॥ स ताञ्छरशतैरुग्रैर्बिभेद नृपनन्दनः ॥ कृतास्त्रो बलवान्बाणैस्ते च तं बिभिदुः शितैः ॥ ४ ॥ कस्यचिच्चिच्छिदे बाहुमन्यस्य च शिरोधराम् ॥ हृदि विव्याध चैवान्यमन्यं वक्षस्यताडयत् ॥ ५ ॥

दारुण संग्राम होनेलगा ॥ २ ॥ वह संपूर्ण दुर्मद राजा असि, शक्ति, गदा और बाण हाथमें लिये उनपर आघात करते करते युद्ध करनेलगे और अवीक्षितभी अकेले उनके संग युद्ध करनेलगे ॥ ३ ॥ अस्त्रज्ञ बलवान् नृपनन्दनने शतशत उग्र बाणोंके द्वारा उनको विद्ध किया और वहभी निशित बाणोंसे उनको विद्ध करनेलगे ॥ ४ ॥ राजपुत्र अवीक्षितने किसीकी बाहु और किसीका मस्तक काट डाला किसीका हृदय विद्ध किया और किसीकी छातीमें आघात किया ॥ ५ ॥

उन्होंने हाथियोंकी सूंड घोडोंके मस्तक और किसीके रथके घोडे और किसीके सारथीको छेदन किया ॥ ६ ॥ शत्रुओंके आतेहुए सब बाणोंको अपने बाणोंसे अधबीचमेंही दो खण्ड करनेलने और हाथकी लाघवतासे किसीका खड्ग तथा किसीका धनुष काटडाला ॥ ७ ॥ अवीक्षितके किसी राजपुत्रका वर्म (बख्तर) काटनेसे वह मृत्युको प्राप्त हुआ और किसी पदातिकने आहत होकर रणस्थल परित्याग किया ॥ ८ ॥ इस प्रकार जब उन्होंने समस्त राजमण्डलको व्याकुल करदिया और हारीहुई सेना भागनेमें तत्पर हुई, तब केवल सात सौ वीर अपनी कुलीनता, अवस्था और शौर्य विचार, लज्जापूर्वक

करं चिच्छेद करिणस्तुरगस्य तथा शिरः ॥ रथस्येषां तथैवाश्वान्रथस्यान्यस्य सारथिम् ॥ ६ ॥ बाणानापततश्चक्रे द्विधा बाणैस्तथा द्विषाम् ॥ चिच्छेदान्यस्य खड्गं च धनुरन्यस्य लाघवात् ॥७॥ तनुत्रेऽपहृते तेन ननाशान्यो नृपात्मजः ॥ अविक्षिताहतश्चान्यः पदातिः प्रजहौ रणम् ॥ ८ ॥ इत्याकुलीकृते तस्मिन्समग्रे राजमण्डले ॥ तस्थुः सप्तशतं वीरा मरणे कृतनिश्चयाः ॥९ ॥ आभिजात्यवयःशौर्यलज्जाभरसमन्विताः ॥ निर्जिते सकले सैन्ये पलायनपरायणे ॥ १० ॥ तैः समेत्य महीपालैः स तु पुत्रो महीभृतः ॥ युयुधे धर्मयुद्धेन तेन तं नातिकोपितः ॥ ११॥ विच्छिन्नयन्त्रकवचान्स तानपि महाबलः ॥ कर्तुं व्यवस्थितस्ते च ततः क्रुद्धा महामुने ॥ १२ ॥ धर्ममुत्सृज्य युयुधुर्युध्यमानेन धर्मतः ॥ नरेन्द्रपुत्राः प्रस्वेदजलक्लिन्नाननाः समम् ॥ १३ ॥ विव्याध कश्चिद्बाणौघैः कश्चिच्चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ध्वजमस्यापरो बाणैश्छित्त्वा भूमावपातयत् ॥ १४ ॥ जघ्नुरन्ये तथैवाश्वान्बभञ्जुश्चापरे रथम् ॥ गदापातेनाथ चान्ये बाणैः पृष्ठमताडयन् ॥ १५ ॥

मरनेमें कृतनिश्चय हो रणक्षेत्रमें स्थिति करने लगे ॥ ९ ॥ १० ॥ राजपुत्र अत्यन्त क्रोधित हो, उनके समीप आय, यथाविहित धर्मयुद्धद्वारा उन सब राजाओंके संग युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥ हे महामुने ! जब महाबलवान् अवीक्षित उनके अस्त्र कवचादि काटनेमें कृतसंकल्प हुए ॥ १२ ॥ तब जिनका मुख पसीनेमें भीग रहा है, ऐसे नरेन्द्रपुत्रगण धर्म त्यागकर उन धर्मयोद्धाके संग युद्ध करने लगे ॥ १३ ॥ कोई बाणोंसे विद्ध करने लगा, किसीने धनुष छेदन किया और किसीने ध्वजा काटकर पृथ्वीमें गिरादी ॥ १४ ॥ किसीने घोडोंको मार डाला, किसीने रथ तोड डाला और किसीने उनकी पीठमें

शस्त्राघातसे ताडना करी ॥ १५ ॥ धनुषके कटजानेपर नृपनन्दनने अत्यन्त क्रोधसे ढाल तलवार ग्रहण करी, किन्तु किसी वीरने उसको भी काट दिया ॥ १६ ॥ ढाल तलवारके छिन्न होनेपर गदायुद्धमें चतुर अवीक्षितने गदा ग्रहण करी, परन्तु लघुहस्त अपर वीरने क्षुरके समान तीक्ष्णबाणसे उसको भी काटडाला ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त धर्मयुद्धसे विमुख राजाओंने उनको घेर लिया और उनमें कितनोंहीने सहस्र बाणोंके द्वारा और कितनोंहीने शतबाणोंके द्वारा उनको विद्ध किया ॥ १८ ॥ अकेले राजकुमार बहुतजनोंके द्वारा इस प्रकार विद्ध होनेसे विह्वल होकर पृथ्वीमें गिरपडे तब महाभाग राजपुत्रोंने उनको बांधलिया ॥ १९ ॥ सब महीपाल उनको अधर्मयुद्धमें ग्रहण कर विशालराजके सहित वैदिशपुरमें प्रविष्ट हुए ॥ २० ॥ उन राजपुत्रको

छिन्ने धनुषि सक्रोधः स तदा नृपतेः सुतः ॥ जग्राहासिं तथा चर्म तदप्यन्योन्वपातयत् ॥ १६ ॥ च्छिन्नासिचर्मा जग्राह स गदां गदिनां वरः ॥ तामप्यन्यः क्षुरप्रेण चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ १७ ॥ अन्ये शरसहस्रेण शतेनान्ये नराधिपाः ॥ विव्यधुः कोष्ठकीकृत्य धर्मयुद्धपराङ्मुखाः ॥१८॥ स विह्वलः पपातोर्व्यामेको बहुभिरर्दितः ॥ राजपुत्रा महाभागा बबन्धुस्ते च तं ततः ॥१९॥ तमधर्मेण ते सर्वे गृहीत्वा नृपतेः सुतम् ॥ विशालेन समं राज्ञा वैदिशं विविशुः परम् ॥२०॥ हृष्टाः प्रमुदिता बद्धं समादाय नृपात्मजम् ॥ स्वयंवरा च सा कन्या न्यस्ता तेन ततः पुरः ॥ २१ ॥ पुनः पुनश्च पित्रोक्ता तथापि च पुरोधसा ॥ आलम्ब्यतामिति वरो यस्ते राजसु रोचते ॥ २२ ॥ यदा सा मानिनी काञ्चिन्न जग्राह वरं मुने ॥ तदा पप्रच्छ दैवज्ञं विवाहार्थं नरेश्वरः ॥ २३ ॥ विशिष्टतरमेतस्या विवाहाय दिनं वद ॥ अद्यैतदीदृक्संजातं युद्धं विघ्नोपपादकम् ॥ २४ ॥

बंधनपूर्वक ग्रहण करके वह सब हृष्ट और आह्लादित हुए थे तदनन्तर उस स्वयंवरा कन्या और राजपुत्रको उन्होंने विशाल नरपतिके सन्मुख स्थापित किया ॥ २१ ॥ इसके पीछे हे मुने ! " इन राजाओंमें जिसकी अभिलाषा हो उसकोही वरो " उसके पिता और पुरोहितोंके इस प्रकार वारम्वार कहनेपर ॥ २२ ॥ भी उस कन्याने जब किसीको भी वररूपमें ग्रहण नहीं किया तब नरेश्वरने ज्योतिषीलोगोंसे विवाहके संबंधमें पूछा ॥ २३ ॥ " आज तो इस प्रकार विघ्नोत्पादक युद्ध उपस्थित हुआ, अतएव इसके विवाहका और कोई उत्तम दिन बताओ" ॥ २४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—जब नरेन्द्रने ज्योतिषियोंसे इस प्रकार पूछा, तब वह उस विषयकी चिन्ता करने लगे और वृत्तान्त जानकर दुःखितचित्त हो राजासे कहने लगे ॥ २५ ॥ हे पृथ्वीपते ! इस विवाहका अच्छा लग्नयुक्त और सुन्दर दिन शीघ्रही उपस्थित होगा ॥ २६ ॥ हे मानद ! उस दिनके उपस्थित होनेपर विवाहकार्य सम्पादन कीजिये, इस समय विवाहकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस समय एसा महाविघ्न उपस्थित हुआ है ॥ २७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे महाराज ! करन्धम तथा उनकी पत्नी वीरा और अन्यान्य राजाओंने राजपुत्रके बँधनेका संवाद सुना ॥ १ ॥ हे महामुने । उनको अधर्मयुद्धमें बँधा सुनकर राजा अपरापर सामन्त राजाओंके संग बहुतकालतक चिन्ता

मार्कंडेय उवाच ॥ इति पृष्टो नरेन्द्रेण स दैवज्ञो विमृश्य तत् ॥ दुर्मनाः प्राह विज्ञातपरमार्थो महीपतिम् ॥ २५ ॥ भविष्यन्त्यपराणीह दिनानि पृथिवीपते ॥ प्रशस्तलग्नयुक्तानि शोभनान्यचिरेण वै ॥२६॥ करिष्यसि विवाहं त्वं तेषु प्राप्तेषु मानद ॥ अलमेतेन यत्रायं महाविघ्न उपस्थितः ॥ २७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः शुश्राव तं बद्धं तनयं स करन्धमः ॥ तस्य पत्नी तथा वीरा अन्ये चापि महीभृतः ॥१॥ तमधर्मेण तनयं बद्धं श्रुत्वा महीपतिः ॥ समन्तैः पृथिवीपालैश्चिरं दध्यौ महामुने ॥ २ ॥ केचिदूचुर्महीपाला वध्याः सर्वे महीभृतः ॥ यैरेकः संयुगे बद्धः समस्तैस्तैरधर्मतः ॥ ३ ॥ युज्यतां वाहिनी शीघ्रमूचुरन्ये किमास्यते ॥ विशालो बध्यतां दुष्टस्तत्र येऽन्ये समागताः ॥ ४ ॥ अन्ये तथोचुर्धर्मोऽत्र त्यक्तः पूर्वमहीक्षिता ॥ अन्यायेन बलाद्येन गृहीता तमवांछती ॥ ५ ॥ स्वयंवरेष्वशेषेषु तेन राजसुतास्तदा ॥ खिलीकृतास्ततः सर्वे समेत्य स वशीकृतः ॥ ६॥

करतेरहे ॥ २ ॥ कोई कोई बोला—जिन बहुत राजाओंने एकत्र होकर एक मात्र वीरको अधर्मयुद्धमें बांधलियाहै वह सब राजा वध्य अर्थात् मारडालने योग्य हैं ॥ ३ ॥ कोई बोला—अब निश्चिन्त क्यों बैठे हो शीघ्र सेना सजाओ दुष्ट विशाल राजा और वहां आयेहुए सब राजाओंको बांधलो ॥ ४ ॥ और कोई कोई कहनेलगे पहिले राजपुत्रनेही अनभिलाषिणी कन्याको अन्यायरीतिसे बलपूर्वक ग्रहणकरके धर्म त्यागा है ॥ ५ ॥ और उन्होंने सब स्वयंवरोंमेंही इसी प्रकार राजपुत्रोंको शत्रु बनालियाहै इस कारण उन सबने मिलकर उन्हें बांधलियाहै ॥ ६ ॥

वीरवंशीयवीरपत्नी वीरप्रसू वीरा उनके यह वचन सुनकर हर्षित अन्तःकरणसे ॥ ७॥ स्वामी और अन्यान्य राजाओंके सामने कहनेलगी--हे पार्थिवगण ! संपूर्ण राजाओंको पराजित करके मेरे कल्याणास्पद पुत्रने जो बलात्कारसे कन्याग्रहण की है सो उत्तमही किया है इसीलिये अधर्मयुद्धमें अकेले पुत्रको राजाओंने बांधलियाहै ॥ ८ ॥ ९ ॥ मुझको बोध होता है कि, इससेभी मेरे पुत्रकी कोई हानि नहीं हुई यही पुरुषार्थ है जो क्रोधके वशीभूत होकर मनुष्य ॥ १०॥ मारनेकी इच्छावाले सिंहके समान अधर्मसे मनुष्यकी नीतिको इस प्रकार नहीं गिनता है अनेकानेक सन्मानित राजाओंके सामने बला-त्कारसे मेरे पुत्रने स्वयंवरके निमित्त उपस्थित की हुई बहुत कन्याओंको ग्रहण किया है कहां तो क्षत्रियकुलमें जन्मग्रहण और कहां हीनजनोचित मांग-

तेषामेतद्वचः श्रुत्वा वीरा वीरप्रजावती ॥ वीरगोत्रसमुद्भूता वीरपत्नी प्रहर्षिता ॥ ७ ॥ उवाच भर्त्तुः प्रत्यक्षमन्येषां च महीक्षिताम् ॥ भद्रं कृतं भद्रभुजा मम पुत्रेण पार्थिवाः ॥८॥ गृहीता यद्बलात्कन्या जित्वा सर्वमहीक्षितः ॥ तदर्थं युध्यमानोऽयं बद्ध एको न धर्मतः ॥ ९ ॥ तदप्यस्मत्सुतस्याजौ मन्ये नापचयप्रदम् ॥ एतदेवहि पौरुष्यं यदमर्षवशान्नरः ॥ १० ॥ नीतिं न गणयत्येवं जिघांसुरिव केसरी ॥ स्वयंवराय विन्यस्ता मम पुत्रेण कन्यका ॥ ११॥ बह्व्यो गृहीता भूपानां पश्यतामतिमानिनाम् ॥ क्व क्षत्रियकुले जन्म क्व याञ्चा हीनसे-विता ॥ १२ ॥ बलादेव समादत्ते क्षत्रियो बलिनां पुरः ॥ लोहशृंखलबद्धा वा न वशं यान्ति कातराः ॥ १३ ॥ प्रसह्यकारिणो यान्ति राजानो धर्मशालिनः ॥ तदलं दौर्मनस्येन श्लाघ्यमेवास्य बन्धनम् ॥१४॥ युष्माकमपि ये पूर्वे कृत्वारीणां निपातनम् ॥ हृत्वैव पृथिवी-शानां पृथ्वीपुत्रादिकं वसु ॥ १५ ॥

नेका कार्य ? इन दोनोंमें बहुत अन्तर है ॥ ११ ॥ १२ ॥ अतएव क्षत्रियगण बलवानोंके सामनेही बलप्रकाश करके ग्रहण करते हैं । यदि धार्मिक राजाको कोई लोहेकी शृंखला अर्थात् जंजीरमें बांधभी ले, किन्तु तो भी वह कातरभावसे उसकी वश्यता स्वीकार नहीं कर सकता ॥ १३ ॥ किन्तु पहिले वीरता प्रकाश करके फिर सहजमेंही वश्यता स्वीकार कर सकता है अतएव इसमें बुरा माननेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मैं पुत्रके इस बँधनेका विशेष श्लाघाका विषय विचारतीहूं ॥ १४ ॥ तुम्हारे पूर्वजोंने भी शत्रुओंका नाश करके राजाओंका पृथ्वी पुत्रादिक धन हरण किया है ॥ १५ ॥

और इस निमित्त आपके मस्तकमें अस्त्राघातका होना भी श्लाघनीय है । राजा लोग पृथ्वी, पुत्रादि धन और भार्या इत्यादिसज्जनोंके निकटसेही हरण करके संचय करते हैं और वही उनके गौरवका कारण होता है अतएव आप युद्धके लिये शीघ्रता अवलम्बन कीजिये, शीघ्र रथमें चढकर ॥ १६ ॥ सारथी सहित हाथी और घोडोंको सज्जित कीजिये। अनेक राजाओंके संग एकजनेका युद्ध आप लोग कैसा विचारते हैं ? ॥ १७ ॥ शूर जन अल्प युद्धमेंही बडा पराक्रम संपादन करके अन्तमें संतोष प्राप्त करते हैं, अल्प नरेंद्रादि शत्रुसमूह और जिनसे भयकी संभावना नहीं है, ऐसे कातर शत्रुओंके ऊपर कौन सामर्थ्य प्रकाश करनेकी अभिलाषा नहीं करता ? ॥ १८ ॥ सूर्य जिस प्रकार दिगन्तव्याप्त अंधकारके समूहका नाश करते हैं, ऐसेही जो शूर

भार्यावीर्यनिमित्तानि ततो यातातिगौरवम् ॥ तत्त्वर्यतां रणायाशु स्यन्दनान्यधिरोहत ॥१६॥ सज्जीकुरुत नागाश्वमचिरेण ससारथिम् ॥ मन्यध्वं किं महीपालैर्बहुभिः सह विग्रहम् ॥ १७ ॥ प्रभूता एव तोषाय शूरस्याल्परणे क्रियाः ॥ कस्य नाल्पेषु सामर्थ्यं नरेन्द्रादिषु जायते ॥१८॥ येभ्यो न विद्यते भीतिर्विक्रांतस्यापि शत्रुषु ॥ व्याप्य लोकान्समस्तान्यो ह्यभिभूय यतो नरः ॥ व्यरोचतेऽतिशूरः स तमांसीव दिवाकरः ॥१९॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्थमुद्धर्षितो राजाऽनया पत्न्या करन्धमः ॥ चकार स बलोद्योगं हन्तुं पुत्राहितान्मुने ॥२०॥ ततस्तस्य समं भूपैर्विशालेन च सङ्गरः ॥ बभूव बद्धपुत्रस्य तैरशेषैर्महामुने ॥ २१ ॥ दिनत्रयमभूद्युद्धं तेन राज्ञा समं तदा ॥ करन्धमेन भूपानां विशालस्यानुकुर्वताम् ॥ २२ ॥ यदा पराजितप्रायं तत्सर्वं भूपमण्डलम् ॥ तदा विशालोऽर्घ्यकरः करन्धममुपास्थितः ॥ २३ ॥

बल वीर्यादिके द्वारा भुवनव्यापी सब शत्रुओंको पराजित करके विराजमान होते हैं, वही यथार्थ शूर हैं ॥ १९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे मुने ! राजा करन्धम इस प्रकार पत्नीके द्वारा उत्तेजित होकर पुत्रके शत्रुओंका वध करनेको सेना सजाने लगे ॥ २० ॥ अनन्तर पुत्रके बँधेरहतेही विशालराज और अपरापर राजाओंके संग करन्धमका युद्ध आरंभ हुआ ॥ २१ ॥ उस समय विशालराजके अनुगामी राजाओंके सहित राजा करन्धमका तीन दिन युद्ध होनेपर ॥ २२ ॥ जब वह सब विशाल राजानुगामी भूपमण्डल पराजित हो गया तब विशाल उनकी पूजा करनेके लिये अर्घ्य हाथमें लेकर करन्धमके समीप उपस्थित हुए ॥ २३ ॥

करन्धमनेभी राजाके द्वारा पूजित हो पुत्रको बंधनसे छुडाया, प्रीतिपूर्वक उस रात्रिको वहां सुखसे वास किया ॥ २४ ॥ हे विप्रर्षे ! इसके उपरान्त विशालराजकन्याको लेकर विवाहदानार्थ वहां उपस्थित हुए तब अवीक्षितने पिताके सामनेही उनसे कहा ॥ २५ ॥ हे नृप ! जिस कन्याके सामने मैं शत्रुओंसे परास्त होगया हूं, उसको तो कभी ग्रहण नहीं करसकता और अन्यभी किसी कामिनीको मैं ग्रहण नहीं करूंगा ॥ २६ ॥ अतएव जो कभी शत्रुओंसे अपमानित नहीं हुआ हो ऐसे अखंडित यश वीर्यसे युक्त किसी और मनुष्यको आप कन्या दीजिये और यह कन्याभी उसीको वरण करे ॥ २७ ॥ इस कातर अबलाके समान मैं शत्रुओंसे पराजित होगयाहूं अतएव मेरा मनुष्यत्व क्या है ! सुतरां मुझसे और इस कन्यामें कोई भेद नहीं है ॥ २८ ॥

करंधमोऽपि संप्रीत्या तेन राज्ञाभिपूजितः ॥ विमुक्ते तनये तत्र निशांतां सुखमावसत् ॥ २४ ॥ तां च कन्यामुपादाय विशालं समुपस्थितम् ॥ अविक्षित्प्राह विप्रर्षे विवाहार्थं पितुः पुरः ॥ २५ ॥ नाहमेतां ग्रहीष्यामि न चान्यां योषितं नृप ॥ परैर्यस्या निरीक्षन्त्याः संग्रामेऽहं पराजितः ॥ २६ ॥ अन्यस्मै संप्रयच्छेमामियं चान्यं वृणोतु तम् ॥ अखण्डितयशो वीर्यो यः परैर्नापमानितः ॥ २७ ॥ परैः पराजितोऽहं यत्कातरेयं यथाऽबला ॥ किमत्र मानुषत्वं मे नैतस्या मम चान्तरम् ॥ २८ ॥ स्वतन्त्रता मनुष्याणां परतन्त्रा सदाऽबला ॥ नरोऽपि परतन्त्रो यस्तस्य कीदृङ्मनुष्यता ॥ २९ ॥ सोऽहमस्या मुखं भूयो दृष्टं दर्शयिता कथम् ॥ योऽहमस्याः पुरो भूमौ परैर्भूपैः खिलीकृतः ॥ ३० ॥ इत्युक्ते तेन तनयामुवाच जगतीपतिः ॥ श्रुतं ते वचनं वत्से वदतोऽस्य महात्मनः ॥ वरयान्यं पतिं यत्र मनस्ते रमते शुभे ॥ ३१ ॥ वयं वा संप्रयच्छामो यस्मिंस्तास्मिंस्तवादृतिः ॥ एतयोर्ह्येकमातिष्ठ मार्गयो रुचिरानने ॥ ३२ ॥

स्वतंत्रता सदा मनुष्यके आधीन है और ललनागण सदाही पराधीन हैं, अतएव पुरुष होकरभी जो पराधीन हो, उसकी मनुष्यता कैसी है ? ॥ २९ ॥ जिसके सन्मुख मैं समस्त राजाओंसे हारगयाहूं उसको अपना यह पूर्वदृष्ट मुख किस प्रकार दिखाऊंगा ? ॥ ३० ॥ जगतीपति विशालने राजपुत्रके यह वचन सुनकर कन्यासे कहा हे वत्से ! इन महात्माने जो कहा, वह सुना । अब हे कल्याणी ! यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो अपने आप अन्य किसीको पतित्वमें वरण करो ॥ ३१ ॥ अथवा तुम्हारे प्रति अत्यन्त स्नेहके कारण मैं जिसको उचित समझूं उसको प्रदान करूंगा हे रुचिरानने ! इन दोनों बातोंमें एक स्वीकार करो ॥ ३२ ॥

कन्या बोली हे पार्थिव ! यह राजकुमार धर्ममार्गमें स्थित रहकर बहुत जनोंके संग संग्राम करके भी यशोवीर्य हानिकारक युद्धमें सम्यक् प्रकार पराजित नहीं हुए हैं ॥ ३३ ॥ युद्धके लिये आये हुए बहुत राजाओंमें इन्होंने जो केसरीके समान अकेलेही युद्धमें स्थिति की थी, उसके द्वाराही इनका विशेष शौर्य प्रकाशित हुआ है ॥ ३४ ॥ यह केवल युद्धस्थलमें स्थित ही नहीं थे, वरन् इन्होंने संपूर्ण राजमण्डलको बहुत वार पराजित करके यथेष्ट विक्रमभी प्रकाशित किया था ॥ ३५ ॥ शौर्य और विक्रमशाली धर्मयुद्धकारी इन कुमारको जो बहुत राजाओंने अधर्म व्यवहारसे पराजित किया है, फिर इसमें लज्जाकी क्या बात है ? ॥ ३६ ॥ हे पिता ! मैं इनका केवल रूपमात्र देखकर लोभ नहीं करती वरन् इनके शौर्य विक्रम और धैर्यने मेरा मन हर लिया

कन्योवाच ॥ पराजितोऽयं बहुभिर्न सम्यक्सम्यगाचरन् ॥ संग्रामे तद्यशो वीर्यहानिकारि न पार्थिव ॥ ३३ ॥ एको बहूनां युद्धाय गजानामिव केसरी ॥ यत्संस्थितः परं शौर्यं तेनास्य प्रकटीकृतम् ॥ ३४ ॥ न केवलमयं तस्थौ युद्धे तेऽप्याखिला जिताः ॥ बहुशोऽनेन यत्नेन विक्रमोऽपि प्रकाशितः ॥ ३५ ॥ शौर्यविक्रमसंयुक्तमिमं सर्वमहीक्षितः ॥ धर्मयुद्धमधर्मेण जितवन्तोऽत्र का त्रपा ॥ ३६ ॥ न चापि रूपमात्रेऽहं लोभमस्य गता पितः ॥ शौर्यविक्रमधैर्याणि हरन्त्यस्य मनो मम ॥३७॥ तत्किमुक्तेन बहुना याच्यतां मत्कृते नृपः ॥ त्वया महानुभावोऽयं नान्यो मे भविता पतिः ॥ ३८ ॥ विशाल उवाच ॥ राजपुत्रसुता प्राह ममैतच्छोभनं वचः ॥ एवं चैव त्वया तुल्यः कुमारो न महीतले ॥ ३९ ॥ अविसंवादिते शौर्यमतीव च पराक्रमः ॥ पावयास्मत्कुलं वीर दुहितुर्मे परिग्रहात् ॥ ४० ॥ राजपुत्र उवाच ॥ नाहमेतां ग्रहीष्यामि न चान्यां योषितं नृप ॥ आत्मन्येवहि मे बुद्धिः स्त्रीमयी मनुजेश्वर ॥ ४१ ॥

है ॥ ३७ ॥ अतएव अधिक और क्या कहूं हे नृप ! आप मेरे लिये इन महानुभावको ही अनुरोध कीजिये । इनके अतिरिक्त दूसरा कोई मेरा पति नहीं होगा ॥ विशालने कहा—हे राजपुत्र ! मेरी कन्याने जो कहा, वह सब युक्तिसंगत है । तुम्हारे समान पृथ्वीतलमें अन्य कुमार दिखाई नहीं देता ॥ ३८ ॥ तुम्हारा शौर्य अप्रतिहत है और पराक्रमभी अधिक है ॥ ३९ ॥ हे वीर ! तुम्हीं इस मेरी कन्याको ग्रहण करके मेरे कुलको पवित्र करो ॥ ४० ॥ राजपुत्रने कहा हे नृप ! मैं इसको वा दूसरी किसी स्त्रीको ग्रहण नहीं करूंगा, हे मनुजेश्वर ! मैं स्वयंही अपनपेको स्त्री समझताहूं ॥ ४१ ॥

मार्कंण्डेयजी बोले—तब करन्धमभी पुत्रसे कहने लगे हे पुत्र ! तुम इस कन्याको ग्रहण करो क्योंकि यह सुंदरी विशालकन्या तुम्हारे प्रति दृढ अनुरागवती हुई है ॥ ४२ ॥ राजपुत्रने कहा—हे प्रभो ! मैंने पहले कभी आपकी आज्ञाभंग (अपालन) नहीं करी; हे तात ! इस समयभी आप मुझको वैसेही आज्ञा दीजिये जिसको मैं पालन करनेमें समर्थ हूं ॥४३॥ मार्कंण्डेयजी बोले—राजा विशालने राजपुत्रको इस प्रकार स्थिर बुद्धि जान व्याकुलचित्त हो कन्यासे कहा ॥ ४४ ॥ हे पुत्रि ! इनकी ओरसे मनको निवृत्त कर और अनेक राजपुत्र हैं उनमें किसीको पति वरण कर ॥ ४५ ॥ कन्या बोली—हे तात !

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः करन्धमः प्राह पुत्रेयं गृह्यतां त्वया ॥ विशालतनया सुभ्रूस्त्वयि हार्दवती दृढम् ॥ ४२ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ नाज्ञाभङ्गः कदाचित्ते कृतः पूर्वं मया प्रभो ॥ तथाऽऽज्ञापय मां तात यथाज्ञां करवाणि ते ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अत्यन्तनिश्चितमतौ तस्मिन्राजसुते सुताम् ॥ तामुवाच विशालोऽपि व्याकुलीकृतमानसः ॥ ४४ ॥ निवर्त्यतां मनः पुत्रि एतस्माच्च प्रयोजनात् ॥ अन्यं वरय भर्त्तारं सन्त्यनेके नृपात्मजाः ॥४५॥ कन्योवाच ॥ वरं वृणोम्यहं तात मामेष यदि नेच्छति ॥ तपसाऽन्यो न मे भर्त्ता जन्मन्यस्मिन्भविष्यति ॥ ४६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः करन्धमो राजा विशालेन समं मुदा ॥ स्थित्वा दिनत्रयं तत्र निजमभ्याययौ पुरम् ॥४७॥ अविक्षितोपि तेनैव पित्रान्यैश्च नराधिपैः ॥ निदर्शनैः पुरावृत्तैः सान्त्वितोऽभ्यागमत्पुरम् ॥ ४८ ॥ सापि कन्या वनं गत्वा निसृष्टा निजबान्धवैः ॥ तपस्तेपे निराहारा वैराग्यं परमास्थिता ॥ ४९ ॥

यदि यह राजपुत्र मेरी अभिलाषा नहीं करते, तो मैं प्रार्थना करतीहूं कि, तपस्याके अतिरिक्त इस जन्ममें मेरा अन्य पति नहीं होगा ॥ ४६ ॥ मार्कंण्डेयजी बोले—अनन्तर करन्धम विशाल राजाके सहित वहां प्रसन्नचित्तसे तीन दिन बिताकर अपने नगरको चले गये ॥ ४७ ॥ पिता और अन्यान्य राजाओंके अनेकानेक प्राचीन दृष्टांतोंसे समझानेपर अवीक्षितभी राजधानीमें गये ॥ ४८ ॥ और वह विशालराजाकी कन्या भी आत्मीय बांधवोंसे बिदा ले, वनमें जाय, परम वैराग्यके सहित निराहार होकर तपस्या करने लगी ॥ ४९ ॥

इस प्रकार निराहार होकर तीन महीने बिताने पर उसके शरीरकी नाडी दीखने लगीं वह कृश होकर अत्यन्त दुःखित हुई ॥ ५० ॥ तब वह अत्यन्त
दुबले अंगवाली मृत्युके समीप हुई बालिका राजकन्या मन्दोत्साह होकर प्राणत्याग करनेके लिये कृतनिश्चय हुई ॥ ५१ ॥ इस ओर उसको प्राणत्याग
करनेमें स्थिर निश्चय जानकर देवताओंने मिलित हो, उसके निकट देवदूतको भेजा ॥ ५२ ॥ दूतने आनकर कहा हे नृपात्मजे ! मैं देवताओंका भेजा
हुआ दूत हूँ जिस कार्यके लिये देवताओंने मुझे तुम्हारे निकट भेजाहै, वह सुनो ॥५३॥ इस दुर्लभ शरीरको तुम परित्याग मत करो, हे कल्याणि ! तुम

निराहारा यदा सा तु मासत्रयमवस्थिता ॥ संप्राप परमामार्तिं कृशा धमनिसन्तता ॥ ५०॥ मन्दोत्साहातितन्वङ्गी मुमूर्षुरपि बालिका ॥
देहत्यागाय सा चक्रे तदा बुद्धिं नृपात्मजा ॥ ५१ ॥ आत्मत्यागाय तां ज्ञात्वा कृतबुद्धिं सुरास्ततः ॥ समेत्य प्रेषयामासुर्देवदूतं तदन्ति-
कम् ॥ ५२ ॥ समुपेत्य स तां प्राह दूतोऽहं पार्थिवात्मजे ॥ प्रेषितस्त्रिदशैस्तुभ्यं यत्कार्यं तन्निशामय ॥ ५३ ॥ न भवत्या परित्याज्यं
शरीरमतिदुर्लभम् ॥ त्वं भविष्यसि कल्याणि जननी चक्रवर्तिनः ॥ ५४ ॥ पुत्रेण च महाभागे भोक्तव्यानि हतारिणा ॥ अव्याहताज्ञेन
चिरं सप्तद्वीपवती मही ॥ ५५ ॥ हन्तव्यस्तेन तरुजिद्देवानां पुरतो रिपुः ॥ अयःशंकुस्तथा क्रूरो धर्मे स्थाप्यास्ततः प्रजाः ॥५६॥ परि-
पालनीयमखिलं चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मतः ॥ हन्तव्या दस्यवो म्लेच्छा ये चान्ये दुष्टचेष्टिताः ॥ ५७ ॥ यष्टव्यं विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥
वाजिमेधादिभिर्भद्रे षट्सहस्रैश्च संख्यया ॥ ५८ ॥

चक्रवर्ती राजाकी जननी होगी ॥ ५४ ॥ हे महाभागे ! तुम्हारा पुत्र शत्रुकुलका विनाश करके अप्रतिहत प्रभावसे बहुत कालतक इस सप्तद्वीपा पृथ्वीको
भोग करेगा ॥५५॥ देवशत्रु तरुजित् और क्रूर अयःशङ्कु देवताओंके सामने उसके द्वारा विनाशको प्राप्त होंगे, वह प्रजाको धर्माचरणमें स्थापन करेगा ॥५६॥
समस्त चातुर्वर्ण्यकोही यथाधर्ममें प्रतिपालन करेगा; म्लेच्छ, दस्यु (तस्कर) इत्यादि दुराचारी उसके द्वारा विनाशको प्राप्त होंगे ॥ ५७ ॥ और हे भद्रे !
वह विपुल, दक्षिणापूर्ण अश्वमेधादि अनेक प्रकारके छः हजार यज्ञ करेगा ॥ ५८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर दिव्यमालानुलेपनधारी आकाशमें स्थित उस देवदूतको देखकर राजपुत्रीने मधुर स्वरसे कहा ॥ ५९ ॥ आप सत्यही स्वर्गसे देवदूत आये हैं, इसमें सन्देह नहीं है, किन्तु भर्त्ताके विना मेरे किस प्रकार पुत्र होगा ? ॥ ६० ॥ अवीक्षितके अतिरिक्त दूसरा कोई मेरा इस जन्ममें भर्त्ता नहीं होगा, मैंने पिताके निकट इस प्रकार प्रतिज्ञा की है ॥ ६१ ॥ किन्तु अवीक्षितने भी मेरे पिताके, अपने पिताके और मेरे अनुरोधसे भी मेरी अभिलाषा नहीं करी ॥ ६२ ॥ देवदूतने कहा—हे महाभागे ! अधिक कहनेका प्रयोजन नहीं है, निःसन्देह तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा इस कारण आत्मह-

मार्कण्डेय उवाच ॥ तं दृष्ट्वा साऽन्तरिक्षस्थं दिव्यस्रगनुलेपनम् ॥ देवदूतमुवाचेदं राजपुत्री ततो मृदु ॥ ५९ ॥ सत्यं त्वमागतः स्वर्गा-देवदूतो न संशयः ॥ किन्तु भर्त्रा विना पुत्रः स कथं मे भविष्यति ॥६०॥ अविक्षितमृते भर्त्ता मम नान्योऽत्र जन्मनि ॥ भवितेति प्रति-ज्ञातं मयैतत्सन्निधौ पितुः ॥ ६१ ॥ स च नेच्छति मां प्रोक्तो मत्पित्रा जनकेन च ॥ करन्धमेनाथ सम्यग्याचितश्च मया तथा ॥ ६२ ॥ देवदूत उवाच ॥ किमनेन महाभागे बहुनोक्तेन ते सुतः ॥ समुत्पत्स्यति मा त्याक्षीस्त्वमात्मानमधर्मतः ॥६३॥ अत्रैव कानने तिष्ठ तनुं क्षीणां च पोषय ॥ तपःप्रभावादेतत्ते सर्वं साधु भविष्यति ॥ ६४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्त्वा देवदूतोऽसौ यथागतमगच्छत ॥ चकारानुदिनं सुभ्रूः साप्यात्मतनुपोषणम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेऽविक्षिच्चरितं नामैकविंशत्याधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अथ साऽविक्षितो माता वीरा वरिप्रजावती ॥ पुण्येऽह्नि समाहूय प्राह पुत्रमविक्षितम् ॥ १ ॥

त्यारूप अधर्माचरण मत करो ॥ ६३ ॥ इसी वनमें रहकर क्षीणदेहका पोषण करो । तपस्याके प्रभावसे अवश्य तुमको सब भाँतिसे मंगल उपस्थित होगा ॥ ६४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले- देवदूत इस प्रकार कहकर जहांसे आया था वहींको चलागया और सुन्दरी राजकन्याभी नित्य शरीरपोषण करने लगी ॥ ६५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरिते भाषाटीकायामेकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥ मार्कण्डेयजी बोले—एक समय पवित्र दिनमें अवीक्षितकी माता वीरप्रसू वीराने पुत्र अवीक्षितको बुलाकर कहा ॥ १ ॥

हे पुत्र ! मैं किमिच्छक नामक उपवासके पीछे एक दुष्कर व्रत करूंगी, तुम्हारे महात्मा पिताने भी उसे करनेकी आज्ञा देदी है ॥ २ ॥ वह व्रत तुम्हारे पिता तुम और मैं इन तीन जनोंके अधीन है अतएव हे पुत्र ! जब तुम उसकी प्रतिज्ञा करलोगे, तब मैं व्रतकार्यमें यत्नवती हूंगी ॥ ३ ॥ तुम्हारे पिताके राजकोषका आधा धन दान करूंगी, सुतरां धन तुम्हारे पिताके अधीन है, किन्तु उनसे आज्ञा प्राप्त करलीहै ॥ ४ ॥ क्लेशसाध्य विषय मेरे अधीन है वह मेरे द्वारा भली भाँति सम्पन्नभी होगा और जो कुछ बल तथा पराक्रमसाध्य है, वह सब तुम्हारे अधीन है ॥ ५ ॥ वह तुमको सुसाध्य, दुःखसाध्य अथवा असाध्य भी हो सकता है, अतएव हे पुत्र ! यदि अपने साध्यविषयमें तुम अंगीकार करो तो इस व्रतका उद्योग करूं अब तुम्हारा जो अभिप्राय

पुत्राहमभ्यनुज्ञाता तव पित्रा महात्मना ॥ उपवासं करिष्यामि दुष्करोऽयं किमिच्छकः ॥ २ ॥ स चायत्तस्तव पितुस्त्वया साध्यो मयापि च ॥ प्रतिज्ञाते त्वया पुत्र ततस्तत्र यताम्यहम् ॥ ३ ॥ द्रव्यस्यार्द्धं महाकोशात्तव दास्याम्यहं पितुः ॥ धनं ते पितुरायत्तमनुज्ञाताऽस्मि तेन च ॥ ४ ॥ क्लेशसाध्यो मदायत्तः स हि श्रेयो भविष्यति ॥ साध्यो भवेद्वा यदि ते कश्चिद्बलपराक्रमैः ॥ ५ ॥ स तेऽसाध्यो ह्यन्यथा वा दुःखसाध्यो भविष्यति ॥ तत्त्वं प्रतिज्ञां कुरुषे यदि पुत्रात्र चैव ते ॥ तदैतदहमावाप्स्ये कथ्यतां यन्मतं तव ॥ ६ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ वित्तं मे पितुरायत्तं मत्स्वामित्वं न तत्र वै ॥ यन्मच्छरीरनिष्पाद्यं तत्करिष्ये त्वयोदितम् ॥ ७ ॥ किमिच्छकं व्रतं मातर्निश्चिन्ता भव निर्व्यथा ॥ राज्ञा पित्राऽभ्यनुज्ञातं यदि वित्तेश्वरेण मे ॥८॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः सा राजमहिषी तद्व्रतं समुपोषिता ॥ यथोक्तं साऽकरोत्पूजां राजराजस्य संयता ॥ ९ ॥ निधीनामप्यशेषाणां निधिपालगणस्य च ॥ लक्ष्म्याश्च परया भक्त्या यतवाक्कायमानसा ॥ १० ॥

हो, उसको प्रकाश करो ॥ ६ ॥ अवीक्षितने कहा–धन पिताके अधीन है उसमें मेरी कुछ प्रभुता नहीं है, मेरे शरीरसे जो कार्य सिद्ध होगा, तुम्हारी आज्ञानुसार मैं उसके संपादन करनेको प्रस्तुत हूं ॥ ७ ॥ यदि वित्तेश्वर पिताही इसमें आज्ञा देते हैं तो हे माता ! तुम निश्चिन्त होकर संतुष्ट हृदयसे किमिच्छक व्रत अवलम्बन करो ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–अनन्तर संयमपरायण राजमहिषी उस व्रतमें उपवासपूर्वक काय, मन, वचनसे संयत हो अत्यन्त भक्तिसहित यथोक्तविधानसे निधिसमूह निधिपालगण और लक्ष्मी देवीकी पूजा करने लगी ॥ ९ ॥ १० ॥

इस ओर राजा करन्धम नीतिशास्त्रविशारद मंत्रियोंके सहित मंत्रणागृहमें विराजमान रहे ॥ ११ ॥ मंत्री बोले–हे राजन् ! पृथ्वीपालन करतेहुए आपकी अवस्था बीतचली और आपके एक मात्र पुत्रने दारपरिग्रह त्याग किया अर्थात् विवाह नहीं किया है ॥ १२ ॥ हे भूप ! वह भी जब अपुत्रही रहैंगे दारसंग्रह न करैंगे तब निःसन्देह पृथ्वी आपके शत्रुओंका आश्रय करेगी ॥ १३ ॥ आपकाभी वंशक्षय और पितरोंका श्राद्ध, तर्पण नष्ट होगा। फिर क्रियाहानिके कारण यह समस्त महत् शत्रुभय उपस्थित होगा ॥ १४ ॥ अतएव हे भूपाल ! जिससे आपका पुत्र फिर सदा पितरोंका उपकार करनेवाली

विविक्ते तु गृहस्थोऽयमथ राजा करन्धमः ॥ आसीन उक्तः सचिवैर्नीतिशास्त्रविशारदैः ॥ ११ ॥ सचिवा ऊचुः ॥ राजन्वयः परिणतं तवैतच्छासतो महीम् ॥ एकस्ते तनयोऽविक्षित्त्यक्तदारपरिग्रहः ॥ १२ ॥ अपुत्रः स च ते निष्ठां यदा भूप गमिष्यति ॥ तदारिपक्षं पृथिवी निश्चितं तव यास्यति ॥ १३ ॥ वंशक्षयस्ते भविता पितृपिण्डोदकक्षयः ॥ एतन्महत्तेऽरिभयं क्रियाहान्या भविष्यति ॥ १४ ॥ तस्मात्कुरु तथा भूप यथा ते तनयः पुनः ॥ करोति सततं बुद्धिं पितॄणामुपकारिणीम् ॥ १५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे शब्दं शुश्राव जगतीपतिः ॥ पुरोहितस्य वीराया गदतो ह्यर्थिनं प्रति ॥ १६ ॥ कः किमिच्छति दुःसाध्यं कस्य किं साध्यतामिति ॥ करन्धमस्य महिषी किमिच्छिकमुपोषिता ॥१७॥ राजपुत्रोऽप्यविक्षित्तु श्रुत्वा पौरोहितं वचः॥ प्रत्युवाचार्थिनः सर्वान्राजद्वारमुपागतान् ॥१८॥ मया साध्यं शरीरेण यस्य किञ्चिद्ब्रवीतु सः ॥ मम माता महाभागा किमिच्छिकमुपोषिता ॥ १९ ॥

बुद्धि अवलम्बन करै, उसका उपाय कीजिये ॥१५॥ मार्कण्डेयजी बोले–इसी समय राजमहिषी वीराके संबंधमें पुरोहित अर्थिगणोंसे जो कहते थे राजाने उन वचनोंका शब्द सुना ॥ १६॥ पुरोहित कहते थे " करन्धमकी महिषी किमिच्छक व्रत करती हैं. तुम क्या क्या इच्छा करते हो ? किसका क्या दुःसाध्य कार्य साधन करना होगा ! सो प्रकाश करो " ॥ १७ ॥ जब राजपुत्र अवीक्षितने पुरोहितोंका वचन सुना तब वह भी राजद्वारपर आनकर सब अर्थियोंसे कहने लगे ॥ १८ ॥ हे आर्थिगणो ! मेरी प्रतिज्ञा सुनो–मेरी भाग्यवती माता किमिच्छकव्रतमें स्थित हो रही है, इस

समयमें मेरे शरीरसे जो कुछ साधित होसके, उसे कहो ॥ १९ ॥ इस किमिच्छकव्रतके समय तुम क्या क्या प्रार्थना करते हो सो कहो मैं वही देनेको प्रस्तुत हूं यह मेरी प्रतिज्ञा है ॥ २० ॥ मार्कण्डेयजी बोले इसके उपरान्त राजाकरन्धमने पुत्रके मुखसे निकलेहुए यह वचन सुन उसके समीप जाकर कहा ॥ २१ ॥ 'हे पुत्र ! मैं अर्थी हूं मुझको अभिलाषित वस्तु दो ' अवीक्षितने कहा—" हे तात ! मैं आपको क्या दूं ? आज्ञा कीजिये आपकी माँगी वस्तु साध्य दुःसाध्य वा असाध्यही क्यों न हो, मैं वह दूंगा " ॥ २२ ॥ राजाने कहा " यदि तुमने किमिच्छकमें दान करनेकी सत्यप्रतिज्ञा कीहै तो मेरी गोदीमें बैठालकर पौत्रका मुख दिखाओ " ॥ २३ ॥ अवीक्षितने कहा—हे नृप ! मैं ही आपका एक मात्र पुत्र हूं, सो मैंने ब्रह्मचर्य अवलम्बन किया है

शृण्वन्तु मेऽर्थिनः सर्वे प्रतिज्ञातं मया तदा ॥ किमिच्छथ ददाम्येष क्रियमाणो किमिच्छिके ॥ २० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो राजा निशम्यैतद्वाक्यं पुत्रमुखाच्छ्रुतम् ॥ समुत्पत्याब्रवीत्पुत्रमहमर्थी प्रयच्छ मे ॥ २१ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ दातव्यं यन्मया तात भवते तद्ब्रवीहि माम् ॥ कर्तव्यं दुष्करं वा ते साध्यं दुःसाध्यमेव वा ॥ २२ ॥ राजोवाच ॥ यदि सत्यप्रतिज्ञस्त्वं ददासि च किमिच्छकम् ॥ पौत्रस्य दर्शय मुखं ममोत्सङ्गगतस्य तत् ॥ २३ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ अहं तवैकस्तनयो ब्रह्मचर्यं च मे नृप ॥ न मे पुत्रोऽस्ति पौत्रस्य दर्शयामि कथं मुखम् ॥२४॥ राजोवाच ॥ पापाय ब्रह्मचर्यं ते यदिदं धार्यते त्वया ॥ तस्मात्त्वं मोचयात्मानं मम पौत्रं च दर्शय ॥२५॥ अविक्षिदुवाच ॥ विषमं स्यान्महाराज यदन्यत्तत्समादिश ॥ वैराग्येण मया त्यक्तः स्त्रीसंभोगस्तथास्तु सः ॥ २६ ॥

और मेरे पुत्रभी नहीं हैं, अतएव किस प्रकार आपको पौत्रका मुख दिखाऊं ! ॥ २४ ॥ राजाने कहा ' यह जो तुमने ब्रह्मचर्य धारण कियाहै, सो यह पापका हेतु है सुतरां इसको परित्याग करके उससे आत्माको मुक्त करो और मुझकोभी पौत्रका मुख दिखाओ ' ॥ २५ ॥ अवीक्षितने कहा यह कार्य अत्यन्त विषम अर्थात् ब्रह्मचर्यका विरोधी है । हे महाराज ! मैंने वैराग्यके निमित्तही स्त्रीसंभोग परित्याग किया है जिससे वह वैराग्य खंडित न हो आप मुझे वैसीही कोई दूसरी आज्ञा दीजिये ॥ २६ ॥

राजाने कहा "मैंने देखा है कि, बृहत् सेनासे युक्त वैरियोंको तुमने युद्धमें परास्त किया है, इसपरभी यदि तुम वैराग्य अवलम्बन करते हो तो तुम अपण्डित (मूर्ख) हो ॥ २७ ॥ अब मेरे अधिक कहनेका क्या प्रयोजन है ? तुम अपनी माताकी इच्छानुसार ब्रह्मचर्यपरित्याग करो और मुझको पौत्रका मुख दिखावो" ॥ २८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—राजपुत्रके वारंवार अनुरोध करनेपरभी जब राजाने दूसरी कोई प्रार्थना नहीं करी, तब राजपुत्रने फिर कहा ॥ २९ ॥ हे तात ! आपसे किमिच्छकप्रदानविषयमें अंगीकार करके मैं संकटमें पडगया हूं इस कारण निर्लज्ज होकर फिर स्त्री ग्रहण करनी ही पडेगी ॥ ३० ॥ मैं स्त्रीके सामने पराजित होकर पृथ्वीमें गिर गया था, अतएव स्त्री मेरे पक्षमें पतिके समान होगी, हे तात ! यह बडाही कठिन कार्य

राजोवाच ॥ बहुभिर्युध्यमानानां दृष्टो वै वैरिणां जयः ॥ तत्रापि यदि वैराग्यमुपैषि तदपण्डितः ॥ २७ ॥ किं वा नो बहुनोक्तेन ब्रह्मचर्यं परित्यज ॥ मातुस्त्वमिच्छया वक्त्रं पौत्रस्य मम दर्शय ॥ २८॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ यदा स बहुशस्तेन प्रोक्तः पुत्रेण पार्थिवः ॥ नान्यत्प्रार्थयते किंचित्तदा पुत्रोऽब्रवीत्पुनः ॥ २९ ॥ दत्त्वा किमिच्छकं तुभ्यं प्राप्तोऽहं तात सङ्कटम् ॥ तत्करिष्यामि निर्लज्जो भूयो दारपरिग्रहम् ॥ ३० ॥ स्त्रियाः समक्षं विजितः पतितो धरणीतले ॥ स्त्रीपतिर्भविता भूयस्तातैतदतिदुष्करम् ॥ ३१ ॥ तथापि किंकरोम्येष सत्यपाशवशङ्गतः ॥ करिष्यामि यथाऽऽत्थ त्वं भुज्यतां निजशासनम् ॥ ३२॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कदाचिद्राजपुत्रोऽसौ मृगयामचरद्वने ॥ मृगान्विध्यन्वराहांश्च शार्दूलादींश्च दंष्ट्रिणः ॥१॥ शुश्राव सहसा शब्दं त्राहित्राहीति योषितः ॥ विक्रोशन्त्याः सुबहुशो भयगद्गदमुच्चकैः ॥ २ ॥

है ॥ ३१ ॥ किन्तु तो भी क्या करूं ? जब कि, सत्यपाशमें बँधगयाहूं, तब आप जो कहते हैं वह अवश्य करूंगा । अब आप निश्चिन्त चित्तसे राज्यशासन कीजिये ॥ ३२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरिते भाषाटीकायां द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—किसी समय राजपुत्र वनमें मृग, वराह, शार्दूल, सिंह, इत्यादि दंष्ट्री जन्तुओंको विद्ध करके मृगया करतेथे ॥ १ ॥ उसी समय सहसा रोतीहुई कामिनीके कंठका निकला हुआ भयसे गद्गद अत्युच्च 'त्राहि त्राहि' शब्द वारंवार सुना ॥ २ ॥

राजपुत्रने वह शब्द सुनतेही तत्काल 'भय नहीं, भय नहीं' कहकर जिस ओरसे शब्द आता था, उसी ओरको वेगसहित घोडा दौडाया ॥ ३॥ तदनन्तर दनुपुत्र दृढकेशके द्वारा पकडीहुई वह मानिनी कन्या विजन वनमें ऊंचे स्वरसे इस प्रकार विलाप करनेलगी ॥४॥ कि, "मैं करन्धमके पुत्र बुद्धिमान् पृथिवीश्वर अवीक्षितकी भार्या हूं यह दुराचारी मुझको वनमें हरण करता है" ॥५ ॥ जिनके सन्मुख संपूर्ण महीपाल और गुह्यक गंधर्वभी नहीं ठहर सकते, मैं उनकीही भार्या होकर हरीजाती हूं ॥६॥ जिनका क्रोध मृत्युके समान और पराक्रम इन्द्रके समान है, मैं उन्हीं करन्धमके पुत्रकी भार्या हूं यह मुझको हरण करता है ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले धनुष हाथमें लिये राजाने यह बात सुनकर विचार किया कि, इस वनमें मेरी भार्या यह कैसी बात है ॥८॥

माभैर्माभैरिति वदन्राजपुत्रः स वेगितः ॥ चोदयामास तुरगं यतः शब्दः समागतः ॥ ३ ॥ ततश्च सापि चुक्रोश कन्यका विजने वने ॥ गृहीता दनुपुत्रेण दृढकेशेन मानिनी ॥४॥ करन्धमसुतस्याहं भार्या चाहमविक्षितः ॥ ह्रत्यनाथों विपिने पृथिवीशस्य धीमतः ॥५॥ यस्य सर्वे महीपालास्तथा गन्धर्वगुह्यकाः ॥ न समर्थाः पुरः स्थातुं तस्य भार्या ह्रतास्म्यहम् ॥ ६ ॥ यस्य मृत्योरिव क्रोधः शक्रस्येव पराक्रमः ॥ करन्धमसुतस्यैषा तस्य भार्या ह्रतास्म्यहम् ॥७॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्याकर्ण्य महीपालतनयः सशरासनी ॥ चिन्तयामास किमिदं मम भार्यात्र कानने ॥ ८ ॥ मायेयं रक्षसां नूनं दुष्टानां काननौकसाम् ॥ अथवा गत एवाहं सर्वं वेत्स्यामि कारणम् ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ त्वरितः स ततो गत्वा ददर्शातिमनोरमाम् ॥ कानने कन्यकामेकां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥ १० ॥ गृहीतां दनुपुत्रेण दृढकेशेन दण्डिना ॥ त्राहित्राहीति करुणं विक्रोशन्ती पुनः पुनः ॥ ११ ॥ मा भैरिति स तामाह हतोऽसीति च तं वदन् ॥ शासतीमां महीं दुष्टः को दूयेत करंधमे ॥ १२ ॥

यह निःसन्देह वनमें विहार करनेवाले राक्षसोंकी माया है । जो हो निकट जानेपर सब बात ज्ञात होजायगी ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले- इसके उपरान्त राजपुत्रने शीघ्र वहां पहुँचकर देखा कि, उस वनमें समस्त गहनोंसे विभूषित अत्यन्त मनोहर एक कन्या ॥ १० ॥ दंड हाथमें लिये दानव दृढकेशके द्वारा पकडी जाकर "त्राहि त्राहि" शब्दसे वारंवार रोदन करती है ॥११॥ उन्होंने उस कन्यासे "भय नहीं" यह कहकर दानवसे कहा- तेरी मृत्यु अत्यन्त निकट है करन्धमके पृथ्वी पालनेके समय कौन दुःखी हो सकता है ॥ १२ ॥

जिन करन्धम राजाके प्रतापसे पृथ्वीके संपूर्ण महीपाल अवनत रहते हैं, उनके शासन कालमें कौन दुष्ट मनुष्य जीवित रहसकता है ? प्रचण्ड धनुर्धारी उन राजपुत्रको आयाहुआ देखकर ॥ १३॥ वह कृशांगी वारंवार कहनेलगी " मेरी रक्षा करो, यह मुझको हरण करता है, मैं करन्धमराजाकी पुत्रवधू अवीक्षितकी भार्या हूं; अतएव सनाथ होकर भी अनाथके समान इस वनमें दुष्टके द्वारा हरीजाती हूं " ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—कन्याका यह वचन सुनकर राजपुत्र चिन्ता करने लगे कि, यह कन्या मेरी भार्या और मेरे पिताकी पुत्रवधू किस प्रकार हुई ॥१५॥ जो हो, पहिले इस कन्याको छुडालूं, पीछे सब बात जानलूंगा, क्यों कि, आर्त्त मनुष्योंकी रक्षाके लियेही क्षत्रिय शस्त्र धारण करते हैं ॥ १६ ॥ अनन्तर महावीर राजकुमारने क्रोधित होकर दुर्मति

यस्य प्रतापावनता भुवि सर्वे महीक्षितः ॥ ततस्तमागतं दृष्ट्वा गृहीतवरकार्मुकम् ॥१३॥ मां त्राहीत्याह तन्वङ्गी ह्रतास्म्येषेति चासकृत् ॥ राज्ञः करन्धमस्याहं स्नुषा भार्याप्यविक्षितः ॥ ह्रतास्म्येतेन दुष्टेन सनाथाऽनाथवद्वने ॥ १४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो विममृशे वाक्यमविक्षितस्तथोदितम् ॥ कथमेषा हि मे भार्या स्नुषा तातस्य वा कथम् ॥१५॥ अथवा मोचयाम्येतां तन्वीं वेत्स्यामि तत्पुनः ॥ क्षत्रियैर्धार्यते शस्त्रमार्तानां त्राणकारणात् ॥१६॥ ततः क्रुद्धोऽब्रवीद्वीरो दानवं तं सुदुर्मतिम् ॥ जीवन्गच्छ विमुच्यैनामन्यथा न भविष्यसि ॥ १७ ॥ ततः स तां विहायोच्चैर्दण्डमुत्क्षिप्य दानवः ॥ तमप्यधावत्सोऽप्येनं शरवर्षैरवाकिरत् ॥१८॥ स वार्यमाणो बाणौघैर्दानवोऽतिमदान्वितः ॥ राजपुत्राय चिक्षेप दण्डं शंकुशतावृतम् ॥१९॥ तमापतन्तं चिच्छेद शरैर्भूपसुतस्ततः ॥ सोऽप्यासन्नं गृहीत्वोच्चैर्द्रुममाजौ व्यवस्थितः ॥ २० ॥

दानवसे कहा यदि जीवनकी इच्छा हो तो इसको छोडकर भाग जा; नहीं तो अवश्यही तेरी मृत्यु होनहार है ॥ १७ ॥ दानव राजपुत्रके वचनसे कन्याको छोडकर दण्ड हाथमें लिये उनकी ओर दौडा, तब उन्होंने भी बाणोंकी वर्षा करके उसको आच्छन्न कर डाला ॥ १८ ॥ दानवने राजपुत्रके बाणोंको निवारण करके अत्यन्त अहंकारसहित राजपुत्रके ऊपर (सैकडों कीलोंसे व्याप्त) दण्ड चलाया ॥ १९ ॥ किन्तु राजपुत्रने अधबीचमें ही उसको बाणोंसे काटडाला, तब दानव समीपका एक बडा भारी वृक्ष हाथमें लेकर युद्धस्थलमें उपस्थित हुआ ॥ २० ॥

ओर बाणोंकी वर्षा करतेहुए उस राजपुत्रके ऊपर चलाया. किन्तु राजपुत्रने उसको भी धनुषसे छुटेहुए भाले समूह द्वारा तिल तिल परिमाण खण्डित किया ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त दानव राजपुत्रके ऊपर शिला चलाने लगा और वह लघुहस्तसे उसको भी व्यर्थ करके पृथ्वीतलमें गिराने लगे ॥ २२ ॥ इस प्रकार दानवने क्रोधपूर्वक राजपुत्रके ऊपर जो कुछ चलाया उन्होंनेभी बाणोंके द्वारा उन सबको सहजमें ही काटडाला ॥२३॥ इस प्रकार दण्ड और संपूर्ण अस्त्र शस्त्रोंके कटजानेपर दानव क्रोधितचित्तसे घूँसा उठाकर राजपुत्रकी ओर दौडा ॥२४॥ किन्तु उसके आते आतेही करन्धमकुमारने उसी समय वेतसपत्र बाणद्वारा उसका मस्तक काटकर भूमिमें गिरादिया ॥ २५ ॥ दुराचारी दानवके इस प्रकार मरनेपर देवता करन्धमपुत्रको " साधु साधु " कहने

सृजतः शरवर्षाणि तं चिक्षेप ततो द्रुमम् ॥ स च तं तिलशश्चक्रे भल्लैः कार्मुकमोचितैः ॥२१॥ ततश्चिक्षेप च शिलां राजपुत्राय दानवः ॥ सापि मोघा पपातोर्व्यामुज्झिता तेन लाघवात् ॥ २२ ॥ राजपुत्राय कुपितो यद्यच्चिक्षेप दानवः ॥ तत्तच्चिच्छेद बाणौघैर्भूभृत्सूनुः सलीलया ॥ २३ ॥ ततो विच्छिन्नदंडोऽसौ विच्छिन्नसकलायुधः ॥ मुष्टिमुद्यम्य सक्रोधो राजपुत्रमधावत ॥ २४॥ तस्यापतत एवासौ करन्धमसुतः शिरः ॥ छित्त्वा वेतसपत्रेण पातयामास वै भुवि ॥ २५ ॥ तस्मिन्विनिहते देवैर्दानवे दुष्टचेष्टिते ॥ करन्धमसुतः सर्वैः साधुसाध्विति भाषितः ॥२६॥ वरं वृणीष्वेति तदा देवैरुक्तो नृपात्मजः ॥ वव्रे पुत्रं महावीर्यं पितुः प्रियचिकीर्षया ॥२७॥ देवा ऊचुः ॥ भविष्यति हि ते पुत्रश्चक्रवर्त्ती महाबलः॥ अस्यामेव हि कन्यायां मोक्षितायां त्वयानघ ॥ २८ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ पित्राहं सत्यपाशेन बद्ध इच्छाम्यहं सुतम् ॥ राजभिर्निर्जितेनाजौ त्यक्तो मे दारसंग्रहः ॥ २९ ॥

लगे ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त " वर मांगो " देवताओंके इस प्रकार आज्ञा देनेपर राजपुत्रने पिताका प्रियकार्य साधनके अर्थ महावीर पुत्रकी प्रार्थना करी ॥ २७ ॥ देवता बोले हे पापरहित ! तुमने जिसको छुडाया है इस कन्याके गर्भसेही तुम्हारे बलवान् चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा ॥ २८ ॥ राजपुत्रने कहा—मैं पिताके निकट सत्यपाशमें बँधकरही पुत्रकी इच्छा करता हूं नहीं तो युद्धस्थलमें राजाओंसे हारकर स्त्रीग्रहण करनेकी इच्छा त्यागदी थी ॥ २९ ॥

मेरे विशालराजाकी कन्याको परित्याग करनेपर उस कन्यानेभी तबसे मेरेही कारण मेरे अतिरिक्त दूसरे पुरुषसे संगमकी इच्छा परित्याग करी है ॥ ३० ॥ आज उस विशालकन्याको छोडकर किस प्रकार नृशंसके समान अन्य नारी ग्रहण करूं ? ॥ ३१ ॥ देवता बोले--जिसकी तुम सदा प्रशंसा करते हो, यह तुम्हारी वही भार्या है । इस सुन्दरी विशालकन्यानेही तुम्हारे लिये तपस्या अवलम्बन करी है ॥ ३२ ॥ इसके गर्भसे तुम्हारे सप्तद्वीपप्रशासक, सहस्र सहस्र यज्ञकर्त्ता चक्रवर्त्ती वीर पुत्र जन्मग्रहण करेगा ॥ ३३ ॥ मार्कंण्डेयजी बोले--हे द्विज ! देवता करन्धमपुत्रसे यह बात कहकर अन्तर्धान होगये । तब राजपुत्रने पत्नीसे पूछा--हे भीरु ! किस प्रकार यह घटना उपस्थित हुई सो कहो ॥ ३४ ॥ कन्या उनसे कहनेलगी " जब आप मुझे छोडकर चले-

सा च मे यावता त्यक्ता विशालनृपतेः सुता ॥ तया च मत्कृते त्यक्तो मामृते नरसङ्गमः ॥ ३० ॥ तत्कथं तामपास्याद्य विशालतनया-महम् ॥ नृशंसात्मा करिष्यामि अन्यनारीपरिग्रहम् ॥ ३१ ॥ देवा ऊचुः ॥ इयमेव हि ते भार्या श्लाघ्यते या त्वया सदा ॥ विशालस्य सुता सुभ्रूस्त्वत्कृते याऽऽश्रिता तपः ॥ ३२ ॥ अस्यामुत्पत्स्यते वीरः सप्तद्वीपप्रसाधकः ॥ यष्टा यज्ञसहस्राणां चक्रवर्त्ती सुतस्तव ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युच्चार्य ययुर्देवाः करन्धमसुतं द्विज ॥ सोऽप्याह तां तदा पत्नीं कथ्यतां भीरु किंत्विदम् ॥ ३४ ॥ सा चास्मै कथयामास त्यक्ताहं भवता यदा ॥ त्यक्तबन्धुजनाऽरण्यं निर्वेदात्समुपागता ॥ ३५ ॥ अत्राहं तपसा वीर क्षीणप्रायं कलेवरम् ॥ त्यक्तु-कामा समभ्येत्य देवदूतेन वारिता ॥ ३६ ॥ भविष्यति च पुत्रस्ते चक्रवर्त्ती महाबलः ॥ प्रीणयिष्यति यो देवानसुरांश्च हनिष्यति ॥ ३७ ॥ इति देवाज्ञया तेन देवदूतेन वारिता ॥ न संत्यक्तवती देहं त्वत्सङ्गममनोरथा ॥ ३८ ॥

गये, तब मैं अत्यन्त दुःखी हो बांधवोंको त्यागकर इस वनमें चलीआई ॥ ३५ ॥ हे वीर ! यहां तपस्यासे देह अत्यन्त क्षीण होनेपर मैंने एक दिन देह-त्याग करनेकी इच्छा करी, उसी समय एक देवदूतने आनकर मुझको निवारण किया ॥ ३६ ॥ उसने कहा " तुम्हारे महाबलवान् चक्रवर्ती पुत्र होगा । वह पुत्र असुरोंको हनन करेगा और देवताओंकी प्रीति संपादन करेगा । अतएव देवताओंकी आज्ञासे तुम प्राणत्याग मत करो " ॥ ३७ ॥ इस प्रकार निवारित होकर मैं भी उस काल आपके संग मिलनेकी आशासे जीवन त्याग नहीं करसकी ॥ ३८ ॥

परसोंके दिन मैं गंगाह्रदमें जाकर वहां स्नान करनेको उतरी थी, उसी समय कोई बूढा नाग मुझको खैंचकर रसातलमें लेगया ॥ ३९ ॥ जब मैं रसातलमें पहुँची तो वहां सहस्र सहस्र नाग, नागपत्नी और कुमारगण मेरे सन्मुख स्थित हो ॥ ४० ॥ कोई पूजा और कोई स्तुति करनेलगा। इसके पीछे नाग और नागपत्नियोंने विनयसहित मुझसे प्रार्थना करी ॥ ४१ ॥ "आप हम सबके ऊपर अनुग्रह कीजिये। तुम्हारे पुत्रके निकट यदि हम अपराधी हों और वह हमको वध करनेका उद्योग करे तो तुम उनको निवारण करना ॥ ४२ ॥ अनिलाशन अर्थात् वायुभोजी नागगण जब तुम्हारे पुत्रका अपराध करैं तो तुम इस निमित्त उनको निवारण करो अनुग्रहपूर्वक यह बात अंगीकार कीजिये" ॥ ४३॥ जब मैंने "यही हो" कहकर स्वीकार किया तब

परश्वश्च महाभाग स्नातुं गङ्गाह्रदं गता ॥ अवतीर्णा विकृष्टास्मि वृद्धनागेन केनचित् ॥ ३९ ॥ ततो रसातलं नीता तेन तत्र च मे पुरः ॥ नागाः सहस्रशस्तस्थुर्नागपत्न्यः कुमारकाः ॥ ४० ॥ तुष्टुवुर्मां समभ्येत्य मामन्येऽपूजयंस्तथा ॥ ययाचिरे सविनयं नागा मामङ्गनास्तथा ॥ ४१ ॥ प्रसादं कुरु सर्वेषां त्वमस्माकं सुतस्त्वया ॥ अपराधमुपेतानां संनिवार्यो वधोन्मुखः ॥ ४२ ॥ अपराधं करिष्यन्ति त्वत्पुत्रस्यानिलाशनाः ॥ तन्निमित्तं निवार्योऽसौ प्रसादः क्रियतामिति ॥ ४३ ॥ तथेति च मया प्रोक्ते दिव्यैः पातालभूषणैः ॥ भूषिताहं तथा पुष्पैर्गन्धवासोभिरुत्तमैः ॥ ४४ ॥ समानीता तथा लोकमिमं तेनानिलाशिना ॥ पुरा यथा कान्तिमती पूर्ववद्रूपशालिनी ॥ ४५ ॥ इति रूपवतीं दृष्ट्वा सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥ जग्राह दृढकेशोऽयं हर्तुकामः सुदुर्मतिः ॥ ४६ ॥ युष्मद्बाहुबलेनाहं राजपुत्र विमोक्षिता ॥ तत्प्रसीद महाबाहो मा प्रतीच्छ त्वया समः ॥ भूर्लोके राजपुत्रोऽन्यो नास्ति सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥४७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

दिव्य पातालभूषण, मनोहर, गंध वस्त्र और पुष्पादि द्वारा मुझको भूषित करके ॥ ४४ ॥ सर्पगण पृथ्वीमें रखगये तब मैं पूर्वके समान कान्तिमती रूपवती होगई ॥४५॥ मुझको इस प्रकार सब गहनोंसे विभूषित रूपवती देखकर दुर्मति दृढकेशने हरणकी इच्छासे मुझको पकडा था ॥४६॥ हे राजपुत्र! मैंने आपकेही बाहुबलसे इस समय छुटकारा पाया है अतएव हे महाबाहो! अनुग्रहकरके मुझको ग्रहण कीजिये। मैं सत्यही कहतीहूं कि, पृथ्वीतलमें आपके समान गुणशाली अन्य राजपुत्र नहीं है ॥ ४७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरिते भाषाटीकायां त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३॥

मार्कण्डेयजी बोले—राजकुमार अवीक्षितने कुमारीके इस प्रकार वचन सुनकर किमिच्छक व्रतके समय पिताके निकट प्रतिज्ञा करनेपर महाराज करन्धमने जो कहा था वह पिताका वचन स्मरण किया ॥ १ ॥ अपनेही लिये कन्याको भोगकी इच्छा त्याग किये देखकर तब सानुरागचित्तसे नृपनन्दन अवीक्षितने उसका उत्तर दिया ॥ २ ॥ हे कृशाङ्गी ! मैंने शत्रुओंसे हारकरही तुम्हें त्याग दिया था, और अब शत्रुको जीतकरही फिर तुमको प्राप्त हुआहूं इस समय मुझको क्या करना चाहिये ? ॥ ३ ॥ कन्या बोली—इस रमणीय वनमेंही आप मेरा पाणिग्रहण कीजिये तो सकामा कामिनीका सकाम पुरुषके सहित संगम गुणवान् होगा अर्थात् सुखशान्ति विधान करेगा ॥ ४ ॥ राजपुत्रने कहा—यही हो तुम्हारा मंगल हो । दैवही इस विषयमें कारण है, नहीं

मार्कण्डेय उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा स्मृत्वा पितृवचः शुभम् ॥ किमिच्छके प्रतिज्ञाते यदुक्तं तेन भूभृता ॥ १ ॥ प्रत्युवाच स तां कन्यामविक्षिन्नृपतेः सुतः ॥ सानुरागमनाः कन्यां त्यक्तभोगां च तत्कृते ॥ २ ॥ यदाहं त्यक्तवांस्तन्वीं त्वामरातिपराजितः ॥ विजित्य शत्रून्संप्राप्ता त्वं मयात्र करोमि किम् ॥ ३ ॥ कन्योवाच ॥ मम पाणिं गृहाण त्वं रमणीयेऽत्र कानने ॥ सकामायाः सकामेन सङ्गमो गुणवान्भवेत् ॥ ४ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ एवं भवतु भद्रं ते विधिरेवात्र कारणम् ॥ अन्यथा कथमन्यत्र त्वामहं च समागतः ॥ ५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो गन्धर्वतनयो मुने ॥ वराप्सरोभिः सहितो गन्धर्वैरपरैर्वृतः ॥ ६ ॥ गन्धर्व उवाच ॥ राजपुत्र सुतेयं मे भामिनी नाम मानिनी ॥ अभिशापादगस्त्यस्य विशालतनयाऽभवत् ॥ ७ ॥ बालभावेन योऽगस्त्यः कोपितः क्रीडमानया ॥ ततस्तेन तदा शप्ता मानुषी त्वं भविष्यसि ॥ ८ ॥

तो तुम और मैं पृथक् २ स्थानमें रहकरभी आज किस प्रकार एकत्रित हुए ॥ ५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने ! उसी समयमें तनय नामक गंधर्व अनेक गंधर्व और अप्सराओंके सहित वहां उपस्थित हुआ ॥ ६ ॥ गन्धर्वने कहा—हे राजपुत्र ! यह मानिनी मेरीही कन्या है । भामिनी इसका नाम हैं । अगस्त्यजीके शापसेही यह कन्या राजा विशालकी पुत्री हुई है ॥ ७ ॥ एक समय भामिनीने क्रीडा करते करते बाल्य स्वभावसे महर्षि अगस्त्यजीको कोप उत्पन्न कराया था इस कारण अगस्त्यजीने उस समय " तू मानुषी होगी " यह कहकर शाप दिया ॥ ८ ॥

हे विप्रर्षे ! यह कन्या अबोध बालिका है इसीसे आपका अपराध किया है अतएव इसका अपराध ग्रहण न करके अनुग्रह प्रकाश कीजिये ॥ ९ ॥ मैंने उस समय इस प्रकार कह उनको प्रसन्न किया। तब महामुनि अगस्त्यजीने मेरी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर कहा—बालिका जानकरही इसको सामान्य शाप दिया है किन्तु यह अन्यथा होनेवाला नहीं है ॥ १० ॥ मेरी कन्या कल्याणी सुभ्रू भामिनीने अगस्त्यजीके इस शापसेही विशालके घर जन्मग्रहण किया है ॥ ११ ॥ मैं इसीके लिये यहां आयाहूं, अब राजकन्या इस मेरी कन्याको ग्रहण करो। इसके गर्भसे तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--गंधर्वका वचन राजपुत्रने 'तथास्तु' कहकर स्वीकारपूर्वक उस कन्याका पाणिग्रहण किया और गंधर्वोंके पुरोहित तुम्बुरुने यथाविधि होमकार्य

प्रसादितः स चास्माभिर्बालेयमविवेकिनी ॥ तवापराद्धा विप्रर्षे प्रसादः क्रियतामिति ॥ ९ ॥ प्रसाद्यमानः सोऽस्माभिरिदमाह महामुनिः ॥ बालेति मत्वा शापोऽल्पो दत्तोऽस्या नान्यथैव तत् ॥ १० ॥ इति शापादगस्त्यस्य विशालभवने शुभा ॥ जातेयं मत्सुता सुभ्रूर्भामिनी नाम नामतः ॥ ११ ॥ तदस्याहं कृते प्राप्तो गृहाणेमां नृपात्मजाम् ॥ ममात्मजां सुतस्तेऽत्र चक्रवर्ती भविष्यति ॥ १२ ॥ मार्कंडेय उवाच ॥ तथेत्युक्त्वेति तस्याश्च स पाणिं पार्थिवात्मजः ॥ जग्राह विधिवद्धोमं चक्रे तत्र च तुम्बुरुः ॥ १३ ॥ प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ पुष्पाणि ससृजुर्मेघा देववाद्यानि सस्वनुः ॥ १४ ॥ विवाहे राजपुत्रस्य तया तत्र समेयुषः ॥ समस्तवसुधात्राणकर्तृकारणभूतया ॥ १५ ॥ ततो गन्धर्वलोकं ते सह तेन महात्मना ॥ निःशेषेण ययुः सा च स राजसुतो मुने ॥ १६ ॥ भामिन्या मुमुदे सार्द्धमविक्षिन्नृपनन्दनः ॥ सा च तेन समं तत्र भोगसम्पत्समन्विता ॥ १७ ॥

संपादन किया ॥ १३ ॥ तिस काल देवता गंधर्वोंने संगीत और अप्सराओंने नाचना आरंभ किया। मेघोंने पुष्पोंकी वर्षा करी और देवताओंके बाजे बजने लगे ॥ १४ ॥ हे मुने ! अनन्तर संपूर्ण पृथ्वीमण्डलके पालनकर्त्ताओंकी कारण स्वरूप (जननी) इस कुमारीके संग राजपुत्रके विवाहकालमें ॥ १५ ॥ आयेहुए सब गंधर्व उस महात्मा तनयके सहित गंधर्वलोकमें चलेगये और राजकन्या तथा वह राजपुत्रभी उन्हींके संग गये ॥ १६ ॥ वहां नृपनंदन अवीक्षित भामिनीके सहवाससे जिस प्रकार आनन्दित हुए, भोगसम्पत्शालिनी भामिनीभी अवीक्षितके सहवाससे उसी प्रकार संतोषको प्राप्त हुई ॥ १७ ॥

वह वहां उस कृशाङ्गीके सहित कभी अत्यन्त मनोहर नगरके उपवनमें और कभी उपपर्वतोंमें क्रीडा करने लगे ॥ १८ ॥ कभी हंस सारसशोभित नदीके पुलिनमें, कभी मन्दिरोंमें मनोहर ऊंचे महलोंपर ॥ १९ ॥ और कभी अन्यान्य रमणीय विहार प्रदेशमें तन्वीके संग राजपुत्र और महानुभाव राजपुत्रके संग भामिनी, इस प्रकार वह परस्पर दिनरात रमण करनेलगे ॥ २० ॥ मुनि, गंधर्व और किन्नरगण उनको उत्तम उत्तम भक्ष्य पानीय, वस्त्र, माल्य और अनुलेपन इत्यादि उपहार प्रदान करने लगे ॥ २१ ॥ उस दुर्लभ गंधर्वलोकमें भामिनीके संग महावीर राजकुमारके इस प्रकार विहार करनेपर कालक्रमसे

कदाचिदतिरम्येऽसौ नगरोपवने तया ॥ विक्रीडाति समं तन्व्या कदाचिदुपपर्वते ॥ १८ ॥ कदाचित्पुलिने नद्या हंससारसशोभिते ॥ कदाचिद्भवनस्यान्ते प्रासादे चातिशोभने ॥ १९ ॥ विहारदेशेष्वन्येषु रमणीयेष्वहर्निशम् ॥ स रेमे सहितस्तन्व्या सा च तेन महात्मना ॥२०॥ भक्ष्यानुलेपनं वस्त्रं स्रक्पानादिकमुत्तमम् ॥ उपाजह्रुस्तयोस्तत्र मुनिगन्धर्वकिन्नराः ॥२१॥ तया च रमतस्तस्य भामिन्या सह दुर्लभे ॥ गन्धर्वलोके वीरस्य पुत्रं सा सुषुवे शुभा ॥२२॥ तस्मिञ्जाते महावीर्यें गन्धर्वाणां महोत्सवः ॥ बभूव मनुजव्याघ्रे तेन कार्यमवेक्षताम् ॥ २३ ॥ जगुः केचित्तथैवान्ये मृदङ्गपटहानकान् ॥ अवादयन्त चैवान्ये वेणुवीणादिकांस्तथा ॥ २४ ॥ ननृतुश्च तथा तत्र बह्वोऽप्सरसां गणाः ॥ पुष्पवृष्टिमुचो मेघा जगर्जुर्मृदुनिस्वनाः ॥ २५ ॥ तथा कोलाहले तस्मिन्वर्तमानेऽथ तुम्बुरुः ॥ प्रणयेन स्मृतोऽभ्येत्य जातकर्माकरोन्मुनिः ॥ २६ ॥

कल्याणीने एक पुत्र प्रसव किया ॥ २२ ॥ हे मनुजव्याघ्र ! महावीर्यशाली इस पुत्रके उत्पन्न होनेपर उसके द्वारा भविष्यत् प्रयोजन सिद्ध होनेकी आशासे गंधर्वोंमें महाउत्सव उपस्थित हुआ था ॥ २३ ॥ उनमें कोई गान करनेलगा तथा कोई मृदंग पटह (बाजे) आनक ढोलादि और कोई वेणु वीणादि बजानेलगा ॥ २४ ॥ उस काल अप्सरायें नाचने लगीं और संपूर्ण मेघ फूलोंकी वर्षा करते करते मृदु मन्द शब्दसे गर्जने लगे ॥ २५ ॥ हे मुने ! इस प्रकार पूर्ण कोलाहलकी अवस्थामें तनयके स्मरण करतेही तुम्बुरुने वहां आनकर जातकर्म संपादन किया ॥ २६ ॥

हे द्विजोत्तम ! क्रमानुसार संपूर्ण देवता, निष्पाप देवर्षिगण, पातालसे शेष, वासुकि, तक्षक इत्यादि पन्नग ॥ २७ ॥ राजगण, देव, असुर, यक्ष और गुह्यकोंमें प्रधान प्रधान व्यक्तिगण और समस्त वायुकुल आनकर उपस्थित हुआ ॥ २८ ॥ उस काल आयेहुए संपूर्ण ऋषि, देव, दानव, पन्नग और मुनियोंसे गंधर्वोंका महानगर व्याप्त होगया ॥ २९ ॥ तदनन्तर जातकर्मादि कार्यसंपादनके पीछे उन तुम्बुरुने स्तुतिपूर्वक इस प्रकार बालकका स्वस्त्ययन किया ॥ ३० ॥ हे वीर ! तुम महाबल, महावीर्य और महाबाहु सार्वभौम होकर बहुत कालतक संपूर्ण पृथ्वीका आधिपत्य करो ॥ ३१ ॥ यह समस्त इन्द्रादि लोकपाल और ऋषिगण तुम्हारा मंगलसाधक और शत्रुविनाशक वीर्य विधान करैं ॥ ३२ ॥ पूर्वदिशासे बहतीहुई धूलिरहित मरुत्

देवाः समाययुः सर्वे तथा देवर्षयोऽमलाः ॥ पातालात्पन्नगेन्द्राश्च शेषवासुकितक्षकाः ॥२७॥ तथा देवासुराणां च ये प्रधाना द्विजोत्तम ॥ यक्षाणां गुह्यकानां च वायवश्च तथाऽखिलाः ॥ २८ ॥ तदाऽऽगतैरशेषर्षिदेवदानवपन्नगैः ॥ मुनिभिश्चाकुलमभूद्गन्धर्वाणां महत्पुरम् ॥ २९ ॥ ततः स तुम्बुरुः कृत्वा जातकर्मादिकाः क्रियाः ॥ चक्रे स्वस्त्ययनं तस्य बालस्य स्तुतिपूर्वकम् ॥३० ॥ चक्रवर्ती महावीर्यो महाबाहुर्महाबलः ॥ महान्तं कालमीशित्वमशेषायाः क्षितेः कुरु ॥ ३१ ॥ इमे शक्रादयः सर्वे लोकपालास्तथर्षयः ॥ स्वस्ति कुर्वन्तु ते वीर वीर्यं चारिविनाशनम् ॥ ३२ ॥ मरुत्तव शिवायास्तु वाति पूर्वेण योऽरजाः ॥ मरुत्ते विमलोऽक्षीणोऽवैषम्यायास्तु दक्षिणः ॥ ३३ ॥ पश्चिमस्ते मरुद्वीर्यमुत्तमं ते प्रयच्छतु ॥ बलं यच्छतु चोत्कृष्टं मरुत्ते च तथोत्तरः ॥ ३४ ॥ इति स्वस्त्ययनस्यान्ते वागुवाचा शरीरिणी ॥ मरुत्तवेति बहुशो यदिदं गुरुरब्रवीत् ॥ ३५ ॥ मरुत्त इति तेनायं भुवि ख्यातो भविष्यति ॥ भुवि चास्य महीपाला यास्यन्त्याज्ञावशा यतः ॥ ३६ ॥

(वायु) तुम्हारा मंगल विधान करै । अक्षीण विमल दक्षिणका पवन तुम्हारे ऊपर अनुकूलतामें स्थित हो ॥ ३३ ॥ और पश्चिमका मरुत् तुमको महावीर्य और उत्तरका पवन तुमको उत्कृष्ट बल प्रदान करै ॥ ३४ ॥ इस प्रकार स्वस्त्ययन कार्यके समाप्त होनेपर आकाशवाणी हुई कि " गुरुने वारंवार मरुत् " इस प्रकार उच्चारण किया है ॥ ३५ ॥ इस कारण यह बालक 'मरुत्त' नामसे भूमण्डलमें विख्यात होगा और संपूर्ण महीपाल इसके आज्ञावर्ती होंगे ॥ ३६ ॥

अतएव यह बालक सब राजाओंका शीर्षस्थानीय होगा और महावीर्य चक्रवर्ती होकर सदा पृथ्वीपालगणोंपर आक्रमण करके इस सप्तद्वीपवती पृथ्वीको भोग करेगा। यह बालक पृथ्वीश्वरोंमें और यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ होगा और सब राजाओंकी अपेक्षा शौर्य वीर्यमें अधिकता लाभ करेगा ॥ ३७ ॥ ३८॥ श्रीमार्कण्डेयजी बोले—किसी देवताके उच्चारित यह वचन (देववाणी) सुनकर संपूर्ण विप्र, गंधर्व और बालकके माता पिता परमसंतोषको प्राप्त हुए ॥ ३९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षितचरिते भाषाटीकायां चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे विप्र ! इसके उपरान्त राजपुत्र

एष सर्वक्षितीशानां वीरः स्थास्यति मूर्द्धनि ॥ चक्रवर्त्ती महावीर्यः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ ३७ ॥ आक्रम्य पृथिवीपालानयं भोक्ष्यत्यवारितः ॥ प्रधानः पृथिवीशानां भविष्यत्येष यज्विनाम् ॥ आधिक्यं शौर्यवीर्येण भविष्यत्यस्य राजसु ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः सर्वे केनाप्युक्तं दिवौकसाम् ॥ तुतुषुर्विप्रगन्धर्वाश्चास्य माता तथा पिता ॥३९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितेऽविक्षितो मरुत्तपुत्रोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्विंशत्याधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः स राजपुत्रस्तमादाय दयितं सुतम् ॥ पत्नीं चानुगतो विप्र गन्धर्वैराययौ पुरम् ॥ १ ॥ स पितुर्भवनं प्राप्य ववन्दे पितुरादरात् ॥ चरणौ सा च तन्वङ्गी ह्रीमती नृपतेः सुता ॥ २ ॥ तथाह राजपुत्रोऽसौ गृहीत्वा बालकं सुतम् ॥ धर्मासनगतं भूपं राज्ञां मध्ये करन्धमम् ॥ ३ ॥ मुखं पौत्रस्य पश्यैतदुत्सङ्गस्थस्य यन्मया ॥ किमिच्छके प्रतिज्ञातं तुभ्यं मातुः कृते पुरा ॥४॥ इत्युक्त्वा पितुरुत्सङ्गे तं कृत्वा तनयं ततः ॥ यथावृत्तमशेषं स कथयामास तस्य तत् ॥ ५ ॥

प्रियपुत्रको लेकर स्त्रीसहित अपने नगरमें आये। आनेके समय गन्धर्वोंने पैदलही उनका अनुगमन कियाथा ॥ १ ॥ उन्होंने पिताके भवनमें पहुँचकर भक्तिसहित पिताके चरणोंकी वंदना करी और फिर कृशाङ्गी राजकन्याने भी लज्जितभावसे मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ २ ॥ तदनन्तर राजपुत्रने बालक पुत्रको ग्रहण करके राजाओंके मध्य धर्मासनमें बैठेहुए पिता करन्धमसे कहा ॥ ३ ॥ "मैंने पूर्वमें जननीके कारण किमिच्छकव्रतके समय आपसे जो प्रतिज्ञा करी थी, यह उसी पौत्रको गोदीमें लेकर पानेसुख देखिये" ॥ ४ ॥ यह कहकर पिताकी गोदीमें पुत्रको दे उनसे

सब वृत्तान्त वर्णन किया ॥ ५ ॥ राजा आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रोंसे पौत्रको आलिंगन करके "सौभाग्यवान् हुआहूं" इस प्रकार कहतेहुए वारंवार अपनी प्रशंसा करने लगे ॥ ६ ॥ इसके पीछे हर्षके कारण अन्यान्य कार्य भूलकर आयेहुए गंधर्वोंका अर्घ्यादिके द्वारा सन्मान किया ॥ ७ ॥ हे महामुने ! उस समय नगरमें समस्त पौर जनोंके घर "हमारे रक्षाकर्त्ता राजाके सन्तान हुई है" यह कहकर महान् आनन्द उत्सव होने लगा ॥ ८ ॥ उस आनंदपूर्ण पुरके विशाल आंगनोंमें सुन्दरी विलासिनीगण गीत वाद्यसहित उत्तम नृत्य करने लगी ॥ ९ ॥ राजा हर्षित चित्तसे गुणशाली ब्राह्मणोंको धन, रत्न,

स परिष्वज्य तं पौत्रमानन्दास्राविलेक्षणः ॥ स भाग्योऽस्मीत्यथात्मानं प्रशशंस पुनः पुनः ॥६॥ ततः सोऽर्घ्यादिना सम्यग्गन्धर्वान्समुपागतान् ॥ संमानयामास मुदा विस्मृतान्यप्रयोजनः ॥ ७ ॥ ततः पुरे महानासीदानन्दः पौरवेश्मसु ॥ अस्माकं सन्ततिर्जाता नाथस्येति महामुने ॥ ८ ॥ हृष्टपुष्टे पुरे तस्मिन्गीतवाद्यैर्वराङ्गनाः ॥ विलासिन्योऽतिचार्वङ्ग्यो ननृतुर्लास्यमुत्तमम् ॥ ९ ॥ राजा च द्विजमुख्येभ्यो रत्नानि च वसूनि च ॥ गावो वस्त्राण्यलङ्कारानददाद्धृष्टमानसः ॥ १० ॥ ततः स बालो ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ पितृणां प्रीतिजनको जनस्येष्टश्च सोऽभवत् ॥ ११ ॥ आचार्याणां सकाशात्स प्राग्वेदाञ्जगृहे मुने ॥ ततः शास्त्राण्यशेषाणि धनुर्वेदं ततः परम् ॥ १२ ॥ कृतोद्योगो यदा सोऽभूत्खड्गकार्मुककर्माणि ॥ अन्येषु च तथा वीरः शस्त्रेषु विजितश्रमः ॥१३॥ ततोऽस्त्राणि स जग्राह भार्गवाद्भृगुसंभवात् ॥ विनयावनतो विप्र गुरोः प्रीतिपरायणः ॥ १४ ॥

वस्त्र, गहने और गायें दान करने लगे ॥ १० ॥ तदनन्तर वह बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान बढकर पिताको प्रीतिप्रद और साधारण मनुष्योंका प्रियतम होगया ॥ ११ ॥ हे मुने ! उस बालकने यथाकालमें आचार्यके निकटसे प्रथम वेद फिर अन्यान्य सब शास्त्र और इसके पीछे धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण करी ॥ १२ ॥ अन्तमें वह वीर बालक जब शास्त्रोंमें श्रम करचुका तब खड्ग, धनुष और अन्यान्यशस्त्रकी प्रयोगशिक्षामें उद्योगशिक्षामें उद्योगी हुआ ॥ १३ ॥ हे विप्र ! तब उसने विनयसे नम्र और गुरुको प्रीतिपरायण होकर भृगुवंशीय भार्गवके निकटसे संपूर्ण अस्त्रग्रहण किये ॥ १४ ॥

इसी प्रकार वह अस्त्रग्रहण कर धनुर्वेदका पारगामी हो कृतकार्य हुआ धनुर्विद्यामें पारग तथा और भी सब विद्यामें पारदर्शी होगया । उस काल इसकी अपेक्षा इन सब विषयोंमें और कोई श्रेष्ठ नहीं था ॥१५॥ अपनी कन्याकी समस्त वार्त्ता जानकर और दौहित्रकी योग्यता उपलब्ध करके विशालराजाका भी चित्त हर्षसे परिपूर्ण होगया ॥ १६ ॥ पौत्रसुख देखनेसे प्राप्त मनोरथ, शत्रुविजयी और बलबुद्धिमान् राजा करन्धमने अनेकानेक यज्ञ संपादन कर अर्थियोंको बहुतसे दान ॥ १७ ॥ और सब भाँति सत्कार्य हो बलबुद्धिपूर्वक यथाधर्म पृथ्वीपालन करते हुए ॥ १८ ॥ कुछ काल पीछे वन जानेकी इच्छा करके पुत्र अवीक्षितसे कहा "हे पुत्र ! मैं बूढा होगया हूं अब वनमें जानेकी अभिलाषा करताहूं तुम मुझसे यह राज्य ग्रहण करो ॥ १९ ॥ मैं

गृहीतास्त्रः कृती वेदे धनुर्वेदस्य पारगः ॥ निष्णातः सर्वविद्यासु न बभूव ततः परः ॥ १५ ॥ विशालोऽपि सुतावार्त्तामुपलभ्याखिलामिमाम् ॥ हर्षनिर्भरचित्तोऽभूद्दौहित्रस्य च योग्यताम् ॥ १६ ॥ अथ राजा सुतसुतं दृष्ट्वा प्राप्तमनोरथः ॥ यज्ञाननेकान्निष्पाद्य दत्त्वा दानानि चार्थिनाम् ॥ १७ ॥ कृतशेषक्रियो युक्तः स वर्णैर्धर्मतो महीम् ॥ परिपाल्यारिविजयी बलबुद्धिसमन्वितः ॥१८॥ स यियासुर्वनं पुत्रमविक्षितमभाषत ॥ पुत्र वृद्धोऽस्मि गच्छामि वनं राज्यं गृहाण मे ॥ १९ ॥ कृतकृत्योऽस्मि नास्त्यन्यत्किञ्चित्त्वदभिषेचनात् ॥ सुनिष्पन्नमतो राज्यं त्वं गृहाण मयार्पितम् ॥ २० ॥ इत्युक्तः पितरं प्राह सोऽविक्षिन्नृपनन्दनः ॥ प्रश्रयावनतो भूत्वा यियासुस्तपसे वनम् ॥ २१ ॥ नाहं तात करिष्यामि पृथिव्याः परिपालनम् ॥ नापैति ह्रीर्मे मनसि राज्येऽन्यं त्वं नियोजय ॥ २२ ॥ तातेन मोक्षितो बद्धो न स्ववीर्याद‌हं यतः ॥ ततः कियत्पौरुषं मे पुरुषैः पाल्यते मही ॥ २३ ॥

समस्त विषयोंमेंही कृतार्थ होगयाहूं, अब तुम्हारे अभिषेकके अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं है, अतएव तुम यह मेरा दिया सब भाँति सम्पन्न राज्य ग्रहण करो" ॥ २० ॥ नृपनन्दन अवीक्षितने पिताका वचन सुन, उन्होंनेभी वन जानेकी इच्छा कर विनयसहित पितासे कहा ॥ २१ ॥ हे पिता ! मैं पृथ्वीपालन नहीं करूंगा, अबतक मेरी यह लज्जा दूर नहीं हुई है, अतएव आप अन्य किसीको राज्यमें नियोजित कीजिये ॥ २२ ॥ मैं बद्ध होकर पिताके द्वारा छुडाया गयाथा; अपने वीर्यसे नहीं छूटसका, सुतरां मेरा पौरुष कितना है ? पुरुषही पृथ्वीपालन करते हैं ॥ २३ ॥

मैं जब आत्मा अर्थात् अपनीही रक्षा करनेमें असमर्थ हूं तो किस प्रकार पृथ्वीपालन करूंगा? इस कारण किसी दूसरेके हाथमें राज्यभार सौंपिये॥ २४॥ मंत्रणाशील और धर्मशील होकर भी जो पुरुष शत्रुआस पराजित होगया है और जो कभी मोहके वशीभूत होने योग्य नहीं है; उस आत्माको जिस पुरुषने आपके (पिताके) यत्नसे बंधनमुक्त किया है वह स्त्रीजातिके समान धर्मवाला मैं किस प्रकार महीपति हूंगा ? ॥ २५ ॥ २६ ॥ पिताने कहा—हे वीर ! पिता पुत्रसे और पुत्र पितासे पृथक् नहीं है, अतएव मेरे द्वारा छूटना पराये द्वारा छूटनेमें नहीं है ॥ २७ ॥ पुत्रने कहा हे नरेश्वर ! मैं अब हृदयके वेगको नहीं फिरा सकता आपके द्वारा छटनेसे मेरे हृदयमें अत्यन्त लज्जा जागरित रहती है ॥ २८ ॥ जो पुरुष पिताकी उपार्जन की हुई सम्पत्ति भोगता है,

योऽहं न पालनायालमात्मनोऽपि वसुन्धराम् ॥ स कथं पालयिष्यामि राज्यमन्यत्र विक्षिप ॥ २४॥ स स्त्रीसधर्मा पुरुषो यश्चान्येनावद्धु-
ह्यते ॥ आत्माऽमोहाय भवता बन्धनाद्येन मोक्षितः ॥ २५ ॥ सोऽहं कथं भविष्यामि स्त्रीसधर्मा महीपतिः ॥ स्त्रियः पुमान्भवेद्भर्ता य
शूरः स महीपतिः ॥२६॥ पितोवाच ॥ न भिन्न एव पुत्रस्य पिता पुत्रस्तथा पितुः ॥ नान्येन मोक्षितो वीर यस्त्वं पित्रा विमोक्षितः ॥ पुत्र
उवाच ॥ हृदयं नान्यथा नेतुं मया शक्यं नरेश्वर ॥ २७ ॥ हृदये ह्रीर्ममातीव यस्त्वहं मोक्षितस्त्वया ॥ २८ ॥ पित्रोपात्तां श्रियं भुङ्क्ते
पित्रा कृच्छ्रात्समुद्धृतः ॥ विज्ञायते च यः पित्रा मानवः सोऽस्तु नो कुले ॥ २९ ॥ स्वयमर्जितवित्तानां ख्यातिं स्वयमुपेयुषाम् ॥ स्वयं
निस्तीर्णकृच्छ्राणां या गतिः साऽस्तु मे गतिः ॥ ३० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्याह बहुशः पित्रा यदाप्युक्त्वाऽप्यसौ मुने ॥ तदा तस्य
सुतं राज्ये मरुत्तमकरोन्नृपः ॥ ३१ ॥

विपदमें पिताके द्वारा छूटकारा पाताहै और पिताकेही नामसे परिचित होता है, वंशमें ऐसे पुत्रका जन्म न होनाही उत्तम है ॥ २९ ॥ जो स्वयं धन उपार्जित करताहै, स्वयं ख्याति लाभ करता है और स्वयंही दुःखसे छूटसकता है, उसकी जो गति होती है मेरी भी वही गति हो ॥ ३० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने ! पिताके वारंवार अनुरोध करनेपर भी जब राजपुत्रने यही उत्तर दिया, तब राजा करन्धमने उनके पुत्र मरुत्तको राज्यमें राजा किया ॥ ३१ ॥

मरुत्त पिताका अनुमोदित राज्य पितामहसे प्राप्त कर सुहृद्गणोंका आनन्द सम्पादनपूर्वक सम्यक् प्रकार उसको शासन करनेलगे ॥ ३२॥ काय, मन, वचनसे संयत होकर तपस्या करनेके लिये राजा करंधम अपनी पत्नी वीराको संग लेकर वनमें चलेगये ॥ ३३॥ वहां राजा करन्धम हजार वर्ष पर्यन्त कठिन तपस्या करके देहपरित्यागपूर्वक इन्द्रलोकको प्राप्त हुए ॥ ३४॥ और वह इनकी पत्नी वीरा और भी सौ वर्षपर्यन्त जटा बढायेहुए तप करती रही ॥ ३५॥ और स्वर्गमें प्राप्त हुए महात्मा भर्त्ताके सालोक्यकी इच्छा करने लगी और फल मूल आहार करके भार्गवके आश्रममें रहनेलगी द्विजातिपत्नियोंके मध्यमें स्थित

स पित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात् ॥ चकार सम्यक्सुहृदामानन्दमुपपादयन् ॥ ३२ ॥ राजा करन्धमश्चापि वीरामादाय तां तथा ॥ वनं जगाम तपसे यतवाक्कायमानसः ॥ ३३ ॥ तत्र वर्षसहस्रं स तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥ विहाय देहं नृपतिः शक्रस्याप सलोकताम् ॥ ३४ ॥ सास्य पत्नी तदा वीरा वर्षाणामपरं शतम् ॥ तपश्चचार विप्रर्षे जटिलामलपंकिनी ॥ ३५ ॥ सालोक्यमिच्छती भर्तुः स्वर्गतस्य महात्मनः ॥ फलमूलकृताहारा भार्गवाश्रमसंश्रया ॥ द्विजातिपत्नीमध्यस्था द्विजशुश्रूषणादृता ॥ ३६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरिते पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ भगवन्विस्तरात्सर्वं ममैतत्कथितं त्वया ॥ करन्धमस्य चरितमविक्षिच्चरितं च यत् ॥१॥ अविक्षितस्य नृपतेर्मरुत्तस्य महात्मनः ॥ श्रोतुमिच्छामि चरितं श्रूयते सोऽतिचेष्टितः ॥२॥ चक्रवर्त्ती महाभागः शूरः कान्तो महामतिः ॥ धर्मविद्धर्मकृच्चैव सम्यक्पालयिता भुवः ॥ ३ ॥

हुई उनकी शुश्रूषा और आदरको प्राप्त हुई ॥ ३६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरिते भाषाटीकायां पंचविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ क्रौष्टुकिने कहा–हे भगवन् ! आपने करन्धम और अवीक्षितका संपूर्ण चरित विस्तारसहित वर्णन किया ॥ १ ॥ अब अवीक्षितके पुत्र महात्मा मरुत्तराजाका चरित्र सुननेकी इच्छा करताहूँ । सुना है कि, वह अत्यन्त उद्यमशील, प्रतिष्ठित ॥ २ ॥ चक्रवर्ती, महाभाग, शूर, कमनीय, महामति, धर्मवित, धर्मचारी और सम्यक् पृथ्वीपालक थे ॥ ३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले-मरुत्त पिताकी अनुज्ञासे पितामहसे राज्यको प्राप्त हो पिता जिस प्रकार औरसपुत्रका प्रतिपालन करता है. यावतीय प्रजाको वैसेही धर्मानुसार पालन करने लगे ॥ ४ ॥ याज्ञिक और पुरोहितोंकी आज्ञापालनमें मन लगाकर उन महीपतिने महादक्षिणायुक्त यथाविधानसे अनेकानेक यज्ञ संपादन किये थे ॥५॥ सप्तद्वीपमें उनका रथचक्र अप्रतिहत था और आकाश, पाताल और जलादिके स्थानमें भी उनकी गति नहीं रुकती थी ॥६॥ हे विप्र ! उन स्वकर्मपरायण मरुत्तने धनको प्राप्त हो संपूर्ण महायज्ञोंके अनुष्ठान द्वारा इन्द्र इत्यादि देवताओंका यजन किया था ॥ ७ ॥ अन्यान्य समस्त

मार्कण्डेय उवाच ॥ स पित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात् ॥ धर्मतः पालयामास पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ ४॥ इयाज सुबहून्यज्ञा-न्यथा वत्स्वाप्तदक्षिणान् ॥ ऋत्विक्पुरोहितादेशादनिर्विण्णो महीपतिः ॥५॥ तस्याप्रतिहतं चक्रमासीद्द्वीपेषु सप्तसु ॥ गतिश्चाप्यनवच्छिन्ना स्वःपातालजलादिषु ॥६॥ ततः प्राप्य धनं विप्र यथावत्स्वक्रियापरः ॥ अयजत्स महायज्ञैर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥७ ॥ इतरे च यथावर्णाः स्वे स्वे कर्मण्यतन्द्रिताः ॥ तदुपात्तधनाश्चक्रुरिष्टापूर्त्तादिकाः क्रियाः ॥८॥ पाल्यमाना मही तेन मरुत्तेन महात्मना ॥ योऽस्पर्द्धत्रिदशा-वासवासिभिर्द्विजसत्तम ॥९॥ तेनातिशयिताः सर्वे केवलं न महीक्षितः ॥ यज्विना देवराजोऽपि शतयज्ञाभिसन्धिना ॥१०॥ ऋत्विक्तस्य तु संवर्त्तो बभूवांगिरसः सुतः ॥ भ्राता बृहस्पतेर्विप्र महात्मा तपसां निधिः ॥ ११॥ सौवर्णो मुञ्जवान्नाम पर्वतः सुरसेवितः ॥ पातितं तेन तच्छृंगं कृते तस्य महीपतेः ॥ १२ ॥

वर्णभी अपने अपने कर्ममें तत्पर रहकर उनकेही निकटसे प्राप्त किये धनद्वारा इष्टापूर्त्तादि क्रिया संपादन करते थे ॥ ८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! पृथ्वी महात्मा मरुत्तसे प्रतिपालित होकर देवताओंके सहित भी स्पर्द्धा करती थी ॥ ९ ॥ मरुत्त केवल महीपालोंमेंही प्रधानताको प्राप्त नहीं हुए थे, वरन् सैकडों यज्ञोंका अनुष्ठान करके वह देवराज इन्द्रकी अपेक्षा भी प्रधान हुए थे ॥१० ॥ हे विप्र ! अंगिराके पुत्र, बृहस्पतिके भ्राता तपोनिधि महात्मा संवर्त्त उनके ऋत्विक् थे ॥ ११ ॥ हे द्विज ! देव-सेवित मुञ्जवान् नामक सुवर्णमय एक पर्वत है, ऋत्विक् तपोबलसे उसका शृंग उखाडकर राजाके लिये लाये थे ॥ १२ ॥

राजाका यज्ञीय समस्त भूभाग और भली भाँतिसे कांचनमय निर्मल महलोंसे युक्त इस शृंगके द्वारा तपोबलसे निर्मित हुई थी ॥ १३ ॥ ऋषिगण इन मरुत्तका चरित अवलम्बन करके सदा इस प्रकार गाथा गान और अध्ययन करते थे ॥ १४ ॥ कि " जिनके यज्ञमें समस्त सभा और प्रासाद कांचनमय किये गये थे। इन्द्र सोम पीनेसे और ब्राह्मणगण दक्षिणा पानेसे मत्त हो उठे थे तथा इन्द्रादि प्रधान प्रधान देवता ब्राह्मणोंको परोसनेवाले घेरे हुए थे, उन मरुत्तके समान यज्ञशील किसी मनुष्यने पृथ्वीमें जन्मग्रहण नहीं किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ महीपति मरुत्तके समान और किसके यज्ञमें ब्राह्मणगण सब रत्नपूर्ण घरोंमें सुवर्ण राशिको त्यागसके थे ? ॥ १७ ॥ उनके यज्ञकालमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्ण सुवर्णमय प्रासादादि समस्त वस्तुको प्राप्त हुए थे। उनके अतिरिक्त

तेन यस्याखिलं यज्ञे भूमिभागादिकं द्विज ॥ प्रासादाश्च कृताः शुभ्रास्तपसा सर्वकाञ्चनाः ॥ १३ ॥ गाथाश्चाप्यत्र गायन्ति मरुत्तचरिताश्रयाः ॥ सातत्येनर्षयः सर्वे कुर्वन्तोऽध्ययनं यथा ॥ १४ ॥ मरुत्तेन समो नाभूद्यजमानो महीतले ॥ सदः समस्तं यद्यज्ञे प्रासादाश्चैव कांचनाः ॥ १५ ॥ अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ॥ विप्राणां परिवेष्टारः शक्राद्यास्त्रिदशोत्तमाः ॥ १६ ॥ यथा यज्ञे मरुत्तस्य तृप्ताः सर्वे महीपतेः ॥ सुवर्णमखिलं त्यक्तं रत्नपूर्णगृहे द्विजैः ॥ १७ ॥ प्रासादादिसमस्तं च सौवर्णं तस्य यत्क्रतौ ॥ त्रयो वर्णा ह्यलभ्यन्त तस्मात्केचित्तथा ददुः ॥ १८ ॥ (तेन त्यक्तेन शिष्टा ये जनाः पूर्णमनोरथाः ॥ तेऽपि यज्ञान्यजंते स्म देशे देशे पृथक्पृथक् ॥) तस्यैवं कुर्वतो राज्यं सम्यक्पालयतः प्रजाः ॥ तपस्वी कश्चिदभ्येत्य तमाह मुनिसत्तम ॥ १९ ॥ पितुर्माता तवाहेदं दृष्ट्वा तापसमण्डलम् ॥ विषाभिभूतमुरगैर्मदोन्मत्तैर्नरेश्वर ॥ २० ॥

और किसने ऐसा दान किया था ? ॥ १८ ॥ (उनका दिया हुआ धन पाकर जो शिष्टपुरुष उनके यज्ञमें पूर्णमनोरथ हुए थे, उन्होंने भी पृथक् पृथक् देशमें पृथक् पृथक् सब यज्ञ संपादन किये थे) हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार उनके सम्यक् राज्यशासन और प्रजापालन कालमें एक समय किसी तपस्वीने आंनकर उनसे कहा ॥ १९ ॥ हे नरेश्वर ! तापसमण्डलीको मदोन्मत्त सर्पोंके विषद्वारा पीडित होता देखकर तुम्हारी पितामही दादीने यह बात कहला-भेजी है ॥ २० ॥

" कि, तुम्हारे पितामह सम्यक् प्रकार पृथ्वीका पालन करके स्वर्गमें गये हैं और तुम्हारे पिताभी ग्राम छोडकर वनको गये हैं (मैंभी इस समय तपस्यामें आसक्त होकर औरवाश्रममें वास करती हूं ॥ २१ ॥ हे नृप ! तुम्हारे पितामह वा तुम्हारे अन्यान्य पूर्वपुरुषोंके राज्यसमयमें जो घटना कभी नहीं हुई, तुम्हारे शासनकालमें वही विकलता देखतीहूं ॥ २२ ॥ तुम निस्सन्देह प्रमत्त अथवा अजितेन्द्रिय होकर भोगमें आसक्त हुएहो और तुमको दूतोंका न रखना उपस्थित हुआ है इसी कारण तुम दुष्टादुष्ट जाननेमें असमर्थ हो ॥ २३ ॥ दंशनशाली भुजङ्गगणोंने पातालसे आनकर सात मुनिपुत्रोंको डसा है

पितामहस्ते स्वर्यातः सम्यक्संपाल्य मेदिनीम् ॥ पिता तव तथा शक्तो हित्वा ग्रामं वनं गतः ॥ (तपश्चरणशक्ताऽहमिह चौर्वाश्रमे स्थिता) ॥ २१ ॥ साऽहं पश्यामि वैकल्यं तव राज्यं प्रशासतः ॥ पितामहस्य तेनाभूद्यत्पूर्वेषां च ते नृप ॥ २२ ॥ नूनं प्रमत्तो भोगेषु सक्तो वाऽविजितेन्द्रियः ॥ चारान्धता यतोऽस्तीयं दुष्टादुष्टं न वेत्सि यत् ॥२३॥ पातालादभ्युपेतैस्तु भुजगैर्दंशशालिभिः ॥ दष्टा मुनिसुताः सप्त दूषिताश्च जलाशयाः ॥ २४ ॥ स्वेदमूत्रपुरीषेण दूषितं सुश्रृतं हविः ॥ अपराधं समुद्दिश्य दत्तो नागबलिश्चिरात्॥ २५ ॥ एते समर्था मुनयो भस्मीकर्तुं भुजंगमान् ॥ किन्त्वेषां नाधिकारोऽत्र त्वमेवात्राधिकारवान् ॥ २६ ॥ तावत्सुखं भूपतिजैर्भोगजं प्राप्यते नृप ॥ अभिषेकजलं यावन्न मूर्ध्नि विनिपात्यते ॥ २७ ॥ कानि मित्राणि कः शत्रुर्मम शत्रोर्बलं कियत् ॥ कोऽहं के मन्त्रिणः पक्षे के वा भूपतयो मम ॥ २८ ॥ (कियान्कोशो बलं किंवा कोऽनुरक्तो जनो मम) ॥ विरक्तो वा परैर्भिन्नः परेषामपि कीदृशः ॥ कः सम्यगत्र नगरे विषये वा जनो मम ॥ २९ ॥

और स्वेद, मूत्र तथा पूरीषद्वारा समस्त जलाशय और होमकी हविको दूषित करडालाहै । इस कारण मुनिगण अपराध हुआ समझकर नागोंको बलि देते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ यह समस्तमुनि सर्पोंको भस्म करनेमें समर्थ हैं किन्तु इसमें (शासनविषयमें) उनका अधिकार नहीं है, तुम्हीं उस कार्यमें अधिकारी हो ॥ २६ ॥ हे भूप ! राजपुत्रगण तबतकही भोगजनित सुख भोग सकतेहैं जबतक उनके मस्तकमें अभिषेकका जल नहीं गिरता ॥ २७ ॥ " कौन मित्र है ? कौन शत्रु है ? कितना शत्रुका बल है ? मैं कौन हूं ? कौन मंत्री है ? कौन कौन राजा अपने पक्षमें हैं ॥ २८ ॥ (मेरे पास कितना

कोष और बल है ? मुझमें कौन जन अनुरक्त है ?) कौन विरक्त है ! कौन शत्रुके द्वारा भेदको प्राप्त हुआ है ? शत्रुओंमें कौन किस प्रकार है ? अपने नगर वा राज्यमें कौन भली भाँति धर्मकर्माश्रयी है ॥२९॥ और कौन मूर्ख वास करता है ? कौन दण्डनीय अर्थात् दण्ड देने योग्य है ? कौन पालन करने योग्य है ? कौन उपेक्षाके योग्य है ? ॥ ३० ॥ संधिभेदके भयसे देशकालका विचार कर किसके प्रति दृष्टि रखनी उचित है ? " यह सब वृत्तान्त जानने के लिये राजा अन्यचर (दूत) के अपरिचित चरको नियुक्त करै ॥ ३१ ॥ महीपति समस्त सचिवादिके प्रतिभी दूतको नियुक्त करैं । भूपति इस प्रकार कार्यमें सदा आसक्तचित्त हो ॥ ३२॥ दिन रात बितावें कभी भोगपरायण होना राजाको उचित नहीं है । हे महीपते ! राजाओंका शरीर धारण करना

धर्मकर्माश्रयो मूढः कः सम्यगपि वर्त्तते ॥ को दण्ड्यः परिपाल्यः कः के चोपेक्ष्या नरा मया ॥ ३० ॥ सामभेदतया दम्या देशकालमवेक्षता ॥ चारांश्च चारयेदन्यैरज्ञातान्भूपतिश्चरैः ॥ ३१ ॥ सचिवादिषु सर्वेषु चरान्दद्यान्महीपतिः ॥ इत्यादौ भूपतिर्नित्यं कर्मण्यासक्तमानसः ॥ ३२ ॥ नयेद्दिनं तथा रात्रिं न तु भोगपरायणः ॥ राज्ञां शरीरग्रहणं न भोगाय महीपते ॥ ३३॥ क्लेशाय महते पृथ्वी स्वधर्मपरिपालने ॥ सम्यक्पालयतः पृथ्वीं स्वधर्मं च महीपते ॥ ३४ ॥ इह क्लेशो महान्स्वर्गे परमं सुखमक्षयम् ॥ तदेतदवबुध्यस्व हित्वा भोगान्नरेश्वर ॥ ३५ ॥ पालनाय क्षितेः क्लेशमङ्गीकर्तुमिहार्हसि ॥ इति वृत्तमृषीणां यद्व्यसनं त्वयि शासति ॥ ३६ ॥ भुजङ्गहेतुकं भूप चारान्धो नापि वेत्सि तत् ॥ बहुनात्र किमुक्तेन दुष्टे दण्डो निपात्यताम् ॥ ३७ ॥ शिष्टान्पालय राजंस्त्वं धर्मषड्भागमाप्स्यसि ॥ अरक्षन्पापमखिलं दुष्टैरविनयात्कृतम् ॥ ३८ ॥

भोगके निमित्त नहीं है ॥ ३३ ॥ पृथ्वी और अपना धर्म पालनके कारण महाक्लेशही उनको भोगना होता है । राजाओंको स्वधर्म और पृथ्वीपालन करनेसे ॥ ३४ ॥इस जन्ममें अत्यन्त क्लेश भोगनेपरभी परकालमें स्वर्ग जानेपर उनको अक्षय सुख प्राप्त होता है हे नरेश्वर ! यह सब विचार कर भोग परित्यागपूर्वक ॥ ३५॥ तुमको पृथ्वीपालनके कारण क्लेश अंगीकार करना उचित है । हे भूप ! तुम्हारे शासनकालमें यह जो ऋषियोंको सर्पोंसे दुःख उपस्थित हुआ है ॥ ३६ ॥ तुम दूतोंके न रखनेके कारणही उसको नहीं जानसके अधिक और क्या कहूं ? हे राजन् ! तुम दुष्टोंको दंड ॥ ३७ ॥ और शिष्ट पुरुषोंका प्रतिपालन करो । इससे धर्मफलका छठा भाग प्राप्त होगा । दुष्टगण उद्धतताके सहित जो करते हैं उससे रक्षा न करनेपर ॥ ३८ ॥

तुम निस्सन्देह पापके भागी होंगे। अब जो कर्त्तव्य विचारो, वह करो। हे वसुधाधिप! मैं ही तुम्हारी पितामही हूं इसी कारण मैंने यह सब कहा। इस स्थलमें जो तुम्हें अच्छा लगे उसीके अनुसार कार्य करो॥३९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरिते भाषाटीकायां षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२६॥ मार्कण्डेयजी बोले-राजाने तापसके यह वचन सुननेसे लज्जित हो "मैं चारान्ध हूँ, मुझको धिक्कार है" यह कह, लम्बी श्वास छोड धनुषका ग्रहण किया॥१॥ और अत्यन्त शीघ्र और्वाश्रममें जाय मस्तक झुकाकर पितामही वीराको॥२॥ और तापसगणोंको यथाविहित प्रणाम किया। उन्होंने

समवाप्स्यस्यसन्दिग्धं यदिच्छसि कुरुष्व तत्॥ एतन्मयोक्तं सकलं यत्तवाहं पितामहः॥ कुरुष्वैव स्थिते यत्ते रोचते वसुधाधिप॥३९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरिते षड्विंशत्याधिकशततमोऽध्यायः॥१२६॥ मार्कण्डेय उवाच॥ इति तापसवाक्यं स श्रुत्वा लज्जापरो नृपः॥ धिङ्मां चारान्धमित्युक्त्वा निःश्वस्य जगृहे धनुः॥१॥ ततः स त्वरितं गत्वा तमौर्वस्याश्रमं प्रति॥ ववन्दे शिरसा वीरां मातरं पितुरात्मनः॥२॥ तापसांश्च यथान्यायं तैश्चाशीर्भिरभिष्टुतः॥ दृष्ट्वा च तापसान्सप्त नागैर्दष्टान्मृतान्भुवि॥३॥ निनिन्दात्मानमसकृत्पुरस्तेषां महीपतिः॥ उवाच चैतद्व्याहं मद्वीर्यमवमन्यताम्॥४॥ यत्करोमि भुजङ्गानां दुष्टानां ब्राह्मणद्विषाम्॥ तत्पश्यतु जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥५॥ मार्कण्डेय उवाच॥ इत्युक्त्वा जगृहे कोपादस्त्रं संवर्तकं नृपः॥ नाशायाशेषनागानां पातालोर्वीविचारिणाम्॥६॥ ततो जज्वाल सहसा नागलोकः समन्ततः॥ महास्त्रतेजसा विप्र दह्यमानो निवारितः॥७॥

भी उनकी सम्यक् प्रकार आशीर्वाद वचनोंसे स्तुति करी। इसके उपरान्त राजाने सर्पदष्ट सात तापसोंको मृतक होकर भूमिमें पडा देख॥३॥ मुनियोंके सामने वारंवार अपनी निन्दा करके कहा-यह दुष्ट भुजंग मेरे बलका तिरस्कार करके॥४॥ ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं, मैं उनकी अब जो अवस्था करता हूं वह देव, दैत्य और नरलोकके सहित संपूर्ण जगत् देखे॥५॥ मार्कण्डेयजी बोले-राजाने इस प्रकार कहकर पाताल और महीतलवासी संपूर्ण नागकुलके विनाशार्थ क्रोधपूर्वक संवर्त्तक अस्त्र ग्रहण किया॥६॥ हे विप्र! उस काल संपूर्ण नागलोक उस महाअस्त्रके

तेजसे सहसा जाज्वल्यमान होगया और अनिवारित दग्ध होनेलगा ॥ ७ ॥ इस अस्त्रकाण्डमें भयसे उद्विग्न पन्नगगण " हा माता ! हा तात ! हा वत्स " कहकर आर्त्तनाद करने लगे ॥ ८ ॥ किसीकी पूंछ और किसीकी फण जलने लगी । तथा किसी किसीने वस्त्र आभरणादि संपूर्ण परित्यागपूर्वक स्त्री पुत्र समेत ॥ ९ ॥ पाताल छोडकर मरुत्तकी माता भामिनीका आश्रय ग्रहण किया । क्योंकि उसने पहिले अभयप्रदान किया था ॥ १० ॥ भयातुर समस्त उरगगणोंने उसके निकट उपस्थित होकर प्रणामपूर्वक गद्गद वचनोंसे कहा । पहिले रसातलमें प्रणाम और अर्चनापूर्वक आपके निकट हमने जो प्रार्थना करी थी उसको स्मरण कीजिये । हे वीरप्रसू ! यह उसका समय उपस्थित हुआ है, इससे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राज्ञि ! पुत्रको

हा हा तातेति हा मातर्हा हा वत्सेति संभ्रमे ॥ तस्मिन्नस्त्रकृते वाचः पन्नगानामथाभवन् ॥ ८ ॥ केचिज्ज्वलाद्भिः पुच्छाग्रैः फणैरन्ये भुजङ्गमाः ॥ गृहीतपुत्रदाराश्च त्यक्ताभरणवाससः ॥ ९ ॥ पातालमुत्सृज्य ययुः शरणं भामिनीं तदा ॥ मरुत्तमातरं पूर्वं यया दत्तं तदाभयम् ॥ १० ॥ तामुपेत्योरगाः सर्वे सप्रणामं भयातुराः ॥ सगद्गदमिदं प्रोचुः स्मर्यतां नः पुरोदितम् ॥ ११ ॥ प्रणम्याभ्यर्थितं पूर्वं यदस्माभी रसातले ॥ तस्य कालोऽयमायातस्त्राहि वीरप्रजायिनि ॥ १२ ॥ पुत्रो निवार्यतां राज्ञि प्राणैः संयोज्यमस्तु नः ॥ दह्यते सकलो लोको नागानामस्त्रवह्निना ॥ १३ ॥ एवं संदह्यमानानामस्माकं तनयेन ते ॥ त्वामृते शरणं नान्यत्कृपां कुरु यशस्विनि ॥ १४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां संस्मृत्यादौ च भाषितम् ॥ भर्त्तारमाह सा साध्वी ससंभ्रममिदं वचः ॥ १५ ॥ पूर्वमेव तवाख्यातं पाताले यद्भुजङ्गमैः ॥ प्रोक्तमभ्यर्थनापूर्वं ममासीत्तनयं प्रति ॥ १६ ॥

निवारण करके हमको प्राणदान दो संपूर्ण नागलोग अस्त्राग्निसे दग्ध हुआ जाताहै ॥ १३ ॥ हे यशस्विनी ! तुम्हारा पुत्र हमको इस प्रकार दग्ध करता है अतएव तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोईभी शरण देनेवाला नहीं है हमारे ऊपर तुम कृपा करो ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—साध्वी भामिनीने उन सर्पोंके इस प्रकार वचन सुननेसे पूर्वोक्त अपना अभयवाक्य स्मरण कर स्वामीके निकट संभ्रमसहित यह वचन कहे ॥ १५ ॥ भामिनी बोली—पातालमें भुजङ्गमगणोंने प्रार्थनाके सहित मेरे पुत्रके संबंधमें जो कहा था, वह मैंने पहिलेही आपसे कहा है ॥ १६ ॥

वही भुजङ्गमगण इस समय पुत्रके तेजसे जले जाते हैं, सुतरां यह भीत होकर मेरी शरणमें आये हैं मैंने भी पूर्वमें इनको अभयप्रदान किया है ॥ १७ ॥ देखो, जो मेरी शरणागत हैं वह अवश्य आपकेभी शरणागत हैं, क्योंकि मैं एकधर्मका आचरण करके आपकी शरणमें प्राप्त हुईहूं ॥ १८ ॥ अतएव तुम पुत्र मरुत्तको निवारण करो । आपके वचन और मेरे अनुरोधसे वह अवश्यही शान्त होगा ॥ १९ ॥ अवीक्षितने कहा–इनके सदा अपराध करनेके कारणही मरुत्तको क्रोध उपस्थित हुआ है सुतरां तुम्हारे पुत्रका क्रोध सहजमें ही निवारित होगा ऐसा बोध नहीं होता ॥ २० ॥ नागोंने कहा हे नृप ! हम आपकी शरणमें आये हैं, हमारे ऊपर अनुग्रह कीजिये, क्षत्रियगण आर्तमनुष्योंकी रक्षाके लियेही अस्त्रधारण करतेहैं ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–महायशा अवि-

त इमेऽभ्यागता भीता दह्यन्ते तस्य तेजसा ॥ मामेते शरणं पूर्वं दत्तमेभ्यो मयाऽभयम् ॥ १७ ॥ ये मां शरणमापन्नास्ते त्वां शरणमागताः ॥ अपृथग्धर्मचरणा याताहं शरणं तव ॥१८॥ तन्निवारय पुत्रं त्वं मरुत्तं वचनात्तव ॥ मया चाभ्यर्थितोऽवश्यं शममभ्युपयास्यति ॥१९॥ राजोवाच ॥ महापराधे नियतं मरुत्तः क्रोधमागतः ॥ दुर्निवर्त्यमहं मन्ये तस्य क्रोधं सुतस्य ते ॥२०॥ नागा ऊचुः ॥ शरणागतास्तव वयं प्रसादः क्रियतां नृप ॥ क्षत्रस्यार्तपरित्राणनिमित्तं शस्त्रधारणम् ॥२१॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ नागानां तद्वचः श्रुत्वा भूतानां शरणैषिणाम् ॥ तया चाभ्यर्थितः पत्न्या प्राहावीक्षिन्महायशाः ॥ २२ ॥ गत्वा ब्रवीमि तं भद्रे तनयं त्वरया तव ॥ परित्राणाय नागानां न त्याज्याः शरणागताः ॥ २३ ॥ नोपसंहरते सोऽस्त्रं यदि मद्वचनान्नृपः ॥ तदास्त्रैर्वारयिष्यामि तस्यास्त्रं तनयस्य ते ॥ २४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गृहीत्वा स धनुरविक्षित्क्षत्रियोत्तमः ॥ भार्यया सहितः प्रायात्त्वरावान्भार्गवाश्रमम् ॥ २५॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरिते सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

क्षितने शरणेच्छु नागोंके यह वचन सुनकर और पत्नीके द्वारा इस प्रकार प्रार्थित होकर उत्तर दिया ॥ २२ ॥ हे भद्रे ! मैं अभी तुम्हारे पुत्रके समीप जाकर नागोंकी रक्षाके लिये उससे कहताहूं, शरणागतको त्याग करना कभी उचित नहीं है ॥ २३ ॥ यदि तुम्हारा पुत्र मरुत्त राजा मेरे वचनसे अस्त्रसंहार नहीं करेगा तो मैं अस्त्रद्वारा उसका अस्त्रनिवारण करूंगा ॥ २४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–अनन्तर क्षत्रियश्रेष्ठ अवीक्षित धनुष ग्रहण करके भार्याके सहित शीघ्र भार्गवाश्रममें गये ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरिते भाषाटीकायां सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—उन्होंने वहां आकर धनुषधारी धनुषपर शस्त्र चढाये पुत्रको देखा कि, उनके उग्र शस्त्रकी ज्वालासे सब दिशामण्डल व्याप्त होरहा है ॥ १ ॥ जिसमेंसे महाअग्नि निकल रही है पृथ्वी प्रदीप्त होरही है और वह असह्य घोर भीषण अग्नि पातालतक पहुँचगई है ॥ २ ॥ उन्होंने देखा कि, राजा मरुत्तका मुख भृकुटीसे कुटिल होरहा है तब उन्होंने कहा हे मरुत्त! अस्त्रसंहार करो क्रोध मत करो ॥ ३ ॥ वारंवार यह कहनेसे उनके वचनमें वर्णक्रम लुप्त होनेलगे तब उस उदारबुद्धिने पिताके वचन सुन और उन्हें देख ॥ ४ ॥ पिता माताको हाथमें धनुष लिये ही प्रणाम कर सन्मानपूर्वक कहा—हे पिता!

मार्कण्डेय उवाच ॥ स तु तत्र सुतं दृष्ट्वा गृहीतवरकार्मुकम् ॥ धनुः शस्त्रं च तस्योग्रं ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ १ ॥ उद्गिरन्तं महावह्निं दीपिताखिलभूतलम् ॥ पातालान्तर्गतं प्राप्तमसह्यं घोरभीषणम् ॥ २ ॥ स तं दृष्ट्वा महीपालं भृकुटीकुटिलाननम् ॥ मा क्रुधस्त्वं मरुत्तास्त्रमुपसंह्रियतामिति ॥ ३ ॥ प्राहासकृच्चानुलुप्तवर्णक्रममुदारधीः ॥ स निशम्य गुरोर्वाक्यं दृष्ट्वा तं च पुनः पुनः ॥ ४ ॥ गृहीतकार्मुकः पित्रोः प्रणिपत्य सगौरवम् ॥ प्रत्युवाचापराद्धा मे सुभृशं पन्नगाः पितः ॥ ५ ॥ शासतीमां मयि महीं परिभूय बलं मम ॥ सप्ताश्रममुपागम्य दष्टा मुनिकुमारकाः ॥ ६ ॥ ऋषीणामाश्रमस्थानाममीषामवनीपते ॥ मयि शासति दुर्वृत्तैर्दूषितानि हवींषि च ॥ ७ ॥ जलाशयास्तथाप्येतैः सर्व एव हि दूषिताः ॥ तदेत्कारणं किञ्चिन्न वक्तव्यं त्वया पितः ॥ न निवारयितव्योऽहं ब्रह्मघ्नान्प्रतिपन्नगान् ॥ ८ ॥ अवीक्षिदुवाच ॥ यद्येभिर्निहता विप्रा यास्यन्ति नरकं मृताः ॥ ममैतत्क्रियतां वाक्यं विरमास्त्रप्रयोगतः ॥ ९ ॥

यह पन्नगगण मेरे अत्यन्त अपराधी हैं ॥ ५ ॥ मेरे शासनकालमें मेरे बलकी अवज्ञा करके इन्होंने आश्रममें आय सात मुनिकुमारोंको काटा है ॥ ६ ॥ और हे अवनीपति! मेरे शासनकालमें इन दुर्वृत्त सर्पगणोंने इन समस्त आश्रमवासी ऋषियोंको हवि और समस्त जलाशयोंको दूषित किया है ॥ ७ ॥ अतएव हे पिता! आप इनके संबंधमें कुछ न कहें और ब्रह्मघाती पन्नगोंके निधनकार्यमें निवारण भी न करें ॥ ८ ॥ अवीक्षितने कहा—यदि इन्होंने ब्रह्महत्या करी हो तो मृत्युके उपरान्त नरकको प्राप्त होंगे, तुम अस्त्रप्रयोगसे विरत होकर मेरे वचनकी रक्षा करो ॥ ९ ॥

मरुत्तने कहा–यदि इन पापियोंके निग्रहमें यत्न न करूँ, तो मैंही नरकगामी हूँगा, अतएव हे पिता ! मुझको निवारण न कीजिये मैं इन दुष्ट अपराधियोंको क्षमा नहीं करूंगा ॥ १० ॥ अवीक्षितने कहा–यह पन्नगगण मेरी शरणमें आये हैं, इस कारण हे नृप ! मेरे गौरवकी रक्षाके लिये तुम क्रोध रोककर अस्त्र-संहार करो ॥ ११ ॥ मरुत्तने कहा–मैं इन दुष्ट अपराधियोंको क्षमा नहीं करूंगा अपना धर्म उल्लंघन करके किस प्रकार आपके वचनकी रक्षा करूं ? ॥ १२ ॥ दण्डनीय पुरुषोंको दण्डप्रदान और शिष्ट पुरुषोंका पालन करके राजा समस्त पुण्य लोकोंको प्राप्त होते हैं, किन्तु इसमें उपेक्षा करनेसेही नरकगामी होते

मरुत्त उवाच ॥ नाहमेषां क्षमिष्यामि दुष्टानामपराधिनाम् ॥ अहमेव गमिष्यामि नरकं यदि पापिनाम् ॥ न निग्रहे यताम्येषां मां निवारय मा पितः ॥ १० ॥ अविक्षिदुवाच ॥ मामेते शरणं प्राप्ताः पन्नगा मम गौरवात् ॥ उपसंह्रियतामस्त्रमलं कोपेन ते नृप ॥ ११ ॥ मरुत्त उवाच ॥ नाहमेषां क्षमिष्यामि दुष्टानामपराधिनाम् ॥ स्वधर्ममुल्लंघ्य कथं करिष्यामि वचस्तव ॥ १२ ॥ दण्ड्ये निपातयन्दण्डं भूपः शिष्टांश्च पालयन् ॥ पुण्यलोकानवाप्नोति नरकांश्चाप्युपेक्षणात् ॥ १३॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं स बहुशः पित्रा वार्यमाणोऽन्वया सह ॥ नोपसंहरते सोऽस्त्रं ततोऽसौ पुनरब्रवीत् ॥ १४ ॥ हिंससे पन्नगान्भीतान्ममैताञ्छरणं गतान् ॥ वार्यमाणोऽपि तस्मात्ते करिष्यामि प्रतिक्रियाम् ॥ १५ ॥ मयाप्यस्त्राण्यवाप्तानि न त्वमेकोऽस्त्रविद्भुवि ॥ ममाग्रतः सुदुर्वृत्तपौरुषं च कियत्तव ॥ १६ ॥ ततः कार्मुकमारोप्य कोपताम्रविलोचनः ॥ अविक्षिदस्त्रं जग्राह कालस्य मुनिपुङ्गव ॥ १७ ॥

हैं ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–पिताके इस प्रकार वारंवार निषेध करनेपर भी जब पुत्र मरुत्तने अस्त्रसंहार नहीं किया, तब अवीक्षितने फिर उनसे कहा ॥ १४ ॥ यह पन्नगगण भीत होकर मेरी शरणमें आये हैं, इस कारण मेरे वारंवार निवारण करनेपर भी तुम इनकी हिंसा करते हो, अतएव मैं इसका प्रतिकार करूंगा ॥ १५ ॥ भूमण्डलमें केवल एक मात्र तुम्हीं अस्त्रवेत्ता नहीं हो, मैंने भी अनेक अस्त्रलाभ किये हैं हे दुर्वृत्त ! मेरे सन्मुख तेरा पौरुष कुछ नहीं है ॥ १६ ॥ हे मुनिपुंगव ! अवीक्षितने इस वचनके पीछे क्रोधसे ताम्रलोचन हो, धनुषपर रोदा चढाय कालास्त्र ग्रहण किया ॥ १७ ॥

और ज्वालापरिवृत, शत्रुविनाशक महावीर्य वह उत्तम कालास्त्र धनुषपर चढाया ॥ १८ ॥ हे विप्र ! मरुत्तके संवर्त्तकास्त्रसे तापित पर्वत समुद्रयुक्त संपूर्ण जगत् इस समय कालास्त्रके छुटनेसे क्षुब्ध होगया ॥१९॥ मरुत्तने भी उस चढाये हुए कालास्त्रको देखकर उच्चस्वरसे कहा—मेरा संवर्त्तके अस्त्र दुष्टोंकी शान्तिविधानके लिये उद्यत हुआ है ॥ २० ॥ तुम्हारे वधके लिये नहीं है, तो फिर सत्यथावलम्बी और सर्वदा अपनी आज्ञा प्रतिपालन करनेवाले पुत्रके प्रति आप किस किस निमित्त कालास्त्र त्याग करते हैं ? ॥ २१ ॥ हे महाभाग ! प्रजाका पालन करना ही मेरा कर्त्तव्य है, आप मेरे विनाशार्थ क्यों इस प्रकार अस्त्र उद्यत करते हो ? ॥ २२ ॥ अवीक्षितने कहा—मैं शरणागत पुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये कृतसंकल्प हूं, तुम उस कार्यमें बाधा करते

ततो ज्वालापरीवारमरिसंघघ्नमुत्तमम् ॥ कालास्त्रं तु महावीर्यं योजयामास कार्मुके ॥ १८ ॥ ततश्चुक्षोभ जगती संवर्त्तास्त्रप्रतापिता ॥ साब्धिशैलाऽखिला विप्र कालस्यास्त्रे समुद्यते ॥१९॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कालास्त्रमुद्यतं पित्रा मरुत्तः सोऽपि वीक्ष्य तत् ॥ प्राहोच्चैरस्त्रमेतन्मे दुष्टशास्तिसमुद्यतम् ॥ २० ॥ न त्वद्वधाय कालास्त्रं मयि मुंचति किं भवान् ॥ स्वधर्मचारिणि सुते सदैवाज्ञाकरे तव ॥ २१ ॥ मया कार्यं महाभाग प्रजानां परिपालनम् ॥ त्वयैवं क्रियते कस्मान्मद्वधायास्त्रमुद्यतम् ॥ २२ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ शरणागतसंत्राणं कर्तुं व्यवसिता वयम् ॥ तस्य व्याघातकर्त्ता त्वं न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ॥२३॥ मां वा हत्वास्त्रवीर्येण जहि दुष्टानिहोरगान्॥ त्वां वा हत्वाऽहमस्त्रेण रक्षिष्यामि महोरगान् ॥२४॥ धिक्तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमागतम् ॥ योनार्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् ॥२५॥ क्षत्रियोऽहमिमे भीताः शरणं मामुपागताः ॥ अपकर्त्ता त्वमेवैषां कथं वध्यो न मे भवान् ॥ २६ ॥

हो, इस कारण तुम जीवित रहते मेरे निकटसे रक्षा नहीं पासकोगे ॥ २३ ॥ इस समय या तो तुम्हीं अस्त्रबलसे मुझको विनाश करके दुष्ट उरगकुलका वध करो अथवा मैंही तुमको अस्त्रकी सहायतासे मारकर सर्पोंकी रक्षा करूंगा ॥ २४ ॥ शत्रुपक्षी मनुष्यके भी आर्त्त होकर शरणमें आनेपर जो मनुष्य उसकी रक्षा नहीं करता उस मनुष्यके जीवनको धिक्कार है ॥ २५॥ मैं क्षत्रिय हूं इन्होंने भीत होकर मेरी शरण ग्रहण की है और तुम्हीं इनके अपकारी हो अतएव फिर किस निमित्त तुम मेरे द्वारा वधके योग्य नहीं हो ? ॥ २६ ॥

मरुत्तने कहा-मित्र, बांधव, पिता अथवा गुरु जो प्रजापालनमें विघ्नकारी हो, वह अवश्यही राजाके द्वारा वध होनेके योग्य है ॥ २७ ॥ इस कारण हे पिता ! मैं आपपर प्रहार करूंगा किन्तु आप इससे क्रोध न कीजिये स्वधर्मका पालन करनाही मेरा उद्देश्य है आपके ऊपर मेरा क्रोध नहीं है ॥ २८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-उन दोनोंकोही परस्परके वध करनेमें कृतनिश्चय देखकर भार्गवादि मुनियोंने शीघ्र आय दोनोंके मध्यमें खडे हो ॥ २९ ॥ मरुत्तसे कहा-पिताके ऊपर अस्त्र चलाना तुमको उचित नहीं है और अवीक्षितसे कहा-तुमकोभी इस विख्यात कर्मा पुत्रका विनाश नहीं करना चाहिये ॥ ३० ॥ मरुत्तने कहा- हे द्विजगण ! मैं राजा हूं दुष्टोंका हनन और शिष्टपुरुषोंका पालन करना मेरा सम्यक् प्रकार कर्त्तव्य है, यह भुजंगगण भी दुष्ट हैं, अतएव इस

मरुत्त उवाच ॥ मित्रं वा बान्धवो वाऽपि पिता वा यदि वा गुरुः ॥ प्रजापालनविघ्नाय यो हन्तव्यः स भूभृता ॥ २७ ॥ सोऽहं ते प्रहरिष्यामि न क्रोद्धव्यं त्वया पितः ॥ स्वधर्मः परिपाल्यो मे न मे क्रोधस्तवोपरि ॥ २८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततस्तौ निश्चितौ दृष्ट्वा परस्परवधं प्रति ॥ समुत्पत्यान्तरे तस्थुर्मुनयो भार्गवादयः ॥ २९ ॥ ऊचुश्चैनं न मोक्तव्यं त्वयास्त्रं पितरं प्रति ॥ त्वया च नायं हन्तव्यः पुत्रः प्रख्यातचेष्टितः ॥ ३० ॥ मरुत्त उवाच ॥ मया दुष्टा निहन्तव्याः सन्तो रक्ष्या महीक्षिता ॥ इमे च दुष्टा भुजगाः कोऽपराधोऽत्र मे द्विजाः ॥ ३१ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ शरणागतसन्त्राणं मया कार्यमयं च मे ॥ अपराध्यः सुतो विप्रा यो हन्ति शरणागतान् ॥ ३२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ इमे वदन्ति भुजगास्त्रासलोलविलोचनाः ॥ संजीवयामस्तान्विप्रान्ये दष्टा दुष्टपन्नगैः ॥ ३३ ॥ तदलं विग्रहेणोभौ राजवर्यौ प्रसीदताम् ॥ उभावपि विनिर्व्यूढप्रतिज्ञे धर्मकोविदौ ॥ ३४ ॥

विषयमें मेरा क्या अपराध है ? ॥ ३१ ॥ अवीक्षितने कहा हे विप्रगण ! शरणागतपुरुषोंकी रक्षा करना ही मेरा कर्त्तव्य है, जो पुत्र मेरे उन शरणागतजनोंको नष्ट करता है वह मेरा अपराधी है ॥ ३२ ॥ ऋषियोंने कहा-डरसे चंचलनेत्र हो भुजङ्गगण कहते हैं जिन ब्राह्मणोंको दुष्ट पन्नगगणोंने डसा है, हम उनको जीवित करते हैं ॥ ३३ ॥ अतएव अब युद्धकी आवश्यकता नहीं है, प्रसन्न हूजिये, आप दोनों ही राजश्रेष्ठ और दोनों ही जिस प्रकार धर्मवेत्ता हैं, इसी प्रकार प्रतिज्ञापालक हैं ॥ ३४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—इसी समयमें वीराने वहां उपस्थित होकर पुत्र अवीक्षितसे कहा—मेरे वचनानुसार ही तुम्हारा पुत्र सर्पोंके विनाश करनेमें उद्यत हुआ था ॥ ३५ ॥ और जब मरेहुये ब्राह्मण जीवित होते हैं तब वह कार्य संपन्नभी होगया है अतएव तुम्हारे यह शरणागत भी मुक्त हुए ॥ ३६ ॥ भामिनीने कहा पातालवासी इन सब सर्पोंने पूर्वमें मुझसे इस प्रकार अभय प्रार्थना कीथी, इसी कारण मैंने भर्त्ताको इस विषयमें अनुरोध किया है ॥ ३७ ॥ इस समय मेरे स्वामी और पुत्रका एवं तुम्हारे पुत्र और पौत्रका यह कार्य सुन्दर रीतिसे ही सम्पन्न हुआहै ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-अनन्तर सर्पोंने दिव्य औषधियोंके द्वारा विष हरण करके उन ब्राह्मणोंको जीवित कर दिया ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त महीपति मरुत्तने भी मातापिताके चरणोंमें प्रणाम

मार्कण्डेय उवाच ॥ सा तु वीरा समभ्येत्य पुत्रमेतदभाषत ॥ मद्वाक्यादेष ते पुत्रो हन्तुं नागान्कृतोद्यमः ॥ ३५ ॥ तन्निष्पन्नं यदा विप्रास्ते जीवन्ति तथा मृताः ॥ संजीवन्तश्च मुच्यंते यद्युष्मच्छरणं गताः ॥ ३६ ॥ भामिन्युवाच ॥ अहमभ्यर्थिता पूर्वमेभिः पातालसं-श्रयैः ॥ तन्निमित्तमयं भर्त्ता मयात्र विनियोजितः ॥ ३७ ॥ तदेतदार्यैं निर्वृत्तमुभयोरपि शोभनम् ॥ मम भर्तुश्च पुत्रस्य त्वत्पौत्रस्यात्म-जस्य च ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः संजीवयामासुस्तान्विप्रांस्ते भुजङ्गमाः ॥ दिव्यैरोषधिजातैश्च विषसंहरणेन च ॥ ३९ ॥ पित्रोर्ननाम चरणौ स ततो जगतीपतिः ॥ मरुत्तश्च स तं प्रीत्या परिष्वज्येदमब्रवीत् ॥४०॥ मानहा भव शत्रूणां चिरं पालय मेदिनीम् ॥ पुत्रपौत्रैश्च मोदस्व मा च ते सन्तु विद्विषः ॥ ४१ ॥ ततो द्विजैरनुज्ञातौ वीरया च नरेश्वरौ ॥ समारूढौ रथं सा च भामिनी स्वपुरं गता ॥ ४२ ॥ वीराऽपि कृत्वा सुमहत्तपो धर्मभृतां वरा ॥ भर्तुः सलोकतां प्राप्ता महाभागा पतिव्रता ॥ ४३ ॥

किया और अवीक्षितने भी मरुत्तको प्रीतिसहित आलिंगन करक इस प्रकार आशीर्वादवचन कहे ॥ ४० ॥ "शत्रुओंके मान नष्ट करनेवाले होओ । सदा पृथ्वी पालन करो । पुत्रपौत्रके सहित सुखपूर्वक समय बिताओ । और तुम्हारे शत्रु विनाशको प्राप्त हो" ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त ब्राह्मणगण और वीराकी आज्ञा ग्रहण कर दोनों राजा और भामिनी रथपर चढकर अपने नगरमें चलेगये ॥ ४२ ॥ तत्पश्चात् धार्मिकश्रेष्ठ महाभाग्यवती पतिव्रता वीरा महातपस्या-चरण करके स्वामीके सालोक्यको प्राप्त हुई ॥ ४३ ॥

राजा मरुत्तने भी छहों शत्रु पराजित करके धर्मानुसार पृथ्वीपालन और नानाप्रकारके भोगसुख अनुभव किये ॥ ४४ ॥ विदर्भकन्या महाभागी प्रभावती, सुवीरकी कन्या सौवीरी ॥ ४५ ॥ मगधेश्वर केतुवीर्यकी कन्या सुकेशा, मद्रराज सिन्धुवीर्यकी कन्या, केकयकी दुहिता केकयी ॥ ४६ ॥ सिन्धुराजकी पुत्री सैन्धवी और चेदिराजकी कन्या वपुष्मती, यह सुन्दरी ललना उनकी भार्या थीं ॥ ४७ ॥ हे द्विज ! इन सब भार्याओंके गर्भसे राजाके अठारह पुत्र उत्पन्न हुए थे उनमें "नरिष्यन्त" नामक पुत्रही ज्येष्ठ प्रधान थे ॥ ४८॥ महाराज महाबलवान् मरुत्त ऐसे वीर्यवान् थे। सात द्वीपोंमें उनका चक्र

मरुत्तोऽपि चकारोर्व्यां धर्मतः परिपालनम् ॥ विनिर्जितारिषड्वर्गो भोगांश्च बुभुजे नृपः ॥४४॥ तस्य पत्नी महाभागा विदर्भतनया तथा ॥ प्रभावती सुवीरस्य सौवीरी चाभवत्सुता ॥ ४५ ॥ सुकेशी केतुवीर्यस्य मागधस्यात्मजाऽभवत् ॥ सुता च सिन्धुवीर्यस्य मद्रराजस्य केकयी ॥ ४६ ॥ केकयस्य च सैरन्ध्री सिन्धुभर्तुर्वपुष्मती ॥ चेदिराजसुता चाभूद्भार्या तस्य सुशोभना ॥ ४७ ॥ तासां पुत्रास्तस्य चासन्भूभृतोऽष्टादश द्विज ॥ तेषां प्रधानो ज्येष्ठश्च नरिष्यंतः सुतोऽभवत् ॥ ४८ ॥ एवंवीर्यो मरुत्तोऽभून्महाराजो महाबलः ॥ तस्याप्रतिहतं चक्रमासीद्द्वीपेषु सप्तसु ॥ ४९ ॥ यस्य तुल्योऽपरो राजा न भूतो न भविष्यति ॥ सत्त्वविक्रमयुक्तस्य राजर्षेरमितौजसः ॥५०॥ तस्यैतच्चरितं श्रुत्वा मरुत्तस्य महात्मनः ॥ जन्म चाग्र्यं द्विजश्रेष्ठ मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरितेऽष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ मरुत्तचरितं कृत्स्नं भगवन्कथितं त्वया ॥ तत्संततिमशेषेण श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते ॥ १ ॥

अप्रतिहत था ॥ ४९ ॥ बलविक्रमशाली अमिततेजा जिन राजर्षिके समान और कोई राजा आविर्भूत नहीं हुआ और होगा भी नहीं ॥ ५० ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उन महात्मा मरुत्तके यह चरित्र सुनने पर संपूर्ण पापोंसे मुक्ति और मृत्युके पीछे श्रेष्ठ जन्म प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे मरुत्तचरिते भाषाटीकायामष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ क्रौष्टुकिने कहा-हे भगवन् ! आपने मरुत्तचरित्र संपूर्ण वर्णन किया । अब उनकी सन्ततिका समस्त वृत्तान्त सुननेकी इच्छा हुई है ॥ १ ॥

हे महामुने! उनकी सन्तानमें जो पृथ्वीपति राज्ययोग्य और वीर्यशाली थे आपके मुखसे उन्हींका वृत्तान्त सुननेकी इच्छा करताहूं ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–मरुत्तके अठारह पुत्रोंमें नरिष्यन्तही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ थे ॥ ३ ॥ क्षत्रियश्रेष्ठ मरुत्तने सत्तरसहस्र पन्द्रह वर्ष संपूर्ण पृथ्वी भोग करी थी ॥ ४ ॥ वह धर्मानुसार राज्यशासन और उत्तमोत्तम यज्ञानुष्ठानपूर्वक पुत्र नरिष्यन्तको राज्याभिषिक्त कर अन्तमें वनको चलेगये ॥ ५ ॥ हे विप्र ! इसके उपरान्त राजा मरुत्तने वनमें एकाग्रचित्तसे महा तपस्या करके स्वर्गलोक मृत्युलोक यशसे पूर्ण कर स्वर्गारोहण किया ॥ ६ ॥ उनके पुत्र बुद्धिमान् नरिष्यन्तने पिता

तत्संततौ क्षितीशा ये राज्यार्हा वीर्यशालिनः ॥ तानहं श्रोतुमिच्छामि त्वया ख्यातान्महामुने ॥ २ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ नरिष्यंत इति ख्यातो मरुत्तस्याभवत्सुतः अष्टादशानां पुत्राणां स ज्येष्ठः श्रेष्ठ एव च ॥ ३ ॥ वर्षाणां च सहस्राणि सप्ततिं दश पंच च ॥ बुभुजे पृथिवीं कृत्स्नां मरुत्तः क्षत्रियर्षभः ॥४॥ कृत्वा राज्यं स्वधर्मेण इष्ट्वा यज्ञाननुत्तमान् ॥ नरिष्यंतसुतं ज्येष्ठमभिषिच्य ययौ वनम् ॥५॥ एकाग्रचित्तः स नृपस्तप्त्वा तत्र तपो महत् ॥ आरुरोह दिवं विप्र यशसावृत्य रोदसी ॥ ६ ॥ नरिष्यंतः सुतः सोऽस्य चिंतयामास बुद्धिमान् ॥ पितुर्वृत्तं समालोक्य तथान्येषां च भूभृताम् ॥७॥ अत्र वंशे महात्मानो राजानो मम पूर्वजाः ॥ यज्विनो धर्मतः पृथ्वीं पालयामासुरूर्जिताः ॥८॥ दातारश्चापि वित्तानां संग्रामेष्वनिवर्तिनः ॥ तेषां कश्चरितं शक्तस्त्वनुयातुं महात्मनाम् ॥९ ॥ किन्तु तैर्यत्कृतं कर्म धर्म्यमाहवनादिभिः ॥ तदहं कर्तुमिच्छामि तच्च नास्ति करोमि किम् ॥ १० ॥ धर्मात्पालयतः पृथ्वीं को गुणोऽत्र महीपतेः ॥ असम्यक्पालनात्पापी नरेन्द्रो नरकं व्रजेत् ॥ ११ ॥

और अन्यान्य राजाओंका व्यवहार देखकर विचार किया ॥ ७ ॥ कि इस वंशमें मेरे सब पूर्वपुरुष महात्मा राजागण यज्ञानुष्ठान करनेवाले प्रबल पराक्रमी, धनदाता और संग्राममें अपराङ्मुख अर्थात् विमुख नहीं थे और सबनेही धर्मानुसार पृथ्वीका पालन किया है उन महात्माओंके चरित्रका अनुकरण करनेमें कौन समर्थ होगा ? ॥ ८ ॥ ९ ॥ उन्होंने आहवनादिद्वारा जो धर्मकार्य संपन्न किये मैं वही करनेकी इच्छा करताहूं किन्तु वहभी तो अकृत नहीं हैं अतएव मैं क्या करूं ॥ १० ॥ यदि राजा धर्मानुसार पृथ्वीका पालन करे तो इसमें राजाका गुण क्या है ? वह उसके गुणमें परिगणित

नहीं है, क्योंकि सम्यक् प्रकार पृथ्वीपालन न करनेसे नरेन्द्र पापभागी होकर नरकमें जाते हैं ॥ ११ ॥ धन होनेपर राजाको महायज्ञ संपादन और दान करना चाहिये। किन्तु इसमें भी फिर विचित्रता क्या है। इस प्रकार राजाके अवसन्न होनेपर ईश्वर ही उसको एक मात्र गति है ॥ १२ ॥ राजाके स्वधर्ममें रहनेसेही वह जातिश्रेष्ठता लज्जा शत्रुके प्रति कोप और युद्धसे पलायन नहीं करता है ॥ १३ ॥ यह समस्त कार्य मेरे पूर्वपुरुषगण और पिता मरुत्तने जिस प्रकार संपादन किये हैं दूसरा और कौन उस प्रकार करनेमें समर्थ होगा ॥ १४॥ मेरे सब पूर्वपुरुषगण श्रेष्ठ यज्ञ करनेवाले दाता दमगुणशाली संग्राममें अपराङ्मुख ॥ १५॥ और महासंग्राम उपस्थित होने पर शत्रुओंके निकट पराक्रम प्रकाश करनेवाले थे मैं इस समय ऐसा क्या कार्य करूं, जो उन्होंने

सति वित्ते महायज्ञाः कर्तव्या एव भूभृता ॥ दातव्यं चात्र किं चित्रं सीदतामीश्वरो गतिः ॥ १२ ॥ आभिजात्यं तथा लज्जा कोपश्चारिजनाश्रयः ॥ कारयंति स्वधर्मश्च संग्रामादपलायनम् ॥ १३ ॥ एतत्सर्वं यथा सम्यङ्मत्पूर्वैः पुरुषैः कृतम् ॥ पित्रा च मे मरुत्तेन तथा तत्केन शक्यते ॥ १४ ॥ तदहं किं करिष्यामि यत्तु तैः पूर्वजैः कृतम् ॥ ये यज्विनो वरा दांताः संग्रामाद्यानिवर्तिनः ॥ १५ ॥ महत्संग्रामसंमर्देष्वविसंवादिपौरुषाः ॥ क्रमेणाहं यतिष्यामि कस्मै तानभिसंधितुम् ॥ १६ ॥ अथवा तैः स्वयं यज्ञाः कृताः पूर्वजनेश्वरैः ॥ अविश्रमाद्भिर्नान्यैस्तु कारितास्तत्करोम्यहम् ॥ १७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति संचिंत्य यज्ञं स चकारैकं नरेश्वरः ॥ यादृशं न चकारान्यो वित्तोत्सर्गोपशोभितम्॥ १८ ॥ द्विजानां जीवनायालं दत्त्वा तु सुमहाधनम् ॥ ततः शतगुणं तेषां यज्ञार्थमददान्नृपः ॥ १९ ॥ गावो वस्त्राण्यलंकारं धान्यागारादिकं तथा ॥ प्रत्येकमददात्तेषां सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥ २० ॥

नहीं किया है। अतएव मैं कर्मद्वारा निष्काम कर्मका अनुष्ठान करूंगा ॥ १६ ॥ अथवा मेरे पूर्वपुरुषोंने स्वयंही अविरत यज्ञ किये थे, अपर किसीको भी वह नहीं कराये, मैं उन्हींका अनुष्ठान करूंगा ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—नरेश्वरने इस प्रकार चिन्ता करके विपुल धन दान कर एक यज्ञ किया, वैसा यज्ञ पहिले अन्य कोई नहीं कर सका था ॥ १८ ॥ उन्होंने उस यज्ञमें ब्राह्मणोंको जीविका निर्वाहके लिये बहुत धन दिया उसकी अपेक्षा शतगुण अन्न दान किया था ॥ १९ ॥ पृथ्वीवासी ब्राह्मणोंमें प्रत्येकको ही उन्होंने गाय, वस्त्र, अलंकार, धान्य, गृह इत्यादि बहुत दिये थे ॥ २० ॥

उसके पीछे जब राजाने फिर यज्ञका अनुष्ठान किया, तब फिर याजक करनेके लिये कोई ब्राह्मण प्राप्त नहीं हुआ ॥ २१ ॥ जिस जिस ब्राह्मणकोही उन्होंने ऋत्विक्कार्यमें वरण करना चाहा, उसीने कहा, मैं यज्ञके लिये अन्यत्र दीक्षित हुआहूं ॥ २२ ॥ आप अन्यको वरण कीजिये । हे नृपते ! आपने यज्ञकालमें दान करके हमको जितना धन दिया है हमारे अनेकोंके यज्ञोंमें भी वह निःशेष नहीं हुआ ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-संपूर्ण पृथ्वीके ईश्वर होकर भी जब उन्होंने ऋत्विक् करनेके लिये किसी ब्राह्मणको नहीं पाया तब बहिर्वेदीमें दान करनेका यत्न किया ॥ २४ ॥ किन्तु तो भी धनपूर्ण गृहका ब्राह्मणोंने दान ग्रहण नहीं किया । जब राजा ब्राह्मणोंको दान करनेके निमित्त प्रवृत्त हो, उसमें विफलश्रम हुए अर्थात् ब्राह्मणोंके दान नहीं लेनेसे उनका

ततस्तेन यदा यज्ञः प्रारब्धो भूभुजा पुनः ॥ प्रारब्धे स मखे यष्टुं ततो नालभत द्विजान् ॥ २१ ॥ यान्यान्वृणोति स नृपो विप्रानार्त्विज्यकर्मणि ॥ ते ते तमूचुर्यज्ञाय वयमप्यत्र दीक्षिताः ॥ २२ ॥ अन्यं वरय यद्वित्तं त्वयास्माकं विसर्जितम् ॥ तस्यांतो नास्ति यज्ञेषु दद्यास्त्वं नृपते कथम् ॥२३॥ मार्कण्डेय उवाच॥ न चाप ऋत्विजो विप्रांस्तदाशेषक्षितीश्वरः ॥ बहिर्वेद्यां तदा दानं स दातुमुपचक्रमे ॥२४॥ तथापि जगृहुर्नैव धनसंपूर्णमंदिराः ॥ द्विजाय दातुं भूयोऽसौ निर्विण्ण इदमब्रवीत् ॥ २५ ॥ अहोऽतिशोभनं पृथ्व्यां यद्विप्रो नाधनः क्वचित् ॥अशोभनं च यत्कोशो विफलोयमयज्विनः ॥२६॥ नार्त्विज्यं कुरुते कश्चिद्यजमानोऽखिलो जनः ॥ द्विजानां न च नो दानं ददतां संप्रतीच्छते॥२७॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः कांश्चिद्द्विजान्भक्त्या प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥ स्वयज्ञे ऋत्विजश्चक्रे ते प्रचक्रुर्महामखम् ॥२८॥

श्रम व्यर्थ हुआ, तब वह अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगे ॥ २५ ॥ कि अहो ! पृथ्वीके किसी स्थानमें इस समय निर्धन ब्राह्मण नहीं है यह अवश्यही सुखका विषय है, किन्तु यज्ञके विना मेरा राजकोष विफल होता है, यह अत्यन्त कष्टका कारण है ॥ २६ ॥ ब्राह्मणोंमें इस समय सबही स्वयं यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, इस कारण कोई ऋत्विक् होनेमें सम्मत नहीं है और वह स्वयं ही दान करते हैं, अत एव मेरा दिया दान ग्रहण नहीं करते ॥ २७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-अनन्तर वारंवार भक्तिसहित प्रणामपूर्वक कई ब्राह्मणोंको उन्होंने अपने यज्ञमें ऋत्विक् किया और उन्हीं ब्राह्मणोंने वह महायज्ञ संपादन किया ॥ २८ ॥

यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात हुई थी कि, जब राजाका वह महायज्ञ आरंभ हुआ, तब पृथ्वीके मध्य ब्राह्मणोंमें सबही स्वयं यजमान हुए थे ॥ २९ ॥ सुतरां उस यज्ञमें कोई सभासद नहीं हुआ। तब ब्राह्मणोंमें कोई स्वयं यजमान हुआ था और कोई उसका याजक हुआ था ॥ ३० ॥ राजा नरिष्यन्तने जिस समय यज्ञ किया था, तब उनके दिये धनद्वाराही पृथ्वीमें ब्राह्मणगण अनेक यज्ञ करनमें प्रवृत्त हुए थे हे मुने! महाराज नरिष्यन्त जब यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए थे तब पूर्व दिशामें अठारह करोडसे भी अधिक यज्ञ संपादित हुए थे। और पश्चिम दिशामें सात करोड दक्षिण दिशामें चौदह करोड ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और उत्तरदिशामें पचास कोटि यज्ञ हुए। ब्राह्मणोंके यह समस्त यज्ञ एकही समयमें संपादित हुए थे ॥ ३३ ॥ हे विप्र! पूर्वकालमें

अत्यद्भुतमिदं चासीद्यदा तस्य महीपतेः ॥ स यज्ञोऽभूत्तदा पृथ्व्यां यजमानोऽखिलो जनः ॥ २९ ॥ द्विजन्मनामभून्नासीत्सदस्यस्तत्र कश्चन ॥ यजमाना द्विजाः केचित्केचित्तेषां तु याजकाः ॥ ३० ॥ नरिष्यंतो नरपतिरियाज स यदा तदा ॥ तत्प्रदातुर्धनैर्यागं कुर्युः पृथ्व्यामशेषतः ॥ ३१ ॥ प्राच्यां कोटयस्तु यज्ञानामासन्नष्टादशाधिकाः ॥ प्रतीच्यां सप्त वै कोटयो दक्षिणस्यां चतुर्दश ॥ ३२ ॥ उत्तरस्यां च पंचाशदेककालं तदाभवन् ॥ मुने ब्राह्मणयज्ञानां नरिष्यंतो यदाऽयजत् ॥ ३३ ॥ एवं स राजा धर्मात्मा नरिष्यंतोऽभवत्पुरा ॥ मरुत्ततनयो विप्र विख्यातबलपौरुषः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे नरिष्यंतचरितं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ नरिष्यंतस्य तनयो दुर्धारिदमनो दमः ॥ शक्रस्येव बलं तस्य दयाशीलं मुनेरिव ॥ १ ॥ बाभ्रव्यामिंद्रसेनायां स जज्ञे तस्य भूभृतः ॥ नववर्षाणि जठरे स्थित्वा मातुर्महायशाः ॥ २ ॥

मरुत्तके पुत्र विख्यातबल पौरुष राजा नरिष्यन्त ऐसे धर्मात्मा थे ॥ ३४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां नरिष्यन्तचरितं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-नरिष्यन्तके पुत्र दम हुए। वह दुर्वृत्त शत्रुओंको दमन करते थे उनका इन्द्रकी समान बल और मुनिके समान दया और शीलता थी ॥ १ ॥ दमने बभ्रुकी कन्या इन्द्रसेनाके गर्भसे नरिष्यन्तके डरसे जन्मग्रहण किया। यह महायशा नौ वर्ष माताके जठरमें स्थित रहे थे ॥ २ ॥

इन राजपुत्रके इस प्रकार जठरमें रहनेके समय इनकी माताको दम गुण (इन्द्रियनिग्रह) अवलम्बन करना पडा था और यह राजपुत्र स्वयं भी दमशीलही होंगे ॥ ३॥ ऐसा देखकर त्रिकालज्ञ राजपुरोहितोंने उन नरिष्यंतके पुत्रका नाम दम रक्खा । राजपुत्र दमने नरराज वृषपर्वाके निकटसे संपूर्ण धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण करी ॥ ४ ॥ ५ ॥ और तपोवननिवासी दैत्यश्रेष्ठ दुन्दुभिके निकटसे सब अस्त्रग्राम प्रयोग और संहारके सहित ग्रहण किये ॥ ६ ॥ उन्होंने शक्ति मुनिके निकटसे संपूर्ण वेद वेदाङ्ग और आत्मवान् होकर आर्ष्टिषेणके निकट योगशिक्षा ग्रहण करी थी ॥ ७ ॥ दशार्णाधिपति महाबल चारुकर्माकी कन्या सुमनाने पिताके द्वारा स्वयंवरमें नियोजित होकर अपनी अभिलाषासे आये हुए संपूर्ण राजाओंके सामनेही महाबली

यद्राहयामास दम मातरं जठरे स्थितः ॥ दमशीलश्च भविता यतश्चायं नपात्मजः ॥ ३ ॥ ततस्त्रिकालविज्ञानः स हि तस्य पुरोहितः ॥ दम इत्यकरोन्नाम नरिष्यंतसुतस्य तु ॥ ४ ॥ स दत्तो राजपुत्रस्तु धनुर्वेदमशेषतः ॥ जगृहे सुरराजस्य सकाशाद्वृषपर्वणः ॥५॥ दुन्दुभेर्दैत्यवर्यस्य तपोवनानिवासिनः ॥ सकाशाज्जगृहे कृत्स्नमस्त्रग्रामं च तत्त्वतः ॥६॥ शक्तेः सकाशाद्वेदाश्च वेदाङ्गान्यखिलानि च ॥ तथार्ष्टिषेणाद्राजर्षेर्जगृहे योगमात्मवान् ॥ ७ ॥ तं सुरूपं महात्मानं गृहीतास्त्रं महाबलम् ॥ स्वयंवरे कृता पित्रा जगृहे सुमना पतिम् ॥ ८ ॥ सुता दशार्णाधिपतेर्बलिनश्चारुवर्मणः ॥ पश्यतां सर्वभूतानां ये तदर्थमुपागताः ॥९॥ तस्यां च सानुरागोऽभून्मद्रराजस्य वै सुतः ॥ सुमनायां महानन्दो महाबलपराक्रमः ॥ १० ॥ तथा विदर्भाधिपतेः पुत्रः संक्रन्दनस्य च ॥ वपुष्मान्राजपुत्रश्च महाधनुरुदारधीः ॥ ११ ॥ ते तदा तं वृतं दृष्ट्वा दुष्टारिदमनं दमम् ॥ मन्त्रयामासुरन्योऽन्यं तत्रानङ्गविमोहिताः ॥ १२ ॥ एतामस्य बलात्कन्यां गृहीत्वा रूपशालिनीम् ॥ गृहं प्रयामस्तस्येयमस्माकं यं ग्रहीष्याति ॥ १३ ॥

अस्त्रधारी अपने अनुरूप महात्मा दमको पतित्वमें वरण किया था ॥ ८ ॥ ९ ॥ मद्रराजके पुत्र महाबलवान् महानन्द विदर्भाधिपति संक्रन्दनके पुत्र वपुष्मान् और महाधनु नामक उदारचेता राजपुत्र उस सुमनाके प्रति अनुरागी हुए थे ॥ १० ॥ ११ ॥ दुष्ट वैरियोंको दमन करनेवाले, उन दमको राजकन्याने वरण किया । यह देखकर वह कामबाणसे मोहितचित्त हो परस्पर इस प्रकार परामर्श करने लगे ॥ १२ ॥ हम इस रूपशालिनी कन्याको इसके निकटसे बलपूर्वक ग्रहण करके घरको जायँगे ॥ १३ ॥

इसके पीछे यह वरारोहा स्वयंवरके विधानानुसार हममें जिसको इच्छानुसार स्वामिबुद्धिसे ग्रहण करे, यह कन्या उसीकी धर्मोपपादिता भार्या होगी ॥ १४ ॥ और यदि यह मदिरेक्षणा हममेंसे किसीको भी अपनी इच्छानुसार ग्रहण न करे तो जो दमको मारडाले, यह कन्या उसीकी भार्या होगी ॥ १५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उन तीन राजपुत्रोंने इस प्रकार निश्चय करके दमके पार्श्ववर्त्ती उस सुन्दरीको ग्रहण किया ॥ १६ ॥ उस अवसरमें दमकी ओरके कितनेही राजा उनकी निन्दा और भर्त्सना करने लगे और अपर कितनेही राजा क्रोधमें भरगये तथा अन्य किसीने मध्यस्थता अवलम्बन करी ॥ १७ ॥

भर्तृबुद्ध्या वरारोहा स्वयंवरविधानतः ॥ तस्येच्छया नो भवित्री भार्या धर्मोपपादिता ॥ १४ ॥ अथ नेच्छति सा कञ्चिदस्माकं मदिरेक्षणा ॥ ततस्तस्य भवित्री सा यो दम घातयिष्यति ॥ १५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति ते निश्चयं कृत्वा त्रयः पार्थिवनन्दनाः ॥ जगृहुस्तां सुचार्वङ्गीं दमपार्श्वानुवर्त्तिनीम् ॥ १६ ॥ ततः केचिन्नृपास्तेषां ये तत्पक्षा विचुक्रुशुः ॥ चुक्रुशुश्चापरे भूपाः केचिन्मध्यस्थतां गताः ॥ १७ ॥ ततो दमस्तान्भूपालानवलोक्य समन्ततः ॥ अनाकुलमना वाक्यमिदमाह महामुने ॥ १८ ॥ दम उवाच ॥ भो भूपा धर्मकृत्येषु यद्वदन्ति स्वयंवरम् ॥ दशार्णपतिना भूपाः कृते धर्म्ये स्वयंवरे ॥ अधर्मो वाऽथ वा धर्मो यदेभिर्गृह्यते बलात् ॥ १९ ॥ यद्यधर्मो न मे कार्यमन्यभार्या भविष्यति ॥ धर्मो वा तदलं प्राणैर्यै रक्ष्यंतेऽरिलंघने ॥ २० ॥ ततो दशार्णाधिपतिश्चारुवर्मा नराधिपः ॥ निःशब्दं कारयित्वा तत्सदः प्राह महामुने ॥ २१ ॥

हे महामुने! इसके उपरान्त दम उन सब राजाओंको चारों ओर स्थित देखकर अनाकुलचित्तसे कहने लगे ॥ १८ ॥ दमने कहा—हे भूपालगण! स्वयंवरको जो सब धर्मकार्यमें गिनते हैं, वास्तवमें वह अधर्म है वा धर्म है? इन्होंने जो इस स्वयंवरमें प्राप्त हुई कन्याको बलपूर्वक ग्रहण किया है ॥ १९ ॥ यदि स्वयंवर अधर्ममें गिना जाय तो इससे मेरा कार्य नहीं है, यह अन्यकी भार्या हो और यदि उसको आप धर्म कहकर निश्चय करते हैं, तो इस शत्रुलांछित प्राण धारणकी क्या आवश्यकता है? ॥ २० ॥ हे महामुने! अनन्तर दशार्णाधिपति महाराज चारुकर्माने सभास्थल निःशब्द कराकर कहा ॥ २१ ॥

हे नृपगण ! दमने धर्माधर्मके संबंधमें जो बात उठाई है, आप लोग इसके संबंधमें ऐसी सम्मति प्रकाश कीजिये जिससे आपका धर्मलोप न हो ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तब कितने ही महीपाल उन राजासे कहने लगे परस्परके अनुरागसे गांधर्वविवाह संपन्न होता है ॥ २३ ॥ यह विवाह क्षत्रियोंके पक्षमेंभी श्रेष्ठ है. ब्राह्मण वैश्य वा शूद्रके पक्षमें नहीं है, दमके संगही आपकी इस कन्याका गांधर्व विवाह संपन्न हुआ है ॥ २४ ॥ अतएव हे पार्थिव ! आपकी कन्या उक्त धर्मानुसार दमकी ही भार्या हुई है । जो कामात्मा हैं, वही मोहके वश होकर इसके विरोधी होते हैं ॥ २५ ॥ हे विप्र ! इसके उपरान्त विपक्ष राजाओंकी ओर जो भूपाल थे, वह सब महात्मा दशार्णाधिपतिसे इस प्रकार कहने लगे ॥ २६ ॥ यह मोहके वश होकर क्या कहते हैं, यह

दमेन यदिदं प्रोक्तं धर्माधर्माश्रितं नृपाः ॥ तद्वदध्वं यथा धमा ममास्य च न लुप्यते ॥ २२॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततः केचिन्महीपालास्तमूचुर्वसुधाधिपम् ॥ परस्परानुरागेण गान्धर्वो विहितो विधिः ॥ २३ ॥ क्षत्रियाणां परमयं न विट्शूद्रद्विजन्मनाम् ॥ दममाश्रित्य निष्पन्नः स चास्या दुहितुस्तव ॥ २४ ॥ इति धर्मादमस्यैषा दुहिता तव पार्थिव ॥ योऽन्यथा वर्त्तते मोहात्कामात्मा संप्रवर्त्तते ॥ २५ ॥ तथाऽपरे तदा प्रोचुर्महात्मानो हि भूभृताम् ॥ पक्षे ये भूभृतो विप्र दशार्णाधिपतिं वचः॥२६॥ मोहात्किमाहुर्धर्मोऽयं गान्धर्वं क्षत्रजन्मनः ॥ न त्वेष शास्ता नान्यो हि राक्षसः शस्त्रजीविनाम् ॥ २७ ॥ बलादिमां यो हराति हत्वा तु परिपन्थिनः ॥ तस्यैषा स्याद्राक्षसेन विवाहेनावनीश्वराः ॥ २८ ॥ प्रधानतर एषोऽत्र विवाहाद्वितये मतः ॥ क्षत्रियाणामतो धमा महानन्दादिभिः कृतः ॥ २९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अथ प्रोचुः पुनर्भूपा यैः पूर्वमुदितो नृपः ॥ परस्परानुरागेण जातिधर्माश्रितं वचः ॥ ३० ॥

गांधर्व विवाह क्षत्रियके पक्षमें तो प्रशस्त हैही नहीं इसके अतिरिक्त अन्य विवाहभी प्रशस्त नहीं हैं शस्त्रजीवियोंका एकमात्र राक्षसविवाह ही प्रशस्त है ॥ २७॥ हे अवनीश्वरगण ! जो पुरुष विपक्षका विनाश करके बलात्कारसे इस कन्याको ग्रहण करसकेगा राक्षसविवाहके विधानानुसार यह पत्नी उसीको प्राप्त होगी ॥ २८॥ क्षत्रियोंके संबंधमें इन दोनों विवाहके मध्य जब राक्षसविवाहही प्रधान है तब महानन्द इत्यादि राजपुत्रोंने धर्मव्यवहार ही किया है ॥ २९॥ मार्कण्डेयजी बोले—जिन्होंने पहिले राजाओंके सामने परस्परानुराग और जातिधर्मविषयक वचन कहे थे, वह सब राजा फिर कहने लगे ॥ ३० ॥

सत्य है. क्षत्रियोंके पक्षमें राक्षसविवाह प्रशस्त और श्रेष्ठ विधि है. किन्तु इस राजकन्याने पिताके अधीन रहकर कुमारी अवस्थामें दमको वरा है ॥ ३१ ॥ पितृपक्षको हत और आहत करके यदि कन्या हरण करीजाय उसीको राक्षस विवाह कहते हैं, किन्तु पतिके हस्तगत कन्याको हरण करनेसे वह राक्षस विवाह नहीं होगा ॥ ३२ ॥ सब राजाओंके देखते हुए जब इस सुमनाने दमकोही वरा है, तो यह विवाह गान्धर्वविधानसे संपन्न हुआ है, इसमें फिर राक्षस विधि क्या है ? ॥ ३३ ॥ विवाहिता कन्याका कन्यात्व नहीं रहता हे नृपतिगण ! विवाहके संगही कन्याका संबंध जानना चाहिये ॥ ३४ ॥ जो दमके हाथसे इसको बलपूर्वक ग्रहण करनेमें उद्यत हुए हैं वह बलके गौरवसे ऐसा करसकते हैं, किन्तु यह सत्कार्य नहीं है ॥ ३५ ॥ मार्कण्डेयजी

सत्यं शस्तो राक्षसोऽपि क्षत्रियाणां परो विधिः ॥ किन्त्वसौ जनकस्वाम्ये कुमार्यानुमतो वरः ॥ ३१ ॥ हत्वा तु पितृसम्बन्धं बलेन ह्रियते हि या ॥ स राक्षसो विधिः प्रोक्तो नात्र भर्तृकरे स्थिता ॥ ३२ ॥ पश्यतां सर्वभूपानामनया यद्वृतो दमः ॥ गान्धर्वस्येह निष्पत्तौ विवाहो राक्षसोऽत्र कः ॥ ३३ ॥ विवाहितायाः कन्यायाः कन्यात्वं नैव विद्यते ॥ कन्यायाश्च विवाहेन सम्बन्धः पृथिवीश्वराः ॥ ३४ ॥ त इमे ये बलादेनां दमादादातुमुद्यताः ॥ बलिनस्ते यदि ततः कुर्वन्तु न तु साधु तत् ॥ ३५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तच्छ्रुत्वाऽसौ दमः कोपकषायीकृतलोचनः ॥ आरोपयामासधनुर्वचनं चेदमब्रवीत् ॥३६॥ ममापि भार्या बलिभिः पश्यतो ह्रियते यदि ॥ तत्कुलेन भुजाभ्यां वा को गुणः क्लीबजन्मनः ॥३७॥ धिङ्ममास्त्राणि धिक्छौर्यं धिक्छरान्धिक्छरासनम् ॥ धिग्व्यर्थं मे कुले जन्म मरुत्तस्य महात्मनः ॥३८॥ यदि भार्यामिमे मूढाः समादाय बलान्विताः ॥ प्रयान्ति जीवतो धिक्तां मम व्यर्थमनुष्यताम् ॥ ३९ ॥

बोले–दमने यह वचन सुनकर कोपसे लाल नेत्रकरके धनुष्पर ज्यारोपणपूर्वक कहा ॥ ३६ ॥ मेरे देखते हुए बलवान् यदि बलात्कारसे मेरी भार्याको हरण करते हैं, तब तो मैंने क्लीब (नपुंसक) होकरही जन्मग्रहण किया है फिर मेरे कुलगौरव और दोनों भुजामें ही क्या गुण रहा ॥ ३७ ॥ यदि मेरे जीवित रहते यह मूढ बलयुक्त होकर मेरी भार्या हरण करके चले जांय तो मेरे सब अस्त्र, शौर्य शरसमूह और शरासनको धिक्कार है और महात्मा मरुत्तके वंशमें मेरे जन्मग्रहण व्यर्थ तथा मेरी व्यर्थ मनुष्यताको भी धिक्कार है ॥ ३८ ॥

बलवान् महाशत्रुदमनकारी दमने यह बात कहकर फिर महानन्द इत्यादि सब राजाओंसे कहा ॥ ४० ॥ हे सन्मानित भूपालो ! " यह अत्यन्तमनोहर मदिरेक्षणा सत्कुलोत्पन्न सुन्दरी बालिका जिसकी भार्या नहीं हुई, उसका जन्महो वृथा है" ॥ ४१ ॥ तुम इस प्रकार विचारकर जिससे मुझको पराजयपूर्वक इसको पत्नी करसकोगे संग्राममें वैसाही यत्न करो ॥ ४२ ॥ दम यह कहकर उस काल अन्धकारद्वारा वृक्षराजिके समान राजाओंको आच्छादन करके बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४३ ॥ उन सब महावीर राजाओंने भी शर, शक्ति, ऋष्टि और मुद्गर इत्यादि परित्याग किये, किन्तु दमने लीलापूर्वकही उन सब अस्त्रोंको काट डाला ॥ ४४ ॥ हे मुने ! उस समय वह महीपालगण दमके छोडे अस्त्र और नरिष्यन्तपुत्र दमभी उनके समस्त अस्त्र छेदन

इत्युक्त्वा तान्महीपालान्महानन्दमुखान्बली ॥ अथाब्रवीत्तदा सर्वान्महारिदमनो दमः ॥ ४० ॥ एषाति शोभना बाला चार्वङ्गी मदिरेक्षणा ॥ किं तस्य जन्मना भार्या न यस्येयं कुलोद्भवा ॥ ४१ ॥ इति सञ्चिन्त्य भूपालास्तथा यतत संयुगे ॥ यथा निर्जित्य मामेतां पत्नीं कुरुत मानिनः ॥ ४२ ॥ इत्याभाष्य ततस्तत्र शरवर्षममुंचत ॥ छादयन्पृथिवीपालांस्तमसेव महीरुहान् ॥ ४३ ॥ तेऽपि वीरा महीपालाः शरशक्त्यृष्टिमुद्गरान् ॥ मुमुचुस्तत्प्रयुक्तांश्च दमश्चिच्छेद लीलया ॥ ४४ ॥ तेऽपि तत्प्रहितान्बाणांस्तेषां चासौ शरोत्करान् ॥ चिच्छेद पृथिवीशानां नरिष्यन्तात्मजो मुने ॥ ४५ ॥ वर्त्तमाने तदा युद्धे दमस्य क्षितिपात्मजैः ॥ प्रविवेश महानन्दः खड्गपाणिर्यतो दमः ॥ ४६ ॥ तमायान्तं दमो दृष्ट्वा खड्गपाणिं महामृधे ॥ मुमोच शरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः ॥ ४७ ॥ तदस्त्राणि ततस्तानि शरजालानि तत्क्षणात् ॥ महानन्दः प्रचिच्छेद खड्गेनान्यानवंचयत् ॥ ४८ ॥

करने लगे ॥ ४५ ॥ राजपुत्रोंके सहित दमका इस प्रकार युद्ध हो रहा था इसी अवसरमें खड्ग हाथमें लिये महानन्द दमके सन्मुख आया ॥ ४६ ॥ दमने उस महा युद्धस्थलमें खड्गपाणि उसको आयाहुआ देखकर इन्द्र जिस प्रकार जलकी वर्षा करते हैं, इसी प्रकार बाणोंकी वर्षा आरम्भ करी ॥ ४७ ॥ महानन्दने तत्काल खड्गद्वारा उनके अस्त्रसमूह और शरजालको छेदन किया । हाथकी लाघवतासे यह कार्य इतनी शीघ्र संपन्न किया कि अन्यान्य राजा उसको देख भी नहीं सके ॥ ४८ ॥

अनन्तर महावीर्यवान् महानन्द क्रोधमें भराहुआ दमके रथपर चढकर उनके संग युद्ध करने लगा ॥ ४९ ॥ महानन्दके बहुत काल पर्यन्त युद्ध करनेपर फिर दमने अत्यन्त लघुहस्तसे उसके हृदयमें कालाग्निकी समान प्रभायुक्त बाण छोडा ॥ ५० ॥ महानन्दने हृदयमें लगे हुए उस बाणको स्वयंही हृदयसे निकालकर विभिन्न हृदयसेही दमके ऊपर उज्ज्वल असि चलाई ॥ ५१ ॥ दमने उस उल्काकी समान असिके गिरते गिरतेही शक्तिद्वारा छेदन करके तत्काल वेतसपत्र बाणसे महानन्दका मस्तक काट डाला ॥ ५२ ॥ महानन्दके मरतेही अधिकांश राजा युद्धसे पराङ्मुख हुए, केवल कुण्डिनाधिपति वपुष्मान् स्थिति करने लगा ॥ ५३॥ वह दाक्षिणात्य भूपालतनय बलके गर्वसे मत्त वपुष्मान् रणका आश्रय लेकर दमके सहित युद्ध करने लगा ॥ ५४॥

ततो रोषात्समारुह्य तं दमस्य तदा रथम् ॥ महानन्दो महावीर्यो दमेन युयुधे सह ॥ ४९ ॥ बहुधा युध्यमानस्य महानन्दस्य लाघवात् ॥ दमो मुमोच हृदये शरं कालानलप्रभम् ॥ ५० ॥ तं लग्नमात्मनोत्कृष्य विभिन्नेन ततो हृदा ॥ दमं प्रति विचिक्षेप महानन्दोऽसिमुज्ज्वलम् ॥ ५१ ॥ पतन्तं चैनमुल्काभं शक्त्या चिक्षेप तं दमः ॥ शिरो वेतसपत्रेण महानन्दस्य चाच्छिनत् ॥ ५२ ॥ तस्मिन्हते महानन्दे प्राचुर्येण पराङ्मुखाः ॥ बभूवुः पार्थिवास्तस्थौ वपुष्मान्कुण्डिनाधिपः ॥५३ ॥ दमेन युयुधे चासौ बलगर्वमदान्वितः ॥ दाक्षिणात्यमहीपालतनयो रणगोचरः ॥५४॥ युध्यमानस्य तस्योग्रं करवालं स वै लघु ॥ चिच्छेद सारथेश्चैव शिरः संख्ये तथा ध्वजम् ॥५५॥ छिन्नखड्गो गदां सोऽथ जग्राह बहुकण्टकाम् ॥ तामप्यस्य स चिच्छेद करस्थामेव सत्वरः ॥५६॥ यावदन्यत्समादत्ते स वपुष्मान्वरायुधम् ॥ तावच्छरेण तं विद्ध्वा दमो भूमावपातयत् ॥५७॥ स पातितस्ततो भूमौ विह्वलाङ्गः सवेपथुः ॥ विनिवृत्तमतिर्युद्धाद्बभूव क्षितिपात्मजः ॥५८॥

रणस्थलमें दमने तत्काल उस युद्ध करतेहुए वपुष्मान्की उग्र तलवार व सारथीका मस्तक और ध्वजा काट डाली ॥५५॥ तब वपुष्मान्ने खड्गके कट जाने पर बहुत कांटोंसे युक्त गदा ग्रहण करी, किन्तु दमने यह गदा उसके हाथमें रहते रहतेही काट डाली ॥ ५६ ॥ फिर वपुष्मान्ने अन्य उत्कृष्ट अस्त्र ग्रहण किया, परन्तु दमने उसको उसी समय बाणोंसे विद्ध करके भूमिमें गिरादिया ॥ ५७ ॥ राजपुत्र वपुष्मान्ने भूमिमें गिर विह्वलाङ्ग और कम्पितकलेवर होनेसे युद्धकी इच्छा छोडदी ॥ ५८ ॥

मनस्वी दमने उसको इस अवस्था और युद्धमें अनिच्छुक देखकर छोडदिया और सुमनाको लेकर प्रसन्नचित्तसे चले गये ॥ ५९ ॥ अनन्तर दशार्णाधिप-
तिने प्रसन्नचित्तसे दम और सुमनाका विवाहकार्य विधिपूर्वक संपादन किया ॥ ६० ॥ दम स्त्री ग्रहण कर दशार्णाधिपतिके पुरमें कुछ काल रहे और फिर
भार्याके सहित अपने घरको चलेगये ॥ ६१ ॥ दशार्णाधिपतिने उस समय अनेक हाथी, घोडे, रथ, गौ, खर, ऊंट, दास, दासी ॥६२॥ वस्त्र, अलंकार,
धनुष इत्यादि अनेक प्रकारकी बहुमूल्य सामग्री यौतुकरूपसे दानपूर्वक धन रत्नादि पूर्ण करके उनको बिदा किया ॥ ६३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दम-

तमालोक्य तथा भूतमयुद्धमतिमात्मवान् ॥ उत्सृज्यादाय सुमनां सुमनाः प्रययौ दमः ॥ ५९ ॥ ततो दशार्णाधिपतिः प्रीतिमानकरो-
त्तयोः ॥ दमस्य सुमनायाश्च विवाहं विधिपूर्वकम् ॥ ६० ॥ कृतदारो दमस्तत्र दशार्णाधिपतेः पुरे ॥ स्थित्वाऽल्पकालं प्रययौ सभार्यो
निजमन्दिरम् ॥ ६१ ॥ दशार्णाधिपतिश्चासौ दत्त्वा नागांस्तुरङ्गमान् ॥ रथगोऽश्वखरोष्ट्रांश्च दासीदासांस्तथा बहून् ॥ ६२ ॥ वस्त्रालङ्कार-
चापादिवरोपस्करमासनम् ॥ अन्यैस्तैश्च तथा भाण्डैः परिपूर्णं व्यसर्जयत् ॥ ६३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते त्रिंशदधिकशत-
तमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ स तां लब्ध्वा तथा पत्नीं सुमनां सुमहामुने ॥ प्रणम्य स पितुः पादौ मातुश्च क्षितिपा-
त्मजः ॥ १ ॥ सा च तौ श्वशुरौ सुभ्रूर्ननाम सुमना तदा ॥ ताभ्यां तौ च तदा विप्र आशीर्भिरभिनन्दितौ ॥ २ ॥ महोत्सवश्च संजज्ञे
नरिष्यन्तस्य वै पुरे ॥ कृतदारे च संप्राप्ते दशार्णाधिपतेः पुरात् ॥ ३ ॥ सम्बन्धिनं दशार्णेशं जितांश्च पृथिवीश्वरान् ॥ श्रुत्वा पुत्रेण
मुमुदे नरिष्यन्तो महीपतिः ॥ ४ ॥

चरिते भाषाटीकायां त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ मार्कण्डेयजी बोले-हे महामुने ! क्षितिपालनंदन दमने सुमनाको पत्नीरूपमे लाभ कर फिर
माता पिताके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ १ ॥ और सुन्दरी सुमनाने भी सास और श्वशुरको प्रणाम किया । हे विप्र ! तब उन्होंने भी दोनोंको आशीर्वाद
वचनोंके द्वारा अभिनन्दन किया ॥ २ ॥ जब स्त्री ग्रहण करके दम दशार्णाधिपतिके पुरसे आगये, तब नरिष्यन्तके पुरमें महोत्सव आरंभ हुआ ॥ ३ ॥
महीपति नरिष्यन्त दशार्णेश्वरके सहित वैवाहिक संबंध और पुत्रके द्वारा अनेक राजाओंके हारनेका संवाद सुनकर परमसंतोषको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥

इसके उपरान्त राजपुत्र दम विचित्र उद्यान वनप्रदेश प्रासाद और पर्वत इत्यादि स्थानोंमें सुमनाके संग विहार करनेलगे ॥ ५ ॥ दमके संग इस प्रकार विहार करते करते कुछ काल पीछे दशार्णराजाकी कन्या सुमनाने गर्भ धारण किया ॥ ६ ॥ इसी समय राजा नरिष्यन्त भोगसमूह उपभोगपूर्वक वयसकी परिणति अवस्था अर्थात् वृद्धावस्था देख दमको राज्यमें अभिषिक्त कर ॥७॥ यशस्विनी पत्नी इन्द्रसेनाके सहित वनमें चलेगये और वहां वानप्रस्थ विधानानुसार वास करनेलगे ॥८ ॥ एक समय दुराचार दाक्षिणात्य राजा संक्रन्दनका पुत्र वपुष्मान् अल्प अनुगामी मनुष्योंके सहित उस वनमें मृगयाके लिये

सोऽपि रेमे सुमनया महाराजसुतो दमः ॥ वरोद्यानवनोद्देशे प्रासादगिरिसानुषु ॥ ५ ॥ अथ कालेन महता रममाणा दमेन सा ॥ अवाप गर्भं सुमना दशार्णाधिपतेः सुता ॥६॥ सोऽपि राजा नरिष्यन्तो भुक्तभोगो महीपतिः ॥ वयःपरिणतिं प्राप्य दमं राज्येऽभिषिच्य च ॥७॥ वनं जगामेंद्रसेना पत्नी चास्य तपस्विनी ॥ वानप्रस्थविधानेन स तत्र समतिष्ठत ॥ ८ ॥ दाक्षिणात्यः सुदुर्वृत्तः संक्रन्दनसुतो वने ॥ वपुष्मान्स मृगान्हन्तुं ययावल्पपदानुगः ॥९॥ स तं दृष्ट्वा नरिष्यन्तं तापसं मलपङ्किनम् ॥ इन्द्रसेनां च तत्पत्नीं तपसातिसुदुर्बलाम् ॥१०॥ पप्रच्छ कस्त्वं भो विप्रः क्षत्रियो वा वनेचरः ॥ वानप्रस्थमनुप्राप्तो वैश्यो वा मम कथ्यताम् ॥ ११ ॥ ततो मौनव्रती भूपो नहि तस्योत्तरं ददौ ॥ इन्द्रसेना च तत्सर्वमाचष्टास्मै यथातथम् ॥ १२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ज्ञात्वा तं च नरिष्यन्तं वपुष्मान्पितरं रिपोः ॥ प्राप्तोऽसीति वदन्कोपाज्जटासु परिगृह्य च ॥ १३ ॥

उपस्थित हुआ ॥९॥ वहां मैलसे युक्त शरीरवाले तपस्वी नरिष्यन्त और उनकी पत्नी तपसे दुबले अंग हुई इन्द्रसेनाको देखकर ॥१०॥ पूछा कि, तुम कौन हो ? ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य, कौन जाति तुम वानप्रस्थ अवलम्बन करके वनवासी हुए हो ? सो मुझसे कहो ॥ ११ ॥ राजा मौनव्रत होनेसे इस बातका उत्तर नहीं देसके, किन्तु इन्द्रसेनाने उससे सब वृत्तान्त यथावत् कहदिया ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–उनको शत्रुका पिता नरिष्यन्त जानकर वपुष्मान्ने “पाया है” शब्द उच्चारणपूर्वक क्रोधसे उनकी जटा पकडली ॥ १३ ॥

उस काल इन्द्रसेना हाहाकार शब्द और बाष्पगद्गद स्वरसे रोनेलगी । तब दुराचारीने उसी समय म्यानसे तलवार खैंचकर कहा ॥ १४ ॥ "जिसने मुझको समरमें परास्त किया था जो मेरी सुमनाको हरकर लेगया है, आज उस दमके पिताको नष्ट करता हूं, दम आनकर रक्षा करै ॥ १५ ॥ कन्याके अर्थ आये हुए सब राजपुत्रोंको जिसने अपमानित किया है, उस दुर्मति दमके पिताका आज मैं वध करताहूं ॥ १६ ॥ जो दुरात्मा स्वभावसे ही योद्धाओंको दमन करनेवाला है, आज उसी शत्रुके पिताको निहत करताहूं, दम आनकर निवारण करै" ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—यह कहकर दुरात्मा राजा वपुष्मा-नूने रोतीहुई इन्द्रसेनाके सामनेही नरिष्यन्तका शिर काटडाला ॥ १८ ॥ तब मुनिगण और अपरापर वनवासी सब उसको धिक्कार देनेलगे फिर वह भी

हाहेति चन्द्रसेनायां रुदंत्यां बाष्पगद्गदम् ॥ चकर्ष कोपात्खङ्गं च वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १४ ॥ निर्जितः समरे येन येन मे सुमना हृता ॥ दमस्य तस्य पितरं हनिष्येऽवतु तं दमः ॥ १५ ॥ येनाखिलमहीपालपुत्राः कन्यार्थमागताः ॥ अवधूता हनिष्येऽहं पितरं तस्य दुर्मतेः ॥ १६ ॥ यौवनाद्यस्वरूपेषु मदो यस्य दुरात्मनः ॥ स दमो वारयत्वेष हन्मि तस्या रिपोर्गुरुम् ॥ १७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्त्वा स दुराचारो वपुष्मानवनीपतिः ॥ क्रंदन्त्यामिन्द्रसेनायां शिरश्चिच्छेद तस्य च ॥ १८ ॥ ततो धिग्धिङ्मुनिजना अन्ये च वन-वासिनः ॥ तमूचुः स च तं हत्वा जगाम स्वपुरं वनात् ॥ १९ ॥ गते तस्मिन्विनिश्वस्य सेन्द्रसेना वपुष्मति ॥ प्रेषयामास पुत्रस्य समीपं शूद्रतापसम् ॥ २० ॥ गच्छेथा आशु मे पुत्रं दमं ब्रूहि वचो मम ॥ अभिज्ञो ह्यसि मद्भर्तृवृत्तान्तं प्रोच्यतेऽत्र किम् ॥ २१ ॥ तथापि वाच्यः पुत्रो मे यद्ब्रवीम्यतिदुःखिता ॥ लंघनामीदृशीं प्राप्तां विलोक्यैतां महीपतेः ॥ २२ ॥

नरिष्यन्तको इस अवस्थामें देखकर वनसे अपने पुरमें चलागया ॥ १९ ॥ वपुष्मान्के चले जानेपर इन्द्रसेनाने लम्बे श्वास छोडकर एक शूद्रतापसको पुत्रके पास भेजा ॥ २० ॥ उससे कह दिया कि, तुम शीघ्र जाकर हमारे पुत्र दमसे हमारा वृत्तान्त कहो । तुम मेरे स्वामीका वृत्तान्त समस्तही जान-तेहो । अतएव तुमसे और इस विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ २१ ॥ किन्तु तो भी महीपतिका उपस्थित ऐसा अपमान देखनेसे अत्यन्त दुःखित होकर मैं जो कहतीहूं मेरे पुत्रसे वह सब कहो ॥ २२ ॥

भा० पु०
॥३६९॥

तुम राजा हो, तुम चारो आश्रमोंके प्रतिपालक भर्त्ता नियुक्त हुए हो, किन्तु तुम जो तपस्वीलोगोंकी रक्षा नहीं करते, यह क्या तुमको उचित है? ॥ २३ ॥ मेरे स्वामी नरिष्यन्त तपस्वी होकर तपस्या करते थे। किन्तु तुम रक्षा कर्त्ताके वर्तमान होते भी अनाथकी समान विना अपराध उनके केश खैंचकर मेरे विलाप करते करते वपुष्मान्ने उनको मार डाला है। तुम्हारे संबंधमें यह हुआ कि, तुमने राजा होकर इस प्रकार ख्याति लाभ करी ॥ २४ ॥ २५ ॥ इस अवस्थामें जिससे धर्मलोप न हो उसीके उपयुक्त कार्य करो। मैं तापसी हूं, इससे अधिक और मुझको कहना उचित नहीं है ॥ २६ ॥ तुम्हारे पिता एक तो वृद्ध थे, इसपर भी तपस्वी और फिर वह किसी अपराधमें अपराधी भी नहीं थे ऐसी अवस्थामें जो उनका वध किया है, अब इसके संबंधमें जो

मद्भर्त्राऽधिकृतो राजा चतुर्णां परिपालकः ॥ त्वमाश्रमाणां किं युक्तं तापसान्यन्न रक्षसि ॥ २३ ॥ भर्ता मम नरिष्यन्तस्तापसस्तपसि स्थितः ॥ विलपन्त्यास्तथा नाथो यथा नास्ति तथा त्वयि ॥२४॥ आकृष्य केशेषु बलादपराधं विना ततः ॥ हतो वपुष्मता ख्यातिमिति ते भूपतिर्गता ॥२५॥ एवं स्थिते तत्क्रियतां यथा धर्मो न लुप्यते ॥ तथा च नैव वक्तव्यं माताहं तापसी यतः ॥२६॥ पिता वृद्धस्तपस्वी च नापराधेन दूषितः ॥ निहतो येन यत्तस्य कर्तव्यं तद्विचिन्त्यताम् ॥ २७ ॥ सन्ति ते मन्त्रिणो वीराः सर्वशास्त्रार्थवेदिनः ॥ तैः सहालोच्य यत्कार्यमेवंभूते कुरुष्व तत् ॥२८॥ नास्माकमधिकारोऽत्र तापसानां नराधिप ॥ कुरुष्वैतदितीत्थं त्वमेवं भूपतिभाषितम् ॥२९॥ विदूरथस्य जनको यवनेन यथा हतः ॥ तथायं तव पुत्रस्य कुलं तेन विनाशितम् ॥ ३० ॥ जम्भस्यासुरराजस्य पिता दष्टो भुजङ्गमैः ॥ तेनाप्यखिलपातालवासिनः पन्नगा हताः ॥ ३१ ॥

भा० टी०
अ० १३१

कर्त्तव्य हो, उस विषयकी भली भाँति चिन्ता करो ॥ २७॥ तुम्हारे शास्त्रवेत्ता वीरमंत्री विद्यमान हैं उनसे परामर्श करके इस अवस्थामें जो कर्तव्य हो, वह करो ॥ २८ ॥ हे नराधिप! तुम्हारे पिता महाराज नरिष्यन्तने मृत्युके समय कहा है कि, "मैं तापस हूं, इन विषयमें मेरा कुछ अधिकार नहीं है तुम्हीं इसका प्रतिकार करना" ॥ २९ ॥ विदूरथके पिता जिस प्रकार यवनके द्वारा निहत हुएथे उसी प्रकार हे पुत्र! तुम्हारे पिताकाभी वध करके वपुष्मान्ने तुम्हारे कुलको नष्ट किया है ॥३०॥ असुरराज जम्भके पिताको जब सर्पोंने काटा था, तब जंभने संपूर्ण पातालवासी पन्नगोंको निहत किया था ॥३१॥

और राक्षसके द्वारा पिता शक्तिको निहत हुआ सुनकर पराशरने संपूर्ण राक्षसकुलको अग्निमें पातित अर्थात् दग्ध किया था ॥ ३२ ॥ अपने वंशके अन्य किसीका अपमान होनेपर क्षत्रिय जब उसको भी सहन नहीं करसकते; तो फिर पिताके वधकी बात क्या कहूं ? ॥ ३३ ॥ मेरे विचारसे तुम्हारे पिता निहत नहीं हुए हैं, उनके प्रति शस्त्रपातभी नहीं हुआ है इसमें तुम्ही निहत हुए हो और तुम्हारे ऊपरही शस्त्र निपतित हुआ है ॥ ३४ ॥ जो व्यक्ति वनवासियोंके ऊपर शस्त्र चलाता है उसका कौन भय करता है और उसका पौरुष क्या है ? वह पापी है, तुम उनके पुत्र और राजा हो, तुम यदि शत्रुका विनाश करो तो सब तुमसे भय करेंगे । इसके अन्यथा होनेसे कोई भी तुमसे भय नहीं करेगा इस कारण तुम्हारे राज्यशासनमेंभी विघ्न होगा ॥ ३५ ॥

पराशरेण पितरं शक्तिं तं रक्षसाऽऽहतम् ॥ श्रुत्वाऽग्नौ पातितं कृत्स्नं रक्षसामभवत्कुलम् ॥ ३२॥ अन्यस्यापि स्ववंशस्य लंघना क्रियते हि या ॥ तां नालं क्षत्रियः सोढुं किं पुनः पितृमारणम् ॥३३॥ नायं पिता ते निहतो नास्मिञ्छस्त्रं निपातितम् ॥ त्वामत्र निहतं मन्ये त्वयि शस्त्रं निपातितम् ॥ ३४ ॥ बिभेत्यस्य हि कः शस्त्रं न्यस्तं येन वनौकसाम् ॥ तव नृपस्य पुत्रस्य मा बिभेतु बिभेतु वा ॥ ३५ ॥ तवेयं लंघनायुक्ता यदस्मिंस्तत्समाचर ॥ वपुष्मति महाराज सभृत्यज्ञातिबान्धवे ॥३६॥ मार्कंण्डेय उवाच ॥ इति संक्रान्तसन्देशामिन्द्रसेना विसृज्य तम् ॥ पतिदेहमुपाश्लिष्य विवेशाग्निं मनस्विनी ॥३७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥ मार्कंण्डेय उवाच ॥ इन्द्रसेनासमाज्ञप्तः स गत्वा शूद्रतापसः ॥ समाचष्ट यथापूर्वं दमाय निधनं पितुः ॥ १॥ तापसेन समाख्याते दमस्तेन पितुर्वधे ॥ क्रोधेनातीव जज्वाल हविषेवाग्निरुद्धतः ॥ २ ॥

यह अपमान तुम्हाराही हुआ है अतएव हे महाराज ! भृत्य ज्ञाति और बान्धवोंके सहित वपुष्मान्‌के संबंधमें जो कर्त्तव्य है वह करो ॥ ३६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—मनस्विनी इन्द्रसेनाने; तापससे यह सब बात कही और फिर उसको विदा दे पतिके देहको आलिंगनपूर्वक अनलमें प्रवेश किया ॥३७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते भाषाटीकायामेकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—शूद्रतापसने इन्द्रसेनाकी इस प्रकार आज्ञा पाय, दमके समीप जाय, उनके पिताकी मृत्युका संवाद और रानी इन्द्रसेनाने जिस प्रकार आज्ञा दी थी वह सब कहा ॥१॥ जब तापसने पिताके वध होनेका वृत्तान्त

आदिसे अंततक वर्णन किया तब राजा दम घृताहुतिसे उठीहुई अग्निके समान क्रोधसे जल उठे ॥ २ ॥ हे महामुने ! वह स्वभावसे धीर होनेपर भी उस काल क्रोधाग्निसे प्रज्वलित हो हाथसे हाथ मलकर कहने लगे ॥ ३ ॥ मुझ पुत्रके जीवित रहते वंशका अपमान करके नृशंसने मेरे पिताको अनाथकी समान वध किया है ॥ ४ ॥ मैं ताप करूं या नपुंसकतासे क्षमा करूं मैं दुष्टोंका दमन और शिष्ट पुरुषोंके पालन करनेमें नियुक्त हुआहूं ॥५॥ किन्तु पिताको निहत देखकर भी मेरे शत्रु अभीतक जीवित हैं, (सुतरां मैं नपुंसकके समान उनको क्षमा करता हूं, इस प्रकार जनापवाद अवश्य उपयुक्तही कहना चाहिये।) अतएव अधिक बातचीतका क्या प्रयोजन है अथवा 'हा तात ! ' इस भाँति विलाप करनेसेही क्या होगा ॥ ६ ॥ अब

स तु क्रोधाग्निना धीरे दह्यमानो महामुने ॥ करं करेण निष्पिष्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥ अनाथ इव मे तातो मयि पुत्रे तु जीवति ॥ घातितः सुनृशंसेन परिभूय कुलं मम ॥ ४ ॥ तापं करोम्यहं किंवाप्येष क्लैब्यात्क्षमाम्यहम् ॥ दुर्वृत्तशान्तौ शिष्टानां पालनेऽधिकृता वयम् ॥ ५ ॥ पितरं चापि निहतं दृष्ट्वा जीवन्ति शत्रवः ॥ तत्किमेतेन बहुना हा तातेति च किं पुनः ॥ ६ ॥ विलापेनात्र यत्कृत्यं तदेषोऽत्र करोम्यहम् ॥ यद्यहं तस्य रक्तेन देहोत्थेन वपुष्मतः ॥ न करोमि गुरोस्तृप्तिं तत्प्रवेक्ष्ये हुताशनम् ॥ ७ ॥ तच्छोणितेनोदककर्म तस्य मांसेन सम्यग्द्विजभोजनं च ॥ कुर्यां पितुस्तस्य च पिंडदानं न चेत्प्रवेक्ष्यामि हुताशनं तत् ॥ ८ ॥ साहाय्यमस्यासुरदेवयक्षगन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः ॥ कुर्वन्ति चेत्तानपि चास्त्रपूगैर्भस्मीकरोम्येष रुषा समेतः ॥ ९ ॥ निःशूरमाधार्मिकमप्रशस्तं तं दाक्षिणात्यं समरे निहत्य ॥ भोक्ष्ये ततोऽहं पृथिवीं च कृत्स्नां वह्निं प्रवेक्ष्याम्यनिहत्य तं वा ॥ १० ॥

जो कर्त्तव्य है, वह मैं करता हूं यदि मैं वपुष्मान्‌के देहसे निकले रक्तद्वारा पिताका तर्पण न करूं तो अनलमें प्रवेश करूंगा ॥७॥ यदि युद्धमें उसको मारकर उसके शोणितसे मृतपिताका उदक कर्म और मांसद्वारा (राक्षसकुलोत्पन्न) ब्राह्मणोंको भोजन न करासकूं और उसके मांससे पितरोंको पिंडदान न करूं, तो मैं अग्निमें प्रवेश करूंगा ॥ ८ ॥ असुर, देव, यक्ष, गंधर्व, विद्याधर और सिद्धगण भी यदि उसकी सहायता करैं तो तत्काल उनको भी मैं क्रोधसहित अस्त्राग्निद्वारा भस्म करूंगा ॥ ९ ॥ उस शौर्यहीन, अधार्मिक, निन्दित दाक्षिणात्यको समरमें निहत करके फिर मैं संपूर्ण पृथ्वीको भोग करूंगा अथवा उसके मारनेमें असमर्थ होकर अग्निमें प्रवेश करूंगा ॥ १० ॥

मेरे वनवासी मौनव्रती, तपोनिरत वृद्ध पिताके उद्विग्न होकर शान्तिवचन कहनेपर भी जिस दुर्मतिने उनका वध किया है, मैं अभी समस्त बंधु, मित्र, पदाति, हस्ती और सेनासहित उसको संहार करूँगा ॥ ११ ॥ मैं अब खड्ग और धनुषको ग्रहण कर, रथपर चढ शत्रुकी सेनामें उपस्थित हो, उनके जिस प्रकार संहारकार्यमें प्रवृत्त होता हूं, वह सब देवगण देखें ॥ १२ ॥ आज वह मेरे संग संग्राममें प्रवृत्त होनेपर जो जो उसका सहायक होगा, अपनी इन स्वीय बाहुरूप सेनाके द्वारा तत्काल उनका भी समस्त कुलक्षय करनेके लिये मैं उद्यत हुआ हूं ॥ १३ ॥ इस युद्धमें वज्रहस्त इन्द्र, क्रोधसहित उग्र दण्ड उद्यत करके यम, अथवा कुबेर वरुण और सूर्य भी यदि उसकी रक्षा करनेका यत्न करैं तो भी मैं शाणित श्रेष्ठ बाणोंके द्वारा उनका विनाश करूंगा ॥ १४ ॥

सुदुर्मतिं तापसवृद्धघातिनं वनस्थगं साधुविधिं विदग्धगम् ॥ हन्ताहमद्याखिलबन्धुमित्रपदातिहस्त्यश्वबलैः समेतम् ॥ ११ ॥ एषोऽहमादाय धनुः सखड्गो रथी तथैवारिबलं समेत्य ॥ करोमि वै यत्कदनं समस्ताः पश्यन्तु मे देवगणा समेताः ॥ १२ ॥ यो यः सहायो भविताद्य तस्य मया समेतस्य रणाय भूयः ॥ तस्यैव निःशेषकुलक्षयाय समुद्यतोऽहं निजबाहुसैन्यः ॥ १३ ॥ यदि कुलिशकरोऽस्मिन्संयुगे देवराजः पितृपतिरथ चोग्रं दण्डमुद्यस्य कोपात् ॥ धनपतिवरुणार्का रक्षितुं तं यतन्ते निशितशरवरौघैर्घातायिष्ये तथापि ॥१४॥ नियतमतिरदोषः काननाखण्डलोका निपतितफलभक्षः सर्वभूतेषु मैत्रः ॥ प्रभवति मयि पुत्रे हिंसितो येन तातः पिशितरुधिरतृप्तास्तस्य सन्त्वद्य गृध्राः ॥ १५ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे दमचरिते द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इति प्रतिज्ञाय तदा नरिष्यंतसुतो दमः ॥ कोपामर्षविवृत्ताक्षः श्मश्रुमावृत्य पाणिना ॥ १ ॥

मुझ प्रभावशाली पुत्रके वर्त्तमान रहतेभी जिसने मेरे संयतचित्त, निर्दोष, वनवासी, गिरेहुए फलमात्रसे जीविका निर्वाह करनेवाले और सर्व प्राणियोंमें मैत्रीपरायण पिताको वध किया है आज उसके मांस और रुधिरसे गृध्रकुल तृप्ति लाभ करै ॥ १५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते भाषाटीकायां द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२॥ मार्कण्डेयजी बोले—नरिष्यन्तपुत्र दमने इस प्रकार प्रतिज्ञा करके कोप और अमर्षमें भर घूर्णित नेत्रोंसे हाथसे श्मश्रु-आवरणपूर्वक मूछोंको चढाया ॥ १ ॥

"हा हतोस्मि" कहकर पिताकी चिन्ता और दैवकी निन्दा करनेलगे। इसके पीछे पुरोहितोंको बुलाकर सब मंत्रियोंके सामने कहा ॥ २ ॥ दम बोले-पिताजी स्वर्गमें चलेगये हैं, शूद्र तपस्वीने जो कहा वह आप जानही चुके हैं अब इस समय जो करना चाहिये, वह आप कहिये ॥ ३॥ सबके शासनकर्त्ता वह नृप वृद्धावस्थामें वानप्रस्थ व्रत अवलम्बनपूर्वक तपस्वी होकर मौनव्रती थे, वपुष्मानूके पूछनेपर मेरी माता इन्द्रसेनाने ॥ ४ ॥ वपुष्मानूको सब सत्य परिचय दिया। तब उस दुष्टात्माने खड्ग खैंचकर दायें हाथसे ॥ ५ ॥ लोकनाथको अनाथकी समान पकडकर मारडाला है। मेरी सती माता मुझ मन्दभागी और श्रीहीनको धिक्कार देतीहुई मेरे पिता उन नरिष्यन्तको आलिंगनपूर्वक अग्निमें प्रवेश करके स्वर्गको चलीगई है ॥ ६॥ ७ ॥ माताने मुझको

हा हतोऽस्मीति पितरं ध्यात्वा दैवं विनिंद्य च ॥ प्रोवाच मंत्रिणः सर्वानानिनाय पुरोहितम् ॥ २ ॥ दम उवाच ॥ यदत्र कृत्यं तद्ब्रूत ताते प्राप्ते सुरालयम् ॥ श्रुतं भवद्भिर्यत्प्रोक्तं तेन शूद्रतपस्विना॥३॥ वृद्धस्तपस्वी स नृपो वानप्रस्थव्रते स्थितः ॥ मौनव्रतधरोऽशस्त्रो मन्मात्रा चेंद्रसेनया ॥४॥ प्रोक्तं संसृष्टया स्वात्म्याद्याथातथ्यं वपुष्मते ॥ तेनापि खड्गमाकृष्य जटां सव्येन पाणिना ॥५॥ धृत्वा जघान दुष्टात्मा लोकनाथमनाथवत् ॥ माता च संदिश्य हि मां धिवछब्दं ब्रुवती सती ॥ ६ ॥ मंदभाग्यं च निःश्रीकं प्रविष्टा हव्यवाहनम् ॥ तमालिंग्य नरिष्यंतं प्रयाता त्रिदशालयम् ॥ ७ ॥ सोऽहमद्य करिष्यामि यन्मे मातुरुदीरितम् ॥ हस्त्यश्वरथपादातं सैन्यं च परिकल्प्यताम् ॥ ८ ॥ अनिर्याप्य पितुर्वैरमहत्वा पितृघातकम् ॥ अकृत्वा च वचो मातुर्जीवितुं किमिहोत्सहे ॥ ९ ॥ मार्कंण्डेय उवाच ॥ मंत्रिणस्तद्वचः श्रुत्वा हाहेत्युक्त्वा तथा च तत् ॥ कृतवंतो विमनसः सभृत्यबलवाहनाः ॥ १० ॥

जिस प्रकार आज्ञा कहलाभेजी है, मैं अब उसीके अनुसार कार्य करूंगा हाथी, घोडे, रथ और पैदल यह चतुरङ्ग सेना सज्जित हो ॥ ८ ॥ पिताका वैर लेनेके निमित्त पितृघातकको विना वध किये और माताकी आज्ञा विना पालन किये मैं जीवन धारणमें किस प्रकार उत्साही हूंगा ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले मंत्रियोंने उनके यह वचन सुन हाहाकार शब्दद्वारा शोक प्रकाश कर उदासमनसे राजाकी आज्ञानुसार कार्य किया और वह भृत्य, सैन्य तथा बल वाहनके सहित ॥ १० ॥

(खड्ग शक्ति और ऋष्टि हाथमें लिये) सपरिवार निकले । तब दम भी त्रिकालज्ञ विप्र पुरोहितोंका आशीर्वाद ग्रहण कर ॥ ११ ॥ उरगराजके समान श्वास छोडते हुए सीमापालादि सामन्तगणोंको विनाश करते करते शीघ्रतासे दक्षिणदिशामें वपुष्मान्‌के लिये गये ॥ १२ ॥ परिवार कुटुम्ब और आमात्यगणोंके सहित योद्धाके देशमें दम आये हैं, यह संवाद पाकर संक्रन्दनके पुत्र वपुष्मान्‌ने भी अमर्षमें पूर्ण हो ॥ १३ ॥ अविचलित चित्तसे अपनी सेनाको युद्धके लिये आज्ञा दी और नगरसे बाहर जाय यह कहकर दूत भेजा ॥ १४ ॥ कि रे क्षत्रियाधम ! तू अत्यन्त शीघ्र आ भार्याके सहित नरिष्यन्त तेरी प्रतीक्षा करते हैं, इस कारण तू शीघ्र मेरे निकट आगमन कर ॥ १५ ॥ यह सब रुधिरके प्यासे शिलापर पैनाये बाण मेरी भुजाओंके द्वारा छूट

निर्ययुः सपरीवाराः पुरस्कृत्य दमं नृपम् ॥ गृहीत्वा चाशिषो विप्रात्त्रिकालज्ञात्पुरोधसः ॥ ११ ॥ अहिराडिव निःश्वस्य दमः प्रायाद्वपुष्मतम् ॥ सीमापालादिसामंतान्निघ्नन्याम्यां दिश त्वरा ॥ १२ ॥ निरीक्ष्य तं समायांतं वपुष्मान्मर्षपूरितः ॥ संक्रंदनसुतेनापि दमो ज्ञातो वपुष्मता ॥ आयातः सपरीवारः सामात्यः सपरिच्छदः ॥ १३ ॥ अकंपितेन मनसा ससैन्यानि दिदेश ह ॥ दूतं च प्रेषयामास निर्गम्य नगराद्बहिः ॥ १४ ॥ त्वं शीघ्रतरमागच्छ नरिष्यंतः प्रतीक्षते ॥ सभार्यक्षत्रबंधो त्वं समायाहि ममांतिकम् ॥ १५ ॥ इमे मद्बाहुनिर्मुक्ताः शिता बाणाः पिपासिताः ॥ भित्त्वा शरीरं संग्रामे पास्यांति रुधिरं तव ॥ १६ ॥ श्रुत्वा दमस्तु तत्सर्वं दूतप्रोक्तं ययौ त्वरन् ॥ स्मृत्वा प्रतिज्ञां पूर्वोक्तां निःश्वसन्नुरगो यथा ॥ १७ ॥ आहूतसमरे चैव पुमान्सेनाविकत्थनः ॥ ततो युद्धमतीवासीद्दमस्य च वपुष्मतः ॥ १८ ॥ रथी च रथिना नागी नागिना हयिना हयी ॥ अयुध्यंत च विप्रर्षे तद्युद्धं तुमुलं ह्यभूत् ॥ १९ ॥

संग्रामस्थलमें तेरे शरीरको भेदन कर रुधिर पान करेंगे ॥ १६ ॥ दम दूतके यह सब वचन सुन और पहिली प्रतिज्ञा स्मरण कर सर्पके समान श्वास छोडते २ शीघ्रतासहित गये ॥ १७ ॥ और उसको समरमें बुलाकर कहा " जो प्रकृत पुरुष हैं, वह कभी आत्मश्लाघा नहीं करते । " अनन्तर दम और वपुष्मान्‌का घोरतर युद्ध उपस्थित हुआ ॥ १८ ॥ रथीके संग रथी, हाथीके संग हाथी और अश्वारोहीके संग अश्वारोही युद्ध करनेलगे । वह तुमुल संग्राम होनेलगा ॥ १९ ॥

हे विप्रर्षे! संपूर्ण देवगण, सिद्ध, गंधर्व और राक्षसगण देखने लगे। उनके सामने इस प्रकार युद्ध होनेलगा। हे ब्राह्मण! जिस काल दम क्रोधपूर्वक युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुये, उस समय पृथ्वी काँपने लगी ॥ २० ॥ ऐसा कोई हाथी, घोडा वा रथी नहीं था, जो उनके बाण सहन करसकता। वपुष्मान्का सेनापति दमके संग युद्ध करता था ॥ २१ ॥ दमके बाणद्वारा उसका हृदय गाढ रीतिसे विद्ध किया। सेनापतिके गिरतेही वपुष्मान्सहित सब सेना भागनेमें तत्पर होकर प्रस्थान करने लगी ॥ २२ ॥ तब शत्रुदमनकारी दमने कहा—रे दुष्ट! मेरे तपस्वी पिताको मारकर तू कहां जाता है ॥ २३ ॥ तैंने मेरे शस्त्रहीन तपस्वी पिताको निहत किया है, तू क्षत्रिय है, अतएव निवृत्त हो। अनन्तर वपुष्मान्ने अनुज, पुत्रसंबंधी और बांधवोंके सहित निवृत्त

पश्यतां सर्वदेवानां सिद्धगंधर्वरक्षसाम् ॥ चकंपे वसुधा ब्रह्मन्युध्यमाने दमे युधि ॥ २० ॥ न गजो न रथी नाश्वस्तस्य बाणसहस्तु यः ॥ ततो दमेन युयुधे सेनाध्यक्षो वपुष्मतः ॥ २१ ॥ हृदि विव्याध च दम इषुणागाढमांतिकम् ॥ तस्मिन्निपतिते सैन्यं पलायनपरं ह्यभूत् ॥ २२ ॥ स स्वामिनं ततः प्राह दमः शत्रुं दमस्तथा ॥ क्व यासि दुष्ट पितरं घातयित्वा तपस्विनम् ॥२३॥ अशस्त्रं च तपस्यंतं क्षत्रियोऽसि निवर्तताम् ॥ ततो निवृत्य स दमं योधयामास सानुजः ॥ २४ ॥ स पुत्रः सह संबंधिबांधवैर्युयुधे रथी ॥ ततः शरासनान्मुक्तबाणैर्व्याप्तास्ततो दिशः ॥ २५ ॥ दमं च सरथं चाशु शरजालैरपूरयत् ॥ ततः पितृवधोत्थेन कोपेन स दमस्तथा ॥ २६ ॥ चिच्छेद ताञ्छरांस्तेषां विव्याधान्यैश्च तानपि ॥ एकैकेन बाणेन सप्त पुत्रांस्तथा द्विज ॥ २७ ॥ संबंधिबांधवान्मित्रान्निनाय यमसादनम् ॥ वपुष्मान्स रथी क्रोधान्निहतात्मजबांधवः ॥ २८ ॥

होकर रथारोहणपूर्वक युद्ध आरम्भ किया। तब वपुष्मान्ने धनुषसे छोडे हुए बाणोंके द्वारा आकाश और संपूर्ण दिशा आच्छन्न करदीं ॥ २४ ॥२५॥ और बाणजालद्वारा अश्व तथा रथसहित दमको ढक दिया। तब दमने भी पिताके वधसे उत्पन्न हुए कोप द्वारा ॥२६॥ उसके बाणोंको छेदन करके शत्रुओंका अंग बाणोंसे विद्ध किया और एक एक बाणसे उसके सात पुत्र ॥ २७ ॥ अनुज संबंधी और मित्रोंको यमसदनमें भेज दिया। तब रथी वपुष्मान् भी आत्मज बांधवोंके मरनेसे अत्यन्त क्रोधित होकर ॥ २८ ॥

सर्पके समान बाणोंसे दमके सहित युद्ध करने लगा किन्तु हे महामुने ! दमने उन सब बाणोंको काट डाला ॥ २९ ॥ इस प्रकार अत्यन्त क्रोधसहित परस्पर परस्परके वधकी इच्छा करके दारुण युद्ध करने लगे । दोनोंही बलवान् और दोनोंही क्रमशः परस्परके शराघातसे छिन्नधनु हो, दोनोंही खड्गग्रहणपूर्वक उठकर युद्धक्रीडा करने लगे वनमें निहत पिताकी क्षण काल चिन्ता करके दमने उसके ॥ ३० ॥ ३१ ॥ केश खैंचकर उसको धरणीतलमें गिरादिया और उसकी गर्दन पैरोसे दबाकर भुजा उठाकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ३२ ॥ इस क्षत्रियाधम वपुष्मान्का हृदय विदीर्ण करता हूं संपूर्ण देवता मनुष्य

युयुधे च स तेनाजौ शरैराशीविषोपमैः ॥ चिच्छेद तस्य तान्बाणान्स दमश्च महामुने ॥ २९ ॥ युयुधाते च संरब्धौ परस्परजयैषिणौ ॥ परस्परशराघातविच्छिन्नधनुषौ त्वरा ॥ ३० ॥ गृहीतखड्गावुत्तीर्य चिक्रीडाते महाबलौ ॥ दमः क्षणं नृपं ध्यात्वा पितरं निहतं वने ॥३१॥ केशेष्वाकृष्य चाक्रम्य निपात्य धरणीतले ॥ शिरोधरायां पादेन भुजमुद्यम्य चाब्रवीत् ॥३२॥ पश्यंतु देवताः सर्वा मानुषाः पन्नगाः खगाः ॥ पाट्यमानं च हृदयं क्षत्रबंधोर्वपुष्मतः ॥ ३३ ॥ एवमुक्त्वा च स दमो हृदयं च व्यदारयत् ॥ पातुकामश्च स सुरैः क्षतजेन निवारितः॥३४॥ ततश्चकार तातस्य रक्तेनैवोदकक्रियाम् ॥ आनृण्यं प्राप्य स पितुः पुनः प्रायात्स्वमंदिरम् ॥ ३५ ॥ वपुष्मतश्च मांसेन पिंडदानं चकार ह ॥ ब्राह्मणान्भोजयामास रक्षःकुलसमुद्भवान् ॥ ३६ ॥ एवंविधा हि राजानो बभूवुः सूर्यवंशजाः ॥ अन्येऽपि सुधियः शूरा यज्विनो धर्मकोविदाः ॥ ३७ ॥

सिद्ध और पन्नग तथा खग यह वार्त्ता अवलोकन करें ॥ ३३ ॥ इस प्रकार कहकर दमने असिद्वारा उसका हृदय विदीर्ण किया और उसका रक्तपान करनेमें उद्यत हुए तब देवताओंने उनको निवारण किया ॥ ३४ ॥ उन्होंने उस रक्तसे अपने पिताकी उदकक्रिया सम्पन्न कराई । दमने वपुष्मान्के मांसद्वारा पितृपिंड प्रदान किये और राक्षसकुलोत्पन्न ब्राह्मणोंको भोजन कराया । इस प्रकार पिताके ऋणसे मुक्त होकर फिर अपने राज्यमें लौटआये ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ इस प्रकारके पराक्रमी राजा सूर्यवंशमें प्रगट हुए हैं और भी अनेक बुद्धिमान् शूर यज्ञ करनेवाले धर्मात्मा और पंडित हुए हैं ॥ ३७ ॥

वह ऐसे वेदान्तपारगामी हुए हैं जो कहनेमें नहीं आते न उनकी कोई संख्या कर सकता है इनका चरित्र श्रवण कर मनुष्य सब पापोंसे छूटता है ॥ ३८॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते भाषाटीकायां वपुष्मद्वधो नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥ पक्षी बोले हे जैमिने ! महामुनि मार्कण्डेयजीने इस प्रकार कीर्त्तन कर, क्रौष्टुकिमुनिको बिदा दे मध्याह्नक्रिया समापन करी ॥ १ ॥ हे महामुने ! जो आपके निकट वर्णन किया, यह अनादिसिद्ध पुराण स्वयंभूने मार्कण्डेयमुनिसे कहा था, हमने उन्हींके निकटसे इसको सुना है ॥ २ ॥ हमने जो आपसे कहा, यह मार्कण्डेयका कहाहुआ मनोहर पुराण पुण्य पवित्र कहा है इसके पाठ करने अथवा सुननेसे आयुर्वृद्धि और सर्व कामार्थकी सिद्धि होती है ॥ ३ ॥ तथा इसके पढने सुननेसे मनुष्य

वेदांतपारगास्तांश्च न संख्यातुमिहोत्सहे ॥ एतेषां चरितं श्रुत्वा नरः पापैः प्रमुच्यते ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते वपुष्मद्वधो नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ एवमुक्त्वा जैमिनेयं मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ विसृज्य क्रौष्टुकिमुनिं चक्रे माध्याह्निकीं क्रियाम् ॥ १ ॥ अस्माभिश्च श्रुतं तस्माद्यत्ते प्रोक्तं महामुने ॥ अनादिसिद्धमेतद्धि पुरा प्रोक्तं स्वयंभुवा ॥ २ ॥ मार्कण्डेयाय मुनये यत्तेऽस्माभिरुदाहृतम् ॥ पुण्यं पवित्रमायुष्यं धर्मकामार्थसिद्धिदम् ॥३॥ पठतां शृण्वतां सद्यः सर्वपापप्रमोचनम् ॥ आदावेव कृता ये च प्रश्नाश्चत्वार एव हि ॥ ४ ॥ पितुः पुत्रस्य संवादस्तथा सृष्टिः स्वयंभुवः ॥ तथा मनूनां स्थितयो राज्ञां च चरितं मुने ॥ ५ ॥ अस्माभिरेतत्ते प्रोक्तं किमद्य श्रोतुमिच्छसि ॥ एतान्सर्वान्नरः श्रुत्वा पठते वा सभासु च ॥६॥ विधूय सर्वपापानि ब्रह्मणोऽन्ते लयं व्रजेत् ॥ अष्टादशपुराणानि यानि प्राह पितामहः ॥७ ॥ तेषां तु सप्तमं ज्ञेयं मार्कंडेयं सुविश्रुतम् ॥ ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ॥ ८ ॥

संपूर्ण पापोंसे छूट जाता है। आपने पूर्वमें मुझसे जो चार प्रश्न किये थे उन्हींका उत्तर ॥ ४ ॥ और पितापुत्रका संवाद स्वयम्भूकी सृष्टि मनुगणोंकी उत्पत्ति और राजाओंका चरित्र भी ॥ ५ ॥ मैंने आपसे वर्णन किया। अब और क्या सुननेकी इच्छा करते हो ? मनुष्य यह सब श्रवण करने और सभास्थलमें पाठ करनेपर ॥ ६ ॥ समस्त पापोंसे छूटकर ब्रह्ममें लीन होता है। पितामह ब्रह्माने अष्टादश पुराण कीर्त्तन किये थे ॥ ७ ॥ तिनमें यह विख्यात मार्कण्डेयपुराण सप्तम है। (१) ब्राह्म, (२) पाद्म, (३) वैष्णव, (४) शैव, (५) भागवत ॥ ८ ॥

(६) नारदीय, (७) मार्कण्डेय (८) आग्नेय (९) भविष्य ॥९॥ (१०) ब्रह्मवैवर्त्त, (११) लिंग, (१२) वाराह, (१३) स्कन्द, ॥१०॥ (१४) वामन, (१५) कौर्म, (१६) मत्स्य, (१७) गरुड और इसके पीछे (१८) अठारहवां ब्रह्माण्ड है ॥ ११ ॥ इन अठारह पुराणोंके नाम जो मनुष्य पाठ करता है और तीनों संध्यामें जप करता है, उसको अश्वमेधयज्ञके फलके समान फल प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ सर्ग, प्रतिसर्ग, वंशवर्णन, मन्वन्तर और वंशानुचरित, यह पुराणके पांच लक्षण हैं ॥ १३ ॥ चार प्रश्नयुक्त यह उत्तम मार्कण्डेयपुराण श्रवण करनेसे सौ करोड कल्पके

तथान्यन्नारदीयं च मार्कंडेयं च सप्तमम् ॥ आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा ॥ ९॥ दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लैंगमेकादशं स्मृतम् ॥ वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कांदमत्र त्रयोदशम् ॥१०॥ चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पंचदशं तथा ॥ मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्मांडं च ततः परम् ॥ ११॥ अष्टादशपुराणानां नामधेयानि यः पठेत् ॥ त्रिसंध्यं जपते नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ १२ ॥ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च ॥ वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥ १३ ॥ चतुःप्रश्नसमोपेतं पुराणं ह्येतदुत्तमम् ॥ श्रुत्वा पुनश्च ते पापं कल्पकोटिशतैः कृतम् ॥ १४ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि यान्यन्यान्यशुभानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यंति तृणं वातहतं यथा ॥ १५ ॥ पुष्करे दानजं पुण्यं श्रवणादस्य जायते ॥ सर्ववेदाधिकफलं समाप्त्या चाधिगच्छति ॥१६॥ यः श्रावयेत्पूजयेत्तं यथा देवं पितामहम् ॥ गंधपुष्पैस्तथा वस्त्रैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥१७॥ यथाशक्त्या च दातव्यं नृपैर्ग्रामादिवाहनम् ॥ एतत्पुराणमखिलं वेदार्थैरुपबृंहितम् ॥ धर्मशास्त्रैकानिलयं श्रुत्वा सर्वार्थमाप्नुयात् ॥ १८ ॥

किये पाप नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥ और ब्रह्महत्यादि संपूर्ण महापाप तथा अन्यान्य सब अमंगल वायुसे हत हुये तृणके समान इसके पाठसे नष्ट होजाते हैं ॥१५॥ पुष्करमें दान करनेसे जो पुण्य होता है, इसके सुननेसे भी वैसाही पुण्यलाभ होता है इसकी समाप्तिमें सम्पूर्ण वेदपाठके समान फल प्राप्त होता है ॥१६॥ जो इस पुराणको सुनावे ब्रह्माके समान उसका पूजन करना चाहिये, गंध पुष्प वस्त्रादिसे पूजन कर ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥१७॥ राजोंको यथाशक्ति ग्राम और वाहन देने चाहिये यह पुराण सम्पूर्णही वेदार्थसे युक्त है. धर्मशास्त्रका स्थान है इसको सुनकर सब अर्थोंकी प्राप्ति होती है ॥ १८ ॥

यह सम्पूर्ण पुराण सुनकर बुद्धिमानूको व्यासका पूजन करना चाहिये, तो धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ सुवर्ण वस्त्र अलंकारसे युक्त गुरुके निमित्त गौ देनी चाहिये श्रवणकी फलप्राप्तिके निमित्त दानसे गुरुको सन्तुष्ट करै ॥ २० ॥ जो मनुष्य विना वाचककी पूजा किये एक श्लोक भी सुनते हैं वह पुण्यलाभ नहीं कर सकते बरन् पण्डित उनको शास्त्रचोर कहते हैं ॥ २१ ॥ देवता उनके प्रति अप्रसन्न होते हैं, पितृगण भी ऐसे पुत्रोंपर प्रसन्न नहीं होते, वह उनका दिया श्राद्धभी ग्रहण नहीं करते तथा उनको तीर्थस्नानका फल भी नहीं मिलता है ॥ २२ ॥ शास्त्रचोरकी

श्रुत्वा पुराणमखिलं व्यासं संपूजयेद्बुधः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां यथोक्तफलहेतवे ॥ १९ ॥ दद्याद्गां गुरवे स्वर्णवस्त्रालंकारसंयुताम् ॥ श्रवणस्य फलावाप्त्यै दानैः संतोषयेद्गुरुम् ॥ २० ॥ अपूज्य पाठकर्तारं श्लोकमेकं शृणोति यः ॥ नासौ पुण्यमवाप्नोति शास्त्रचोरः स्मृतो हि सः ॥ २१ ॥ न तस्य देवाः प्रीणंति पितरो नैव पुत्रकान् ॥ दत्तं श्राद्धं तथेच्छंति तीर्थस्नानफलं न च ॥२२ ॥ लभेत शास्त्रचोरश्च निंदां सज्जनसंसदि ॥ अवज्ञया न श्रोतव्यं शास्त्रमेतद्विचक्षणैः ॥ २३ ॥ पठ्यमाने त्ववज्ञाते साधुभिः शास्त्र उत्तमे ॥ मूको भवति जन्मानि सप्त मूर्खः प्रजायते ॥ २४ ॥ श्रुत्वा तत्पूजयेद्यस्तु पुराणं सत्तमं पुनः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनात्येव निजं कुलम् ॥ २५ ॥ पूतो याति न संदेहो विष्णुलोकं सनातनम् ॥ च्युतस्ततः पुनर्नैव स भविष्यति मानवः ॥२६॥ पुराणश्रवणादेव परं योगमवाप्नुयात् ॥ नास्तिकाय न दातव्यं वृषले वेदनिंदके ॥ २७ ॥

सज्जनोंकी सभामें निन्दा होती है, बुद्धिमानोंको यह शास्त्र अवज्ञा करके न सुनना चाहिये ॥ २३ ॥ जो साधुओंके शास्त्र पढनेमें अवज्ञा करते हैं वह कई जन्म मूक होकर सात जन्मतक बहरे होते हैं ॥२४॥ जो इस सत्तम पुराणको सुनकर पूजन करते हैं वह सब पापसे रहित हो अपने कुलको पवित्र करते हैं ॥ २५ ॥ इसमें सन्देह नहीं वह पवित्र होकर विष्णुलोकको जाते हैं. जहांसे फिर इस संसारमें नहीं आते ॥ २६ ॥ एकमात्र इस पुराणके सुननेसेही उत्कृष्ट योगलाभ होता है। किन्तु यह पुराण नास्तिक, शूद्र, वेदनिन्दक ॥ २७ ॥

गुरुद्वेषी, भग्नव्रत, मातापिताके त्यागी, निन्दक तथा वेदशास्त्रकी निन्दा करनेवालेको न दे ॥ २८ ॥ मर्यादा भंग करनेवाले और ज्ञातिदूषक मनुष्योंको प्रदान न करे, यही क्या, ऐसोंको प्राण कंठगत होनेपर भी न दे ॥ २९ ॥ इन सब मनुष्योंमें यदि कोई लोभ, मोह वा भयसे इस पुराणका पाठ करता है, अथवा पाठ कराकर सुनता है, वा उक्त कारणोंसे यदि कोई उसके निकट पाठ करता है, तो उसकी निरसन्देह नरकमें गति होती है ॥ ३० ॥ मार्कंडेयजी बोले—यह संपूर्ण उपाख्यान धर्म, स्वर्ग और अपवर्गका देनेवाला है, जो पढता और सुनता है; उसके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ॥ ३१ ॥ उसको

गुरुद्विजातिनिंदाय तथा भग्नव्रताय च ॥ मातापित्रोर्निंदकाय वेदशास्त्रादिनिंदिने ॥ २८ ॥ भिन्नमर्यादिने चैव तथा वै ज्ञातिकोपिने ॥ एतेषां नैव दातव्यं प्राणैः कंठगतैरपि ॥२९॥ लोभाद्वा यदि वा मोहाद्भयाद्वापि विशेषतः ॥ पठेद्वा पाठयेद्वापि स गच्छेन्नरकं ध्रुवम् ॥३०॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एतत्सर्वमुपाख्यानं धर्म्यं स्वर्गापवर्गदम् ॥ यः शृणोति पठेद्वापि सिद्धं तस्य समीहितम् ॥ ३१ ॥ आधिव्याधिजदुःखेन कदाचिन्नाभियुज्यते ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ ३२॥ संतः स्वजनमित्राणि भवंति हितबुद्धयः ॥ नारयः संभविष्यंति दस्यवो वा कदाचन ॥ ३३ ॥ सदर्थो मिष्टभोगी च दुर्भिक्षैर्नावसीदति ॥ परदारपरद्रव्यपरहिंसादिकिल्बिषैः ॥३४॥ मुच्यतेऽनेकदुःखेभ्यो नित्यं चैव द्विजोत्तम ॥ ऋद्धिर्वृद्धिः स्मृतिः शांतिः श्रीः पुष्टिस्तुष्टिरेव च ॥ नित्यं तस्य भवेद्विप्र यःशृणोति कथामिमाम्॥३५॥

कभी आधिव्याधिके दुःख नहीं होते, इसमें सन्देह नहीं; वह ब्रह्महत्यादि पापोंसे छूटजाता है ॥ ३२ ॥ उसके स्वजन और मित्र हितकारी होते हैं, उसका कोई शत्रु नहीं होता, तथा उसको चोरोंकी बाधा नहीं होती ॥ ३३ ॥ उसके यहां अच्छा धन रहता है, वह मिष्टान्नभोजी होकर कभी दुर्भिक्षसे पीडित नहीं होता, पराई स्त्री, पराया द्रव्य, पराई हिंसाके पापोंसे ॥ ३४ ॥ तथा और भी अनेक प्रकारके दुःखोंसे छूट जाता है, हे द्विज ! ऋद्धि, वृद्धि, स्मृति, शान्ति, लक्ष्मी, पुष्टि, तुष्टि उसको नित्यप्रति होती हैं जो इस कथाको सुनता है ॥ ३५ ॥

इस संपूर्ण " मार्कण्डेयपुराण " को सुनकर फिर शोचके योग्य नहीं रहता है। और जो ब्राह्मण इसको कहते हैं, वहभी शोचके योग्य नही होते, वह योग ज्ञान और विशुद्ध सिद्धिके सहित स्वर्गादिलोकको जाते हैं और इन्द्रादि देवताओंसे युक्तहोकर स्वर्गमें सदा पूजित होते हैं ॥ ३६ ॥ इस ज्ञान विज्ञानसे संयुक्त पुराणको सुनकर पुरुष अच्छे विमानमें बैठ स्वर्गलोकको जाता है ॥ ३७ ॥ सूक्ष्मदर्शी महाबुद्धिमान् उन मार्कण्डेयजीने प्रथम इस पुराणके अक्षरोंकी संख्यासे इस पुराणमें छः हजार नौसे श्लोक वर्णन किये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जैमिनि बोले हे पक्षिगण ! महाभारतमें जो सन्देह नष्ट नहीं हुआ तुमने

मार्कण्डेयपुराणमेतदखिलं शृण्वन्नशोच्यः पुमान्यो वासम्यगुदीरयेद्रसमयं शोच्यो न सोऽपि द्विज ॥ योगज्ञानविशुद्धसिद्धिसहितः स्वर्गादिलोकेऽप्यसौ शक्राद्यैश्च सुरादिभिः परिवृतः स्वर्गे सदा पूज्यते ॥ ३६ ॥ पुराणमेतच्छ्रुत्वा च ज्ञानविज्ञानसंयुतम् ॥ विमानवरमारुह्य स्वर्गलोके महीयते ॥ ३७ ॥ पुराणाक्षरसख्या च प्रख्याता तत्त्वबुद्धिना ॥ श्लोकानां षट्सहस्राणि तथा चाष्टशतानि च ॥ ३८ ॥ श्लोकास्तत्र नवाशीतिरेकादशसमाहिताः ॥ कथिता मुनिना पूर्वं मार्कण्डेयेन धीमता ॥ ३९ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ भारतेनाभवद्यन्मे संशयस्फोटनं द्विजाः ॥ तद्भवद्भिः कृतं यन्न कश्चिदद्य करिष्यति ॥ ४० ॥ यूयं दीर्घायुषः स्यात प्रज्ञाबुद्धिविशारदाः ॥ सांख्ययोगे तथा चास्तु बुद्धिरव्यभिचारिणी ॥ ४१ पितृशापकृताद्दुःखाद्दौर्मनस्यं व्यपेतु वः ॥एतावदुक्त्वा वचनं जगाम स्वाश्रमं मुनिः ॥ चिंतयन्परमोदारं पक्षिणां वाक्यमीरितम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे एतत्पुराणमाहात्म्यश्रवणपठनफलं नाम चतुर्स्त्रिंशदधिकशततमोध्यायः ॥ १३४ ॥ सम्पूर्णमिदं मार्कण्डेयमहापुराणम् ॥ श्रीशः पायात् ॥

सख्य (मित्र) भावसे मेरा वह संशय दूर किया और कौन इस प्रकार करसकता है ? ॥ ४० ॥ तुम अत्यन्त दीर्घायु, रोगरहित और बुद्धिविशारद होओ, तुम्हारी बुद्धि सांख्ययोगमें अव्यभिचारिणी हो ॥ ४१ ॥ तुम पिताके दिये शापसे दुःखको नहीं प्राप्त हुए उनसे यह वचन कहकर और उन परमोदार पक्षियोंके वचन स्मरण करतेहुए मुनि अपने आश्रममें आये ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवनविख्यात-पण्डितकुलतिलकमिश्रसुखानन्दसूरिसूनुमुरादाबादनिवासि -पण्डितकन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां पुराणश्रवणपठनफलं नाम चतुर्स्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥ श्रीमज्जगदीश्वरार्पणमस्तु ॥

दोहा–श्रीगणेश पदपद्म गहि, व्यासमुनिहि शिर नाय। मार्कण्डेय पुराणकी, टीका लिखी बनाय ॥ १ ॥
पढहि सुनहि कर प्रेम जे, लहहि पदारथ चार। सकल कामना सिद्धिप्रद, देवनचरित उदार ॥ २ ॥
वसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद। भजन करत हरिको तहां, बुधज्वालापरसाद ॥ ३ ॥
तिनको मैं लघुभ्रात हूं, नाम कन्हैयालाल। प्रतिपदको टीका कियो, भाषा ललित रसाल ॥ ४ ॥
जगद्विदित महिमा अतुल, खेमराज सुखदान। वेङ्कटेश्वर यंत्रपति, राखत गुणियन मान ॥ ५ ॥
तिन हित यह टीका कियो, निजमतिके अनुसार। है पूरण विश्वास वह, करिहैं अंगीकार ॥ ६ ॥
सम्वत् वसु शर अंक विधु, भाद्र पूर्णिमा पाय। पूर्ण कियो भाषा सरल, टीका सब सुखदाय ॥ ७ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-४२००७८.

अत्रेयमभ्यर्थना।



अस्माकं मुद्रणालये वेद-वेदान्त-धर्मशास्त्र-प्रयोग-योग-सांख्य-ज्योतिष-पुराणेतिहास-वैद्यक मंत्र-स्तोत्र-कोश-काव्य-चम्पू-नाटका-ऽलंकार-संगीत-नीति-कथाग्रंथाः, बहवः स्त्रीणां चोपयुक्ता ग्रंथाः, बृहज्ज्योतिषार्णवनामा बहुविचित्रचित्रितोऽयमपूर्वग्रन्थः संस्कृतभाषया, हिन्दीमार्वाडयादिभाषाग्रन्थास्तत्तच्छास्त्राद्यर्थानुवादकाः, चित्राणि, पुस्तकमुद्रणोपयोगिन्यो यावत्यस्सामग्र्यः, स्वस्वलौकिकव्यवहारोपयोगिचित्रचित्रितालिखितपत्रवत्पुस्तकानि च, मुद्रयित्वा प्रकाश्यन्ते सुलभेन मूल्येन विक्रयाय । येषां यत्राभिरुचिस्तत्तत्पुस्तकाद्युपलब्धये एवं नव्यतया स्वस्वपुस्तकानि मुमुद्रापयिषुभिः सुलभयोग्यमौल्येन सीसकाक्षरैः स्वच्छोत्तमोत्तमपत्रेषु मुद्रिततत्पुस्तकानां स्वस्वसमथानुसारेणोपलब्धये च पत्रिकाद्वारा बोधनीयोऽस्मि ।

॥ इति सभाषाटीकं श्रीमार्कण्डेयपुराणं समाप्तम् ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.